P K
८०
प्र८ईस
भा०२१ खं०१

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

R
२०
विषय संख्या ५८९स
पुस्तक संख्या आ० २१वि०-१
आगत पंजिका संख्या ४६४२८

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

112898

६७, ६८४

~~विज्ञान~~ महाविद्यालय पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

९
८०
वर्ग संख्या ५८६, स
ग्रन्थ संख्या आ० २१ वि. १

यह पुस्तक निम्नांकित अन्तिम तिथि को या उससे पूर्व पुस्तकालय में जमा हो जानी चाहिये। अन्यथा पांच पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क देना होगा।

५२०५२८

SARASVATI—Reg. No. A248.

भाग २१, खण्ड १] जनवरी, १९२० [संख्या १, पूर्ण संख्या २४१

सरस्वती

112898

CHECKED 1973

संख्या ११८

वार्षिक मूल्य ५)] सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ॥)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

लेख-सूची।

पृष्ठ

(१) शरणागत (कविता)—[लेखक, बाबू सियारामशरण गुप्त १

(२) राजकीय घोषणा—[लेखक, पण्डित दयाशङ्कर दुबे, एम० ए० ... ... २

(३) सीता और पोरशिया—[लेखक, पण्डित खड्गजीत मिश्र, एम० ए०, ऐडवोकेट ... १०

(४) हरे और सूखे पेड़ की दो दो बातें (कविता)—[लेखक, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र १५

(५) एक्सचेञ्ज [Exchange]—[लेखक, लाला कन्नोमल, एम० ए० ... ... १६

(६) डिब्बा—[लेखक, पण्डित ज्वालादत्त शर्म्मा २१

(७) कर्तव्याकर्तव्य-विचार—[लेखक, श्रीयुत शीतलासहाय, बी० ए० ... ... २६

(८) शैव्या का विलाप (कविता)—[लेखक, "सनेही" २९

(९) बाबू अरविन्द घोष ३२

(१०) बँगला की "व्रजबुलि" और 'वृन्दावनी भाषा'—[लेखक, पण्डित कामताप्रसाद गुरु ३४

(११) नास्तिक का तर्क—[लेखक, सारस्वत मकरन्द ३६

(१२) सुजीवन (कविता)
(१३) गूढ़ाशय (कविता) }—[लेखक, बाबू सियारामशरण गुप्त ४०

(१४) लन्दन की धुन्ध—[लेखक, श्रीयुत लक्ष्मणस्वरूप, एम०, ए०, आक्सफर्ड ४०

(१५) पत्थर का कोयला—[लेखक, बाबू रामरत्नपाल सड्डी ४२

(१६) श्मशान (कविता)—[लेखक, पण्डित रामचरित उपाध्याय ४४

(१७) विविध विषय ४५

(१८) पुस्तक-परिचय ६१

(१९) चित्र-परिचय ६२

चित्र-सूची।

(१) सन्देश-वाहिनी मुरला (रङ्गीन)।

(२) सम्राट् पञ्चम जार्ज और सम्राज्ञी मेरी।

(३) बाबू अरविन्द घोष।

(४) श्रीयुत, एडविन सैम्युयल मांटेगू, भारतवर्ष के सेक्रेटरी आव् स्टेट।

(५) माननीय पण्डित जगतनारायण।

(६) सर रासविहारी घोष।

(७) सङ्गीत-सम्मेलन (बनारस) की स्वागत-कारिणी समिति के सदस्य।

(८) सङ्गीत-सम्मेलन (बनारस) के कुछ गुणी जन।

नई पुस्तक! नई पुस्तक!!

डाकघर

डाकघर कैसा है?—इसके लिए इतना ही लिखना काफ़ी है कि यह डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना है। कहानी के बहाने एक विशेष विषय पर विचार हैं। पात्रों के साथ आप पुस्तक की सैर कीजिए। यदि ध्यान दीजिएगा तो उस विषय से भेट हो जायगी, कहानी का आनन्द है ही। मतलब यह कि पुस्तक सभी के काम की है। भाषा सरल है। विषय को समझाने के लिए आवश्यकतानुसार टिप्पणियाँ भी दे दी गई हैं। कहानी छोटी है किन्तु सरस अधिक है। मूल्य ।–) पाँच आने।

प्रकाशित हो गई

सचित्र

आदर्श महिला

इस सुन्दर पुस्तक का नये सिरे से परिचय देने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि इसके प्रथम संस्करण की सारी प्रतियाँ बहुत शीघ्र हाथों हाथ बिक गई थीं। माँग बहुत बढ़ने पर उसका दूसरा संशोधित संस्करण प्रकाशित किया गया है। इस संस्करण में भाषा भी सरल कर दी गई है। और बातें पहले की सी हैं। शीघ्रता कीजिए, नहीं तो फिर अगले संस्करण तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। रङ्गीन और सादे चित्रों से भूषित सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ १॥) डेढ़ रुपया।

मिलने का पता— **मैनेजर इंडियन प्रेस, प्रयाग।**

118498

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग २१, खण्ड १

जनवरी—जून

१९२०

* * *

सम्पादक

महावीरप्रसाद द्विवेदी

* * *

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, कटरा, प्रयाग
वार्षिक मूल्य पाँच रुपये

[illegible]
पुस्तक सं. ....
आगत सं. ....
दिनांक ....
[illegible]

लेख-सूची ।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	अभागा फूल (कविता)	बाबू सियारामशरण गुप्त	२९५
२	अटलांटा नगर की सैर	एक यात्री	२८१
३	अध्यापक जुलियस एगलिङ्ग, पी-एच० डी०	पण्डित कामताप्रसाद गुरु	६३
४	अँगरेज़ी और देशी भाषायें	अध्यापक	२६८
५	अन्त (कविता)	बाबू पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०	२९४
६	अनाज की कमी दूर कैसे हो ?	पण्डित दयाशङ्कर दुबे, एम० ए०, एफ़-आर० ई० एस०	१९६
७	अभिलाष (कविता)	बाबू ज्योतिश्चन्द्र घोष	१०६
८	अभिलाषा (कविता)	बाबू मणिराम गुप्त	१२७
९	अविश्वास (कविता)	बाबू सियारामशरण गुप्त	२०८
१०	अज्ञात (कविता)	बाबू पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०	१७१
११	आज तक जाना नहीं (कविता)	बाबू ज्योतिश्चन्द्र घोष	१०६
१२	आस्तिक का नम्र निवेदन	बाबू हरनारायण बाथम, एम० ए०	३०७
१३	ईश्वर कहाँ है ?	श्रीयुत हरिकृष्ण बजरङ्गलाल	२०४
१४	ईश्वर-दर्शन	पण्डित तारादत्त ज्योतिर्विद्	२६८
१५	उत्कण्ठा (कविता)	पण्डित रामचरित उपाध्याय	१६५
१६	एक्सचेञ्ज	लाला कन्नोमल, एम० ए०	१६, १८६ और २५५
१७	कर्तव्याकर्तव्य-विचार	श्रीयुत शीतलासहाय, बी० ए०	२६
१८	क़ैसर का वर्तमान जीवन	श्रीयुत युगलसिंह, एम० ए०, एल-एल० बी०	१४३
१९	खेतों का सङ्गठन और एकीकरण	पण्डित चम्पाराम मिश्र, बी० ए०	१५८
२०	ख्वाजा आतिश	पण्डित ज्वालादत्त शर्मा	२७२
२१	गीता-दर्शन	बाबू गुलाबराय, एम० ए०, एल-एल० बी०	२५३
२२	ग्रीष्म	आयुर्वेदाचार्य पण्डित उमाशङ्कर द्विवेदी	२१९
२३	गुरुदेव (कविता)	पण्डित गोकुलचन्द्र शर्मा	२२२
२४	गूढ़ाशय (कविता)	बाबू सियारामशरण गुप्त	४०
२५	चित्र-परिचय		६२, १८२, २३८, २९४ और ३५०
२६	चीन में बौद्ध-धर्म		३०५
२७	जी की कचट (कविता)	पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय	१६१
२८	ज्ञान का प्रथमाङ्कुर	पण्डित गोपाल दामोदर तामसकर, एम० ए०	१६२
२९	डाक्टर एल० पी० टैसीटोरी एम० ए०, पी-एच० डी०		१२८

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
३०	डिब्बा	पण्डित ज्वालादत्त शर्मा	२१
३१	दीन की आह (कविता)	सनेही	२१४
३२	नगर-निवासी निर्धन जनों का सुधार ...	सेंट निहालसिंह (लन्दन)	२४१
३३	नागरी-लिपि में सुधार की आवश्यकता ...	पण्डित बदरीनाथ भट्ट, बी० ए० ...	८[illegible]
३४	नास्तिक का तर्क	सारस्वत मकरन्द	३६
३५	नास्तिक के तर्क का खण्डन	कोचक, कृषि-विद्यालय, कानपुर ...	२६४
३६	पतित की प्रार्थना (कविता)	पण्डित मनोहरप्रसाद मिश्र	३०२
३७	पत्थर का कोयला	बाबू रामरत्नपाल सड्ढी	४२
३८	पश्चिमी अर्थशास्त्र का सूक्ष्म इतिहास ...	बाबू बेनीमाधव मेहरोत्र, बी० ए० ...	७६
३९	पाप की चोरी	प्रवीण	२६०
४०	पुस्तक-परिचय		६१, १२२, १७६, २३३, २९१ और ३४८
४१	पुत्र-प्रेम (आख्यायिका)	श्रीयुत प्रेमचन्द	३२२
४२	पृथ्वी का पुत्र	पण्डित वनमालीप्रसाद शुक्ल ...	३२७
४३	प्रतिज्ञा (कविता)	पण्डित गोकुलचन्द्र शर्मा ...	९७
४४	प्रतीक्षा (कविता)	सनेही	२३९
४५	प्रार्थना (कविता)	बाबू देवीप्रसाद गुप्त, बी० ए० ...	६३
४६	प्रेम-विह्वल (कविता)	बाबू सियारामशरण गुप्त	८६
४७	प्रेम का जादू (कविता)	बाबू मणिराम गुप्त	३२२
४८	बँगला की "व्रजबुलि" और वृन्दावनी भाषा ...	पण्डित कामताप्रसाद गुरु	३४
४९	बाबू अरविन्द घोष	... ...	३२
५०	बाबू ज्योतिःस्वरूप	श्रीमती यशोदा देवी	३१९
५१	बाबू रामानुग्रहनारायणसिंह	श्रीयुत वंशीलाल	१८३
५२	बिजली क्या है ?	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, इ० इ०	८६
५३	ब्रिटिश जनता के अधिकार	पण्डित मनोहरप्रसाद मिश्र	३३१
५४	बोलपुर का शान्तिनिकेतन-ब्रह्मचर्याश्रम ...	पण्डित मुकुटधर पाण्डेय और मनोहरप्रसाद मिश्र	३१२
५५	भव्य भारत (कविता)	पण्डित रामचरित उपाध्याय	३११
५६	भारत में आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या ...	पण्डित दयाशङ्कर दुबे, एम० ए० ...	६५
५७	भीषण वज्रपात	... ...	१२६
५८	मदरासी भाइयों से गांधीजी की अपील ...	... ...	१५४
५९	महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र आचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी०	पण्डित बालदत्त पाण्डेय	३०२
६०	माली (कविता)	बाबू सियारामशरण गुप्त	२७२
६१	युद्ध-सम्बन्धी विचारों की उत्पत्ति ...	पण्डित वनमालीप्रसाद शुक्ल ...	९०
६२	योरप का महायुद्ध और हिन्दुस्तान का सराफ़ा ...	श्रीयुत कस्तूरमल बांठिया, बी० कामर्स	१०६ और १४६
६३	योरप में कालिदास	... ...	२३९
६४	रहस्य (कविता)	बाबू पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०...	१७०

नंबर	नाम	लेखक	पृष्ठ
६५	राजकीय घोषणा	पण्डित दयाशङ्कर दुबे, एम० ए०	२
६६	लज्जा-त्रस्त (कविता)	पण्डित मुकुटधर पाण्डेय	२२५
६७	लन्दन की धुन्ध	श्रीयुत लक्ष्मणस्वरूप, एम० ए० (आक्सफ़र्ड)	४०
६८	लाला लक्ष्मणदास		१९२
६९	वन-वैभव (कविता)	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	७४, १४०, १९० और २५०
७०	वायुमापक यन्त्र	पण्डित अम्बिकाप्रसाद पाण्डेय	२२३
७१	वाल्ट ह्विटमैन		२९५
७२	विधवा	पण्डित विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक	१६५
७३	वियोग (कविता)	बाबू कुशहरीदयाल निगम	२८१
७४	विलेज-पञ्चायत बिल		२००
७५	विवाह (कविता)	बाबू सियारामशरण गुप्त	१५७
७६	विविध विषय		४५, १०९, १७१, २२५, २८४ और ३३५
७७	शक्ति उत्पन्न करनेवाली बिजली	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, इ० इ०	२१६
७८	शरणागत (कविता)	बाबू सियारामशरण गुप्त।	१
७९	श्मशान (कविता)	पण्डित रामचरित उपाध्याय	४४
८०	शान्ति	पण्डित विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक	९८
८१	शैव्या का विलाप (कविता)	सनेही	२९
८२	श्रीलक्ष्मी-काव्यम्:(समालोचना)		२१२
८३	सद्गुरु-प्रार्थना (कविता)	पण्डित बदरीनाथ भट्ट, बी० ए०	१८३
८४	सीता और पोरशिया	पण्डित खड्गजीत मिश्र, एम० ए०, एडवोकेट	१०
८५	सुख और दुःख (कविता)	सनेही	१४५
८६	सुजीवन (कविता)	बाबू सियारामशरण गुप्त	४०
८७	सूखे फूल कविता)	बाबू पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए०	१७१
८८	सेवा-सदन (समालोचना)	बाबू कालिदास कपूर, बी० ए०	१०२
८९	हरे और सूखे पेड़ की दो दो बातें (कविता)	पण्डित केशवप्रसाद मिश्र	१५
९०	हवाई द्वीप की सैर	एक यात्री	१२९
९१	हित की बात (कविता)	पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय	१९९
९२	हिन्दी-समाचार-पत्रों के लिए एक नया कार्यक्षेत्र	श्रीयुत मावलीप्रसाद श्रीवास्तव	२०९
९३	हिन्दू-नाटक		२४८

चित्र-सूची।

रङ्गीन चित्र।

नंबर	नाम	महीना	पृष्ठ
१	गुलबकावली	एप्रिल	आदि-पृष्ठ
२	ध्रुव की परमेश-प्रार्थना	मई	आदि-पृष्ठ
३	व्रजाङ्गना	मार्च	आदि-पृष्ठ
४	श्रीयुत बाबू हरिपद घोष	फ़रवरी	आदि-पृष्ठ
५	सन्देश-वाहिनी मुरला	जनवरी	आदि-पृष्ठ
६	भृङ्गराज	जून	आदि-पृष्ठ

सादे चित्र

१ कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ३४३
२ क्लेटन हाल का भीतरी दृश्य २४५
३ जनमेजय का यज्ञ-स्तम्भ ११८
४ डाक्टर एल० पी० टैसीटोरी, एम० ए, पी-एच० डी० ... ... १२८
५ पण्डित हरनन्दन पांडे बी० ए० ... ... १७७
६ प्राच्य-विद्या-विशारदों का सम्मेलन १८२
७ बाबू अरविन्द घोष ३३
८ बाबू ज्योतिःस्वरूप ३२०
९ बाबू रामानुग्रहनारायणसिंह १८४
१० बाल-गन्धर्व मनहर बर्वे १७६
११ ब्राउनिङ्ग सेटिलमेण्ट २४२
१२ ब्राउनिङ्ग हाल २४३
१३ बेथानी होम्स २४७
१४-१६ भारतीय सङ्गीत-सम्मेलन काशी के ३ चित्र ११६-११७
१७ महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम० ए०, पी-एच० डी० ... ३०३
१८ माननीय जस्टिस गोकुलप्रसाद, एम० ए, एल्-एल्० बी० ... ... ३४७
१९ माननीय पण्डित जगतनारायण ५१
२० राय बहादुर मुंशी नानकचन्द सी० एस० आई० सी० आई० ई० .. २९०
२१ रुख़ बदलनेवाली बिजली पैदा करनेवाला डाइनमो २१६
२२ लाला लक्ष्मणदास १९३
२३ लाला लक्ष्मणदास की धर्मशाला १९४
२४ वायुमापक यन्त्र २२४
२५ श्रीमती महादेवी ३२१
२६ श्रीयुत एडविन सैम्युयल मांटेगू, भारतवर्ष के सेक्रेटरी आव् स्टेट ४५

नंबर नाम पृष्ठ
२७ श्रीयुत हरिश्चन्द्र एम० एस-सी० ... ... १२२
२८ सङ्गीत-सम्मेलन, बनारस, के कुछ गुणी जन ६०
२९ सङ्गीत-सम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति के सदस्य ५२
३० सम्राट् पञ्चम जार्ज और सम्राज्ञी मेरी ८
३१ सर रासविहारी घोष ५५
३२ सिद्ध-पुष्करिणी ११६

रङ्गीन चित्र ६
सादे चित्र ३२

कुल ३८

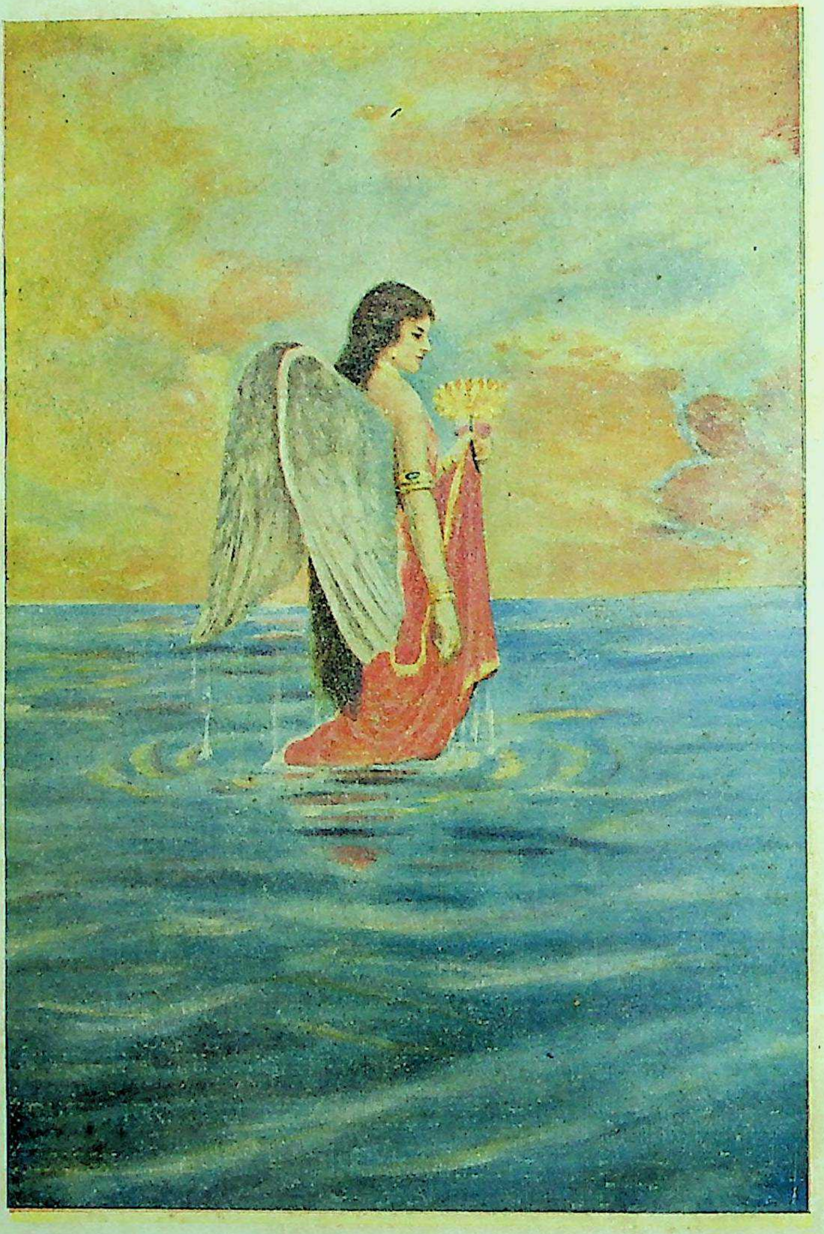

सन्देश-वाहिनी मुरला।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सरस्वती

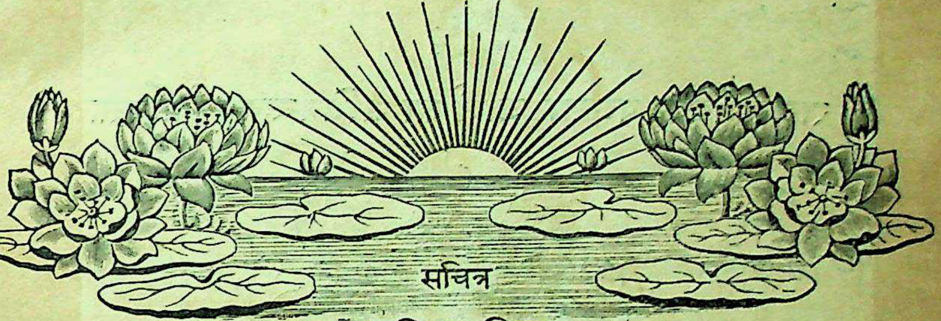

सचित्र

मासिक पत्रिका।

भाग २१, खण्ड १]   जनवरी १९२०—माघ १९७६   [संख्या १, पूर्ण संख्या २४१

शरणागत ।

[१]

क्षुद्र सी हमारी नाव, चारों ओर है समुद्र,
वायु के झकोरे उग्र रुद्र रूप धारे हैं;
शीघ्र निगल जाने को नौका के चारों ओर,
सिन्धु की तरङ्गें सौ सौ जिह्वायें पसारे हैं।
हारे सभी भांति हम अब तो तुम्हारे बिना,
झूठे ज्ञात होते और सबके सहारे हैं;
और क्या कहें अहो! डुबा दो या लगा दो पार,
चाहे जो करो शरण्य! शरण तुम्हारे हैं॥

[२]

सुनसान कानन भयावह है चारों ओर
दूर दूर साथी सभी हो रहे हमारे हैं।
कांटे बिखरे हैं, कहां जावें जहां पावें ठौर
छूट रहे पैरों से रुधिर के फुहारे हैं।
आगया कराल रात्रिकाल, हैं अकेले यहां
हिंस्र जन्तुओं के चिह्न जा रहे निहारे हैं;
किसको पुकारें यहां रोकर अरण्य-बीच
चाहे जो करो शरण्य! शरण तुम्हारे हैं॥

सियारामशरण गुप्त

राजकीय घोषणा ।

[सम्राट् पञ्चम जार्ज का सन्देश]

२३ दिसम्बर १९१९

वाइसराय और गवर्नर-जनरल, देशी राज्यों के अधिपतिवर्ग, और सभी धर्म्मों, सम्प्रदायों तथा जातियों के प्रजा-पुञ्ज

से

राजराजेश्वर पञ्चम जार्ज का अभिनन्दनपूर्वक वक्तव्य ।

[भावार्थ]

१—भारत के इतिहास में आज नये युग का प्रारम्भ होता है। गवर्नमेंट आव् इंडिया एक् नाम का क़ानून जारी करने के लिए मैंने शाही मंज़ूरी दे दी है। यह क़ानून ऐसा वैसा नहीं। इस देश की पार्लियामेंट ने आज तक शासन-सम्बन्धी जितने बड़े बड़े क़ानून पास किये हैं, यह क़ानून उन्हीं की बराबरी का है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह बड़े मार्के का है। यह क़ानून भारत के शासन में विशेष सुधार करने और भारतीय प्रजा को समधिक सन्तोष देने के लिए पास किया गया है। माननीय ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन-समय में इसी विषय का एक क़ानून पहले तो सन् १७७३ ईसवी में, और फिर, दूसरा, सन् १७८४ ईसवी में पास हुआ। ये दोनों क़ानून, भारत में, देश-शासन और न्याय की नियमित पद्धति निश्चित करने के लिए निर्मित हुए थे। इसके अनन्तर, १८३३

ईसवी में, एक और क़ानून जारी करके, उसके द्वारा, सरकारी नौकरी पाने और अधिकार-भोगी पदों पर प्रतिष्ठित होने का द्वार भारतवासियों के लिए खोल दिया गया। १८५८ ईसवी में पास किये गये क़ानून के अनुसार भारत के शासन का भार ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकार से निकल कर इँगलेंड के अधीश्वर के हाथ में आया। तभी से भारत में सार्वजनिक जीवन की नीव पड़ी, जो आज भी पूर्ववत् बनी हुई है। तदनन्तर, १८६१ ईसवी में, एक और क़ानून के द्वारा, प्रतिनिधिसत्ताक संस्थाओं का बीज बोया गया। १९०९ ईसवी के क़ानून की बदौलत उस बोये हुए बीज से अङ्कुर निकल आया—उन संस्थाओं के कार्य्य-कलाप की सीमा बढ़ गई। जो नया क़ानून अभी पास हुआ है उसने पूर्वप्रदत्त अधिकारों की बहुत अधिक वृद्धि कर दी है। उसके अनुसार देश-शासन का एक निश्चित अंश प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधियों को प्राप्त हुआ है। भविष्यत् में, किसी समय, भारत के शासन का उत्तरदायित्वपूर्ण समग्र अधिकार भी प्रजा के प्रतिनिधियों को मिल जायगा, इसकी भी सूचना इस क़ानून में है। इसने इस तरह के पूरे शासन की प्राप्ति का मार्ग खोल दिया है। बात यह कि, आगे चलकर, भारत को अपना शासन आप ही करने का भी मौक़ा दिया जायगा। मुझे आशा और विश्वास है कि जिस नीति के आधार पर इस क़ानून का निर्माण हुआ है वह नीति यदि सफल हो गई—यदि उससे वही परिणाम निकला जिसकी आशा से उसकी सृष्टि हुई है—तो मानवी समाज की उन्नति की कहानी बड़ा ही अपूर्व रूप धारण करेगी। अतएव यह बात समुचित और सामयिक होगी कि आज मैं आपसे यह कहूँ कि भूतकालिक घटनाओं पर विचार करके आप मेरी भावी आशाओं को सफल करने के लिए सन्नद्ध हो जायँ।

२—जब से भारत के कल्याण का भार हम पर निहित हुआ तब से हमारे वंश और हमारे परिवार ने, पवित्र कार्य्य समझ कर, उस भार का वहन किया है। सन् १८५८ ईसवी की बात याद कीजिए। उस समय मेरी दादी, पुनीत-स्मृति, कीन विक्टोरिया, इस सिंहासन पर आसीन थीं। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि वे भारतवासियों को उसी दृष्टि से देखेंगी जिस दृष्टि से वे अपनी अन्यान्य प्रजा को देखेंगी। उन्होंने अपने कर्तव्य, सबके विषय में, एकसे निश्चित किये थे। उन्होंने भारतवासियों को धार्मिक स्वतन्त्रता भी दी और यह भी प्रण किया कि मैं सबको तुल्य समझूँगी और पक्षपातरहित होकर क़ानूनन सबकी रक्षा करूँगी। १९०३ ईसवी में, मेरे पूजनीय पिता, महाराज सप्तम एडवर्ड, ने अपने सन्देश में फिर उन्हीं प्रतिज्ञाओं को दुहराया। उन्होंने कहा, मैं भी भारतवासियों पर दयादर्शक और समतासूचक

शासन करूँगा—अर्थात् मैं भी जाति-पाँति का भेदभाव न रक्खूँगा; सबको समदृष्टि से देखूँगा; सबका नियमन एक ही से क़ानून द्वारा करूँगा। १९०८ ईसवी में उन्होंने अपनी घोषणा में, फिर उन वचनों की पुनरावृत्ति की जो ५० वर्ष पहले दिये गये थे। साथ ही उन्होंने उस उन्नति का सिंहावलोकन भी किया जो उनकी प्रेरणा से उस समय तक हुई थी। १९१० ईसवी में जब मैं सिंहासन पर बैठा तब मैंने भी भारतीय नरेशों और भारतीय प्रजाजनों को अपना सन्देश सुनाया। उसमें मैंने उनकी राजभक्ति और मेरे विषय में उनके आदर-भाव को स्वीकार किया। मैंने उस सन्देश के द्वारा उन्हें यह भी विश्वास दिलाया कि मैं भारत की सुख-समृद्धि की वृद्धि का सबसे अधिक ध्यान रक्खूँगा। इसके दूसरे ही साल मैं अपनी राज-महिषी के साथ भारत गया। तब मैंने अपनी भारतीय प्रजा के प्रति अपनी सहानुभूति तथा उसके कल्याण की कामना का प्रमाण भी दिया।

३—इन बातों से सूचित है कि मैं और मेरे पूर्व-पुरुष भारतवासियों को किस प्रेम और किस सद्भाव की दृष्टि से देखते आये हैं। हम लोगों के जितने काम हुए हैं सभी उदार भावों की प्रेरणा से हुए हैं। अब पारलियामेंट की, इस देश के निवासियों की, और मेरे नियुक्त किये हुए जो अफ़सर भारत में शासन-कार्य्य करते हैं उनकी बात लीजिए। वे भी भारत की नैतिक तथा साम्पत्तिक उन्नति के साधन में आग्रहपूर्वक उत्साह दिखाते आये हैं। परमेश्वर ने हमें जो सुख-समृद्धि और जो शक्ति दी है उस सबसे हमने भारतीय जन-समूह को भी लाभ पहुँचाने की चेष्टा की है—उन्हें भी सुखी और शक्ति-सम्पन्न करने का प्रयत्न किया है। परन्तु एक बात अब तक हमसे नहीं हो सकी—एक नियामत अब तक हम भारत को नहीं दे सके। और वह नियामत या भलाई ऐसी है जिसके बिना किसी भी देश की यथेष्ट उन्नति नहीं हो सकती। यह नियामत है, अपना शासन आप ही करना—अपने देश का शासन-प्रबन्ध आप ही करके अपने हित की रक्षा करने का अधिकार पाना। बाहरी शत्रुओं से भारत की रक्षा करना तो साम्राज्य की सर्वप्रधान शक्ति का ही कर्तव्य है और इस कर्तव्य का पालन उस शक्ति के लिए गर्व की भी बात है। इस कारण वह तो उसीको करना पड़ेगा। रही भारत के भीतरी शासन की बात—भारत के अपने निज के मामलों को सुलझाने और निबटाने की बात—सो इस भार को अपने ऊपर लेने की कामना करना, भारत के लिए सर्वथा समुचित है। परन्तु यह इतना भारी बोझ उससे एकदम न उठ सकेगा। इसके लिए समय और तजरिबे की ज़रूरत है। कुछ समय तक इस भीतरी शासन-कार्य्य का

अनुभव हो जाने पर भारत के शरीर में जब अनुभवरूपी यथेष्ट शक्ति-सञ्चार हो जायगा तब वह उस पूरे भार को भी उठा सकेगा । अभी नहीं । तब तक उसे अधिकाधिक अनुभव प्राप्त करने और ज़िम्मेदारी को धीरे धीरे बढ़ाने का मौक़ा दिया जायगा । ऐसा करने से ही भीतरी शासन का पूर्ण भार वहन करने की योग्यता उसमें, क्रम क्रम से, आवेगी । पूर्ण योग्यता प्राप्त करने पर उसे पूर्णाधिकार भी मिल जायगा ।

४—मेरी भारतीय प्रजा चाहती है कि भारत में प्रतिनिधिसत्ताक राज्यपद्धति प्रचलित की जाय । उसकी यह इच्छा दिन पर दिन अधिक होती गई है । इस बात को मैं समझता हूँ और बहुत दिनों से मैं उसकी इस कामना को सहानुभूति की दृष्टि से देखता आ रहा हूँ । यह कामना पहले बहुत स्वल्प थी; उसका प्रथमाकार अत्यन्त खर्व था । पर धीरे धीरे वह बढ़ती गई है ; और अब तो उसने देश के सभी समझदार आदमियों के हृदय पर अपना अधिकार बलपूर्वक जमा लिया है । अपना मनोरथ सफल करने के लिए इस कामना की प्रेरणा से भारतवासियों ने न्यायसङ्गत मार्ग का ही अवलम्बन किया है । सफलता-प्राप्ति के लिए उन्होंने जो चर्चा की है—जो आन्दोलन किया है—वह अनुचित नहीं कहा जा सकता । उन्होंने यह आन्दोलन निष्कपट-भाव से साहसपूर्वक किया है । कुछ उद्दण्ड और विद्रोही स्वभाव के आदमियों ने, देश-भक्ति की आड़ में, उत्पात करके भारतवासियों की पूर्वोक्त मनोवृत्ति या कामना को कलङ्कित करने की कभी कभी बहुत चेष्टा की; तथापि वह उससे कलङ्कित नहीं होने पाई—राजभक्त भारतवासियों ने उन लोगों की देखादेखी कोई काम ऐसा नहीं किया जिससे उनकी राजभक्ति में सन्देह किया जा सके । जिन सिद्धान्तों और जिन आदर्शों की प्रेरणा से ब्रिटिश साम्राज्य इस महायुद्ध में शामिल हुआ था उनकी बदौलत भारतवासियों की यह महत्त्वाकाङ्क्षा या कामना और भी बलवती हो गई है—उसमें और भी अधिक जान आ गई है । युद्ध के कारण ब्रिटिश साम्राज्य को अनेक दुश्चिन्ताओं और अनेक झमेलों में फँसना पड़ा । भारत भी इन आपत्तियों में शामिल रहा—उसने भी हमारी चिन्ताओं को अपनी चिन्तायें और हमारे झंझटों को अपने झंझट समझा । साम्राज्य की जीत हुई तो भारत ने भी उसे अपनी जीत समझा । अतएव मैं जिस महत्त्वाकाङ्क्षा का उल्लेख कर रहा हूँ उसे भारत की की हुई इन सब बातों—इन सब सहायताओं—से भी बहुत कुछ सहारा मिला है । बात यह कि जो हमारे सुख-दुःख में शामिल है उसके सुख-दुःख में शामिल होना सर्वथा स्वाभाविक है । सच तो यह है कि जिस दिन अँगरेज़ी-राज्य का सम्बन्ध भारत से हुआ उसी

दिन भारतवासियों के हृदय में राजनैतिक ज़िम्मेदारी प्राप्त करने का भाव भी उदित हुआ। इस भाव का उद्गम उस सम्बन्ध की जड़ को ही समझना चाहिए। न वह सम्बन्ध होता, न यह भाव जागृत होता। यह भाव सदा अँगरेज़ी-राज्य के सम्बन्ध के साथ ही साथ पैदा होता है। मनुष्य-स्वभाव कैसा है और इतिहास से क्या शिक्षा मिलती है, यह बात बहुत गहरे और विस्तृत अध्ययन से ही जानी जा सकती है। राजनैतिक महत्त्वाकाङ्क्षायें इसी प्रकार के अध्ययन का फल हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के सम्बन्ध ने ही भारत के लिए इस अध्ययन का दरवाज़ा खोला है। यदि वह ऐसा न करता—यदि साम्राज्य का सम्बन्ध भारत को इस प्रकार के अध्ययन का अवसर न देता——तो उसका काम पूरा समझा भी न जाता। इसीलिए तो ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत से अपना सम्बन्ध संस्थापित किया था। इसीसे यह कहना पड़ता है कि, बहुत वर्ष पूर्व, भारत में जो प्रतिनिधिसत्ताक संस्थाओं की संस्थापना की गई थी वह बड़ी बुद्धिमानी का काम था। उन संस्थाओं की सीमा धीरे धीरे इस तरह बढ़ाई गई है कि आज भारत को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के सोपान-मार्ग की एक निश्चित सीढ़ी साफ़ दिखाई दे रही है। उसी पर चढ़कर भारतवासी किसी दिन उस शासन के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच सकेंगे।

५—उस शिखर की चोटी तक पहुँचने के लिए भारतवासियों को जिस पथ से चलना होगा वह निष्कण्टक नहीं। जैसे जैसे वे उस पथ पर चलते हुए आगे बढ़ते जायँगे वैसे ही वैसे मैं दूने उत्साह और सहानुभूति से उनकी तरफ़ देखता रहूँगा। मार्ग कठिन है, इस कारण अभीष्ट स्थान तक पहुँचने के लिए विशेष सहनशीलता और धैर्य्यधारणा की आवश्यकता होगी। मेरी भारतीय प्रजा अनेक जातियों, धर्म्मों और सम्प्रदायों में विभक्त है। उन सभी को इन गुणों का ग्रहण करना होगा—सभी को धीरज के साथ आगे बढ़ना होगा; सभी को सहिष्णुता से काम लेना होगा। मुझे विश्वास है कि इन उच्च गुणों की कमी उनमें न पाई जायगी। वे ज़रूर ही धैर्य्य और आत्मसंयम का स्वीकार करते हुए आगे बढ़ेंगे। इस समय भारत में जनसाधारण की संस्थापित जो नई नई संस्थायें काम कर रही हैं उनको चाहिए कि संस्थापन करनेवालों की—जिनकी वे प्रतिनिधि हैं उनकी—इच्छाओं का प्रकटीकरण बुद्धिमानी से करें। वे लोग क्या चाहते हैं, क्या नहीं, यह बताने में वे बुद्धिमत्ता से काम लें। राजकीय मामलों में मत देने का अधिकार वे सब लोग अभी नहीं प्राप्त कर सकते। इस कारण इन संस्थाओं का और भी अधिक कर्तव्य है कि उन लोगों के हितसाधन का वे पूरा पूरा ध्यान रक्खें। मुझे भरोसा है कि वे इस

बात को कभी न भूलेंगे। मुझे इस बात का भी भरोसा है कि जनसाधारण के नेता और भविष्यत् में नियत होनेवाले प्रजापक्ष के मन्त्री अपनी ज़िम्मेदारी को अच्छी तरह समझेंगे और उसे निबाहेंगे भी। यदि लोग उनकी बातों का अर्थ कुछ का कुछ करें तो वे आत्मसंयम से काम लें, भड़क न उठें। उन्हें यह भी चाहिए कि राज्य के कल्याण के लिए, आवश्यकता होने पर, थोड़ा नहीं, बहुत कुछ त्याग करने के लिए भी वे तैयार रहें। वे याद रक्खें कि सच्ची देशभक्ति और देश की सच्ची कल्याण-कामना दलबन्दी और साम्प्रदायिक सीमा के बाहर की बातें हैं। क़ानूनी कौंसिलों के विश्वास-भाजन बने रहकर, सर्वसाधारण की हितैषणा से, मेरे अफ़सरों के साथ उन्हें मिल-जुलकर काम करना चाहिए। उन्हें अनावश्यक मतभेदों को भुला देना चाहिए और न्याय्य तथा औदार्यदर्शक शासन के सिद्धान्तों को अक्षुण्ण रखना चाहिए। इसके साथ ही मैं अपने अफ़सरों से भी यह भरोसा रखता हूँ कि वे अपने नये साथियों का—प्रजा-पक्ष के सचिवों का—आदर करेंगे; उनके साथ सदयतापूर्वक प्रेमसूचक वर्ताव करेंगे; और प्रतिनिधि-सत्ताक शासन-सम्बन्धिनी स्वतन्त्र संस्थाओं की ओर, विधिसङ्गत रूप से, आगे बढ़ने में उनकी सहायता करेंगे। मेरे अफ़सर मेरी भारतीय प्रजा की सेवा अब तक जिस सच्चे भाव से करते आये हैं, मुझे भरोसा है, वे आगे भी उसी भाव से करेंगे। भारत में उनकी नियुक्ति का सबसे बड़ा उद्देश यही रहा है। यह जो नई शासनप्रणाली प्रचलित की जा रही है उसमें इस उद्देश की पूर्त्ति का उन्हें एक और अच्छा मौक़ा मिलेगा।

६—मेरी यह अत्यधिक अभिलाषा है कि, जहाँ तक सम्भव हो, इस मौक़े पर, मेरी भारतीय प्रजा और मेरे अफ़सरों के बीच का मनोमालिन्य दूर हो जाय; यहाँ तक कि उसका कहीं नामोनिशान तक बाक़ी न रहे। राजनैतिक उन्नति की उत्कट प्रेरणा से जिन लोगों ने, इस समय के पहले, क़ानून तोड़ा है—अर्थात् क़ानून की दृष्टि से जो अपराधी सिद्ध हुए हैं—उन्हें चाहिए कि वे अब क़ानून की पाबन्दी करना सीखें—अब और वैसे अपराध न करें। शान्ति और सुव्यवस्थासूचक शासन करने का भार जिन अफ़सरों पर है उन्हें भी चाहिए कि वे उन उत्पातों को—उन विधिविरुद्ध कामों को—भूल जायँ जिनका दमन करने के लिए उन्हें अपना अधिकार काम में लाना पड़ा था। नया युग आ रहा है। अब मेरे प्रजा-जन और मेरे अफ़सर, दोनों ही, एक ही उद्देश की सिद्धि के लिए, एक ही सी दृढ़ता से, मिल-जुलकर काम करने का सत्य सङ्कल्प करें। सार्वजनिक कल्याण की कामना से इस नये युग का आरम्भ इसी तरह होना चाहिए। अतएव मैं अपने प्रतिनिधि, वाइसराय, को आज्ञा देता हूँ

कि वे एक काम करें। वे मेरे नाम से मेरी राजकीय दया का पूरा पूरा दृष्टान्त दिखावें। वह इस तरह कि जो राजनैतिक अपराधी इस समय राजदण्ड भोग रहे हैं उन सबको वे छोड़ दें, और यह प्रकाशित कर दें कि मैंने उनके अपराध क्षमा कर दिये। सर्व-साधारण की रक्षा में विघ्न न पड़े, केवल इस बात का वे ख़याल रक्खें। इसका निश्चय मैं अपने वाइसराय ही पर छोड़ता हूँ कि किस अपराधी को छोड़ने से प्रजा की रक्षा में बाधा आवेगी और किसे छोड़ने से नहीं। शान्ति-भङ्ग होने का डर न रहे; बस और कोई शर्त नहीं। जिन लोगों ने राज-व्यवस्था के विरुद्ध अपराध किये हैं, और जो किसी ख़ास या अल्पकालिक अत्यावश्यक क़ानून की सीमा के बाहर चले गये हैं, अतएव जो इन कारणों से जेल की सज़ा भोग रहे हैं उन सबको छोड़ देने की मैं आज्ञा देता हूँ। इन्हीं कारणों से जिन लोगों की स्वतन्त्रता में रुकावटें आगई हैं—अर्थात् जो अपने मनोनुकूल सब कहीं नहीं आ जा सकते—वे भी इस आज्ञा से लाभ उठावें; उन्हें भी पूरी पूरी स्वतन्त्रता दे दी जाय। पर प्रजा की रक्षा की शर्त का ख़याल इन लोगों के छोड़ने के विषय में भी रक्खा जाय। मेरी इस आज्ञा के अनुसार जो लोग छोड़े जायँ और जिन लोगों की स्वतन्त्रता के प्रतिबन्ध दूर किये जायँ वे आगे ऐसा

सम्राज्ञी मेरी।

सम्राट् पञ्चम जार्ज।

अच्छा व्यवहार करें जिससे यह सिद्ध हो जाय कि वे यथार्थ ही में मेरी क्षमा के पात्र थे । मुझे विश्वास है कि वे, आगे चलकर, कोई काम ऐसा न करेंगे जिससे यह सूचित हो कि मैंने ऐसे लोगों के अपराध क्षमा किये जो मेरी दया के पात्र न थे । मुझे यह भी आशा है कि मेरी प्रजा का समस्त समुदाय अब ऐसा व्यवहार करेगा कि ऐसे अपराधों के नियन्त्रण के लिए जो क़ानून हैं उनके अनुसार काररवाई करने की आगे फिर कभी ज़रूरत ही न पड़े ।

७—ब्रिटिश गवर्नमेंट के अधिकृत भारत में नई शासन-पद्धति की प्रस्थापना करने के साथ ही साथ मैंने एक काम और भी किया है और प्रसन्नता-पूर्वक किया है । वह काम है भारत के देशी नरेशों की एक मन्त्रणा-सभा की संस्थापना । मुझे आशा है कि इस सभा की मन्त्रणाओं—इसके परामर्शों—से स्वयं राजा-महाराजा ही नहीं, उनके राज्यों को भी स्थायी लाभ पहुँचेगा । आशा है, इस सभा की सूचनाओं का अनुसरण करने से देशी रियासतों के राजा-प्रजा सबका भला होगा और चिरकाल तक होता रहेगा । यही नहीं, मैं तो यहाँ तक आशा करता हूँ कि इस योजना से ऐसे सुफल फलेंगे जिनसे देशी राज्यों के अधीशों की रियासतों की भलाई के सिवा, ब्रिटिश गवर्नमेंट के अधिकृत भारत की, और उसीकी क्यों, सारे साम्राज्य की भी भलाई होगी । मैं इस मौक़े पर एक बात और भी कहना चाहता हूँ । मैं भारतीय नरेशों को फिर भी विश्वास दिलाता हूँ—उन्हें इस बात का आश्वासन देता हूँ—कि मैं उनके अधिकारो की, उनके स्वत्वों की, उनकी मर्य्यादा की दृढ़तापूर्वक रक्षा करूँगा । इसमें किसी तरह की त्रुटि न होने दूँगा ।

८—आगामी शीत ऋतु में मैंने अपने प्यारे पुत्र, वेल्स के राजकुमार, (Prince of Wales) अर्थात् युवराज को भारत भेजने का सङ्कल्प किया है । मेरे प्रतिनिधि की हैसियत से वही पूर्वोक्त मन्त्रणा-सभा या महीपति-मण्डल की प्रतिष्ठा, और ब्रिटिश भारत में नई शासन-पद्धति का प्रवर्तन, करेंगे । जिन लोगों को आगे चल कर देश-सेवा का भार वहन करना है उन सबके हृदयों में, मेरे युवराज को, परस्पर के मेल और विश्वास की प्रवृत्ति अचल भाव से जागती हुई मिले, यही मेरी आन्तरिक इच्छा है । क्योंकि ऐसा होने से ही उन लोगों का परिश्रम सफल होगा और उनकी शासन-प्रणाली विशेष समुन्नति प्राप्त करेगी ।

मेरे समस्त प्रजाजन ! आओ, मैं और तुम, दोनों मिलकर, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से इस प्रकार प्रार्थना करें—

भगवन् आप हमें ऐसी बुद्धि दें और हमें ऐसा मार्ग दिखावें जिससे भारत में सुख-समृद्धि और सन्तोष की अधिकाधिक वृद्धि हो और वह पूरी पूरी राजनैतिक स्वतन्त्रता को प्राप्त कर सके ।

सीता और पोरशिया ।

शेक्सपीयर अँगरेज़ी-भाषा का विख्यात कवि होगया है। उसने बहुत से नाटक बनाये हैं। उनसे उसका नाम बहुत प्रसिद्ध हो गया है। उसकी विशेष प्रशंसा इसलिए है कि वह मनुष्य-स्वभाव को पूरी तरह पहचानता था और उसे प्रत्यक्ष कराने की असीम शक्ति रखता था। शेक्सपीयर के नाटक पढ़नेवाले इस बात को मानते हैं कि यह प्रशंसा झूठी नहीं। शेक्सपीयर की इस शक्ति का एक उदाहरण देते हुए मैं यह बताना चाहता हूँ कि गोस्वामी तुलसीदास में यह शक्ति कहाँ तक पाई जाती है। भारतवर्ष में गोस्वामीजी के काव्य से आनन्द उठानेवालों की संख्या अनन्त है। परन्तु गोस्वामीजी की आज तक उतनी प्रशंसा नहीं की गई जितनी योरप में शेक्सपीयर की की गई है। शेक्सपीयर के अनेकानेक समालोचकों ने उसके ग्रन्थों से साहित्य अलङ्कारादि-विषयक मर्म्म की इतनी बातें निकाल कर लेखों तथा पुस्तकों द्वारा प्रचलित की हैं कि ऐसी समालोचनाओं के कारण शेक्सपीयर के नाटकों का आदर दुगुना क्या अनेक गुना हो गया है। तुलसीदास के ग्रन्थों में रामायण सबसे अधिक पढ़ी जाती है और उसकी अर्थ-बोधिनी टीकायें भी बहुत सी छपी हैं; परन्तु, तिसपर भी, उस प्रकार की समालोचनात्मक पुस्तक एक भी नहीं लिखी गई जिस प्रकार की पुस्तकें शेक्सपीयर के नाटकों पर नाइट डाउडन, जरवाइनस आदि ने लिखी हैं। रामायण की अर्थ-गम्भीरता, सरलता, चरित्र-चित्रण आदि का गहरा ज्ञान अनेक पण्डितों को है। पर वह ज्ञान, पुस्तक के रूप में, प्रकाशित नहीं किया गया। यह बताना इस लेख का उद्देश नहीं कि शेक्सपीयर और तुलसीदास में कौन कम और कान ज़ियादह है। यह बताना भी इसका उद्देश नहीं कि तुलसीदास की सीता और शेक्सपीयर की पोरशिया के चित्र की झलक एक सी है, अथवा दोनों कवियों के काव्यों से जो अवतरण दिये जायँगे उनमें सर्वथा सदृशता है। इस लेख में तो, दृष्टान्त की सरलता के लिए, केवल एक एक उदाहरण दिया जायगा।

शेक्सपीयर का एक नाटक है—वेनिस का व्यापारी। उसमें जो कथा है उसका वृत्तान्त विस्तार-भय से यहाँ नहीं दिया जाता। बाबू हरिश्चन्द्र ने उसका अनुवाद हिन्दी में किया है और नाम रक्खा है दुर्लभ-बन्धु। इसी नाटक की नायिका पोरशिया है।

पोरशिया की दो बातों की प्रशंसा बहुधा समालोचकों ने की है—एक तो बुद्धिमत्ता की, दूसरे अपने पति बसेनियो के विषय में अपरिमित प्रेम की। पोरशिया ने अपने पति और उसके मित्र को एक यहूदी साहूकार के फन्दे से छुड़ाने में न्याय-शास्त्र के ज्ञान की पराकाष्ठा दिखाई है। यदि यह भी मान लिया जाय कि उस ज्ञान का परिचय बलेरियो नामक बैरिस्टर से उसे प्राप्त हुआ था तो भी पोरशिया की योग्यता, तीव्र बुद्धि, मुक़द्दमे के प्रबन्ध और बहस की चतुरता अवश्य प्रशंसनीय कही जायगी। पोरशिया जानती थी कि ऋणपत्र के अक्षरों से उसका प्रयोजन सिद्ध हो सकता है और ऋणी के प्राण बचाने के लिए वही काफ़ी है। यहूदी सौदागर शैलाक का एक-मात्र उत्तर उसके पास मौजूद था। परन्तु वह ऋणपत्र के अक्षरार्थ पर अवलम्बित था। इसलिए पोरशिया ने उस उत्तर का आश्रय अन्त समय तक नहीं लिया। कारण?

न्यायालयों के कर्म्मचारी जानते हैं कि लेखों और स्वीकार-पत्रों में अक्षरार्थ बहुधा और होता है और भावार्थ और। जब ऐसा विरोध पाया जाता है तब न्यायाधीश अक्षरार्थ छोड़ कर भावार्थ ग्रहण करता है। और अक्षरार्थ ग्रहण करनेवाले पक्ष को क्रूर समझता है। भावार्थ-पक्ष से न्यायाधीश की सहानुभूति सदैव रहती है। यथासम्भव उस पर

उसकी कृपा भी रहती है। इस बात को जाननेवाले योग्य वकील न्यायाधीश को यह नहीं दिखाना चाहते कि उनका पक्ष अक्षरार्थ पर आश्रित है। पोरशिया ने न्यायाधीश को पहले यह दिखाया कि विपक्षी ऋण-पत्र के अक्षरार्थ पर इतना आश्रित है कि अपना रुपया नहीं लेना चाहता, केवल ऋणी के प्राणों का ग्राहक है। यह दिखा कर न्यायाधीश की दया और सहानुभूति को उसने अपनी ओर खींच लिया। फिर अक्षरार्थ का उत्तर अक्षरार्थ से देकर उसने विजय-प्राप्ति की।

वलेरियो से पत्र लेने, न्यायालय में विजय-प्राप्ति करने और निर्लोभता दिखाते हुए शुकराने की अँगूठी पाने आदि से पोरशिया की बुद्धिमत्ता प्रकट होती है।

परन्तु बुद्धिमत्ता से अधिकतर प्रशंसनीय उस का गाढ़ा प्रेम है। ऐंटोनियो के साथ सलूक करने का कारण केवल यह था कि वह वसेनियो का मित्र था। यदि वसेनियो के मित्र से प्रेम न होता तो पोरशिया क्यों दुःख उठाती? क्यों कठिनता-पूर्वक पाये हुए अपने चिरवाञ्छित पति को, विवाह के पश्चात् ही, अपने पास से, विना खेद और अप्रसन्नता प्रकट किये चला जाने देती? क्यों उसके माथे मढ़ा हुआ ऋण चुकाना स्वीकार करती? केवल ऋण ही क्यों, उसका दूना, ६ हज़ार; फिर ६ हज़ार का भी दूना, उसका तिगुना—बीस-गुना तक देने को तैयार होती? जैसे ही यह निश्चय हुआ कि पोरशिया का विवाह वसेनियो से, स्वयंवर में सफलता प्राप्त होने के कारण, हो सकता है, वसेनियो को यह ख़बर मिली कि उसका मित्र ऐंटोनियो, जो वसेनियो के ऋण का प्रतिभू बना था, यहूदी के चङ्गुल में फँस गया। उस समय पोरशिया और वसेनियो पास पास बैठे हुए थे। पोरशिया ने वसेनियो का मुँह देख कर ही जान लिया कि जो चिट्ठी उसके पास आई है उसमें दुःख की कोई बात अवश्य है। तब पोरशिया ने वसेनियो से केवल दो प्रश्न किये—“क्या वे आप के प्यारे मित्र हैं जिन पर दुःख पड़ा है?” “कितना रुपया देना है?” इन प्रश्नों के पूछे विना वसेनियो के चिन्ता-निवारण का उपाय सम्भव न था। इन प्रश्नों का पूछना परमावश्यक था। इन प्रश्नों से पोरशिया के चित्त की वृत्ति प्रकट होती है। उसके प्रश्नों का आशय था—“यदि वे तुम्हारे मित्र हैं जिन पर यह दुःख पड़ा है तो वे मेरे भी प्यारे हैं। यदि ऋण इतना है कि मैं चुका सकूँ तो मैं चुका कर दुःख दूर कर दूँगी”। पोरशिया ने और अधिक बातें करके अपने स्वामी को, मित्र-कार्य्य के लिए प्रस्थान करने से, नहीं रोकना चाहा।

इस स्थान पर यह बात विचार करने योग्य है कि शेक्सपीयर ने पोरशिया में कितना आत्मत्याग दिखाया है। विवाह-सुख को छोड़ कर जिस समय पति का वियोग पत्नी से होता है, उस समय पोरशिया वसेनियो के गले में हाथ डाल कर रोती चिल्लाती नहीं है। आश्चर्य्य नहीं कि अन्य कवि ऐसे अवसर पर वियोग की व्यथा दिखाने लगता। परन्तु शेक्सपीयर से ऐसी भूल नहीं हो सकती थी। ऐसा करना पोरशिया के शुद्ध चित्रपट को बिगाड़ देता। पोरशिया और अन्य अङ्गनाओं में यही तो भेद है। जब अन्य स्त्री स्वामी के गले में बाँह डाल कर उसे ठहराने की चेष्टा करती तब पोरशिया कहती है—“पहले गिरजा चलकर मुझे पत्नी बना लो, फिर शीघ्र ही अपने मित्र के पास चले जाओ”। इसके अनन्तर पत्र पढ़कर कहती है—“प्यारे, शीघ्रता करो; शीघ्र ही चल दो”। पोरशिया अपने सुख के लिए अपने स्वामी के मित्र को सङ्कट में रखना पसन्द नहीं करती; अपने स्वामी के शुद्ध प्रेम-पट पर धब्बा लगना नहीं सह सकती।

इन सब बातों से अपने पति और पति के मित्र, दोनों के लिए, पोरशिया का पूर्ण प्रेम प्रकट होता है।

उनके लिए वह अपने सुख और धन को तुच्छ समझती है।

जिस समय पोरशिया के पाणिग्रहण के लिए और लोग अपनी भाग्यपरीक्षा करते थे पोरशिया के उस समय के विचार देखिए। क्या वसेनियो पर पोरशिया का प्रेम केवल इस कारण था कि सही सन्दूक़ की पहचान कर लेने से वह स्वामी बन चुका था? या इस कारण था कि वह वसेनियो के गुणों पर मुग्ध थी? वसेनियो से पोरशिया का स्नेह, उसके सद्गुणों के ही कारण था, यह बात इससे सिद्ध है कि पोरशिया को वसेनियो से विवाह होने की जब तक कोई आशा न थी, पोरशिया ने वसेनियो को अन्य चाहनेवालों की अपेक्षा अधिक पसन्द कर लिया था। जब पोरशिया की चेरी नेरीसा पोरशिया के चाहनेवालों की चर्चा, एक एक का नाम ले लेकर, कर रही थी, तब पोरशिया ने सबकी हँसी उड़ाकर उन्हें नापसन्द किया। उसने केवल वसेनियो को अपना प्रेमपात्र माना। फिर जब वसेनियो सन्दूक़ की पहचान करने गया तब इस भय से कि यदि सन्दूक़ की ठीक ठीक पहचान वसेनियो न कर सका तो फिर प्रतिज्ञानुसार उसके दर्शन दुर्लभ हो जायँगे, पोरशिया ने प्रार्थना की कि महीने दो महीने ठहर कर वह सन्दूक़ की पहचान करे। जो सङ्कल्प-विकल्प पोरशिया के चित्त में उस समय उठ रहे थे उनको शेक्सपीयर ने ख़ूब ही दिखाया है। पोरशिया का प्रेम वसेनियो पर इतना अधिक था कि वह चाहती थी कि वसेनियो ठीक ठीक सन्दूक़ पहचान ले। परन्तु अपने शील, लज्जा और सत्यव्रत के कारण वह उसे ठीक सन्दूक़ न बतला सकी। इन सब बातों से पोरशिया की योग्यता और उसका पूर्ण प्रेम अच्छी तरह प्रकट है।

अब गोस्वामीजी की रामायण में सीता के चरित की बात भी देखिए। इस विषय में मैं मिलान करने के लिए केवल दो-एक स्थलों का उल्लेख करूँगा। सुनिए—

जैसे रामचन्द्रजी मर्य्यादापुरुषोत्तम हैं वैसे ही सीताजी के पातिव्रत धर्म्म और स्वामिभक्ति ने उनको आदर्शपत्नी बना दिया है। प्राकृतिक नारियों के चरित से उनके चरित का मिलान करने पर उनको जगन्माता ही कहना योग्य है।

सीता ने पहली दफ़े रामचन्द्र को जनक के फूलबाग़ में देखा जहाँ वह सहेलियों के साथ देवी-पूजन को गई थी। देखते ही सीता का मन रामचन्द्र जी के रूप पर मोहित हो गया, जिसको सप्तपदी मैत्री से भी अधिक (Love at first sight) कहते हैं—

देखि रूप लोचन ललचाने।
हर्षे जनु निज निधि पहिचाने॥
थके नयन रघुपति-छवि देखी।
पलकन हू परिहरी निमेखी॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी।
शरद-शशिहि जनु चितव चकोरी॥
लोचन-मगु रामहिँ उर आनी।
दीन्हें पलक-कपाट सयानी॥

फिर जब सहेलियों ने रामचन्द्र को लता-भवन से निकलते हुए दिखाया तब—

नख सिख देखि राम की शोभा।
सुमिरि पिता-प्रण मन अति छोभा॥

यह आसक्ति इतनी बढ़ी हुई थी कि—

देखन मिस मृग, विहँग, तरु फिरत बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुवीर-छवि बाढ़ी प्रीति न थोरि॥
जानि कठिन शिव-चाप बिसूरति।
चली राखि उर श्यामल मूरति॥

सीता और रामचन्द्र के प्रेम का वर्णन करने में तुलसीदास को सन्तोष नहीं होता। रामचन्द्र का रूप तथा स्नेह वर्णन करने के लिए उन्हें काफ़ी शब्द नहीं मिलते। वर्णन करते करते वे दूसरे

विषय पर चले जाते हैं और फिर लौटकर वही वर्णन करने लगते हैं। मानों "फिरत बहोरि बहोरि"—की दशा स्वयं कवि की हो रही है।

जब सीता भवानी के मन्दिर में गई तब जो प्रार्थना वहाँ भवानी की उसने की वह सुनने योग्य है—

जय जय जय गिरिराज-किशोरी।
जय महेश-मुख-चन्द्र-चकोरी॥
जय गजवदन-षडानन-माता।
जगत-जननि दामिनि-द्युति गाता॥
नहिँ तव आदि, मध्य, अवसाना।
अमित प्रभाव वेद नहिँ जाना॥
भव-भव-विभव-पराभव-कारिणि।
विश्वविमोहिनि स्ववशविहारिणि॥
पति-देवता सुतीय महँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न कहि सकहिँ सहस शारदा शेष॥
सेवत तोहिँ सुलभ फल चारी।
वरदायिनि त्रिपुरारि-पियारी॥
देवि पूजि पद-कमल तुम्हारे।
सुर नर मुनि सब होहिँ सुखारे॥
मोर मनोरथ जानहु नीके।
बसहु सदा उरपुर सबही के॥
कीन्हेहु प्रगट न कारण तेही।
अस कहि चरण गहेहु बैदेही॥

सीता के स्वभाव में सुशीलता भरी हुई है। अतएव सम्भव नहीं कि देवी से प्रार्थना करते समय भी मुँह खोलकर वह यह कहे कि रामचन्द्र को मेरा पति बना दीजिए। इस अवसर पर गोस्वामीजी ने अविवाहिता कुमारी की लज्जा की सीमा खींच दी है—"मोर मनोरथ जानहु नीके"—कैसा स्वाभाविक वर्णन है। इस मौनधारण में सीता की अद्भुत वाक्पटुता भरी हुई है। इस स्थल पर सीता की कामना व्यक्त करने के लिए चाहे जो शब्द प्रयुक्त किये जाते, उनसे वह हार्दिक भाव कदापि प्रकट न होता जो भाव न कुछ कहने से—चुप रहने से—निकलता है। इस मौन-धारण का कारण आगे बताया गया है। देखिए—

गुरु-जन-लाज, समाज बड़ि देखि सीय सकुचानि।
लगी विलोकन सखिन तन रघुबीरहि उर आनि॥

बड़े भारी जमाव में गुरुजनों के सामने ही नहीं, सखियों और भवानी के सामने भी सीता की लज्जा उसे कुछ भी नहीं कहने देती। परन्तु प्रेम उसका इतना गाढ़ा है कि मन यह भी नहीं मानता कि "जो कुछ होनी होगी सो होगी", यह समझ कर चुप हो रहे। अतएव वह "रघुवीरहि उर आनि" सखियों की तरफ़ देखती है। फिर जब रामचन्द्र को चाप चढ़ाने की आज्ञा गुरु विश्वामित्र से मिली—

तब रामहि विलोकि वैदेही।
सभय-हृदय विनवत जेहि तेही॥
मन ही मन मनाय अकुलानी।
होहु प्रसन्न महेश-भवानी॥
करहु सफल आपनि सेवकाई।
करि हित हरहु चाप-गरुआई॥
गण-नायक वर-दायक देवा।
आजु लगे कीन्ही तव सेवा॥
बार बार विनती सुनि मोरी।
करहु चाप-गरुता अति थोरी॥
देखि देखि रघुवीर तन सुर मनाय धरि धीर।
भरे विलोचन प्रेम-जल पुलकावली शरीर॥
नीके निरखि नयन भरि शोभा।
पितु-प्रण सुमिरि बहुरि मन छोभा॥
अहह तात दारुण हठ ठानी।
समुझत नहिँ कछु लाभ न हानी॥
सचिव सभय सिख देइ न कोई।
बुध-समाज बड़ अनुचित होई॥
कहँ धनु कुलिशहु चाहि कठोरा।
कहँ श्यामल मृदुगात किशोरा॥
विधि केहि भाँति धरहुँ उर धीरा।
सिरस-सुमन किमि बेधहि हीरा?

सकल सभा की मति भइ भोरी ।
अब मोहिँ शम्भु-चाप गति तोरी ॥
निज जड़ता लोगन पर डारी ।
होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी ॥
अति परिताप सीय मन माहीं ।
लव-निमेष युग-सम चलि जाहीं ॥
प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज-मीन युग जनु विधु-मण्डल डोल ॥
गिरा-अलिनि मुख-पङ्कज रोकी ।
प्रगट न लाज निशा अवलोकी ॥
लोचन-जल रहु लोचन-कोना ।
जैसे परम कृपण कर सोना ॥
सकुची व्याकुलता बड़ जानी ।
धरि धीरज प्रतीति उर आनी ॥
तन, मन, वचन मोर प्रण साँचा ।
रघुपति-पद-सरोज मन राँचा ॥
तौ भगवान सकल-उर-वासी ।
करिहहिँ मोँहि रघुपति की दासी ॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू ।
सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू ॥
प्रभु तन चितइ प्रेम-प्रण ठाना ।

× × × ×

रामचन्द्र के चाप चढ़ाने की तैयारी करने पर जो तरङ्गें सीता के हृदय-सागर में उठ रही थीं उनका गिनना सम्पूर्ण वर्णन पढ़े बिना सम्भव नहीं। इसलिए यह अवतरण पूरा का पूरा उद्धृत कर दिया गया है।

अब मिलान कीजिए। शेक्सपीयर की पोरशिया कहती है "A maiden hath no tongue but thought" अर्थात् कुँवारी कन्या के जीभ नहीं होती, वह केवल विचार रखती है। गोस्वामीजी सीता के विषय में कहते हैं—

"कीन्हेउ प्रगट न कारण तेही"

स्वयंवर पर ही सीता और पोरशिया दोनों का विवाह अवलम्बित है। दोनों के भाग्य पिता के प्रण के कारण परवश फँसे हैं। दोनों का प्रेम सत्य है। अभीष्ट वर पाने पर ही उनका जीवन आश्रित है। सीता का हृदय प्रेम से तो परिपूर्ण है ही। उसमें लज्जा, भय, अधीरता और आकुलता भी है। वह बार बार कभी किसी, कभी किसी देवता को मनाती है और अपने सम्पूर्ण पुण्यों के बदले रामचन्द्र को माँगती है। तुलसीदास ने यह वर्णन कितना स्वाभाविक किया है।

जब मनुष्य किसी होनेवाली घटना के परिणाम की प्रतीक्षा करता है और यह समझता है कि उसी परिणाम पर उसके जीवन का सुख अवलम्बित है तब उसकी जो दशा होती है उसका चित्र गोस्वामीजी ने बड़ी योग्यता से खींचा है। यह सर्वथा स्वाभाविक है कि कभी आशा उत्पन्न होती है, कभी भय कि सफलता होगी या न होगी। इससे व्याकुलता बढ़ती है। व्याकुलता के कारण जिस तिस देवता से मनुष्य प्रार्थना करने लगता है। प्रार्थना से व्याकुलता दब जाती है। देवाराधन से जब कुछ धैर्य होता है तब रोमाञ्च होता है। फिर बाधा का ध्यान आने से क्षोभ होता है। बाधा के कारण वैमनस्य उत्पन्न हो जाता है (अहह! तात दारुण हठ ठानी—समुझत नहिँ कछु लाभ न हानी)। अन्त में ईश्वर पर भरोसा होने से विश्वास दृढ़ हो जाता है और मनोरथ-सफलता की पूर्णाशा होती है—("तन मन वचन मोर मन साँचा"......"जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू-सो तिहि मिलहि न कछु सन्देहू")॥

सीता की शारीरिक दशा का भी वर्णन गोस्वामीजी ने बड़ा अद्भुत किया है—

भरे विलोचन प्रेमजल पुलकावली शरीर।

शेक्सपीयर ने तो पोरशिया का केवल प्रगाढ़ प्रेम वर्णन करके सन्तोष किया है। ऐसे अवसर पर लज्जा, भय, अधीरता आदि विकार जो स्वाभाविक हैं उनका अच्छा वर्णन नहीं किया। जो वार्तालाप पोरशिया और वसेनियो का (अङ्क ३, दृश्य २ के आरम्भ में) है वह गम्भीरता से शून्य है और ऐसे

मनुष्यों का सा नहीं प्रतीत होता जिनके हृदय चिन्ता में डूबे हुए हैं। सच्चे प्रेमवाली पोरशिया की दशा के चित्र में यह त्रुटि है।

इन बातों पर विचार करने से तुलसीदास के वर्णन की उत्तमता शेक्सपीयर के वर्णन की अपेक्षा अधिक सिद्ध होती है।

खड्गजीत मिश्र

हरे और सूखे पेड़ की दो दो बातें।

हरा पेड़।

कैसा मेरा रूप-रङ्ग है है कैसा सुन्दर आकार;
मैं करता रहता अनन्त में मनमाना अपना विस्तार।
जैसे जैसे मैं अङ्गों को करता जाता हूँ परिपुष्ट;
वैसे ही वैसे आश्रित जन मुझसे होते हैं सन्तुष्ट ॥१॥

नई कोंपलों की यह रङ्गत कुसुमों की कमनीय सुवास;
डील-डौल लम्बी डालों का और टहनियों का उल्लास।
तिस पर यह लहलही लताओं की लपेट उलझन के साथ;
अनुभव करके मैं अठलाता तेरे ऐसे मलते हाथ ॥२॥

बड़े भोर द्विजगण आते हैं मुझे सुनाने अपना वेद;
उनकी मधुर मनोहर ध्वनि में ईश-सृष्टि के सारे भेद।
साम-गान कोई करता है कोई उपनिषदों का पाठ;
और अथर्व-वेद से कोई रचता है मोहन का ठाठ ॥३॥

पञ्चमकारी काला कोकिल किये हुए आँखें रतनार;
फूलों के प्यालों में रक्खा मधु पीता है बारम्बार।
कुहू कुहू करके पुकारता सिद्धिदायिनी काली रात;
करने को वियोगियों जैसे हठी योगियों पर भी घात ॥४॥

चञ्चरीक **चारण** रुचिकारण लेकर मधुर रसीली तान;
कभी **पद्मिनी** कभी **शङ्खिनी** का करता मुझसे गुणगान।
मैं भी झूम झूमकर सुनता उसका मीठा मीठा बोल;
गला सूखने पर मरन्द की घूँट पिला कर देता खोल ॥५॥

हारा थका पथिक बेचारा सूर्यताप से होकर तङ्ग;
मेरे पास दौड़ कर आता करने को अपना दुख-भङ्ग।
मैं उसका दुख सह लेता हूँ देता हूँ उसको आराम;
मेरे ऐसे उपकारी का वह भी जपता रहता नाम ॥६॥

मेरे से दानी दुनिया में बिरले लेते हैं अवतार;
जो सर्वस्व दान दे देते एक पात्र को बारम्बार।
ऋतु वसन्त जब जब याचक हो लेने आता मुझ से दान;
तब तब कर्ण-दधीचि-तुल्य ही करता हूँ उसका सम्मान ॥७॥

मुझे न चिन्ता भूख-प्यास की परहित करने में मैं लीन;
खड़ा रात-दिन देखा करता कब आजावे कोई दीन।
इससे वसुधा माता मेरे पैरों से देती आहार;
फलदाता सपूत जीवित हों चाहे मरें कपूत हज़ार ॥८॥

सूखा पेड़।

सच कहते हो भैया तुम हो धन्य जगत में तुम्हीं समान;
जो व्यतीत हो रहा तुम्हारा जीवन परहित करते दान।
पर अभ्युदय-काल में इतना नहीं चाहिए होना गर्व;
कभी न कभी तुच्छ से तुच्छों के निमित्त भी लगता पर्व ॥१॥

मैंने बाल्यकाल से अब तक भोगे हैं ये सारे भोग;
और सदा कर्त्तव्य पाल कर सफल किया अपना उपयोग।
कभी न मेरे मन में आया मैं करता हूँ ऐसे काम;
नित्य यही सोचता रहा हूँ कर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता राम ॥२॥

अब मैंने संन्यास लिया है प्रायः होकर मृतक समान;
नहीं सरसता रही हृदय में नहीं रहा कुछ मानामान।
सरल दूरदर्शी वाचंयम और अघोरपन्थ में सिद्ध;
उपकारी जटायु के वंशज केवल साथी मेरे गिद्ध ॥३॥

तिस पर भी जर्जर शरीर से अटक रही है इच्छा एक;
नहीं विघ्न-बाधा हो कोई राम निबाहें मेरी टेक।
जीर्ण शीर्ण यह अधम कलेवर जलकर करदे पर-उपकार;
और हमारी सड़ी राख से गड़ी जाति का हो उद्धार ॥४॥

केशवप्रसाद मिश्र

एक्सचेञ्ज (Exchange)।

सिक्कों के परिवर्तन का भाव।

एक्सचेञ्ज क्या है ? उससे हमें क्या काम पड़ता है ? उसके भाव में क्यों घटी-बढ़ी हुआ करती है ? उसका भाव इस समय हिन्दुस्तान के लिए लाभदायक है या हानिकारक ? एक्सचेञ्ज का भाव स्थिर करने के लिए सरकार ने क्या क्या प्रयत्न किये हैं, और कर रही है ? ऐसे कौन कौन से उपाय हैं जिनसे उसके भाव की स्थिरता हो सकती है ? इन्हीं सब बातों का बताना इस लेख का विषय है।

एक्सचेञ्ज क्या है ?

एक्सचेञ्ज के लिए हिन्दी में कोई ठीक शब्द नहीं। उसका अनुवाद विलायत की हुण्डी से किया जाता है, पर यह ठीक नहीं। क्योंकि हुण्डी के साथ जिस रुपये की हुण्डी की गई है, उसके व्याज का भी कुछ सम्बन्ध रहता है। लेकिन एक्सचेञ्ज के साथ यह बात नहीं है। वह भाव जिससे एक देश का प्रचलित सिक्का दूसरे देश के प्रचलित सिक्के से बदला जा सके, एक्सचेञ्ज कहाता है। भारतवर्ष में चाँदी का सिक्का—रुपया है। उसके सोलह आने होते हैं; और प्रत्येक आने की बारह पाइयाँ होती हैं। इँगलेंड का प्रचलित सिक्का सोने का—पौण्ड है, जिसके बीस शिलिङ्ग होते हैं, और प्रत्येक शिलिङ्ग के बारह पेंस होते हैं। जिस भाव से रुपये, आने, पाइयों के पौपड, शिलिङ्ग, पेंस बन सकते हैं, उसे एक्सचेञ्ज कहते हैं।

इस समय पौण्ड का भाव रुपये, आना, पाइयों में ८॥।) है, यानी एक रुपया, दो शिलिङ्ग, चार पेंस के बराबर है। यही रुपये के एक्सचेञ्ज का भाव है। यह भाव हमेशा घटता बढ़ता रहता है। कुछ वर्ष हुए, पौण्ड के एक्सचेञ्ज का भाव पन्द्रह रुपये था। इसी प्रकार अन्य देशों के सिक्के के साथ रुपया बदलने का भाव रहता है; जैसे फ़्रांस, अमरीका, जर्मनी, जापान आदि देशों के सिक्कों के साथ रुपये, आने, पाइयों का एक्सचेञ्ज। एक्सचेञ्ज, हम भिन्न भिन्न देशों के भिन्न भिन्न सिक्कों के पारस्परिक परिवर्तन के भाव को भी कह सकते हैं।

एक्सचेञ्ज से हमारा क्या काम पड़ता है ?

संसार के प्रायः सब देशों में परस्पर व्यापार हुआ करता है। एक देश की चीज़ें दूसरे देशों को जाती हैं और वहाँ की चीज़ें उसमें आती हैं। भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न सिक्के प्रचलित हैं। इन चीज़ों की क़ीमत देने-लेने में एक्सचेञ्ज की बड़ी ज़रूरत पड़ती है। एक्सचेञ्ज के द्वारा ही एक देश के सिक्कों की क़ीमत दूसरे देश के सिक्कों में ली दी जा सकती है। इसके बिना व्यापारियों का काम चलना असम्भव है। जो चीज़ें हिन्दुस्तान से इँगलेंड को जाती हैं उनकी क़ीमत पौण्ड, शिलिङ्ग, पेंस में दी जाती है। एक्सचेञ्ज के द्वारा इनकी क़ीमत रुपये, आने, पाइयों में परिवर्तित हो जाती है। कब ? जब भारतवासी उसे लेते हैं। इसी प्रकार जो चीज़ें इँगलेंड से भारतवर्ष को आती हैं उनकी क़ीमत का बीजक पौण्ड, शिलिङ्ग, पेंसों में होता है। एक्सचेञ्ज के द्वारा, भारतवासी इसका भुगतान रुपये, आने, पाइयों में करते हैं। माल की क़ीमत के देने-लेने में न तो इँगलेंड से ही पौण्ड, शिलिङ्ग, आदि भेजे जाते हैं और न हिन्दुस्तान से ही रुपये, आने, पाइयां भेजी जाती हैं। यह भुगतान एक्सचेञ्ज के आधार पर हिन्दुस्तान और इँगलेंड के बेङ्कों द्वारा हो जाता है। बेङ्कों में रुपया जमा कराकर उनकी हुण्डियां या बिल ख़रीद लिये जाते हैं, जो दूसरे देश के व्यापारियों को भेज दिये जाते हैं। ये बिल कभी कभी कई आदमियों के हाथ बिकते रहते हैं। इनसे रुपया भेजने में बड़ी आसानी होती है। अगर अन्यान्य देशों को सिक्के भेजकर क़ीमत अदा करनी पड़े, तो इसमें अत्यन्त असुविधा ही न हो, किन्तु जिस परिमाण में व्यापार होता है उसकी सब क़ीमत के लिए नक़द सिक्के मिलना असम्भव हो जाय। दुनिया में इतना चाँदी, सोना नहीं उत्पन्न होता है कि जितने से संसार के सारे व्यापार की क़ीमत नक़द रुपयों या पौण्ड--शिलिङ्गों में दे दी जाय। बहुत सा काम साहूकारों की साख पर चलता है। सोने, चाँदी के सिक्कों की कमी पूरी करने अथवा व्यापार की सुविधाओं के लिए, करोड़ों रुपयों के काग़ज़ के सरकारी नोट जारी किये जाते हैं। और इसी उद्देश से बेङ्कों की हुण्डियां ली जाती हैं। और भी

ऐसे ऐसे कई साधन हैं। एक्सचेञ्ज, जिसके द्वारा भिन्न भिन्न देशों में लेन-देन का रुपया आपस में दिया जाता है, हमेशा घटता बढ़ता रहता है। इसके अनेक कारण हैं।

भाव की घटी-बढ़ी के कारण।

जिन देशों में एक सी धातु के सिक्के प्रचलित हैं, जैसे इँगलेंड, फ़्रांस, जर्मनी, अमरीका आदि, उनमें एक्सचेञ्ज के भाव की इतनी घटी बढ़ी नहीं होती जितनी उन देशों में, जिनमें पृथक् पृथक् धातुओं के सिक्के प्रचलित हैं, जैसे हिन्दुस्तान, चीन इत्यादि। पूर्वोक्त देशों में प्रचलित सिक्के सोने के हैं, और पिछले देशों में चाँदी के। जब चाँदी के सिक्केवाले देश के साथ सोने के सिक्केवाले देश का व्यापार होता है, तब भिन्न भिन्न धातुओं के सिक्के होने के कारण क़ीमत में बड़ा अन्तर पड़ जाता है और एक्सचेञ्ज के भाव में बड़ी घटी-बढ़ी हुआ करती है। जब सोने के सिक्केवाले देश का व्यापार किसी सोने के सिक्केवाले देश से होता है तब दोनों देशों में एक ही धातु के सिक्के होने के कारण एक्सचेञ्ज के भाव में बहुत अधिक घटी-बढ़ी नहीं होती। इन देशों में सिक्के तो एक ही धातु के होते हैं यानी सोने के—लेकिन सिक्कों के आकार, वज़न और मुहर-छाप भिन्न भिन्न होते हैं। जैसे इँगलेंड का सिक्का पौण्ड है, फ़्रांस का फ़्रेङ्क, जर्मनी का मार्क इत्यादि। ये सब सिक्के सोने के हैं; परन्तु इनके आकार, वज़न, क़ीमत, मुहर-छाप इत्यादि भिन्न भिन्न हैं। जब ये सिक्के आपस में बदले जाते हैं और उनकी क़ीमत निश्चित की जाती है, तब इस बात का ख़याल अवश्य रखना पड़ता है कि दोनों सिक्के सोने के ही हैं, जिसका भाव एक ही हो सकता है। इनकी क़ीमत का अन्दाज़ा बांधने में दो बातों का ख़याल रक्खा जाता है—एक यह कि, प्रत्येक सिक्के में सोने की क्या क़ीमत है और दूसरा यह कि, अगर यह सिक्का दूसरे देश में भेजा जाय तो सोने की क़ीमत के अलावा उसके भेजे जाने का क्या ख़र्च होगा। पहली बात में जो जांच रक्खी गई है उसको अँगरेज़ी में एक्सचेञ्ज का मिन्टपार (Mintpar of Exchange) कहते हैं। इसका यह अर्थ है कि टकसाल-घर की जाँच में उसके सोने की क्या क़ीमत है। जो सिक्के इँगलेंड और फ़्रांस में प्रचलित हैं यानी पौण्ड और फ़्रेङ्क, उनकी मिन्टपार जाँच १:२५·२२ है। इसका यह अर्थ है कि जितना सोना एक पौण्ड में है उतना २५·२२ फ़्रेङ्कों में है। इसी तरह इँगलेंड और जर्मनी के सिक्कों का सम्बन्ध १: २०·४३ है। ऐसे ही और सोने के सिक्केवाले देशों का पारस्परिक सम्बन्ध है।

दूसरी बात में जो जांच रक्खी गई है उसको अँगरेज़ी में स्पेसी पोइन्टस् (Specie points) कहते हैं। इससे यह अभिप्राय है कि उस सिक्के के असली सोने की क़ीमत पर रास्ते का ख़र्च कितना पड़ता है, और तब उसकी क़ीमत कितनी रहती है। कल्पना करो कि किसी को इँगलेंड से १०० पौण्ड फ़्रांस भेजने हैं। अगर ये पौण्ड, डाक द्वारा भेजे जायँ, तो इन पर ख़र्च अन्दाज़न दस फ़्रेङ्क लगेगा। पहली जाँच से तो १०० पौण्ड की क़ीमत, फ़्रांस के सिक्कों में, २५·२२ फ़्रेङ्क हुई। इन पर दस फ़्रेङ्क ख़र्च का और बढ़ाया गया, तो २५·३२ फ़्रेङ्क हुई। इसी तरह अगर फ़्रांस से इँगलेंड को १०० पौण्ड की क़ीमत भेजनी है तो यह क़ीमत २५·१२ रह जायगी। दूसरे शब्दों में इसी बात को इस तरह कह सकते हैं कि इँगलेंड से भेजनेवाले के लिए १०० पौण्ड की क़ीमत फ़्रांस में २५·३२ फ़्रेङ्क है और इँगलेंड में २५·१२। इसके विरुद्ध फ़्रांस के मनुष्यों के लिए १०० पौण्ड की क़ीमत फ़्रांस में २५·१२ और इँगलेंड में २५·३२ फ़्रेङ्क है। २५·२२ फ़्रेङ्क, ख़र्च मिलाने से २५·३२ हो जाते हैं, और ख़र्च घटाने से २५·१२। इससे यह साबित हुआ कि १२ और ३२, क़ीमत की घटती-बढ़ती की दो ऐसी सीमायें हैं जिनके बीच में उन सिक्कों के सोने की असली क़ीमत घटा-बढ़ा करती है। इस घटती-बढ़ती की पूर्वोक्त दोनों सीमाओं को स्पेसी पोइन्टस् (Specie points) कहते हैं। उन देशों में एक्सचेञ्ज का भाव इन दो सीमाओं के बाहर बहुत कम जाता है। उसके भाव की घटी-बढ़ी इन्हीं दो सीमाओं के भीतर हुआ करती है। जब भाव इन सीमाओं के बाहर जाता है तब लोग असली सिक्कों को भेजना या मँगाना शुरू कर देते हैं; क्योंकि वैसा करने से उन्हें बचत होती है। सीधी बात यह है कि जब सिक्कों के सोने की क़ीमत मालूम हो गई और उनके भेजने का ख़र्च भी मालूम हो गया तब इस क़ीमत और ख़र्च से अधिक दाम देना कोई पसन्द नहीं करता। इसलिए जब एक्सचेञ्ज का भाव सिक्के के सोने की क़ीमत

और भेजने के ख़र्च से ज़ियादह होता है तब लोग सिक्कों को ही पारसलों द्वारा भेजना शुरू कर देते हैं ; ताकि उन्हें एक्सचेञ्ज के भाव से हानि न हो। उदाहरणार्थ, एक पौण्ड की क़ीमत २५·२२ फ़्रेङ्क है। ख़र्च मिलाने या कम करने से उसकी क़ीमत २५·३२ और २५·१२ फ़्रेङ्क है। इसलिए पौण्ड के एक्सचेञ्ज का भाव प्रायः २५·१२ और २५·३२ के बीच में ही रहेगा। अर्थात् कभी २५·२८ हो जायगा, कभी २५·३०। इसी तरह कभी २५·१८ और कभी २५·१३ फ़्रेङ्क रह जायगा। लेकिन जब उसका भाव २५·३४ हो जायगा या २५·१० रह जायगा तब पौण्ड को डाक द्वारा भेजना सस्ता पड़ेगा और एक्सचेञ्ज के द्वारा क़ीमत का भुगतान करना मँहगा। भाव की घटी-बढ़ी के अनेक कारणों में से कुछ ये हैं—

१—हुण्डियों की माँग और बेचान—जिसका अर्थ यह है कि यदि हुण्डियों की माँग तो अधिक है लेकिन मिलती वे कम हैं तो एक्सचेञ्ज का भाव तेज़ हो जायगा। इसके विरुद्ध यदि माँग कम है और हुण्डियाँ मिलती अधिक हैं तो भाव मद्दा हो जायगा। हुण्डियों की माँग का अधिक या न्यून होना तीन बातों पर अवलम्बित है :—

(अ) व्यापार की दशा
(ब) कम्पनियों के शेयरों की बिक्री का प्रभाव
(स) सराफ़े के सौदों का प्रभाव

(अ) व्यापार की अवस्था अच्छी-बुरी होना, माल की आमद और रवानगी पर है, अथवा एक देश से दूसरे देश की तनख़्वाहों या क़र्ज़ की रक़मों के भेजने या न भेजने पर। माल की आमद ज़ियादह है तो उस देश के लिए एक्सचेञ्ज का भाव तेज़ हो जाता है और यदि रवानगी ज़ियादह है तो मद्दा हो जाता है। इसी तरह दूसरे कारण से रुपये की आमद और रवानगी पर एक्सचेञ्ज के भाव की घटी-बढ़ी है।

(ब) कम्पनियों के शेयरों की बिक्री का प्रभाव दो तरह से पड़ता है—शेयरों की ख़रीद या शेयरों के सट्टों से, और विदेशी क़र्ज़ों के काग़ज़ों की बिक्री से।

(स) सराफ़े के सौदों का प्रभाव तीन तरह से पड़ता है—

१—जब बेङ्कर या सराफ़ बहुत सी हुण्डियाँ ख़रीद कर रखलेते हैं।
२—जब देशाटन करनेवाले यात्रियों के लिए साख की चिट्ठियाँ, हुण्डियाँ या सरक्यूलर नोट अधिक या न्यून होते हैं।
३—जब लोग एक्सचेञ्ज के बट्टे का रोज़गार करने लगते हैं।

दूसरा मुख्य कारण, एक्सचेञ्ज के भाव पर प्रभाव डालनेवाला, प्रचलित सिक्के की दशा पर अवलम्बित है। इस सम्बन्ध में तीन बातें हैं—

१—पुराने या घिसे हुए सिक्कों का होना।
२—नोटों पर अधिक बट्टा लगना।
३—चाँदी, सोने के बाज़ार-भाव में बहुत घटी-बढ़ी होना।

जिस देश में चाँदी का सिक्का है, जैसे हिन्दुस्तान में, और उसे सोने के सिक्कों में माल की क़ीमत देनी या लेनी पड़ती है, उसमें एक्सचेञ्ज के भाव की अधिक घटती-बढ़ती चाँदी और सोने के भाव की घटी-बढ़ी पर हुआ करती है। पहले चाँदी दस-बारह आने तोले थी। अब चाँदी अठारह आने तोले है। इस तरह चाँदी के भाव में चार-पाँच वर्ष के भीतर ही लगभग दूना फ़र्क़ हो गया है ; लेकिन सोने के भाव में इतनी घटी-बढ़ी नहीं हुई। चाँदी की पैदावार का कम होना और उसका इस देश में कम आना, उसके भाव की घटी-बढ़ी का मुख्य कारण है। सोने-चाँदी के भाव में परस्पर अधिक घटी-बढ़ी होने से, भारतवर्ष के एक्सचेञ्ज का भाव बहुत घट-बढ़ गया है। कुछ वर्ष पहले पौण्ड की क़ीमत पन्द्रह या सोलह रुपया थी, पर आज ८॥।) है। इसका मुख्य कारण चाँदी का तेज़ होना ही है। यदि चाँदी सस्ती होजाय, तो पौण्ड की क़ीमत फिर बढ़ जाय। लेकिन जब तक चाँदी तेज़ है, उसकी क़ीमत बढ़ना असम्भव है।

एक्सचेञ्ज का भाव इस समय हिन्दुस्तान के लिए लाभदायक है या हानिकारक ?

हिन्दुस्तान से माल भेजनेवालों के लिए यह भाव हानिकारक है और माल मँगानेवालों के लिए लाभदायक। कल्पना करो कि भारतवर्ष से किसी व्यापारी ने दस हज़ार मन रुई लन्दन भेजी। लन्दन के ख़रीदार ने इस रुई की क़ीमत के ४०,००० पौण्ड भेजे। जब पौण्ड पन्द्रह रुपये के भाव का था तब भारतवर्ष के रुई भेजनेवाले व्यापारी को ४०,००० पौण्ड के ६,००,०००) मिलते। इस समय पौण्ड की क़ीमत ८॥।) है, तो अब उसे उन्हीं ४०,००० पौण्डों के ३,५०,०००) मिलेंगे, यानी पहले से ढाई लाख रुपया कम। इस तरह भारतवर्ष के माल भेजनेवाले को इस समय के एक्सचेञ्ज से अत्यन्त हानि है। अब यह कल्पना करो कि भारतवर्ष के किसी व्यापारी ने इँगलेंड से कपड़ा मँगाया है। उसकी क़ीमत का बिल बीस हज़ार पौण्ड का है। पन्द्रह रुपया पौण्ड के हिसाब से इसकी क़ीमत तीन लाख रुपये हुई और ८॥।) पौण्ड के हिसाब से एक लाख पचहत्तर हज़ार, यानी पहली क़ीमत से एक लाख पच्चीस हज़ार रुपया कम, जिसका फ़ायदा भारतवर्ष के व्यापारी को हुआ। इस प्रकार इस समय के एक्सचेञ्ज से माल मँगानेवाले को लाभ हुआ और माल बेचनेवाले को हानि।

यह बात अच्छी तरह मालूम है कि हिन्दुस्तान से माल अधिक जाता है और दूसरे देशों से कम आता है। ऐसी दशा में हिन्दुस्तान को इस समय के एक्सचेञ्ज के भाव से खुल्लमखुल्ला हानि है; क्योंकि जो लाभ बाहर से माल मँगानेवालों को होता है उससे कहीं ज़ियादह नुक़सान माल भेजनेवालों को हो जाता है। इस सम्बन्ध में यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि भारतवर्ष से बहुत कुछ कच्चा माल या ज़मीन की पैदावार जाती है; जैसे ग़ल्ला, रुई, सन, तिलहन आदि। जो माल भारतवर्ष में आता है वह कलों का बना हुआ माल है और अधिकतर आसायश की चीज़ें हैं। इस प्रकार एक्सचेञ्ज से हानि का असर उन दीन, निर्धन, मिहनती किसानों पर पड़ता है जिनकी दशा दिन पर दिन गिरती जाती है; क्योंकि यही कच्चे माल के पैदा करनेवाले हैं। जो लाभ एक्सचेञ्ज से होता है वह उन धनी साहूकारों को होता है जिनमें नुक़सान उठाने का भी सामर्थ्य है। सारांश यह कि इस समय के एक्सचेञ्ज के भाव से भारतवर्ष के निर्धन कृषकों को, जिनकी संख्या अधिक है, विशेष हानि है; और यदि कुछ लाभ है तो उन्हीं साहूकारों को है जिनकी आर्थिक दशा अच्छी है।

एक्सचेञ्ज का भाव स्थिर करने के लिए सरकार ने क्या क्या प्रयत्न किये हैं और कर रही है ?

भारतवर्ष में पहले सोने, चाँदी दोनों के सिक्के शताब्दियों से प्रचलित थे। दोनों ही सिक्के, यानी मुहर और रुपया, लेन-देन में बराबर काम आते थे। भारतवर्ष बहुत बड़ा देश है। इसमें पहले अगणित राजे और रईस इसके भिन्न भिन्न भागों में थे। इस तरह बहुत तरह के सिक्के प्रचलित थे। जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य हुआ तब उसने इन बहुत से सिक्कों का झंझट मिटाने के लिए अपना चाँदी का रुपया जारी किया। सोने की मुहरों का प्रचार तब भी बना रहा। कम्पनी भी उस सिक्के को मानती रही। अगर कोई आदमी गवर्नमेंट के ख़ज़ाने में मुहरें ले जाता था तो उनकी क़ीमत विशेष नियमानुसार रुपयों में दे दी जाती थी। लेकिन सन् १८५३ ईसवी में सोने के सिक्के का चलन सरकारी तौर पर बन्द कर दिया गया; सिर्फ़ चाँदी का सिक्का ही चलन-बाज़ार सिक्का माना गया। कुछ समय में सोने का भाव तेज़ हो गया और चाँदी का सस्ता। इससे गवर्नमेंट को, विलायत को तनख़्वाहें, पेंशिन आदि का रुपया भेजने में, बहुत रुपया देना पड़ा, जिससे उसे नुक़सान हुआ। इस नुक़सान को रोकने की नीयत से, सन् १८९३ में, हर्षचैल-कमिटी की सिफ़ारिश पर, टकसालों में दूसरों का रुपया बनाना बन्द कर दिया गया। इस उपाय से भी एक्सचेञ्ज का भाव स्थिर न हुआ। सन् १८९९ में फ़ाउलर-कमिटी की सिफ़ारिश पर सोने का सिक्का यानी सावरन भी टकसालों में बनने और सरकारी सिक्का गिना जाने लगा। लेकिन यह नीति बहुत दिन तक स्थिर

न रही। धीरे धीरे चाँदी के सिक्कों का प्रचार करने की तरफ़ ही ध्यान अधिक रहा। जब चाँदी सस्ती थी और रुपया बनाने से अधिक लाभ होता था तब इस लाभ के रुपये से एक गोल्ड-रिज़र्व नामक कोष बनाया गया था। उसका उद्देश यह था कि अगर चाँदी तेज़ हो जाने से रुपया बनाने में नुक़सान भी होगा तो यह नुक़सान इस कोष से पूरा कर दिया जायगा। इस कोष का स्थापित होना, एक्सचेञ्ज के भाव की स्थिरता के लिए बड़ा उपयोगी समझा गया है। सन् १९१३ में इस विषय की जाँच-परताल करने के लिए चेम्बरलैन-कमीशन बैठा। उसने भी इस उपाय को बहुत अच्छा समझा, हालाँ कि यह उपाय फ़ाउलर-कमिटी की तजवीज़ से, जिसको गवर्नमेंट पहले मान चुकी थी, विरुद्ध था। योरप का महायुद्ध होने से एक्सचेञ्ज में अधिक घटी-बढ़ी हुई, और जो तदबीरें चेम्बरलैन-कमीशन ने ठीक मानी थीं वे फलदायक न हुईं। इसलिए इस मामले में सेक्रेटरी आव् स्टेट (इण्डिया) की तरफ़ से एक कमिटी और बिठाई गई है, जिसका नाम करेंसी-कमिटी है। इस कमिटी का कार्य यह है —

योरप के युद्ध से भारतवर्ष की सिक्का-प्रचार-नीति पर जो असर पड़ा है उसका निर्णय करना। एक्सचेञ्ज के भाव की स्थिरता के लिए ऐसे उपाय सोचना जिनसे वर्तमान सिक्का-प्रचार-नीति में फ़रक न आवे, बल्कि वह और भी दृढ़ हो जाय।

यह कमिटी इन्हीं उद्देशों की पूर्ति का विचार कर रही है। उसका अभी नतीजा नहीं निकला। लेकिन बहुत जल्द निकलनेवाला है। इस समय गवर्नमेंट, एक्सचेञ्ज के भाव की स्थिरता की नीयत से ही, प्रत्येक मास लाखों तोले सोना बेच रही है, जिससे सोने का भाव सस्ता हो जाय। अभी इसका असर एक्सचेञ्ज पर कुछ भी नहीं हुआ जान पड़ता।

ऐसे कौन कौन उपाय हैं जिनसे एक्सचेञ्ज के भाव की स्थिरता हो सकती है ?

इस विषय के जाननेवाले विद्वानों ने एक्सचेञ्ज के भाव की स्थिरता के लिए कितने ही उपाय बताये हैं, जिनमें से कुछ ये हैं—

१—भारतवर्ष में चाँदी-सोने के आने पर सरकार की तरफ़ से जो रुकावटें हैं वे हटा दी जायँ।

२—जब सरकार के ख़ज़ाने में पूरे रुपये न हों तब नोटों का रुपया न दिया जाय।

३—इस समय रुपये में जितनी चाँदी है उसका वज़न कम कर दिया जाय, यानी सरकार ऐसा रुपया ढाले जिसमें इस समय के प्रचलित रुपये की चाँदी की अपेक्षा चाँदी तो कम हो और मेल अधिक।

४—रुपये की रेज़गारी के सिक्के, कम क़ीमत की धात के बनाये जायँ और अधिक संख्याओं में ढाल जायँ, और वे जारी भी किये जायँ। इनका जार होना और देश में बिना किसी रोक टोक के से का आना, एक्सचेञ्ज के लिए लाभदायक समझ जाता है। निकल की अठन्नी और चवन्नी इस कारण जारी कर दी गई है। इकन्नी और दुअ तो पहले से ही जारी थी।

५—करन्सी नोटों का भाव कम कर दिया जाय औ उनका रुपया देना बन्द कर दिया जाय। य उपाय थोड़े ही समय के लिए. इस झञ्झट मिटाने का इलाज समझा जाता है।

६—सोने के सिक्के के भी नोट निकाले जायँ, यान पौण्डों के नोट, और छोटी क़ीमत के नोटों क संख्या अधिक प्रचार में लाई जाय। इनका रुपय जहाँ कोई चाहे वहाँ मिल जाया करे।

७—भारतवर्ष में एक सरकारी सेन्ट्रल बेङ्क स्थापि किया जाय, जो रुपये, नोट आदि का समुचि प्रबन्ध करे और व्यापार के रुपये के भुगतान के सुभीते करे। बेङ्क-सम्बन्धी कार्य, जो इस सम इस देश की और इँगलैंड की गवर्नमेंट कर र है, यही सेन्ट्रल बेङ्क करे।

८—यदि करेंसी कमिटी, जो इस समय काम कर र है, इन सब उलझनों को न सुलझा सके

५०/१८२८
२०
पु ८८८ ग, आ० २१ (वं० १
५

एक ऐसा कमीशन नियत किया जाय जो इस मामले की खूब छान-बीन करे ।

९—भारतवर्ष में सिक्का-प्रचार की नीति वैसी ही होनी चाहिए जैसी अन्य सभ्य देशों में है ।

१०—यह नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे भारतवासियों की आर्थिक दशा सुधर जाय । ऐसा न होना चाहिए कि अन्य देशों के फ़ायदे पर तो ध्यान रक्खा जाय और भारतवासियों के फ़ायदे की तरफ़ उदासीनता रहे ।

११—भारतवर्ष में भी इँगलेंड या योरप के अन्य सभ्य देशों के समान सोने का सिक्का जारी कर दिया जाय, जिससे एक्सचेञ्ज की इतनी घटी-बढ़ी न हो; क्योंकि जिन देशों में सोने का सिक्का जारी है उनमें भाव की इतनी घटी-बढ़ी नहीं होती ।

१२—चांदी का भाव एक्सचेञ्ज के लिए इतना ऊँचा कर दिया जाय कि चाँदी का असली भाव उस सीमा तक पहुँच ही न सके । कुछ दिन पहले इस उपाय के सम्बन्ध में चाँदी के भाव की अन्तिम सीमा ६६ पेंस फ़ी औंस समझी गई थी । लेकिन इस समय चांदी का असली भाव ७८ पेंस फ़ी औंस हो गया है, जिसका कभी स्वप्न में भी ख़याल न था ।

इन उपायों के विषय में अनेक विद्वानों की अनेक सम्मतियां हैं । इनके समर्थन और खण्डन में बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर लेख बढ़ जाने के भय से हम उन बातों को छोड़ते हैं । समय मिलने पर फिर कभी लिखेंगे । तब तक शायद करेंसी-कमिटी की रिपोर्ट भी प्रकाशित हो जाय और एक्सचेञ्ज स्थिर करने के लिए जो उपाय उसने निश्चित किये हैं उनका भी पता लग जाय । ऐसी दशा में इस समय पूर्वोक्त उपायों पर विचार करना बहुत कुछ व्यर्थ होगा ।

कन्नोमल

पुस्तकालय
112818
गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार

डिब्बा ।

(१)

उमाशङ्कर और रामशङ्कर सगे भाई थे । उन्होंने एक ही माँ के पेट में पैर फैलाये थे । पर इससे क्या, उनके स्वभाव में भारी भेद था । जितना भारी भेद था उसके उतने ही हलके कारण थे । उमाशङ्कर निःसन्तान था । उसकी स्त्री रामकली ने अपना एक भतीजा, महादेव, रख छोड़ा था । रामशङ्कर से अधिक उसकी स्त्री सौभाग्यवती को यह बात नागवार थी । रामशङ्कर के दो पुत्र थे । दोनों ही स्कूल में पढ़ने जाते थे और प्रायः हर दूसरे साल फ़ेल होते थे । रामशङ्कर को धन की प्रचुरता के कारण अपने पुत्रों के फ़ेल होने का उतना दुःख न होता था जितना नामवरी के साथ महादेव के प्रति वर्ष पास होने का ।

उमाशङ्कर सीधे-सादे आदमी थे । छल-कपट जानते तो क्या, कोई दूसरा उनसे करता तो समझते भी न थे । ज़मींदारी का बटवारा पिता कर गये थे । फिर भी रामशङ्कर ही समस्त ज़मींदारी का प्रबन्ध करते थे और दुष्ट लोग कहते थे कि प्रबन्ध की आड़ में वे अपना काम खूब बनाते हैं ।

उमाशङ्कर की स्त्री रामकली जितनी बुर्दबार और मिहनती थी रामशङ्कर की स्त्री सौभाग्यवती उतनी ही चञ्चल, खरखरी और आरामतलब थी ।

प्रबन्ध भले ही रामशङ्कर करते थे, पर दोनों भाई एक ही मकान में, किन्तु अलग अलग, रहते थे । दोनों की रसोई अलग अलग बनती थी । रहना-सहना अलग अलग था । बैठक अलग अलग थी । पर कुवाँ एक ही था और उसी कुवेँ पर कभी कभी रामकली को पानी भरते देख सौभाग्यवती दो चार छींटे दे दिया करती थी । घर में नौकरनी थी, नौकर थे ; पर पति के पूजा-पाठ के लिए रामकली ही तांबे का लोटा भर कर लाती थी । उस दिन ऐसे ही मौक़े पर सौभाग्यवती ने दस्ताना बुनते बुनते कहा—

"जीजी, महादेव से पानी भरवा लो तो वह धीमर न

हो जाय । जो बुआ का भारी अन्न पचा सकता है वह क्या पानी नहीं भर सकता । बुरा न मानना । तुम्हारे ही भले की कहती हूँ" ।

रामकली ने सूत की डोरी लपेटते हुए कहा—

"बहन, महादेव ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो उसे कोसती रहती हो । उस दिन तुम्हारी बात पर वह घण्टों रोया था । जो कुछ कहना हो मुझे कह लिया करो । तुम्हारी तेज़ ज़ुबान के कोड़े मेरी पीठ तो ज्यों त्यों करके सह लेती है ; पर वह बेचारा बालक है ; उसकी कोमल पीठ उधड़ जाती है—बहन" ।

सौभाग्यवती ने जान बूझकर ग़लत फन्दा डालते हुए कहा—

"आग लगे, मेरा दस्ताना ही बिगड़ गया" ।

पूजा के लिए लाये गये जल में रामकली के जितने बड़े उतने ही निर्मल नेत्रों से टपकी हुई जल की बूँद को तो उमाशङ्कर ने न देखा, पर उन बूँदों को जो गिरी तो न थीं पर गिरनेवाली थीं साफ़ साफ़ देख लिया ।

उमाशङ्कर ने भोजन के बाद स्त्री से सब हाल पूछा और सुना । उन्होंने स्त्री के हाथ से पंखे को लेकर कहा—मालूम होता है, बिना मकान छोड़े इस विपत्ति का अन्त न होगा । इस स्थान में बचपन से रहे हैं । इसलिए इसका मोह हो गया है । रामशङ्कर से कहूँगा, वह इस मकान को ख़रीद ले और मेरे लिए इसी महल्ले में कोई और मकान लेदे ।

रामकली ने कहा—नहीं, मकान छोड़ने की ज़रूरत नहीं । छोटी बहू वहाँ जाकर क्या नहीं लड़ सकती ? यहीं रहेंगे और उसके ताने सहेंगे । भगवान कभी तो उसे सुबुद्धि देंगे ।

उमाशङ्कर ने तृषित नयन से जब रामकली के सौन्दर्य्य से अधिक शान्तिपूर्ण चेहरे को देखा तब रामकली ने पति के नेत्रों की तृषा में कृतज्ञता का भाव न पाया हो, सो बात नहीं । वह उस मौन-भाषा के अर्थ को ठीक ठीक समझ गई ।

(२)

उमाशङ्कर 'घर के बीमार' थे । घर के दरो दीवार, दालान-आँगन, कोठी-कोठे यहाँ तक कि दहलीज़ तक में उनका मोहग्रस्त मन फँसा हुआ था । एक बार रामकली ने मकान छोड़ने का प्रस्ताव किया था । स्वभाव से ही उमाशङ्कर अपनी गृहिणी की बात न टालते थे । इसलिए उन्होंने उसकी बात को उस समय मान तो लिया, पर उसे कार्य में परिणत करते समय उनका चित्त बहुत खिन्न होने लगा । रामकली पति के चित्त की चञ्चलता का कारण समझ गई और उस दिन से फिर कभी उसने वैसा प्रस्ताव न किया ।

महादेव, जो उनके पारिवारिक जगत् का धूम्रकेतु बना हुआ था, शौक़ से या किसी अन्य स्वार्थ के विचार से प्रेरित होकर उनके यहाँ नहीं आया था । पिता की असामयिक मृत्यु ने उसे यहाँ रहने के लिए विवश किया था । अपने भाई की अकाल-मृत्यु पर रामकली को जितना दुःख हुआ उससे अधिक बालक महादेव के दुर्भाग्य पर हुआ, क्योंकि उसकी माता पहले ही मर चुकी थी । दशाह के बाद ही रामकली उसे साथ ले आई । महादेव को प्रकृति ने विपत्तियाँ सहने के लिए ही मानों विनीत बनाया था । इसी ढाल से वह बेचारा बड़े बड़े वार सह लेता था । ढाल भले ही लिचपिची थी, पर टूटनेवाली न थी ।

बुआ के साथ महादेव ने जब पहले-पहल उमाशङ्कर के स्थान में क़दम रक्खा था तब उसकी अवस्था ७ वर्ष की थी । महाशया प्रकृति बड़ के विशाल वृक्ष का विस्तार जिस तरह छोटे से बीज में बन्द कर देती है उसी तरह बालक महादेव में धीरज और समझ के बीज बचपन से ही छिपे हुए थे । उमाशङ्कर से अधिक वह रामशङ्कर की प्रतिष्ठा करता था । सौभाग्यवती के मनःप्रसाद की भी वह विफल चेष्टा करता था । अब उसकी आयु १० और ६ सोलह वर्ष की थी ।

प्रवेशिका परीक्षा में उसने अच्छी तरह सफलता प्राप्त की । उसे पढ़ने और पढ़ाने का व्यसन था । ख़ाली समय में वह घर पर रामशङ्कर के दोनों पुत्रों को पढ़ाया करता था । दोनों बालक उसकी देख-रेख में रहते थे । रामशङ्कर की स्त्री ने अपने पुत्रों को महादेव का शत्रुत्व न समझाया हो, सो बात नहीं । पर उनके कोमल हृदयों में ईर्ष्या का कठोर बीज न जम सका । वे महादेव को किसी तरह अपना बड़ा भाई न समझें, यह न हुआ । स्कूल में वह उनकी

बराबर रहा करता था। लड़के उत्पाती थे। रोज़ ही एक न एक झगड़ा बरपा करते थे। पर महादेव की सई सिफ़ारिश से उनकी वह विपत्ति टल जाती थी। स्कूल में सबका प्यारा होने के कारण उसकी बात कोई न टालता था। घर में बैठी छोटी बहू इन बातों को जानती भी न थी और यदि कभी जान पाती थी तो इन्हें विशेष महत्त्व न देती थी—कह देती थी—हमारा अन्न खाता है, इतना भी न करेगा।

दिन में, रात में देखे दुःस्वप्न की बात याद आ जाने से जिस तरह तबीअत सुस्त पड़ जाती है, उमाशङ्कर के परिवार में हर तरह सन्तुष्ट महादेव भी छोटी बहू की इन बातों को स्मरण करके प्रायः खिन्न हो जाया करता था। उमाशङ्कर और बुआ के अमायिक स्नेह का चिकना अतएव मज़बूत बन्धन न होता तो वह कभी का कहीं चला जाता। फिर भी वह घण्टों अपनी अवस्था पर सोचता था। सौभाग्यवती से कुछ भी वास्ता नहीं है; उसके अन्न का एक दाना भी वह नहीं खाता; फिर भी वह उसके कोप का भाजन बना हुआ है। केवल इसीलिए कि उमाशङ्कर की सम्पत्ति का कहीं वह मालिक न बन जाय। बस यही तो।

(३)

छोटी बहू के भी एक भाई रामलाल था और मुशकिल यह थी कि ग़रीब था और यथानियम सन्तान की सम्पत्ति से मालामाल था। गाँव में रहता था और पास के शहर में किसी स्कूल में चपरासी था। साल में दो तीन बार सौभाग्यवती से मिलने आ जाता था। कभी भुट्टे, कभी आम और कभी समे के चावल लाता था और बहन को भेंट देता था। बहन ग़रीब भाई को देखकर खुश होती, किन्तु बहनोई भीतर ही भीतर कुढ़ते। वे जानते कि घर की सम्पत्ति का यह भी एक छिपा हिस्सेदार है। पर बात यह न थी। बच्चों के नाम से बहन जो थोड़ा बहुत धन देती उसे ग़रीब रामलाल बड़ी कठिनाई से लेता। अपनी मिहनत से ही वह अपने परिवार का ख़र्च चलाता था। स्त्री से कई बार इशारे इशारे में रामशङ्कर यह बात कह चुके थे। समझनेवाले को साफ़ बात से अधिक इशारे की बात से यन्त्रणा होती है। साफ़ बात में मामला साफ़ होजाता है। इशारे में कहनेवाला कह जाता है और सुननेवाले को कुछ कहने का मौक़ा नहीं मिलता। साफ़ जवाब दिया जाय तो कहनेवाला कह सकता है—मेरा यह आशय कब था; यों ही साधारण बात कह दी थी।

ऐसी बातें सुनकर छोटी बहू घुट कर रह जाती थी। एक-आध दफ़े उसने जी खोलकर ज़िक्र करना चाहा तो पति ने बात टाल दी। वह उससे कलह करना किसी तरह न चाहता था। उसके स्वभाव से वह उतना ही डरता था जितना कि उसकी सुन्दरता पर मोहित था।

आज सौभाग्यवती ने बिगड़कर कहा—“आग लगे इन झगड़ों में। अब मैं अपने भाई के घर जाऊँगी। काम करते करते मरी जाती हूँ; न दिन को आराम, न रात को चैन। औलाद है, वह जलाय डाले है। घर का काम है, वह सुखाय डाले है। तुम्हें किसीका क्या ध्यान। घर में आये, पकी पकाई खा ली और बस्ता बाँधकर कचहरी चले गये या बैठक में जाकर महल्ले के निठल्लों को इकट्ठा कर लिया। परसों मेरे जाने का बन्दोबस्त कर दो।”

पति पहले तो घबराये। यह कैसी आफ़त आई। चली गई तो नाकोंदम आ जायगा। लड़कों की देख-भाल, घर का प्रबन्ध और सबसे बढ़कर उसके ढलते हुए अतएव म्लान, पर अभी तक मनोहर, सौन्दर्य का लोभ। उन्होंने बहुत कुछ खुशामद की। फिर समझाया। गाँव में कहाँ जाओगी। रास्ते की तकलीफ़, गाँव की और तकलीफ़ें, फिर ग़रीबी का घर।

पत्नी के क्रोध को सहारा मिला—“कैसी तकलीफ़। यहाँ क्या आराम है। सुबह से रात के बारह बजे तक तेली का बैल बनी रहती हूँ। चलो, रहने दो। भाई को खुश करने के लिए उसे लेकर तहसील करने गये। क्या बात रह गई। मेरा भाई दो दिन को आ जाता है तो नानी मर जाती है। मुझे वहाँ की तकलीफ़ें अच्छी; वहाँ कोई जी जलानेवाला तो न होगा”।

व्यञ्जना अब खुली। पति ने गिड़गिड़ाकर कहा—“अच्छा अब माफ़ करो। सब क़सूर मेरा है। तुम्हारे भाई को देखकर मेरी नानी भले ही मर जाय, पर तुम्हें परेशान देखकर तो मैं खुद मरा जाता हूँ।”

“चलो रहने दो। ऐसी बात मुँह पर लाते हो। मुझे जलाने का नया तरीक़ा निकाला है”—

कहकर पत्नी के अधरों पर काली घटा में बिजली की लकीर की तरह हँसी खेल गई और इस तरह उतरती उम्र की मानलीला का अध्याय, भद्रानध्याय में पाठ की तरह, अचानक यहीं समाप्त हो गया।

(४)

तीन महीने से महादेव लापता है। उमाशङ्कर ने उसकी तलाश में कोई बात उठा न रक्खी। पर उसका पता न चला। उनके बुढ़ापे का सहारा जाता रहा। उस दिन से उनकी मानसिक अवस्था बहुत ख़राब रहती है। किन्तु रामकली ज़रा भी सुस्त नहीं है। वह अपने पति को समझाती रहती है, इसमें सोच की क्या बात है। कहीं चला गया है। आ जायगा। होशियार है। उसके लिए चिन्ता क्यों? पढ़ा-लिखा है। जहाँ होगा, नौकर हो गया होगा। लड़के भी पढ़ावेगा तो कम से कम बीस रुपये कमा लेगा। उस की फ़िक्र करना बेकार है। जिस दिन चाहेगा आ जायगा।

उमाशङ्कर जानते थे कि पतिव्रता दिल का ख़ून करके ये बातें कह रही है। उसके दिल पर जो गुज़र रही है उसे वह बिलकुल छिपाये हुए है। मुझे प्रसन्न करने के लिए बाहर से शान्त बनी हुई है। मेरे कारण अपनी व्याकुलता प्रकट नहीं करती; मेरे लिए वह कितना स्वार्थ-त्याग कर रही है। उमाशङ्कर अपनी स्त्री के स्वभाव पर मुग्ध होकर रोने लगते। भोली रामकली समझती—महादेव को याद करके रो रहे हैं। वह उनका चित्त उस तरफ़ से हटाने के लिए और समझाती। वे और रोते। अनाड़ी हकीम की ओषधि से जिस तरह रोग घटने के बदले बढ़ता जाता है उसी तरह सान्त्वना की बातें उमाशङ्कर को और रुलातीं। आख़िर, कोमल-हृदया रामकली से भी न रहा जाता। कोमल हृदय की मज़बूत वृत्तियों से रुका हुआ अश्रुप्रवाह, मौक़ा पाकर, उमड़ जाता और वह अपने एक-मात्र उपास्य पति के चरणों को निर्मल नयन-नीर से धो डालती।

दूसरे तीसरे इन्हें तबीअत के बोझ को हलका करनेवाला इस तरह का कोई न कोई साधन मिल जाता था।

जिस दिन महादेव गया, छोटी बहू को ख़ुशी के मारे नींद न आई। कब दिन निकले और कब बड़ी बहू से दो दो बातें करूँ। इसी फ़िक्र में वह करवटें बदलती रही। सुबह होते ही सूखे मुँह से कुवें पर जा खड़ी हुई और बड़ी बहू को आता देखकर बोली—"बहन, महादेव कहाँ चला गया? कैसा औटपाई लड़का है। कौन सुख न था?"

वह समझती थी, यह सुनकर बड़ी बहू भभक उठेगी और ख़ूब खोटी खरी सुनावेगी। किन्तु उसने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया—

"बहन, क्या किया जाय। जो भाग में होता है वही होता है। उसके भाग का दोष है। कहाँ कहाँ की टक्करें खायगा"।

यह सुनकर छोटी बहू और सुस्त होगई। जो बात वह चाहती थी वह न हुई।

पहले तो सौभाग्यवती बड़ी ख़ुश हुई। उसने समझा काँटा कटा। पर दो-चार दिन में ही उसका मनोभाव बदल गया। उसने देखा, उसके लड़के बहुत सुस्त हैं। दिन भर महादेव का ज़िक्र करते हैं। २५) का मास्टर रक्खा गया। मगर लड़के कहते हैं, मास्टर साहब कुछ नहीं पढ़ाते; बार बार घड़ी निकालकर देखते हैं और समय पूरा करते हैं। हमारा पढ़ना-लिखना तो महादेव भाई के साथ गया। अब उस प्रेम से कौन पढ़ावेगा और घण्टों समझावेगा।

एक सप्ताह से छोटी बहू का बड़ा लड़का जयशङ्कर ज्वर से पीड़ित है। पहले दिन से जो ज्वर आया है वह अभी तक नहीं उतरा। हर समय बुख़ार तेज़ रहता है। लड़के की अवस्था डाक्टर शोचनीय बता गये हैं। वह बर्राता है। कभी स्कूल, कभी घर और अकसर महादेव भाई की बातें कहता रहता है। उमाशङ्कर और बड़ी बहू दोनों समय लड़के को देख जाते हैं।

आज सुबह से छोटी बहू बहुत चञ्चल हो रही है। बार बार उसे यह ख़याल आ रहा है कि महादेव के जाने से ही मेरा लड़का बीमार हुआ। उसी पाप का यह विषम फल है। ईश्वर रक्षा करें। अब उसे साफ़ दिखाई देने लगा कि मैंने कैसा अनर्थ किया है। मेरे कठोर व्यवहार से ही महादेव ने घर छोड़ा। जेठजी सूखकर आधे रह गये और जिठानी अन्दर अन्दर घुली जाती हैं। दुःख ने उसे आज दूसरों के दुःखों की अनुभूति करा दी। वह व्याकुल हो गई। पश्चात्ताप और क्षोभ के कारण आज उसे अपने

पति पर बड़ा क्रोध आ रहा है। उसने पति को अलग बुलाकर कहा—

"तुमने महादेव का कुछ पता न लगाया। बड़े कठोर हो। उसका पता लगाओ। मेरा जी बहुत घबरा रहा है।"

पति ने चौंककर उत्तर दिया—"क्या कहती हो। मनचीती बात हो गई। उसका अहसान नहीं; उलटी शिकायत !"

"यह अच्छा न हुआ। जिस तरह हो उसका पता लगाओ। मेरा जी मुझे धिक्कार रहा है। हाय, कैसा भोला लड़का था। मैं उसे सब कुछ कह लेती थी। पर उसने कभी जवाब न दिया। लड़कों को भाई की तरह समझता था। जेठ और जिठानी की हालत मुझसे नहीं देखी जाती। उन्होंने एक बार भी नहीं कहा, वह मेरे कारण चला गया। राम! राम! कैसा अपराध हुआ। मैं बड़ी पापिन हूँ। बड़े की बीमारी तभी दूर होगी जब महादेव आ जायगा। मेरे जी में बुरे बुरे भाव आ रहे हैं।

यह कहकर पति के आगे सिर टेककर वह अभिमानिनी रोने लगी। रामशङ्कर ने अपनी स्त्री के आँसुओं से धुले हुए मुँह में साक्षात् लक्ष्मी का दर्शन किया। ऐसा कमनीय भाव उसे कभी उसके चेहरे पर दिखाई न दिया था। अपनी स्त्री के हृदय की स्वच्छता में रामशङ्कर को अपने हृदय की कालिमा, साफ़ चादर में धब्बे की तरह, बुरी मालूम होने लगी। उसने कहा—

"सचमुच हमने यह बड़ा पाप किया है। बड़े की बीमारी से भाई कितने परेशान हैं। रोज़ दोनों वक्त आते हैं और प्रेम से उस पर हाथ फेर जाते हैं। चलो, उनसे जाकर क्षमा माँगें। बिना उनके क्षमा किये हमारे पाप न धुलेंगे। हम लोगों के विपरीत आचरण से वे चुपचाप कैसी तीक्ष्ण यन्त्रणा भोग रहे हैं। हा! ऋषि-तुल्य भाई और देवी-सदृश भाभी का हमने यह सत्कार किया! चलो, घाव तत्ता है, अभी चलकर अपने पाप के प्रायश्चित्त की पूर्णाहुति करें। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक महादेव का पता न लगा लूँगा चैन से न बैठूँगा—तुम्हें मुँह न दिखाऊँगा—कहते कहते रामशङ्कर ने अपनी स्त्री को हृदय से लगा लिया। दोनों रोने लगे और इस तरह उत्तरोत्तर पवित्र होने लगे।

(५)

उमाशङ्कर सायङ्काल के भजन और पाठ से निवृत्त होकर तुलसीदास की रामायण का पाठ कर रहे हैं। उनकी स्त्री, सुबोध शिष्य की तरह, उनके सामने बैठी है। मीठे कण्ठ से उमाशङ्कर चौपाइयाँ पढ़ रहे हैं और उनका अर्थ अपनी स्त्री को समझा रहे हैं। आज दोनों खूब प्रसन्न हैं। ठाकुरद्वारे में घी का दीपक अब बुझा, अब बुझा, हो रहा है। तेल का, मोटी बत्ती का, दिया फूल देकर मानों उसकी बेकसी पर हँस रहा है।

इसी समय रामशङ्कर-दम्पती ने घर में प्रवेश किया। उमाशङ्कर ने पाठ समाप्त कर दिया और उनके असामयिक आगमन पर आँखों आँखों में अपनी स्त्री से विस्मय प्रकाश किया। सौभाग्यवती बहुत दिनों से इनके यहाँ नहीं आई थी।

उमाशङ्कर ने पुस्तक बन्द करते हुए कहा—

"रामशङ्कर, इस समय बहू को लेकर कैसे आये? शीतलपाटी पर बैठो। बड़ा अच्छी तरह है?"

सौभाग्यवती ने रामकली के चरण पकड़कर मानों अपने पति को बैठने का स्थान बताया। रामशङ्कर भी भाई के चरण पकड़कर बच्चों की तरह रोने लगा। दबा हुआ भ्रातृस्नेह, इस अद्भुत व्यापार को देखकर, उमाशङ्कर के भग्न हृदय से चू पड़ा। वे भी रोने लगे। कोई किसीसे न पूछ सका कि क्या माजरा है।

रामकली ने कहा—"बहन, क्या बात है? क्यों अधीर हो रही हो? बड़ा कैसे है?"

सौभाग्यवती ने कहा—"सच्चे हृदय से मुझे क्षमा कर दो, नहीं इन्हीं चरणों में जान दे दूँगी।"

यह बात कुछ इस दृढ़ता से कही गई थी कि रामकली को इसके खण्डन की हिम्मत न हुई। उसने कहा—"बहन, मैं तुम्हें क्षमा करती हूँ। पर बात क्या है?"

सौभाग्यवती—"उन्हें भी जेठजी से क्षमा करा दो।"

उमाशङ्कर ने कहा—"बेटी, मैं पहले ही क्षमा कर चुका। बात क्या है?"

दोनों स्वस्थ होकर बैठ गये। सौभाग्यवती ने सब हाल कह सुनाया। उसे सुनकर उमाशङ्कर और उसकी स्त्री की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

उमाशङ्कर ने कहा—"आज का आया पत्र तो इन्हें दिखाओ।"

रामकली ने एक पत्र रामशङ्कर के हाथ में दिया। रामशङ्कर पढ़कर सुनाने लगे—

पूज्य फूफाजी, प्रणाम।

मैंने बड़ा अपराध किया कि मैं इस तरह चला आया। आपको और बुआजी को मुझ अधम ने बड़ा कष्ट दिया। मैं अपने अपराध को उस समय भी समझता था और अब भी समझता हूँ। पर जो भूल हो गई और जिस कारण से हो गई वह नहीं मिट सकती। आपकी कृपा से मैं सकुशल हूँ और यहाँ "सनातनधर्म-स्कूल" में मास्टर हो गया हूँ। ३५) मासिक मिलता है। १०) का ट्यूशन भी है। गुज़र से ज़ियादह है। आप चिन्ता न करें। इसी स्कूल में छोटी बहू के भाई रामलाल नौकर हैं। बेचारे बड़े ग़रीब, पर बड़े सच्चे हैं। मेरे कहने से उन्होंने अब तक आपको मेरी सूचना नहीं दी। मैं उनके लड़कों को पढ़ाता हूँ। लड़के होनहार हैं। आपको मालूम है, उनके एक बड़ी लड़की है, जिसकी उम्र इस समय १३ वर्ष की है। वे उसके विवाह के लिए बड़े चिन्तित हैं। ग़रीबी के कारण उनके यहाँ कोई विवाह करने को राज़ी नहीं होता। उनकी स्त्री ने मुझसे कहा था कि मैं उनकी लड़की से विवाह कर लूँ। पर इस सम्बन्ध से छोटी बहू बहुत नाराज़ होंगी। इसलिए वे भी हिचकती हैं और मैं भी डरता हूँ। वे कहती हैं, विवाह हो जाने पर उन्हें मालूम होगा तो नाराज़ होकर क्या करेंगी। कुछ दिनों बाद मान जायँगी। पर मैं बिना आपकी आज्ञा के स्वीकृति नहीं दे सकता। बुआजी से पूछकर आप जैसा लिखेंगे वैसा करूँगा। दशहरे की छुट्टियों में आऊँगा। बुआजी के चरणों में प्रणाम। आशा है, दोनों भाई अच्छी तरह होंगे और पढ़ रहे होंगे।

दास
महादेव

सौभाग्यवती ने पत्र सुनकर अपने पति से कहा—बैठो, अभी आती हूँ।

थोड़ी देर बाद उसने एक डिब्बा लाकर रामकली के चरणों पर रख दिया और कहा—

'बहन, आज तुम समधन भी हुईं। लो, यह नज़राना है। इसे महादेव की बहू को मुँह-दिखाई में देना।"

डिब्बे में सोने के सात आभूषण थे, जो उसने अपने बड़े लड़के की बहू के लिए बनवाये थे। रामकली ने उन्हें लौटाने की बहुत ज़िद की, पर सौभाग्यवती ने एक न सुनी। उसने उठते हुए हँसकर कहा—

"बहन, मुझे उतना नीच मत समझो। अब मैं तुम्हारी टहलनी हूँ।"

बड़े लड़के का बुख़ार रात में क़रीब क़रीब उतर गया। बड़ी बहू के बहुत मना करने पर भी रामशङ्कर दूसरे दिन सुबह की गाड़ी से महादेव को लेने चले गये।

महादेव ने लौटकर देखा कि मकान को दो भागों में विभक्त करनेवाली बीच की दीवार छोटी बहू तुड़वा रही हैं और काम जल्दी ख़तम कराने के लिए मज़दूरों पर ख़ुद कड़ा पहरा दे रही हैं। महादेव आते ही उनके चरणों पर गिर पड़ा।

ज्वालादत्त शर्म्मा

कर्तव्याकर्तव्य-विचार।

हमारे भारतवर्ष के शास्त्रों में कर्म-अकर्म की कसौटी चाहे जो मानी गई हो, पर अधिकांश भारतीय जन वंश-परम्परा से चले आये हुए नियमों के अनुसार ही किसी कर्म की नीतिमत्ता का निर्णय करते हैं। आज-कल दो प्रकार की सभ्यता का मेल हो रहा है। इससे मानसिक क्षेत्र में विचित्र दृश्य देखने में आते हैं। जिन्होंने अभाग्य-वश कहिए या भाग्यवश, पश्चिमी और पूर्वी दोनों ही सभ्यताओं के तत्त्वों और उद्देशों पर पूरा विचार किया है वे प्रायः ऐसे असमञ्जस में पड़ जाते हैं कि उनकी मानसिक अवस्था शोचनीय-सी हो जाती है।

वह भारतीय युवक जिसने अपनी सभ्यता का ज्ञान रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों और शैशवावस्था की कहानियों से माता की गोद में रहते हुए प्राप्त किया है, या जिसने रामचन्द्र के जीवन के आदर्श होने की शिक्षा पाई है, या जिसने यह सीखा है कि भीष्म पितामह आदर्श मनुष्य थे, जब पश्चिमी शिक्षा, सभ्यता और नीति का ज्ञान प्राप्त करता है, योरूपीय राष्ट्रों की चाल और उनकी नीति और नियमों का अवलोकन करता है, तब वह अवश्य ही द्विविधा में पड़ जाता है कि इन दो पन्थों में कौन श्रेयस्कर है—कौन हमारे देश, जाति और अपने के लिए लाभदायक है। जिन्होंने पश्चिमी शिक्षा नहीं पाई, और जो भारतवर्ष में उत्पन्न होने पर भी हिन्दू-शास्त्रों की शिक्षा से वञ्चित रहे हैं उनके अन्तःकरण में पहले तो कर्म-अकर्म का प्रश्न तीव्रता से उठता ही नहीं और अगर कभी उठता भी है तो वे या तो परम्परा से चले आये हुए नियमों के अनुसार, या केवल अपने चित्त की वृत्ति के अनुसार निर्णय कर डालते हैं।

आज हम सरस्वती के पाठकों को यह बताना चाहते हैं कि पश्चिम के एक शक्तिमान् नेता ने कर्म अकर्मक—कर्तव्य, अकर्तव्य—के प्रश्न को कैसे हल किया है।

विलायत में जान स्टूअर्ट मिल बड़े नीतिज्ञ हो गये हैं। उनकी बनाई हुई एक सर्व-प्रिय पुस्तक का अनुवाद द्विवेदीजी की कृपा से हिन्दी में प्रकाशित हो चुका है। मिल साहब ने आचार-नीति पर अपने विचार, एक छोटी सी पुस्तक Utilitarianism (उपयोगिता-तत्त्व) में प्रकाशित किये हैं।

मिल महाशय कर्माकर्म का निर्णय 'ईश्वरीय ज्ञान' या 'ईश्वरीय वाणी' के आधार पर नहीं करते। अमुक काम शुभ है या अशुभ, इसका कारण, उनके मतानुसार, यह नहीं कि किसी धर्म-पुस्तक में इसकी आज्ञा या निषेध है। "झूठ न बोलो," "सच बोलो," "हिंसा न करो" इत्यादि आज्ञायें ईश्वरीय हैं, इसलिए माननी चाहिए—यह तत्त्व मिल को मान्य नहीं। पश्चिमी शास्त्रकारों ने इस अवज्ञा के कई कारण बताये हैं। पहले तो यह कि मनुष्य के जीवन की अनेकानेक अवस्थायें होने के कारण कोई भी ईश्वरीय ज्ञान इतने विस्तृत रूप में नहीं बता दिया जा सकता कि सब अवस्थाओं पर पूरी तौर से अधिकार करे। दूसरे, व्यक्ति के जीवन में बहुधा ऐसे अवसर अवश्य आते हैं जिनमें उसको ईश्वरीय वाणी या धार्मिक पुस्तकों में लिखे हुए नियम सत्य-पथ-प्रदर्शक प्रतीत नहीं होते और वे, परस्पर विरोध के कारण, उसे द्विविधा में डाल देते हैं। फिर ज्यों ज्यों मनुष्य के जीवन में उन्नति होती जाती है तथा उसका मानसिक, धार्मिक और सामाजिक जीवन विस्तृत होता जाता है त्यों त्यों नये नये प्रश्न उपस्थित होते जाते हैं, जिनका कोई सन्तोषजनक उत्तर ईश्वरीय पुस्तकों में नहीं पाया जा सकता। इसके अलावा यह भी आक्षेप हो सकता है कि यदि किसी बाह्य नियम के अनुसार हमने अपने जीवन को बिताया भी, परन्तु उस नियम की सहायता करने के लिए हमारे चित्त की कोई भी वृत्ति उन्नत न हुई, तो उससे मानसिक लाभ कुछ नहीं। यदि किसी ने ईश्वर के भय से हत्या न की, किन्तु उसका मन निर्दय ही बना रहा, तो इससे उसे यथार्थ लाभ क्या हुआ?

इसलिए मिल किसी कर्म की नीतिमत्ता का निर्णय करने में ईश्वरीय ज्ञान का सहारा नहीं लेते और न अन्तःकरण ही को नीतिमत्ता की कसौटी मानते हैं। अन्तःकरण पश्चिमी आचार-विज्ञानियों के मतानुसार अचूक पथ-प्रदर्शक नहीं। तो भी बहुतों का विचार है कि जब कोई कर्माकर्म की समस्या आ पड़े, तब अन्तःकरण की आज्ञा माननी चाहिए, क्योंकि ईश्वर की इच्छा का एक-मात्र प्रकाश करनेवाली यदि कोई इन्द्रिय मनुष्य-शरीर में है, तो वह अन्तःकरण ही है। परन्तु इनके सिद्धान्त पर यह

आक्षेप किया जाता है कि यदि अन्तःकरण द्वारा ईश्वरीय आज्ञा प्रकट होती है, तो क्या कारण है कि दो भिन्न भिन्न व्यक्तियों में ईश्वर की आज्ञा का प्रकाश एक सा नहीं होता? क्या वजह है कि एक मुसलमान बक़रीद के दिन गो-वध करने के पश्चात् वैसे ही सन्तोष और सुख का अनुभव करता है जैसे एक ब्राह्मण यज्ञ करने के पश्चात्। यदि अन्तःकरण से ईश्वर की आज्ञा प्रकट होती तो क़साई गोवध के समय ब्राह्मण ही के समान दुखी होता। इन प्रमाणों के द्वारा नीतिज्ञों ने यह नतीजा निकाला है कि अन्तःकरण ईश्वर की आज्ञा का प्रकाशक नहीं, किन्तु संस्कार और शिक्षा का फल है। जैसी जिसकी शिक्षा होती है, जैसे जिसके संस्कार होते हैं और जैसे विचार जिसके हृदय में डाले जाते हैं, वैसा ही उसका अन्तःकरण बन जाता है।

इन कारणों से मिल ने यह माना है कि संसार में वही काम अच्छे समझे जाने चाहिए जिनका प्रभाव अच्छा होता हो, तथा जो अनुभव से अच्छे साबित हुए हों। संसार पर जिनका बुरा प्रभाव पड़ता है, तथा जो अनुभव से बुरे साबित हो चुके हैं, उन्हें मनुष्य को छोड़ देना चाहिए।

मिल ने लिखा है कि जिन कामों से मनुष्य-मात्र के सुख की वृद्धि हो, और प्राणिमात्र का हित हो, वेही काम श्रेयस्कर हैं और उन्हींको सदाचार कहना चाहिए। इस मत को Utilitarianism या "उपयोगिता-वाद" कहते हैं।

उपयोगिता-वादियों का विचार है कि जिस समय आदमी कोई काम करने का विचार करे उस समय उसे देखना चाहिए कि क्या वह उस काम से अपना या संसार का कोई हित कर रहा है। यदि उसे जान पड़े कि उक्त कर्म से संसार का हित अधिक होता है और हानि कम (चाहे अपना सुख अधिक न हो) तो उसे कर्तव्य माने, नहीं तो उसे अकर्म तथा अकर्तव्य समझकर त्याग दे। कर्ता यदि अपने कर्म से संसार में सुख की वृद्धि कर रहा है तो वह शुभ कर्म करता है; नहीं तो अशुभ।

मिल ने यह भी माना है कि सुखों में परस्पर भेद होता है, एक सुख दूसरे सुख से 'योग्यता' (Quality) में बड़ा हो सकता है, चाहे वह मात्रा (Quantity) में अधिक न हो। उदाहरण के लिए इन्द्रिय-सुख से, मन का सुख 'योग्यता' में बड़ा है। जो मनुष्य इन्द्रिय-सुख में दिन भर लीन रहता है वह मिल के सिद्धान्तानुसार उतना सुखी नहीं है जितना वह मनुष्य जो मन के सुखों का, कभी कभी, उपभोग करता है। मिल ने लिखा है, "यह उपयोगिता-वाद के नियमों के बिलकुल विरुद्ध न होगा, यदि हम मान लें कि कुछ सुख और सुखों से अधिक इष्ट और श्रेयस्कर हैं। यह बड़ी ही भूल है कि हम और वस्तुओं का मूल्य निर्णय करने में मात्रा और योग्यता दोनों ही का विचार रक्खें, परन्तु सुख के नापने में केवल मात्रा ही पर ध्यान दें"।

यदि कोई यह प्रश्न करे कि सुख में 'मात्रा' और 'योग्यता' दोनों ही का भेद है, इसका क्या प्रमाण है? तो इस पर मिल का कहना है कि यह निःसन्देह सत्य है कि जो मानसिक और इन्द्रियों के सुखों से अवगत हैं और जो दोनों ही का उपभोग करने की योग्यता रखते हैं, वे उन्हीं सुखों को बेहतर समझते हैं जिनमें उनकी मानसिक शक्तियाँ काम में आती हैं। कोई भी मनुष्य पशु बनने को तैयार न होगा, चाहे उसे पूर्ण विश्वास दिला दिया जाय कि उसकी सब पाशविक इच्छायें पूर्ण होती रहेंगी। कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य मूर्ख होना न पसन्द करेगा, कोई भी शिक्षित मनुष्य अशिक्षित न होना चाहेगा, और कोई भी मनुष्य, जिसका अन्तःकरण और हृदय सद्भावों से पूर्ण है, नीच और निकम्मा बनना अच्छा न समझेगा—चाहे यह उन सबको पूरे तौर से विश्वास हो जाय कि

मूर्ख, अशिक्षित और नीच मनुष्य हमारी अपेक्षा अधिक सन्तुष्ट रहते हैं।

इसलिए उपयोगिता-वाद के अनुसार कर्म का उद्देश दुःख से निवृत्ति और सुख की वृद्धि है, जिसमें योग्यता (Quality) और मात्रा (Quantity) दोनों का ठीक ठीक विचार हो, और जहाँ दोनों में भेद हो। जो लोग दोनों ही का उपभोग कर चुके हैं, उन्हीं की अनुमति ठीक मानी जा सकती है।

अगर किसी देश को इस समय हित-वाद के सिद्धान्तों पर विचार करने की अधिक आवश्यकता है तो वह भारतवर्ष है। देश की सामाजिक दशा, अविद्या, अन्धविश्वास और दरिद्रता देखकर जिस भारत-वासी के रोंगटे खड़े होते हों उसे अपने कर्म की कसौटी सामाजिक सेवा ही माननी चाहिए। उसे यही देखना चाहिए कि क्या मैं अपने कर्म से देश की दुर्दशा में और देश-वासियों की शोचनीय अवस्था में कुछ कमी कर रहा हूँ? जो मनुष्य ऐसा काम कर रहा हो उसे उस कर्म के करने के लिए कैसी ही पवित्र पुस्तक में निषेध क्यों न मिले और इस कर्म के करने में कितने ही वृद्ध और प्रतिष्ठित मनुष्यों की आज्ञा का उल्लङ्घन क्यों न होता हो, उसे लोक-हित जानकर अवश्य करना चाहिए। पितृ-ऋण, धर्म-ऋण के अलावा समाज का ऋण, और आगामी सन्तति का ऋण भी मनुष्य पर होता है। हमें याद रखना चाहिए कि हम अपने कर्म ऐसे नियमों पर स्थिर करें कि भविष्यत् सन्तान यह न कह सके कि हमारे पिता या पितामह अशिक्षित और स्वार्थी थे।

माता-पिता ने शरीर की सेवा की है। इसलिए हम उनकी चाहे जितनी सेवा क्यों न करें, पर उनसे उऋण होना कठिन है। तब क्या जिस समाज ने हमारे लिए साहित्य, इतिहास, शास्त्र, काव्य आदि अमूल्य रत्न रख छोड़े हैं, जिनकी सहायता बिना हमारी मानसिक उन्नति होना असम्भव थी, और जिसका ऋण हम अपने जीवन में पद पद पर देखते हैं, हमारी सेवा की अधिकारिणी नहीं है? क्या हम उसके पूर्ण ऋणी नहीं हैं?

परमेश्वर ने मनुष्य के हृदय में दया किसलिए उत्पन्न की है? हम दूसरों के दुःख देखकर क्यों स्वभाव ही से दुखी होते हैं? केवल इसीलिए कि समाज-सेवा का भाव हमारे हृदय में जागृत है। तब बड़े आश्चर्य और शोक की बात होगी यदि भारतीय जन, जिनमें सेवा और दया का भाव स्वभाव से ही उन्नत होता है, इतने स्वार्थी हो जायँ कि दूसरों के दुःख देख कर वे जड़भरत बने बैठे रहें!

लोक-हित और समाज-हित के कर्म सदैव करना चाहिए। यदि इनके बीच में कोई बाधा उपस्थित हो तो उसे नाश कर देना चाहिए। भयङ्कर बाधा का नाश करते समय स्वयं नष्ट हो जाना सब प्रकार से स्तुत्य है।

शीतलासहाय

शैव्या का विलाप।

उदासी घोर निश में छा रही थी; पवन भी काँपती धर्रा रही थी।
विकल थी जाह्नवी की वारि-धारा; पटककर सिर गिराती थी कगारा॥ १॥
घटा घनघोर नभ पर घिर रही थी; बिलखती चञ्चला भी फिर रही थी।
न थे वे बूँद आँसू गिर रहे थे—; कलेजे बादलों के चिर रहे थे॥ २॥
कहीं धक धक चितायें जल रही थीं; धुआँ मुँह से उगल बेकल रही थीं।
कहीं शव अधजला कोई पड़ा था; निठुरता काल की दिखला रहा था॥ ३॥

खड़ी शैव्या वहीं पर रो रही थी ; फटी दो-टूक छाती हो रही थी।
कलेजा हाय! मुँह को आ रहा था ; भरा था दर्द वह, तड़पा रहा था ॥ ४ ॥
"छुटा घर-बार प्राणाधार छूटे ; रहे तुम एक कुल-आधार छूटे।
तुम्हारा देखकर मुख जी रही थी ; नहीं तो कौन था सुख, जी रही थी ॥ ५ ॥
छुटा सब कुछ छुटे हा! लाल तुम भी ; लुटा सब कुछ लुटे हा! लाल तुम भी।
अरे वह है कहाँ पर सर्प बसता ; मुझे भी क्यों नहीं है नीच डसता ॥ ६ ॥
लगाये लाल को छाती चलूँ मैं ; लिये यह साथही थाती चलूँ मैं।
जिसे मैं जान ही सा जानती थी ; जिसे मैं देखकर सुख मानती थी ॥ ७ ॥
कहाँ है हाय! अब वह प्राण मेरा ; निराशा में विपद् में त्राण मेरा।
कहाँ हो चल दिये तुम हाय छौना ; खिलाऊँगी किसे मेरे खिलौना ॥ ८ ॥
किसीको दुख नहीं मैंने दिया है ; नहीं निज शीश पर पातक लिया है।
रहा है धर्म पर विश्वास मेरा ; हुआ क्यों हाय सत्यानाश मेरा ॥ ९ ॥
विधाता! हाय क्या यह पुण्य-फल है ; जगत् में वामता तेरी प्रबल है।
हृदय-धन-प्राणपति-पद-पद्म छूटे ; छुटी स्वाधीनता सुख-सद्म छूटे ॥ १० ॥
नहीं फिर भी हुआ सन्तोष तुझको ; दिखाता रोष पर है रोष मुझको।
परम-धन पुत्र था सर्वस्व मेरा ; उसे हर ले गया छल से लुटेरा ॥ ११ ॥
दया कुछ काल के जी में न आई ; कली मुरझा गई खिलने न पाई।
कमल-मुख पर बने मम नेत्र अलि थे ; मधुर मुसकान पर तनु प्राण बलि थे ॥ १२ ॥
उसीका एक मुझको आसरा था ; नहीं तो, और जग में क्या धरा था।
कहाँ बेटा चले खेले न खाया ; नृपति-गृह जन्म ले सुख कौन पाया ॥ १३ ॥
तुम्हें खलता रहा दुर्भाग्य मेरा ; रहा डाले सदा दुर्दैव डेरा।
अभी तो दूध भी छूटा नहीं था ; नज़र भर देख सुख लूटा नहीं था ॥ १४ ॥
परम कोमल अभी थे अङ्ग बेटा ; गये सुर-लोक किसके सङ्ग बेटा।
अभी कल तक तुम्हें चलना सिखाया ; कहाँ से यह पराक्रम आज आया ॥ १५ ॥
महायात्रा अचानक हाय कर दी ; तजा सब मोह माँ असहाय कर दी।
उठो बेटा हृदय में मैं छिपालूँ ; कलेजे से तुम्हें अपने लगा लूँ ॥ १६ ॥
किसीका वार फिर होने न दूँगी ; मिलन दुश्वार फिर होने न दूँगी।
हृदय की शक्ति थे तुम जीवनाशा ; न देखी दुर्दिनों में भी निराशा ॥ १७ ॥
वही तुम छोड़कर अब जा रहे हो ; उठो देखो कि क्या दिखला रहे हो।
विपद-निशा का करो बेटा सबेरा ; नहीं अब धैर्य्य धरता चित्त मेरा ॥ १८ ॥
मरूँ कैसे हृदय का भार टालूँ ; हरे! यह प्राण मैं कैसे निकालूँ ?
रहे अधिकार में कब प्राणही हैं ; पराये हाथ हम तो बिक चुकी हैं ॥ १९ ॥
करेगा कौन अब उद्धार बेटा! करूँगी हाय किसका प्यार बेटा।
बताते आयु चिर तेरी गणक थे ; न समझे भाग्य क्या मेरा गणक थे ॥ २० ॥
बताते थे बली भूपाल होगा ; यशस्वी लोक में यह लाल होगा।
कठिन कुसमय कुअवसर लाल रूठे ; हरे क्या हो गये सब शास्त्र झूठे ॥ २१ ॥

मुकुट के योग्य सिर भू पर पड़ा है ; विधाता वाम तू निर्दय बड़ा है"।
यही ध्वनि सुर-धुनी की धार में थी ; प्रलय सी गुप्त हाहाकार में थी ॥ २२ ॥
खड़े भूपाल भी कुछ दूर पर थे ; मगर इस हाल से वह बे-ख़बर थे।
सुना रोना बढ़े थामे कलेजा ; हुआ शव देख कर टुकड़े कलेजा ॥ २३ ॥
उन्हें पहिचान रानी रो उठी फिर ; करुण-रस-वारि-वर्षा हो उठी फिर।
"कहाँ थे नाथ तुम हा लुट गई मैं ; कुँवर से हाय अपने छुट गई मैं ॥ २४ ॥
न आये काम देवी देवता कुछ ; न रक्षा पुण्य-बलही कर सका कुछ।"
नृपति को बोलना यद्यपि कठिन था ; हुआ मुख प्रांत-दीपक सा मलिन था ॥ २५ ॥
हृदय फटता उछलता था कलेजा ; न जाने कौन मलता था कलेजा।
बड़ी कठिनाइयों से धैर्य धर के ; कड़ा अपना हृदय भर पूर करके ॥ २६ ॥
कहा, "रानी किसी को दोष मत दो ; समझ सब दोष अपने भाग्य का लो।
चुकाओ कर क्रिया कर लो सबेरे ; सबेरा हो रहा चल दो सबेरे" ॥ २७ ॥
चुकाऊँ कर कहाँ से पास क्या है ; कफ़न भी तो नहीं मुझको जुड़ा है।
मिला जब कुछ नहीं तो चीर चीरा ; छिपा लाई उसीमें लाल हीरा ॥ २८ ॥
रहा क्या शेष है सर्वस्व खोया ; विधाता ने विषम विष-बीज बोया।
अगर दूँ चीर तन मेरा खुलेगा ; कफ़न फाड़ूँ, न बालक ढक सकेगा" ॥ २९ ॥
नृपति बोले बड़ी गम्भीरता से ; हृदय दाबे रहे निज धीरता से।
"बिना कर के क्रिया कैसे करोगी ; अलग क्या धर्म-पथ से पद धरोगी ॥ ३० ॥
जिसे है राज्य-सुख तजकर निबाहा ; उठाकर क्लेश जीवन भर निबाहा।
उसे अब वस्त्र पर यों मत गँवाओ ; बढ़ाओ हाथ, लाओ चीर लाओ ॥ ३१ ॥
जगत् में धर्म-झण्डा गाड़ दो तुम ; न हो कुछ तो कफ़न ही फाड़ दो तुम।"
बढ़ाया हाथ रानी ने कफ़न पर ; दिखाई रोशनी सी दी गगन पर ॥ ३२ ॥
पवन कुछ वेग से लहरा उठी फिर ; जयध्वनि की घटा घहरा उठी फिर।
कमल-लोचन कमल-तनु कमल-कर से ; पकड़ कर हाथ बोले नीर-धर से ॥ ३३ ॥
अहा ! है धन्य रानी हो चुका बस ; तुम्हारा पुत्र अब तक सो चुका बस।
निबाहा धर्म तुमने धीरता से ; हुआ रवि-वंश उज्ज्वल वीरता से ॥ ३४ ॥
उठा बालक अचानक मुसकुराता ; कहा ले पुष्प पूजा-हेतु माता।
कहा, बेटा करो पूजा खड़े हैं ; तुम्हारे पूज्य, पूज्यों में बड़े हैं ॥ ३५ ॥
पड़े दम्पति-चरण में पुत्र को ले ; फलें मन-कामना भगवान बोले।
लगे सुर सुयश गाने सुर मिला के,
सुमन बरसे 'सनेही' सुर-लता के ॥ ३६ ॥

सनेही

बाबू अरविन्द घोष।

बाबू अरविन्द घोष सरस्वती के वर पुत्र हैं। उनके लेखों से प्रकट है कि उनकी विद्वत्ता अथाह नहीं तो खूब गहरी ज़रूर है। आपकी विद्या का परिचय पहले भी मिला था। पर जब से आपका सामयिक पत्र "आर्य्य" अँगरेज़ी में निकलने लगा है तब से तो साक्षर सज्जनों के हृदयों पर आपकी विद्वत्ता और शास्त्रज्ञता का सिक्का सा जम गया है। बड़े ही गहन विचारों से पूर्ण आपके तत्त्वविद्याविषयक लेख पढ़कर विचारशील पण्डित भी आश्चर्य-चकित हो उठते हैं। आप ऊँचे दरजे के तत्त्वज्ञानी हैं। इसीसे आपका संक्षिप्त परिचय प्रकाशित करना सरस्वती अपना कर्तव्य समझती है।

अरविन्द के पिता का नाम कृष्णदास घोष था। १८७२ ईसवी के अगस्त महीने में अरविन्द का जन्म कलकत्ते में हुआ। आपके पिता कलकत्ते में पहले डाक्टरी करते थे। पीछे से वे विलायत गये। वहाँ चिकित्साशास्त्र का यथाविधि अध्ययन करके वे भारत के चिकित्सा-विभाग अर्थात् आई० एम० एस० में प्रविष्ट हुए। कृष्णदास के ससुर बाबू राजनारायण वसु प्रसिद्ध लेखक और देशभक्त थे। वे अपने दामाद कृष्णदास को स्वदेशी रङ्ग में रँगना चाहते थे। पर वे अपने इस प्रयत्न में विफल-मनोरथ हुए। कृष्णदास पूरे साहब बनकर स्वदेश को लौटे। अरविन्द को भी उन्होंने अपने से एक अङ्गुल बढ़कर नहीं तो अपना समकक्ष बनाना अपना बहुत ज़रूरी कर्तव्य समझा। कलकत्ते का कोई स्कूल उन्हें पसन्द न आया। इससे, अरविन्द को उन्होंने दारजिलिङ्ग भेजकर वहाँ के सेंटपाल स्कूल में भरती कराया। उन्होंने चाहा कि अरविन्द लड़कपन ही से अँगरेज़ शिक्षा, दीक्षा और रङ्ग-ढङ्ग का सबक़ सीखें। ये सब बातें इस देश में रहकर अच्छी तरह सीखना सम्भव न था। इस कारण पिता ने अरविन्द को सात ही वर्ष की उम्र में विलायत भेज दिया।

दस-ग्यारह वर्ष तक अरविन्द ने विलायत में शिक्षा प्राप्त की। अँगरेज़ी भाषा, अँगरेज़ी ही सभ्यता और अँगरेज़ी ही वेश-भूषा के सागर में वे वहाँ आचूड़ान्त निमग्न रहे। अरविन्द बड़े प्रतिभाशाली और बड़े कुशाग्र-बुद्धि हैं। उन्होंने शिक्षा-ग्रहण में अप्रतिम उन्नति की। अपने साथी तद्देशवासी छात्रों से भी वे आगे ही रहे। अँगरेज़ी तो उनकी मातृभाषा ही सी हो गई; बेचारी बँगला भूल सी गई। पहले तो उन्होंने मैंचेस्टर में निज के तौर पर शिक्षा-ग्रहण की। फिर आपने लन्दन के सेन्ट-पाल नामक शिक्षालय में नाम लिखाया। तब तक भी आपको बँगला सीखने की ज़रूरत या मौक़ा नहीं मिला। जब आप आई० सी० एस० की परीक्षा देने की तैयारी करने लगे तब कहीं आपने थोड़ी बहुत बँगला भाषा सीखी। आई० सी० एस० उस परीक्षा को कहते हैं जिसे पास करने पर हिन्दुस्तान में ऊँचे पदों की सरकारी मुलाज़िमत मिलती है। इस पद पर जो लोग प्रतिष्ठित होते हैं वही धीरे धीरे कलेक्टर, कमिश्नर और लफ्टिनेंट गवर्नर के पद प्राप्त करने के अधिकारी समझे जाते हैं।

अरविन्द के पिता को आमदनी तो बहुत थी, पर वे मितव्ययी न थे। उनमें औदार्य्य की मात्रा विशेष थी। इससे उन्हें धन की सदा ही कमी बनी रहती थी। फल यह होता था कि अरविन्द के ख़र्च के लिए वे काफ़ी रुपया विलायत न भेज सकते थे। इससे अरविन्द को कभी कभी बड़े कष्ट से अपने दिन काटने पड़ते थे। पर बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ झेलकर भी उन्होंने अपना अध्ययन जारी रक्खा और आई० सी० एस० की परीक्षा के लिए ऐसी तैयारी की कि पास हो गये और पास हुए छात्रों

में आपका दसवाँ नम्बर रहा। किन्तु एक कमी आपमें पाई गई। घोड़े पर सवारी करने में आप कच्चे निकले। इस कारण आप फेल समझे गये और जिस निमित्त आपने यह परीक्षा दी थी वह सफल न हुआ। उस समय आपकी उम्र सिर्फ़ १८ या १९ वर्ष की थी। इतनी थोड़ी उम्र में, अँगरेज़ी के सदृश क्लिष्ट और विदेशी भाषा में, सैकड़ों अँगरेज़ छात्रों के साथ परीक्षा देकर दसवें नम्बर पर पास होना अरविन्द की तीव्रबुद्धि का ज्वलन्त प्रमाण है।

अरविन्द ने अँगरेज़ी भाषा में ही विशेष विज्ञता नहीं प्राप्त की थी, ग्रीक के सदृश पुरानी भाषा सीखने में भी आपने बड़ी योग्यता प्रदर्शित की। योग्यता क्या प्रदर्शित की अपने साथी अन्य सभी परीक्ष्य छात्रों को मात कर दिया। इस विषय में आपका नम्बर, पास हुए छात्रों में, पहला रहा।

आई० सी० एस० की परीक्षा पास कर लेने पर भी जब अरविन्द को जगह न मिली तब आपने केम्ब्रिज के किंग्ज़ कालेज में प्रवेश किया। वहाँ भी आपने बड़ी नामवरी के साथ अपना अध्ययन-काल समाप्त किया। १८९२ में आपने वहाँ से बी० ए० की उपाधि प्राप्त की।

उस समय बरौदे के अधीश, सर सयाजीराव गायकवाड़, विलायत में थे। अरविन्द बाबू उनसे मिले। गायकवाड़ अरविन्द बाबू की विद्या-बुद्धि देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। भारत को लौट आने पर महाराजा गायकवाड़ ने अरविन्द बाबू को याद किया और अच्छे वेतन पर अपना सहकारी कार्य्यकर्त्ता बनाया। वहाँ आपने कई पदों का उपभोग किया। कुछ दिन आप महाराजा गायकवाड़ के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे, कुछ दिन दीवान के दफ़्तर में आपने काम किया, कुछ दिन ख़ानगी दफ़्तर में भी आपने बड़ी योग्यता से कार्य्य-निर्वाह किया। पीछे से आप बरोदा-कालेज में वाइस प्रिंसिपल, अर्थात् प्रधानाध्यापक के सहकारी, नियत हुए। इस पद पर रहकर अरविन्द बाबू ने अपनी विद्वत्ता और शिक्षण-कुशलता से सभी को मोह लिया। वेतन आपका कोई ७५०) रुपये मासिक हो गया। २१ वर्ष की उम्र में आप बरोदा गये और १२ वर्ष तक वहाँ रहकर, वङ्ग-भङ्ग के कारण उत्पन्न हुई राजनैतिक चर्चा के समय, नौकरी छोड़ कलकत्ते चले गये।

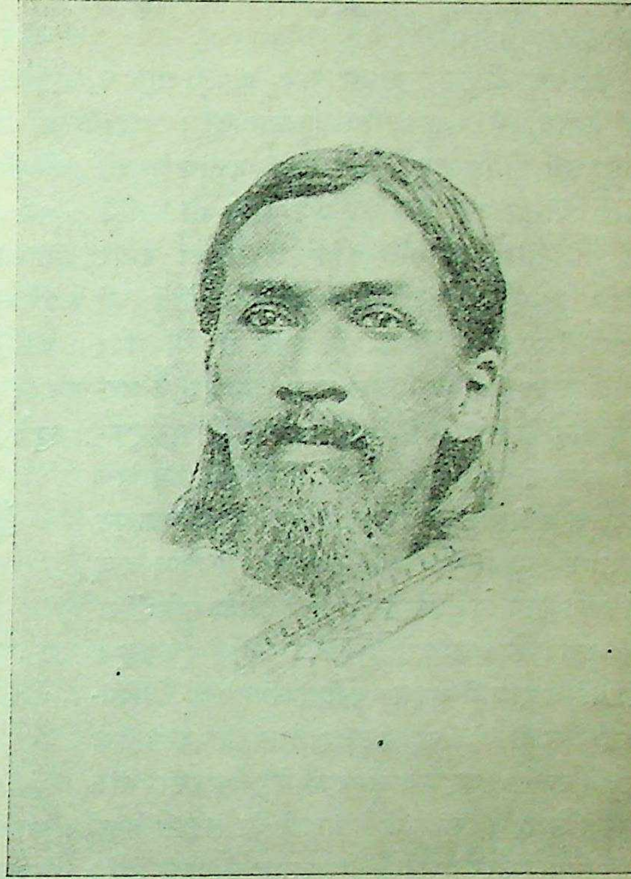

बाबू अरविन्द घोष।

कलकत्ते जाने पर उनके ऊपर जो जो सङ्कट आये उनके उल्लेख की यहाँ विशेष आवश्यकता नहीं, क्योंकि समाचारपत्र-पाठी सज्जनों से वे बातें छिपी नहीं। अन्त में आगत आपदाओं से परित्राण पाकर आप पाँडीचरी चले गये। कई साल से आप वहीं निवास करते हैं और पूर्वनिर्दिष्ट "आर्य्य" नामक सामयिक पत्र का स्वयं सम्पादन करके उसे प्रकाशित करते हैं।

कलकत्ते में जिस समय आप आपत्ति-ग्रस्त थे उस समय एक घटना बड़ी विचित्र हुई। आई० सी० एस० की जिस परीक्षा में आप उत्तीर्ण हुए थे उसीमें बीचक्राफ़्ट नाम का एक छात्र भी उत्तीर्ण हुआ था। ग्रीक भाषा में अरविन्द ने पहला नम्बर पाया था और बीचक्राफ़्ट ने दूसरा। घोड़े की सवारी में फ़ेल होने के कारण आप तो रह गये, बीचक्राफ़्ट निकल गये। जिस समय कलकत्ते में अरविन्द बाबू को सरकार ने गिरफ़्तार करके उन पर मुक़द्दमा चलाया उस समय वही बीचक्राफ़्ट महाशय कलकत्ते में प्रेसीडेंसी मैजिस्ट्रेट थे। इन्हीं बीचक्राफ़्ट के सामने, मुलज़िम की हैसियत से, अरविन्द बाबू को खड़ा होना पड़ा था। "दैवी विचित्रा गतिः"।

बड़ौदे से कलकत्ते जाने पर अरविन्द बाबू ने राजनैतिक क्षेत्र में क़दम रक्खा। आप बाबू विपिनचन्द्र पाल के "वन्दे मातरम्" नामक पत्र में लेख लिखने लगे। यह पत्र अँगरेज़ी में निकलता था। आपके लेखों ने इस पत्र के प्रचार को सहसा बहुत बढ़ा दिया। लोग उसे बड़े ही उत्साह से पढ़ने लगे। अरविन्द बाबू की विद्वत्ता, लेखनशैली, राजनीतिज्ञता पर लोग मुग्ध हो गये। उनकी लेखनी की बदौलत यह पत्र कुछ समय तक बड़ी शान से निकला। पीछे इसे अकाल में ही कालग्रस्त होना पड़ा। अरविन्द बाबू की राजनीति ने जिस तरह "वन्दे मातरम्" को बहुत ऊँचे स्थान पर पहुँचा दिया था उसी तरह उनके तत्त्वज्ञान और दार्शनिक विचारों ने उनके "आर्य्य" को विद्वानों के हृदय में स्थान दिलाया है।

जो अरविन्द बाबू किसी समय पूरे साहब थे वे अब पूरे तपस्वी बन गये हैं। वेश-भूषा उनकी बिलकुल ही बदल गई है। हृदय उनका पहले भी यद्यपि कोमल, उदार और ऋषि-मुनियों का जैसा था, पर अब तो उनके बाहरी व्यवहार और वस्त्राच्छादन आदि भी तपस्वियों के जैसे हो गये हैं। सुनते हैं, आपने ईश्वर-चिन्तन और समाधि-साधन में भी विशेष सफलता प्राप्त कर ली है। किसी किसीका अनुमान है कि उन्होंने ब्रह्मानन्द का अनुभव भी किया है। अपने गुरु, एक योगी महात्मा, के आदेश से, पहले ही प्रयत्न में, आपने अपने मन का चाञ्चल्य दूर करके, उसे शून्यता से परिपूर्ण कर दिया था। यह कितना कठिन काम है, इसे वही जान सकते हैं जो इस पथ के पथिक हो चुके हैं।

बँगला की "ब्रजबुलि" और "वृन्दावनी भाषा"।

बँगला भाषा के कुछ प्राचीन और कुछ अर्वाचीन कवियों ने एक प्रकार की मिश्रित हिन्दीभाषा में कविता की है, जिसका नाम बँगला समालोचकों ने ब्रजबुलि (उच्चारण—ब्रोजोबुलि) रक्खा है। इस ब्रजबुलि के सम्बन्ध में स्वयं बङ्गालियों को यह भ्रम है कि यह ब्रजमण्डल की ब्रजभाषा है। इसलिए "बङ्ग भाषा ओ साहित्य" नामक बँगला-ग्रन्थ में लेखक ने सूचना दी है कि "एई 'ब्रजबुलि' पवित्र ब्रजभूमिर भाषा नहे। ए सम्बन्धे एखनओ अनेकेर भूल धारणा आछे"—पृ० २६१। इसका अर्थ यह है कि "यह 'ब्रजबुलि' पवित्र ब्रजभूमि की भाषा नहीं है। इसके सम्बन्ध में अभी तक कुछ लोगों को

भ्रान्ति है।" यह 'व्रजबुलि' यथार्थ में कौनसी भाषा है, इसके सम्बन्ध में पूर्वोक्त बँगला-ग्रन्थ के लेखक बाबू दिनेशचन्द्र सेन उसी जगह आगे लिखते हैं कि " 'व्रजबुलि' मैथिल भाषार अनुकरण," अर्थात् 'व्रजबुलि' मैथिल भाषा का अनुकरण है। 'व्रजबुलि' के स्थान और विस्तार के सम्बन्ध में श्रीज्ञानेन्द्रमोहन-दासरचित "बाँगला भाषार अभिधान" नामक कोश में यह विज्ञप्ति है—"व्रजबुलि—'वृज्जि' नामक मिथिलार क्षत्रिय-वंशेर भाषा। बिहारी भाषार एकटि प्रधान शाखा, इहा मिथिलार १,०३,८७,८९८ लोकेर भाषा, मैथिलीर अनुकरणे ओ बाँगलार मिश्रणे उत्पन्न, विद्यापति एई भाषार सुप्रसिद्ध कवि"।

इन प्रमाणों से जान पड़ता है कि यद्यपि 'व्रजबुलि' व्रजभाषा नहीं है तथापि वह एक प्रकार की मिश्रित हिन्दी अवश्य है। बङ्गालियों के मुँह से 'व्रजबुलि' का नाम सुनकर हम लोगों को भी जो 'व्रजभाषा' का भ्रम हो जाया करता था वह अब प्रायः दूर हो गया। तथापि इस बात का सन्देह अवश्य है कि यह एक करोड़ से ऊपर लोगों की बोली बिहार में कहीं बोली जाती है या नहीं। डाकृर सर ग्रियर्सन ने बिहारी के अन्तर्गत जो पाँच भाषायें निश्चित की हैं उनमें बङ्गालियों की यह 'बुलि' नहीं है। कदाचित् कोई बिहारी सज्जन इस विषय पर अधिक लिख सकेंगे। फिर यह भी नहीं जान पड़ता कि इस भाषा का 'व्रजबुलि' नाम स्वयं इसके बोलनेवालों का रक्खा हुआ है या बङ्गालियों ने उन पर मढ़ दिया है। जो हो, यह विषय अधिक अनुसन्धान के योग्य है।

बङ्गाली लेखक और समालोचक विद्यापति, चण्डीदास तथा दो चार और प्राचीन कवियों को इस भाषा के प्रवर्त्तक मानते हैं। उनके मतानुसार इस भाषा की बानगी यह है—

१—मालति मन जनु मानह आने।
तोहरा सौं हम जे किछु भाखल
सेह वचन परमाने॥
सभ परितेजि तोहि हम भजलहुँ
ताहि करतके भङ्गे।
जौं दुर्जन जन कोटि जतन कर
तैओ जनम भरि सङ्गे॥
—विद्यापति।

२—राधार चरित देखि सेई सखी
चलिला राधार काछे।
सुधामुखी धनि हयेछे मानिनी
अतिकोप मने आछे॥
कहे एक सखी शुन हे वचन
यदि वा मानेते राधा।
तबे किवा सुख उठे किवा दुख
से धनि तेजिया किवा॥
चलो मोरा जाव राधा मानाइब
करिया ताहार सेवा॥
—चण्डीदास

इन दोनों उदाहरणों में से विद्यापति की रचना में तो बँगला का प्रायः कुछ भी मेल नहीं है, पर दूसरे उदाहरण में बँगला के साथ मैथिली भाषा का मिश्रण स्पष्ट है। जान पड़ता है कि जिस बँगला में हिन्दी अथवा हिन्दी की किसी शाखा का थोड़ा बहुत मेल होता है उसे बङ्गाली लोग 'व्रजबुलि' कहते हैं और इसी आधार पर, अधिक भ्रम के कारण, विद्यापति की बिहारी भाषा को खींच-खाँच कर 'व्रजबुलि' के नाम से अपनी भाषा समझ रहे हैं।

बँगला की बाल्यावस्था में उसकी वैष्णव-(पदावली) रचना पर हिन्दी-कविता की भाषा का बहुत प्रभाव पड़ा है। स्वयं बङ्गाली लोग इस बात को स्वीकार करते हैं। चण्डीदास की पदावली के सम्पादक बाबू रमणीमोहन मल्लिक, एम० आर० ए० एस०, लिखते हैं कि "तत्काले बङ्ग-भाषा हिन्दी ओ प्राकृतभाषार संमिश्रणे बड़ई सुललित ओ श्रुति-सुखकर छिल"। बाबू दिनेशचन्द्र सेन लिखते

हैं कि "एइ युगेर साहित्य हिन्दी-उपकरणे विशेष रूप पुष्ट"। इस मिश्रित भाषा का नाम बङ्गाली समालोचकों ने "वृन्दावनी बुलि" रक्खा है। यथार्थ में सच्ची 'व्रजबुलि' होनी चाहिए। "चैतन्य-चरितामृत" में इस "वृन्दावनी भाषा" के उदाहरण पाये जाते हैं—

प्रयाग पर्य्यन्त दुहें तोमा सङ्ग जाब ।
तोमार चरण-संग पुनः काँहा पाब ॥
म्लेच्छदेश केह काँहा करये उत्पात ।
भट्टाचार्य पण्डित कहते ना जानेन बात ॥
—बङ्गभाषा ओ साहित्य, पृ० ३९०

सत्यराम कवि ने तो बिल्कुल हिन्दी में रचना ही कर डाली है, जिसका एक उदाहरण यह है—

"कवि सत्य कहे, मन थिर रहो,
जिनि दिहाँ दन्त, सो देगा चना"।
—बङ्ग-भाषा ओ साहित्य।

इस ग्रन्थ से यह भी जाना जाता है कि केवल लिखने ही में नहीं किन्तु बोलने में भी वैष्णव-समाज के लोग "वृन्दावनी भाषा" (यथार्थ में "व्रजभाषा") बोलते थे।

जान पड़ता है कि व्रजभाषा का नाम अधिक प्रचलित होने और बङ्गालियों के साहित्य पर उसका अधिक प्रभाव पड़ने के कारण उन लोगों में पहले 'व्रजबुलि' और फिर 'वृन्दावनी बुलि' का नाम प्रचलित हुआ। इस विषय में आश्चर्य की बात यह है कि बङ्गालियों ने बिहार ही में 'व्रजबुलि' की कल्पना कर ली। सम्भव है कि यह 'व्रजबुलि' उस समय की भाषा हो जब बँगला मैथिली से पृथक् न हुई हो।

बँगला पर हिन्दी का इतना प्रभाव होने पर भी बङ्गाली लोगों को उसका मिश्रण कदाचित् प्रिय नहीं जान पड़ता। दिनेश बाबू लिखते हैं कि "वृन्दावनी भाषा तत दूर मिष्ट नाई। × × × वृन्दावनी भाषार प्रभाव काले गुप्त हईल; × × × किन्तु हिन्दीर अधिकार अन्ते ओ वङ्ग-साहित्य-क्षेत्रे अन्य त्रिविध शक्तिर प्रति-द्वन्द्विता रहिया गेल। ताहा एइ—(१) उर्दू (२) खाँटी बाँगाला (३) संस्कृत"। जो हो, हिन्दी का प्रभाव स्वीकृत तो किया जाता है; पर बड़े ही खेद का विषय है बङ्गाली लोगों ने कदाचित् अपने किसी भी साहित्य-सम्मेलन में हिन्दी का राष्ट्र-भाषा होना स्वीकृत नहीं किया है। महाराष्ट्र, गुजराती और सुदूर के मदरासी तो हिन्दी की राष्ट्रीयता में सन्देह न करें और हमारे 'व्रजबुलि' से आनन्द प्राप्त करनेवाले अधिकांश बङ्गाली भाई हिन्दी को राष्ट्र-भाषा मानने में उदासीनता से मौन धारण किये रहें!

कामताप्रसाद गुरु

नास्तिक का तर्क।

बहुत से मनुष्य मानते हैं कि ईश्वर है और बहुत से मनुष्यों ने सुना है कि ईश्वर है। हमने भी कुछ लोगों को कहते सुना है कि ईश्वर है। रीति का प्रभाव मति को मन्द कर देता है। बारम्बार कहे जाने और सुनने की परिपाटी से बिना सन्देह प्रायः समग्र संसार ऐश्वरी सत्ता पर विश्वास रखने के लिए उद्यत है। बहुमत होने के कारण माना कि ईश्वर है। तब प्रश्न यह उठता है कि वह कैसा है? किसी भी आस्तिक का साधारणतः यह उत्तर होगा कि वह कर्ता, धर्ता, संहर्ता, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त-स्वभाव, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निराकार, निर्विकार, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, चैतन्य, आनन्दमय और दूसरे तुल्य-गुणवाला है। अर्थात् ईश्वर में कुछ गुण ऐसे हैं जो मनुष्य में बिलकुल नहीं और कई ऐसे हैं जो मनुष्य में अणुरूप में पाये जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जितने गुण परमेश्वर में माने गये हैं उनमें से कुछ तो मनुष्य में अल्पपरिमाण में विद्यमान हैं, और कुछ बिलकुल नहीं। इसीलिए

ईश्वर सब गुणों का आश्रय है। पर इस आश्रय का न तो हमारे मन में कोई चित्र ही है और न उसका कोई अर्थ ही स्पष्ट होता है। क्योंकि गुण मानकर आश्रय को भी कल्पित कर लेना कल्पना की ही प्रबल गति की सूचना देता है। ईश्वर अवश्य गुण का समुदाय है। ईश्वर विचारमात्र है और ईश्वर के गुण भी विचार हैं। ईश्वर और उसके गुण ऐसी कल्पित समष्टि है जिसका ज्ञान मनुष्य को इन्द्रियों द्वारा नहीं हो सकता। तत्त्ववेत्ता कहता है कि ईश्वर धार्मिक जगत् का "परिग्रह" है। भगवान् पतञ्जलि कहते हैं कि "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।" वेदवाक्य, स्थान स्थान में, ईश्वर की भावना कर रहे हैं। मनुष्य कहते हैं, योगद्वारा समाधि लगाने से योगी को भगवान् का स्वरूप दिखलाई पड़ता है। तब क्या ईश्वर सचमुच ही है?

सुनते हैं, योग बिना ईश्वर दिखलाई नहीं पड़ सकता। योगी ही योग द्वारा ईश्वर को जानने के लिए समर्थ है। योग की अन्तिम अवस्था समाधि है। समाधि भी तभी सिद्ध हो सकती है जब शरीर हो। समाधि के लिए सदेहता की आवश्यकता है। तब प्रश्न यह उठता है कि यदि ईश्वर निरवयव है तो सावयव से दृश्य कैसे? यदि वह निराकार है तो उसके दर्शन के लिए सदेहता की आवश्यकता क्यों? सम्भव है कि कोई कह दे कि समाधि-अवस्था में जीवात्मा शरीर से पृथक् हो जाता है। अच्छा, माना कि वह दर्शन-काल में शरीर से पृथक् हो गया। तब पार्थक्य पर शरीर की स्वस्थावस्था कैसे बनी रही? अथवा पृथक् होकर उसने काया में प्रवेश कैसे कर लिया? यदि जीवात्मा वैसा निरवयव, निरपेक्ष सत्त्व है जैसा कि भगवद्गीता में बतलाया गया है तो उसका कलेवर के साथ सम्बन्ध कैसे हो गया? योगी को भी अपनी काया की चिन्ता बनी रहती है, क्योंकि समाधि-काल में शरीर-रक्षा के लिए वह बहुधा शिष्यों को विशेष आज्ञा दे दिया करता है। इसके लिए शङ्कराचार्य का उदाहरण प्रसिद्ध है। यदि भगवद्दर्शन सारे आनन्दों में श्रेष्ठ है और यदि योगी का आत्मा शरीर से पृथक् होकर उसमें लय हो जाता है तो अवश्य ही यह महती त्रुटि है कि योगी उस आनन्द को छोड़ इस अहं-जीविका-पूर्ण, कलह-शील, क्लेशमय संसार में पुनरागमन करे। जब भगवद्दर्शन विदेहावस्था में हो सकते हैं तब शरीर की चिन्ता करना भारी भ्रम नहीं, तो क्या है?

कोई कोई कहते हैं कि हम परमेश्वर को इसलिए मानते हैं कि वह धर्म-जगत् का "परिग्रह" है। परन्तु निसर्गतः प्रश्न यह उठेगा कि धर्म ही की आवश्यकता क्या है? धर्म को प्रधान या आवश्यक मानकर एक अद्यावधि अदृष्ट सत्ता की कल्पना करना क्या चिन्त्य विषय नहीं है?

अब कुछ देर के लिए ईश्वर के गुणों पर दृष्टिपात करें और देखें कि क्या अर्थ निकलता है। भगवद्गीता में लिखा है कि जीवात्मा को न अग्नि जला सकता है, न पानी गीला कर सकता है और न वायु सुखा सकता है। अर्थात् जीवात्मा अपने मूल-रूप में पञ्चभूतों के प्रभाव से मुक्त है। उस पर पञ्चभूतों का "असर" नहीं पड़ता। यदि उस पर पञ्चभूतों का "असर" पड़ने लगे तो वह अग्नि में जल जाय, पानी से आर्द्र हो जाय, किंबहुना गीतोक्त गुण मिथ्या हो जायँ। इसलिए उसे पञ्चभूतों का बोध नहीं हो सकता है, क्योंकि बोध, जिसे हम शरीरी "बोध" कहते हैं, निःशरीर सत्त्व में सम्भव नहीं। इसलिए जीवात्मा को अपने "परिवेष्टन" का बोध नहीं; वह ज्ञानशून्य है। क्योंकि जलने का जैसा ज्ञान हमको काया द्वारा होता है वैसा जीवात्मा में मानना बुद्धि-विरुद्ध लक्षित होगा, और गीता के माननीय सिद्धान्तों के विरुद्ध भी होगा। जिसका शरीर हमारा जैसा नहीं है उसका ज्ञान हमारा जैसा नहीं हो सकता। ईश्वर जीवात्मा से भी सूक्ष्म है। उसे तत्त्वज्ञ, निराकार, निर्विकार, निष्काय, निरवयव कहते हैं। जब ऐसा है तब ईश्वर भी ज्ञान से वञ्चित है; उसे जगत् का ज्ञान नहीं। फिर ईश्वर सर्वज्ञ कैसे हुआ? उसे कवि कैसे सिद्ध कर सकता है कि "आनन-रहित सकल-रस-भोगी। विन वाणी वक्ता वर योगी।" उपनिषत्कार भी कैसे भरोसा दिला सकता है कि "अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः"। क्या वास्तव में जिसे हम सर्वज्ञ प्रभु समझ रहे थे वह सर्वज्ञ नहीं?

मनुष्य अल्पज्ञ है और अपनी अल्पज्ञता के कारण वह विश्व के एक अल्पतम खण्ड की व्यवस्था कर सकता है। परन्तु जो समस्त विश्व की रचना करे और उसमें व्यवस्था रक्खे, उसे तो सर्वज्ञ ही होना चाहिए। फिर समस्त विश्व एक, नित्य, स्थिर ऐसी समष्टि है जिसमें

व्यक्तिगत परिवर्तन निरन्तर हो रहा है। यह अवयवी, पूर्ण तथा निर्विकार है और ऐश्वरी सृष्टि माना जाता है। पूर्ण की कृति ही पूर्ण हुआ करती है। अतः ईश्वर पूर्ण एवं निर्दोष है। उसमें कोई भी वैकल्य नहीं। उसको समस्त विश्व और तीनों कालों का ज्ञान है। इसलिए वह सर्वज्ञ है। फिर वेद, पुराण, कुरान, इञ्जील आदि सभी धर्म के माननीय सद्ग्रन्थ जगदीश को सर्वज्ञ बतलाते हैं।

अतः यदि मान लिया जाय कि ईश्वर सर्वज्ञ है, तो उसे मानवी भविष्यत् क्रियाओं या घटनाओं का बोध अवश्य होना चाहिए। जब उसे अतीत, अनागत और वर्तमान काल के अखिल विश्व का बोध है, तब निःसन्देह वह यह भी जानता होगा कि अमुक मनुष्य के भावी कर्म कैसे होंगे, भविष्यत् में वह सत्कर्म करेगा या असत्कर्म। यदि कर्म-प्रकार का उसे ज्ञान है तो परिणाम यह निकला कि मनुष्य के सब भविष्यत् कर्म निर्दिष्ट हैं अर्थात् ऐसे बँधे हुए हैं कि वही होंगे, अन्य नहीं। क्योंकि यदि वे स्थिर न हों और उनकी चञ्चलता ईश्वर से गुप्त रहे तो ईश्वर उन्हें किसी भाँति नहीं जान सकता। यदि कोई सज्जन सदाचार करनेवाला है तो वह सदाचार ही करेगा, एवं कोई दुर्जन यदि दुराचार करनेवाला है तो वह दुराचार ही करेगा, क्योंकि मनुष्य के भावी कर्मों का स्पष्ट ज्ञान परमेश्वर को है। कहने का तात्पर्य यह निकला कि ''जैसी हो भवितव्यता तैसी उपजै बुद्धि।''—इसी सिद्धान्त के सहारे फलित-ज्योतिष भी बतला सकता है कि भविष्यत् में क्या होनेवाला है, क्योंकि ''करम की रेखा टरे न टारी''। फिर दुराचारी को दोषी और अपराधी ठहराना, न्याय-सभा में उसका अपराध-निर्णय करना और सदाचारी को सत्पुरुष कहकर उसकी प्रशंसा करना और उसे पारितोषिक देना कहाँ की भलमनसाहत कही जा सकती है। व्यभिचारी और हत्याकारी दोषी नहीं, क्योंकि उनके सम्बन्ध में व्यभिचार और हत्या स्थिर, अटल, भवितव्य कर्म थे। उसी प्रकार सदाचारी, दानी, देश-भक्त भले या प्रशंसनीय नहीं, क्योंकि उनके भी सम्बन्ध में सदाचार, दान और देश-भक्ति होनेहीवाली बातें थीं। तब सदाचारी और दुराचारी दोनों अपने सदसत्कर्म के उत्तरदाता नहीं। अतः इस भूमण्डल पर धर्माधर्म मानना व्यर्थ है; सदसद्वृत्ति कुछ भी नहीं। हर कोई इस आत्मिक परतन्त्रता के आधार पर अपने को अनुत्तरदायी कहकर मनमाने काम कर सकता है। जब कर्त्ता स्वतन्त्र नहीं, तब उस पर उत्तरदायित्व का भार रखना कैसे युक्तियुक्त हो सकता है? कोई सुखी रहे चाहे दुखी, कोई राजा रहे चाहे रङ्क, मनुष्य को इसकी चिन्ता न होनी चाहिए, क्योंकि उसके भविष्यत् निखिल कर्म निर्दिष्ट हैं। परन्तु परिस्थिति ऐसी नहीं है। वह अपने-पराये कर्म की चिन्ता करता है। मनुष्य मनमाने कर्म नहीं करता, क्योंकि वह अपने ऊपर उत्तरदायित्व को बोझ समझता है। इसके सिवा उसमें जो चलत्व है वह ईश्वर से ज्ञेय नहीं। अतः ईश्वर अल्पज्ञ होने के स्थान में बिलकुल अज्ञ होगया। जब अज्ञ हुआ तब वह अचेतन भी हो जायगा। अचेतनता आने से वह कर्ता, धर्ता, संहर्ता भी नहीं। वह न्याय-दया-शक्ति से हीन निरानन्द हो जायगा, और सांसारिक सब क्रियायें आप से आप चलने लगेंगी। अतः क्या ईश्वर सर्वज्ञ है?

जन्म-मरण के कारण मनुष्य अपूर्ण है, और अपूर्णता अच्छा गुण नहीं; इसलिए वह ईश्वर में नहीं माना जा सकता। अपूर्णता के विरुद्ध पूर्णता अच्छा गुण है। इसलिए वह गुण ईश्वर में होना चाहिए। अतः ईश्वर अजन्मा और काल में अनन्त है। और जो अज-अमर है वह निर्विकार होना ही चाहिए, क्योंकि जन्ममरण से बद्ध व्यक्ति विकारशील होते हैं। जो निर्विकार हैं वे नितान्त शान्त अर्थात् निश्चेष्ट या निष्क्रिय हैं, क्योंकि सविकार उद्योगशील होते हैं। अतः ईश्वर उद्योगशील नहीं। वह मुक्त है और इसलिए सृष्टि का स्रष्टा नहीं माना जा सकता है। फिर सृष्टि आप से आप कैसे बन गई?

पर यदि हम उसे सर्वज्ञ मान लें तो ज्ञान के परिवर्तनशील और क्रिया-प्रवर्तक होने के कारण वह सोद्योग और सविकार हो जायगा। इसलिए वह सक्रियत्व से विश्व का निष्कण्टक उत्पादक माना जा सकता है। परन्तु जो विकार-योग्य है, जिसमें परिवर्तन हो सकता है, वह मुक्त नहीं हो सकता। उसे नियमबद्ध या चञ्चल होना चाहिए। अतः क्या ईश्वर मुक्त और निर्विकार है?

कहते हैं कि ईश्वर को दयालु बतलाना भक्तिमार्ग की भूलभुलैयाँ हैं। दावानल और वर्षा-जल से जिस प्रकार जीवों का संहार होता है, वह सुधासदन के अनुपम सुख में

सने हुए देवताओं को छोड़कर प्रायः सबको ज्ञात होगा। इनमें सभी प्राणियों के आबालवृद्ध बहकर डूब जाते हैं या भस्म हो जाते हैं। ऐसा भासित होता है कि मानों प्राणियों का रक्षक इस जगत् में कोई नहीं। प्रकृति की अप्रतिहत गति बनी हुई है। चाहे कोई मरे चाहे जिये, प्रकृति की अन्ध-शक्ति का प्रवाह अत्यन्त निश्चिन्त भाव से बहता हुआ चला जा रहा है। प्रकृति यदि ईश्वराधीन है तो इसमें सन्देह नहीं कि यह हत्याकाण्ड ईश्वर-द्वारा प्रवर्तित होता है! तब क्या ईश्वर दयालु है?

इन बातों का उत्तर देने के लिए "कर्म-वादी" अपना जाल-पाश फैलाते हैं। वे कहते हैं कि ईश्वर न्यायकारी है और न्याय तथा दया दोनों एक हैं। मनुष्यों को कर्मानुसार फल देना ईश्वर का न्याय है; सत्पुरुषों का "सत्त्व" रखना, उनको दुष्टों से बचाना और उन्हें सत्कर्मानुसार पारितोषिक देना न्याय है; दुष्टों को दुष्कर्मानुकूल कठोर दण्ड देकर दमन करना सत्पुरुषों पर दया है। यदि ईश्वर सर्वज्ञ है तो सम्भव है कि वह मनुष्यों को कर्मानुसार फल चखाता हो। तब फिर कर्म और फल में भेद किस प्रकार जाना जाय। एक ही कर्म एक ही काल में कर्म और फल दोनों हो सकता है। यदि कोई कर्म किसी गत कर्म का विपाक है तो वह किसी अनागत विपाक का स्वतन्त्र कर्म या कारण अवश्य रहेगा। कुछ लोगों का मत है कि खाना, पीना, चलना, फिरना, सुख, दुःख, उद्योग, व्यवसाय आदि सभी अतीत कर्मों के परिणाम हैं। जब सामान्य कर्म भी विपाक में परिणत हो गये, जब कर्म और विपाक में परस्पर हेतुहेतुमद्भाव लगा हुआ है, तब एक-दूसरे का पार्थक्य-साधन नितान्त असम्भव है। क्या कोई कभी कह सकता है कि शङ्कर और नैपोलियन अपने पूर्व-जन्म के कर्मों का फल भोग कर बड़े हो गये, आत्मबल या स्वतःपरिश्रम से नहीं? कौपीनधारी सिद्ध तो ऐसा कहते सुने गये हैं कि "अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम। दास-मलूका कह गये सब के दाता राम" और "चेरी छाँड़ न होउब रानी"। —बड़ा बनाना न बनाना ईश्वर के हाथ में है। अच्छा तो क्या परिश्रम करना उचित नहीं?

भक्त-समाज कहती है कि राम-नाम जपो और पूजा-पाठ करो, भगवान् के प्रसन्न होने में विलम्ब नहीं। परमेश्वर भक्तों की इच्छा-पूर्ति करता है (क्या ईश्वर भी हमारे समान प्रसन्न हो सकता है? क्या हमारी जैसी वृत्तियाँ उसमें भी विद्यमान हैं?) भक्तों पर जगदीश सदा दया-वृष्टि ही करते रहते हैं। सुना नहीं? पम्मा भगत इतना भारी आदमी हो गया है जिसके दर्शन के लिए स्वयं भगवान् द्वार पर प्रस्तुत होते थे! इसलिए भक्तों को स्वार्थ या परार्थ सिद्ध करना कोई कठिन काम नहीं। भक्तों पर ईश्वर का अटल प्रेम रहता है। उनके लिए या उनकी बात स्थिर रखने के लिए ईश्वर चमत्कारार्थ सदा तत्पर रहता है। यही ऐश्वरी दया है। क्या वस्तुतः भगवान् ऐसे ही हैं जैसा कि भक्तों के विचारों ने उन्हें रूप दे दिया है?

यदि ऐसा मान भी लिया जाय जैसा कि भक्त-समाज कहती है कि ईश्वर भक्तों पर दयालु है तो परिणाम यह निकलेगा कि वह न्यायकारी नहीं। क्योंकि दया का अर्थ तो यही है कि विपाक-द्वारा भक्त या भक्तों को जो कष्ट हो रहा है उस कष्ट से वह या वे मुक्त हो जायँ, उनके क्लेश-दण्ड क्षमा कर दिये जायँ। ऐसा करने से भगवान् के वे नियम भङ्ग हो जायँगे जिनके प्रकाश में वह अपनी न्याय-सभा में आये हुए अभियोगों का न्याय-निर्णय करता है। क्या वास्तव में अमानव-जगत् में मानव-जगत् जैसी संस्थायें विद्यमान हैं?

दूसरी बात यह है कि राम-नाम जपना, कीर्त्ति-गान और पूजा-पाठ करना केवल चाटुवाद या भिखमँगापन समझा जा सकता है, और कुछ नहीं। जो भिक्षात्मक तत्त्व "तेजोऽसि तेजो" में भरे हुए हैं वही "धियो यो नः प्रचोदयात्" में हैं। और धर्म के प्रायः सभी ग्रन्थ इस मानुषी मूलमति को प्रकट करते हैं। क्या वस्तुतः ईश्वर वही चाहता है जो इन धार्मिक ग्रन्थों में रँगा हुआ है? क्या ऐसे आचार-व्यवहार उसे रुचिकर हैं? अन्यथा सामान्य अनुमान तो यही निकलता है कि मनुष्यों ने मनःकल्पित अमानव-संसार को मर्त्य-संसारवत् मानकर अपनी समाज की सभी रीति-नीतियाँ उसको समर्पित कर दी हैं।

सारस्वत मकरन्द

सुजीवन ।

हे जीवन स्वामी ! तुम हम को
जल के सदृश सुजीवन दो,
हमें सदा जल के समान ही
स्वच्छ ग्रौर निर्मल मन दो ।
रहें सदा हम क्यों न ग्रतल में,
किन्तु दूसरों के हित पल में
ग्रावें ग्रचल फोड़कर स्थल में ;
ऐसा शक्ति-पूर्ण तन दो ।
हे जीवन-स्वामी, तुम हमको जल के सदृश सुजीवन दो ।
स्थान न क्यों नीचे ही पावें,
पर तप में ऊपर चढ़ जावें ।
गिरकर भी क्षिति को सरसावें,
ऐसा सत्साहस-धन दो ।
हे जीवन-स्वामी, तुम हमको जल के सदृश सुजीवन दो ॥

सियारामशरण गुप्त

गूढ़ाशय ।

स्वर्ण-सुमन देकर न हमें जब
तुमने उसको फेंक दिया,
होकर क्रुद्ध हृदय ग्रपना तब
हमने तुमसे हटा लिया ।
सोचा मैं उपवन में जाकर,
सुमन इन्हें दिखलाऊँ लाकर ;
मैंने जल्दी चित्त लगाकर
कण्टक-वेष्टन पार किया ।
स्वर्ण-सुमन देकर न हमें जब तुमने उसको फेंक दिया ।
उपवन भर के श्रेष्ठ-सुमन सब,
जाकर तोड़ लिये सहसा जब,
समझ तुम्हारा गूढ़ाशय तब,
हुग्रा विशेष कृतज्ञ हिया ।
स्वर्ण-सुमन देकर न हमें जब तुमने उसको फेंक दिया ।

सियारामशरण गुप्त

लन्दन की धुन्ध ।

कहा जाता है ग्रौर ठीक कहा जाता है कि ग्रँगरेज़ों के चक्रवर्ती राज्य पर सूर्य भगवान् कभी ग्रस्त नहीं होते । किन्तु जो बात नहीं कही जाती ग्रौर वास्तव में कही जानी चाहिए वह यह है कि इस चक्रवर्ती राज्य के केन्द्र इँगलिस्तान में दिनों नहीं बल्कि सप्ताहों पर्यन्त सूर्य भगवान् का उदय ही नहीं होता । मानो यहाँ प्रकृति देवी ने विरोधाभास ग्रलङ्कार का यह एक प्रत्यक्ष उदाहरण दिखा दिया है । सरदी के मौसम में ग्रँगरेज़ों की विशाल राजधानी लन्दन नगरी में जब धुन्ध फैलती है तब रात ग्रौर दिन का भेद मिट जाता है । मैंने बालपन में प्रायः सुना था कि एक समय व्रज में श्रीकृष्ण महाराज ने राधा ग्रौर ग्रन्य गोपियों के मनोरञ्जन के लिए छः महीने की रात करके रासलीला की थी । मेरा ख़याल है कि इस कथा के कर्ता ने धुन्ध से ग्राच्छादित लन्दन की ज़रूर सैर की होगी । यदि सैर न की होगी तो कम से कम लन्दन को स्वप्न में ग्रवश्यमेव देखा होगा । क्योंकि, जैसा मैंने ऊपर लिखा है, धुन्धकाल में यहाँ दिन ग्रौर रात का भेद नष्ट हो जाता है ग्रौर बहुधा इसी काल में ग्रँगरेज़ स्त्री-पुरुष नृत्य करते हैं । ग्रन्तरिक्ष की रङ्गभूमि (Stage) पर एक काली पीली यवनिका ऐसी तन जाती है जिसके उठने के लिए १५ ; २० मिनट नहीं, कई दिनों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है । दिन के मध्य भाग में भी घर से बाहर निकलना भयदायक प्रतीत होता है । बरसों लन्दन में निवास करनेवाले ग्रौर भले प्रकार से मार्ग जाननेवाले भी थोड़ी दूर पर ही चक्कर खा जाते हैं ग्रौर 'ग्रन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः' की तरह घूमते फिरते हैं ।

सन् १९१६ का दिसम्बर था । इन दिनों जर्मन विमान प्रायः लन्दन पर ग्राक्रमण किया करते थे ।

रात्रि के समय लन्दन को जर्मन विमानों की दृष्टि से बचाने का एक उपाय यह था कि लन्दन में अँधेरा रक्खा जाय। अतः राज्यशासन-सभा (पार्लामेंट) ने एक नियम बनाया था, जिससे प्रत्येक गृहस्थ को अपने घर की खिड़कियों और दरवाज़ों पर काले या नीले परदे डालने पड़ते थे, ताकि रोशनी बाहर न दिखाई दे। सड़कों के सरकारी लैम्पों के ऊपर के आधे आधे भागों पर काला रोग़न पोत दिया गया था। इससे एक तो रोशनी ऊपर न जाती थी, दूसरे चमक बहुत घट गई थी। इसलिए उन सड़कों पर, जहाँ इस घोर युद्ध से पूर्व-काल में बिजली के लाखों लैम्पों की तीव्र प्रभा-वाली अद्भुत जगमगाहट में एक छोटी सी सूई भी दृष्टि गोचर हो जाती थी वहाँ, उस समय समीप से आते हुए मनुष्य को भी देख लेना कठिन था। इस पर, जब धुन्ध ने दिसम्बर मास के पिछले भाग में लन्दन की गलियों तथा बाज़ारों में अपना राज्य स्थापन किया तब एक महा अन्धकारमय कुहू-निशा का प्रादुर्भाव हुआ।

सड़क की पटरियों पर चलनेवाले नर-नारियों को अँधेरे के कारण परस्पर धक्के लगते थे। कितनी ही नर-नारियाँ लैम्पों के स्तम्भों की ठोकर से गिर पड़ते थे; कुछ बेसुध हो जाते थे और कुचल जाते थे। कितने ही कमज़ोर तथा वृद्ध पुरुष और स्त्रियाँ धक्के और ठोकरें खाते खाते प्राणों से गईं। मोटर-गाड़ियों का भिड़ना एक साधारण बात हो गई, यहाँ तक कि दो-मंज़िले बड़े बड़े मोटर-छकड़े (Omnibuses) भी टकरा गये। अभी तो केवल शाम ही हुई थी। थोड़ी देर के पश्चात् मार्ग पर लोगों का चलना बन्द हो गया। मोटर-गाड़ियाँ, मोटर-छकड़े इत्यादि सब रुक गये; मानों सारे संसार ने स्थावर-रूप धारण कर लिया। वायु ऐसी भारी थी कि साँस लेना कठिन मालूम होता था। भोजन किये बिना ही क्षुधा शान्त हो जाती थी। ज्यों त्यों करके रात गुज़री। अगले दिन लगभग ११ बजे धुन्ध का परदा कुछ हलका हुआ तो सूर्य भगवान् के दर्शन हुए। सूर्य क्या था आकाश पर लाल रङ्ग का एक ख़ाका सा खिँचा हुआ था। सूर्यनारायण की ऐसी दुर्दशा मैंने, इससे पहले, कभी नहीं देखी। सूर्य का ज्योतिष्क पिण्ड तेज से विहीन! गोया किसी चित्रकार ने एक मैले पट पर लाल रङ्ग का एक गोलाकार चित्र बनाकर सूर्य के उपहास का प्रयत्न किया है। यह सूर्य तो भला क्या होता, सूर्य की छाया भी न थी। दो बजे के पश्चात् धुन्ध ने फिर अपना पूरा अमल जमाया।

जब कोई विदेशी पहले-पहल लन्दन में आता है तब उसे यह देखकर बहुत आश्चर्य होता है कि प्रति सप्ताह, शनिवार को, मध्याह्न के पश्चात्, सहस्रों नर-नारियाँ लन्दन से बाहर समुद्र-तट अथवा देहात को चली जाती हैं और एक दिन बाहर रह कर सोमवार को सवेरे लौट आती हैं। इसको (Week-end Outing) सप्ताह के अन्तिम भाग की यात्रा कहते हैं। विदेशी नहीं समझता कि लन्दन से बाहर जाने के लिए ये लोग—चाहे यह बाहर जाना केवल एक ही दिन के लिए हो—इतने उत्सुक क्यों हैं। कल्पना कीजिए कि इलाहाबाद से शनिवार को दो बजे के लगभग सैकड़ों नर-नारियाँ वृन्दावन या ऋषीकेश को जाती हैं और सोमवार को सवेरे इलाहाबाद लौट आती हैं, तो विदेशी को उनका यह आना-जाना व्यर्थ प्रतीत होगा। किन्तु जब धुन्ध फैलती है तब इसका भेद खुलता है। इस धुन्ध से परिपूर्ण लन्दन की वायु के सेवन से यदि मनुष्य दो-चार घण्टे भी बाहर रहे तो भी अच्छा है, फिर एक दिन तो बहुत ग़नीमत है।

लक्ष्मणस्वरूप
(आक्सफर्ड)

पत्थर का कोयला।

पत्थर का कोयला भी ईश्वर की सृष्टि के विचित्र पदार्थों में से एक मुख्य वस्तु है। संसार के अधिकांश कल-कारख़ाने, जो हमारे लिए प्रति दिन लाखों तरह का माल तैयार करते हैं, तथा रेल के एञ्जिन इत्यादि धूमयान, इसीकी सहायता से चलते हैं। इसके कार्य तो हम प्रायः प्रति दिन देखा करते हैं; परन्तु, सम्भव है कि हमारे भाइयों में से अधिकतर लोग इसकी असलियत के बारे में बहुत-सी बातें न जानते हों।

पत्थर का कोयला एक खनिज पदार्थ है। जिस तरह और और खनिज धातुयें पृथ्वी के गर्भ से खोद खोदकर निकाली जाती हैं उसी प्रकार पत्थर का कोयला भी पृथ्वी के पेट से निकाला जाता है। अधिकांश जन-समुदाय का ख़याल है कि पत्थर का कोयला एक प्रकार की धातु है; परन्तु वस्तुतः यह बात नहीं है। यह एक वानस्पतिक द्रव्य है, जो शताब्दियों तक पृथ्वी के गर्भ में एक बहुत बड़े बोझ से दबे रहने के कारण इस रूप में परिणत हो गया है। इसीलिए कहीं कहीं ऊपरी तहें हलके बादामी रङ्ग की और नरम, तथा अधिक गहरी, नीलापन लिये हुए और अत्यन्त कठोर होती हैं। हीरा भी इसी कोयले का अन्यतम-रूप है, जो ज़मीन के अन्दर गर्मी और दबाव के भेद से बनता है और जिसके वास्ते कोयले से अत्यन्त अधिक दबाव की आवश्यकता है। कोयला कई प्रकार का होता है। इनमें से Lignite (लिगनाइट), Bituminous (बिट्यूमिनस), Anthracite (अन्थरासाइट) मुख्य हैं।

लिगनाइट कोयला—लकड़ी और कोयले के बीच की दशावाले कोयलों को लिगनाइट नाम दिया गया है। यह हलके भूरे रङ्ग का होता है; मामूली कोयले से कुछ अधिक नरम रहता है और इसमें कारबन का भाग कम होता है। कोयला कारबन, आक्सिजन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन नाम के तत्त्वों का घन-समूह है। इस कोयले में कारबन प्रायः ६० से ७० फ़ी सदी तक रहता है। यह कोयला अधिक तेज़ आँच नहीं देता और इसमें से राख ज़ियादह निकलती है। इस कोयले में मिट्टी का भाग भी अधिक रहता है। यह कोयला अधिकांश पृथ्वी की नवीन तहों में पाया जाता है और पूर्वीय यूरोप में बहुतायत से मिलता है।

बिट्यूमिनस कोयला—इस जाति का कोयला बहुतायत से पाया जाता है। इस कोयले का ख़ास गुण यह है कि गर्मी देने से जलने के पहले यह नरम हो जाता है और इसीलिए जब यह बन्द भबकों में गरम किया जाता है तब इसमें से तारकोल आदि पदार्थ निकलते हैं, जिनका वर्णन आगे किया जायगा। इसमें क़रीब ८०, ८५ फ़ी सदी कारबन रहता है। इसका रङ्ग काला होता है और यह लिगनाइट कोयले की तरह नरम नहीं होता। ज़ियादहतर जो कोयला हम लोग काम में लाते हैं वह इसी जाति का होता है।

अन्थरासाइट कोयला बहुत सख़्त होता है। इसमें ९० फ़ी सदी कारबन होता है और इसके जलाने से बहुत गर्मी पैदा होती है; धुआँ बहुत कम होता है। यह ख़ास ख़ास मौक़ों के लिए बहुत उपयोगी है, जैसे माल्ट* इत्यादि को सुखाने के लिए या उन भट्टियों के लिए जहाँ अधिक गर्मी की आवश्यकता है। भारत में जो कोयला पाया जाता है उसमें राख क़रीब १५ से ३० फ़ी सदी तक रहती है और पानी १ फ़ी सदी तक।

---

*एक प्रकार का जौ जिससे बीयर नाम की शराब तैयार की जाती है।

नीचे कुछ कोयलों के विश्लेषण का फल दिया जाता है। यह केवल उदाहरणस्वरूप है—

	घनत्व	कारबन	हाइड्रोजन	आक्सिजन और नाइट्रोजन	गन्धक	राख	पानी
लिगनाइट	१·१	६०·२९	४·९८	२६·२४	×	८·४९	×
बिटयूमिनस	१·२७	८५·४९	४·७३	३·७८	१·२१	५·३०	०·४९
अन्थरासाइट	१·४६	९०·४५	२·४३	२·४५	”	४·६७	×

ये सब यूरोप के कोयलों के अङ्क हैं।

भारतवर्ष का कोयला ज़ियादहतर काला और बिटयूमिनस क्लास का होता है, गोकि कहीं कहीं और और क़िस्में भी मिलती हैं। लेखक को भारत के कुछ कोयलों के विश्लेषणज का अवसर प्राप्त हुआ है जिनमें से उदाहरण-स्वरूप दो-तीन विश्लेषणों के अङ्क नीचे दिये जाते हैं —

	कारबन	गैस इत्यादि	राख	पानी	गर्मी
(१)	५९·९६	२०·४७	१८·६३	०·९४	१२,०६५
(२)	५६·५०	२०·६४	२२.१६	०·७०	१०,३०७
(३)	६१·५४	१७·९७	१९·८४	०·६५	११,६८१

अँगरेज़ी कोयले में, जो मुख्यतः वेल्स में मिलता है, गर्मी का अङ्क १५,००० तक होता है।

कोयलों में गन्धक का होना भी एक बड़े ऐब की बात है। गन्धक से इसके थक्के बँध जाते हैं और फिर इनको बाइलर में जलाना अति कठिन होजाता है। नरम होकर यह लोहे की छड़ों में चिपट जाता है और हवा न जाने के कारण इसका जलना बन्द हो जाता है।

तारकोल —

कोयला साधारणतः जलाने के अतिरिक्त एक और भी विशेष काम में लाया जाता है, और वह काम गैस बनाना है। कोयले की गैस भी जलाने और रोशनी के काम में लाई जाती है। इसको बनाने के वास्ते कोयला बड़े बड़े बन्द भबकों में, जिनको अँगरेज़ी भाषा में Retorts (रिटोर्ट्स्) कहते हैं, गर्म किया जाता है। इनमें उत्तम तारकोल पाने के लिए ९०० से १००० सेन्टीग्रेड दर्जे तक की गर्मी देनी पड़ती है। गर्म होने से इसमें से गैस इत्यादि उड़ती है। गैस तो जलने के कार्य्य में आ जाती है और तारकोल, जो रास्ते में जम जाता है, और कामों में बरता जाता है।

तारकोल काला, गाढ़ा पदार्थ होता है और एक अजीब तरह की बू देता है। कोक बनाने में भी तारकोल निकलता है। कोक कोयले का वह भाग है जिसमें से उड़नेवाले पदार्थ (Volatile Matters), यानी गैस, पानी इत्यादि निकाल दिये गये हों। यह तारकोल रसायन-शास्त्र की कृपा से एक अमूल्य वस्तु बन गई है। गैस बनाने में कोयले से ४ से ५ फ़ी सदी तक तारकोल मिलता है।

यों तो तारकोल मामूली तौर से लकड़ी, छत, इत्यादि पोतने के काम आता है; परन्तु जब यह फिर भबकों में चढ़ाकर ख़ास ख़ास तरीक़ों से गरम किया जाता है तब इसमें से बड़े बड़े विचित्र पदार्थ निकलते हैं, जिनको देखकर साधारण बुद्धि चक्कर खाती है।

कोयले का यह उपयोग मनुष्य के उद्योग-जनित फल की शक्ति का दिग्दर्शन कराता है। इस उद्योग का प्रारम्भ सन् १८२५ ईसवी से हुआ और फराडे, ले, हाफ़मैन, बैथेल, लीवरमैन, परकिन इत्यादि रसायन-

शास्त्र-विशारद महामनीषियों ने इस विषय में बहुत कार्य किया, जिसका फल यह हुआ कि इसमें से संसार के रङ्ग-बिरङ्गे विचित्र रङ्गों का आविर्भाव हुआ। इनके अस्तित्व की आशा इस काले-कल तारकोल में कभी स्वप्न में भी न थी।

रामरक्षपाल सङ्घी

श्मशान।

अरे मरघट! न तुझसा न्यायकर्ता, न दूजा है मही पर मान-हर्ता।
तुझे कह कौन सकता पक्षपाती, दया तुझको किसी पर है न आती ॥ १ ॥
सभीको एक दृग से देखता है, सभी समभाव से तू बेचता है।
तुझे है रत्न भी कङ्कड़ बराबर, इसी से ही अटल है तू धरा पर ॥ २ ॥
सगा तेरा न कोई है बिराना, तुझे सबको मही में है मिलाना।
सभी जाते शरण तेरी विवश हो, रहे धन-हीन या नृप एकरस हो ॥ ३ ॥
भली होली जलाता है सदा तू, महा मङ्गल मनाता है सदा तू।
चहे हो ग्रीष्म या बरसात होवे, हँसे कोई चहे सिर पीट रोवे ॥ ४ ॥
अँधेरी रात में घन हो बरसता, उजेले के लिए जग हो तरसता।
उसी क्षण तू मनाता है दिवाली, मही पर चाल तेरी है निराली ॥ ५ ॥
कहीं हयमेध होता है मही पर, हविष का होम होता है कहीं पर।
तुझे पर सौख्यकर नरमेध ही है, कभी भी पूर्ण होता वह नहीं है ॥ ६ ॥
जगत में जो अकड़ कर चल रहे थे, जिन्हें पर-रूप धन-बल खल रहे थे।
उन्हें भी खेह में तूने मिलाया, उन्हें पा भोज्य स्यारों का बनाया ॥ ७ ॥
न तेरा सत्र रुक सकता कभी है, जनम कर एक दिन मरते सभी हैं।
नहीं व्यय से अधिक है आय तेरा, खिलाता तू उसे जो खाय तेरा ॥ ८ ॥
अतिथि हैं श्वान गीदड़ गिद्ध तेरे, सदा सब हैं मनोरथ सिद्ध तेरे।
बता, घाटा तुझे किस बात का है? खिलौना तू बना दिन रात का है ॥ ९ ॥
कहीं जल में बहे शव जा रहे हैं, उन्हीं पर काक कड़खे गा रहे हैं।
कहीं शव सड़ रहे हैं पास तेरे, लगे पर क्यों हृदय में त्रास तेरे ॥ १० ॥
कहीं पर हो रहा है घोर हा हा, कहीं पर गूँजता है शान्त स्वाहा।
बना है केन्द्र तू बीभत्स रस का, तुझे है क्यों लगा जग-नाश-चसका ॥ ११ ॥
मनुज जो सो गया तेरे यहाँ पर, वही बस खोगया जाने कहाँ पर।
अरे मरघट! तुझे है मन्त्र आता, न फिर आता, जिसे तू है उड़ाता ॥ १२ ॥
पला जो खीर खोया खाँड़ खाकर, बना चिकना फुलेलों को लगाकर।
चढ़ाता है चिता पर तू उसीको, पकड़ छोड़ा नहीं तूने किसीको ॥ १३ ॥
गड़ी थी पुष्प-शय्या अङ्ग जिसके, चढ़ा सिर पर रहा स्मर-रङ्ग जिसके।
उसी पर लादता है काठ को तू, पढ़ाता है निठुरता-पाठ को तू ॥ १४ ॥
सदा क्या मग्न यों ही तू रहेगा? कभी दुर्दैव को तू भी सहेगा।
कभी होंगे न हम, तू भी न होगा, प्रलय की आँच को किसने न भोगा ॥ १५ ॥

रामचरित उपाध्याय

विविध विषय।

१—शासनाधिकार-विषयक दान का प्रथमांश।

अँगरेज़ी शिक्षा के प्रभाव से इस देश ने बहुत सी नई नई बातें सीखी हैं। पश्चिमी देशों में किस तरह का शासन प्रचलित है, बोलने और मनमाना काम करने की कहाँ तक स्वतन्त्रता है, राजा और प्रजा में कैसा सम्बन्ध है, प्रजा के अधिकार कितने और किस तरह के हैं, राजा और प्रजा के कर्तव्य क्या क्या हैं—ये तथा और भी इसी तरह के विचार, आज से तीस चालीस वर्ष पहले ही, इस देश के शिक्षित जनों के मन में आने लगे थे। शिक्षा-प्रचार और पश्चिमी देशों के साथ संसर्ग-वृद्धि होने के साथ ही साथ ये विचार भी दिन परदिन ज़ोर पकड़ते गये। फल यह हुआ कि हम लोग अपने हानि-लाभ को समझने लगे और वर्तमान शासन की त्रुटियों को दूर करने की चेष्टा भी करने लगे। नेशनल कांग्रेस [जातीय महासभा] इसी चेष्टा का परिणाम है।

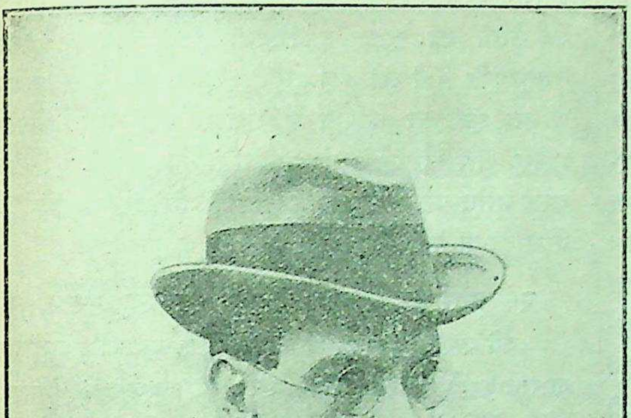

मिस्टर मांटेगू

(भारत के सेक्रेटरी आव् स्टेट)

देश-शासन-सम्बन्धी अधिकार प्राप्त करने के लिए, लेख, वाणी और कार्य्य द्वारा तरह तरह के प्रयत्न होही रहे थे और कुछ कुछ—यद्यपि बहुत ही कम—सफलता भी हुई थी कि योरप में महायुद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में भारत ने ब्रिटिश साम्राज्य की धन-जन आदि से जो सहायता की उस सहायता ने शासनाधिकार देने की शक्ति रखनेवालों के पूर्व विचारों में बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया। और भी अनेक कारणों ने इस परिवर्तन-सृष्टि में सहायता दी। न्याय, स्वार्थ, नीति आदि ने भी बल लगाया। फल यह हुआ कि पार्लियामेंट को स्पष्ट शब्दों में यह प्रकट करना पड़ा कि भारतवर्ष को धीरे धीरे स्वायत्त-शासन या उत्तरदायित्वपूर्ण शासनाधिकार दिया जायगा, और उसका प्रथमांश दे डालने का प्रबन्ध भी शीघ्र ही किया जायगा। इसके अनन्तर, थोड़े ही दिनों में, भारत-भाग्य के प्रधान सूत्रधार, सचिव-शिरोमणि, मांटेगू साहब विलायत से भारतवर्ष आये। उन्होंने वाइसराय, लार्ड चेम्सफ़र्ड, की सलाह से एक रिपोर्ट तैयार की। उसमें उन्होंने सिफ़ारिश की कि भारत को किस तरह के और कौन कौन शासनाधिकार दिये जायँ। इसी भित्ति पर क़ानून का एक मसविदा तैयार किया गया। तब विलायत में पारलियामेंट के कुछ मेम्बरों की एक कमिटी नियत हुई। उसने अनेक नामी नामी भारतवासियों तथा अँगरेज़ अधिकारियों, व्यवसायियों और नीति-निपुणों की गवाहियां लीं। उन सबके विचारों को उसने पूर्वोक्त रिपोर्ट में प्रकट किये गये विचारों से मिलाया।

अधिकांश विचार उसे मिलते-जुलते मालूम हुए। अनन्तर इस कमिटी ने मिस्टर मांटेगू और लार्ड चेम्सफ़र्ड की रिपोर्ट के वक्तव्यों में कुछ थोड़े से परिवर्तन करके पारलियामेंट से सिफ़ारिश की कि निर्दिष्ट अधिकार भारत को दे दिये जायँ। उसके किये हुए परिवर्तनों से देय अधिकारों का महत्त्व घटा नहीं, और भी बढ़ गया। तब क़ानूनी मसविदे का विचार पारलियामेंट में हुआ। बहुत कुछ कहा-सुनी हुई—अनुकूल अधिक, प्रतिकूल कम। गवर्नमेंट के पक्ष के मेम्बर प्रायः सभी अनुकूल थे। इससे क़ानून के "पास" हो जाने में कुछ भी कठिनता न हुई। इस क़ानून का नाम है—गवर्नमेंट आव् इन्डिया एक्ट—अर्थात् भारत के शासन का निर्दिष्टा क़ानून। सर्वान्त में जब यह एक्ट सम्राट् पञ्चम-जार्ज के सामने पेश किया गया तब उन्होंने भी अपनी मंज़ूरी दे दी। मंज़ूरी ही नहीं, सम्राट् ने एक घोषणा भी की। इस घोषणा का आशय, इसी संख्या में, अन्यत्र दिया गया है। इसके प्रति वाक्य से सम्राट् की उदारता, कृपा, सदाशयता और सहानुभूति प्रकट होती है। आपने यह क़ानून पास करके भारत में एक नये युग की अवतारणा सी की है। अपने हृदयौदार्य की गुरुता प्रकट करने के लिए आपने साथ ही साथ यह भी आज्ञा दी है कि सारे राजनैतिक क़ैदी, इस ख़ुशी में, छोड़ दिये जायँ। हाँ, कोई ऐसा क़ैदी न छोड़ा जाय जिसको छोड़ने से सर्व-साधारण के अमन-चैन में बाधा पड़े। देश-रक्षा के निमित्त अल्प काल के लिए जारी किये गये अन्य क़ानूनों के पेंच में पड़कर जो लोग क़ैद किये गये हैं या नज़र-बन्द हैं वे भी छोड़ दिये जायँ। साथ ही आपने भारत के स्वदेशी नरेशों का भी एक महामण्डल सङ्गठित करने का आदेश दे दिया है।

आपकी हार्दिक इच्छा है कि अब से आपकी प्रजा और आपके शासनाधिकारी पुरानी बातों को भूल जायँ और दोनों वर्ग अनुकूलता-पूर्वक परस्पर सहानुभूति-जनित व्यवहार करें। ये सब बातें आपकी सदिच्छा, प्रजावात्सल्य और अन्तःकरण की कोमलता की परिचायक हैं। नये नरेश-मण्डल और नये कौंसिलों की प्रथम प्रतिष्ठा करने के लिए आप इसी वर्ष, अर्थात् १९२० की हेमन्त ऋतु में, अपने युवराज, प्रिन्स आव् वेल्स, को भारतवर्ष भेजेंगे। इस कृपा के लिए भारतवासी हृदय से आपके ऋणी रहेंगे। आज कल की पश्चिमी प्रथा के नियमानुसा शासन का सर्वाधिकार प्रजा के ही हाथ में होना चाहिए अतएव कुछ नीति-निपुणों की राय है कि ये जो न अधिकार भारत को मिले हैं या जो आगे मिलेंगे वे उस जन्मसिद्ध अधिकार हैं। परन्तु उनको आपही प्राप्त क लेना भारत के वश की बात नहीं। इस दृष्टि से इ अधिकारों की प्राप्ति दान की ही सीमा के भीतर है उपार्जन की सीमा के भीतर नहीं। इस विचार से भार उन लोगों का कृतज्ञ है जिनकी सहायता, श्रम औ सहानुभूति से ये उसे प्राप्त हुए हैं। इन सहायकों में सब अधिक कृतज्ञता के पात्र हैं सेक्रेटरी आव् स्टेट, मिस्ट मांटेगू और लार्ड सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह। इन्होंने, विशे करके मन्त्रि-वर मांटेगू ने, भारत पर जो उपकार किये वे भारत-वासियों के हृत्पटल पर सदा अङ्कित रहेंगे।

२—प्राप्त हुए शासनाधिकारों का स्थूल रूप।

नये पास हुए गवर्नमेंट आव् इंडिया एक्ट के अनुसा शासन-कार्य्य अगले वर्ष, १९२१ की जनवरी से, होगा कौंसिलों के मेम्बरों का चुनाव इसी साल हो जायगा। न नियमों के अनुसार गवर्नर-जनरल के कार्यकर्त्ता कौंसिल अब कम से कम तीन हिन्दुस्तानी मेम्बर रहा करेंगे लेजिस्लेटिव असेम्बली अर्थात् बड़े लाट के क़ानूनी कौंसिल १४० मेम्बर रहेंगे। उनमें से १०० मेम्बर जन-समुदाय नेताओं से चुने जायँगे। मतलब यह कि उसमें प्रजापक्ष मेम्बरों की संख्या अधिक रहेगी। फलतः वे लोग प्रजा हित के क़ानून बहुमत के बल पर, "पास" करा सकेंगे। ए और नये, सबसे बड़े, कौंसिल की स्थापना की जायगी। उसक नाम होगा, कौंसिल आव् स्टेट। यह कौंसिल, अपील-कोर्ट सदृश, निगरानी का काम करेगा। इसके ६० मेम्बरों में गवर्नमेंट के कर्म्मचारी मेम्बरों की संख्या २० से अधिक हो सकेगी। बात यह कि इसमें भी प्रजापक्ष के या चुने हु मेम्बरों ही की संख्या अधिक रहेगी। जमा-ख़र्च के साला चिट्ठे पर भी प्रजा के प्रतिनिधि अपनी राय का सिक्का जम सकेंगे—उसमें कतर-ब्योंत करने की राय दे सकेंगे। उनके कतर-ब्योंत से यदि देश-रक्षा या प्रजा के अमन-चै आदि में विघ्न पड़ने की सम्भावना होगी तो गवर्नर-जनर प्रजा के प्रतिनिधियों की बात मान लेने को मजबूर न होंगे

इस दशा में उन्हें विवादास्पद आयव्यय का विचार अपने कार्य्यकारी कौंसिल में पेश करना पड़ेगा। वहाँ उन्हें एक नहीं तीन तीन हिन्दुस्तानी मेम्बरों की राय लेनी पड़ेगी। जब तक ये मेम्बर गवर्नमेंट के पक्ष की दलीलों के दुरुस्त होने के क़ायल न हो जायँगे तब तक वे सरकारी बात क्यों मानने लगे। मतलब यह कि गवर्नमेंट को मनमानी घरजानी करने का मौक़ा बहुत ही कम मिलेगा। प्रतिनिधियों की बात यदि गवर्नमेंट न मानेगी तो उसे वह मामला विलायत भेजना पड़ेगा। वहाँ उस पर एक कमिटी विचार करेगी। फिर कमिटी के फ़ैसले का विचार पारलियामेंट में होगा। उसकी अनुकूलता मिलने पर कहीं गवर्नमेंट प्रजा के प्रतिनिधियों की राय पर हरताल लगा सकेगी। ये बहुत दूर की बातें हैं। बहुत ही कम अवसर शायद ऐसे आवें जब बात इतनी तूल पकड़े। अन्यथा गवर्नमेंट और प्रजा के प्रतिनिधि मिल जुलकर सब बातें यहीं तै करेंगे।

प्रान्तीय गवर्नमेंटें अब प्रायः गवर्नरों के शासनाधीन रहेंगी। कार्य्यसम्पादक गवर्नमेंट में तीन हिन्दुस्तानी मेम्बर रहेंगे। अँगरेज़ सिर्फ़ एक रहेगा। हाँ, गवर्नर भी रहेगा। पर वह बिना बहुत बड़े कारण के हिन्दुस्तानियों की राय को ताक पर रख कर काम न कर सकेगा। हिन्दुस्तानी कार्य्यसम्पादक या सलाहकार और हिन्दुस्तानी मन्त्री मिलकर ही शासन की समस्यायें हल करेंगे। मन्त्री कई होंगे। भिन्न भिन्न महकमे, जो प्रजापक्ष के प्रतिनिधियों के शासनाधीन रहेंगे, उन्हें बाँट दिये जायँगे। यदि गवर्नर किसी विषय में इन लोगों की राय का प्रतिरोध करना चाहेगा तो उसे कारण बताना पड़ेगा और बहुत कुछ भवति न भवति के अनन्तर वह अपने मनोनुकूल काम कर सकेगा। मतभेद होने पर गवर्नर तत्कालीन कौंसिल को बरख़ास्त तो कर सकेगा, पर दूसरे चुनाव के अनुसार बने हुए कौंसिल ने यदि पूर्वनिर्दिष्ट बात को फिर भी पूर्ववत् ही करना चाहा तो गवर्नर साहब को बहुत करके प्रजापक्ष का निश्चय मान ही लेना पड़ेगा। क्योंकि न मानने से निस्तार नहीं। गवर्नर बार बार कहाँ तक कौंसिल तोड़ा करेगा।

प्रान्तीय क़ानूनी कौंसिल में सर्वथा प्रजापक्ष ही का बोलबाला रहेगा। सरकारी मेम्बरों की संख्या बहुत कम रहेगी। इससे सिद्ध है कि प्रजा को थोड़े-बहुत अधिकार दिये ज़रूर गये हैं। प्रान्तीय शासन में तो प्रजा को दख़ल देने और अपने मनोनुकूल काम करने का बहुत ही अधिक अधिकार प्राप्त हो जायगा। रही भारत के प्रधान शासन की बात, सो उसमें भी कुछ कहने और कुछ करने की गुञ्जायश रक्खी गई है।

राजपक्ष का कहना है कि तुम्हें जो ये अधिकार दिये जाते हैं उनके अनुसार शासन करके हमें दिखलाओ कि तुममें शासन करने की योग्यता भी है या नहीं। अभी तक तो तुम लोग सिर्फ़ बातूनी जमा-ख़र्च करते रहे हो। दस वर्ष बाद फिर जाँच की जायगी। तब तुम्हारी योग्यता सिद्ध होने पर अधिकारवृद्धि कर दी जायगी। यदि इस बीच में कुछ गड़बड़ हुआ तो प्राप्ताधिकारों में कमी हो जाने का भी डर है—इसे भी याद रक्खो। हाँ, यदि तुमने दिये हुए काम को सँभाल लिया तो किसी दिन तुम्हारे देश के शासन का सर्व्वाधिकार भी तुम्हें मिल जायगा। पर जल-स्थल की सेना और विदेशों से राजनैतिक सम्बन्ध रखने की शक्ति पारलियामेंट अपने ही हाथ में रक्खेगी। सो ठीक ही है। जो कुछ कृपापूर्वक दिया जा रहा है वही क्या कम है। यह सब दाता की उदारता पर अवलम्बित है।

प्रान्तीय कौंसिलों के मेम्बरों में से कुछ लोग मन्त्री चुने जायँगे। उनके निरीक्षण में मुख्य मुख्य इतने महकमे रहेंगे—

(१) म्यूनीसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड
(२) चिकित्सा-विभाग
(३) तन्दुरुस्ती और सफ़ाई
(४) जनन-मरण
(५) शिक्षा—अँगरेज़ों और अर्द्ध-अँगरेज़ों की शिक्षा तथा कुछ नये विश्वविद्यालयों को छोड़कर
(६) कृषि
(७) पशु-चिकित्सा
(८) रजिस्टरी-विभाग
(९) सहयोग-समितियां
(१०) उद्योग-धन्धों की उन्नति
(११) आबकारी
(१२) बारिकमास्टरी

इनके सिवा और भी कुछ छोटे छोटे महकमे प्रजापक्ष के मन्त्रियों के अधीन रहेंगे। इनको वे चाहें तारें चाहे बोरें; भार उन्हीं पर छोड़ दिया जायगा। गवर्नर उन्हें बरख़ास्त कर सकेगा। तनख़्वाह वे ख़ूब लम्बी चौड़ी पावेंगे। अतएव जनसाधारण के हित की दृष्टि से न सही, अपने ही स्वार्थ की दृष्टि से उन्हें अपनी योग्यता की पूरी परख करा देने से ही कल्याण की आशा है।

३—नये शासन-सुधार में भारत के मुख्य मुख्य अधिकारियों का वार्षिक वेतन।

भारत के गवर्नर-जनरल	दो लाख छप्पन हज़ार रुपये
बङ्गाल, मदरास, बम्बई और संयुक्त-प्रदेश के गवर्नर	एक लाख अट्ठाईस हज़ार रुपये
भारत के प्रधान सेनापति (कमाण्डर-इन-चीफ़)	एक लाख रुपये
पञ्जाब और बिहार-उड़ीसा के गवर्नर	एक लाख रुपये
मध्यप्रदेश के गवर्नर	बहत्तर हज़ार रुपये
आसाम के गवर्नर	छासठ हज़ार रुपये
गवर्नर-जनरल के प्रबन्ध-कर्त्ता कौंसिल के मेम्बर (प्रधान सेनापति को छोड़ कर)	अस्सी हज़ार रुपये
बङ्गाल, मदरास, बम्बई, और संयुक्त-प्रदेश के गवर्नर के प्रबन्ध-कर्तृ-कौंसिल के मेम्बर	चौंसठ हज़ार रुपये
पञ्जाब और बिहार-उड़ीसा के गवर्नर के प्रबन्ध-कर्तृ-कौंसिल के मेम्बर	साठ हज़ार रुपये
मध्यप्रदेश के गवर्नर के प्रबन्ध-कर्तृ-कौंसिल के मेम्बर	अड़तालीस हज़ार रुपये
आसाम के गवर्नर के प्रबन्ध-कर्तृ-कौंसिल के मेम्बर	बयालीस हज़ार रुपये

४—चौंतीसवीं कांग्रेस।

गत मास सुवर्णमन्दिरधारी अमृतसर में कांग्रेस का चौंतीसवां जलसा हो गया। बड़ी धूमधाम से हुआ। अपार उत्साह और ओज रहा। जनसमुदाय के समुद्र में तूफ़ान सा आ गया। पञ्जाब के विद्रोह के विषय में बड़ी बड़ी और कड़ी कड़ी वक्तृतायें हुईं। १९२१ ईसवी से इस देश में जो नये ढङ्ग की शासन-प्रथा प्रचार में आवेगी उसके सम्बन्ध में सन्तोष कम, असन्तोष अधिक प्रकट किया गया। प्रेसिडेंट अर्थात् सभापति इस जातीय जमाव के थे माननीय पण्डित मोतीलाल नहरू। आप इलाहाबाद के नामी वकील—ऐडवोकेट—हैं। आपका पुण्यचरित सरस्वती की गत संख्या में निकल ही चुका है। पञ्जाबी विद्रोह के सम्बन्ध में आपने अपनी वक्तृता में बड़े धड़ल्ले से अपने विचार प्रकट किये। अधिकारि-वर्ग के कार्य्यों की आलोचना में आपने करुण और रौद्र रस की बड़ी ही प्रखर धारा बहा डाली। इस विषय में आपने विशेष छान-बीन की है। कई महीने तक आपने पञ्जाब में घूम घूमकर सब बातें स्वयं जानी हैं। निज की बहुत कुछ हानि उठाकर आपने पञ्जाबी भाइयों की हितैषणा और सहायता की है। विद्रोह के जाल में जकड़े हुए अनेक सम्मान्य जनों की तरफ़ से आपने विलायत के प्रिवी कौंसिल में अपीलें दायर कराई हैं। इस विषय में आपकी यथेष्ट प्रशंसा कर सकना सम्भव नहीं। आपने बड़ा काम किया है। बड़ी उदारता दिखाई है और बड़ी समवेदना प्रकट की है। इसीसे आपकी वक्तृता में पूर्वोक्त दो रसों का ख़ूब ही परिपाक हुआ है।

इस कांग्रेस में हिन्दी का विशेष आदर हुआ। कई वक्ताओं के मुखारविन्दों से अँगरेज़ी भाषा के शब्द निकलते ही "हिन्दी, हिन्दी" की पुकार मच गई। बेचारे वक्ताओं को कैफ़ियतें देनी पड़ीं। तब कहीं उनके अँगरेज़ी-भाषण लोग सुनने को तैयार हुए। जिनसे बना उन्होंने अपने भाषण का कुछ अंश हिन्दी में कहकर, शेष अँगरेज़ी द्वारा प्रकट किया। इस दफ़े बड़े बड़े वक्ताओं को

भी यह अच्छी तरह मालूम हो गया कि बिना हिन्दी बोलने का अभ्यास किये उनकी बात लोग कम सुनेंगे। प्रेसिडेंट पण्डित मोतीलाल नहरू की वक्तृता में एक विशेषता थी। वह यह कि हिन्दी या संस्कृत पद्यों के अवतरणों का स्थान फ़ारसी को मिला था। उदाहरणार्थ—"ई वाय वतन वाय"!

५—पिछली कांग्रेस में हिन्दी।

३१ ता० के 'पायोनियर' में कांग्रेस का जो समाचार निकला है उसके शीर्षक के नीचे छपा है—अँगरेज़ी या हिन्दी? इस उल्लेख का तात्पर्य यह जान पड़ता है कि हिन्दी का यह गौरव 'पायोनियर' (अथवा उसके संवाद-दाता) को पसन्द नहीं, क्योंकि वह अपने इस लेख में एक जगह लिखता है कि स्वागत-कारिणी सभा के सभापति ने अँगरेज़ी न जाननेवाले प्रेस-प्रतिनिधियों के लिए भी अपने भाषण का अँगरेज़ी अनुवाद देना अस्वीकृत किया। इतने पर भी 'पायोनियर' के लेख में सच बात भी निकल पड़ी है, क्योंकि आगे चलकर उसमें यह लिखा गया है कि अधिकांश श्रोताओं ने पूर्वोक्त सभापति के हिन्दी-भाषण पर अपना अनुराग प्रकट किया और उनकी प्रत्येक बात समझ ली। इस अवस्था में निन्दक की भी प्रशंसा करनी चाहिए।

कांग्रेस में हिन्दी का आंशिक प्रवेश भी एक महत्त्व-पूर्ण घटना है। महासभा को जन-साधारण की संस्था बनाने के लिए उसमें किसी न किसी राष्ट्र-भाषा के (अर्थात् हिन्दी के) व्यवहार की आवश्यकता है। आशा है, आगे चलकर कांग्रेस में हिन्दी को भी धीरे धीरे वैसा ही स्वराज्य प्राप्त होगा जैसा आज भारत को मिल रहा है।

६—हिन्दी-उर्दू की अभिवृद्धि पर "लीडर" का मनस्ताप।

"लीडर" इलाहाबाद का प्रसिद्ध दैनिक पत्र है। उसका सञ्चालन बड़ी योग्यता से होता है। देशहितकर कामों की ओर उसका ख़ूब ध्यान रहता है। सच बात कहने से वह नहीं डरता। वह एक कम्पनी की जायदाद है। पर कम्पनी ने शायद लीडर के सम्पादक को अखण्ड अधिकार दे रक्खा है। या तो वह सम्पादक की नीति का नियन्त्रण नहीं करना चाहती या नियन्त्रण करने की शक्ति ही नहीं रखती। क्योंकि कभी कभी लीडर में कुछ ऐसी बातें निकल जाती हैं जिनसे कम्पनी के अधिकांश शेअर-होलडरों का हृदय भी सन्तप्त हो उठता होगा, और लोगों के हृदय की दशा का तो पूछना ही क्या। एक उदाहरण लीजिए। यह पत्र हिन्दी की उन्नति का विशेष पक्षपाती नहीं। अथवा, दूसरे शब्दों में, इस बात को इस तरह कह सकते हैं कि जो काम अँगरेज़ी में होता आया है उसे हिन्दी में होते देख, यह पत्र अप्रसन्नता प्रकट करता है, कभी कभी व्यङ्ग्य बोलता है और हिन्दी के पक्षपातियों का उपहास तक करता है। इसकी इस नीति का नियमन करनेवाला कोई नहीं देख पड़ता। इसके सम्पादक, विलायत से लौटने पर, उस दिन इलाहाबाद में अपने अनुभवों का बखान करने लगे। इसके लिए एक सभा का आह्वान हुआ था। आपने अपना वक्तव्य अँगरेज़ी में अलापना शुरू किया। किसी दर्शक ने प्रार्थना की कि आप अपना कथन हिन्दी में कहिए। अभ्यास न हो तो सीखने की कृपा कीजिए। इस पर आपने बिगड़ कर जवाब दिया—"अपना यह उपदेश अपने ही पास रख छोड़ो"। आपने अपने जन्म से उस प्रान्त को अलङ्कृत किया है जहाँ की बोली तैलङ्गी और तामील है। पर नाम आपने जो कमाया है वह उस प्रान्त की बदौलत जहाँ हिन्दी और उर्दू ही बोली जाती है। आपकी समृद्धि का दाता भी यही प्रान्त है। परन्तु आप स्वयं भी यहाँ की बोली न सीखेंगे, सीखने के लिए कोई प्रार्थना करेगा तो उसे डाँट बतावेंगे, जो यहाँ की बोली में अपने मन की बातें कहेगा उसका उपहास तक करेंगे! आप इस प्रान्त या इस देश की भलाई नहीं चाहते, यह बात नहीं। आप बड़े भारी देश-भक्त हैं। आपकी देश-भक्ति और योग्यता की तो सर्वत्र ही धाक है। यह और कुछ नहीं; यह आपका स्वभाव-वैचित्र्य है। और स्वभाव दुस्त्यज होता है। अथवा आपके ये विचार भ्रममूलक हैं।

हिन्दी के प्रचाराधिक्य पर—अँगरेज़ी का थोड़ा बहुत स्थान हिन्दी के ले लेने पर—आप कई दफ़े रोषाविष्ट हो चुके हैं और अपने विमल विचारों की बौछार कर चुके हैं। समय समय पर आप इस तरह की कृपा किया ही करते हैं। इस समय आपको एक और मौक़ा मिल गया है। हम ८ जनवरी के लीडर की बात कहते हैं। आपने एक नोट लिखा है। आपका कहना है कि इस दफ़े की कांग्रेस में अधिकांश वक्ता अँगरेज़ी भाषा के बदले यथासम्भव हिन्दुस्तानी भाषा बोले।

इससे कांग्रेस कांग्रेस नहीं रही। वह साहित्यसम्मेलन और उर्दू-कानफ़रन्स की खिचड़ी होगई। मदरास और दक्षिण के अन्य प्रान्तों से जो प्रतिनिधि इतना कष्ट उठाकर आये, उन्हें अवश्य ही विशेष निराशा हुई होगी। इस पर आपसे हमारी यह प्रार्थना है कि मदरास के प्रतिनिधियों को अँगरेज़ी में वक्तृता देने से तो किसीने रोका नहीं। और शिक्षित मदरासियों में से ऐसे रहे कितने होंगे जो हिन्दुस्तानी भाषा में की गई वक्तृतायें न समझ सके होंगे? अच्छा, यदि दस-बीस न भी समझ सके हों तो क्या आप उनके सुभीते के मुक़ाबले में और सैकड़ों प्रतिनिधियों के सुभीते का कुछ भी ख़याल न करेंगे? ये जो कई सौ—या कई हज़ार—किसान प्रतिनिधि बनकर गये थे वे क्या सभी अँगरेज़ी-दाँ हैं?

जिस प्रान्त में कांग्रेस होती है उसके और उसके पास-पड़ोस के प्रान्तों के रहनेवालों का भी कुछ ख़याल करना चाहिए या नहीं? दर्शकों से कुछ फ़ीस वसूल की जाती है या नहीं? अधिक संख्या में दर्शक आने से कुछ आमदनी बढ़ती है या नहीं? उससे कांग्रेस का कुछ काम निकलता है या नहीं? दर्शकों में हज़ारों लोग ऐसे भी होते हैं या नहीं जो अँगरेज़ी नहीं समझ सकते? उन तक कांग्रेस के सिद्धान्त, विचार, और पवित्र कार्यों के समाचार पहुँचने से देश का कुछ लाभ है या नहीं? इन सब लाभों और सुभीतों का भी कुछ विचार आपके उदार हृदय में उत्पन्न हो सकता है या नहीं? मदरासियों और दाक्षिणात्यों ही के सुभीते का इतना ख़याल क्यों? दक्षिण में जब कांग्रेस हो और वहाँ हिन्दुस्तानी से अधिक काम लिया जाय तो आपका हितोपदेश कुछ अर्थ भी रख सकता है। अन्यथा इस प्रकार के व्यर्थ विलाप से आप क्यों अपने पवित्र पद का दुरुपयोग करते हैं। कांग्रेसें, कानफ़रंसें या अन्य सभायें, चाहे प्रान्तिक हों, चाहे सार्वदेशिक, जिस भाषा में अधिकांश लोग अपने वक्तव्य प्रकट कर सकते हों या जिसे वे अधिक समझ सकते हों उसीके स्वीकार से अधिक जन-समूह को लाभ पहुँचा सकती हैं। ऐसी दशा में जो लोग उस भाषा को नहीं जानते वे उसे सीखने की चेष्टा करेंगे। वही क्यों, आप हिन्दुस्तानी का सार्वत्रिक प्रचार कीजिए। खुद गवर्नमेंट विवश होकर उसके ज्ञाताओं के कानों से उसे सुनेगी; मदरासियों और तैलङ्गियों की तो कथा ही क्या। जनता हिन्दी या हिन्दुस्तानी का प्रचार चाहती है। वह आपके रोके नहीं रुक सकता। आप उसे न सीखिए, न बोलिए। औरों का उपहास आप क्यों करते हैं? उनके मार्ग में आप काँटे क्यों बखेरते हैं?

७—हंटर-कमिटी।

पञ्जाब में, गत एप्रिल में, जो दङ्गे हुए थे उनकी जाँच के लिए एक कमिटी बनाई गई है। विलायत के लार्ड हंटर इस कमिटी के सभापति हैं। उनके सिवा कई सरकारी और कई ग़ैरसरकारी सज्जन इस कमिटी के मेम्बर हैं। ग़ैरसरकारी मेम्बरों में तीन मेम्बर हिन्दुस्तानी भी हैं—सर सेतलवाड़, साहबज़ादा सुलतान अहमद और माननीय पण्डित जगतनारायण। इस कमिटी की पहली बैठक देहली में हुई। वहाँ उसने देहली के उपद्रवों की जाँच की। फिर उसकी दूसरी बैठक लाहोर में हुई। वहाँ उसने अमृतसर, लाहोर, गुजरांवाला, गुजरात, कसूर आदि स्थानों के सङ्गीन मामलों की जाँच की। लाहोर में प्रजापक्ष के दो-चार लोगों को छोड़कर और किसीने गवाही नहीं दी। बात यह हुई कि, २५ दिसम्बर के पहले, प्रजापक्ष के जो मुखिया जेल में अपने दिन काट रहे थे उन्हें सरकार ने छोड़ना मंजूर नहीं किया। प्रजापक्ष की गवाहियाँ देने का भार कांग्रेस की एक कमिटी ने अपने ऊपर लिया है। उसकी प्रार्थना थी कि जब तक जाँच का काम लाहोर में जारी रहे, तब तक इन कारागारवासी नेताओं को कमिटी के सामने उपस्थित रहने की अनुमति दी जाय, जिससे ये लोग विपक्ष के गवाहों से जिरह करने में सहायता दे सकें। यह बात सरकार ने मंजूर न की। उसने कहा, हम इन लोगों को गवाही देने के लिए ज़रूर छोड़ सकते हैं, पर बराबर हाज़िर रहने के लिए नहीं। कांग्रेस-कमिटी ने इस बात को न्यायसङ्गत न समझा। उसने कहा, तो, इस दशा में प्रजापक्ष का कोई आदमी गवाही न देगा—अथवा, दूसरे शब्दों में, कमिटी प्रजा-पक्ष की गवाही दिलाने की चेष्टा ही न करेगी। परिणाम यह हुआ कि सरकार ने अपनी तरफ़ से जिन लोगों को पेश किया, हंटर-कमिटी ने उन्हीं की गवाही ली। मतलब यह कि प्रजा ने जिस अधिकारि-वर्ग पर यह इलज़ाम लगाया है कि उपद्रव-शान्ति के लिए इसने ज़ियादती की उसीके पक्ष की गवाहियाँ हुईं, प्रजापक्ष की नहीं। मुलज़िमों ने तो अपने

बयान दिये, इलज़ाम लगानेवालों ने नहीं। ऐसी दशा में यथार्थ बात का पता लगा लेना कितना कठिन होता है, यह बताने की ज़रूरत नहीं।

ऐसी एकपक्षीय गवाही लेने में हंटर-कमिटी के हिन्दुस्तानी मेम्बरों को बहुत असुविधा हुई। फिर एक बात और भी है। वह यह कि गवर्नमेंट के कुछ फ़ौजी और मुल्की अधिकारियों ने सरल-हृदय होकर सीधे तौर पर गवाही न दी। किसी किसी ने तो हिन्दुस्तानी मेम्बरों के प्रश्नों का उत्तर देने में अवज्ञा के भाव भी व्यक्त किये। इस कारण कई दफ़े, लाहोर में जाँच के समय, हिन्दुस्तानी मेम्बरों और हठीले सरकारी गवाहों से परस्पर चख़चख़ भी हो गई। दो-एक दफ़े लार्ड हंटर से भी कुछ कहा-सुनी हो गई। यदि हिन्दुस्तानी मेम्बर अत्यधिक धैर्य्य से काम न लेते और यदि वे प्रजा से बहुत अधिक सहानुभूति न रखते होते, तो शायद वे अपना अङ्गीकृत काम कर ही न सकते—बीच ही में उठकर उन्हें अपने घर चले आना पड़ता।

इतनी कठिनाइयों के होते हुए भी पूर्वनिर्दिष्ट तीनों हिन्दुस्तानी मेम्बरों ने अपना कर्तव्य बड़ी ही योग्यता से निबाहा। सबसे अधिक दूरदर्शिता, चातुर्य्य और धैर्य्य लखनऊ के नामी वकील माननीय पण्डित जगतनारायण ने दिखाया। अपने प्रश्नों के सन्तोषजनक उत्तर न पाने पर उन्होंने घुमा फिराकर सैकड़ों तरह से ऐसी काट करनेवाली जिरह की कि सरकारी पक्ष के कौटिल्यकर्कश गवाहों के भी हृदय की अन्तस्तम तह से सच्ची बातें निकल ही पड़ीं।

पण्डितजी की योग्यता, क़ानूनदानी और व्यवहारकुशलता की जितनी प्रशंसा की जाय कम है।

अब हंटर-कमिटी अहमदाबाद में जाँच का काम कर रही है। इस नोट के निकलने के पहले ही शायद उसका काम समाप्त हो जाय और वह अपनी रिपोर्ट लिखने लगे।

हंटर-कमिटी के मेम्बर
माननीय पण्डित जगतनारायण जी

८—निकल के नये सिक्कों की सृष्टि ।

चाँदी बेतरह महँगी हो रही है । उसकी माँग तो वैसी ही है, पर आमदनी कम है । अनेक कारणों से चाँदी की खानों से पूर्ववत् चाँदी नहीं निकाली जा सकती । कहीं मज़दूरों की कमी है; कहीं कुछ और ही कारणों से काम नहीं होता, और होता भी है तो कम । सिक्कों के बिना काम चलता नहीं, पर चाँदी की कमी के कारण काफ़ी सिक्के बन नहीं सकते । अपने देश में सिक्का चाँदी ही का है । परन्तु चाँदी बेहद महँगी, सो भी यथेष्ट परिमाण में प्राप्य नहीं । इसी बाधा को दूर करने के लिए सरकार ने पहले निकल की इकन्नी चलाई, फिर दुअन्नी । अब उसने चवन्नी और अठन्नी भी निकल की ही चला दी है । इस नोट के निकलने के पहले ही ये नई चवन्नियाँ और अठन्नियाँ टकसाल-घर से निकलकर बाज़ारों में अपने दर्शन देने लगेंगी । अठन्नी गोल होगी । उसका व्यास २६ मिलीमीटर होगा । किनारे कटे—खुरदरे—न रहेंगे । एक तरफ़ महाराज पञ्चम जार्ज का चित्र रहेगा, दूसरी तरफ़ आठ का हिन्दसा और 'आना' शब्द रोमन अक्षरों में । इस देश का नाम और ढलाई का सन् भी रहेगा । उर्दू, नागरी, बँगला और तैलङ्गी भाषा में भी सिक्के की क़ीमत दी जायगी । चवन्नी में भी यही सब बातें होंगी । पर उसके किनारे पर आठ चढ़ाव-उतार रहेंगे । व्यास उसका २५ मिलीमीटर होगा । हिन्दी और देवनागरी-प्रेमियों को यह जानकर सन्तोष होगा कि इकन्नी और दुअन्नी की तरह इन नये सिक्कों पर भी देवनागरी वर्णों को सरकार ने स्थान देने की कृपा की है । रुपये पर ऐसा करना उसने अब तक मंज़ूर नहीं किया । उस पर, बादशाही यादगार बनी रखने के लिए, फ़ारसी-अरबी अक्षरों और फ़ारसी भाषा में یک روپیہ ज्यों का त्यों रहने दिया है ।

गवर्नमेंट का पुण्य-प्रताप तो देखिए । निकल बहुत कम क़ीमती धातु है । मगर सरकारी सिक्के के रूप में अब वह चाँदी के सिक्के का काम देगी ।

सो इस देश में चाँदी के सिक्कों के बिना भी अब काम चल सकेगा । पैसे ताँबे के, इकन्नी से लेकर अठन्नी तक निकल की, और रुपयों की जगह काग़ज़ के नोट । अतएव हे अखण्डमण्डलाकार रुपये ! तुमको हमारा सादर और साष्टाङ्ग प्रणिपात ।

९—प्राच्य और पाश्चात्य सङ्गीत ।

अभी हाल ही में पूना में प्राच्य सम्मेलन हुआ था । उसमें मिस्टर क्लिमेन्ट ने 'सङ्गीत का प्राचीन इतिहास' शीर्षक एक निबन्ध पढ़ा था । उस निबन्ध में आपने लिखा कि पाश्चात्य लोग प्राच्य सङ्गीत नहीं समझ सकते । और फिर आपने यह भी कहा कि प्राच्य और पाश्चात्य सङ्गीत में वही सम्बन्ध है जो एक कुटुम्ब के दो भाइयों में होता है । क्लिमेन्ट साहब के लेख की समालोचना किसी सज्जन ने टाइम्स आव् इंडिया में की है । समालोचक महोदय का कथन है कि यदि प्राच्य और पाश्चात्य सङ्गीत एक ही कुटुम्ब के हैं तो फिर पाश्चात्य लोगों की समझ में प्राच्य सङ्गीत आ क्यों नहीं सकता ? इनका मत है कि प्राच्य और पाश्चात्य सङ्गीत का परस्पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ रहा है और भविष्यत् में एक को दूसरे से बहुत कुछ लाभ होगा । पाश्चात्य सङ्गीत शीघ्र ही प्राच्य सङ्गीत से बहुत कुछ लेनेवाला है । कुछ दिन हुए, फ़्रेन्च गवर्नमेन्ट ने किसी बर्गल्ट ड्यूकण्ड्रे महोदय को ग्रीस, ब्रिटन, स्केन्डनेविया, वेल्स, रशिया, स्काटलेंड, जर्मनी, इटली इत्यादि देशों को भेजा कि वे वहाँ ग्रामीण गीतों को ग्रामोफ़ोन में भर कर सङ्ग्रह करें और फिर उनकी समानता पर विचार करें । ड्यूकण्ड्रे महोदय के विचार से पता लगा कि इन भिन्न भिन्न देशों के ग्रामीण सङ्गीत में बहुत बातें मिलती-जुलती हैं और उनमें बहुत कुछ परस्पर सम्बन्ध है । इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी समय में इन देश-निवासियों के पूर्व-पुरुष एक ही स्थान पर रहते थे । भाषा-विज्ञान और नृवंश-विद्या से तो यह बात प्रमाणित थी ही; अब सङ्गीत ने भी यही सिद्ध कर दिखाया ।

क़रीब पचास ही वर्ष से योरप-निवासियों का ध्यान ग्राम्य गीतों के एकत्र करने की ओर गया है । अनेक देशों के ग्रामीण सङ्गीत की तुलना करना तो हाल ही में शुरू हुआ है । योरप के लोग अपने बनावटी नागरिक सङ्गीत से उकता से गये थे । अब वहाँ के अनेक देशों से सङ्कलित ग्रामीण सङ्गीत से अपने अपने पुराने नागरिक सङ्गीत में वे नये भावों का सञ्चार कर रहे हैं । वह समय बहुत निकट है जब

पाश्चात्य लोगों का ध्यान प्राच्य सङ्गीत की ओर विशेष रूप से झुकेगा और उससे भी वे अपने सङ्गीत में नये नये भावों का सञ्चार करेंगे ।

१०—मातृभाषा और अँगरेज़ी ।

कलकत्ता-विश्वविद्यालय के गुण-दोषों की जाँच और उसके पाठ्य-विषयों आदि में संशोधन करने की आवश्यकताओं पर विचार करने के लिए जो कमीशन बैठा था उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हुए कई महीने बीत गये। रिपोर्ट बहुत बड़ी है। बड़ी बड़ी कोई १३ जिल्दों में है। उसकी पहली ५ जिल्दें बड़े काम की हैं। कमीशन ने अपने विचार यद्यपि कलकत्ता-विश्वविद्यालय ही के विषय में प्रकट किये हैं, तथापि उन विचारों से इस देश के अन्यान्य विश्वविद्यालय भी लाभ उठा सकते हैं। शिक्षा-दान और शिक्षा-ग्रहण आदि विषयों का विचार कमीशन ने अनेक दृष्टियों से किया है। अतएव उसकी रिपोर्ट प्रत्येक शिक्षा-प्रेमी के देखने योग्य है। कमीशन ने बँगला और अँगरेज़ी भाषाओं के महत्त्व और प्रचार के विषय में भी अपनी सम्मति प्रकट की है। उसकी यह सम्मति अन्य प्रान्तिक भाषाओं के विषय में भी चरितार्थ हो सकती है। बँगला की जगह यदि हिन्दी कर दी जाय तो कमीशन की सम्मति इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के लिए भी तद्वत् कार्य्यकारिणी हो जाय। कमीशन की सम्मति है—

> बहुत लोग बंगला भाषा के प्रयोग के हृदय से पक्षपाती हैं। पर उनमें से भी बहुत ही कम लोग ऐसे हैं जिनकी राय में बंगला इतनी उन्नत हो गई है कि पश्चिमी शिक्षा की जितनी शाखाओं का अध्ययन विश्वविद्यालय में कराया जाता है उनमें से अधिकांश की शिक्षा बंगला द्वाराही दी जा सकती है। अधिक लोगों की राय तो यही है कि एफ० ए० से लेकर आगे की सारी शिक्षा अँगरेज़ी भाषा ही के द्वारा दी जानी चाहिए।
>
> हमारी राय है कि भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के शिक्षित जन दो भाषाओं के ज्ञाता होना पसन्द करते हैं—अँगरेज़ी के भी और अपनी मातृ-भाषा के भी। यही बात दूसरे देशों के लिए भी कही जा सकती है। अँगरेज़ी साम्राज्य के अन्तर्गत देशों के और दूसरे देशों के भी निवासी यही चाहते हैं। कुछ बातें ऐसी हैं जो उन्हें बहुत प्यारी हैं; उनका सम्बन्ध बाल्यावस्था से मरण-पर्य्यन्त उनके साथ अखण्डित रहता है। जातीय भाव और कविता-निर्म्माण की जान यही बातें हैं। इन बातों को तो वे अपनी ही मातृभाषा के द्वारा प्रकट करना चाहते हैं। भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में एकता और मेल बना रखने, दूसरे देशों के साथ सम्बन्ध जोड़ने, विद्या और विज्ञान-विषयक विचारों का पारस्परिक परिवर्त्तन करने, और जिन भिन्न प्रान्तीय तथा भिन्न देशीय व्यापार और उद्योग-धन्धों की वृद्धि पर इस देश की आर्थिक उन्नति अवलम्बित है उनके सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करने के लिए लोग अँगरेज़ी भाषा काम में लाना चाहते हैं।
>
> वेल्स के रहनेवाले अपनी भाषा और अँगरेज़ी दोनों बोलते हैं। इनमें से जो लोग ग्रेट-ब्रिटन की स्थिति से जानकारी रखते हैं वे जानते हैं कि वेल्स के विद्यार्थी जब उन विश्वविद्यालयों में भरती होते हैं जिनमें शिक्षा अँगरेज़ी द्वारा दी जाती है तब उन्हें कुछ भी कठिनता नहीं मालूम होती। बेलजियम और स्विज़रलैंड आदि देशों में भी साथ ही साथ दो भाषायें प्रचलित हैं। वहाँवालों को भी इससे कुछ कष्ट नहीं होता—उनकी शिक्षा में किसी तरह का व्यत्यय नहीं आता और न उनके बुद्धि-विकास में कुछ रुकावट ही होती। भारतवर्ष में अँगरेज़ी सीखने के लिए जितना समय स्कूल में ख़र्च करना पड़ता है और जितना काम घर पर करना पड़ता है उसके आधे ही ख़र्च और काम से योरप के कई बड़े बड़े देशों के निवासी अपनी भाषा के अतिरिक्त किसी और भाषा का ज्ञान, काम चलाने योग्य, प्राप्त कर लेते हैं। मदरास के कुछ स्कूलों में दो भाषायें प्रचलित हैं। इसका फल सन्तोषजनक हुआ है। बङ्गाल में भी तदनुसार काम करने से सफलता प्राप्त हो सकती है। हमारा उद्देश यह है कि बङ्गाल का शिक्षित समुदाय दो भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करे। परन्तु, साथ ही, इसकी भी बड़ी जरूरत है कि देशी भाषाओं की उन्नति की जाय। इन भाषाओं की उन्नति द्वारा ही पूर्वी तथा पश्चिमी देशों की विद्या और विज्ञान के प्रचार से सर्व-साधारण जनों को लाभ पहुँच सकेगा, और किसी तरह नहीं।

कमीशन ने ये विचार अपनी रिपोर्ट की पाँचवीं जिल्द के इकतालीसवें अध्याय में प्रकट किये हैं। सो, इस कमीशन की राय में भी देशी भाषाओं की उन्नति की बड़ी आवश्यकता है। पर इलाहाबाद का विश्वविद्यालय इस छूत से अब तक बचा हुआ है, और शायद कुछ समय तक अभी वह इसके सम्पर्क से अपने को अपवित्र करना पसन्द भी न करे।

११—भारतवर्ष की ऐतिहासिक सामग्री की खोज।

कलकत्ता-विश्वविद्यालय-सम्बन्धी कमीशन ने, अपनी रिपोर्ट की पाँचवीं जिल्द में, भारतीय इतिहास की सामग्री के विषय में भी अपने विचार प्रकट किये हैं। वे विचार महत्त्व के हैं। अतएव उनका आशय नीचे दिया जाता है—

> भारतवर्ष में इतिहास की अनन्त सामग्री भरी पड़ी है। परन्तु अब तक न तो उसकी अच्छी तरह खोज ही हुई और न किसी ने उसके किसी अंश का क्रमबद्ध विवरण

ही प्रकाशित किया। यह सामग्री गवर्नमेंट के पुस्तकालयों और दफ़्तरों में ही नहीं, जन-साधारण के कौटुम्बिक पुस्तक-संग्रहों में भी विद्यमान है। इस देश में अँगरेज़ी राज्य के पहले जो राज्य थे उनके अवशिष्ट संग्रहालयों में भी वह, कहीं कहीं, रक्षित है। दक्षिणी हैदराबाद में निज़ाम के और पूने में पेशवाओं के प्राचीन पुस्तक-संग्रहालयों में पुराने ज़माने की न मालूम कितनी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्य है। जब तक यह सारी सामग्री सुलभ नहीं हो जाती तब तक इस देश का पूरा पूरा और विश्वसनीय इतिहास नहीं लिखा जा सकता।

इन पुस्तकालयों को इतिहास-प्रेमियों के लिए खोल देने ही से काम न चल सकेगा। कल्पना कीजिए कि किसीको उन्नीसवीं सदी के आरम्भिक इतिहास की खोज करना है। इस दशा में उसे सरकारी प्राचीन पुस्तकालयों या महाफ़िज़ख़ानों के सिवा हैदराबाद, पूना और लाहोर में निज़ाम, पेशवाओं और सिक्खों के प्राचीन संग्रहालयों में भी बैठकर तत्कालीन इतिहास की सामग्री एकत्र करनी चाहिए। इसके सिवा उसे अन्यान्य स्थानों से भी अपने मतलब के काग़ज़-पत्र ढूँढ़ निकालने चाहिए। इस इतने बड़े काम के लिए बहुत समय दरकार है। यदि किसी को इतना अवकाश हो भी तो भी वह अपना काम अच्छी तरह न कर सकेगा। क्योंकि उसे जो सामग्री मिलेगी वह अनेक भाषाओं और अनेक लिपियों में मिलेगी। इन सब भाषाओं और लिपियों का ज्ञान प्राप्त करना एक आदमी के लिए बहुत कठिन है।

यह कठिनता दूर होनी चाहिए। इस दूरीकरण के लिए यह आवश्यक है कि विशेष महत्त्व की सामग्री छापकर प्रकाशित कर दी जाय। जो कम महत्त्व की हो उसका सार सङ्कलन किया जाय और वह भी छपा दिया जाय। फिर इस सब सामग्री का अनुवाद अँगरेज़ी में प्रकाशित किया जाय। यह बात विश्व-विद्यालय के इने-गिने इतिहास-प्रेमियों के वश की नहीं। इसकी सिद्धि के लिए बहुत कुछ संयोजना और समवाय की ज़रूरत है। इस काम के लिए सरकार की सहायता अनिवार्य्य है। बिना सरकारी सहायता के यह इतना बड़ा काम सुचारु रूप से न हो सकेगा। गवर्नमेंट को चाहिए कि भारतवर्ष के सभी विश्व-विद्यालयों से इतिहास-प्रेमी अध्यापकों को चुने, विषयों का निर्वाचन करके योग्य विद्वानों को काम बाँट दे, और एक प्रधान सम्पादक की निगरानी में एक भारतीय इतिहास-माला प्रकाशित करे। इससे बड़ा लाभ होगा। इतिहास की प्रायः सारी सामग्री सुलभ हो जायगी। इससे ऐतिहासिक खोज का मार्ग भी प्रशस्त हो जायगा, सच्चे इतिहास की नींव भी दृढ़ हो जायगी, और भविष्यत् में विद्वानों को ऐतिहासिक खोज की चाट भी लग जायगी। इस देश में इस प्रकार की संस्था की बड़ी ज़रूरत है। ऐतिहासिक भ्रमों के निरसन और गुण-दोषों के पृथक्करण से ही सच्चे इतिहास की सृष्टि हो सकती है, यह सिद्धान्त इतिहास-प्रेमियों के हृदयों में अच्छी तरह अङ्कित कर देना चाहिए। अलग अलग दो-चार आदमियों के काम करने से इसकी सिद्धि होना सम्भव नहीं। सरकारी सहायता से विस्तृत और नियम-बद्ध काम होने ही से सफलता-प्राप्ति की सम्भावना है।

कमीशन के ये विचार बड़े मोल के हैं। उसकी सिफ़ारिश के अनुसार काम होने से इस देश के इतिहास-निर्माण की सामग्री सर्वथा प्राप्य हो जायगी।

१२—वन्दनीय वदान्यता।

भारत के शास्त्रकारों, कवियों और अन्य विद्वानों ने वदान्यता अर्थात् दानशीलता की बड़ी महिमा गाई है। उनका कहना है कि उपार्जन किये गये धन की शोभा या सार्थकता दे डालने—दान कर देने ही से है, उसे गाड़ रखने या इत्र भरे हुए हौज़ों में स्नान करके और नाना प्रकार के भोग भोग कर ख़ुद ही उड़ा देने से नहीं। पर उन्होंने एक शर्त भी रक्खी है। उनकी सम्मति है कि दान दिया तो जाय, पर कुपात्र को नहीं, सत्पात्र को। वह ख़र्च तो किया जाय पर अच्छे कामों में। जिस विद्या या शिक्षा से मनुष्य में मनुष्यत्व आता है, जिस कला-कौशल और विज्ञान की वृद्धि से देश की समृद्धि बढ़ती है, उसके निमित्त दान

करना निःसन्देह ही धन का सदुपयोग करना है। ऐसा ही दान शास्त्र-सम्मत और कल्याण-जनक है। कलकत्ते के नामी वकील सर रासबिहारी घोष जैसे धनोपार्जन करना खूब जानते हैं वैसेही उसका दान कर देना भी वे खूब जानते हैं। शास्त्राज्ञा की सारता को भी वे मन से मानते हैं। दान देते हैं तो सदा अच्छे कामों के लिए—और बहुत ही अच्छे देशहित के कामों के लिए। कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने, कुछ वर्ष पूर्व, जो वैज्ञानिक कालेज खोला था और जो इस समय बहुत कुछ उपकार कर रहा है, वह उन्हीं की दानशीलता का फल है। यदि वे उसके लिए कई लाख रुपया न दे डालते तो वह अस्तित्वही में न आता। क्योंकि सरकार के पास इतना रुपया कहाँ? और देश के अन्यान्य धनिकों में इतनी वदान्यता है नहीं। अब आपने ग्यारह लाख रुपया और देने का सङ्कल्प किया है। उससे कलकत्ता-विश्वविद्यालय के अधीन एक और कालेज की स्थापना की जायगी। उसमें कला-कौशल और उद्योग-विषयक शिक्षा दी जायगी। दान इसे कहते हैं। देश-सेवा यह कहाती है। धन का सद्व्यय इसका नाम है। आपकी इस दानशीलता की बदौलत सैकड़ों हज़ारों विज्ञान-वेत्ता, कला-कुशल और उद्योगशील मनुष्य कालेजों से निकल कर अपना भी जीवन सार्थक करेंगे और देश में ज्ञान और धन की भी वृद्धि करेंगे। वैज्ञानिक कालेज के लिए धन देते समय आपने विश्वविद्यालय से यह शर्त्त कराली थी कि कालेज में शिक्षादान का काम अपने ही देश के विद्वानें द्वारा लिया जाय। सम्भव है, इस दूसरे कालेज के सम्बन्ध में भी आप ऐसीही कोई शर्त्त करावें। आपकी दूर-दर्शिता और स्वदेश-प्रेम की इयत्ता नहीं।

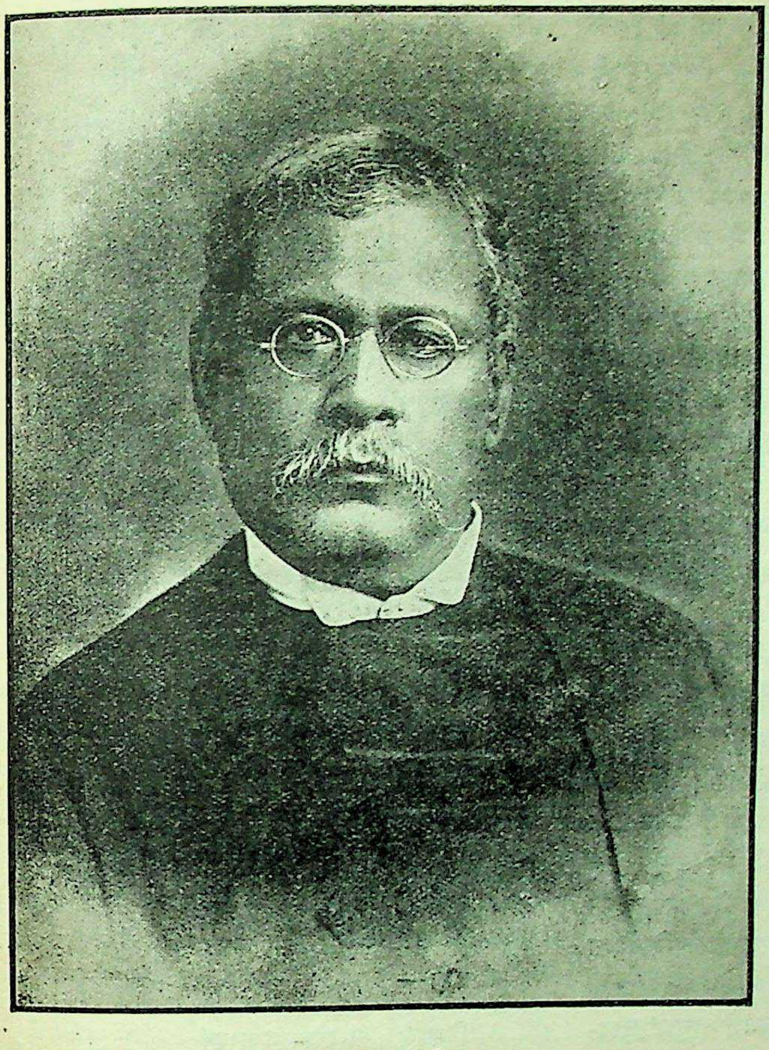

सर रासबिहारी घोष

१३—कृषि-शिक्षा के विस्तार की आवश्यकता।

“उत्तम खेती” की कहावत बहुत पुरानी है। यह उस समय की है जब रुपये आठ आने में ही इतना अनाज मिल जाता था कि एक आदमी का पोषण उससे अच्छी तरह हो सकता था। खेती की उत्तमता इसलिए मानी गई है

कि उससे कृषक का भी भरण-पोषण होता है और अवशिष्ट प्रजा भी उसी की बदौलत अपनी प्राण-रक्षा कर सकती है। खेती की उत्तमता के क़ायल इसी देश के प्राचीन-वासी नहीं थे; पश्चिमी देशों के नये निवासी भी इसके क़ायल हैं। फ़्रान्स, जर्मनी, और अमेरिका ने—विशेष करके इस पिछले देश ने—कृषि की उन्नति की पराकाष्ठा कर दिखाई है। वहाँ इस कृषि की ही बदौलत सैकड़ों आदमी लखपती और करोड़-पति हो गये हैं और होते जा रहे हैं। पिछले महायुद्ध के कारण कई देश जब से दाने दाने के लिए मुहताज हो गये, तब से इस व्यवसाय की श्रेष्ठता पश्चिमी देशों के निवासियों के ध्यान में और भी आ गई है। अब वे दूने चौगुने उत्साह से अपने यहाँ कृषि की और भी उन्नति करने में लग गये हैं। अब तो वही देश सर्वश्रेष्ठ समझा जायगा जो अपने निर्वाह के सभी पदार्थ अपने ही यहाँ पैदा करे—किसी दूसरे का मुँह उसे न ताकना पड़े। हाय, इस इतने महत्त्वमय कृषि-व्यवसाय की भारत में इतनी दुर्गति! यहाँ के मध्य-वित्त "भले मानुस" खेती को नीच व्यवसाय समझते हैं। ब्राह्मणों में हल जोतना योंही मना है; खुरपा, फावड़ा, कुदाल उठाना भी तो ये लोग निन्द्य समझते हैं। जिनके खेत हैं वे बहुधा उन्हें औरों को जोतने-बोने के लिए दे देते हैं। जो ख़ुद ही मज़दूरों से इस काम को कराते हैं उन्हें न भूमि की पहचान, न खाद की महत्ता का ज्ञान, न नये नये हलों तथा अन्य औज़ारों और कलों से काम लेने का ध्यान! पढ़े हुओं की प्रवृत्ति इस ओर नहीं, अपढ़ काश्तकारों से कृषि की उन्नति की आशा नहीं। गेहूँ रुपये के ५ सेर। कैसी दुःख-परम्परा है। यदि देहात में शिक्षा का विस्तार बढ़ जाय; यदि कृषकों के बच्चे खेती के मुख्य मुख्य ही सिद्धान्त जान जायँ; यदि "भले मानुस" महाराज अपनी मोहमयी निद्रा से ज़रा भी जाग जायँ तो चीथड़ों की जगह सलीते के अँगरखे और काठ के कटोरों की जगह काँसे और पीतल के बर्तन देख पड़ने लगें। जो लोग ताँबे का पैसा मुश्किल से देख पाते हैं वे रुपये परखने लगें। सरकार चेष्टा करे और ज़रा ज़मींदार देवता की पाशों को कुछ शिथिल करदे तो कृषकों को बहुत सुभीता हो। देहाती मदरसों में कृषि की मोटी मोटी बातें सिखलाने और मदरसों से जुड़े हुए छोटे छोटे खेतों में लड़कों को विज्ञान-सम्मत कृषि की शिक्षा देने से आज कल की अधोगति का बहुत कुछ इलाज हो सकता है। सम्भव है, १९२१ से नये शासन की सत्ता पाकर, कृषि-विभाग के अधिकारी मन्त्री महाशय, इस विषय में, कुछ क़दम बढ़ावें। कृषि की महत्ता को सरकार अच्छी तरह जानती है। यथाशक्ति वह कृषि की उन्नति करने की चेष्टा भी करती है। देश में कितने ही कृषि-कालेज और स्कूल भी उसने खोले हैं। तथापि यह इतना सुभीता काफ़ी नहीं। उस दिन पूने के कृषि-कालेज के वार्षिक अधिवेशन के समय बम्बई के गवर्नर, सर जार्ज लायड, ने जी खोल कर कृषि के व्यवसाय और उसकी उत्तमता का वर्णन किया। उन्होंने ९ नये कृषि-स्कूल खोलने और कृषि-शिक्षा के लिए पहले से भी अधिक रुपया ख़र्च करने का वचन भी दिया। पर हमें सरकार ही के भरोसे न बैठ रहना चाहिए। स्वयं भी कुछ कर दिखाना चाहिए। इस निचार को तत्काल दूर कर देना चाहिए कि कृषि एक नीच व्यवसाय है। रामचन्द्र के ससुर जनकजी ने जब ख़ुद हल चलाया तब यह व्यवसाय नीच कैसे?

१४—ज्वाला उगलनेवाली शृगालियाँ।

रघुवंश के सोलहवें सर्ग में राजा कुश का वर्णन है। जिस समय वह राजा हुआ, अयोध्या नगरी उजाड़ पड़ी थी। वह नगरी, एक रात को, सुन्दरी नारी के वेश में, कुश के अन्तःपुर में प्रविष्ट हुई। कुश ने पूछा—देवी तुम कौन हो? उसने अपना नाम बताया और अपनी उजड़ी हुई दशा का कारुणिक वर्णन किया। और और बातों के सिवा उसने यह भी कहा—

> निशासु भास्वत्कलनूपुराणां
> यः सञ्चरोऽभूदभिसारिकाणाम्।
> नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः
> स वाह्यते राजपथः शिवाभिः ॥१२॥

अर्थात्—जिन राजमार्गों में दीप्तिमान् नूपुरों की झङ्कार करती हुई अभिसारिका स्त्रियाँ चलती थीं वहाँ अब शोर मचाती हुई शृगालियाँ फिरा करती हैं। चिल्लाते समय उनके मुँह से आग की चिनगारियाँ निकलती हैं। उन्हीं के प्रकाश में वे मुर्दा जानवरों का मांस ढूँढ़ा करती हैं।

यह बहुत पुरानी किंवदन्ती है कि चिल्लाते समय शृगालियों के मुँह से अग्नि—कम से कम प्रकाश—निकलता है। शकुन-सम्बन्धी ग्रन्थ वसन्तराज में लिखा है—

कुवेरकाष्ठां प्रति यः प्रयाति
ज्वालामुखी वाभिमुखी विरौति।
तस्याध्वगस्याभिमतार्थसिद्धि-
र्भवेच्च सम्पत्तिफलागमश्च ॥

इसमें "ज्वालामुखी" पद शृगाली का ही विशेषण है। श्रीमद्भागवत के भी पहले स्कन्ध के चौदहवें अध्याय में लिखा है—

शिवैषोद्यन्तमादित्यमभिरौत्यनलानना।

इसमें भी वही "अनलानना"—अर्थात् ज्वालामुखी पद, शिवा (शृगाली) ही के लिए आया है। इससे सूचित है कि प्राचीन समय में लोगों का विश्वास था कि शृगालियों के मुँह से आग निकलती है। पर मुँह से आग क्यों और कैसे निकलती है और शृगालियाँ उससे जल क्यों नहीं जातीं, इसका क्या समाधान? कई विद्वानों से हमने इस विषय में पूछ-पाछ की, पर किसीने ठीक उत्तर न दिया। उस दिन हम नवम्बर १९ का "माडर्न रिव्यू" नामक मासिक पत्र देख रहे थे। उसमें "जापान मैगेज़ीन" के एक लेख के कुछ अंश उद्धृत थे। लेख का विषय था—पशु-जासूस। जापान में बहुत पुराने ज़माने से जासूसी के कितनेही काम जानवरों से लिये जाते हैं। अब तो इस काम में और भी उन्नति हुई है। जासूसी के लिए कुत्ते, चूहे और लोमड़ियाँ ही विशेष कर काम में लाई जाती हैं। लोमड़ी के विषय में उक्त लेख में लिखा है—

"The fox can even make light for his master when the darkness is too extreme. All that the master has to do is to give him a certain kind of bone to carry, and as he breathes on it there is an emission of phosphorescence that the man can easily see and follow the animal. The bone can be picked up often in the mountains where skeletons of dead animals are found."

मतलब यह कि एक विशेष प्रकार की हड्डी मुँह से दाबने पर लोमड़ी का श्वासवायु जो उस पर पड़ता है तो वह चमक उठती है। इसका कारण फास्फर है। पर वह हड्डी कौन सी है—शरीर के किस भाग की और किस जानवर की, इसका विवेचन लेख में नहीं। लोमड़ी और शृगाल प्रायः एक ही जाति के जानवर हैं। सम्भव है, शृगाल और शृगालियों के श्वास से भी वह अस्थि-विशेष चमकने लगती हो। क्या आश्चर्य्य जो कालिदास के समय में भारत में भी वही धारणा रही हो जो जापान में थी और अब भी है। अतएव ऊपर दिये गये रघुवंश के श्लोक में जिस उल्का या ज्वाला का उल्लेख है वह अस्थि-विशेष-विषयक फास्फर की ही चमक हो सकती है। शरीर-शास्त्र और विज्ञान के विशेषज्ञों को इसकी खोज करनी चाहिए।

१५—अवध के तअल्लुक़ेदार।

दो तीन वर्ष हुए सरस्वती में एक नोट निकला था। उसमें प्रसङ्गवश तअल्लुक़ेदारों का भी कुछ उल्लेख था। उसे पढ़ कर हमारे एक क्षत्रिय-मित्र को बहुत बुरा लगा। पर, वे विश्वास करें, किसीको बुरा लगने के इरादे से वे बातें न लिखी गई थीं। अवध में कितने ही तअल्लुक़ेदार ऐसे हैं जो काश्तकारों और दूसरे पेशेवालों के भी सुख-दुःख को अपना ही सुख-दुःख समझते हैं, उनका भला करने की सदा चेष्टा किया करते हैं, उनके लिए तरह तरह के सुभीते कर देने में दत्तचित्त रहते हैं। वे जानते हैं कि उनकी बेहतरी इन्हीं लोगों की बेहतरी पर अपना दारोमदार रखती है। ऐसे समझदार, सुशिक्षित और उदार-हृदय तअल्लुक़ेदारों के तअल्लुक़े के लोग सदैव ही उनकी शुभकामना किया करते हैं। पर ऐसे भूमिस्वामी बहुत नहीं। बहुत तो दूसरे ही प्रकार के हैं, जिनके विषय में कुछ कहना समय को नष्ट करना और श्रम को व्यर्थ कर देना है। उनकी कमज़ोरियों को कौन नहीं जानता? रेवेन्यू बोर्ड और कोर्ट आव् वार्ड्स की रिपोर्ट उनकी योग्यता की गवाही खुले मैदान दे रही हैं। जो अपने घर का प्रबन्ध नहीं कर सकते, जो आमदनी से दूना तिगुना ख़र्च करते हैं, जो इलाक़े बेचते चले जाते हैं, जो व्यसनों के दास हो रहे हैं उनकी बहुत कुछ रक्षा दूसरों ही को—गवर्नमेंट को—करनी पड़ती है। पर यह काफ़ी नहीं। यदि परमेश्वर ने स्वयं ही रक्षा न की और इन

लोगों की दशा न सुधरी तो हमारे मित्र महाशय की वकालत कुछ भी काम आने की नहीं। इन लोगों की दुर्गति या अधःपात अवश्यम्भावी समझिए।

तअल्लुक़ेदारों के कुछ अन्धभक्तों का ख़याल है कि ज़मीन के स्वाभाविक स्वामी तअल्लुक़ेदार ही हैं। ये भक्तजन न संस्कृत की पुरानी पुस्तकें पढ़ेंगे, न मुसल्मान इतिहास-लेखकों के इतिहास ही पढ़ेंगे और न उन्नीसवें शतक के अँगरेज़ लेखकों के रोज़नामचे ही पढ़ेंगे। बस, बिना सोचे समझे अपनी ही हाँकते जायँगे। यदि ये विज्ञ जन कर्नल स्लीमन की लिखी हुई एक ही पुस्तक पढ़ डालें तो इनकी आँखें खुल जायँ। तो इन्हें मालूम हो जाय कि अवध के शाही ज़माने में कुछ को छोड़कर और लोगों ने किस तरह तअल्लुक़े प्राप्त किये थे। यह भी न करें तो ज़रा इस प्रान्त का गैज़ेटियर ही उठाकर प्रस्तुत विषय के दो चार पन्ने पढ़ डालें। आशा है, ऐसा करने से फिर उन्हें यह कहने का साहस न होगा कि सभी वर्तमान तल्लुक़ेदारों के पूर्वजों ने जङ्गल साफ़ कर करके भूमि को जोतने-बोने लायक़ बनाया था। अतएव उस पर उन्हीं का स्वत्व है और होना भी चाहिए। सोचने की बात है कि क्या अवध के सूबे में सर्वत्र जङ्गलही जङ्गल था और उसमें मनुष्य नहीं, शेर-बबर, चीते, भेड़िए और रीछ आदि ही रहते थे? यदि हाँ, तो तअल्लुक़ेदारों के पूर्वज किस लोक, देश, या प्रान्त से कब यहाँ आये और कब, किस तअल्लुक़ेदार के किस पूर्वज ने, कहाँ और कितना जङ्गल साफ़ किया। यह भी विचार करने की बात है कि क्या जङ्गल साफ़ करनेवालों के ही वंशज इस समय अवध के वर्तमान तअल्लुक़ों की बदौलत महलों में रहते और मोटरों पर दौड़ते हैं? असल बात क्या है सो छिपी नहीं। वह सर्वथा इतिहास-प्रसिद्ध है। लार्ड डलहौसी ने किस नीति से काम लिया था और १८५७ के ग़दर के बाद, किस अभिप्राय से, लार्ड केनिंग ने उस नीति को बदल दिया था, यह किस साक्षर और सुशिक्षित मनुष्य को मालूम नहीं। ये बातें अभी बहुत पुरानी नहीं हुईं। आश्चर्य्य है, लोग इन्हें इतना जल्द भूल गये। इस विषय में बहुत लोगों को भ्रम हो रहा है। उसके दूरीकरण की आवश्यकता है।

१६—घी-दूध की महँगी।

देश में चारे की कमी के कारण पशुओं को यों भी पेट भर चारा नहीं मिलता। प्रत्येक गाँव में थोड़ी सी गोचर-भूमि परती छोड़ देने के लिए ज़मींदारों, नम्बरदारों, राजा-रईसों और गवर्नमेंट से अनेक बार प्रार्थनायें की गईं; पर अभी तक यह सब कहना सुनना अरण्यरोदन ही के सदृश फलीभूत हुआ है। एक तो काफ़ी चारा यों ही नहीं, दूसरे अनावृष्टि के कारण बार बार दुर्भिक्ष। इससे, विशेष करके राजपूताने और गुजरात में, लाखों पशु मर गये और मरते चले जा रहे हैं। फल यह हुआ है कि गायों की कमी के कारण बछड़े भी कम हो गये हैं। बछड़े ही कम हैं तो बैलों की संख्या कैसे बढ़ सकती है। खेती का काम बिना बैलों के चल नहीं सकता। कमी के कारण उनकी क़ीमत दूनी तिगुनी हो गई है। जिस बैल की क़ीमत पहले ५०) थी, वह अब १००) देने से भी नहीं मिलता। कृषक दाने दाने को मुहताज। इतना रुपया वे लावें कहाँ से। इस दशा में भगवान् और उसके बाद सरकार ही अब कृषि की, कृषकों की और भारत की रक्षा करे तो कर सकती है, और कोई नहीं। चारे के अभाव और गायों की कमी के कारण ख़ालिस दूध अब छोटे छोटे शहरों में भी ।) सेर नहीं मिलता। घी की तो बात ही न पूछिए। उसका भाव तो अब छः छटाँक तक पहुँच गया है। घी-दूध अब देहात में भी दुर्लभ हो रहा है। कुछ ही दिनों में वह कहीं कहीं अलभ्य हो जायगा, ऐसे लक्षण प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं। इस दुरवस्था के मूल कारण की अब वही दशा होना चाहती है जो दशा दाद पर खाज होने से मनुष्य की होती है। दक्षिणी अमेरिका में एक देश ब्रेज़ील है। वहाँ के कुछ व्यवसायियों ने अब इस देश पर चढ़ाई की है। उनका पहला धावा गुजरात और काठियावाड़ पर हुआ है। ये वही प्रान्त हैं जहाँ चारे की बहुत कमी है—जहाँ अनावृष्टि के कारण हज़ारों पशु पहले ही मर चुके हैं। ये व्यवसायी इन प्रान्तों से गायें ख़रीद ख़रीदकर ब्रेज़ील भेज रहे हैं। गत दिसंबर में, बम्बई के क़ानूनी कौंसिल में, एक मेम्बर ने इस विषय का एक प्रश्न पूछा। उससे सूचित होता है कि कोई ६० हज़ार गायें ये लोग अब तक बम्बई-प्रान्त से भेज चुके हैं। गायें बाहर भेजी जा रही हैं, इस बात को गवर्नमेंट ने

स्वीकार किया है। उसने गायों की संख्या आदि के विषय में जाँच करने का वादा भी किया है। यदि यह व्यापार जारी रहा तो किसी दिन घी दूध दवा के लिए भी शायद मुशकिल से मिल सके और बैलों की जगह शायद कृषकों को खुद ही हल में जुतना पड़े। इसी से बम्बई के जीवदया-विस्तारक मण्डल ने एक प्रार्थनापत्र भेजकर बम्बई के गवर्नर से विनती की है कि सरकार, इस व्यापार को बन्द करा दीजिए। ईश्वर करे, इस मण्डल की दयासागर मण्डली की प्रार्थना सफल हो।

१७—तृतीय भारत-सङ्गीत-सम्मेलन।

भारतवर्षीय सङ्गीत-सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन १९ से २२ दिसम्बर तक काशी में हुआ। महाराजा बनारस सभापति थे। स्वागतकारिणी सभा के सभापति माननीय राजा मोतीचन्द और प्रधान मन्त्री श्रीयुत शिवेन्द्रनाथ वसु थे। काशी के बड़े बड़े सभी रईस स्वागतकारिणी सभा के सदस्य थे। बाहर से भी अनेक सज्जन पधारे थे। दर्शकों की संख्या भी कम न थी।

सङ्गीत-सम्मेलन, बनारस

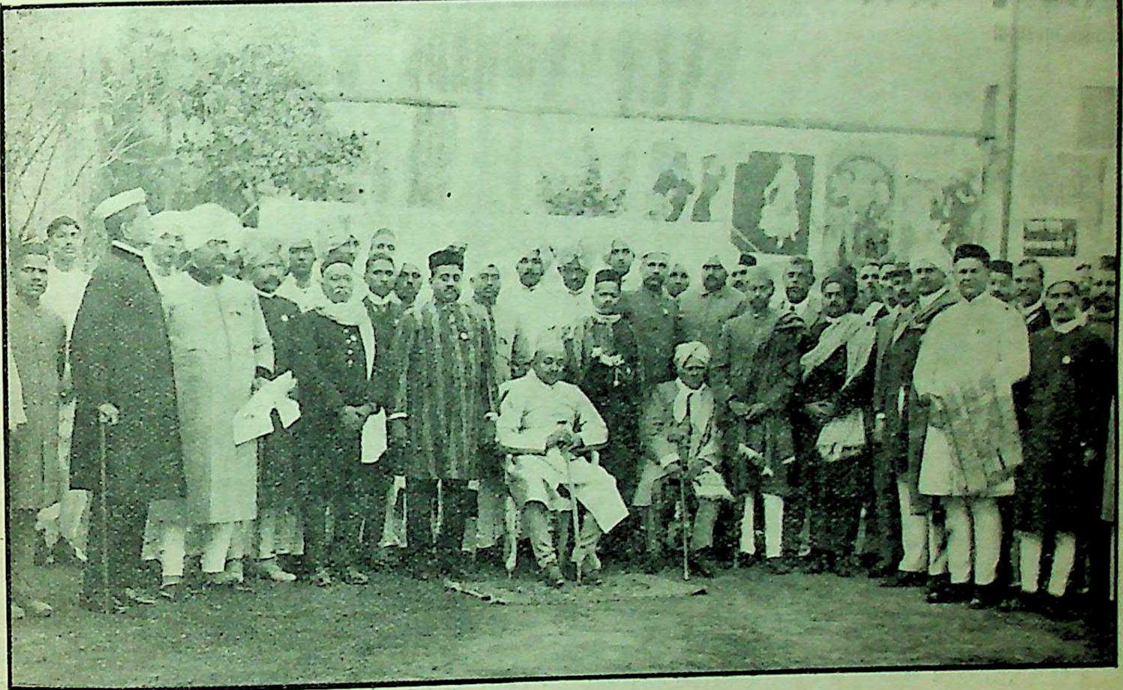

स्वागतकारिणी समिति के सदस्य

पहले दिन, चार बजे, महाराज बनारस विश्वेश्वर थियेटर हाल में पधारे। स्वागतकारिणी के सभासदों ने स्वागत किया। यहीं एक चित्र लिया गया। तब महाराज सभा में पधारे। बालकों ने मङ्गलाचरण किया। स्वागतकारिणी सभा के प्रधान ने अपना वक्तव्य पढ़ा। महाराज बनारस का भाषण, जो विशुद्ध हिन्दी में था, उनके प्राइवेट सेक्रेटरी ने पढ़ सुनाया। फिर बरोदे का वृन्दवाद्य (देशी बैंड) बजा। इसके बाद स्वर-लिपि तथा पदक इत्यादि देने का निश्चय करनेवाली समिति का चुनाव हुआ। अनन्तर

बेगम फ़ैज़ी ने म्यूज़िक एकैडमी पर अपना लेख पढ़ा और मिस्टर फ्रेडलिस ने स्वरलिपि पर व्याख्यान दिया। दोनों अँगरेज़ी में हुए। फिर पण्डित विष्णु दिगम्बर हिन्दी में बोले।

बरोदा, पटियाला, अलवर, धौलपुर, इन्दौर, भाव-नगर, टीकमगढ़, रामपुर और बर्दवान—इन रियासतों से गुणी लोग रईसों के भेजे हुए आये थे। बहुत से गुणी जन अन्य स्थानों से अपनी खुशी से आये थे। विशेष कर इस सम्मेलन में गानेवालों की अपेक्षा बजानेवाले अच्छे अच्छे उस्ताद आये थे। जैसे वीनकार जमालुद्दीन ख़ाँ (बरोदा) और लतीफ़ ख़ाँ (इन्दौर)। सरोदिये करामतुल्ला ख़ाँ (कलकत्ता), फ़िदाहुसेन ख़ाँ (रामपुर) और सख़ावत ख़ाँ (शाहजहाँपुर)। सरंगिये मम्मन ख़ाँ (पटियाला) और बिन्दू ख़ाँ (इन्दौर)। मनमोहनलाल सितारिया (धौलपुर) और हरचरणलाल उपनाम लाला झल्लू पखावजी (टीकमगढ़)। बरोदे का देशी बैंड भी बहुत अच्छा था। बनारस की शहनाई अच्छी बजी और वहाँ के बीरू ने तबला बजाने में नाम पाया। प्रोफ़ेसर बरवे के ८ वर्ष के बालक मनहर बरवे का गाना, हारमोनियम और जलतरङ्ग बजाना मनोहर और आश्चर्यजनक काम थे। गाने बजाने के आदि, मध्य या अन्त में एक दो व्याख्यान भी हो जाते थे। प्रोफ़ेसर कृष्णराव और भातखण्डेजी अँगरेज़ी में और पण्डित श्रीकृष्ण जोशी और प्रोफ़ेसर बरवे हिन्दी में बोले। कई गुणी जनों को सोने और चाँदी के पदक दिये गये। महाराज बनारस ने पाँच सौ रुपया सम्मेलन की सहायता के लिए और पाँच स्वर्ण-पदक इसलिए दिये कि सभा जिस गुणी को योग्य समझे दे। आगामी अधिवेशन कलकत्ते में होगा।

सङ्गीत-सम्मेलन (बनारस) के गुणी

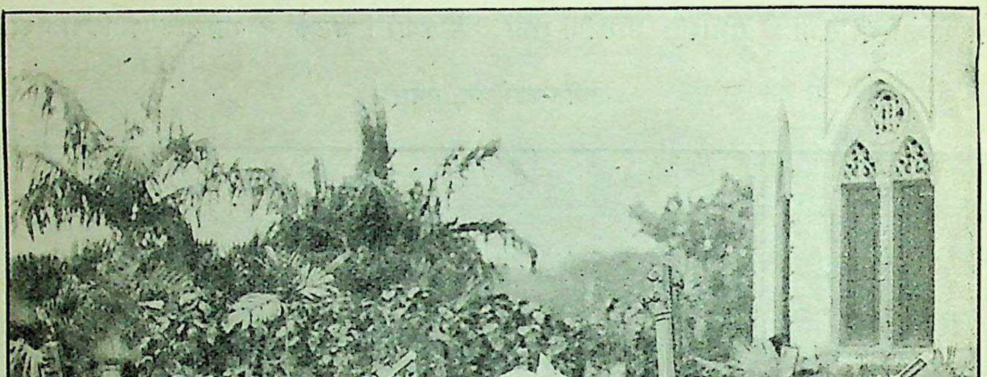

जमालुद्दीनख़ाँ, बीनकार
बरोदा

फ़िदाहुसेनख़ाँ, सरोदिया
रामपुर

१८—प्रतापगढ़ ज़िले के कोर्ट आव् वार्ड्स का एक आदर्श कार्य्य।

प्रतापगढ़ ज़िले के कोर्ट आव् वार्ड्स ने एक नवीन

और प्रशंसनीय कार्य्य का सूत्रपात किया है। वह चाहता है कि प्रत्येक किसान के जोत की भूमि एक ही स्थान में हो। अपने खेतों को जोतने-बोने आदि कामों के लिए किसान को इधर से उधर बार बार भटकना न पड़े। उसकी दृष्टि में वर्तमान प्रबन्ध ठीक नहीं; क्योंकि अधिकतर किसानों के जोत के खेत एक स्थान में न होने से—कुछ पूर्व में और कुछ दक्षिण में, यहाँ वहाँ, होने से—उन्हें अनेक असुविधायें तो होती ही हैं, हानि भी कम नहीं उठानी पड़ती। उसकी धारणा है, और बहुत ठीक है, कि यदि प्रत्येक जोत के खेत एक ही स्थान में हो जायँ तो उस जोत का किसान सरलतापूर्वक अपनी खेती कहीं अधिक अच्छे ढँग से कर सकेगा।

उक्त कोर्ट आव् वार्ड्स अपने विचार को कार्य्य में परिणत करने के पहले, उसे एक स्थान में, प्रयोग कर उसकी सफलता की परीक्षा लेने को तैयार हुआ है। इस काम के लिए उसने, अपने प्रबन्ध के अधीन, कालाकाँकर रियासत के मनार गाँव को चुना है। कोर्ट के अधिकारियों की इच्छा से उस गाँव के किसानों ने अपने अपने जोत के इस्तीफ़े लिख दिये हैं। अधिकारियों ने भी, पूर्व निश्चय के अनुसार, उचित रीति से, सारी भूमि किसानों को बाँट दी। अब, इस व्यवस्था से, प्रत्येक किसान की भूमि एक स्थान में हो गई। वे अपने खेतों की सिँचाई और उसकी उपज की देख-रेख सुभीते के साथ और सरलता-पूर्वक कर सकते हैं। खाद डालने के लिए भी अब उन्हें कई जगह न जाना पड़ेगा। यदि हैज़ा, प्लेग जैसी छूत की बीमारियों से वे अपने प्राण बचाना चाहें तो वहीं, अपने जोत की भूमि पर, घर बना कर आबाद भी हो सकते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था करने के सिवा, कोर्ट आव् वार्ड्स ने कृषि को उन्नत करने के लिए और भी कई तरह के सुभीते कर देने का वचन दिया है। इनमें देहाती बैंक खोलना और पड़ती भूमि का चरी बोने के लिए पट्टा करना भी उल्लेखनीय है।

इस विचार को कार्य्य में परिणत कर देनेवाले प्रतापगढ़ के डिपटी कमिश्नर, श्रीयुत बी० एन० मेहता, आई० सी० एस०, तथा स्पेशल मैनेजर, पण्डित चम्पाराम मिश्र, बी० ए० को धन्यवाद है।

इस तरह के प्रबन्ध के लिए अन्यान्य प्रान्तों में बहुत कुछ चर्चा हो चुकी है। गवर्नमेंट से लिखा-पढ़ी और कौंसिलों में बहस भी हुई है। पर अब तक इससे अधिक कुछ भी नहीं हुआ। प्रतापगढ़ के हिन्दुस्तानी डिपटी कमिश्नर और कोर्ट आव् वार्ड्स के मैनेजर ने इस काम का आरम्भ करके दूसरे प्रान्तों के लिए पथप्रदर्शक का काम कर दिखाया। उनको सहस्रशः साधुवाद।

पुस्तक-परिचय ।

१—फ़िजी में भारतीय प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा— इसका आकार मँझोला, काग़ज़ अच्छा, पृष्ठ-संख्या २४०, और मूल्य १) है। सुन्दर जिल्द चढ़ी हुई है। “एक भारतीय हृदय” ने इसकी रचना की है। कानपुर के “प्रताप प्रेस” से यह प्रकट हुई है। वहीं से मिलती भी है। भारत के बड़े ही हित-चिन्तक पादरी सी० एफ़० एंड्रयूज़ और डब्लू० डब्लू० पियर्सन साहब ने फ़िजी द्वीप में घूम फिर कर वहाँ के हिन्दुस्तानी कुलियों के विषय में एक रिपोर्ट अँगरेज़ी में प्रकाशित की थी। ५५ से २३७ सफ़े तक उसीका हिन्दी-अनुवाद इस पुस्तक में है। उसके पहले, ५४ सफ़े तक, अनुवादक महाशय ने, अपनी प्रस्तावना में, एंड्रयूज़ साहब की दूसरी रिपोर्ट या दूसरी दफ़े की फ़िजी-यात्रा से प्राप्त किये गये अनुभवों का वर्णन, अपनी टीका-टिप्पणी के साथ, किया है। फ़िजी में भारतीय कुलियों पर—प्रतिज्ञाबद्ध कुलियों पर—जो जो अत्याचार होते हैं और इस प्रथा के कारण उनके सदाचार पर जितने कठोर धक्के लगते हैं उनका वर्णन इस पुस्तक में पढ़ कर रोमाञ्च हुए बिना नहीं रहता। हमारे हज़ारों भाइयों और बहनों की इतनी दुर्गति हो और हम, शक्ति रहते भी, दो चार बूँद सन्तप्त अश्रु भी न बहावें, यह हमारे लिए क्या कलङ्क की बात नहीं? यद्यपि फ़िजी के लिए शर्त-बन्दी कुली-प्रथा बन्द कर दी गई है, तथापि अभी पहले गये हुए बहुत से भारतीय वहाँ ऐसे हैं जिन्हें दो तीन वर्ष तक फिर भी नरक-यातना भोगनी पड़ेगी, तब कहीं उनकी “गिरमिट” “ख़लास” होगी। इस कारण ऐसा उपाय होना चाहिए कि वे भी, समय के पहले ही, अपनी कृत-प्रतिज्ञा से छूट जायँ और फिर कभी शर्त्तों से बँध कर

भारतवासी फिजी या और भी किसी द्वीप या देश को कुलीगरी करने न जायँ। इसके सिवा, फिजी में जो कोई १० हज़ार भारतवासी बस गये हैं उनके लिए शिक्षा और रोग-निवारण का सुभीता कर देने की भी बड़ी ज़रूरत है। फिजी के भारतवासियों की दशा सुधारने के लिए "भारतीय हृदय" ने अपनी प्रस्तावना में जो उपाय बतलाये हैं उनको काम में लाना प्रत्येक समर्थ भारतवासी का कर्तव्य है। अतएव इस पुस्तक की एक कापी लेकर साक्षर भारतवासियों को अपने फिजी-प्रवासी भाइयों की दुःख-कहानी ज़रूर सुननी चाहिए; और यदि उनसे और कुछ न करते बने तो दो बूँद आँसू ही टपका देने की उदारता दिखानी चाहिए।

⁂

२—बालोद्यान—पण्डित गौरीशङ्कर भट्ट देवनागरी लिपि के सुलेखक हैं। लिपि-सम्बन्धिनी कई पुस्तकों और कापियों आदि का प्रचार आपने किया है। अब आपने बालोद्यान, अर्थात् किंडर-गार्टन, की तरफ़ ध्यान दिया है। काग़ज़ के ८ टुकड़ों से आपने देवनागरी वर्णमाला सिखाने की विधि निकाली है। यह विधि छोटे छोटे बच्चों के लिए है। इसकी सहायता से बच्चे खेल के बहाने नागरी वर्णों से सहज ही में परिचय प्राप्त कर लेते हैं। ये टुकड़े भिन्न भिन्न रङ्गों के हैं और प्रत्येक टुकड़े के कई कई अवयव हैं। साथ ही आपने बालोद्यान नामक एक पुस्तक, दो भागों में, प्रकाशित की है। पहले—आकृति खण्ड—में वर्णों और वर्णांशों की ३३९ रङ्गीन आकृतियाँ हैं और दूसरे—विवरण-खण्ड—में उन आकृतियों के मेल से वर्ण और अङ्क-निर्माण की विधि का वर्णन है। यह शिक्षकों के लिए है। पूर्वोक्त आठ टुकड़ों के संयोग से बने हुए अक्षर सुन्दर और सुडौल होते हैं। इन दोनों पुस्तकों और आकृतियों के टुकड़ों का मूल्य २।=) है। भट्टजी ही को लिखने से यह सब सामग्री मिलती है। आपका पता—ठिकाना पण्डित मुरलीधर शर्म्मा वैद्य, कछियाना मुहाल, कानपुर।

⁂

३—भारतीय शासन—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १०+१६७, छपाई बहुत साधारण, मूल्य चौदह आने, मिलने का पता—भारत बुकडिपो अलीगढ़। यह इस पुस्तक का दूसरा संस्करण है। पहले का परिचय सरस्वती में यथासमय दिया जा चुका है। पुस्तक के नामानुसार भारतीय शासन से सम्बन्ध रखनेवाली प्रायः सभी मोटी मोटी बातें इसमें लिखी गई हैं। इस संस्करण में बहुत कुछ परिवर्त्तन और परिवर्धन भी किया गया है। तथापि शासन-सुधार की नई पद्धति के अनुसार, अब इस पुस्तक को साद्यन्त दुहराने की ज़रूरत है, क्योंकि अब इसकी बहुत सी बातें पुरानी होगई हैं। लेखक बाबू भगवानदास केला को कृपा करके इसकी यह त्रुटि दूर कर देनी चाहिए। तभी पुस्तक पूर्णोपयोगी होगी।

चित्र-परिचय।

लङ्केश्वर रावण की रानी चित्राङ्गदा का पुत्र वीर-बाहु संग्राम में मारा गया। उसकी मृत्यु से दुःखित होकर रावण अपने विपक्षी रामचन्द्र से युद्ध करने को चला। उसके युद्धोद्योग से त्रैलोक्य कम्पित हो गया। समुद्र हिलोरें लेने लगा। वरुण की पत्नी वरुणानी ने इस हलचल क कारण अपनी सखी मुरला से पूछा। उससे सब बा सुनकर वरुणानी को अपनी सखी लक्ष्मीजी के लिए चिन्त हुई। वृत्रासुर ने जब सुरपुर में धूम मचाई थी तब लक्ष्मीजी समुद्र में आकर कुछ दिन रही थीं और वरुणानी प्रेम-सूत्र में आबद्ध हो गई थीं। वे लक्ष्मीजी, इस समय राक्षस-कुल की राजलक्ष्मी हैं। इस युद्ध के कारण कहीं विपन्न न हो जायँ—उनकी सखी की यह आशङ्का अस्वाभाविक नहीं।

लक्ष्मीजी का कुशल-समाचार लेने के लिए मुरल बड़ी फुर्ती से चली। उसकी केश-राशि परों के बीच में प है। बहुत सँभालने पर भी वस्त्र ज़रा इधर-उधर हो ग हैं और उसकी देह-यष्टि से सौन्दर्य फूटा पड़ता है। सन्दे पहुँचाने की लालसा उसको आकुल किये है। लक्ष्मीजी क भेंट में देने के लिए वह सुवर्ण का कमल लिये है। इ संख्या में प्रकाशित रङ्गीन चित्र का यही भाव है। बङ्गा कवि माइकेल मधुसूदन दत्त के मेघनाद-वध काव्य वर्णित इस विषय की कथा के आधार पर यह चित्र अङ्कि किया गया है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press. Allahabad.

SARASVATI—Reg. No. A248.

भाग २१, खण्ड १] फ़रवरी, १९२० [संख्या २, पूर्ण संख्या २४२

सरस्वती

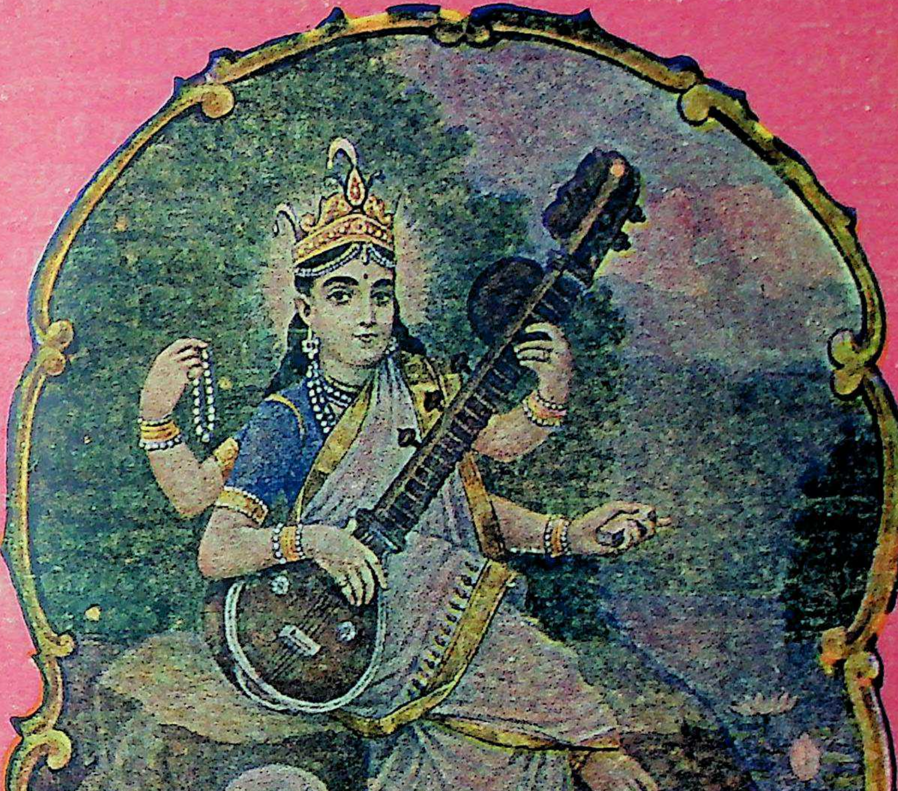

वार्षिक मूल्य ५)] सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।।)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित ।

लेख-सूची ।

पृष्ठ
(१) प्रार्थना (कविता)—[लेखक, बाबू देवीप्रसाद गुप्त, बी० ए० ... ... ६३
(२) अध्यापक जुलियस एगलिङ्ग, पी-एच० डी०—[लेखक, पण्डित कामताप्रसाद गुरु... ६३
(३) भारत में आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या—[लेखक, पण्डित दयाशङ्कर दुबे, एम० ए० ... ... ६५
(४) वन-वैभव [१] (कविता)—[लेखक, बाबू मैथिलीशरण गुप्त ७४
(५) पश्चिमी अर्थ शास्त्र का सूक्ष्म इतिहास—[लेखक, बाबू बेनीमाधव मेहरोत्र, बी० ए० ७६
(६) नागरी लिपि में सुधार की आवश्यकता—[लेखक, पण्डित बदरीनाथ भट्ट, बी० ए० ... ... ८४
(७) प्रेम-विह्वल (कविता)—[लेखक, बाबू सियारामशरण गुप्त ८६
(८) विजली क्या है ?—[लेखक, श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, इ० इ० ... ८६
(९) युद्ध-सम्बन्धी विचारों की उत्पत्ति—[लेखक, पण्डित वनमालीप्रसाद शुक्ल ... ९०
(१०) प्रतिज्ञा (कविता)—[लेखक, पण्डित गोकुलचन्द्र शर्म्मा ९७
(११) शान्ति कविता)—[लेखक, पण्डित विश्वम्भरनाथ शर्म्मा, कौशिक ९८
(१२) सेवासदन (समालोचना)—[लेखक, बाबू कालिदास कपूर, बी० ए०... ... १०२
(१३) अभिलाष } —[लेखक, बाबू
(१४) आज तक जाना नहीं } ज्योतिषचन्द्र घोष १०६
(१५) योरप का महायुद्ध और हिन्दुस्तान का सराफ़ा [१]—[लेखक, श्रीयुत कस्तूरमल बांठियां, बी० कामर्स १०६
(१६) विविध विषय १०९
(१७) पुस्तक-परिचय १२२
(१८) भीषण वज्रपात १२६

चित्र-सूची ।

१—श्रीयुत बाबू हरिपद घोष ।
२-४—भारतीय सङ्गीत-सम्मेलन (काशी) के ३ चित्र ।
५—जनमेजय का यज्ञस्तम्भ ।
६—सिद्ध पुष्करिणी ।
७—श्रीयुत हरिश्चन्द्र, एम० एस-सी० ।

नई पुस्तक ! नई पुस्तक

स्व० राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवा

मेघदूत

सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०

महाकवि कालिदास का यह काव्य बहुत प्रसिद्ध
हिन्दी में भी इसके एकाधिक अनुवाद हो गये हैं ।
साधारण में उनका ख़ासा आदर है । हिन्दी में मेघदू
अनुवाद सबसे प्रथम राजा लक्ष्मणसिंहजी ने किया
सन् १८८४ में इसका दूसरा, और सन् १८९३ में
संस्करण प्रकाशित हुआ था । किन्तु ऐसा अच्छा अ
इधर अप्राप्य हो रहा था । इसलिए सुन्दर अक्षरों
अच्छे काग़ज़ पर, हमने इसका नया संस्करण, हिन्दी-हितै
के अनुरोध से प्रकाशित किया है । मूल श्लोक के
ही उसका सरस पद्यानुवाद है । विषय को समझाने के
मूल संस्कृत के साथ, नीचे, टिप्पणियाँ हैं; और भाषा
के नीचे, फुटनोट हैं । जिनमें पद्य का सरल भावार्थ है । म
यह कि इस पुस्तक में गद्यानुवाद भी है और पद्यानुवाद
दो रङ्गीन चित्र भी हैं । महाकवि कालिदास की कविता
साथ ही साथ राजा साहब के सरस गद्य-पद्य का भी आ
लीजिए । मूल्य सिर्फ़ ।।=) दस आने ।

डाकघर

डाकघर कैसा है ?—इसके लिए इतना
लिखना काफ़ी है कि यह डाकूर रवीन्द्रनाथ ठा
की रचना है । कहानी के बहाने एक विशेष वि
पर विचार हैं । पात्रों के साथ आप पुस्तक की
कीजिए । यदि ध्यान दीजिएगा तो उस विषय
भेट हो जायगी, कहानी का आनन्द है ही । मतल
यह कि पुस्तक सभी के काम की है । भाषा स
है । विषय को समझाने के लिए आवश्यकतानुस
टिप्पणियाँ भी दे दी गई हैं । कहानी छोटी है कि
सरस अधिक है । मूल्य ।–) पाँच आने ।

मिलने का पता—

मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग

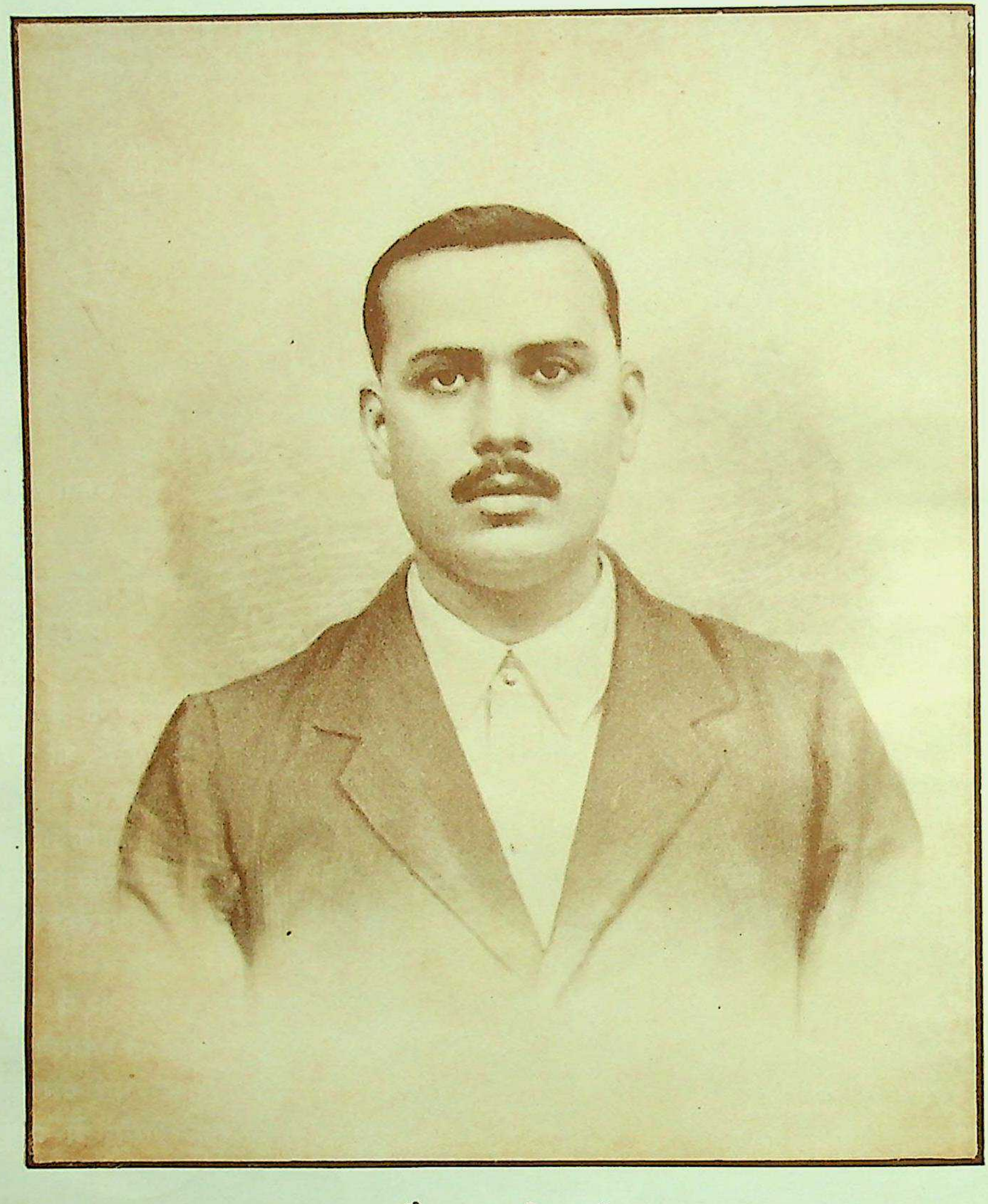

स्वर्गीय बाबू हरिपद घोष

[भूतपूर्व मैनेजर इंडियन प्रेस, प्रयाग]

जन्म—
४ एप्रिल १८९३

निधन—
२५ फ़ेब्रुअरी १९२०

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका।

भाग २१, खण्ड १] फ़रवरी १९२०—फाल्गुन १९७६ [संख्या २, पूर्ण संख्या २४२

प्रार्थना ।

प्रभो ! अब दीजे यह वरदान ।
कलह, कलुषता को हम छोड़ें,
प्रेम-भाव से नाता जोड़ें,
आलस-दुर्गुण से मुख मोड़ें, बनें गुणों की खान ॥
देश-भक्ति हो एक सहारा,
देश-भक्ति हो जीवन-धारा,
देश-भक्ति हो धर्म हमारा, धरें उसीका ध्यान ॥
बुरे भाव हम दूर भगावें
सद्भावों से स्नेह लगावें,
विद्या-बल अब हम सब पावें, चढ़ें ज्ञान-सोपान ॥
जागृत हो निज दशा विचारें
देश-दशा पर तन मन वारें
अधमों को भी हम उद्धारें, करें सभी का मान ॥
उन्नति की अवली छा जावे,
कुसुमाकर अति शोभा पावे,
हरा-भरा सब विध हो जावे यह भारत-उद्यान ॥

देवीप्रसाद गुप्त

अध्यापक जुलियस एगलिङ्ग, पी-एच० डी० ।

योरप के, विशेष कर जर्मनी के, जिन विद्वानों ने संस्कृत का योग्य अध्ययन करके अच्छी ख्याति प्राप्त की है उनमें अध्यापक जुलियस एगलिङ्ग भी हैं। इस समय आप इस संसार में नहीं हैं, पर आपकी प्रसिद्धि वर्तमान है। आपका देहान्त मार्च १९१८ में हो गया।

डाक्टर एगलिङ्ग का जन्म, सन् १८४२ में, जर्मनी के हेकलिञ्जन नामक गाँव में हुआ था। आपने पहले वर्नबर्ग के ग्रामर-स्कूल में शिक्षा पाई और फिर ब्रेसला तथा बर्लिन के विश्वविद्यालयों में प्राचीन संस्कृत तथा संस्कृत-शब्द-शास्त्र का अध्ययन किया। प्रथम स्थान में आपके शिक्षक अध्यापक स्टेञ्ज़लर थे, जिनकी गम्भीर विद्वत्ता से आपने तीन वर्ष लाभ उठाया, और दूसरे स्थान में आपके गुरु अध्यापक

अलफ़्रेक्ट वेबर थे, जो संस्कृत के एक प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् होगये हैं। योग्यता का प्रमाण-पत्र प्राप्त करके जुलियस एगलिङ्ग महाशय, सन् १८६७ में, इस विचार से इँगलेंड गये कि इंडिया आफ़िस और रायल एशियाटिक सोसायटी के पुस्तकालयों में रक्खे हुए हस्त-लिखित संस्कृत-ग्रन्थों का अध्ययनादि कार्य करें; पर उसी वर्ष आप प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ मोक्षमूलर को ऋग्वेद के प्रथम संस्करण के सम्पादन में सहायता देने के लिए आक्सफ़र्ड चले गये। दो वर्ष पीछे वे रायल एशियाटिक सोसायटी के सेक्रेटरी नियुक्त किये गये और सन् १८७२ में, जब इनकी अवस्था केवल ३० वर्ष की थी, लन्दन के यूनिवर्सिटी कालेज में संस्कृत के अध्यापक बनाये गये। सन् १८७५ में जब अध्यापक आफ़्रेक्ट ने एडिनबरा-विश्वविद्यालय में संस्कृत और तुलनात्मक शब्द-शास्त्र का पद त्यागा तब डाकृर एगलिङ्ग उनके उत्तराधिकारी नियत किये गये। इस पद पर आप सन् १९१४ तक अर्थात् लगभग चालीस वर्ष प्रतिष्ठित रहे।

संस्कृत भाषा के साहित्य में आपका कार्य तीन दिशाओं में रहा—संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचीपत्रों का सङ्कलन, संस्कृत-व्याकरणों का सम्पादन और एक विस्तृत ब्राह्मण-ग्रन्थ का अनुवाद।

इन्होंने अध्यापक कावेल के साथ, सन् १८७५ में, रायल एशियाटिक सोसायटी में संरक्षित बौद्धों की हस्त-लिखित संस्कृत-पुस्तकों की प्रतियों का सूचीपत्र सङ्कलित करके छपवाया। पर इस सम्बन्ध में इन्होंने विशेष परिश्रम इंडिया आफ़िस में रक्षित हस्त-लिखित पुस्तकों पर किया। इस कार्य में ये बीस वर्ष से अधिक लगे रहे! सन् १८६९ में, डाकृर रोस्ट के प्रस्ताव पर, यह निश्चय हुआ था कि इंडिया आफ़िस के पुस्तकालय की हस्त-लिखित संस्कृत-पुस्तकों का एक नया सूचीपत्र प्रकाशित किया जाय, क्योंकि सर चार्ल्स विलिकन्स और अध्यापक एच० एच० विल्सन के हस्त-लिखित सूचीपत्रों के पर्चे उस समय पुराने हो चुके थे। इस काम के लिए डाकृर हाज़, डाकृर एगलिङ्ग और डाकृर विंडिश चुने गये। दक्षिण भारत की लिपियों में ताल-पत्र पर लिखी पोथियों का काम डाकृर रोस्ट को सौंपा गया। इस सूचीपत्र के सात भाग छप चुके हैं, जिनमें १६२८ पृष्ठ हैं। पहला भाग सन् १८८६ में और अन्तिम भाग १९०४ में छपा था। इन सब भागों का सङ्कलन अथवा सम्पादन अध्यापक एगलिङ्ग ने अकेले ही किया था; केवल चौथे भाग में डाकृर विंडिश ने सहायता दी थी। पीछे और कामों में लग जाने के कारण आप इस विषय को समाप्त न कर सके। आज-कल इस काम की समाप्ति आपके उत्तराधिकारी अध्यापक कीथ कर रहे हैं।

लन्दन में रहते समय अध्यापक एगलिङ्ग ने संस्कृत-व्याकरणों का अध्ययन आरम्भ कर दिया था। परिणाम यह हुआ कि आपने "बिबलियोथिका इंडिका" नामक ग्रन्थमाला में (१८७४–७८ में) सर्ववर्मा का "कातन्त्र" प्रकाशित किया। सर्ववर्मा पिछले संस्कृत-वैयाकरणों में बड़े प्रभावशाली हो गये हैं। इस ग्रन्थ के पश्चात इन्होंने, सन् १८७९—८० में, वर्द्धमान के, सन् ११४० के लिखे हुए "गणरत्न-महोदधि" का संस्करण निकाला। इसमें पाणिनि के व्याकरण के परिशिष्ट में दिये हुए गण-पाठ के गणों (शब्द-समूहों) की व्यवस्था छन्दों में की गई है।

इन दोनों ग्रन्थों के छपने के पश्चात् और सूचीपत्रों का सङ्कलन करते समय आप बीस वर्ष तक अपने महत्कार्य्य अर्थात् शतपथ-ब्राह्मण के अनुवाद में लगे रहे। वैदिक साहित्य में शतपथ बहुत बड़ा और बड़े महत्त्व का ब्राह्मण-ग्रन्थ है। यह अनुवाद "पूर्व की पवित्र पुस्तक-माला" (Sacred Books of the East) के पाँच भागों में क्रमशः सन् १८८२, १८८५, १८९४, १८९७ और १९०० में प्रकाशित हुआ है। जिस महत् कार्य्य में आप दीर्घकाल तक परिश्रम करते रहे उसके समाप्त होने पर आपको आनन्द के बदले खेद हुआ! इसका कारण यह था कि अनेक वर्षों से साथ रहनेवाला आपका प्यारा मित्र अब अलग होगया और आपको अपना मन और हृदय शून्य जान पड़ने लगा!

ऊपर लिखे ग्रन्थों के सिवा अध्यापक एगलिङ्ग ने "एन्साइक्लोपीडिया ब्रटानिका" में ब्राह्मण-धर्म, हिन्दू-धर्म और संस्कृत भाषा तथा साहित्य पर, और "चेम्बर्स एन्साइक्लोपीडिया" में वेद और संस्कृत पर अनेक उपयोगी लेख और निबन्ध लिखे हैं।

एडिनबरा-विश्वविद्यालय में पिछले दश वर्ष तक आप संस्कृताध्यापक होने के अतिरिक्त पुस्तकालय के अध्यक्ष भी रहे और उस समय सीनेट की कई समितियों में भी योग दिया करते थे। आप एडिनबरा-विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि होकर रोम, ब्रेसला, बर्लिन और लिपज़िग के विश्वविद्यालयों की शत-जयन्तियों में सम्मिलित हुए शे। पूर्व-विद्या-पण्डितों के जो कई सम्मेलन योरप में हुए उनमें भी आप बहुधा उपस्थित होते थे।

डाकृर एगलिङ्ग एडिनबरा-विश्वविद्यालय में जिस रीति से तुलनात्मक शब्द-शास्त्र पढ़ाते थे उससे जान पड़ता था कि आपको इस शास्त्र के पिछले वैज्ञानिक सिद्धान्तों से विशेष सहानुभूति नहीं थी अर्थात् आपके कुछ विचार वैसे ही पुराने ढर्रे के थे जैसे हमारे देश के अधिकांश संस्कृतज्ञों के होते हैं। तो भी आपने जिस अवस्था में जैसा अध्ययन और अध्यापन किया है वह भारतवर्ष के विद्वानों के लिए उज्ज्वल उदाहरण है।

अँगरेज़ी साहित्य पर भी अध्यापक महाशय का अनुराग था। स्काट्स, डिकिन्स, बर्न्स और टैनीसन के ग्रन्थ आपको बहुत प्रिय थे। जर्मन कवि गेटे के आप बड़े भक्त थे; क्योंकि वह आपकी मातृ-भाषा का कवि था।

स्काटलेंड में आपने लगभग चालीस वर्ष व्यतीत किये थे। अतएव उस देश पर आपकी बहुत कुछ प्रीति हो गई थी। गेटे का कथन है कि "जहाँ तू काम करता है वहीं तेरी जन्मभूमि है"। इस कथन पर डाकृर एगलिङ्ग की बड़ी श्रद्धा थी। उन्हें अपने यथार्थ जन्म-स्थान पर भी बड़ा अनुराग था और गरमी की छुट्टियों में आप वहाँ बहुधा जाया करते थे। जिस समय युद्ध का आरम्भ हुआ उस समय आप छुट्टी में घर पर थे। इस कुयोग से आपका अन्तिम समय बड़ी ही विचित्र रीति से व्यतीत हुआ। आपकी जर्मन "राष्ट्रीयता" इतने वर्षों में नियमानुसार नष्ट हो चुकी थी और आप स्काटलेंड में "अपनाये" भी नहीं गये थे। आपने अपने कार्य्य-क्षेत्र (स्काटलेंड) को लौटने के लिए बहुत प्रयत्न किये; पर आपको न तो जर्मन "पास" मिला और न ब्रिटिश। इसलिए आपको चालीस वर्ष के कुछ पूर्व ही एडिनबरा-विश्वविद्यालय के पास अपना त्याग-पत्र भेजना पड़ा। तब आप, एक गाँव में, अपनी लड़की के घर चले गये और वहाँ अपने नातियों के साथ आनन्द से दिन विताने लगे। वहीं, ७६ वर्ष की उम्र में, आपका शरीर छूट गया*।

कामताप्रसाद गुरु

भारत में आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या।

जीवन का मुख्य आधार अन्न है। पेट की भली भाँति पूजा किये बिना कोई भी मनुष्य अपना काम अच्छी तरह नहीं कर सकता। यदि कुछ दिनों तक अन्न न मिले तो मृत्यु का सामना करना पड़ता है। दुर्भिक्ष के

---

*मुग्धानलाचार्य्य के एक नोट के आधार पर।

समय में अन्न के अभाव से बहुतेरे मनुष्य अपने प्राणों का बलिदान देते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु मामूली समय में भी यदि किसी मनुष्य को, कुछ दिनों तक, लगातार आधे पेट खाने को मिले तो धीरे धीरे उसकी शक्तियों का ह्रास होने लगेगा और एक न एक रोग का शिकार बन कर अन्त में उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। सन् १८७० में डाक्टर दादाभाई नौरोजी ने अपनी एक पुस्तक "Poverty and Unbritish rule in India." में यह अच्छी तरह से सिद्ध करके दिखा दिया था कि उस समय अधिकांश भारतवासियों को भर पेट खाना मुश्किल से मिल सकता था। प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता सर विलियम हण्टर ने स्वीकार किया है कि भारत में ४ करोड़ मनुष्यों को, जन्म भर, आधा पेट खाकर ही रहना पड़ता है। सन् १९०१ में विलियम डिगबी साहब ने भी, अपनी पुस्तक में, डाक्टर दादाभाई नौरोजी के उक्त कथन का बहुत अच्छी तरह समर्थन किया है। १९०१ की और इस समय की दशा में अवश्य ही बहुत कुछ परिवर्तन होगया है। परन्तु खेद की बात है कि डिगबी साहब के बाद, अभी तक, किसी ने आधे पेट भोजन पानेवाले मनुष्यों की संख्या का पता लगाने का, निष्पक्ष-भाव से, प्रयत्न नहीं किया। अब भी देश के कई नेताओं का मत है कि हमारे करोड़ों देशवासियों को आधे पेट खाकर ही जन्म बिताना पड़ता है और ऐसे मनुष्यों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है; परन्तु दूसरे पक्षवाले इसका बड़े ज़ोरों के साथ खण्डन करते हैं। इसलिए, इस प्रश्न को हल करने की आवश्यकता और भी बढ़ गई है। देश में अनाज की वार्षिक माँग और उसकी वार्षिक पूर्ति का अन्दाज़ा किये बिना आधे पेट भोजन पानेवालों की संख्या का हिसाब लगाना सम्भव नहीं। इसलिए हम नीचे, इन्हीं दो बातों का, अन्दाज़ा लगाने का प्रयत्न करते हैं। इसमें हम उन्हीं चिट्ठों (Statistics) से काम लेंगे जो सरकारी रिपोर्टों में दिये हुए हैं।

भारतवर्ष में बहुत से देशी राज्य भी सम्मिलित हैं। परन्तु सरकारी रिपोर्टों में उनके सम्बन्ध में सब प्रकार के ब्यौरे नहीं रहते। इसलिए केवल ब्रिटिश भारत के सम्बन्ध में ही इन बातों की जाँच करना ठीक होगा। अनाज की उपज वर्षा पर, बहुत कुछ, आश्रित रहती है और प्रति वर्ष वर्षा एक सी होती नहीं। किसी वर्ष अधिक होती है, किसी वर्ष कम। और अनाज भी जिस वर्ष उत्पन्न होता है उसी वर्ष सबका सब खा नहीं लिया जाता। इसलिए यदि एक ही वर्ष का हिसाब लगाया जायगा तो उससे प्रश्न का सन्तोषदायक उत्तर न मिल सकेगा। अतएव हमने सन् १९११-१२ से १९१७-१८ तक सात वर्षों के अनाज की माँग और पूर्ति का हिसाब लगाना उचित समझा है। इसमें भले-बुरे सब प्रकार के वर्ष आजायँगे और उनका औसत लगाने पर विश्वास-जनक परिणाम निकलेगा। उन सात वर्षों में, कृषि की दृष्टि से, सन् १९११-१२, १२-१३, १४-१५, १५-१६ और १७-१८ साधारण वर्ष थे। १९१६-१७ अच्छा वर्ष था और १९१३-१४ ख़राब।

अब हम, देश के अनाज की वार्षिक माँग का अन्दाज़ा लगाने का प्रयत्न करते हैं। इसके लिए हमें तीन बातों का पता लगाने की आवश्यकता है—

(अ) यदि हम यह मान लें कि सब मनुष्यों को भर पेट खाने को मिल जाता है, तो भारतवासियों को अपना स्वास्थ्य ठीक बनाये रखने के लिए कितने अनाज की आवश्यकता होती है?

(ब) गाय, बैल इत्यादि पशु वर्ष भर में कितना अनाज खा लेते हैं?

(स) और बीज के लिए कितना अनाज आवश्यक है?

अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए, भारतवासियों को साल में कितने अनाज की आवश्यकता है? इसका हिसाब लगाते समय यह जानना आवश्यक है कि अपनी आयु के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को प्रति दिन कितने अनाज की आवश्यकता पड़ती है। अकाल के समय सरकार की ओर से जो काम खोले जाते हैं वहाँ काम करनेवालों को इतना ही वेतन दिया जाता है जिससे वे केवल अपने स्वास्थ्य की रक्षा कर सकें। संयुक्त-देश, पञ्जाब, बङ्गाल, बम्बई और मदरास के अकाल-नियमों (फ़ेमिन-कोडों) में निम्नलिखित मिहनताना लिखा हुआ है।

कोष्टक नं० (१)

उन मनुष्यों के लिए जो मज़दूरी करते हैं—		
मिट्टी खोदनेवाले	१८	छटांक अनाज
सामान ढोनेवाले	१४	,, ,,
मिहनत करनेवाले बालक	१०	,, ,,
काम न कर सकने योग्य मनुष्यों के लिए—		
युवा पुरुष	१२	,, ,,
युवती स्त्रियाँ	१०	,, ,,
बालक १०–१४ वर्ष	८	,, ,,
,, ७–१० ,,	६	,, ,,
,, ७ वर्ष के नीचे	४	,, ,,
,, गोद के बच्चे के लिए—		
बालक की माँ को	३	,, ,,

और संयुक्त-प्रदेश, पञ्जाब और बम्बई के अकाल-नियमों (फ़ेमिन-कोडों) में यह भी लिखा है कि यदि पका-पकाया अन्न मनुष्यों को दिया जाय तो नमक, मसाला, तेल, लकड़ी इत्यादि के एवज़ में कुछ अन्न कम भी कर लेना चाहिए। बङ्गाल के "फ़ेमिन-कोड" में लिखा है कि काम करनेवालों और काम न करनेवाले युवा मनुष्यों के हिस्सों में से २ छटांक और १४ से ७ वर्ष तक के बालकों के हिस्सों में से १ छटांक अन्न, पूर्वोक्त वस्तुओं के एवज़ में, कम कर लेना चाहिए। इसलिए यदि पका हुआ भोजन दिया गया तो, उम्र के लिहाज़ से, वह इस परिमाण में दिया जायगा—

कोष्टक नं० (२)

उम्र	अन्न का परिमाण
वर्ष	छटांक
० से १	—
१ से २	३ (बालक की माँ को)
२ से ५	४
५ से १०	५
१० से १५	७ से ८ तक
१५ से ५० (मर्द)	१० से १६ तक
१५ से ५० (औरत)	८ से १२ तक
५० से ऊपर	× × ×

मध्यप्रदेश की १८९६ वाली अकाल-नियमावली (फ़ेमिनकोड) में भी अन्न का परिमाण इसी प्रकार निर्दिष्ट है और वहाँ के जेल-मेन्युअल में क़ैदियों को प्रति दिन जितना अन्न दिया जाता है उसका परिमाण भी लिखा है। अस्पताल में रोगी को पूरा भोजन जिस परिमाण में दिया जाता है उसका उल्लेख भी उक्त मेन्युअल में है। ये बातें नीचे के कोष्टक में बताई गई हैं।

कोष्टक नं० (३)

(छटांकों में)

उम्र (वर्ष)	मज़दूरी फ़ेमिन-कोडों से	पके-पकाये भोजन का परिमाण फ़ेमिन-कोडों से	मध्यप्रदेश के फ़ेमिन-कोड से भोजन का परिमाण	जेल-मेन्युअल के अनुसार भोजन का परिमाण	अस्पताल में दिया जानेवाला पूरा भोजन
१ से २	३	३	...	...	...
२ से ५	४	४	३½	...	...
५ से १०	६	५	७	...	...
१० से १५	८ से १०	७ से ८	१०½	..	...
१५ से ५० (मर्द)	१२ से १८	१० से १६	१४	११ से १५	१५
१५ से ५० (औरत)	१० से १४	८ से १२	१२	११	१५
५० से ऊपर	...	...	...	...	...

कोष्टक नम्बर ३ में भोजन देने के जो विभिन्न परिमाण बताये गये हैं उनका मिलान आपस में करके हमने, अपने हिसाब के लिए, अवस्था के अनुसार, भोजन का परिमाण इस प्रकार लेना ठीक समझा है—

कोष्टक नं० (४)

उम्र (वर्ष)	प्रति दिन भोजन का परिमाण (छटांकों में)
१ से २	२½
२ से ५	४
५ से १०	६
१० से १५	८
१५ से ५० (मर्द)	१४
१५ से ५० (औरत)	१२
५० से ऊपर	१०

साथ ही साथ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि भारत में ग़रीब आदमी रूखा सूखा अन्न खाकर ही रहते हैं। अतएव उनके लिए १४ छटांक भोजन अवश्य ही बहुत कम होगा। और सम्भव है कि उससे वे अपने स्वास्थ्य की रक्षा करने में अच्छी तरह समर्थ न हों। हमारे कृषक तो, अधिक परिश्रम करने के कारण, १ सेर से भी अधिक प्रति दिन खा लेते हैं। इसलिए हम यह मानने को तैयार हैं कि कई मनुष्य १४ छटांक से अधिक अन्न प्रति दिन खाते हैं; परन्तु इसके साथ यह न भूल जाना चाहिए कि जो रोगी रहते हैं वे १४ छटांक से आधा भी नहीं खा सकते। जो मांसाहारी हैं वे अवश्य ही १४ छटांक से कम अन्न खाते होंगे। इसलिए हमने जान बूझ कर १४ छटांक के परिमाण से हिसाब लगाने का निश्चय किया है। इसमें यदि कुछ ग़लती हो भी तो उससे अन्तिम परिमाण कम ही होगा, अधिक नहीं।

उम्र के अनुसार प्रति मनुष्य के लिए अन्न की दैनिक आवश्यकता का परिमाण निकालने के उपरान्त अब हमें यह जानना चाहिए कि अवस्था के लिहाज़ से ब्रिटिश भारत की मनुष्य-संख्या कितनी है। १९११ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में यह संख्या इस प्रकार है—

कोष्टक नं० (५)

उम्र (वर्षों में)	मनुष्य-संख्या
० से १	८० लाख
१ से २	४० ,,
२ से ५	२१२ ,,
५ से १०	३४५ ,,
१० से १५	२७० ,,
१५ से ५० (मर्द)	६१० ,,
१५ से ५० (स्त्रियां)	६०६ ,,
५० से ऊपर	२८० ,,

सात वर्षों में मनुष्य-संख्या अवश्य ही कुछ न कुछ बढ़ी होगी। इसलिए यदि पूर्व-निर्दिष्ट संख्या १ फ़ी सदी प्रति वर्ष बढ़ा दी जाय तो ठीक होगा। परन्तु एक सरकारी रिपोर्ट (Statistics of British India, Vol. III) देखने से मनुष्य-संख्या में कुछ अधिक न्यूनाधिकता नहीं प्रतीत होती। इसलिए जब तक १९२१ की मर्दुमशुमारी से ठीक ठीक मनुष्य-संख्या न मालूम हो जाय तब तक १९११ की मर्दुमशुमारी के अनुसार ही हिसाब लगाना ठीक होगा।

अवस्था के अनुसार मनुष्य-संख्या और अन्न की आवश्यकता का परिमाण जान लेने पर समूचे ब्रिटिश भारत के अनाज की वार्षिक आवश्यकता के परिमाण का अन्दाज़ा लगाना बहुत सरल है। यह हिसाब नीचे, एक कोष्टक में, लगाया गया है।

कोष्टक नं० (६)

उम्र (वर्षों में)	मनुष्य-संख्या (लाख)	अन्न का परिमाण (छटांकों में) *	प्रति दिन के लिए अनाज की आवश्यकता	टन
० से १	८०	—	—	
१ से २	४०	२½	५५८·०	टन
२ से ५	२१२	४	४७३२·१	,,
५ से १०	३४५	६	११५५१·३	,,
१० से १५	२७०	८	१२०५३·६	,,
१५ से ५० मर्द)	६१०	१४	४७६५६·३	,,
१५ से ५०(औरतें)	६०६	१२	४०५८०·४	,,
५० से ऊपर	२८०	१०	१५६२५·०	,,
प्रति दिन का कुल परिमाण			१३२७५६·७	,,
प्रति वर्ष का कुल परिमाण			४८४·६	लाख टन

---

*यहां छटांक का वज़न हमने २ औंस के बराबर लिया है

यदि हम यह मानलें कि जनता को भरपेट खाने को मिल जाता है तो प्रति वर्ष भारतवासियों को ४८४·६ लाख टन अनाज की आवश्यकता होती है। याद रखिए, १ टन कोई २७ मन का होता है। अब हमको यह जानना आवश्यक है कि गाय, बैल और अन्य पशु कितना अनाज खा जाते हैं और बीज बोने में कितना अनाज ख़र्च होता है। बैलों, गायों, भैंसों और घोड़ों की संख्या सरकारी रिपोर्ट (Agricultural Statistics of India, Vol. I) में इस प्रकार दी हुई है—

कोष्टक नं० (७)

सन् ईसवी	बैल (लाख)	गाय (लाख)	भैंस (लाख)	घोड़े (लाख)
१९११–१२	४६६	३६७	१३६	१९
१९१२–१३	४६३	३५४	१२५	१८
१९१३–१४	४७५	३६५	१२९	१८
१९१४–१५	४८६	३७५	१३५	१८
१९१५–१६	४९१	३७८	१३६	१८
१९१६–१७	४९४	३७६	१३७	१८
१९१७–१८	४९३	३७५	१३६	१७

जब बैलों को दाना दिया जाता है तब उसकी मात्रा अवश्य ही आध सेर से अधिक रहती है। परन्तु यह मान लेना ठीक न होगा कि सभी बैलों को बराबर दाना दिया जाता है। ऐसे बैलों की ही संख्या बहुत होगी जिन्हें दाना बिलकुल दिया ही नहीं जाता। इसलिए उनके सम्बन्ध में प्रति दिन आध सेर अनाज दिये जाने का औसत मान लेना ठीक होगा। गायों और भैंसों को, जब वे दूध नहीं देतीं तब, प्रायः अनाज नहीं दिया जाता। जब वे दूध देने लगती हैं तभी उन्हें खली, बिनौले वग़ैरह भी दिये जाते हैं। इसलिए उन गायों के सम्बन्ध में जो दूध देती हैं और जिनकी संख्या उनकी कुल संख्या की आधी से अधिक न होगी, प्रति दिन १ सेर अनाज दिये जाने का औसत लगाना अधिक न होगा। दुधार भैंसों को गायों की अपेक्षा अधिक परिमाण में दाना दिया जाता है। इसलिए उनके सम्बन्ध में १½ सेर अनाज प्रति दिन दिये जाने का औसत मान लिया गया है। घोड़ों को दाना ज़रूर दिया जाता है। उसका परिमाण १½ सेर प्रति दिन के हिसाब से कम नहीं हो सकता। इसलिए हमने अपने हिसाब में वही औसत मान लेना ठीक समझा है।

जब प्रति वर्ष जानवरों की संख्या मालूम हो गई और यह भी ज्ञात हो गया कि प्रति दिन उनको दाने में कितना अनाज दिया जाता है तब इस बात को जान लेना बहुत सरल हो जाता है कि वे प्रति वर्ष कितना अनाज खा जाते हैं। हिसाब लगाने पर उस अनाज का परिमाण नीचे लिखे अनुसार है—

कोष्टक नं० (८)

१९११–१२	१३७·३	लाख टन
१९१२–१३	१३३·८	,, ,,
१९१३–१४	१३६·४	,, ,,
१९१४–१५	१४०·९	,, ,,
१९१५–१६	१४२·३	,, ,,
१९१६–१७	१४२·७	,, ,,
१९१७–१८	१४१·३	,, ,,

भिन्न भिन्न चीज़ों की फ़सल के लिए प्रति एकड़ प्रायः निम्न-लिखित परिमाण में बीज की आवश्यकता होती है।

कोष्टक नं० (९)

चावल	१२ सेर
गेहूँ	२४ सेर
जौ	२० सेर
ज्वार	६ सेर
बाजरा	२ सेर
मकई	१० सेर
चना	१६ सेर
रगी	१२ सेर
अन्य प्रकार के अनाज	८ सेर

भारत में प्रति वर्ष कितने एकड़ ज़मीन में भिन्न भिन्न प्रकार का अनाज बोया गया, यह हिसाब सरकारी रिपोर्टों (Agricultural Statistics, Vol. I) में इस प्रकार है—

कोष्टक नं० (१०) (लाख एकड़ों में)

सन् ईसवी	११–१२	१२–१३	१३–१४	१४–१५	१५–१६	१६–१७	१७–१८
चावल	७६६.४	७८७	७६९	७७७	७८७	८१०	८०७
गेहूँ	२५०	२३९	२२७	२५५	२३९	२५१	२६४
जौ	८४	७४	७२	७९	८०	७९·९	८५
ज्वार	१८४	२०९	२१४	२१२	२३०	२१९	२११
बाजरा	१३१	१६३	१५४	१६०	१४३	१५२	१२७
मकई	५६	६३	६२	६२	६७	६५	६५
चना	१५१·३	१२४	९२	१४४	१३६	१५७	१६७
रगी	४३	४४	४४	४२	४३	४०·७	४३
अन्य प्रकार के अनाज	२९५	३०९	२८१	३१४	३११	३१६	३०५

जब यह मालूम हो गया कि कितने एकड़ ज़मीन में भिन्न भिन्न प्रकार के अनाज बोये जाते हैं और एक एकड़ ज़मीन में कितने बीज की आवश्यकता होती है तब यह बहुत सरलता से मालूम किया जा सकता है कि प्रति वर्ष भारत में, सिर्फ़ बोने के लिए, कितना बीज लगता है। वह नीचे लिखे अनुसार है—

कोष्टक नं० (११)

१९११–१२	२१·४	लाख टन
१९१२–१३	२१·६	,, ,,
१९१३–१४	२०·१	,, ,,
१९१४–१५	२२·४	,, ,,
१६१५–१६	२२·२	,, ,,
१९१६–१७	२३·०	,, ,,
१९१७–१८	२३·१	,, ,,

अब भारतवासियों को अपना स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए जितना अनाज चाहिए वह तथा बैल, गाय वग़ैरह जितना अन्न खा जाते हैं वह, और बीज के रूप में जितना ख़र्च होता है वह सब जोड़ देने से मालूम हो जाता है कि देश की अनाज की वार्षिक मांग कितनी है। वह इस प्रकार है—

कोष्टक नं० (१२)

(लाख टन में)

सन्	मनुष्यों के लिए	जानवरों के लिए	बीज के लिए	मीज़ान
१९११–१२	४८४·६	१३७·३	२१·४	६४३·३
१९१२–१३	४८४·६	१३३·८	२१·६	६४०·०
१९१३–१४	४८४·६	१३६·४	२०·१	६४१·१
१९१४–१५	४८४·६	१४०·९	२२·४	६४७·९
१९१५–१६	४८४·६	१४२·३	२२·२	६४९·१
१९१६–१७	४८४·६	१४२·७	२३·०	६५०·३
१९१७–१८	४८४·६	१४१·३	२३·१	६४९·०

अब हम देश की सालाना अनाज की पूर्ति का अन्दाज़ा लगाने का प्रयत्न करते हैं। इसके लिए हमें निम्नलिखित चार बातें जानने की आवश्यकता है—

(१) भारतवर्ष में प्रति वर्ष भिन्न भिन्न अनाजों की उपज कितनी हुई ?

(२) उस उपज का कितना भाग नष्ट हो गया ?

(३) देशी राज्यों से रेलों और नावों द्वारा ब्रिटिश भारत में कितना अनाज आया और कितना वहाँ भेजा गया ?

(४) अन्य देशों को भारत ने प्रति वर्ष कितना अनाज भेजा ?

हमारी भारत-सरकार एक रिपोर्ट (Estimate of Area and Yield) प्रति वर्ष प्रकाशित करती है। उस रिपोर्ट से पता लग जाता है कि समूचे भारतवर्ष में चावल, गेहूँ, जौ, ज्वार, बाजरा, मकई और चना कितना पैदा हुआ। परन्तु उसमें कहीं कहीं देशी राज्यों की उपज भी शामिल रहती है और कई जगह अपूर्ण भी रहती है। इस रिपोर्ट में हिसाब दे दिया जाता है कि भिन्न भिन्न अनाज कितने एकड़ों में बोया गया। वह हिसाब कोष्टक नं० १० (Agricultural Statistics) में दी हुई संख्या से प्रायः भिन्न रहता है। इसलिए, त्रैराशिक लगा कर, हमने यह अन्दाज़ा लगाया है कि कोष्टक नं० १० में दिये हुए अङ्कों के अनुसार कितनी उपज होगी। परन्तु इतना जान लेने पर भी हमें कुछ और अनाजों की उपज इस रिपोर्ट से मालूम नहीं हो सकती। हम कोष्टक नं० १० से यह जानते हैं कि प्रति वर्ष अन्य प्रकार का अन्न कितने एकड़ में बोया गया था। यदि यह मालूम हो जाय कि प्रति एकड़ इनकी कितनी उपज साधारणतः होती है तो काम चल जायगा। पूर्वोक्त रिपोर्ट से पता लगता है कि १ एकड़ ज़मीन में ५७४ सेर रगी नामक अनाज पैदा होता है। श्रीयुत एन० जी० मुकर्जी, एम० ए०, ने अपनी पुस्तक (Handbook of Agriculture) में अन्य प्रकार के अनाजों की उपज प्रति एकड़ के हिसाब से दी है, जिनका औसत २५० सेर होता है। इसलिए हमने अपने हिसाब में अन्य प्रकार के अनाजों के लिए २५० सेर प्रति बीघा उपज मान ली है। इस प्रकार भिन्न भिन्न अनाजों की उपज, प्रति वर्ष, नीचे लिखे अनुसार है।—

कोष्टक नं० (१३)

(लाख टन में)

सन् ईसवी	११–१२	१२–१३	१३–१४	१४–१५	१५–१६	१६–१७	१७–१८
चावल	३५६	३१२	३०७	२८०	३३०	३४६	३५४·५
गेहूँ	८८	७७	६९	७९	६८	७७	७१·५
जौ	३०·२	२७	२७·५	३०·७	३३·५	३४	३३·८
ज्वार	३५	४४	४०·७	५२	६०	५१·२	४०·६
बाजरा	१७	२४	२२	२७	२९·१	२९	१६·६
मकई	२०·७	२३	२२·१	२९	२६	२३·५	२४·५
चना	४७	३६	२१	४१	३५	४४	४५.९
रगी	२२	२२·५	२२·५	२१·५	२२	१९	२२
अन्य प्रकार के अनाज	६५·८	६८·८	६२·६	७०	६९·४	७२·२	६८
मीज़ान	६८१·७	६३४·३	५९४·४	६३०·२	६७३	६९५·९	६८१·४

जब से फ़सल पकने लगती है और अनाज खाया जाने लगता है उसके बीच के समय में कई तरह से अनाज व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। कभी कभी तो फ़सल, कुसमय पानी पड़ने से, खेत में या खलिहान में ही सड़ जाती है। कभी कभी खलिहान में बहुत सा अनाज और कई तरह से ख़राब हो जाता है। पशु-पक्षी बहुत सा अनाज खा जाते हैं। कीड़े भी बहुत सा अनाज नष्ट कर देते हैं। जब अनाज भर कर या बोराबन्दी करके रख दिया जाता है तब चूहे, घूस इत्यादि के भण्डारे का तो पूछना ही क्या है। वे मनमाना अनाज खाते हैं। अनाज खाने योग्य बनाने में छिलका, भूसी वग़ैरह निकालने में भी कुछ भाग नष्ट जाता है। और उसे साफ़ करने या बीनने छानने में भी यही हाल होता है। खाने-पकाने में भी कभी कभी बहुत नुक़सान हो जाता है और विवाह एवं अन्य उत्सवों में पका-पकाया बहुत सा अन्न व्यर्थ नष्ट जाता है। कभी, बाढ़ आने पर, कभी अग्निप्रकोप से, या नावों इत्यादि के डूबने से भी बहुत सा अनाज नष्ट जाता है। यह सब सोच कर, हमने उपज के दसवें भाग को इस प्रकार से नष्ट होने की मद में डाल देना ठीक समझा है। असल में इससे अधिक भाग ही नष्ट होता है। कोष्टक नं० १३ में दी हुई उपज से १० फ़ी सैकड़ा भाग निकाल लेने पर नीचे लिखे अनुसार उपज रह जाती है—

कोष्टक नं० (१४)

१९११–१२	६१३·५ लाख टन
१९१२–१३	५७०·९ ,, ,,
१९१३–१४	५३५·० ,, ,,
१९१४–१५	५६७·२ ,, ,,
१९१५–१६	६०५·७ ,, ,,
१९१६–१७	६२६·३ ,, ,,
१९१७–१८	६१३·३ ,, ,,

भारतीय सरकार द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट (Inland Trade, Rail and River-borne) में इस बात का लेखा है कि काश्मीर, राजपूताना, मध्यभारत, हैदराबाद और मैसूर से ब्रिटिश-भारत में कितना अनाज आता है और उनमें यहाँ से कितना जाता है। वह इस प्रकार है—

कोष्टक नं० (१५)

(लाख टन में)

सन् ईसवी	देशी राज्यों से आया	देशी राज्यों को गया	अधिकता
१९११–१२	४·६०३	२·०४६	२·५५७
१९१२–१३	६·२४७	३·१४६५	३·१००५
१९१३–१४	५·६६८	२·८९५५	२·७७२५
१९१४–१५	४·६०२५	२·९४५	१·६५७५
१९१५–१६	५·५९४५	३·२१२५	२·३८२
१९१६–१७	६·१५६	२·६९७५	३·४५८५
१९१७–१८	५·१८५	२·१२३५	३·०६१५

इस कोष्टक से यह विदित होता है कि देशी राज्यों में भारत से अनाज जाने की अपेक्षा वहाँ से ब्रिटिश भारत में आता ही अधिक है। इसलिए इस अधिकता की मात्रा भारत की उपज में जोड़ दी जानी चाहिए। सरकारी रिपोर्ट (Trade Review) में, जो भारत-सरकार द्वारा प्रति वर्ष प्रकाशित होती है, भारत से अन्य देशों को भेजे गये अनाज का हिसाब रहता है। वह नीचे लिखे अनुसार है—

कोष्टक नं० (१६)

	लाख टन
१९११–१२	५१·१०४५ ,, ,,
१९१२–१३	५५·०५६ ,, ,,
१९१३–१४	४१·७६२५ ,, ,,
१९१४–१५	२५·३२२ ,, ,,
१९१५–१६	२३·७८८ ,, ,,
१९१६–१७	२९·०१९५ ,, ,,
१९१७–१८	४५·०९३ ,, ,,

ये संख्यायें भारत की वार्षिक उपज में से घटा देनी होंगी। इस प्रकार भारत की सालाना अनाज की पूर्ति यह हुई—

कोष्टक नं० (१७)

(लाख टन में)

	उपज	देशी राज्यों से आयात की अधिकता	अन्य देशों को निर्यात	अन्तिम पूर्त्ति
१९११–१२	६१३·५	२·६	५१·१	५६५·०
१९१२–१३	५७०·९	३·१	५५·०	५१९·०
१९१३–१४	५३५·०	२·८	४१·७	४९६·१
१९१४–१५	५६७·२	१·७	२५·३	५४३·६
१९१५–१६	६०५·७	२·४	२३·८	५८४·३
१९१६–१७	६२६·३	३·५	२९·०	६००·८
१९१७–१८	६१३·३	३·१	४५·१	५७१·३

हम भारत में अनाज की प्रति वर्ष की माँग और उसकी पूर्त्ति का अन्दाज़ा लगा चुके। दोनों को, नीचे, एक ही कोष्टक में दिखाने पर यह सहज ही मालूम हो जाता है कि प्रति वर्ष भारत में अनाज की न्यूनता रही और वह नीचे लिखे अनुसार है—

कोष्टक नं० (१८)

(लाख टन में)

	अनाज की मांग	अनाज की पूर्त्ति	न्यूनता
१९११–१२	६४३·३	५६५·०	७८·३
१९१२–१३	६४०·०	५१९·०	१२१·०
१९१३–१४	६४१·१	४९६·१	१४५·०
१९१४–१५	६४७·९	५४३·६	१०४·३
१९१५–१६	६४९·१	५८४·३	६४·८
१९१६–१७	६५०·३	६००·८	४९·५
१९१७–१८	६४९·०	५७१·३	७७·७

हम जानते हैं कि एक जवान पुरुष को कम से कम १४ छटाँक अन्न अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए आवश्यक है। इसलिए वह वर्ष भर में $\frac{१४ \times ३६५}{१६ \times १४ \times ४ \times २०} = \frac{७३}{१६ \times १६}$ टन खायगा। यदि हम प्रति वर्ष की न्यूनता की संख्या में इस $\left(\frac{७३}{१६ \times १६}\right)$ संख्या का भाग दें तो यह मालूम होगा कि उस न्यूनता के कारण कितने मनुष्यों को, वर्ष भर, किसी प्रकार का अन्न प्राप्त किये बिना ही रहना पड़ता होगा। परन्तु लगातार वर्ष भर भूखे रह कर जीवित रहनेवाले बहुत ही कम मनुष्य पाये जा सकते हैं। प्रायः ऐसे मनुष्य बहुतायत से पाये जाते हैं जो हमेशा आधा पेट ही खाकर जीवन धारण किये रहते हैं। इसलिए यदि हम ऊपर दी गई संख्या को दो से गुणा करें तो हमें प्रति वर्ष आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या ज्ञात हो जाती है। नीचे के कोष्टक में इन आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या बतलाई गई है, और यह भी दिखाया गया है कि जवान स्त्री-पुरुषों में से फ़ी सैकड़ा कितने मनुष्य इस प्रकार आधा पेट अन्न खाकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

कोष्टक नं० (१९)

	आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या		प्रति सैकड़ा—(ऐसे युवा मनुष्य)
१९११–१२	५४९	लाख	४५·१
१९१२–१३	८४८	,,	६९·७
१९१३–१४	१०१६	,,	८३·५
१९१४–१५	७३१	,,	६०·१
१९१५–१६	४५५	,,	३७·४
१९१६–१७	३४७	,,	२८·५
१९१७–१८	५४५	,,	४४·८
			औसत ५२.७

इस कोष्टक से मालूम होता है कि सन् १९१६–१७ में, जो कि कृषि की दृष्टि से बहुत अच्छा वर्ष था, आधा पेट भोजन पानेवालों की संख्या प्रायः ३½ करोड़ थी और यह संख्या १९१३–१४ में १० करोड़ तक पहुँच गई थी! सात वर्ष का औसत निकालने पर प्रकट होता है कि ५२·७ फ़ी सैकड़ा युवा मनुष्यों को, या यों कहिए कि देश के आधे जवान स्त्री-पुरुषों ही को, हमेशा आधा पेट भोजन करके ही जीवन व्यतीत करना पड़ता है। पाठक इससे स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं कि देश की आर्थिक दशा सुधारने की, इस समय, कितनी आवश्यकता है। यह दशा देख कर ऐसा कौन सच्चा देशहितैषी मनुष्य होगा जिसको रोमाञ्च न हो आता होगा? देश की ऐसी गिरी दशा देख कर आँखों में आँसू आये बिना नहीं रहते। परन्तु केवल आँसू गिराने से ही काम न चलेगा। प्रारब्ध को दोष देकर

हाथ पर हाथ धरे अकर्मण्य बने बैठे रहने से क्या कोई मनुष्य अपनी उन्नति कर सकता है ? इस समय हमारा प्रथम कर्तव्य यही है कि हम अनाज की इस क्षति की पूर्त्ति करने का तन, मन, धन से प्रयत्न करें। इस क्षति की पूर्ति करने के केवल दो ही मुख्य साधन हैं—एक तो देश से बाहर जानेवाले अनाज का परिमाण घटा देना और दूसरा, देश में अनाज की उपज बढ़ाना। इन दोनों विषयों पर हम अपने विचार किसी अन्य लेख में प्रकट करेंगे। अन्त में परमेश्वर से प्रार्थना है कि हे जगत्पिता, देश की उन्नति होने में जितनी बाधायें हैं उन्हें शीघ्र ही हटा दीजिए और देशवासियों को अपना कर्तव्य पालन करने की शक्ति प्रदान कीजिए, जिससे हमारा देश फिर शीघ्र ही उन्नति के शिखर पर पहुँचे।

दयाशङ्कर दुबे

वन-वैभव।

(१)

अतुल वह अपना हेमागार
जला कर कर देने को छार
जानकीरूपी आग अपार
चुराने का करके कुविचार
चला जो रावण निपट निषिद्ध
मङ्गलाचरण करे वह सिद्ध

(२)

"तुम्हारे भाई बेचारे
जुए में जो सब कुछ हारे
विपिन में दीन-भाव धारे
भटकते हैं मारे मारे
न जानें कैसे हैं वे लोग
यहाँ हम करते हैं सुख-भोग

(३)

ख़बर लें उनकी चलो ज़रा
कि वन में होगा हृदय हरा
वहाँ है निर्मल नीर भरा
और मृगया के योग्य धरा"
शकुनि की सुन यों गूढ़ गिरा
हँसा दुर्योधन हठी निरा

(४)

"ख़बर की तुमने ख़ूब कही
उचित है, मामा, हमें यही
पिता की आज्ञा किन्तु रही
वहाँ मृगया ही मुख्य सही !"
कर्ण ने कहा—"धन्य लक्षी,
एक ढेले में दो पक्षी !"

(५)

विकट यह तीन तिकट मिल के
हँसा फिर खिल खिल कर खिल के
हौसले ले लेकर दिल के
ताड़ कर करके तिल तिल के
सफल करने अभिलाष नया
अन्ध नृप निकट तुरन्त गया

(६)

कहा दुर्योधन ने—"हे तात !
लगी है कुछ सिंहों की घात
विपिन में है उनका उत्पात
जहाँ है अपना पशु-संघात
करेंगे हम मृगया वन में
घोष-यात्रा की है मन में"

(७)

सुना भूपति ने "हूँ" करके
"ठीक है" कहा आह भर के
"हेतु हैं किन्तु वहाँ डर के
विचारो तुम्हीं ध्यान धर के
वहीं पाण्डव भी रहते हैं
दुःख मन ही मन सहते हैं

(८)

देख कर तुमको सम्मुख हाय !
क्रोध उनका न कहीं जग जाय
रहेगा तो फिर कौन उपाय ?
न समझो तुम उनको असहाय
शक्ति उनकी है सबको ज्ञात
सुरों में भी है यश विख्यात"

(९)

शकुनि ने कहा—"व्यर्थ यह सोच
प्रबल हों वे चाहे हों पोच
कहूँगा यह मैं निस्सङ्कोच
नहीं है उनके मन में मोच
न हो जब तक अज्ञात निवास
करेंगे वे न विरोधाभास"

(१०)

भूप को दे कर यों सन्तोष
साथ लेकर बहु जन, धन-कोष
दैव का लिये अलक्षित रोष
घोष-यात्रा का करके घोष
जले पर नमक छिड़कने हाय !
चला वह कुरु-कुल का समुदाय

(११)

धरा को धसका कर मातङ्ग
बढ़े दिखला कर निज गति-रङ्ग
उड़ा कर उसकी धूल तुरङ्ग
चले ज्यों चपल अपाङ्ग सभङ्ग
भूमि पर सङ्कट-सा आया
उसे ऊँटों ने उकसाया

(१२)

मुदित थे सब यात्री मन में
समाती स्फूर्ति न थी तन में
नया जीवन था जन जन में
कि होगा अब विहार वन में
जहाँ जिस रात पड़ाव पड़ा
हुआ कौतुक-सा वहाँ खड़ा

(१३)

शान्त वन भी नव नगर बना
वहाँ जब शिविर-समूह तना
उठा कोलाहल घोर घना
हुए सब खग, मृग भीत-मना
जिधर पाण्डव थे, वे भागे
ख़बर-सी देने को आगे !

(१४)

आज पाण्डव वन-वासी हैं
पास वे दास न दासी हैं
न भोगी हैं, न विलासी हैं
उदासी हैं, संन्यासी हैं
कहाँ वे विभव विलीन हुए ?
देशपति जो थे, दीन हुए !

(१५)

द्रुमों की छाया है गम्भीर
बने हैं सुन्दर पर्ण-कुटीर
निकट ही लंहराता है नीर
शान्त रहते हैं पाँचों वीर
धर्म्म-धन की ही तृष्णा है
बनी जो प्यारी कृष्णा है

(१६)

हाय ! वह कृष्णा कल्याणी
शेष है बस जिसमें वाणी
कि जो थी कभी महारानी
स्वयं अब भरती है पानी
किन्तु है मन में मान वही
आन हो कि न हो, बान वही

(१७)

सदा पति-सेवा करती है
अतिथियों का श्रम हरती है
भव्य भावों को भरती है
धर्म्म अपना आचरती है
किन्तु होकर क्षत्रियभार्य्या
दुःख भूले क्या वह आर्य्या ?

(१८)

शत्रु-कृत उसको वह अपमान
सालता है विष-विशिख-समान
जहाँ आता है उसका ध्यान
नहीं रहता उसको कुछ ज्ञान
तप्त होते हैं अरुण कपोल
कण्ठ से नहीं निकलते बोल

(१९)

बैठती है वह जब चुपचाप
अचानक चढ़ते हैं भ्रू-चाप
ओंठ करते हैं मौनालाप
उमड़ते हैं फिर आँसू आप
और वह उठती है तत्काल
पकड़ कर अपने छूटे बाल

(२०)

बाल वे मन्त्रों से अभिषिक्त
हुए जो राजसूय में सिक्त
हो चुके हैं रत्नों से रिक्त
और दुःशासन-कृत अविविक्त
परिष्कृत कैसे हों तब तक
शत्रु-जन जीवित हैं जब तक

(२१)

सती हँसती भी रोती है
धैर्य्य धीरों के खोती है
भीगती और भिँगोती है
बीज बदले के बोती है
विषम वैराङ्कुर पतियों के
न सींचें क्यों दृग सतियों के !

(२२)

शत्रु-कृति पतियों से कहती
द्रौपदी सब कुछ है सहती
पाण्डु-कुल-वृक्षों में बहती
पवन-सी अस्थिर है रहती
पवन वह कि जो जिलाती है
और झोंके भी लाती है

(२३)

वहाँ जो खग, मृग चरते हैं
प्यार उस पर वे करते हैं
किन्तु मन ही मन डरते हैं
पदों में ही सिर धरते हैं
प्यार के बदले में निर्दिष्ट
दया ही है उन सबको इष्ट

(२४)

वीर पाण्डव भी भ्रान्त न थे
विपिन में बैठे श्रान्त न थे
किन्तु केवल विक्रान्त न थे
धीर भी थे कि अशान्त न थे
समय की उन्हें प्रतीक्षा थी
धर्म्म की जैसी दीक्षा थी

(२५)

पार्थ ने तप कर मन-भाया
विजय वर शङ्कर से पाया
शूर वह सुरपुर हो आया
वहाँ से दिव्यायुध लाया
यत्न यों उनके जारी हैं
विरत कब वे व्रतधारी हैं

(असमाप्त)

मैथिलीशरण गु

पश्चिमी अर्थ-शास्त्र का सूक्ष्म इतिहास।

पाँचवीं शताब्दी के अन्तिम भाग योरप में उस प्रसिद्ध काल अथव युग का आरम्भ हुआ जिसे इतिहास कार 'मध्य-युग' (Middle Ages) नाम से पुकारते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी में इस यु का अन्त माना जाता है। योरप के इतिहास मध्य-युग का बड़ा महत्त्वपूर्ण और ऊँचा स्थान है क्योंकि इस युग में योरप में ऐसी ऐसी घटना का प्रादुर्भाव हुआ जिनका प्रभाव केवल योरप की नहीं, किन्तु समस्त संसार की सामाजिक त राजनैतिक अवस्था और इतिहास पर पड़ा है।

'मध्य-युग' के कुछ समय पहले ही रोमन साम्रा की नींव डिग चुकी थी। मध्य-युग के आरम्भ हो

होते रोमन साम्राज्य की शक्ति का बहुत कुछ ह्रास हो गया, यहाँ तक कि थोड़े ही दिनों के बाद रोमन साम्राज्य अस्तित्वहीन होकर अपने वैरियों के हाथ में चला गया। असभ्य जातियों ने प्रायः समस्त पश्चिमीय योरप पर अपना अधिकार जमा लिया, परन्तु परस्पर मेलजोल-पूर्वक रहने के बदले इन जातियों ने आपस ही में मार-काट करने में बहुत दिनों तक अपनी शक्तियों का प्रयोग किया। उस समय के योरप का इतिहास प्रायः इन्हीं जातियों के पारस्परिक विवादों के वृत्तान्तों से परिपूर्ण है।

ऐसी डाँवाडोल और अशान्तिपूर्ण अवस्था में सभ्य व्यवसायों को स्वभावतः बड़ा भारी धक्का पहुँचा। रोमन सड़कों और रास्तों के नष्ट हो जाने से व्यापार लुप्तप्राय हो गया। इसके अतिरिक्त बहुमूल्य और व्यवसाय के योग्य वस्तुओं की माँग कम हो जाने से इन चीज़ों का बनना बन्द हो गया और इसी तरह बहुत प्रकार से उस समय की औद्योगिक अवस्था बहुत ही क्षीण दशा को प्राप्त हो गई।

इसीलिए इतिहासकारों ने 'मध्य-युग' को दो भागों में विभक्त किया है। पहला भाग वही है जिसका हम अभी वर्णन कर चुके हैं और जो अपनी असमाजकता और अज्ञान के कारण 'अन्ध-युग' (Dark Ages) के नाम से प्रसिद्ध है। पाँचवीं शताब्दी से ईसाई महन्त पोप ग्रेगरी सातवें (Pope Gregory VII) के समय तक अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दी तक इस युग का परिमाण माना जाता है।

इस अशान्तिपूर्ण अवस्था में भी असभ्य जातियों पर धीरे धीरे रोमन सभ्यता का प्रभाव पड़ता जा रहा था और क्रमशः उनका असभ्य और उच्छृङ्खल उत्साह, मार-काट इत्यादि पाशविक व्यापारों को छोड़ कर, सभ्य व्यवसायों की ओर झुक रहा था।

शार्लिमैन (Charleman) की मृत्यु हो जाने के बाद उसका विस्तीर्ण साम्राज्य उसके उत्तराधिकारियों में विभक्त हो गया और यह बाँट-चूँट का सिलसिला कई पीढ़ियों तक जारी रहा। यहाँ तक कि थोड़े ही दिनों में सारा साम्राज्य टुकड़े टुकड़े होकर भिन्न भिन्न विभागों में बँट गया। क्रमशः ये विभाग सीमाबद्ध होकर पृथक् पृथक् देशों के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इसी प्रकार वर्तमान योरोपीय रियासतों का—अर्थात् फ़्रांस, स्पेन, इटली, बेलजियम इत्यादि का—सूत्रपात हुआ।

यद्यपि इन रियासतों की नींव 'अन्ध-युग' ही में पड़ गई थी, किन्तु इनका पूर्ण विकास बारहवीं अथवा तेरहवीं शताब्दी तक नहीं हुआ। बारहवीं शताब्दी में 'मध्य-युग' के दूसरे भाग का आरम्भ हुआ। यह वह समय है जब योरप ने उन्नति के मार्ग में निश्चित रूप से पदार्पण किया। सूक्ष्मरूप से हम यह कह सकते हैं कि 'अन्ध-युग' में रियासतों के रूप में वर्तमान युग का बीज बोया गया था। मध्य-युग के दूसरे भाग में इस बीज का पूर्ण रूप से विकास हुआ और उसकी बहुत सी शाखा-प्रशाखाओं का विस्तार होता गया। यहाँ तक कि आधुनिक समाज-सङ्गठन प्रगाढ़ रूप से योरप में प्रचलित हो गया।

बारहवीं शताब्दी से इस उन्नति-काल का आरम्भ माना जाता है। तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में योरोपीय रियासतों में राष्ट्रीयता के भावों का आविर्भाव हुआ और उस समय से यह राष्ट्रीय उत्साह दिन-दिन वृद्धि और दृढ़ता को प्राप्त होता गया। इस महान् परिवर्तन का बड़ा भारी प्रभाव योरप के भावी अर्थ-शास्त्र पर पड़ा, जिसके विषय में, आगे चल कर, विचार किया जायगा।

दूसरा परिवर्तन, जिसने योरप के जीवन और साथ ही साथ उसके अर्थ-शास्त्र पर बड़ा भारी प्रभाव डाला, नगरों (Towns) की उत्पत्ति और उन्नति था। बारहवीं शताब्दी के पहले लोग नगरों में

बहुत कम रहा करते थे। रोमन आधिपत्य के समय बहुत से नगर अवश्य मौजूद थे, किन्तु जिस समय से रोमन साम्राज्य पर असभ्य जातियों के आक्रमण आरम्भ हुए उस समय से नगरों की दशा गिरने लगी। रोमन साम्राज्य का पतन हो जाने पर जब असभ्य जातियों का पूरा पूरा अधिकार पश्चिमीय योरप पर हो गया, तब तो लोगों ने नगरों में रहना ही छोड़ दिया। जो कुछ दो चार नगर बचे भी वे बिलकुल क्षीण-हीन अवस्था में थे। लूट-मार के डर के मारे लोग प्रायः देहात में जाकर ज़मींदारों की रियासतों में रहते थे। इन रियासतों का नाम 'विल' (Vills) अथवा 'मैनर' (Manor) था। ज़मींदार रियासत का कुछ हिस्सा अपने लिए रख छोड़ता था और शेष ज़मीन अपनी रियाया को बाँट देता था। ज़मींदार के रहने का स्थान एक मज़बूत दीवार से घिरा रहता था और उसके भीतर कुछ शिल्पकार इत्यादि भी रहा करते थे। सामान्य रियाया से, जिसे उस समय 'सर्फ़' (Serfs) के नाम से पुकारते थे, इन दीवारों के भीतर रहनेवालों के स्वत्व कुछ अधिक रहा करते थे। इस स्थान को भी 'मैनर' ही के नाम से पुकारते थे और आक्रमण के समय देहात में रहनेवाली रियाया इसमें शरण पाया करती थी। 'सर्फ़' लोगों के लिए कुछ नियम थे, जिनके अनुसार उनको अपने स्वामी के आदेशों का पालन करना पड़ता था। इन रियासतों में सब से विशेष बात यह थी कि इनका बाहरी संसार से तनिक भी सम्बन्ध न रहता था। सारी आवश्यक वस्तुयें 'मैनर'-वाले स्वयं प्रस्तुत कर लिया करते थे और भारतीय किसानों की भाँति एक दूसरे का काम कर दिया करते थे। कर इत्यादि भी ये लोग अपनी पैदा की हुई वस्तुओं द्वारा चुका देते थे।

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दियों से रुपये का प्रयोग अधिक होने लगा और क्रमशः लोग कर इत्यादि रुपये के द्वारा चुकाने लगे। इसके अतिरिक्त बेगार करने के बदले लोग अब रुपया दे देना अधिक पसन्द करते थे। इससे ज़मींदार को भी अधिक सुभीता रहता था। इसी प्रकार धीरे धीरे शारीरिक सम्बन्ध के कम हो जाने से प्रजा पर ज़मींदारों का दबाव कम होता गया। इसके अलावा ज्यों ज्यों योरप में शान्ति फैलती जाती थी त्यों त्यों व्यापार की वृद्धि होती जाती थी और साथ ही साथ लोगों के हृदय में स्वतन्त्रता की इच्छा भी प्रबल होती जाती थी। क्योंकि जब पूरब का माल योरप में बिकने के लिए आने लगा तब लोगों को स्वभावतः क्रय-विक्रय के लिए समीपवाले बाज़ारों में जाना पड़ा और इस प्रकार बाहरी संसार से उनका संसर्ग बढ़ता गया। साथ ही साथ उन्हें यह भी प्रतीत होने लगा कि हमारी पराधीन अवस्था, तथा बहुत से कर, चुङ्गी इत्यादि के कारण हमारे वाणिज्य में बड़ी बाधा पड़ती है। इसलिए स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए बारहवीं शताब्दी में नगर-वासियों ने अपने स्वामियों के विरुद्ध बहुत बलवे किये और धीरे धीरे वे स्वतन्त्र होते गये।

क्रमशः नगर बहुत शक्तिशाली हो गये और उनमें उन औद्योगिक संस्थाओं और परिपाटियों की नींव पड़ने लगी जिन पर अर्थ-शास्त्र सम्पूर्ण रूप से आश्रित है। उन लोगों ने व्यापार-सङ्घ स्थापित किये। व्यापार के अतिरिक्त वे और भी बहुत सी बातों में बहुत उत्साह दिखाते थे। उदाहरणार्थ, वे नगर के सार्वजनिक व्यय का ब्योरा तैयार करते थे और न्याययुक्त तथा उचित सिद्धान्तों के अनुसार कर (टैक्स) बाँधने के नियम निश्चित करते थे।

तथापि इन सब बातों से यह न समझ लेना चाहिए कि मध्ययुग में व्यापार के मार्ग में अड़चनें नहीं थीं। उस समय थोक बेचनेवालों का अस्तित ही न था, क्योंकि थोक बेचना बहुत बुरा समझ जाता था। लोगों में यह विचार फैला हुआ था कि हर एक वस्तु का एक 'ठीक मूल्य' (Just price

हुआ करता है। यह ठीक मूल्य वस्तु में लगे हुए माल की लागत और उसकी बनवाई के बराबर माना जाता था। सबको अपना माल फुटकर बेचना पड़ता था। रुपये को लोग 'अनुपजाऊ' वस्तु समझते थे। धार्मिक संस्थाओं ने व्याज लेना बिलकुल मना कर दिया था। और भी बहुत से कर, चुङ्गी इत्यादि के द्वारा व्यापार में बड़ी बड़ी रुकावटें पड़ा करती थीं।

इन सब बातों के होते हुए भी हमें यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि मध्य युग में दो बातें बहुत ही महत्त्वपूर्ण हुईं—(१) राष्ट्रों का सङ्गठन और (२) नगरों की उत्पत्ति एवं उन्नति। भावी अर्थ-शास्त्र पर इन दोनों बातों का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा, क्योंकि योरप का आधुनिक समाज-सङ्गठन जितना इन दोनों बातों पर आश्रित है उतना और किसी पर भी नहीं।

पन्द्रहवीं शताब्दी के चतुर्थ भाग में योरप में जो घटनायें हुईं उनका उल्लेख करना अर्थ-शास्त्र ही के इतिहास के लिए नहीं, किन्तु संसार के इतिहास के लिए भी आवश्यक है। सन् १४६० के लगभग योरप में छापे की कल का आविष्कार हुआ। बहुत लोगों का मत है कि पहले-पहल छापे का आविष्कार एशिया के किसी देश में हुआ था। हमारे लिए यहाँ इस विवाद में पड़ना बिलकुल अनावश्यक है। चाहे छापे का आविष्कार पहले एशिया में हुआ हो चाहे योरप में, यह निश्चित है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के पहले योरप में इस कला का जाननेवाला कोई न था।

दूसरी बात यह है कि सन् १४९२ में कोलम्बस (Columbus) नामी प्रसिद्ध मल्लाह ने अमरीका का पता लगाया। सोलहवीं शताब्दी के आदि में कोर्टे (Cortez) इत्यादि स्पेनी जल-सैनिकों ने जाकर अमरीका पर अपना अधिकार जमाना आरम्भ किया और धीरे धीरे उस नये देश का बहुत बड़ा हिस्सा स्पेन के आधिपत्य में आगया।

अमरीका का पता लगने के कुछ दिन बाद पोर्चुगाल का समुद्री सैनिक वास्को डिगामा (Vasco De Gama) अफ़रीका के किनारे किनारे चक्कर लगाता हुआ रास गुड-होप (Cape of Good Hope) को लाँघ कर भारतवर्ष में पहुँचा। इस प्रकार भारतवर्ष और पोर्चुगाल के बीच वाणिज्य का सिलसिला जारी हो गया।

इन दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं अर्थात् (१) छापे के आविष्कार और (२) नये देशों—विशेषतः अमरीका—के पता लग जाने का यह फल हुआ कि योरप में जागृति की एक बड़ी भारी लहर बहने लगी। इस उन्नतिशील युग को इतिहासकार प्रायः 'जागृति का युग' (Renaissance) के नाम से पुकारते हैं। साहित्य-कला इत्यादि की ओर मनुष्यों का ध्यान बारहवीं शताब्दी से आकर्षित हो चला था और उस समय भी बहुत से अच्छे साहित्य का जन्म हुआ था। किन्तु सामाजिक क्षेत्र में इन दो घटनाओं का प्रादुर्भाव होने से विद्वानों के उत्साह में मानों पङ्ख से लग गये। उस समय की योरप की साहित्य तथा कला-सम्बन्धिनी कृतियाँ इतिहास में सदैव स्वर्णाक्षरों से लिखी जायँगी। इसके पूर्व विद्या का प्रचार भली भाँति नहीं हो सका था। एक स्थान पर जो लेख लिखा जाता था अथवा जो विचार प्रकट किया जाता था वह उसी स्थान में रह जाता था। बाहर के लोग उससे नितान्त अनभिज्ञ रह कर उसके लाभों से वञ्चित रहते थे। छापे के आविष्कार हो जाने पर यह त्रुटि दूर हो गई। छापे के द्वारा अब एक जगह के विचार शीघ्र दूसरी जगह पहुँचने लगे। इस प्रकार विद्वान् लोग एक दूसरे के मतों और सिद्धान्तों पर विचार करते हुए साहित्य के भाण्डार को दिन पर दिन नवीन रत्नों से परिपूर्ण करने लगे।

हम यह पहले ही कह चुके हैं कि पहले-पहल अमरीका पर स्पेन ने अपना अधिकार जमाया। अमरीका उस समय बिलकुल नया और अछूता देश था। उसमें धन-धान्य का बहुत आधिक्य था। सोने की खानें वहाँ बहुतायत से पाई जाती थीं। वहाँ का सोना स्पेनवाले जहाज़ों में भर भर कर अपनी मातृभूमि को भेजने लगे। यह देख कर दूसरे देशों के मुँह में पानी भर आया और वे स्वयं भी सोना-चाँदी प्राप्त करने के उपाय सोचने लगे। प्राचीन काल में इस विषय में जो बातें कभी कभी केवल अनुमति के रूप में विद्वानों के मुँह से निकल जाया करती थीं उन पर लोग अब अनन्य-मन होकर विचार करने लगे और उनको शास्त्र-रूप में परिणत करने का यत्न करने लगे।

सन् १६१३ में इटली के एक सज्जन, ऐन्टोनियो सेरा, (Antonio Serra) ने एक पुस्तक लिखी, जिसका नाम उसने रक्खा—"जिन देशों में खानें नहीं हैं उनमें सोना-चाँदी की बहुतायत कर देने के उपायों पर सूक्ष्म विचार" (A Brief Discourse on the Possible Means of causing Gold and Silver to abound in Kingdoms where there are no Mines).

सन् १६१५ में एक फ़्रांसीसी विद्वान् मानशीशियें (Antione De Montechetien) की पुस्तक "अर्थ-शास्त्र पर लेख" (Le Traicte De L'Ooccomic Politique) प्रकाशित हुई, जिसमें पहले-पहल 'पोलीटिकल इकानिमी' (Political Economy) शब्द का प्रयोग किया गया। इस समय से अर्थ-विद्या का शास्त्ररूप से अध्ययन होना आरम्भ हो गया। १६ वीं, १७ वीं तथा १८ वीं शताब्दी के पूर्व भाग के अर्थशास्त्रवेत्ताओं के सिद्धान्त 'वाणिज्य-पन्थ' (Mercantile System) के नाम से विख्यात हैं।

वाणिज्य-पन्थियों का यह विचार था कि राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़ाने का सबसे अच्छा उपाय वाणिज्य है, क्योंकि उसीके द्वारा दूसरे देशों का धन अपने यहाँ आ सकता है। उनके मतानुसार जिस प्रकार एक बुद्धिमान् व्यापारी अपनी आवश्यकता से अधिक माल बना कर बेच डालता है और उसके बदले में रुपया-पैसा सञ्चित कर लेता है, उसी प्रकार एक बुद्धिमान् राजनीतिज्ञ को इस प्रकार अपने राष्ट्र का प्रबन्ध करना चाहिए जिससे वह अपनी आवश्यकताओं से अधिक माल पैदा करके दूसरे राष्ट्रों के हाथ बेच सके और दूसरे देशों का धन अपने यहाँ बटोर सके। जिस प्रकार रुपये-पैसे द्वारा धनी मनुष्य की औद्योगिक शक्ति बढ़ जाती है अर्थात् वह धन देकर दूसरे मनुष्यों से अपना काम करा सकता है, व्यापार में अधिक धन लगा सकता है और अनेक उपायों से अपने व्यापार की वृद्धि कर सकता है, उसी प्रकार उनके विचार में दूसरे राष्ट्रों पर अधिक सोने-चाँदीवाले राष्ट्र का प्रभाव अधिक बढ़ जाता है। उस समय के बहुत से राजनैतिक नियम, अन्तर्जातिक विवाद और सन्धियाँ इन्हीं सिद्धान्तों के फल-स्वरूप थीं।

परन्तु ये विचार योरप में बहुत काल तक प्रचलित नहीं रहे। धीरे धीरे लोग बनावटी नियमों और बन्धनों के प्रतिकूल चलने लगे और औद्योगिक मामलों में शासकों और राजनीतिज्ञों का हस्तक्षेप हानिकारक मालूम होने लगा। अब लोग इस सिद्धान्त का अनुसरण करने लगे कि वाणिज्य के विषय में सर्वसाधारण को अपने इच्छानुसार काम करने का अधिकार होना चाहिए। इस प्रकार योरोपीय अर्थशास्त्र के इतिहास में उस युग का पदार्पण हुआ जिसमें अर्थशास्त्रवेत्ता 'प्रकृति' तथा तत्सम्बन्धी नियमों को ही सर्वश्रेष्ठ मानने लगे और हर प्रकार की बनावटी बात हानिकारक प्रतीत होने लगी।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में पहले-पहल फ़्रांस में 'वाणिज्य-पन्थ' के सिद्धान्तों का विरोध हुआ। अठारहवीं शताब्दी का समस्त साहित्य 'प्रकृति' के विचार से परिपूर्ण है और वास्तविक अर्थशास्त्र का जन्म भी वस्तुतः इसी समय हुआ है। फ़्रांस के सम्राट् लुई पन्द्रहवें के दरबार में केने नामक एक प्रसिद्ध राजवैद्य था, जिसने सन् १७५८ में, एक पुस्तक (Le Tableau Economique) प्रकाशित की। कुछ ही काल में फ़्रांस के बहुतसे बड़े बड़े लोग केने के मत का अनुसरण करने लगे। ये लोग अपने को (Economists) अथवा "अर्थशास्त्रवेत्ता" के नाम से पुकारते थे। कालान्तर में यही लोग 'फ़िज़ियोक्रैट्स' (Physiocrats) के नाम से प्रसिद्ध हो गये। 'फ़िज़ियोक्रैसी' (Physiocracy) शब्द दो यूनानी शब्दों से बना है। इसका अर्थ है 'प्रकृति का शासन'। फ़िज़ियोक्रैट्स ने दो मुख्य सिद्धान्तों का प्रचार किया—

(१) मनुष्य-समाज कुछ प्राकृतिक तथा अटल नियमों पर स्थिर है। उन्हींके द्वारा वह चला करता है।

(२) फ़िज़ियोक्रैट्स शिल्प तथा वाणिज्य की अपेक्षा कृषि को अधिक महत्त्वपूर्ण और लाभदायक समझते थे, क्योंकि वे पृथ्वी ही को सम्पत्ति पैदा करने का सबसे उत्तम साधन मानते थे। दूसरे साधनों को वे व्यर्थ और अनुपजाऊ समझते थे। उनका विचार था कि रुपये-पैसे के द्वारा यद्यपि दूसरे देशों के मज़दूर अपने अधीन हो सकते हैं, किन्तु सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि अपने ही देश के मज़दूर परिश्रमी और उद्यमशील बनाये जायँ। और यह बात तब तक असम्भव है जब तक प्रत्येक मनुष्य को भली भाँति भोजन पहुँचाने तथा उसकी अन्य प्रारम्भिक आवश्यकताओं का निवारण करने का प्रयत्न न किया जाय। पेट भरने और जीवन को स्थिर रखनेवाली सामग्री के न रहते हुए सोने-चाँदी का बहुतायत से होना व्यर्थ और निरुपयोगी है।

केने के पहले कैन्टिलन नाम के एक सज्जन इसी विषय पर एक पुस्तक लिख चुके थे। यह पुस्तक सन् १७२५ में लिखी गई थी और सन् १७५६ में प्रकाशित की गई। कुछ अँगरेज़ अर्थशास्त्रकारों ने इस पुस्तक का पता लगाया है और एक विद्वान् का यह मत है कि अर्थशास्त्र की यह पहली ही सिलसिलेवार पुस्तक है। यद्यपि कैन्टिलन की पुस्तक का अधिक प्रचार योरप में नहीं हुआ, तोभी उसके बहुतसे सिद्धान्त फ़िज़ियोक्रैट्स के द्वारा प्रचलित हो गये, क्योंकि हमें इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि फ़िज़ियोक्रैट्स के विचारों का अधिकांश कैन्टिलन के विचारों पर अवलम्बित था। इसके अतिरिक्त इस विषय में फ़िज़ियोक्रैट्स लाक (Locke) आदि अँगरेज़ी तत्त्ववेत्ताओं तथा स्टोइक (Stoic) मतावलम्बियों के भी किसी हद तक ऋणी थे। साथ ही साथ इस समय फ़्रांस का राजदरबार बनावटी जीवन के नशे में उन्मत्त हो रहा था। बड़े बड़े राज-कर्मचारी तथा अमीर-उमरा भोग-विलास में सने हुए बड़े आमोद-प्रमोद के साथ जीवन व्यतीत करते थे। उनकी कुचालों को देख कर बनावटी जीवन ही के नहीं, किन्तु सभी प्रकार की बनावटी बातों के विरुद्ध लोगों के हृदय में बहुत कुछ अश्रद्धा और घृणा उत्पन्न हो गई।

हम ऊपर कह चुके हैं कि फ़िज़ियोक्रैट्स के दो मुख्य सिद्धान्त थे। इन दोनों सिद्धान्तों ने योरप के अर्थ-शास्त्र में बड़ा भारी परिवर्तन उपस्थित कर दिया। वास्तव में उनका पहला सिद्धान्त अर्थात् 'समाज का कुछ अटल और नैसर्गिक नियमों द्वारा शासन' अर्थ-शास्त्र की नींव-स्वरूप है। यह हमको सदैव याद रखना चाहिए कि किसी भी शास्त्र का तब तक कदापि निर्माण नहीं हो सकता जब तक

यह न मान लिया जाय कि उसका विषय किसी नित्य और अचञ्चल सिद्धान्त पर अवलम्बित है। शास्त्रीय अथवा वैज्ञानिक रीति से अध्ययन करने का उद्देश ही कुछ नित्य तथा नैसर्गिक नियमों का खोज निकालना है, जिनके अनुसार सदा व्यवहार होता रहता है। यह तब तक असम्भव है जब तक इन नियमों का अस्तित्व न स्वीकार कर लिया जाय। उदाहरणार्थ, आकर्षण के नियम का यह तात्पर्य है कि ऊपर फेंकी हुई वस्तु आकृष्ट होकर पृथ्वी पर अवश्य आ जायगी। हम जानते हैं कि यह नियम नित्य तथा अखण्ड है। किन्तु यह नियम एक मौलिक सिद्धान्त पर अवलम्बित है, और वह यह है कि प्रकृति—पृथ्वी, जल, वायु, सूर्य इत्यादि—सदैव एक ही प्रकार से व्यवहार करते हैं। यदि पृथ्वी कभी अपनी आकर्षण-शक्ति का प्रयोग करे और कभी उसे त्याग दे, अर्थात् ऊपर फेंका हुआ पत्थर कभी आकृष्ट होकर पृथ्वी पर आजाय और कभी हवा ही में लटका रहे, तो आकर्षण के नियम की सत्यता में कभी भी विश्वास नहीं किया जा सकता। यह दूसरी बात है कि किसी विशेष रुकावट के आ जाने से इस नियम का किसी विशेष अवसर पर पालन न हो सके। इसमें नियम का कोई दोष नहीं। यदि वह रुकावट न होती तो नियम का निश्चित रूप से अवश्य परिपालन होता। यह बात बड़े महत्त्व की है कि "किसी नियम का पालन तभी तक सम्भव है जब तक अनुकूल अवस्था में उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन न हुआ हो"। उदाहरणार्थ, हम प्रति दिन वायुयान को आकाश में उड़ता हुआ देखते हैं। क्या कारण है कि वह आकृष्ट होकर पृथ्वी पर नहीं आ जाता? हम सभी लोग जानते हैं कि इस प्रश्न का उत्तर कितना सरल है। वायुयान के नीचे न आने का मुख्य कारण यही है कि मनुष्य ने अपनी वैज्ञानिक बुद्धि द्वारा उसमें एक ऐसी शक्ति उत्पन्न करदी है, जो पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति को रोक कर उसे ऊपर उड़ा ले जाती है।

फ़िज़ियोक्रैट्स ने इसी सिद्धान्त पर ज़ोर दिया। उन्होंने लोगों में इस बात का प्रचार किया कि समाज कुछ प्राकृतिक तथा नियत सिद्धान्तों पर अवलम्बित है*। शासकों को चाहिए कि वे इस

---

* कभी कभी यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि यह कहना ठीक नहीं है कि जड़ प्रकृति की तरह समाज भी नियत सिद्धान्तों का अनुसरण करता है। इस मत के अनुसार साधारण प्रकृति और समाज की तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि समाज ज्ञान रखनेवाले चलते-फिरते मनुष्यों से बनता है, जो स्वतन्त्र हैं और सदा अपने इच्छानुसार काम कर सकते हैं। इसलिए वे नियमबद्ध नहीं कहे जा सकते। प्रकृति निर्जीव है और वह कोई काम अपने आप नहीं कर सकती। जीड (Gide), चैपमन (Chapman) इत्यादि अर्थशास्त्र के पण्डितों ने बड़ी उत्तमता से इस सन्देह का निवारण किया है। उनके उत्तर का सार यह है—यह बिलकुल ठीक है कि मनुष्य स्वतन्त्र है, और जहां तक आर्थिक बातों का सम्बन्ध है वह अपनी इच्छा के अनुकूल अपने कामों में परिवर्तन कर सकता है। किन्तु साथ ही साथ यह बात भी है कि साधारणतः मनुष्य सदा बुद्धि से काम लिया करता है। ऐसे बहुत कम मनुष्य होंगे जो बिना सोचे-विचारे, जब जो जी में आवे, कर बैठें। ऐसे भी मनुष्य नाम-मात्र ही को मिलेंगे जो अपने लाभ का ध्यान न रखते हों। मान लीजिए, पास पास दो दूकानों में एक ही प्रकार की दो वस्तुयें बिक रही हैं। दोनों बिलकुल एकसी हैं, किन्तु एक का मूल्य दूसरी से अधिक है। पागलों अथवा हठी मनुष्यों को छोड़ कर ऐसा कोई भी मूर्ख न मिलेगा जो कम मूल्यवाली वस्तु की अपेक्षा अधिक मूल्यवाली को मोल ले।

इसी प्रकार मनुष्यों के स्वभाव भिन्न भिन्न होने पर भी उनमें कुछ ऐसी बातें रहती हैं जो स्वाभाविक तथा सर्वव्यापी होती हैं। उदाहरणार्थ, आत्मीय जन का प्रेम। प्रसिद्ध विद्वान् क्लार्क (Clark) ने बतलाया है कि बिलकुल प्रारम्भिक अवस्था में भी मनुष्य में यह भाव मौजूद था। उस समय

आपसे आप चलनेवाले कारख़ाने में बनावटी नियम अथवा प्रथायें निकाल कर हस्तक्षेप न करें, नहीं तो कल के बिगड़ जाने का डर है। यह नहीं कहा जा सकता कि फ़िज़ियोक्रैट्स का यह मत कहाँ तक सत्य तथा युक्तिसङ्गत है। इसमें सन्देह नहीं कि अर्थ-शास्त्र के निर्माण में इससे बड़ी भारी सहायता दी है, क्योंकि इस समय से प्रायः सभी अर्थ-शास्त्र-वेत्ताओं ने इस मत का अनुसरण किया है।

फ़िज़ियोक्रैट्स का दूसरा सिद्धान्त भी बड़े महत्त्व का था। 'वाणिज्य-पन्थियों' ने कृषि को बिलकुल नीचे गिरा दिया था। फ़िज़ियोक्रैट्स ने शिल्प और व्यापार का तिरस्कार करके कृषि को ही धनोपार्जन के साधनों में सर्वश्रेष्ठ बतलाया। उनके विचार में कृषि ही के द्वारा अत्यन्त कम लागत में बहुत सी सम्पत्ति पैदा की जा सकती थी। वे लोग वाणिज्य को व्यर्थ समझते थे।

सन् १७७६ में अँगरेज़ी अर्थशास्त्रवेत्ता ऐडम स्मिथ (Adam Smith) ने "राष्ट्रों की सम्पत्ति के रूप और कारणों पर विचार" (Inquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations) नामक एक पुस्तक लिखी। इस समय हम ऐडम स्मिथ तथा अन्य सामयिक और अगले अर्थशास्त्र के विद्वानों के विषय में विशेष नहीं कहना चाहते। केवल यही कह देना बस होगा कि ऐडम स्मिथ की पुस्तक बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी और उसने अर्थ-शास्त्र के इतिहास में एक नवयुग उपस्थित कर दिया*। ऐडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक में फ़िज़ियोक्रैट्स के पहले सिद्धान्त का हार्दिक समर्थन किया। किन्तु दूसरे सिद्धान्तों का उन्होंने घोर प्रतिवाद किया और शिल्प तथा वाणिज्य को राष्ट्र के लिए उतना ही उपयोगी और आवश्यक बतलाया जितना कृषि को।

ऐडम स्मिथ के बाद तीन विद्वान् और हुए जिनके विचारों का अर्थ-शास्त्र पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। सन् १७९८ में माल्थस (Malthus) का 'जनसंख्या' (Population) पर निबन्ध तैयार हुआ। यद्यपि माल्थस प्रायः इसी विषय के सम्बन्ध में अधिक प्रसिद्ध है, किन्तु उसके विचारों का समस्त अर्थ-शास्त्र पर बड़ा प्रभाव पड़ा। दूसरे सज्जन रिकार्डो (Ricardo) भी अर्थ-शास्त्र के बड़े भारी निर्माता थे। ये अपने 'कर' अथवा लगान (Rent) के सिद्धान्तों के विषय में बहुत प्रसिद्ध हैं।

जिस समय माल्थस और रिकार्डो इँगलेंड में अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे उसी समय के लगभग फ़्रान्स में एक 'से' (J. B. Say) नामक विद्वान् मौजूद थे। उन्होंने सन् १८०३ में अर्थशास्त्र पर एक पुस्तक प्रकाशित की। यह पुस्तक लेखशैली के लिए बहुत प्रसिद्ध है। इस पुस्तक में प्राकृतिक नियमों पर अधिक ज़ोर दिया गया है और यह कहना अत्युक्ति नहीं कि इन्हींके द्वारा योरप में इस सिद्धान्त का बहुत प्रचार हुआ है।

से के समय से आज तक योरप में बहुत से अर्थशास्त्र के विद्वान् हुए हैं, और वे लोग कई सम्प्रदायों (Schools) में विभक्त हैं। इन सबमें दो अधिक प्रसिद्ध हैं (१) अँगरेज़ी अथवा सनातन-सम्प्रदाय (English or Classical School) और (२) जर्मन अथवा ऐतिहासिक सम्प्रदाय (German or Historical School)। अमरीका में भी एक होनहार सम्प्रदाय का जन्म हो चुका है। अमरीका-वाले जर्मन सम्प्रदाय के मत से अधिक सहमत हैं। इसके अतिरिक्त इटली (Italy) और आस्ट्रिया (Austria) में भी अर्थशास्त्र के सम्प्रदाय विद्यमान हैं।

बेनीमाधव मेहरोत्र

भी असभ्य मनुष्य यद्यपि अपनी खोह के बाहरवालों पर आक्रमण करता था और उनको मार भी डालता था, किन्तु अपने बाल-बच्चों को वह सदैव स्नेह और करुणा की दृष्टि से देखता था। इसी प्रकार और बातों के विषय में भी समझना चाहिए।

* इसीसे ऐडम स्मिथ अर्थशास्त्र के प्रवर्त्तक (Father of Political Economy) माने जाते हैं।

नागरी-लिपि में सुधार की आवश्यकता ।

हमारे कितने ही नेताओं ने यह बात मान ली है कि नागरी-लिपि ही राष्ट्रीय लिपि होने की क्षमता रखती है । जब से गान्धीजी ने इसके प्रचार के लिए प्रयत्न आरम्भ किया है तब से एक-लिपि-विस्तार के कार्य्य में कुछ जान सी पड़ गई दिखाई देती है । इधर नोल्स साहब अपनी रोमन की डफली अलग ही पीट रहे हैं । रोमन लिपि के प्रचार की बदौलत वे एक बार फिर भारतवर्ष के लिए राम-राज्य के सुख सुलभ करा दिया चाहते हैं । पर उनकी कोई भी नहीं सुनता । हमें उनकी नीयत अथवा उनके मस्तिष्क के विषय में किसी भी प्रकार की शङ्का नहीं; बल्कि, हज़ार अड़चनें आ पड़ने पर भी, किसी के कुछ ध्यान न देने अथवा सहानुभूति न दिखलाने पर भी वे अध्यवसायपूर्वक असम्भव को सम्भव कर डालने पर तुले हुए हैं । यह बात उनके चरित्र की दृढ़ता की द्योतक है । अगर हम लोग उनसे सहमत न हुए तो वे कभी भी रोमन लिपि को हमारे सिर पर चिपकाने में समर्थ न हो सकेंगे । अतएव हमें उनसे द्वेष भी न करना चाहिए । हमने जो मार्ग पकड़ लिया है उसे न हम आसानी से छोड़ सकते हैं और न कोई और उसे हमसे छुड़ा सकता है ।

नोल्स साहब तो ग़ैर विदेशी हैं; हमारे कुछ स्वदेशी भाई भी नागरी की गरदन नापने पर तुले हुए हैं । माडर्न रिव्यू नाम के अँगरेज़ी मासिक पत्र में, अभी थोड़े ही दिन हुए, एक प्रसिद्ध बङ्गाली महाशय ने एक लेख छपाया था । उसमें यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई थी कि भारत की राष्ट्र-लिपि होने की क्षमता नागरी नहीं रखती । इस विषय में जो दलीलें उन्होंने दी थीं वे इतनी लचर थीं कि उनके साहस पर आश्चर्य होता था और ऐसा ख़याल होता था कि उनकी दलीलों के दलदल में फँसनेवाले लोग उनके प्रान्त के सिवा शायद ही और कहीं मिलें । जहाँ प्रान्तीयता का अटल साम्राज्य है वहाँ दलीलों से दलीलों की काट करना भी निष्फल ही समझिए । अस्तु । हमारा यह मतलब हरगिज़ नहीं कि नागरी-लिपि में त्रुटियाँ हईं नहीं । त्रुटियाँ अवश्य हैं, पर और लिपियों के मुक़ाबिले कम हैं—और जो हैं उनको दूर करने का प्रयत्न भी होना ही चाहिए ।

इधर कुछ नागरी-प्रेमियों को नागरी का स्वरूप भी खटकने लगा है । अगर नागरी की वास्तविक त्रुटियाँ दूर करने के लिए ऐसा होता तो कोई हानि न थी । पर मालूम होता है कि उनका ध्यान त्रुटियाँ दूर करने के ऊपर उतना नहीं जितना कि उसको नई पोशाक पहनाने के ऊपर है । कोई कहता है, नागरी देर में लिखी जाती है; कोई सलाह देता है कि उसमें मात्रायें लगाने का ढँग बँगला जैसा होना चाहिए; किसी की राय है कि उसके अक्षरों में गोलाई की कमी है जिससे वह उतनी सुन्दर नहीं मालूम होती जितनी उर्दू, या अँगरेज़ी या और कोई लिपि । ऐसी सलाह देनेवाले सज्जनों की बात अगर मान ली जाय तो नागरी की असली त्रुटियाँ तो शायद उतनी दूर न हों, हाँ उसका चोला ज़रूर बदल जाय । साफ़ बात तो यह है कि अगर हमें जल्दी लिखी जानेवाली लिपि की आवश्यकता है तो हम उर्दू ही को क्यों न स्वीकार कर लें ? यदि हमें बँगला जैसी सुन्दर लिपि की आवश्यकता है तो हम बँगला ही को राष्ट्रीय लिपि क्यों न मान लें—हाँ, उर्दू हो चाहे बँगला, आवश्यक सुधार सभी में करने होंगे । फिर जब आपकी लिपि में इस क़दर दोष भरे पड़े हैं कि न वह गोल है, न वह जल्दी

लिखी जाती है, और न उसमें मात्रायें लगाने का ढँग ही आपको पसन्द है तो उसके पीछे इतना आन्दोलन करना महज़ एक रार बढ़ाना है। खेद है, आभ्यन्तरिक त्रुटियों को दूर करने की चेष्टा करने की जगह हम ऊपरी बातों में लगे हुए अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मार रहे हैं। दूसरी लिपियों में जिन त्रुटियों को देख कर हम बेतरह हँसते हैं, जिन त्रुटियों के कारण और लोगों को हम, उनकी प्राण से प्यारी लिपि छुड़ा कर, एक-राष्ट्रीयता के पथ पर अग्रसर करना चाहते हैं वैसी ही दो-चार त्रुटियाँ नागरी में आज तक विद्यमान हैं और हमारा उधर ध्यान भी नहीं जाता! कोई लिपि केवल इसीलिए पूर्ण या अपूर्ण, अच्छी या बुरी, नहीं समझी जा सकती कि उसके अक्षर गोल हैं या चौखूँटे; वह देर में लिखी जाती है या जल्दी। हमें वह प्रयत्न करना चाहिए जिससे उसकी भीतरी त्रुटियाँ दूर हों। ख़ैर, गोल अक्षरों की तो बात ही जाने दीजिए, क्योंकि उनके पीछे पड़ कर लिपि को 'पशुमार' देना अपने को उपहास का पात्र बनाना है। जल्दी लिखी जाने की बात यह है कि कोई लिपि कैसी भी जल्दी क्यों न लिखी जाय बिना सङ्केताक्षर-प्रणाली के यह त्रुटि दूर न आज तक हुई, न होगी। अतएव इसके लिए नागरी का अङ्ग-भङ्ग करने की जगह 'क्षिप्र-लिपि' या 'सङ्केताक्षर'—प्रणाली को ही उन्नत तथा प्रचलित करने का प्रयत्न कीजिए।

अच्छा, तो अब हम यहाँ पर उन त्रुटियों का उल्लेख करते हैं जो हमारी राय में नागरी-लिपि में से दूर की जानी चाहिए। सम्भव है, पहले भी ये त्रुटियाँ सर्वसाधारण के सामने लाई जा चुकी हों। परन्तु इस बात के जानने के साधन इस समय इस लेखक के पास नहीं और न यहाँ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशनों की रिपोर्टें ही हैं, जिनसे यह बात ज्ञात हो सके कि इस विषय पर किन किन लेखकों द्वारा कहाँ तक प्रकाश डाला जा चुका है। अतएव, बहुत सम्भव है, हमारे विचार कुछ और सज्जनों के विचारों से अनायास मिल जायँ। यदि ऐसा हो तो और भी अच्छा। इस प्रकार के विचार प्रकट करने से गालियाँ तक खानी पड़ती हैं, यह हम ख़ूब जानते हैं। पर अगर हाथ पैर सँभाल कर और सोच-विचार कर देखा जाय तो शायद बात उतनी बेजा न मालूम हो।

भारत के और और प्रान्तों की विशेष ध्वनियों के सूचक अक्षरों का प्रबन्ध करने के अलावा नागरी-हितैषियों को इन बातों पर भी विचार करना चाहिए—

(१) इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ की शक्ल अि, अी, अु, अू, अे, अै होनी चाहिए जैसी कि व्यञ्जनों में होती है। क्यों बेफ़ायदे तीन मूर्तियाँ वर्ण-पंक्ति में जकड़ रक्खी जायँ!

(२) ख में कभी कभी 'र व' का भ्रम हो जाता है। इसलिए उसकी जगह 'ष' से काम लिया जाय।

(३) 'ष' का काम 'श' से लिया जाय, क्योंकि इनके उच्चारण में कोई ऐसा भेद नहीं।

(४) 'ण' जब दूसरे व्यञ्जनों से मिलाया जाता है तब 'रा' सा मालूम होता है। यह एक आम शिकायत है। उसकी जगह 'ण' का ही प्रयोग जारी किया जाय।

(५) 'ऋ' की कोई आवश्यकता नहीं, 'रि' से सब काम चल सकता है। (ख़याल रहे कि उर्दू में हम स्वाद, सीन, से आदि की हँसी उड़ाया करते हैं।) 'ऌ', 'ॡ' की भी अलग आवश्यकता नहीं।

(६) पृ, प्रि, कृ, क्रि, ऌ, में से प्रि, क्रि, इस प्रकार के ही रूपों का प्रयोग होना चाहिए। 'ऌ' की जगह 'ल्रि' और 'श्री' की जगह 'श्‍री' रूप काम में लाना चाहिए। इसी तरह और भी आवश्यक सुधार कर लेने चाहिए।

(७) त्र, तृ में कुछ भेद नहीं। फिर एक ही क्यों न रखा जाय?

ऐसी ही और भी कुछ त्रुटियाँ हैं जो आसानी से समझ में आ सकती हैं। बिना इनका सुधार हुए हमारी लिपि सर्वाङ्गसुन्दर नहीं कही जा सकती। नये अक्षर गढ़ डालने से पहले घर का कूड़ा-करकट साफ़ कर देना अच्छा होगा। इस प्रकार सुधरी हुई लिपि में ही संस्कृत तथा अन्य भाषायें लिखी जायँ। पहले इन सुधारों का बहुत विरोध होगा, क्योंकि हज़ारों वर्षों से चली आ रही रूढ़ियाँ तोड़ डालना सहज नहीं। ऐसा करने के लिए भारी मानसिक दृढ़ता चाहिए। यह भी सोच लेना चाहिए कि हमें अपनी लिपि को सर्वमान्य बनाना है। ऐसा करने के लिए, यदि आवश्यकता हो तो, कुछ मानसिक क्लेश भी सहन करना होगा। सरलता ही सफलता की कुञ्जी है, और अपनी स्वाभाविक सरलता के कारण ही आज नागरी-लिपि को वह मान मिला है जिसका मिलना पहले महा कठिन क्या असम्भव समझा जाता था।

एक बात सम्मेलन के सञ्चालकों से भी कहना अनुचित न होगा। वह यह कि केवल नामी ग्रामी महाशयों और नुमायशी स्वार्थ-त्यागियों, हिन्दी-प्रेमियों और देशभक्तों को भर लेने से आपकी वर्णसुधारिणी समिति का काम न चल सकेगा। हमारी समझ में उसमें पुरातत्त्व, अक्षर-विज्ञान तथा भाषा-विज्ञान के तीन चार विशेषज्ञों के सिवा किसीको भर्ती न करना चाहिए। हाँ, समिति में इन्हीं विषयों के पण्डित एक महाराष्ट्रीय तथा एक मदरासी सज्जन भी अवश्य होने चाहिए। आगे मर्ज़ी हुज़ूर की।

बदरीनाथ भट्ट

प्रेम-विह्वल।

(गीताञ्जलि के एक गीत का भाव)

प्राण-सखे! इस वृष्टि-निशा में
आज तुम्हारा है अभिसार;
आशा-हीन समान जगत यह
रुदन कर रहा वारंवार।
आँखों में हे बन्धु हमारे!
निद्रा आज नहीं आती
पुनः पुनः हम देख रहे हैं
बाहर खोल खोल कर द्वार।
बाहर कुछ भी नहीं दीखता
अवलोकन करने पर भी;
आज तुम्हारा मार्ग कहाँ है,
आता है बस यही विचार।
दूर कहाँ किस नदी-किनारे
दूर कहाँ किस घन वन में,
प्रियतम! किस गम्भीर तिमिर में
आज हो रहे हो तुम पार?

सियारामशरण गुप्त

बिजली क्या है?

हमारे देश भारतवर्ष में जब पहले-पहल रेल और उसके साथ तार का प्रवेश हुआ तब हमारे देश-भाइयों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। लोग आश्चर्य्य करते थे कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर तार-द्वारा किस प्रकार ख़बर भेजी जा सकती है। तार के बाद टेलीफ़ोन, बिजली की रोशनी, बिजली की ट्रामगाड़ी आदि कितने ही आश्चर्य्य-जनक कौतुक देखने में आये। आज भी, हिन्दुस्तान ही में क्यों, संसार भर में, ऐसे कितने ही मनुष्य पाये जाते हैं जो बिजली की लीलायें देख कर आश्चर्य-

सागर में डूब जाते हैं और मन ही मन प्रश्न करने लगते हैं कि आख़िर बिजली है क्या वस्तु और वह किस प्रकार इतने आश्चर्य्य-जनक दृश्य दिखला देती है !

विज्ञान-वेत्ताओं ने बिजली के वर्णन में असंख्य पुस्तकें लिख डाली हैं और अभी तक लिखते जा रहे हैं। यह बिजली का विषय बड़ा लम्बा और गूढ़ है; किन्तु इस विषय में यहाँ इतना ही लिखा जायगा जितने से साधारण मनुष्य बिजली और उसके स्थूल रहस्य को समझ सकें।

बिजली उसी प्रकार की एक वस्तु है जैसे प्रकाश और तेज। भेद केवल इतना ही है कि रोशनी और गरमी को हम इन्द्रियों द्वारा जान सकते हैं, बिजली को नहीं। अपनी आँखों से हम रोशनी को देखते और हाथों से आग की गरमी का अनुभव करते हैं, किन्तु इस रीति से बिजली को नहीं जान सकते। हाँ, बिजली के परिणाम को जान कर बिजली का अनुभव कर सकते हैं। जैसे हम बिजली की रोशनी को देख कर और उसके तार को छूने से गरम धक्के खाकर कह सकते हैं कि बिजली बह रही है; किन्तु उसको प्रत्यक्ष नहीं देख सकते।

यदि हम आबनूस के एक चिकने डण्डे या एक साधारण फाउन्टेन क़लम को ऊनी कपड़े पर तेज़ी से, कुछ देर तक, रगड़ें और फिर उसे किसी काग़ज़ के टुकड़े के निकट ले जायँ तो वह काग़ज़ का टुकड़ा क़लम की ओर खिँचेगा। यह बात बहुत प्राचीन काल से हमारे पूर्वजों को मालूम थी; किन्तु उन्हें इसका ठीक ठीक कारण मालूम न था। पूर्व काल में यूरप में सभ्यता का केन्द्र यूनान माना जाता था और यूनानी विद्वानों ने आरम्भ में देखा कि खींचने की यह शक्ति नीलम पत्थर में अधिक है। इसीसे यूनानी भाषा में नीलम पत्थर का नाम Electron (एलेक्ट्रान) पड़ा है। इसी लिए यूरपवालों ने खींचनेवाली इस विचित्र शक्ति को Electricity (एलेक्ट्रीसिटी) कहना उचित समझा। धीरे धीरे लोगों ने पता लगाया कि नीलम के अतिरिक्त और भी कुछ ऐसे पदार्थ हैं जो ऊनी कपड़े या चिकनी खाल पर रगड़े जाने से खींचने की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं—जैसे काँच, गन्धक इत्यादि। असल बात यह है कि इस प्रकार रगड़ खाने से खींचने की थोड़ी बहुत शक्ति प्रायः सभी पदार्थों में आ जाती है।

अब प्रश्न हो सकता है कि यदि यह शक्ति सब पदार्थों में है तो हम उसे साधारणतः देख क्यों नहीं सकते ? जब हमारा हाथ किसी पदार्थ से रगड़ खाता है तब उसमें यह खींचने की शक्ति क्यों नहीं आ जाती ? इसका कारण बहुत सीधा है। यदि हम किसी धातु के टुकड़े को अपने हाथ से पकड़ कर ऊन के साथ रगड़ें तो उसमें यह शक्ति कदापि न आवेगी; किन्तु यदि उसी टुकड़े को हम काँच की किसी वस्तु के सहारे या सूखी लकड़ी से पकड़ कर ऊन पर रगड़ें तो उसमें खींचने की शक्ति आ जाती है और वह काग़ज़ के टुकड़े को अपनी ओर खींचने लगता है। इसका कारण यह है कि जब हम उस धातु के टुकड़े को अपने हाथ से पकड़ कर रगड़ते हैं तब खींचने की जो शक्ति उसमें उत्पन्न होती है वह सब हमारे शरीर में होती हुई पृथ्वी में चली जाती है, जिससे धातु में वह शक्ति बिलकुल नहीं रह जाती। किन्तु जब हम काँच या लकड़ी से पकड़ कर उसी धातु को रगड़ते हैं तब पैदा हुई आकर्षण-शक्ति काँच या लकड़ी द्वारा पृथ्वी की ओर न जाकर धातु में रह जाती है। इससे वह काग़ज़ के टुकड़े या किसी अन्य हलकी वस्तु को अपनी ओर खींच सकता है। इससे मालूम हुआ कि संसार में कुछ वस्तुयें तो ऐसी हैं जिनमें होकर बिजली नहीं बह सकती और कुछ ऐसी हैं जिनमें बह सकती है। बिजली के लिए रास्ता कर देने-

वाले पदार्थ को चालक (Conductor) कहते हैं और रास्ता न देनेवाले को अचालक (Insulator)। काँच या आबनूस में बिजली नहीं बह सकती; इसलिए जब हम काँच के टुकड़े को ऊन से रगड़ते हैं तब तो पैदा हुई बिजली काँच के उसी स्थान में रह जाती है जहाँ रगड़ पड़ती है और उस स्थान को काग़ज़ के टुकड़े के पास लाने से काग़ज़ खिँच जाता है। काँच के इस स्थान को यदि हम अपने हाथ से छूलें तो बिजली की शक्ति हाथ और शरीर से होकर पृथ्वी में चली जाती है, जिससे फिर वह काँच काग़ज़ के टुकड़े को नहीं खींच सकता। एक वस्तु को दूसरी के साथ रगड़ने से इस प्रकार बिजली पैदा होने के कारण जब लोगों को विदित हुए और उनमें जब बिजली की ओर अधिक रुचि उत्पन्न हुई तब उन्होंने ऐसी मशीनें (कलें) बनाईं जो कि हाथ से चलाई जायँ और जिनके द्वारा, तेज़ी के साथ घुमाकर, एक वस्तु दूसरी वस्तु पर तेज़ी से रगड़ खाय और अधिक बिजली उत्पन्न हो। बिजली पैदा करनेवाली इस प्रकार की मशीनें स्कूलों और कालिजों में देखी जा सकती हैं। इस प्रकार की मशीनें बिजली पैदा होने पर ख़ूब चिनगारियाँ उत्पन्न करती हैं।

इस रीति से बिजली का आविष्कार होने के बहुत दिनों बाद इटली के एक विद्वान् ने एक मेंढ़क को मार कर उसकी टाँग में बिजली की धारा प्रवाहित कर दी। बिजली की शक्ति से वह मुर्दा टाँग जकड़ गई। इससे उस विद्वान् को बड़ा अचम्भा हुआ। तब उसने यह देखना चाहा कि बादल में उत्पन्न होनेवाली बिजली का असर भी इसी प्रकार का है या नहीं। इसके लिए उसने एक दूसरे मेंढ़क को मार कर उसकी टाँग को ताँबे की एक कील में खोंस दिया। फिर लोहे की एक धन्नी के सहारे उसे लटका दिया। ताँबे की कील और लोहे की धन्नी का परस्पर संयोग होते ही वह टाँग उसी प्रकार जकड़ गई जिस प्रकार कि बिजली से जकड़ी थी। यह देख कर उस विद्वान् को और भी अचम्भा हुआ। इससे उसने सोचा कि बिजली वास्तव में मनुष्य तथा पशु के शरीर की नसों में होती है।

इस बात की सत्यता की खोज के लिए इटली के एक और विद्वान् ने भी काम शुरू किया, जिससे पता लगा कि बिजली की उत्पत्ति वास्तव में दो भिन्न भिन्न धातुओं के पारस्परिक संयोग से होती है। इसके प्रमाण में उसने ताँबे और जस्ते की चादर के टुकड़ों को एक दूसरे से लगा कर पानी से भरे हुए एक प्याले में डाला, जिसमें थोड़ा सा गन्धक का तेज़ाब (Sulphuric Acid) भी मिला था। फिर ताँबे के दो तारों को दोनों धातुओं के सिरे में लगा कर देखा कि तारों के आपस में मिलते ही उनमें बिजली का प्रवाह बहने लगता है। इसी प्रकार, मेंढ़क की टाँग से लगी हुई ताँबे की कील और लोहे की धन्नी के आपस में मिलने पर बिजली का प्रवाह जारी हो जाता है। इसी आविष्कार के आधार पर आज-कल बिजली की बैटरी बनती है। इटली के जिस विद्वान् ने बिजली की बैटरी बनाने की रीति निकाली उसका नाम वोल्टा (Volta) था।

रगड़ खाने से उत्पन्न होनेवाली बिजली और बैटरी से पैदा होनेवाली बिजली में बहुत भेद है। रगड़ खाकर पैदा होनेवाली बिजली तार के सिर को पास लाने पर चिनगारी के रूप में तुरन्त ग़ायब हो जाती है; किन्तु यदि हम बैटरी के तारों को जोड़ दें तो बिजली ग़ायब न होकर चुपचाप तार में बहती रहती है। अतएव, इस प्रकार चुपचाप बहने के कारण इस बिजली का नाम करेन्ट (Current) या धारा रक्खा गया।

इस बिजली का आविष्कार होने के बहुत पूर्व हमारे पूर्वजों को यह मालूम था कि एक प्रकार की

ऐसी धातु होती है जो लोहे के टुकड़ों को, क़रीब लाई जाने पर, अपनी ओर खींच लेती है। इसे वे चुम्बक पत्थर कहते थे। उन्हें इस धातु का एक और गुण मालूम था। वह यह कि यदि इस धातु का एक महीन लम्बा टुकड़ा एक तागे से बाँध कर लटका दिया जाय तो वह आप से आप इस प्रकार मुड़ जाता है कि उसका एक सिरा तो पृथ्वी के उत्तरीय ध्रुव और दूसरा दक्षिणीय ध्रुव की ओर सदैव बना रहता है। इस गुण के कारण यात्री लोग इसे अपने पास रख कर वनों और सुनसान स्थानों से होकर उसी प्रकार मार्ग का पता लगा कर यात्रा करते थे जिस प्रकार आज-कल जहाज़ों में दिशा बतलाने के लिए यह चुम्बक रक्खा जाता है।

किन्तु हमारे पूर्वजों को यह न मालूम था कि एक ऐसी वस्तु से भी इस चुम्बक पत्थर (धातु) का घना सम्बन्ध है जो बिजली कही जाती है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हालेंड के एक विद्वान् ने यह पता लगाया कि यदि चुम्बक पत्थर की एक लम्बी सुई को बारीक तागे से बीच में बाँध कर लटका दें और फिर उसके नीचे या ऊपर एक ऐसे तार को ले आवें जिसमें बिजली बह रही हो तो वह सुई इस प्रकार मुड़ जायगी कि उसके सिरे तार के आर पार हो जायँगे। एक तार के बदले यदि हम कई तारों को इस प्रकार ले आवें तो अधिक असर होता है। चुम्बक पत्थर और बिजली के घने सम्बन्ध के इस आविष्कार की बदौलत आज हम ख़बर भेजनेवाले बिजली के तार और बिजली की घण्टी इत्यादि के विचित्र रहस्य देखते हैं। इसी चुम्बक पत्थर को घुमा देनेवाली बिजली की शक्ति-द्वारा बिजली की रेल और बिजली की ट्राम गाड़ चलती है।

इस घटना के दस-बारह वर्ष बाद एक अँगरेज़ विद्वान् फ़ैराडे (Faraday) ने यह पता लगाया कि यदि हम तार के एक गोल गुच्छे को चुम्बक-पत्थर के निकट तेज़ी से चक्कर खिलायें तो उस गुच्छे में बिजली उत्पन्न होकर बहने लगेगी। इस आविष्कार के आधार पर थोड़े ख़र्च में अधिक बिजली उत्पन्न करनेवाली मशीन बनाई गई, जिसे हम डाइनमो (Dynamo) कहते हैं।

इस क़ुदरती चुम्बक पत्थर के अतिरिक्त हम साधारण लोहे के टुकड़ों को भी, बिजली द्वारा खींचने की शक्ति देकर, चुम्बक बना सकते हैं। ताँबे के बारीक तार को रेशम या रुई के तागे से इस प्रकार लपेट दें कि जब हम इस तार का गोल गुच्छा बनावें तब एक तार का ताँबा दूसरे से छू न जाय, फिर उसमें बिजली की धारा दौड़ावें और गुच्छे के बीच एक मामूली लोहे के टुकड़े को रख दें तो उस लोहे का टुकड़ा चुम्बक बन जायगा। घोड़े की नाल की शकल का जो चुम्बक बच्चों के खेलने के लिए हम बाज़ारों में देखते हैं, वह इसी प्रकार बनाया जाता है। नरम लोहे के बनाये गये चुम्बक की खींचने की शक्ति, कुछ दिनों बाद, उड़ जाती है; किन्तु कड़े या फ़ौलादी लोहे से बना हुआ चुम्बक बहुत दिनों तक चलता है।

इस प्रकार बिजली से बने हुए चुम्बक के एक लम्बे टुकड़े को यदि हम अपने हाथ या किसी स्थान पर रख कर लोहे की सुई या लोहे का अन्य कोई हलका टुकड़ा ले आवें तो वह उसकी ओर खिँच जाता है। चुम्बक के किसी भी सिरे के पास लाई जाने से यह सुई खिँच जायगी; किन्तु यदि हम चुम्बक के सदृश दो एक टुकड़ों को एक दूसरे के पास रक्खें तो एक विचित्र बात देखने में आवेगी। यदि हम एक चुम्बक को रख कर उसके एक सिरे के पास दूसरे चुम्बक के भी एक सिरे को ले आवें तो ये चुम्बक बड़ी तेज़ शक्ति से एक दूसरे की ओर खिँचेंगे; फिर यदि हम एक चुम्बक को पहले की तरह, बिना हटाये हुए, रक्खा रहने दें और दूसरे चुम्बक को पलट कर उसके दूसरे सिरे को

पहले चुम्बक के सिरे के पास ले आवें तो उसमें आकर्षण-शक्ति बिलकुल न होगी। फिर यदि हम दोनों चुम्बकों को पलट कर दोनों के दूसरे सिरों को पास रख दें तो पहले की तरह फिर आकर्षण होने लगेगा। दो चुम्बकों के स्थान में यदि हम एक चुम्बक का टुकड़ा लें और उसे, तागे से लटकती हुई चुम्बक की एक बारीक सुई के एक सिरे के पास, ले आवें तो वह सुई इसकी ओर खिँच कर चली आवेगी; किन्तु यदि इसी सुई के सिरे के पास चुम्बक का दूसरा सिरा ले आवें तो वह सुई भाग जायगी। इससे मालूम हुआ कि चुम्बक के दो सिरों में दो प्रकार की शक्ति है। एक को उत्तरी ध्रुव (North Pole) कहते हैं, जो उत्तर दिशा दिखलाती है और दूसरी को दक्षिणी ध्रुव (South Pole)। वह दक्षिण दिशा दिखाती है।

इस लोहे के टुकड़े में जितनी अधिक बिजली प्रवाहित की जाती है चुम्बक भी उतना ही अधिक शक्तिशाली बनता है। बिजली और चुम्बक के बीच में यह घना सम्बन्ध है। इसका हमें ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि इसी सम्बन्ध के आधार पर बिजली से अनेक काम लिये जाते हैं।

जगन्नाथ खन्ना

युद्ध-सम्बन्धी विचारों की उत्पत्ति।

हम जितनी बातें जानते हैं उनमें से बहुतों की शिक्षा हमें प्रकृति से मिली है। मनुष्यों ने युद्ध-सम्बन्धी जितने नये नये आविष्कार किये हैं उनको देख कर यह न समझ लेना चाहिए कि आविष्कार-कर्त्ता ने अपने मन से कोई नई बात ढूँढ़ निकाली है। सच तो यह है कि संसार में कोई भी वस्तु नई नहीं। मनुष्यों के नये नये आविष्कारों के अङ्कुरों की उत्पत्ति भी प्रकृ से होती है।

योरोपीय महासमर की बराबरी का कोई दूसरा युद्ध संसार में आज तक नहीं हुआ। इस युद्ध जो तरह तरह के वैज्ञानिक प्रयोग किये गये हैं, उनक ध्यान लोगों को पहले कभी न था। तो भी इस युद्ध की कितनी ही अनोखी कलायें नई नहीं वे स्वाभाविक विचारों की नक़ल मात्र हैं, जे मनुष्यों की उत्पत्ति के पहले ही से संसार में विद्यमान थे। कहने का अभिप्राय यह है कि इस महासमर में तरह तरह की जितनी अद्भुत युद्ध-सामग्रियों का व्यवहार किया गया है उनमें से बहुतों का उपयोग पशु-पक्षी पहले ही से करते चले आ रहे हैं। विषैला धुवाँ (Asphyxiating Gas (गैस), बादल के समान धुवाँ फैलानेवाला बम फँसाने को तारों का फन्दा, विद्युत् के धक्के, खाइयाँ जल्दी जल्दी गोली बरसानेवाली बन्दूक़ और रक्ष के लिए हज़ारों प्रकार के दूसरे उपायों का उपयोग पशु-पक्षी लाखों वर्षों से करते चले आ रहे हैं।

सबसे अधिक विचित्र और महत्त्वपूर्ण आविष्कार है विषैला धुवाँ, जिसका उपयोग जर्मन लो इस युद्ध में कर चुके हैं और जिसे देख कर वर्त्तमान विज्ञान-शास्त्रज्ञ भी चक्कर खा रहे हैं। परन्तु गुबरीला कीड़ा इस बात को उस समय से जानता है जब संसार बाल्यावस्था में था। इस कीड़े का प प्रबल शत्रु है जो सदा इसके नाश की फिक्र में रहत है। वह शत्रु जब गुबरीले पर आक्रमण करता है त ऐसा जान पड़ता है कि वह उसे ज़िन्दा न छोड़ेगा परन्तु गुबरीला देखने में जितना छोटा है उतना ही अधिक खोटा है। जब वह शत्रु के आक्रमण से पीड़ित हो जाता है तब ईश्वर-दत्त शक्ति का प्रयोग करता है। पहले वह हलकी आवाज़ के साथ नील धुवाँ छोड़ता है जिसकी बू बहुत बुरी होती है फिर, मशीन-गन की तरह, शत्रु पर लक्ष कर

फुफकार पर फुफकार मारता जाता है और पीछा करनेवाले शत्रु को अन्धा बना कर स्वतन्त्रता-पूर्वक घूमने फिरने लगता है। इस भूमण्डल में छोटे बड़े हर तरह के गुबरीले हैं और उनके छोड़े हुए गैस में इतनी शक्ति रहती है कि वह मनुष्य के हाथ को जला दे सकती है। जिस समय यह विष उनके मुँह से निकलता है उस समय वह पानी की तरह रहता है और हवा के साथ मेल होने पर भाफ़ बन जाता है।

ज़ेपलिन नामक जर्मन वायुयान की गति-विधि शत्रुओं से छिपाने के लिए जो धुवें का बादल, बम-द्वारा, बनाया गया था वह भी एक अनोखी बात है। परन्तु (Squid Fish) स्क्वीड नामक मछली न जाने कितनी शताब्दियों से इस विचित्र उपाय को करती आ रही है। ज्योंही वह अपने शत्रु को आते देखती है त्योंही अपने मुँह के भीतर की थैली से थोड़ी सी स्याही बाहर निकाल कर अपने आस पास के पानी को काला कर डालती है ताकि दुश्मन उसको देख न सके। जब कभी मनुष्य उसे क़ैद कर लेते हैं तब वह हौज़ के भीतर हज़ारों गैलन पानी को थोड़ी ही देर में काला कर डालती है और अपना पता नहीं लगने देती। इसके सिवा वह अचूक निशाना भी लगाती है। जब कभी वह मछली पकड़ ली जाती है तब, अपने पकड़नेवाले के मुँह पर निशाना जमा कर पानी या स्याही के फुहारे मारती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसे यह काम सिर्फ़ अपने बचाव के लिए करना पड़ता है। एक बार डारविन साहब यात्रा करने निकले। वे जहाज़ पर बैठे बैठे दरियायी जीवधारियों के खेल देख रहे थे कि सहसा पानी के कई फुहारे लगातार उनके चेहरे पर पड़े। पहले उन्हें यह न ज्ञात हुआ कि ये फुहारे कहाँ से आये, परन्तु पीछे से उन्हें मालूम हुआ कि पानी के ये छींटे आक्टोपस नामक जलचर ने मारे थे। इस जीवधारी के शरीर में एक नली रहती है। इसी नली में पानी भर कर वह अचूक निशाना लगाता है।

इन दोनों प्राणियों से बढ़ कर तीरन्दाज़ मछली (Archer Fish) है। वह प्रायः नदी में, तट पर, रहती है और वहाँ से पानी पर फैली हुई लताओं को ताकती रहती है। इन लताओं पर जब कोई कीड़ा बैठा दिखाई पड़ता है तब वह अपने मुँह में पानी भर कर निशाना मारती है। इस तरह वह तितलियों तथा कीड़ों को पानी पर गिरा कर अपना उदर-पोषण करती है। इस मछली के निशाने अचूक होते हैं और इसी कारण चीनी तथा जापानी लोग इसे काँच के बर्तन में पालते हैं। ये लोग कभी कभी बोतल के मुँह पर एक छोटी सी बेल रख कर उस पर कीड़ा बिठाते और मछली की अचूक निशानेबाज़ी का तमाशा देखते हैं।

इस महासमर में वायुयान और पनडुब्बी के बीच कई बार युद्ध हुआ है। लोग इसे बड़े आश्चर्य की बात समझते हैं। परन्तु छोटे छोटे जीव-जन्तुओं में ऐसा युद्ध हज़ारों वर्ष से होता आ रहा है। नदी-किनारे चुपचाप बैठ जाइए। फिर आप देखेंगे कि रामा चिड़िया (King Fisher) किस तरह हवा में उड़ती आती है और एक-दम नीचे की ओर झपट्टा मार कर पानी के भीतर तैरती हुई मछली को पकड़ ले जाती है। इस युद्ध में प्रायः पक्षी की जीत और मछली की मौत होती है। कभी कभी इसके विपरीत भी होता है। जैसे एक बार एक बगुला पाइक (Pike) नामी मछली-द्वारा पकड़ा जाकर पानी में डुबो कर मार डाला गया।

सुरङ्ग और फँसाने के काम आनेवाले तार के फन्दे के विषय में हम लोगों ने बहुतेरी बातें सुनी हैं। इसके उदाहरण हमें छोटे छोटे जीवधारियों में बहुतायत से मिलते हैं। मिट्टी के गारे में दीमक सुरङ्ग बनाती है और भीतर ही भीतर एक स्थान से दूसरे स्थान को, छिपी छिपी, आ जा सकती है।

जङ्गली लाल चींटे खाई खोदने में बड़े प्रवीण होते हैं। उनका एक दल आठ दस खाइयाँ आसानी से खोद सकता है। प्रत्येक खाई की लम्बाई २०० फ़ुट से भी अधिक होती है। इसे बनाने के लिए चिउँटियाँ उसी प्रकार काम में लग जाती हैं जिस तरह खाई खोदने के लिए सफरमैना के सिपाही। प्राणिशास्त्रियों का कथन है कि चिउँटियाँ पहले भूमि की पैमाइश करती हैं, फिर यह निश्चय करती हैं कि खाई किस जगह खोदी जानी चाहिए। इसके बाद वे, सबकी सब, काम में जुट जाती हैं। स्विज़रलैंड के बाग़ीचों में एक प्रकार की भूरी चिउँटी होती है। वह ऊपर कही गई चिउँटियों की अपेक्षा अधिक चतुर होती है। ठण्ढ और धूप से बचने के लिए वे अपनी खाइयों के ऊपर उसी तरह छत बनाती हैं जिस तरह सिपाही अपनी खाइयों के ऊपर ठण्ढ और बर्फ़ से बचने के लिए फूस छा देते हैं।

फँसाने के तार के फन्दे ने हमारे बहुतेरे बहादुर सिपाहियों की जान ली है। यह फन्दा भी एक प्रकार के छोटे से जीवधारी के बहुत पुराने विचारों का फल है। मकड़ी को चतुराई और सुघराई के साथ जाल फैलाते हज़ारों वर्ष हो गये। मकड़ी का जाल जिस तरह कीड़ों के लिए भयानक होता है उसी प्रकार तारों का फन्दा फ़ौजी जवानों के लिए ख़तरनाक है। कभी कभी मकड़ी के जाल में कोई बड़ा सा कीड़ा आ फँसता है और जाल को तोड़ कर निकल भागता है। बेचारी मकड़ी हाथ मलती रह जाती है। लड़ाई के मैदान में फ़ौज की रक्षा के लिए तारों के फन्दे लगाये जाते हैं। कभी कभी इस फन्दे में विरोधी दल का बहादुर आ फँसता है और क़ैदी बना लिया जाता है। कभी कोई, बड़े कीड़े की तरह, छुटकारा पाकर भाग भी जाता है। तारों के जाल के कारण शत्रुओं पर आक्रमण करने में अनेक असुविधायें होती हैं। इसलिए सैन्यदल उसे खोद कर फेंक देने की कोशिश करता है। परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं होती। सबके सब शत्रु तार के जाल में फँस जाते हैं। इस जाल में फँसनेवालों की ख़बर पाने के लिए तार का एक सूत्र रहता है जिसका एक छोर तो जाल से फँसा रहता है और दूसरा छोर, खाई के भीतर, एक घण्टी से सम्बद्ध रहता है। तार के फन्दे में दुर्भाग्यवश यदि कोई मनुष्य फँस जाय तो उसकी ख़बर खाई के भीतर बैठे हुए सिपाहियों को, घण्टी बजने से, मिल जाती है। इसी तरह मकड़ी भी, अपने छिपने के स्थान के भीतर एक धागा लगा रखती है, जिसका एक छोर जाल के कई स्थानों से जुड़ा रहता है। ज्योंही कोई कीड़ा जाल पर बैठता है त्योंही मकड़ी को, भेद देनेवाले धागे से, सूचना मिल जाती है और वह तुरन्त बाहर निकल कर अपने शिकार को पकड़ लेती है।

दोनों दलों के वायुयानों के बीच जब आकाश में संग्राम होता है तब उसके सञ्चालकों को बड़ी चालाकियाँ करनी पड़ती हैं। ये चालाकियाँ और कुछ नहीं, पक्षियों की स्वाभाविक धूर्तता की नक़लें हैं। कमज़ोर शत्रु चण्डूल पर जब कभी बलवान् बाज़ आक्रमण करता है तब प्रायः देखा जाता है कि चण्डूल अपने बचाव के लिए पृथ्वी पर आने का प्रयत्न करता है। परन्तु जब कभी वह आकाश में बहुत उँचाई पर होता है और भूमि पर उतरने में उसे बीच ही में शत्रु द्वारा पकड़े जाने का भय रहता है तब वह पृथ्वी पर उतरने की चेष्टा करने के बदले आकाश में और भी ऊपर की ओर उड़ता चला जाता है। वह भली भाँति जानता है कि शक्तिशाली शत्रु से बचने का यही एकमात्र उपाय है। इसी प्रकार की चालाकियाँ गगन-मण्डल में लड़नेवाले वायुयान के सञ्चालक भी किया करते हैं।

इस संग्राम में वायुयान से मुख्यतः दो काम लिये जाते थे—(१) पता लगाना और (२) पृथ्वी पर स्थित मनुष्यों तथा वस्तुओं का नाश करना।

पहले प्रकार के काम का उदाहरण गिद्ध में पाया जाता है जो शिकार को खोजने के लिए आकाश में उड़ता रहता है और वहाँ से अपनी पैनी नज़र के द्वारा शिकार का पता लगा लेता है। दूसरी बात का उदाहरण कौवे से मिलता है। कौआ जिस तरह ख़रगोश का पीछा करता है उसी तरह वायुयान भी महासमर में दौड़ती हुई रेलगाड़ी का पीछा करता है। ख़रगोश को घायल करने के लिए कौवे को बार बार झपट्टा मारना पड़ता है और जो ख़रगोश भागने में कुशल होता है वही अपनी जान बचा सकता है। इसी तरह रेलगाड़ी में लदी हुई युद्ध की सामग्री का, और जङ्गी सिपाहियों का, नाश करने के लिए वायुयान के सवारों को बारम्बार बम-गोलों की वर्षा करनी पड़ती है और यदि गाड़ी का एञ्जिन शीघ्र दौड़नेवाला न हुआ तो उसका सर्वनाश हो जाता है।

रात्रि के समय वायुयान को अपने अड्डे का पता पृथ्वी पर स्थित प्रकाश की ज्योति से लगता है। प्रकाश देनेवाले जुगुनू जाति के कीड़े भी इसी युक्ति से काम लेते हैं। सन्ध्या होते ही मादा पृथ्वी पर उतर कर चमकती रहती है और इस तरह अपने नर को अपने रहने की जगह का पता देती है। जुगुनू स्वयं अपने प्रकाश में शिकार खोजते हैं। इसी प्रकार खोज करनेवाले प्रकाश (Search Light) की लहरों के ज़रिये शत्रुओं का पता लगाया जाता है।

हम लोगों ने बहुत से क़िले देखे सुने हैं, परन्तु यह भी मनुष्यों के मस्तिष्क की करामात नहीं। दुनिया में ऐसे बहुत से पशु हैं जो क़िले-बन्दी करते हैं। इन पशुओं में सबसे अच्छा क़िला बनानेवाला एलक (Elk) नामी बारहसिङ्गा है, जो उत्तरीय यूरप और अमेरिका में पाया जाता है। शरद ऋतु में इसे अपने शत्रुओं से भय नहीं रहता, क्योंकि ईश्वर ने इसके पैर ऐसे बनाये हैं कि यह बर्फ़ पर बड़ी तेज़ी के साथ भाग सकता है और अपने कट्टर शत्रु से आसानी से बच सकता है। परन्तु गरमी के दिनों में, जब बर्फ़ पिघल कर पतली चादर की तरह रह जाती है तब, अपने प्रबल शत्रु भेड़िये से बचना उसके लिए कठिन हो जाता है। गरमी के दिनों में जब वह शत्रु से बचने के लिए भागता है तब बर्फ़ की पतली चादर, खुरों से टकरा कर, टुकड़े टुकड़े हो जाती और पिघल जाती है। इसलिए, ये जानवर, ऐसे मौसम में, अपनी रक्षा के लिए क़िले बनाते हैं। पहले वे बहुत सी बर्फ़ एक स्थान में एकत्र करके पैरों से कुचलते और उस स्थान को ऊँचा करते हैं। फिर उसके चारों ओर बर्फ़ की ही दीवार उठाते हैं। क़िले के भीतर वे जिस बर्फ़ को कुचलते हैं वह समधरातल में नहीं रहती। उसके भीतर बहुत से रास्ते और निकास, भूल-भुलैयों की तरह, रहते हैं ताकि उन्हें भीतर आने जाने में असुविधा न हो। इसी तरह का क़िला वापिटी नामक हिरन भी बनाते हैं। इनके बनाये हुए क़िले का घेरा चार-पाँच मील से कम नहीं होता। इनका बनाया हुआ क़िला दूर से दिखाई नहीं देता। उसके भीतर जालीदार रास्ते, दीवार के नीचे, इतनी गहराई पर होते हैं कि जानवर का आना जाना और घूमना फिरना बाहर से देख नहीं पड़ता।

ब्रिटिश सरकार की फ़ौज के सिपाहियों को ख़ाकी पोशाक पहने देख लोग समझते हैं कि इस पोशाक का मुख्य उद्देश फ़ौज की पहचान है। ख़ाकी रङ्ग से कोई विशेष मतलब नहीं। जिस रङ्ग की वर्दी सरकार को पसन्द आगई उसी रङ्ग की वर्दी फ़ौज को दे दी जा सकती है। एकसी पोशाक रखने का कारण यह है कि सिपाही अपने पक्ष और विपक्षवालों को आसानी के साथ पहचान सकें। यह बात भी ठीक है, परन्तु ब्रिटिश फ़ौजों के सिपाहियों को जो ख़ाकी वर्दी दी जाती है उस वर्दी के ख़ाकी रङ्ग से एक ख़ास मतलब है। उसी

विशेषता के कारण सरकार को ख़ाकी रङ्ग पसन्द है।

इस पृथ्वी पर जितने पशु, पक्षी, मछलियाँ और कीड़े हैं उनके शरीर की रङ्गत आस पास की वस्तुओं की रङ्गत से भली भाँति मिलती जुलती है। इसी कारण वे अपने शत्रुओं को आसानी से दिखाई नहीं पड़ सकते। बाघ की देह पर जो काले काले पट्टे रहते हैं वे जङ्गल की लम्बी लम्बी घासों में, जहाँ कि वे सदा घूमा फिरा करते हैं, बिलकुल मिल जाते हैं और जब तक कोई पास जाकर न देखे तब तक वह आसानी से दिखाई नहीं दे सकता। ख़रगोश के बदन की रङ्गत ज़मीन के रङ्ग से मिलती है और इसी कारण वह शत्रुओं की नज़र बचा कर निकल भागता है। यह बात पक्षियों में भी पाई जाती है। बहुधा देखा जाता है कि पक्षियों की अपेक्षा उनके अण्डों की रङ्गत आस पास की वस्तुओं के रङ्ग से बहुत ज़ियादह मिल जाती है। सामुद्रिक पक्षी अपना अण्डा गोल गोल चमकदार पत्थरों के किनारे रखता है। अण्डे की रङ्गत पत्थरों के रङ्ग से बिलकुल मिल जाती है। ध्यानपूर्वक देखे बिना पक्षियों के अण्डे और पत्थर के बीच कोई फ़र्क़ नहीं मालूम हो सकता।

मछलियों के शरीर का ऊपरी भाग काला होता है और नीचे का बिलकुल सफ़ेद। ऊपर की काली रङ्गत के कारण देखनेवाले को वे दिखाई नहीं देतीं और नीचे की सफ़ेदी के कारण पानी के नीचे रहनेवाले जन्तुओं को भी उनका इधर-उधर घूमना फिरना आसानी से मालूम नहीं हो सकता।

एक उदाहरण लीजिए। मादा सारस जान बूझ कर एक स्वाँग बनाती है। जब वह अण्डे देती है उस समय अपनी पीठ और पङ्ख कीचड़ में लपेट लेती है। कीचड़ सूख जाने पर उसके शरीर का रङ्ग लाल हो जाता है। आस पास की वस्तुओं में और उसके शरीर के रङ्ग में समानता होने के कारण उसके शत्रु उसे पहचान नहीं सकते। इसी तरह सङ्कट आने पर वह अपने शरीर का रङ्ग बदल कर शत्रु की आँखों में धूल झोंकती और अपनी रक्षा कर लेती है। ब्रिटिश फ़ौज की ख़ाकी पोशाक से यही मतलब है कि ख़ाकी रङ्ग ज़मीन के रङ्ग से भली भाँति मिल जाता है और शत्रुओं को धोखे में डाल देता है।

समर-भूमि में एकत्र सेनाओं को जो जो कारवाइयाँ करनी पड़ती हैं उन्हें पशु-पक्षी न जाने कब से करते आ रहे हैं। मिल कर आक्रमण करना, सेनाध्यक्ष के आज्ञानुसार चलना, जासूस भेजना, पहरे के लिए सन्तरी तैनात करना, धोखा देना, सुलह करना, सलाह करना, शत्रुओं की नक़ल करके उन्हें धोखे में डाल देना, नई सेना भेज कर सहायता पहुँचाना, अरक्षित शहरों पर धावा करना, क़ैदी पकड़ कर ले जाना, और लूटना आदि बातों का दृष्टान्त पशु-पक्षियों में अधिकता से पाया जाता है।

अनेक स्थानों में देखा गया है कि कौवे इकट्ठे होकर आक्रमण करते हैं। एक प्राणिशास्त्र-वेत्ता का कथन है कि मैंने कौओं को एकत्र होकर आक्रमण करते कई बार देखा है। खेतों में रहनेवाले चूहों पर आक्रमण करने के विचार से थोड़े से कौवे एकत्र हुए और कई दिनों तक ज़ोर ज़ोर से काँव काँव करते रहे। धीरे धीरे कौओं के कई समुदाय दूर दूर से आकर उस स्थान पर इकट्ठे होगये। ज़मीन की जाँच-पड़ताल शुरू हुई। पक्षियों ने चूहों के निकलने के सभी मार्ग घेर लिये। धावा शुरू हुआ। खेत के एक किनारे पर सारे चूहे भगा दिये गये और वहाँ सबके सब पकड़ लिये गये। फिर अपने अपने शिकार को मुँह में दबा कर सब कौवे अपने अपने अड्डों को लौट गये।

फ़ौजों के जमा होने और सिलसिले से चलने के सम्बन्ध में हमें अच्छा दृष्टान्त दक्षिणी आफ़्रिका की चिउँटियों से मिलता है। ये चिउँटियाँ बड़ा भारी दल बना कर भोजन की खोज में निकलती हैं। अपने

दुश्मन के भारी से भारी दल पर, अफ़सर की आज्ञा पाते ही, ये उसी तरह हमला करती हैं जिस तरह मनुष्यों की फ़ौज दुश्मन पर एकाएक टूट पड़ती है। इनके युद्ध-कौशल और मनुष्यों की युद्ध-कला में विशेष अन्तर नहीं। इन चिउँटियों के अफ़सरों के सिर बहुत बड़े होते हैं। इनकी डाढ़ें मज़बूत होती हैं और उनकी लम्बाई इनके शरीर की लम्बाई से दुगनी होती है। इनकी डाढ़ें पैनी और हुक की तरह झुकी हुई होती हैं। बीट्स नामक एक साहब अमेज़ान नदी की यात्रा करने गये थे। वे लिखते हैं कि भोजन खोजनेवाली चिउँटियों की एक पङ्क्ति मैंने ३०० फुट से भी अधिक लम्बी देखी थी। उसमें १०० चिउँटियों के बीच पाँच पाँच अफ़सर-चिउँटियाँ थीं। वे पङ्क्ति के बाहर, दुलकी चाल में, चलती थीं। यह आवश्यक नहीं कि चिउँटियाँ हमेशा एक ही पङ्क्ति में चलें। कभी कभी, आवश्यकतानुसार, इनकी एक अलग शाखा बन जाती है और किसी अच्छे मुक़ाम की ओर, भोजन की तलाश में, चली जाती है। यात्री महाशय का कथन है कि एक समय इसी तरह की एक शाखा-पङ्क्ति को मैंने सड़क पर गिरे हुए वृक्ष की ओर जाते देखा। उस वृक्ष पर कुछ दूसरे प्रकार के चींटे और मधु-मक्खियाँ पहले ही से मौजूद थीं। आगन्तुक चिउँटियों और मूलनिवासियों के बीच घोर सङ्ग्राम शुरू हुआ। अन्त में मधु-मक्खियाँ और चींटे मारे गये। फिर यह शाखा-पङ्क्ति लूट का माल लेकर मुख्य दल में उसी प्रकार आ मिली जिस प्रकार कुछ थोड़े से फ़ौजी जवान किसी छोटे मोटे क़िले को तोड़ने के लिए भेजे जाते हैं और अपना काम करके अपनी फ़ौज में आ मिलते हैं।

दक्षिणी आफ़्रिका में एक प्रकार की और चिउँटी होती है। यह क़तार बाँध कर चलने की अपेक्षा झुण्ड बना कर चलना पसन्द करती है। यह चिउँटी ½ इञ्च लम्बी होती है। जिस समय इनका झुण्ड आगे बढ़ता है उस समय दूसरे प्रकार के कीड़े-मकोड़े घबरा जाते हैं। पूर्वोक्त बीट्स साहब का कहना है कि इस झुण्ड के चलने से एक प्रकार की विचित्र आवाज़ होती है। वह आवाज़ वैसी ही है जैसी कि हवा चलने से पेड़ों के सूखे पत्तों से होती है। इस ध्वनि को सुन कर दूसरे प्रकार के कीड़े मकोड़े घबरा कर जहाँ के तहाँ, कठपुतली की तरह, रह जाते हैं। अपने डरपोक स्वभाव के लिए झींगुर प्रसिद्ध है। अपनी रक्षा के लिए वह बिल में घुस जाता है। थोड़ी सी चिउँटियाँ उसका पीछा करती हैं और फ़र्श की हर एक दरार तथा बिल असंख्य चिउँटियों के प्रवेश करने से बन्द हो जाते हैं। सारा फ़र्श चिउँटियों से पट जाता है। झींगुर के निकलने के लिए कोई स्थान ख़ाली नहीं रह जाता। यद्यपि शत्रु की अपेक्षा झींगुर का डील-डौल बड़ा होता है तो भी वह इन तुच्छ जीवधारियों से छुटकारा नहीं पा सकता। चिउँटियाँ उसके बदन भर में चिपक जाती हैं और कुछ ही मिनिटों में झींगुर का नामो-निशान भी नहीं रहने देतीं। चिउँटियों के दल घर के प्रत्येक हिस्से में घूमते हैं। घण्टे दो घण्टे में ही मकान के कुल कीड़े-मकोड़ों का सत्यानाश हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह कि चूहे, साँप, झींगुर, मकड़ी, बिच्छू और पिस्सू आदि सबका नाश हो जाता है। फिर महीने दो महीने तक मकान इन जन्तुओं से बिलकुल ख़ाली रहता है।

बन्दरों की फ़ौज में भी सेनाध्यक्ष होता है। सारी पल्टन अफ़सर के आदेशानुसार चलती है। सैन्य का अगुआ वही बन्दर बनाया जाता है जो हृष्ट-पुष्ट और अनुभवी होता है। दल के आगे आगे वह वृक्षों की एक डाल से दूसरी डाल पर कूदता चला जाता है। सारी सेना उसके पीछे पीछे चलती है। समय समय पर वह किसी ऊँचे वृक्ष की चोटी पर चढ़ कर आस पास के स्थानों की जाँच

कर लेता है। यदि किसी प्रकार की आपत्ति की सम्भावना होती है तो वह किलकारी मार कर अपने साथियों को सावधान कर देता है और सारी सेना को यथाक्रम पीछे हटा ले जाता है। जो उसे सर्वत्र शान्ति देख पड़ी तो इस बात का सङ्केत वह दूसरे प्रकार की आवाज़ से करता है। हाथी, बारहसिङ्गा, हिरन और दूसरे जानवर झुण्ड बनाकर, सेना की तरह, चलते हैं। इनमें भी जिस नर या मादा को जङ्गल के रास्तों और आपत्ति-स्थलों का विशेष ज्ञान होता है वही अगुआ या सेनापति बनाया जाता है।

आफ़्रिका के बन्दरों की सेना जब बाग़ीचों के फल खाने तथा खेतों में फ़सल उजाड़ने को जाती है तब बाग़ीचे में घुसने के पहले फ़ौज के दस बीस बन्दर, नज़दीक की चट्टानों या वृक्षों पर, जहाँ तहाँ तैनात कर दिये जाते हैं। किसी विपत्ति की सम्भावना देख चौकीदार सूचना देते हैं और सारी पल्टन बात की बात में वहाँ से चम्पत हो जाती है। ये बन्दर रात को चौकसी भी करते हैं। जब इनकी फ़ौज सो जाती है तब चौकीदार बारी बारी से पहरा दिया करते हैं।

कोई कोई जानवर अपने अड्डे के चारों ओर इस इरादे से सन्तरी तैनात कर देते हैं कि उनसे आनेवाले भय की सूचना मिलती रहे। पशु-पक्षियों में सबसे अच्छी पहचान कौवे को होती है। वह बख़ूबी जान लेता है कि कन्धे पर बन्दूक़ धरे और लाठी रक्खे हुए मनुष्यों के बीच क्या अन्तर है और इन दोनों में आपत्ति की सम्भावना किससे है।

प्रत्येक युद्ध में कोई न कोई जगह गुप्त रहती है, जहाँ से ख़तरे की आशङ्का रहती है। भेड़िया ऐसे स्थानों का उपयोग करना ख़ूब जानता है। इसी कारण, प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओं ने उसे युद्ध-विद्या-विशारद की उपाधि दी है। जब कभी मादा और नर भेड़िये हिरन का शिकार करने निकलते हैं तब प्रायः मादा किसी घात की जगह पहले से जा छिपती है और नर, हिरन का पीछा करता हुआ, उसे उस स्थान की ओर खदेड़ ले जाता है जहाँ मादा छिपी रहती है। हिरन ज्यों ही उसके समीप पहुँचता है मादा उसको झपट कर मार डालती है और खेल ख़तम कर देती है। पीछा करते करते जब नर थक जाता है तब मादा उस गुप्त स्थान से बाहर निकल हिरन का पीछा करने लग जाती है। थका हुआ नर भेड़िया उसकी जगह बैठ कर विश्राम करने लगता है। इससे हमें यह भी उदाहरण मिलता है कि युद्ध में एक के थकने पर दूसरा कब और किस तरह अपने साथी की मदद करता है।

जो सेनापति चतुर होते हैं वे अपने उद्देश को शत्रुओं से छिपाने के लिए जहाँ तहाँ झूठ मूठ धावा करते हैं। इस तरह वे, मौक़े के मुख्य स्थान की ओर से शत्रुओं का ध्यान हटा देते हैं। चतुर पशु-पक्षियों में भी ऐसी ही प्रथा है। रेरा नामक पक्षी एकदम कई स्थानों में घोंसला बनाता है और पूरा करता है केवल एक ही को, जिसमें कि वह अण्डे रखना चाहता है। बाक़ी घोंसलों को वह अधूरे ही छोड़ देता है। दिन भर वह अधूरे घोंसलों के बनाने में झूठ मूठ लगा रहता है। असली घोंसले को वह सबेरे और शाम को बनाया करता है। इस रीति से वह असली घोंसले को शत्रु की निगाह से बचा लेता है। इसी तरह शत्रु को धोखा देने के लिए युद्ध के मैदान में हर एक फ़ौज ख़ाली तोपें इधर-उधर रखती और हटाती रहती है।

बहुत पुराने ज़माने में भारतवर्ष में लुटेरों की धूम थी। उस समय काश्तकार लोग उनसे बचने के लिए गाँव के चारों ओर ऊँची सी दीवार उठाते थे और फाटक के पास चौकीदार के बैठने के लिए एक मचान बना देते थे। जब कभी लुटेरों का झुण्ड आता दिखाई देता तब चौकीदार ढोल पीट कर गाँववालों को आपत्ति की सूचना दे देता

था। यह बात उत्तरी अमेरिका के जङ्गली सोन-कुत्तों में भी पाई जाती है। जङ्गल में इन कुत्तों की एक बस्ती होती है। बस्ती के सामने एक ऊँची सी मेंड़, मीनार की तरह, बनी होती है। उसमें कुछ पहरेदारों के साथ सन्तरी रहता है। यदि किसीके आने की आहट मिलती है या कोई हिंसक पशु नज़दीक देख पड़ता है तो सन्तरी-कुत्ता ज़ोर से भोंकने लगता है। उसके भोंकते ही सारे कुत्ते अपने बिलों में छिप जाते हैं। बहुत से पक्षी ऐसे भी देखे गये हैं जो जानवरों की बोली बोल कर अपने शत्रु को डरा देते हैं। इस तरह की धोखेबाज़ी जर्मनों ने अँगरेज़ों के साथ, उनकी भाषा और भेष की नक़ल करके, की थी।*

वनमालीप्रसाद शुक्ल

प्रतिज्ञा।

(१)

सत्यसन्ध सुर-साधु-त्राता, व्रतधर, राघव, असुरारे!
अच्युत! अपने अचल-व्रत से भर दो भक्त-हृदय सारे।
भीष्म-भावना, हरिश्चन्द्र की सत्यवीरता पाऊँ मैं,
पालन करके कृत-प्रतिज्ञा जन्मभूमि-यश गाऊँ मैं।

(२)

विमल विचार विशद वचनों से भारत-गगन गुँजाऊँगा,
सत्कृत कर सर्वत्र देश की प्रतिमा पूज्य पुजाऊँगा।
आत्मिक बल का वर्म पहन कर यथा-मनोरथ विचरूँगा,
सहृदयता का स्रोत बहाकर त्रस्त-तृषा को हर दूँगा।

(३)

बन्धुवर्ग मानव-समाज की सेवा सतत करूँगा मैं,
अनुपम आर्यादर्श देश के सम्मुख सदा धरूँगा मैं।
जीवन सरल भद्र भावों से भूषित मुझको भावेगा,
पर-हित पर मरने में मेरा मन आनन्द मनावेगा।

(४)

संयमशील बनूँगा इन्द्रिय-लोलुपता न सतायेगी,
मेरे पार्थ-हृदय की गुरुता रुचि-उर्वशी न पायेगी।
आडम्बरमय रुचिर सृष्टि में वीर विदेह बनूँगा मैं,
धँस कर उसके अन्तर-तल में रत्न निगूढ़ खनूँगा मैं।

(५)

अन्तःकरण अमल रक्खूँगा निश्छल नीति प्रचारूँगा,
करके नित निष्काम कर्म मैं स्वार्थ-सर्प को मारूँगा।
होगा देह-प्रेम देश-हित मुनि दधीचि के तुल्य सदा,
बन प्रह्लाद दृढ़व्रत हूँगा सहकर अत्याचार-गदा।

(६)

दुराचरण-दुर्व्यूह भेदने बन कर मैं सौभद्र बली,
नियम-निषङ्ग तीव्र छोड़ूँगा तोड़ूँगा दुष्कृत्य-कली।
महावीर मारुति के सम भय-भानु भयङ्कर निगलूँगा,
देख प्रहार पुरन्दर का भी पथ से कभी न विचलूँगा।

(७)

पावस-शीत-निदाघ-ताप की मुझको परवा ज़रा नहीं,
दूँगा त्वरित सहारा पाऊँ पतित पुरुष यदि पड़ा कहीं।
भर कर अङ्क दीन-दुखियों को मैं सस्नेह उठाऊँगा,
पर-पाशों में पड़े हुओं के बन्धन विकट छुटाऊँगा।

(८)

सोऊँगा न शान्ति-शय्या पर यदि स्वदेश हो सुखी नहीं,
कभी न देख सकूँगा अपने देश-बन्धु को दुखी कहीं।
शरणागत के अभय-दान-हित कर्कश कष्ट उठाऊँगा,
अपने पूज्य पूर्व-पुरुषों की शुभ सन्तान कहाऊँगा।

(९)

भारत, तुझे त्याग कर क्या मैं स्वर्गभूमि में जाऊँगा?
तेरी समता क्या त्रिलोक में तीन काल में पाऊँगा?
अमरो! तुम अपने घर बैठो मैं अपने घर काम करूँ,
जन्म धरूँ फिर फिर भारत में भारत के हित सदा मरूँ।

(१०)

वसुधे! यदि प्रण-भङ्ग-भाव का ध्यानमात्र भी उठे कभी,
मेरा मुँह न दिखाई दे फिर फट जाना कर दया तभी।
दिव्य दिशाओ! साची हो तुम पुण्यप्रतिज्ञा करता हूँ,
परमपिता! बल देना, तेरी ज्योति हृदय में भरता हूँ।

गोकुलचन्द्र शर्म्मा

---

* एक अँगरेज़ी लेख के आधार पर लिखित।

शान्ति ।

राय रामचन्द्र दत्त ने प्रौढ़ावस्था पार करके जब वृद्धावस्था में पदार्पण किया तब उनका स्वभाव ज़रा चिड़चिड़ा हो गया। चिड़चिड़ेपन का कारण केवल यही था कि समस्त सांसारिक सुखों के होते हुए भी उनके हृदय में शान्ति न थी। मनुष्य का हृदय बड़ा शान्ति-प्रिय है। वह सदा शान्ति ही की तृष्णा से आकुल रहता है। राय साहब को किसी प्रकार का अभाव न था। धन की कमी न थी। परिवार भी आपका भरा-पूरा था। पुत्र, पुत्रियाँ, पौत्र इत्यादि सब थे—थी नहीं केवल हृदय में शान्ति !

राय साहब एक दिन इसी सोच में बैठे थे कि किस प्रकार हृदय को शान्ति मिले। वे अपने पिछले जीवन पर विचार कर रहे थे। वे सोच रहे थे कि मैं एक समय यह कहता था कि यदि लक्षाधीश हो जाऊँ तो मेरे दिन बड़ी शान्ति के साथ बीतेंगे, क्योंकि मुझे किसी प्रकार का अभाव न रहेगा। किसी प्रकार का अभाव न होने ही को मैं सुख-शान्ति समझे हुए था। ईश्वर ने जब धन दिया, लक्षाधीश होने की मेरी अभिलाषा पूर्ण की, तब यह इच्छा हुई कि यदि कोई उपाधि मिल जाय तो फिर मुझे और कुछ न चाहिए—मेरी समस्त इच्छायें पूरी हो जायँगी। फिर मैं अपना शेष जीवन शान्तिपूर्वक व्यतीत कर सकूँगा। ईश्वर ने मेरी यह अभिलाषा भी पूर्ण कर दी। मुझे राय साहब की उपाधि मिल गई। इसके पश्चात् मैंने जो अपने हृदय को टटोला तो फिर भी शान्ति न मिली। एक वासना पूरी हुई कि तुरन्त ही दूसरी का जन्म हो गया। कभी पुत्र की अभिलाषा हुई। उसकी पूर्ति होते ही पौत्र का मुख देखने की इच्छा का जन्म हुआ। सब मिथ्या है। लोग कहते हैं कि सांसारिक सुखों में शान्ति है—वासनाओं के पूर्ण होने में शान्ति है—किन्तु सच तो यह है कि शान्ति किसीमें नहीं। यदि शान्ति है तो संसार त्याग देने में—संन्यासी हो जाने में। यदि ऐसा न होता तो बड़े बड़े योगी और ज्ञानी, संसार छोड़ कर, क्यों संन्यास ग्रहण कर लेते। ठीक है, इस संसार को त्याग देने ही में मन को विश्राम मिलता है। राय साहब इन्हीं विचारों में मग्न थे कि उनके कमरे का दरवाज़ा खुला और उनके ज्येष्ठ पुत्र कृष्णदत्त अन्दर आये। राय साहब चौंक पड़े। उन्होंने पूछा—कृष्ण, क्या है ?

कृष्णदत्त भरे हुए थे। पिता के इतना पूछते ही कुछ कर्कश स्वर में बोले—है क्या, विष्णुदत्त (कृष्णदत्त का छोटा भाई) के मारे नाक में दम है। वह चाहता है कि उसी का हुक्म चले। आज मुझे एक आवश्यक काम से जाना था। मैंने कहलवा दिया था कि मोटर आज कहीं न जाने पावे। परन्तु उसे इस बात की क्या परवा। किसीका काम बने या बिगड़े, उसकी बला से।

राय साहब—तो आख़िर उसने किया क्या ?

कृष्ण—किया क्या, मोटर लेकर कहीं चल दिया। अनवर ख़ाँ (ड्राइवर) ने कहा भी कि बड़े बाबू ने मोटर अपने काम के लिए रोक ली है, पर उसने न माना। उसे भी दो-चार खरी-खोटी सुना दीं। आख़िर नौकर तो नौकर ही है। उसे मोटर ले जानी पड़ी।

राय साहब नम्रतापूर्वक बोले—ख़ैर, अब तो ले ही गया। तुम जोड़ी जुतवा लो, या अपने घोड़े पर चले जाओ।

कृष्ण—आपने भी कह दिया कि जोड़ी जुतवा लो, घोड़ा कसवा लो। इन्हीं बातों से तो उसका साहस बढ़ता जाता है। वह समझता है कि बाबूजी तो कुछ बोलते ही नहीं; जो जी चाहे किया करो।

राय साहब—तो आख़िर तुम चाहते क्या हो ?

कृष्ण—यही चाहता हूँ कि मेरे लिए आप दूसरी मोटर मँगवा दें। मुझे जोड़ी और घोड़ा अच्छा नहीं लगता। मोटर पर छोटे बाबू का अधिकार है। साझे का काम मुझे पसन्द नहीं। मैं बहुत गम खाता रहता हूँ। नहीं तो रोज़ लड़ाई-झगड़ा हुआ करे।

राय साहब—अच्छा, मैं उसे समझा दूँगा। यदि वह न मानेगा तो तुम्हें दूसरी मोटर ले दूँगा।

कृष्णदत्त के चले जाने पर राय साहब ने ठण्ढी साँस लेकर कहा—मुझे इतनी भी स्वतन्त्रता नहीं कि क्षण भर एकान्त में शान्तिपूर्वक बैठ सकूँ ! उफ़ ! मैं तो इस जञ्जाल से तङ्ग आ गया।

कृष्णदत्त गया ही था कि उसी कमरे के दूसरी ओर का, अन्तःपुरवाला, द्वार खुला और पूर्णवयस्का दो लड़कियाँ

छम-छम करती हुई अन्दर आईं । वे आपस में बातें करती आ रही थीं । एक कह रही थी—चाहे जो हो, मैं तो बाबूजी से कह कर आज ही बनवा लूँगी ।

दूसरी बोली—तुम बनवा लोगी तो क्या मैं न बनवा लूँगी ।

राय साहब ने घूम कर देखा । इतनी ही देर में दोनों उनके पास आ गईं । राय साहब मुख पर मुसकराहट लाकर बोले—क्या है कृष्णा ? क्या बनवाने की बातचीत है ?

कृष्णा बोली—बाबूजी, मैं आज राय श्यामाचरण के यहाँ गई थी । सुभद्रा (राय श्यामाचरण की पुत्री) के लिए आज हीरे के जड़ाऊ कङ्गन बनकर आये हैं । बाबूजी, मैं तुमसे क्या कहूँ, ऐसे सुन्दर हैं कि मैंने पहले कभी न देखे थे । बाबूजी, मेरे लिए भी एक जोड़ी बनवा दो ।

दूसरी लड़की—और मेरे लिए भी ।

राय साहब-तुम्हारे पास तो दो-तीन जोड़ी कङ्गन रक्खे हैं । अब और बनवा कर क्या करोगी ? उन्हीं के पहनने की तो नौबत नहीं आती ।

कृष्णा—हैं तो, पर वैसे तो नहीं हैं । मेरे बाबूजी, वैसे ही बनवा दो ।

राय साहब—अच्छा, पहले उन्हें देख तो लें । जब तक नमूना न मिलेगा तब तक कैसे बनेंगे ।

कृष्णा—नमूना मिलना कौन बड़ी बात है । उनके यहाँ आदमी भेज दो ।

राय साहब—अच्छा, देखा जायगा ।

कृष्णा—नहीं, अभी मँगवा लो । फिर तुम भूल जावगे ।

राय साहब की इच्छा इस समय ज़रा एकान्त में रहने की थी, परन्तु बेटियाँ ऐसी मचलीं कि उन्हें उठना और कङ्गन मँगाने का प्रबन्ध करना ही पड़ा ।

(२)

राय रामचन्द्र दत्त अपने मित्र राय श्यामाचरण से बोले, तुम्हारा यह कहना तो ठीक है कि गृहस्थी से बढ़कर—विशेषतः ऐसी गृहस्थी से जिसमें किसी प्रकार का अभाव न हो—कोई वस्तु अधिक सुखदायक नहीं है ; परन्तु मुझे तो सुख की अपेक्षा दुख ही अधिक मिल रहा है । कभी कोई झगड़ा उठ खड़ा होता है, कभी कोई । माँगों के मारे तो मैं ऊब जाता हूँ । रियासत का प्रबन्ध अलग नाक में दम किये रहता है । मैं अकेला क्या क्या करूँ, क्या क्या देखूँ ! घर का यह हाल है कि एक से एक की नहीं पटती । एक का कहना करता हूँ, तो दूसरा नाक-भौं चढ़ाता है । बीमारी ने तो मेरे यहाँ अड्डा ही जमा लिया है । कभी किसी को बुख़ार आता है, कभी किसीको ज़ुकाम होता है । वह अच्छा होता है तो दूसरा पड़ता है । मतलब यह कि कोई क्षण ऐसा नहीं जाता जिसमें चिन्ता से मैं बचा रहूँ । सब कुछ होने पर भी मैं दिन में घण्टा आध घण्टा भी शान्तिपूर्वक नहीं व्यतीत कर सकता । बताओ, ऐसी स्थिति में क्या करूँ ?

राय श्यामाचरण कुछ मुसकरा कर बोले—भई, गृहस्थी का यही तो सुख है । इसे दुख समझना, मेरी समझ में, बड़ी भारी भूल है ।

राय रामचन्द्र—सम्भव है, कुछ लोगों को इसी में सुख मिलता हो, परन्तु भई मुझे तो यह घोर दुख मालूम पड़ता है ।

राय श्यामा०—फिर आप क्या चाहते हैं ?

राय रामचन्द्र—मैं इन चिन्ताओं से छुटकारा चाहता हूँ और चाहता हूँ अपने शेष दिन शान्तिपूर्वक ईश्वर के भजन में व्यतीत करना ।

राय श्यामाचरण इस बात पर बहुत हँसे और बोले—तो यह कहो कि मोक्ष की तैयारी करना चाहते हो ।

राय रामचन्द्र गम्भीरतापूर्वक बोले—यह हँसने की बात नहीं । मोक्ष के लिए तैयारी करना तो बहुत कठिन बात है । मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि मेरे हृदय में शान्ति रहे ।

राय श्यामा०—हृदय को शान्त रखना मनुष्य की प्रकृति पर अवलम्बित है । बहुत से मनुष्य ऐसे हैं कि तमाम जञ्जालों में फँसे रहने पर भी कभी अशान्ति की शिकायत नहीं करते और बहुत से ऐसे हैं, जैसे कि आप । उन्हें कभी, किसी भी अवस्था में, शान्ति नहीं ।

राय रामचन्द्र को राय श्यामाचरण की यह बात कुछ जँची नहीं । वे बोले—सम्भव है, ऐसे लोग भी हों जिन्हें अशान्ति की शिकायत न हो; परन्तु मुझे तो आज तक कोई ऐसा आदमी नहीं मिला ।

राय श्यामाचरण बोले—एक मैं ही आपके सामने मौजूद हूँ ।

राय रामचन्द्र मृदु हास्य करके बोले—अभी तुम्हारी अवस्था ही कितनी है। तुम्हें तो अभी संसार के बहुत सुख लूटने हैं। तुम्हारे हृदय में अभिलाषायें हैं, उमङ्गें हैं; इसी लिए तुम्हें कोई शिकायत नहीं। जब मेरी अवस्था को पहुँचोगे और शान्ति की शिकायत न करोगे तब मैं समझूँगा कि तुम इसी प्रकृति के हो।

राय श्यामा०—अच्छा, अब यह बतलाइए कि आपने भी कोई उपाय सोचा?

राय रामचन्द्र—मैंने तो यही सोचा है कि संन्यास ले लूँ।

राय श्यामाचरण नेत्र विस्फारित करके बोले—संन्यास! आप कहते क्या हैं?

राय रामचन्द्र—मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह मेरे हृदय की सच्ची आकांक्षा है।

राय श्यामा०—अजी नहीं, यह भी भला कोई बात है। आपको संन्यास लेने की क्या आवश्यकता है?

राय रामचन्द्र—तो फिर क्या करूँ?

राय श्यामाचरण कुछ क्षण तक सोच कर बोले—मेरी समझ में तो यह अच्छा है कि आप कुछ दिनों के लिए, अर्थात् दो-चार महीने के लिए, अपनी ज़मींदारी के किसी ऐसे गाँव पर चले जायँ, जो रमणीक हो। वहाँ रहने से आपकी यह सारी अशान्ति दूर हो जायगी।

राय रामचन्द्र—मैं वहाँ चला जाऊँ तो यहाँ का कारोबार कौन देखेगा?

राय श्यामा०—और जब आप संन्यास ले लेंगे तब कौन देखेगा?

राय रामचन्द्र—तब कोई देखे या न देखे, मेरी बला से। जब मैं संसार से नाता ही तोड़ लूँगा तब मुझे इसके लिए चिन्ता करने की आवश्यकता ही क्या?

राय श्यामा०—दो-चार महीने आपके कारिन्दे-मुनीम भी तो काम चला सकते हैं। कम से कम, मेरे कहने से, आप यह करके देख लीजिए। यदि इसमें आपको सफलता न हो तो फिर जैसा उचित समझिए, कीजिएगा। आप चलें, मैं भी आपके साथ चलूँगा और जब तक आप रहेंगे, वहीं रहूँगा।

राय रामचन्द्र—अच्छा, यही सही। यह भी करके देख लें।

(३)

शाम के पाँच बज चुके हैं! लछमनपुर के कृषक, दिन भर खेतों में काम करने के पश्चात्, बस्ती की ओर लौट रहे हैं। इसी समय राय रामचन्द्र दत्त तथा राय श्यामाचरण घूमने निकले हैं। दोनों आपस में बातें करते हुए मन्द गति से हवा खाते हुए एक ओर जा रहे हैं।

राय रामचन्द्र बोले—भई, इस बात में तो रत्ती भर भी सन्देह नहीं कि जो आनन्द देहात में है, शहर में उसका शतांश भी नहीं। देखो, कितना सुन्दर दृश्य है। चारों ओर हरियाली ही हरियाली है। डूबते हुए सूर्य की किरणें इस हरियाली पर कैसी शोभा दे रही हैं। हवा भी कितनी मन्द और शीतल है।

राय श्यामा०—भला, यह आनन्द शहरों में कहाँ! वहाँ के बाग़-बाग़ीचों में कृत्रिमता की भरमार है। यहाँ बनावट का नाम नहीं। जो कुछ है प्राकृतिक है। देखिए, सामने यह सूखा पेड़ खड़ा है। इसमें पत्ती का नाम नहीं। तिस पर भी इन हरे भरे वृक्षों के बीच यह कितना भला मालूम होता है। यह अपनी शान अलग ही रखता है। यहाँ की सूखी घास तथा झाड़ियाँ भी अपनी सुन्दरता अलग रखती हैं।

राय रामचन्द्र—निस्सन्देह, इन किसानों को देखिए, कितने प्रसन्न हैं। दिन भर के हारे-थके हैं, पर फिर भी अलापते जा रहे हैं। परन्तु, भाई, इन लोगों में दरिद्रता बहुत है।

राय श्यामा०—दरिद्रता न हो तो क्या हो। साल भर में बेचारों ने जितना पैदा किया उसमें से कुछ तो लगान में चला गया और कुछ महाजनों की भेट हुआ। कुछ पटवारी तथा सिपाही-प्यादे ऐंठ ले गये। जो कुछ बच रहा वह पेट भरने के लिए भी मुश्किल से काफ़ी होता है। ऐसी दशा में दरिद्री न हों तो क्या हों। इसके अतिरिक्त इनके पास इतने साधन भी नहीं कि ये लोग अपनी भूमि को अधिक उपजाऊ बना सकें। और बनावें भी किस भरोसे? आठों घड़ी तो बेदख़ली का भय रहता है। इन्होंने परिश्रम करके कुछ किया भी, और आपके कारिन्दे ने यदि किसी कारण बेदख़ल कर दिया, तो बेचारों का सारा परिश्रम मिट्टी में मिल गया।

राय रामचन्द्र—हाँ, यह तो ठीक है। अच्छा, आओ चलो, वृक्षों के उस झुरमुट में बैठें।

उक्त स्थान में दोनों एक पत्थर पर जा बैठे। उनके चारों ओर घने वृक्षों तथा झाड़ियों का समूह था।

राय श्यामा०—हम लोगों को यहाँ आये पन्द्रह-बीस दिन हो गये। कहिए, इतने दिनों में आपको कुछ शान्ति मिली ?

राय रामचन्द्र थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहे, तत्पश्चात् बोले—सुख तो अवश्य मिला, परन्तु यह वास्तविक शान्ति नहीं है। चित्त कुछ उद्विग्न रहता ही है।

राय श्यामा०—ख़ैर, अभी दिन ही कितने हुए हैं। धीरे धीरे आपको शान्ति भी मिल जायगी।

राय रामचन्द्र—सम्भव है, ऐसा हो जाय। पर मुझे तो आशा नहीं। मेरा हृदय तो कह रहा है कि इस प्रकार शान्ति न मिलेगी।

राय श्यामा०—आप मुझे कुछ निराशावादी से मालूम होते हैं।

राय रामचन्द्र—मेरी सी दशा यदि तुम्हारी होती तो तुम भी निराशावादी हो जाते।

राय श्यामा०—तो आप समझते हैं कि आपको इस प्रकार शान्ति न मिलेगी ?

राय रामचन्द्र—मेरा तो यही विचार है।

राय श्यामा०—यदि इस प्रकार नहीं, तो फिर किस प्रकार शान्ति मिल सकती है ?

राय रामचन्द्र—उसी प्रकार जैसा कि मैं कह चुका हूँ।

राय श्यामा०—अर्थात् ?

राय रामचन्द्र—संसार त्याग कर संन्यास ले लेने से।

राय रामचन्द्र दत्त के मुँह से यह वाक्य निकला ही था कि एक ओर से उच्च हास्य की आवाज़ आई। दोनों चौंक पड़े। परस्पर एक दूसरे की ओर देखने लगे।

राय रामचन्द्र बोले—यह हँसने की आवाज़ कहाँ से आई ?

राय श्यामा०—इधर ही कहीं से आई है।

राय रामचन्द्र—हँसनेवाले का शब्द भी बड़ा गम्भीर मालूम होता है।

राय श्यामा०—इधर तो खेत भी नहीं, जङ्गल है।

राय रामचन्द्र—हँसनेवाले के शब्द से यह नहीं मालूम होता कि वह कोई देहाती—।

ठीक इसी समय सामने, थोड़ी दूर पर, एक वृद्ध आता दिखाई दिया। उसके वेष से मालूम होता था कि वह भिखारी है।

राय श्यामाचरण धीमे स्वर में बोले—ओहो ! ठीक है, छः-सात दिन हुए, दो एक गाँववालों ने कहा था कि यहाँ जङ्गल में एक बुड्ढा भिखारी, कुछ दिन से, आकर रहा है। वह सदा जङ्गल ही में रहता है। केवल दिन में एक बार बस्ती में—।

राय श्यामाचरण चुप हो गये, क्योंकि इतने ही में बुड्ढा उनके पास आ गया। दोनों ने बुड्ढे को सिर से पैर तक देखा। बुड्ढे का वेष लटपटा तथा मलिन था। चेहरे पर लम्बी श्वेत दाढ़ी थी। बड़ी बड़ी तथा रक्तवर्ण आँखों में एक विचित्र प्रकार की चमक थी। वर्ण साँवला होते हुए भी मुख पर कुछ ऐसा तेज था जिससे ये दोनों हतबुद्धि से होकर उसकी ओर ताकने लगे।

बुड्ढा, सामने आकर, खड़ा हो गया और मुसकरा कर बोला—कौन संसार को बुरा कहता है ? किसका जी संसार से ऊब गया है ? कौन संसार को छोड़ कर संन्यासी होना चाहता है ?

बुड्ढे ने ये शब्द बड़ी निर्भीकता से, उसी ढङ्ग से, कहे जैसे कि कोई बड़ा-बूढ़ा किसी बच्चे से पूछता हो। राय रामचन्द्र को बुड्ढे की यह धृष्टता बुरी मालूम हुई; परन्तु मुख से कुछ कहने का साहस न हुआ। श्यामाचरण भी चुप बैठे रहे।

बुड्ढा फिर बोला—अभी मैंने सुना था कि किसीने संसार छोड़ कर संन्यासी होने की बात कही थी।

इस बार श्यामाचरण साहस करके बोले—हमारे ये मित्र गृहस्थी के झमेलों से ऊब गये हैं। इसलिए ये कह रहे थे कि संन्यासी होने को जी चाहता है—बस, इतनी ही बात थी और कुछ नहीं। ये कहते हैं कि हृदय में शान्ति नहीं।

बुड्ढा कुछ क्षण तक राय रामचन्द्र की ओर देखता रहा। फिर हँस कर बोला—शान्ति चाहते हो, संसार छोड़ कर जङ्गलों में भटकने में, या किसी मढ़ी या पहाड़ की खोह में शान्ति ढूँढ़ना चाहते हो—भूली हुई आत्मा है, भ्रम में पड़ा हुआ हृदय है। संसार के परे कुछ नहीं है।

जो कुछ है संसार ही में है। संसार के परे अवसान है, अज्ञान है। जङ्गल भी संसार ही में है। पहाड़ भी संसार ही में है। तुम भी संसार में हो, गृहस्थी भी संसार में है। पहाड़ में संसार है, जङ्गल में संसार है, गृहस्थी में संसार है, तुममें संसार है। किसको छोड़ोगे? संसार कभी नहीं छूट सकता। वह तुम्हारे शरीर में है, तुम्हारे रोम रोम में है। गृहस्थी और बस्ती से अलग रह कर शान्ति ढूँढ़ना चाहते हो? यह भूल है। इस प्रकार शान्ति मिल सकती है सही, पर यह राह बड़ी दुर्गम है और दूर की है। तुम्हारे ऐसे लोग, जिनकी आयु का अधिकांश विषय-वासनाओं में व्यतीत हुआ है, इस राह पर चल कर कभी शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते। जिस वस्तु को तुम दो पग चल कर पा सकते हो उसको पाने के लिए कोसों चलने की तैयारी कर रहे हो। भूल है, बड़ी भूल है। शान्ति तुम्हारे पास है। तुम चाहे जब उसे प्राप्त कर सकते हो। सबसे छोटी राह ढूँढ़ने की आवश्यकता है। यदि तुम्हारे पास धन है तो तुम उसी के द्वारा शान्ति प्राप्त कर सकते हो। तुम्हारे सहस्रों भाई निर्धन हैं। उनको धनवान् बनाने की चेष्टा करो—उनको उद्योग-धन्धे सिखलाओ; विद्यालय, पाठशालायें खुलवाओ। अनाथों के लिए अनाथालय और विधवाओं के लिए विधवाश्रम खुलवाओ। ग़रीब किसानों को उनके खेती के व्यवसाय में सहायता दो—तुम्हें शान्ति मिलेगी। यदि तुम्हारे पास विद्या है तो अपने सहस्रों मूर्ख भाइयों को विद्वान् बनाओ; तुम्हें सच्ची शान्ति मिलेगी। यदि तुम्हारे पास बल है तो अपने बलहीन असंख्य भाइयों को बलवान् बनने के उपाय बताओ—तुम्हें शान्ति मिलेगी। कितना सुगम पथ, कितना सरल उपाय है। भूल है, भूल है, संसार से अलग होकर शान्ति ढूँढ़ना भूल है। भूली हुई आत्मा के विचार हैं, भ्रम में पड़े हुए हृदय की उपज है। परमार्थ करो, परोपकार करो—तुम्हें शान्ति मिलेगी।

इतना कह कर बुड्ढा एक बार फिर ज़ोर से हँसा और "भूल है, भूल है" बड़बड़ाता हुआ एक ओर चला गया। दोनों मित्रों ने एक दूसरे की ओर देखा। राय रामचन्द्र ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—निस्सन्देह मैं भूला हुआ था—भ्रम में पड़ा हुआ था।

+ + + +

दो वर्ष पश्चात्:—

राय श्यामाचरण ने हँस कर राय रामचन्द्र से पूछा—कहिए, अब तो आपको शान्ति और उद्विग्नता की शिकायत नहीं?

राय रामचन्द्र प्रसन्न-मुख हो बोले—ज़रा भी नहीं। इन दो वर्षों में मैंने देहातों में दस-पन्द्रह पाठशालायें खुलवादी हैं; छः-सात अनाथालय खुलवा दिये हैं। बहुत से दरिद्र बालकों को वज़ीफ़े देकर आगे पढ़ने के लिए सुभीता कर दिया है। अपनी ज़मींदारी से बेदख़ली की प्रथा एक-दम दूर कर दी है। किसानों को आर्थिक सहायता देकर काश्तकारी की उन्नति करा रहा हूँ। जिस समय मैं अनाथालय में अनाथ बालकों को हँसते-खेलते देखता हूँ; देहात में शिक्षा की उन्नति, और काश्तकारी की उन्नति पर दृष्टि डालता हूँ; दरिद्र लड़कों को, जिनके लिए विद्या-प्राप्ति का कोई ज़रिया न था, विद्या-लाभ करते देखता हूँ उस समय मुझे जितना सुख मिलता है, जितनी शान्ति मिलती है, वह अकथनीय है।

विश्वम्भरनाथ शर्म्मा कौशिक

सेवासदन।

[समालोचना]

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में जितने उपन्यास और धार्मिक विवाद-पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उतने और किसी विषय में नहीं हुए। साहित्य-वाटिका में घूमिए। बहुत कुछ ज़मीन उपन्यास ही घेरे हुए हैं। हिन्दी-रसिक दर्शकों तथा साहित्य-सेवक मालियों का ध्यान भी इसी ओर है। संसार भर के भले बुरे पौधे यहाँ मौजूद हैं। इधर देखिए तो चैटर्जी तथा ठाकुर के साहित्य-सुमनों की क़लम है; उधर गुजरात से लाई हुई सरस्वतीचन्द्र की बेल है। कहीं ह्युगो और ड्यूमाज़ के ऐतिहासिक उपन्यासों की क़लमें लगाने की कोशिश हो रही है। कहीं कुछ सज्जन अँगरेज़ी-साहित्य के कूड़े-कचरे से वाटिका को सुशोभित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। एक-आध

कोने में, छिपे हुए, इने गिने साहित्य-प्रेमी अपनी सच्ची साहित्य-सेवा का बीज बोते दिखाई देते हैं।

हिन्दी में अनुवादित उपन्यास बहुत हैं—अच्छे और बुरे दोनों। परन्तु मौलिक उपन्यास बहुत कम हैं। कथा-कहानियों की कमी नहीं है, क्योंकि उनका जन्म बहुत पहले हो चुका था। उपन्यास ने तो हिन्दी-साहित्य में अँगरेज़ी राज्य, अँगरेज़ी शिक्षा और आधुनिक रुचि के साथ ही अवतार लिया है। परलोकवासी बाबू देवकीनन्दन खत्री ने बहुत पहले ही इस अवतार की खूब आराधना की। उनके उपन्यासों ने अपने समय में साहित्य को बहुत कुछ लाभ पहुँचाया। समाज के चरित्र को बिना बहुत बिगाड़े उन्होंने हिन्दी की ओर बहुत से उपन्यास-रसिकों को आकर्षित किया। जिनको तिलिस्मी कहानियों से शौक़ था वे अब चन्द्रकान्ता-सन्तति पढ़ने लगे। लेखक को भी आर्थिक लाभ हुआ।। बस, फिर क्या था। ऐयारी से पूर्ण उपन्यासों की धूम मच गई। काशी का उपन्यास-वृक्ष इन्द्रायणी फलों से लद गया। कुछ महाशयों ने—नाम लेने की आवश्यकता नहीं—प्रेम की पुट देकर अपने उपन्यासों को और भी ज़हरीला किन्तु मनोहर बना दिया। इन विष-भरे कनक-घटों से "अमृत" पी कर देश के "रसिक" नवयुवक अपने चरित्र-पट पर नया रङ्ग रँगने लगे। इस ओर समाज का ध्यान भी न गया। न लेखक ने सोचा और न पाठकों ने ही कि हमारे चरित्र के विषय में हमारी सन्तान क्या कहेगी, जब वह यह देखेगी कि हमको इन्हीं गन्दे उपन्यासों से शौक़ था।

परन्तु आशा की झलक दिखाई देरही है। अच्छे उपन्यासों का आदर बढ़ता जाता है, चाहे वे अनुवादित ही क्यों न हों। ऐसे समय में साहित्य-सेवियों का यह धर्म है कि अच्छे उपन्यासों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करें और उनके लेखकों का उत्साह भी बढ़ाते रहें। इसी धर्म को यथाबुद्धि निबाहने के लिए आज हम पाठकों से "सेवासदन" का परिचय कराते हैं। श्रीयुत 'प्रेमचन्द्र' जी की आख्यायिकाओं से तो वे परिचित होंगे ही। यह उन्हीं की लेखनी से निकला हुआ पहला ही सामाजिक उपन्यास है और बहुत लम्बा चौड़ा है।

यह उपन्यास ऐतिहासिक नहीं। इसकी तुलना न तो दुर्गेशनन्दिनी से हो सकती है न आईवनहो (Ivanhoe) से। यदि तुलना हो सकती है तो चन्द्रशेखर या वैनिटी फ़ैयर (Vanity Fair) से। परन्तु इसमें भी कठिनाई है। सामाजिक उपन्यास के पात्र एक ख़ास देश-काल से सम्बन्ध रखते हैं। उनका प्रभाव भी तभी तक रहता है जब तक कि समाज अपनी रङ्गत न बदले। उसी देश में उनका आदर होता है जहाँ उन्होंने जन्म लिया है। इसीलिए सामाजिक उपन्यासों का अनुवाद करना कठिन भी है और बेकार भी; अतएव एक दूसरे से इनकी तुलना करना कठिन भी है और अनुचित भी। इनके गुण-दोष समाज-चित्रण ही पर आश्रित रहते हैं।

शैतान के दर्शन कराना बहुत अच्छा नहीं, और न उच्चकोटि के साहित्य में उसका चित्र खींचना सरल ही है। चित्र खींचने के दो ढङ्ग हो सकते हैं। एक कुछ सरल है और चित्रकार के लिए अच्छी रक़म पैदा करने का द्वार भी है। दूसरा कठिन है; परन्तु यदि चित्रकार चतुर न हो तो मिहनत घाटे में रहेगी, गाँठ से भी कुछ खो बैठेगा। एक चित्र इतना लुभावना बनाया जा सकता है कि आप उसीसे प्रेम करने लगें। दूसरा इस प्रकार से दिखाया जा सकता है कि, दिव्य होने पर भी, उसकी ओर से आपके हृदय में भय तथा घृणा के भाव पैदा हों। इसीसे इन दोनों के लिए साहित्य में भेद माना गया है। एक दूकानदारी है, दूसरा साहित्य का रत्न।

उदाहरण के लिए, डिकेन्स और रेनाल्ड्स की ओर देखिए। इँगलिस्तान के निर्धन मज़दूरों पर दोनों की कृपा है; उनके अपार कष्टों का चित्र दोनों ने खींचा है; इनकी दरिद्रता से उत्पन्न पापों का

करुणा-सूचक दृश्य दिखाने का प्रयत्न दोनों ने किया है। दोनों के हृदय में देश के अमीरों के चरित्रों की ओर से घृणा है। परन्तु दोनों का क्रिया-कलाप अलग अलग है। डिकेन्स के विषय में कहा जाता है कि यदि किसी उपन्यास-लेखक ने इँगलिस्तान के मज़दूर-दल का उद्धार करने में सहायता दी है तो डिकेन्स ने। इसीसे उसके उपन्यासों की गिनती देश के साहित्य-रत्नों में है। रेनाल्ड्स ने अपने देश को कहाँ तक लाभ पहुँचाया, इसका उल्लेख न करना ही भला है। ईश्वर करे, हमारा साहित्य रेनाल्ड्स की कृपा की छाया से वञ्चित रहे।

सौभाग्य की बात है जो "सेवा-सदन" रेनाल्ड्स के उपन्यासों की श्रेणी का नहीं होने पाया। उसमें समाज के उस शैतान का चित्र खींचा गया है जो हमारे शहरों के ख़ास ख़ास बाज़ारों के छज्जों को सुशोभित किये हुए है। लेखक ने इस कठिन कार्य को बड़ी चतुराई के साथ पूरा किया है। जहाँ तहाँ भाषा तथा भाव में दोष दिखाये जा सकते हैं। कहानी भी एक-आध जगह ज़रा असम्बद्ध सी जँचेगी। उनके चरित्र-चित्रण से भी, कहीं कहीं पर, पाठक सहमत न होंगे। परन्तु यह कहीं नहीं होने पाया कि मीना-बाज़ार की गन्दी वायु में घूमते हुए भी आपके विचार कलुषित हो जायँ। पाठक के भाव या तो पद्मसिंह से मिलेंगे या विट्ठलदास से। सदन या भोली से सहानुभूति हो कर उनके मन में लालसा के भाव न उत्पन्न होंगे।

वारवनिताओं का आदर होने से गृहस्थाश्रम का अधःपात होता है। सेवासदन में कही गई कहानी के द्वारा उसके उद्धार की रीति बताई गई है। इस उपन्यास का प्रधान उद्देश यही है। परन्तु इसके प्रत्येक पात्र के चरित्र से एक न एक शिक्षा मिलती है। कृष्णचन्द्र सच्चे हैं, परन्तु उन्हें अपने सत्य को, देश की दहेज़-प्रथा-रूपिणी भीषण दुर्देवी के चरणों में, बलिदान करना पड़ता है। अपनी दुलारी और शिक्षिता लड़की के विवाह के लिए दहेज़ की रक़म जुटाने को वे रिशवत लेते हैं; पकड़े जाते हैं; क़ैद भुगतते हैं। घर मटियामेट हो जाता है। एक लड़की निर्धन वर के गले मढ़ी जाती है; दूसरी दासी होकर अपना समय काटती है; स्त्री मानसिक क्लेश का शिकार बन कर बहुत जल्द संसार से कूच कर जाती है। इस अग्नि-परीक्षा में हरिश्चन्द्र ही का सत्य टिक सकता था। जेल से लौटने पर कृष्णचन्द्र के चरित्र का अच्छी तरह पतन हो गया है। लेखक बहुत देर तक उनको हमारे सामने नहीं आने देते। विपत्ति-सागर में दो-चार और ग़ोते लगा कर वे हमारी दृष्टि से लुप्त हो जाते हैं।

कृष्णचन्द्र का सा शोकमय अन्त और किसी का नहीं। बाक़ी चरित्रों के पाठ से कहीं आनन्द है, कहीं शोक और कहीं विप्लव; परन्तु अन्त शान्ति-पूर्ण है। इन चरित्रों में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य चरित्र सुमन का है।

अत्युक्ति न समझिए, सुमन ही के चरित्र-चित्रण में उपन्यास का गौरव है। उसीमें उपन्यास के प्राण हैं। सुमन के चरित्र में यदि कहीं भी बट्टा लग जाता तो उपन्यास किसी काम का न रहता। लेखक महाशय उसे पढ़ा-लिखा कर, और शारीरिक सुख की शौक़ीन बना कर, पन्द्रह रुपये महीने पर नौकर एक अधेड़ ब्राह्मण के साथ ब्याह देते हैं। चरित्र-चित्रण में सुमन को एक इसी बात ने बचा लिया कि वह भारतीय नारी है। वह पतिदैवत है सही, परन्तु आत्म-गौरव और शारीरिक सुख की लालसा उसको व
व्रत निबाहने नहीं देती। इधर वह देखती है कि
समाज में पातिव्रत की कोई क़दर नहीं। घर
सामने ही वह देखती है कि पतिता भोली का आदर-सम्मान बड़े बड़े धर्मज्ञ करते हैं, पर उसके लिए इतना भी नहीं कि वह अपनी मर्यादा को एक नीच सिपाही के हाथ से भी बचा सके! पति महाश
(गजाधरजी) क्या करें। पत्नी के वस्त्राभूषण और

मान-प्राप्ति की लालसा को वे कुछ और ही समझे। एक दिन आग लग ही तो गई। सुमन गृहिणी के उच्च पद से गिर गई।

परन्तु अभी कुछ और पतन होना बाक़ी है। दूसरे दृश्य में उसे हम दालमण्डी के एक कमरे में देखते हैं। यदि लेखक महाशय ज़रा भी चूक जाते तो सुमन के पतन की पराकाष्ठा हो जाती। सदनसिंह के प्रेम-पाश में सुमन फँस जाती है, परन्तु पतित नहीं होने पाती। इसके पहले ही समाज-सुधारक विट्ठलदास उसके उद्धार के लिए पहुँच जाते हैं। पर उसका उद्धार नहीं होता। विधवाश्रम में उसका बहुत जल्दी लाया जाना, समाज की कृपा से उसके उद्धार-विरुद्ध कठिनाइयों का पड़ना, शान्ता की विपत्ति, उसके भावी ससुर मदनसिंह का विरोध—इनमें से किसी एक का भी काम कर जाना सुमन को गिरा देने के लिए काफ़ी था। परन्तु लेखक उसको हर तरफ़ से बचा कर अन्त में सेवासदन की सञ्चालिका का पद तक दे देते हैं। सुमन ने अपने ही को नहीं, उपन्यास को भी गिर जाने से बचा लिया।

स्त्री-पात्रों में यदि प्रधान चरित्र सुमन का है तो पुरुष-पात्रों में पद्मसिंह का मानने योग्य है। कथा-प्रसङ्ग में वे कुछ देर बाद दिखाई देते हैं। परन्तु फिर वे दृष्टि के सामने से हटते नहीं। पद्मसिंह एक साधारण समाज-सुधारक हैं। विचारों के बहुत ऊँचे हैं. हृदय के बहुत कोमल हैं, परन्तु हैं बड़े दब्बू। ऐसे पुरुष लेख चाहे जितने लिख मारें, वक्तृतायें चाहे जितनी झाड़ आयें, परन्तु मौक़ा पड़ने पर रहेंगे सब के पीछे। नाच के बड़े विरोधी, परन्तु मित्रों ने दबाया तो जलसा करा बैठे। इसका उन्हें बहुत कुछ प्रायश्चित्त भी करना पड़ा—न यह नाच होता, और न सुमन घर से निकाली जाती। वे विट्ठलदास की शरण लेते हैं। परन्तु उनसे पद्मसिंह की बनती नहीं। वे कर्म्म में जैसे कच्चे हैं, विट्ठलदास विचार में वैसे ही कच्चे हैं। चन्दा वसूल करने में कठिना वाराङ्गनाओं को शहर के बाहर जगह देने के प्रस्ताव का म्यूनीसिपैलिटी के मेम्बरों द्वारा विरोध। इधर घर में सदनसिंह की ज़ियादती, उधर सुमन की छोटी बहिन शान्ता के साथ सदनसिंह के विवाह में विघ्न पड़ने की चोट। पद्मसिंह बिलकुल ढीले पड़ गये। परन्तु विचार-शक्ति में कमी नहीं पड़ी। उन्हीं के द्वारा लेखक महाशय ने अपना विचार प्रकट किया है कि वार-नारियों को निकाल देने ही से सुधार न हो जायगा। क्यों न उनको और उनकी सन्तान को अच्छे मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया जाय? इस विचार को विट्ठलदास सेवा-सदन के रूप में परिणत करते हैं। परन्तु पद्मसिंह के हृदय में अन्त तक भय की सत्ता बनी रहती है। झेंप के मारे वे सेवासदन में नहीं जाते; कहीं ऐसा न हो जो सुमन से चार आँखें हो जायँ।

ऐसे और भी अनेक पात्र हैं। परन्तु लेख बढ़ जाने के भय से हम उनका वर्णन न करेंगे। सरला शान्ता को अनेक कष्ट सहन करके भी, अन्त में, सौभाग्यवती गृहिणी का सुख भोगना बदा था। चञ्चला परन्तु पतिव्रता सुभद्रा, अनेक आपदायें झेल कर भी, पति के सामने हँसती ही रहती है; गृहस्थ गजाधर के संन्यासाश्रमी अवतार गजानन्द, अन्त में, बहन के घर से निकाली हुई किसी समय की अपनी पत्नी को शोक-सागर से उबार कर शान्ति-प्रदान करते हैं। पुराने विचार के देहाती रईस मदनसिंह नाच कराने में अपनी मर्यादा समझते हैं। दुलार से बिगड़े हुए नवयुवक सदनसिंह का पतन, और अपनी ही मिहनत-द्वारा उद्धार। म्यूनीसिपैलिटी के मेम्बरों में से कोई गानविद्या और हिन्दी का शौक़ीन है; किसीको अँगरेज़ी बोले बिना चैन नहीं; किसीके दुर्व्यसन वैसे ही हैं जैसे उसके दुर्विचार। इन सबके लिए इस उपन्यास में जगह है; सबके चित्र देखने को मिलते हैं; सबसे किसी न किसी प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्राप्त होता है।

उपन्यास के पात्रों से दृष्टि हटा कर यदि वह उसके उद्देश की ओर प्रेरित की जाय तो एक बहुत बड़ा सामाजिक प्रश्न सामने आ जाता है। क्या वह "सेवासदन", जिसकी झलक लेखक ने स्वप्न में दिखाई है, कभी हम लोगों को प्रत्यक्ष भी देखना नसीब होगा? प्रश्न कठिन है। शहरों की आबादी दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। इस काम को म्यूनीसिपैलिटियों के भरोसे छोड़ देने से सफलता होने की नहीं। देखें, भावी व्यवस्थापक सभायें इस प्रश्न को क्योंकर हल करती हैं। लेखक के विचार यदि उपन्यास के बहाने पाठक-जनता पर कुछ भी असर करें तो समाज एक बड़े बुरे रोग से मुक्त हो जाय।

उपन्यास में दोष दिखलाने के लिए बहुत कम जगह है। पुस्तक छपने में यत्र तत्र गलतियाँ रह गई हैं। मुसलमानों की उर्दू बहुत क्लिष्ट है। यदि सरल हो सकती तो बहुत अच्छा था; टिप्पणी में कठिन शब्दों के अर्थ ही लिख दिये जाते तो पाठकों को बहुत सुभीता हो जाता।

हम आशा करते हैं कि लेखक महाशय की लेखनी से और भी अच्छे अच्छे उपन्यासों की सृष्टि होगी। ईश्वर करे, वह समय शीघ्र आवे जब हमको भी यह कहने का सौभाग्य प्राप्त हो कि हिन्दी-साहित्य में भी थैकरे, डिकेन्स और स्काट की कमी नहीं है।

कालिदास कपूर

अभिलाष।

[१]

श्यामघन दे नवजीवन दान।
शान्तिसुधा की सुखद वृष्टि से शीतल हों मन-प्राण।
हृदयासन पर सुमति विराजे टूटे कुमति-कृपाण॥
स्नेह-सलिल में स्नान करें सब सुख से सुजन सुजान।
विश्ववाटिका बीच सुशोभित हों नर नीति-निधान।
सुमधुर सन्तवदनविधुवर्षित उपदेशामृत-पान।
मनोमधुप का प्रभुपदपङ्कज पर अविचल हो ध्यान॥
कवि कूजें जग-कुञ्जभवन में हो कलकण्ठसमान।
प्रेम-पूर्ण स्वर से गावें नित हरिगुण-गौरव-गान॥

आज तक जाना नहीं!

[२]

मन विकल बोला—मुझे अभिलाष है,—
शान्तिमय सर्व्वेश रहता है जहाँ
जा हृदय की वेदना कहता वहाँ;
पर न मिलता वह परम आवास है!
सुन पड़ा तत्काल—तेरे पास है;
तू निरर्थक भटकता फिरता कहाँ?
वह वहीं है तू रहा करता जहाँ;
विश्व ही उसका स्वरूप-विकाश है।
व्याप्त उससे विश्वमय आराम है;
जड़ तथा चैतन्य का वह धाम है।
सामने है शोभता मोती पड़ा;
किन्तु तूने हाय! पहचाना नहीं!
पास ही पीयूष का पूरा घड़ा
है अरे जड़! आज तक जाना नहीं!

ज्योतिषचन्द्र घोष

योरप का महायुद्ध और हिन्दुस्तान का सराफ़ा।

किसी भी देश के सराफ़ा-बाज़ारों का अथवा उन पर पड़नेवाले प्रभाव का हाल जानने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसकी मुद्रा-व्यवस्था से परिचित हों। क्योंकि सराफ़े का काम ही मुद्रा-विनिमय (सिक्के का पलटा) करना है; पर इस कार्य के लिए पेचीदा सिद्धान्तों का जानना नितान्त आवश्यक नहीं। मुद्रा-व्यवस्था की स्थूल बातों को जाननेवाला भी अपने देश के सराफ़ा-बाज़ार की साधारण समस्याओं को भली भाँति समझ सकता है। हाँ, यह सच है कि वह इस विषय की ग्रन्थियों को सुलझा अथवा खोल नहीं सकता; परन्तु यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए अभीष्ट भी नहीं है। अतः यहाँ पर इतना ही लिख देना पर्याप्त है कि

हमारी प्रचलित मुद्रा-व्यवस्था गोल्ड एक्सचेंज स्टेन्डर्ड (स्वर्ण-विनिमय की माप) पर स्थित है। इस माप का चलन हमारे देश में सन् १८९९ से हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दी के पिछले पचास वर्षों में पाश्चात्य अर्थशास्त्री मुद्रा-व्यवस्था की उलझन में बड़ी बेतरह फँसे हुए थे। सच पूछिए तो मुद्रा व्यवस्था की ग्रन्थि आज की नहीं, किन्तु बहुत पुरानी है। समाज जैसे जैसे सभ्य बनता जाता है वैसे ही वैसे उसकी ये ग्रन्थियां और भी उलझती जाती हैं, क्योंकि उसकी आवश्यकतायें इस प्रकार बढ़ जाती हैं कि कोई भी धातु मुद्रा के लिए उन्हें उपयुक्त नहीं जँचती। अनादि काल से मुद्रा-धातु का प्रश्न बड़ा ही विवादास्पद रहा है; और यह जब तब पुनर्जीवित हो जाया करता है। सब धातुओं की अपेक्षा सुवर्ण और चांदी के विषय में मुद्रा-धातु के लिए बड़ा भारी झगड़ा है। कुछ पण्डित सुवर्ण का पक्ष लेते हैं और कुछ चांदी का। यद्यपि ये दोनों ही दल इन दोनों धातुओं में देश की मुद्रा का ढाला जाना आवश्यक समझते हैं; परन्तु इनमें चलन-बाज़ार सिक्के (Standard Coins) की धातु के विषय में बहुत मत-भेद है। कुछ पण्डितों ने इन दोनों रास्तों के मध्य का रास्ता लेकर यह प्रतिपादन किया है कि दोनों ही धातुयें चलन-बाज़ार सिक्के की धातुयें मानी जायँ। इससे जब कभी एक धातु महँगी हो जाया करेगी तब दूसरी धातु इस महँगी को अपने न्यूनता-पूरक कार्य्य (Compensatory Action) द्वारा पूर्व-सम्बन्ध (Ratio) पर ला टिकायेगी। प्रथम सिद्धान्त के प्रतिपादक पण्डितों को अँगरेज़ी में मानोमेटलिस्ट अर्थात् 'एकधातुवादी' और दूसरे सिद्धान्त के प्रतिपादकों को बाई-मेटेलिस्ट्स अर्थात् 'द्विधातुवादी' कहते हैं।

गत शताब्दी के मध्य में इन्हीं द्विविध पण्डितों के बीच सिक्कों की धातुओं के सम्बन्ध में झगड़ा चल रहा था। फ़्रान्स, जर्मनी आदि मध्य यूरोप और अमरीका के पण्डितों ने द्विधातुवादियों का पक्ष ले रक्खा था; परन्तु इँगलेंड, यद्यपि अकेला था, अपने एकधात्विक सिद्धान्त का पूरा पूरा पक्षपाती था। वह चाहता था कि सारे सभ्य देश सुवर्ण को ही अपने चलन-बाज़ार सिक्के की धातु बनने का मान दें। उसके सौभाग्य से पिछले पचास वर्षों में सोने का भाव चांदी के भाव की अपेक्षा बहुत कुछ स्थिर रहा था। इस गुण के कारण सोना मुद्रा-धातु का स्थान पाने के लिए और सब धातुओं से अधिक योग्य था। परन्तु उस समय के पण्डितों को इस धातु को चलन-बाज़ार सिक्के की धातु बनाने में यही बड़ा भय लगा कि यह धातु बहुत ही परिमित परिमाण में प्राप्य है और उस समय तक केप-कालोनी और आस्ट्रेलिया की सोने की खानें खोदी नहीं गई थीं। अतः उनका यह भय कुछ सत्य भी था। उनका ख़याल था कि यदि सोना सारे सभ्य देशों के चलन-बाज़ार सिक्के की धातु का मान पा जायगा तो उसका भाव, जो अभी तक आशातीत स्थिर रहा है, बहुत ही अस्थिर एवं ऊँचा हो जायगा। अतः वे चांदी के बदले सोने को मुद्रा-धातु बनाने में सहमत न थे। पर जब चांदी की उत्पत्ति बहुत बढ़ गई और सन् १८७३ तक फ़्रांस, जर्मनी आदि मध्ययोरोपीय देशों ने सुवर्ण को चलन-बाज़ार सिक्के की धातु स्वीकार कर लिया, तब चांदी का भाव सोने की अपेक्षा बहुत नीचे गिर गया। तब, अमरीका के पण्डितों ने अपने सिद्धान्त को सर्वमान्य कराने के लिए अगले २७ वर्षों तक असीम परिश्रम किया। परन्तु फिर भी, अन्त को, उन्हें इस विषय में अपनी पितृ-भूमि इँगलेंड के पैरों पर सिर झुकाना और सुवर्ण को चलित मुद्रा-धातु मानना ही पड़ा।

भारतवर्ष की समस्या भी कुछ कुछ इसी तरह हल हुई है। भारत-हितैषियों का कथन है कि प्रचलित मुद्रा-व्यवस्था (Gold Exchange Standard) यह बतलाती है कि जब तक सुवर्ण बाहरी देशों के क़र्ज़ को अदा करने के लिए देशीय मुद्रा में, लगभग स्थिर भाव में, मिला करे तब तक इस बात की तनिक भी आवश्यकता नहीं कि वह अन्तर्देशीय मुद्रा के भी काम आवे। यह मुद्रा-व्यवस्था उनके मत से, किसी न किसी रूप में, सारे सभ्य संसार में प्रचलित है। भारतवर्ष की तरह दूसरे देशों में भी यह बात मानी गई है कि सोना जहां तक हो वैदेशिक क़र्ज़ अदा करने के लिए सञ्चय करके रक्खा जाय। दूसरे देश यह काम कई प्रकार से करते हैं। कुछ तो कंजूस की तरह ढेर का ढेर सोना अपने कोषों की तिजोड़ियों में रखते जाते हैं, और कुछ सङ्कटापन्न अवसरों पर चलनसार नोटों के बदले में भी सोना देना बन्द करके अपने लिए सोना संरक्षित रखने का प्रयत्न करते हैं। इन दोनों प्रकार

के देशों को छोड़ कर कुछ ऐसे भी सभ्य देश हैं जो हर घड़ी सोने की रखवाली करने की दिक्क़त उठाना और उतनी रक़म का ब्याज खोना पसन्द नहीं करते। वे सङ्कटमय अवसरों पर सोना पाने के लिए अपनी तिजोड़ियों में विदेशी हुंडियों के ढेर लगा रखते हैं, जिन्हें बेंच कर, ज़रूरत पड़ने पर, सोना सङ्ग्रह कर सकते हैं। जो हो, हमारी धात्विक मुद्रा-व्यवस्था रुपये और आठ आने की है। ये दोनों ही सिक्के यद्यपि सावरिन (गिन्नी) आदि सोने के अन्य सिक्कों की भाँति अपरिमित संख्या के चलन-बाज़ार सिक्के हैं (Unlimited Legal Tender) तथापि ये टोकन काइन्स (Token Coins) अर्थात् चिह्न-रूप सिक्के हैं।* भारतवर्ष का प्रचलित सिक्का अब चाँदी तथा ताँबे ही का है। उसके ढालने का अधिकार भी केवल सरकार को है। पहले जनता चाँदी या ताँबा टकसाल में सिक्के ढलाने के लिए ले जाती थी, और टकसालवाले सिक्के ढाल देते थे। परन्तु अ ऐसा नहीं होता। रुपये, अठन्नी आदि सिक्कों की ढलाई जो मुनाफ़ा होता है वह एक पृथक् कोष में जमा होता है। य कोष सन् १८९९ में नियत किया गया और फ़ौलर-कमिटी के सूचनानुसार सन् १९०१ से स्थापित है। इस कोष का धन आज-कल देशी तथा विदेशी काग़ज़, सोना और चाँदी, तीनों ही रूपों में भारत तथा इँगलेंड में रक्खा जाता है। इसकी कुल तादाद सन् १९१८ के अगस्त महीने में इस प्रकार थी—

GOLD STANDARD RESERVE.

१२ अगस्त सन् १९१८ तक भारतीय-मुद्रा-सुवर्ण-कोष की व्यवस्था—

भारतवर्ष में—		कुछ नहीं
इँगलेंड में	पौंड	३,४७,१७,०१
भारतमन्त्री के पास दर्शनी हुंडियाँ (Cash at Short Notice)		६०,००,००
ब्रिटिश, और कलोनियल सरकार के काग़ज़ (Securities) ३१ मार्च तक		१,९८,१८,५०४
उसके बाद ख़रीदे गये काग़ज़		८९,१८,४३

(टाइम्स आव् इण्डिया से उद्धृत)

इस धात्विक मुद्रा के अतिरिक्त भारतीय मुद्रा-व्यवस्था का एक और भी अङ्ग है। वह काग़ज़ी मुद्रा है, जो करन्सी के सिद्धान्त पर स्थित है। उसका चलन सन् १८६१ से हमारे यहाँ है। उसके पहले भी कम्पनी-सरकार ने प्रेसीडेन्सी बैंकों को काग़ज़ी सिक्का चलाने की आज्ञा दी थी और उन्होंने चलाया भी था। अब हमारे काग़ज़ी सिक्के निम्नलिखित तादाद के हैं—१००००) रु०, १०००) रु०, ५००) रु०, १००) रु०, ५०) रु०, १०) रु०, ५) रु०, २॥) रु०, और १) रु०। पिछले दो नोटों का चलन कुछ ही समय से हुआ है। सन् १९१० से पहले २०) का भी नोट चलता था। परन्तु तब से वह बन्द है। इन नोटों के निकास के स्थान अब पाँच हैं। बम्बई, कलकत्ता, कराची, मदरास और रंगून। इन नोटों में से सौ रुपये के नोट से नीचे के सभी

---

*सिक्के दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जिनकी धातु का मूल्य और चलित मूल्य समान है। ऐसे सिक्कों को अँगरेज़ी में स्टेंडर्ड काइन (Standard Coin) कहते हैं, जैसे सावरिन, डालर और फ़्रेंक आदि। दूसरे वे सिक्के हैं जिनका चलित मूल्य धात्विक मूल्य से ज़ियादह होता है। ऐसे सिक्कों को अँगरेज़ी में टोकन काइन्स (Token Coins) कहते हैं। इन दो भेदों के अतिरिक्त सिक्कों के दो भेद और भी हैं। वे उनके चलन से सम्बन्ध रखते हैं। सावरिन, डालर आदि सोने के सिक्के ऐसे हैं जिन्हें कोई भी लेनदार अपने कर्ज़दार से कर्ज़ अदा करने में, अपरिमित संख्या में, लेने से इनकार नहीं कर सकता। इसके विपरीत शिलिङ्ग, सेन्ट आदि चाँदी अथवा ताँबे के सिक्के ऐसे हैं जो परिमित संख्या में ही दिये जा सकते हैं। लेनेवाला उससे ज़ियादह संख्या में लेने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। सिक्के के इन दोनों गुणों को अँगरेज़ी में Unlimited Legal Tender और Limited Legal Tender कहते हैं। हमारा रुपया और अठन्नी टोकन मुद्रा होते हुए भी अपरिमित संख्यावाला चलन-बाज़ार सिक्का है। कुछ संख्या के बाद इन्हें लेने से कोई भी इनकार नहीं कर सकता। इनकार करनेवाले भारतीय करन्सी एक्ट के अनुसार मुलज़िम ठहराये जा सकते हैं।

नोट व्यापक हैं और सौ से ऊपर के नोट केवल अपने निकास-क्षेत्र में ही चल सकते हैं। ये सभी नोट अपरिमित चलन-बाज़ार सिक्के हैं। इन्हें लेने से कोई भी इनकार नहीं कर सकता। इनके सकारने के लिए एक पृथक् कोष है, जो पेपर-करन्सी-रिज़र्व कहाता है। इन नोटों का काम एक अलग महकमे के सिपुर्द है। वही इसकी सारी व्यवस्था करता है। हमारे नोट इँगलेंड से छप कर आते हैं। इनके सकारने का कोष भी देशी तथा विदेशी काग़ज़ और सोने तथा चाँदी के रूप में, यहाँ और इँगलेंड में, रक्खा जाता है। इसका काग़ज़ी भाग लड़ाई छिड़ने के बाद से धीरे धीरे बहुत बढ़ गया है। अभी भारतवर्ष में नोट लगभग १ करोड़ १२ लाख रुपये की तादाद में हैं। उनके सकारने के लिए पेपर-करन्सी-रिज़र्व की तादाद इस प्रकार है—

७ जुलाई १९१८ तक की तादाद

कुल नोटों की तादाद	१,१६,२५,५४,१२८
कोष का विवरण—	
भारतवर्ष में चाँदी	५,९३,३७,१५३
सोना और सोने के सिक्के	२०,९०,०२,८१३
टकसाल में चाँदी ,, ,,	२,३६,९६,६२३
इँगलेंड में सोना	४४,९२,७७०
भारतवर्ष में काग़ज़	९,९९,९९,९४६
इँगलेंड में काग़ज़	६९,४२,७९,५०७

[असमाप्त

कस्तूरमल बांठिया

विविध विषय।

१—सरकार की दीर्घसूत्रता।

अब तक विलायत में आई० सी० एस० की परीक्षा पास किये बिना भारतीय उच्च पदों पर किसी की प्रतिष्ठा सरकार न करती थी। छः हज़ार मील समुद्र-यात्रा तै करके विलायत जाव। वहाँ हज़ारों रुपये ख़र्च करके पढ़ो और परीक्षा के लिए तैयार हो। फिर, सैकड़ों विलायतवासी युवकों के साथ उनकी मातृभाषा अँगरेज़ी में प्रतिद्वन्द्विता-सूचक परीक्षा दो। उसमें बहुत ऊँचे नम्बर पर पास हो। तब कहीं आपको ऊँचे उहदे की सरकारी नौकरी भारत में मिले। यहाँ दस-पन्द्रह वर्ष तक असिस्टंट कमिश्नर, जाइंट मैजिस्ट्रेट आदि बन कर कारगुज़ारी दिखाओ। तब कहीं आप जज, कलेक्टर और कभी कभी कमिश्नर के पद तक पहुँचो। अब, पिछले साल से, सरकार ने कृपा करके इन बढ़ी हुई विघ्न-बाधाओं को कुछ कम कर दिया है। विलायत में जो परीक्षा हुआ करती है वह तो होती ही रहेगी; वह बन्द न होगी। पर अब सरकार, हर प्रान्त से, कुछ एम० ए०, बी० ए० पास सरकारी मुलाज़िमों तथा अन्य लोगों को भी चुनने लगी है। चुने जाने पर ये लोग सरकारी ख़र्च से विलायत भेजे जाते हैं। वहां इन्हें २०० पौंड वार्षिक खाने-पीने का ख़र्च मिलता है। विलायत के किसी विश्वविद्यालय या कालेज में इन लोगों को दो साल तक पढ़ना पड़ता है। पढ़ कर नियमानुसार परीक्षा पास कर लेने पर इन्हें नौकरी मिलती है। देशी रियासतों के निवासियों और हिन्दुस्तान में बस गये साहबों या अर्द्ध-साहबों के साथ भी यह रियायत की गई है। इस तरह का पहला चुनाव हो गये कुछ समय बीत चुका। यह चुनाव सन् १९१९ ईसवी का है। यह साल समाप्त हुए लगभग एक महीना हो गया। चुनाव भी प्रायः हो चुका। पर इस चुनाव के नियम आदि २४ जनवरी १९२० के गैज़ट आव् इंडिया में निकले हैं। इससे क्या लाभ, यह सरकार ही जाने। जिन उम्मेदवारों को और मार्गों से इसके नियमों का पता लग गया होगा वही उम्मेदवारी कर सके और अर्ज़ी-पुर्ज़ा भेज सके होंगे। बाक़ी औरों को भाग्य के भरोसे अगले साल तक ठहरना पड़ेगा। तब यदि उनमें से किसी की उम्र २५ वर्ष से अधिक हो गई तो बस गये। क्योंकि इतनी ही उम्र तक के लोग चुने जा सकते हैं, अधिक के नहीं। इन नियमों के साथ अर्ज़ी भेजने का जो नक़्शा दिया गया है उसमें कोई २० बातें पूछी गई हैं। बाप-दादे के नाम और पते, जान-पहचानवालों के नाम और पते, पढ़ानेवाले अध्यापकों और स्कूल-कालेजों के नाम और पते देने पड़ते हैं। क्या पढ़ा है, कैसा चालचलन है, कैसी तन्दुरुस्ती है, कहीं नौकरी-चाकरी की है या नहीं—ऐसी ऐसी बहुत सी बातें

लिखनी पड़ती हैं और अर्ज़ी पर डाकख़ानेवाले ७½ रुपये के टिकट लगाने पड़ते हैं। न लगाने से अर्ज़ी रद्दी की टोकरी में जाती है। इन नियमों के पाठ और अर्ज़ी के नक़शे के दर्शन से जान पड़ता है कि सरकार ख़ूब ही छान-बीन करके और उम्मेदवारों की योग्यता, चाल-चलन और इज़्ज़त-आबरू की बहुत ही बारीक जांच करके तब कहीं उन्हें चुनती है। ऐसा होना ही चाहिए। जजी, कलेक्टरी और कमिश्नरी क्या ऐसे वैसों के लिए थोड़े ही रक्खी है।

२—संयुक्तप्रान्त में शिक्षा।

और और विभागों की तरह शिक्षा-विभाग भी हर साल अपनी रिपोर्ट गवर्नमेंट को भेजता है। जो साल ३१ मार्च १९१९ को समाप्त हुआ उसकी रिपोर्ट छप गई है। यह रिपोर्ट डाइरेक्टर साहब की लिखी हुई है; पर अब तक इसे देखने का सौभाग्य हमें नहीं प्राप्त हुआ। इस प्रान्त की गवर्नमेंट ने उसकी जो आलोचना की है वह अलबत्ते, इस समय, हमारे सामने है। उसी का कुछ हाल सुनिए—

हाल यह है कि रिपोर्ट के साल छात्रों की संख्या ९,१८,२५८ से ९,२४,६७९ हो गई और ख़र्च भी १,५२,८९,१७९ से १,७२,३७,४५० रुपये हो गया।

पूरी प्रारम्भिक शिक्षा देनेवाले मदरसों की संख्या में ४५० की, और आधी शिक्षा देनेवालों की संख्या में १९४ की वृद्धि हुई। पिछले प्रकार के मदरसों में पढ़नेवाले छात्रों की संख्या में कोई १७ हज़ार छात्रों की वृद्धि हुई। पर पूरे प्रारम्भिक मदरसों में ८३ की कमी। अर्थात् ककहरा और पहाड़े आदि पढ़नेवाले लड़के तो कुछ बढ़े, पर चिट्ठी लिख सकनेवाले लड़कों की संख्या में कमी हो गई। ट, फ, करनेवाले लड़कों का बढ़ना न बढ़ना कोई चीज़ नहीं। उन्हें जो शिक्षा मिलती है उसे शिक्षा कहना ही न चाहिए, क्योंकि उससे व्यावहारिक काम कुछ भी नहीं निकलता। जिस प्रकार की शिक्षा से कुछ काम निकलता है उसे प्राप्त करनेवाले उलटा कम हो गये। यह इस सूबे का अभाग्य ही समझिए। कोई २० लाख रुपया अधिक ख़र्च होने पर भी इतनी कमी! इसका कारण डाइरेक्टर साहब ने महँगी, बीमारी, रुपये और अच्छे अध्यापकों की कमी बताई है। गवर्नमेंट ने अब कुछ और भी ख़र्च बढ़ाया है तथा कुछ और भी सुभीते कर दिये हैं। इससे आशा है अगले साल की रिपोर्ट में विशेष सन्तोषदायक परिणाम के समाचार सुनने को मिलें। म्युनिसिपैलिटी की हद में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य्य करने के लिए यदि कोई इच्छा प्रकट करेगा तो उसे गवर्नमेंट प्रसन्नतापूर्वक रुपये-पैसे से सहायता करने को तैयार है। सरकारी समालोचना में यह अभिवचन पढ़ कर शिक्षा-प्रेमियों को सरकार का अभिनन्दन करना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा देनेवाले स्कूलों की संख्या में १९ की वृद्धि हुई। पर छात्रों की संख्या घट गई। अँगरेज़ी स्कूलों में १९५६ घटे और हिन्दी-उर्दू के स्कूलों में १८४। सरकार चाहती है कि इन स्कूलों में जो शिक्षा दी जाय ख़ूब पक्की दी जाय, कच्ची नहीं। आज-कल जो शिक्षा दी जाती है वह कच्ची है। इस दोष को दूर करने के लिए वह अच्छे अध्यापकों की संख्या बढ़ाने की बड़ी ज़रूरत समझती है। इसीसे वह अध्यापन-कार्य्य की शिक्षा देने के लिए आगरे में भी एक ट्रेनिङ्ग-स्कूल खोलने जाती है। वह अध्यापकों का वेतन भी बढ़ाने की तैयारी में है। "तथास्तु"।

कालेजों की संख्या पूर्ववत् है। पर छात्रों की संख्या उनमें भी घट गई है।

लखनऊ में एक नया विश्वविद्यालय खुलनेवाला है।

रिपोर्ट के साल, सब मिला कर ५३,६४१ लड़कियां शिक्षा पा रही थीं। अर्थात् पूर्व-वर्ष की अपेक्षा कोई डेढ़ हज़ार अधिक लड़कियों ने अक्षराभ्यास किया। अक्षराभ्यास इसलिए कहते हैं, क्योंकि लड़कियों की अधिक संख्या छोटे ही दरजों में थी। ५३ में से कोई ३९ हज़ार लड़कियां प्रारम्भिक क्लासों में ही थीं।

इससे प्रकट है कि ऊँचे दरजों में पढ़नेवाली लड़कियां बहुत ही कम थीं। तथापि यह कम सन्तोष की बात नहीं जो लोग लड़कियों को धीरे धीरे स्कूल तो भेजने लगे। उनकी झिझक तो छूटने लगी। अब तो कुछ लोग लड़कों के मदरसों में भी लड़कियों को पढ़ने भेजते हैं। ऐसी लड़कियों की संख्या, ३१ मार्च १९१९ को, २४ हज़ार थी अर्थात् स्कूल जानेवाली कुल लड़कियों में से आधे से कुछ ही कम।

३—चलन-बाज़ार सिक्कों और नोटों का वार्षिक विवरण।

कंट्रोलर आव् करंसी ने एप्रिल १९१८ से मार्च १९१९ तक की जो रिपोर्ट गवर्नमेंट को भेजी है और जो १० जनवरी २० के गैज़ट आव् इंडिया में प्रकाशित हुई है उसमें अनेक बातें जानने योग्य हैं।

इस देश की गवर्नमेंट को विलायत की गवर्नमेंट की सहायता, कई करोड़ रुपये से, करनी पड़ी। यहाँ की जो फ़ौज मेसोपोटामिया वग़ैरह में लड़ती रही है उसका ख़र्च भी देना पड़ा। दाल, चावल, गेहूँ, भूसा, घास भी उसके लिए भेजनी पड़ी। इस कारण सरकारी ख़र्च बहुत बढ़ गया। इसके सिवा खाने-पीने की चीज़ों की माँग भी, लड़ाई के कारण, बहुत रही। इससे इस देश का निर्यात व्यापार पहले की अपेक्षा बहुत अधिक हो गया—अर्थात् यहाँ से बहुत माल बाहर गया। २ अरब ५४ करोड़ रुपये का माल भारत ने विदेश को भेजा। इसके मुक़ाबले में उसने विदेश से सिर्फ़ १ अरब ६९ करोड़ का माल मँगाया। मतलब यह कि उसे विदेश से कोई ८५ करोड़ रुपये, माल पेटे, अधिक मिले। जितने का माल उसे मिला उससे ८५ करोड़ का अधिक माल उसने भेजा। अर्थात् इतना रुपया उसने और और देशों से खींच लिया।

रिपोर्ट के साल चाँदी के भाव में बड़ी उथल-पुथल रही। सितम्बर १९१८ तक चाँदी का भाव इतना अधिक रहा कि रुपया गला कर चाँदी बेचने से गलानेवालों को मुनाफ़ा था। ६ मई १९१८ को १०० तोले विदेशी चाँदी का दाम ११७=) था। यह भाव १०१) होने पर भी रुपया गलाने से लाभ होता है। इस दशा में यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि कलदार की क्या दशा हुई होगी और ख़िलाफ़ क़ानून होने पर भी उसे कितनी आँच सहनी पड़ी होगी। पर अमेरिका और आस्ट्रेलिया से बहुत आमदनी होने पर चाँदी का भाव गिरने लगा। २८ नवम्बर १८ को उतर कर वह ८२॥=) फ़ी सौ तोले हो गया। अब, आज-कल, चाँदी का भाव फिर चढ़ा है। पर उसका सम्बन्ध इस रिपोर्ट से नहीं। इसी से उसका उल्लेख इसमें नहीं किया गया।

अनेक कारणों से रिपोर्ट के साल रुपये की बड़ी माँग रही। सरकारी टकसाल में ५१ करोड़ के लगभग रुपया ढाला गया। तिस पर भी बीच में—विशेष करके अप्रेल, मई और जून १९१८ में—सरकार बड़े सङ्कट में रही। कुछ तो देहात में अनाज और कपास वग़ैरह की ख़रीद के कारण, उस समय, व्यापारियों को यों भी रुपया अधिक दरकार था। कुछ कारण यह हुआ कि तरह तरह की अफ़वाहें सुन कर लोगों ने अपने अपने नोट भुना कर रुपये कर लेने चाहे। फल यह हुआ कि जितने करंसी आफ़िस हैं सब रुपया देते देते थक गये। नोटों के इस भाँज को कुछ कम कर देने के लिए इधर तो नई नई तरकीबें काम में लाई गईं, उधर टकसालों में दिन रात रुपये की ढलाई होने लगी। इतने में अमेरिका से चाँदी भी बहुत सी आ गई। सरकार ने गिन्नी देना बन्द कर दिया था; पर उसे भी वह कुछ समय तक फिर देती रही। प्रेसिडेन्सी बैङ्कों को भी अपना बहुत सा रुपया देकर, लोगों की रुपये की भूख दूर करने की चेष्टा सरकार ने की। रुपये की सबसे ज़ियादह माँग बम्बई में रही। पर सरकार का सितारा ठहरा बुलन्द। राम राम करके उसकी साख ज्यों की त्यों बनी रही। नोट-राम की इज़्ज़त रह गई। उनको दिखाने और दे देने पर उनकी रक़म लोगों को कल्याणकारी कलदार के रूप में बराबर मिलती ही गई।

रिपोर्ट के साल काग़ज़ी रुपये का बहुत अधिक दौर-दौरा रहा। उसका औसत चलन १ अरब १४ करोड़ का समझिए। पहले कितने के नोट लोग लेते-देते रहे हैं, इसका मोटा हिसाब नीचे देखिए—

१९०० ईसवी में	२१ करोड़ के
१९०५ ,,	२८ ,,
१९१० ,,	३७ ,,
१९१४ ,,	४६ ,,
१९१५ ,,	४५ ,,
१९१७ ,,	७१ ,,

देखिए, धीरे धीरे नोट-नरेश के राज्य का विस्तार किस तरह बढ़ता गया है। १९०० में वे २१ करोड़ के चले थे। १९१० में ३७ करोड़ के हो गये। १९१८ में तो उन्होंने उसके तिगुने से भी अधिक पैर फैलाये। उनकी

अवतार-संख्या भी तो अब बहुत बढ़ गई है। १) और २॥) के नोट पहले कहाँ थे। नोट अधिक, चाँदी की कमी आदि के कारण पास रुपया कम। इस दशा में अधिकांश लोग नोट भुनाने दौड़ें तो बेचारी सरकार करे क्या? सरकार पर अविश्वास करके अकारण ही नोट भुनाने की इच्छा रखनेवाले नासमझ आदमियों का अपनी यह कुटेव छोड़ देनी चाहिए। सरकार को व्यर्थ कष्ट देने से क्या लाभ? क्या नोट देने से नोन, तेल, लकड़ी नहीं मिल सकती?

४—सन् १९१८ का अवर्षण।

सन् १९१८ में वर्षा न होने या कम होने से इस सूबे में कहीं कहीं दुर्भिक्ष पड़ गया। कहीं उसकी ज्वाला अधिक प्रचण्ड रही, कहीं कुछ कम। बुँदेलखण्ड के चारों ज़िले—झाँसी, जालैान, हमीरपुर और बांदा—और इटावा, इनमें दुर्भिक्ष ने बड़ा घोर रूप धारण किया। गढ़वाल, मिर्ज़ापुर, मुरादाबाद, हरदोई, उनाव और सीतापुर में भी लोगों ने कष्ट पाया। और और ज़िलों में भी अनन्त मनुष्य अकाल की फांसी में कुछ कुछ फँसे। अकाल या दुर्भिक्ष नापने के लिए सरकार ने अपना एक पैमाना बना रक्खा है। उसकी नाप जहाँ ठीक निकली वहाँ दुर्भिक्ष माना गया, अन्यत्र नहीं। रायबरेली के ज़िले में हम एक काश्तकार को जानते हैं। उसकी तीन बीघे ज्वार में छटाँक भर भी दाना नहीं हुआ। और भी कितने ही लोगों की यही दशा रही। पर सरकार ने वहाँ दुर्भिक्ष का अस्तित्व स्वीकार न किया। फल यह हुआ कि सबको अपने अपने जोत का पूरा लगान या मालगुज़ारी देनी पड़ी।

इस दुर्भिक्ष के सम्बन्ध में सरकार ने अपना मन्तव्य हाल ही में प्रकट किया है। उसमें लिखा है कि १९१८ में मकई, तिल्ली, ज्वार, बाजरा और ईख बहुत ही कम हुई। कहीं पिछले साल से अच्छी, कहीं उससे कुछ ज़ियादह, कहीं उससे कम। पर रबी की फ़सल का हिसाब नहीं दिया गया। काश्तकारों पर कृपा करके सरकार ने कोई २ करोड़ रुपये की तक़ावी बांटी। तक़ावी को आप क़र्ज़ समझिए। यह रुपया क़र्ज़दारों को मीयाद के भीतर सूद समेत चुकाना पड़ता है। किस काम के लिए कितना रुपया सरकार ने क़र्ज़ दिया, इसकी तफ़सील इस प्रकार है—

कुवों के लिए	२५ लाख
बैल ख़रीदने के लिए	४२½ ,,
चारे के लिए	७¾ ,,
खेतों के पुश्ते उठाने के लिए	६ ,,
ईख बोने के लिए	१४¾ ,,

सरकार ने और भी उदारता दिखाई। ६१¼ लाख रुपये लगान के उसने माफ़ कर दिये और कोई ७८¼ लाख की तहसील मुल्तवी कर दी। इसके सिवा ३ लाख ३७ हज़ार रुपया उसने धर्म्मादे खाते मुफ़्त दे डाले। यह पिछली रक़म इटावा, बुँदेलखण्ड, मिर्ज़ापुर, बदायूँ, मुरादाबाद, उनाव, कानपुर, हरदोई, बाराबंकी और सीतापुर के ज़िले के अकाल-पीड़ित कँगलों को बांटी गई। गढ़वाल में भी अकाल का ज़ोर रहा। वहाँ ग़ल्ला पहुँचाने के लिए सरकार ने बहुत सा रुपया ख़र्च किया।

कोई २० हज़ार वर्गमील में अकाल का प्रभाव पड़ा। इस इतने रक़बे में रहनेवाले ५५ लाख आदमियों पर अकाल की मार पड़ी। बहुतों को सरकार ने योंही मुफ़्त रुपया देकर मदद की। पर जिन लोगों से कुछ न कुछ काम कराकर उसने रुपया बांटा उनकी संख्या मुफ़्तख़ोरों से अधिक रही। अकेले इटावे में २,८५५ आदमियों को मुफ़्त मदद दी गई। पर १५ हज़ार आदमियों ने और तरह से मदद पाई।

आगरा, हरदोई, जालैान, हमीरपुर और बांदे में पाँच पाँच लाख रुपये से भी अधिक लगान सरकार ने माफ़ कर दिया। कानपुर में ४½ और उनाव में ३¼ लाख छोड़ा।

यह तो हुई सरकारी कर्तव्य की बात। सर्वसाधारण की सङ्गठित संस्थाओं, सेवासमितियों तथा अन्य दानशील सज्जनों ने कितनी सहायता की, इसका ठीक ठीक हिसाब, बिना बताये, नहीं जाना जा सकता। कुछ उदाराशय सज्जनों के नाम सरकार ने अपने मन्तव्य में ज़रूर दिये हैं। पर गुप्त दान देनेवाले भी तो बहुत होंगे।

५—कृषि के आधार बैलों की कमी।

भारत कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की विस्तृत आबादी

की जीविका का आधार प्रायः कृषि-कर्म ही है। प्रति शत कोई ९० आदमी खेती करके ही अपना पेट पालते हैं। पेट भरने का और कोई उपाय भी तो नहीं। क्योंकि हमारे देश के अधिकांश उद्योग-धन्धे पाश्चात्य देशों की उन्नतिशील जातियों की प्रतियोगिता में चौपट हो गये। किसी तरह गुज़र करने के लिए एक-मात्र खेती ही रह गई है।

परन्तु अब मालूम पड़ता है कि वह दिन बहुत दूर नहीं जब हम देखेंगे कि हमारे जीवन का एक-मात्र आधार कृषिकर्म भी हमारे हाथ से बहुत कुछ निकल जायगा। क्योंकि गत योरोपीय महायुद्ध ने यह सिद्ध कर दिया है कि कोई भी राष्ट्र कैसा ही प्रबल क्यों न हो, यदि वह अपने यहाँ यथेच्छ भोज्य-सामग्री प्रस्तुत नहीं करता तो, कठिन समय उपस्थित होने पर, आत्मरक्षा करने में असमर्थ होगा। यूरप की कितनी ही जातियाँ, युद्ध-काल ही में, अपनी इस त्रुटि को दूर करने में संलग्न हो गई थीं।

इधर हमारे देश में कृषि की दशा बहुत ही शोचनीय है। वर्तमान हीन दशा में, इस विषय में, क्या वह पाश्चात्य देशों के साथ प्रतिद्वन्द्विता कर सकेगा? क्योंकि उन देशों के लोग वैज्ञानिक रीति से खेती करते हैं और यहाँ तो आज भी वही हल और वही खुरपी विद्यमान है जो बहुत पूर्व मिथिलेश के भी काम आती थी। यही क्यों, हम लोगों की कृषि के प्रधान साधन या एञ्जिन जो बैल हैं उनकी संख्या भी तो दिन पर दिन घटती जाती है।

सरकारी हिसाब है कि अँगरेज़-शासित भारत में इस समय कुल २२,००,००,००० एकड़ भूमि जोती बोई जाती है। और प्रति दो एकड़ के लिए दो बैलों की आवश्यकता है। इस हिसाब से, २२,००,००,००० ऐसे बैलों की ज़रूरत है जो खेती का ठीक काम दे सकें। परन्तु अँगरेज़-शासित भारत में, सन् १९१३–१४ में, कुल बैल ४,८०,००,००० ही थे। उनमें भी ३,२०,००,००० ऐसे थे जो खेती के काम के लिए सर्वथा योग्य न थे। जब हमारी खेती के आधार-स्वरूप बैल तक दुष्प्राप्य हो रहे हैं तो क्या वह दिन समीप नहीं जब हम लोगों को खेती के काम से भी हाथ धोना पड़ेगा? ज़रा सोचिए तो कि बैलों की जो जोड़ी केवल दो एकड़ भूमि जोत सकती है वही यदि ५ एकड़ जोते तो किस तरह काम लायक़ रहेगी?

जिस गोवंश की बदौलत इस देश में अन्न के ढेर लगे रहते थे और घी-दूध की नदियाँ बहती थीं उसी का जब ह्रास हो रहा है तब उसकी सहायता से किसी प्रकार अपना जीवन बितानेवाले हम भारतवासियों की दशा आगे कैसी होगी? यह विचारने की बात है। पाठक, विचारिए और इसका कुछ इलाज भी कीजिए।

६—महँगी की मार।

तीन-चार वर्षों से महँगी गज़ब ढा रही है। महँगी भी कैसी? एक-दो चीज़ों की नहीं। प्रायः सभी चीज़ें दूने तिगुने दामों पर बिक रही हैं। यह दुर्दशा इसी देश की नहीं, संसार-व्यापिनी सी है। जिस देश को देखिए वहीं महँगी का साम्राज्य है। जो देश समृद्ध हैं—जहाँ के निवासियों की आमदनी अधिक है—वहाँ यह महँगी बहुत अधिक खलनेवाली नहीं कही जा सकती। फिर भी वहाँ हड़ताल पर हड़ताल हो रहे हैं। मज़दूरी अधिक माँगी जा रही है। उसका निर्ख़ बढ़ा दिया जाता है; फिर भी माँग जारी ही रहती है। और बढ़ाओ, और बढ़ाओ, और बढ़ाओ! यही ध्वनि दूर देशों तक से आ रही है। बेचारा भारत तो ठहरा कङ्गाल। उसकी दुर्गति का क्या ठिकाना! यह दुर्गति देहात में बड़ा ही करुणाजनक दृश्य दिखा रही है। दो-चार बीघे खेती करके पेट पालनेवालों के बाल-बच्चों की दशा नहीं देखी जाती। ज्वार-बाजरे की रोटी का सूखा टुकड़ा उन्हें मुश्किल से मिलता है। जाड़ा इतना भीषण। बदन ढकने को काफ़ी कपड़ा नहीं। ईश्वर की लीला तो देखिए। जो लोग करोड़ों मन अनाज पैदा करके औरों को देते हैं—दूसरे दूसरे देशों का पेट पालते हैं—वही दाने दाने को मुहताज! युद्धारम्भ अगस्त १९१४ में हुआ था। उस समय की बात हम नहीं कहते। १९१५ और १६ की भी नहीं कहते। सन् १७ और १८ में अनाज जिस भाव बिकता था उसी का मुक़ाबला १९१९ के भाव से कर देखिए। रोंगटे खड़े हो जायँगे। यह हिसाब हम अपने प्रान्त की सरकार के द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट से देते हैं। उसका नाम है—Annual Report on the

Inland Trade for the year ending 31st March, 1919. देखिए, ३० जून सन् १९१७ और १८, और ३१ मार्च सन् १९१९ को अनाज एक रुपये का कितने सेर बिकता था—

	१९१७	१९१८	१९१९
गेहूँ	१०·१	९·०	५·७
जौ	१५·१	१३·९	७·३
चावल	८·२	७·२	५·१
ज्वार	१५·२	१०·२	६·१
बाजरा	१३·८	८·७	५·७
चना	१४·३	१२·४	६·४
अरहर	१०·३	९·२	४·७
मकई	१५·९	१३·०	७·१

मार्च १९१९ से इधर महँगी और भी अधिक हो गई है, यह बताने की ज़रूरत नहीं। अब तो कहीं कहीं गेहूँ का निर्ख़ ५ सेर से भी कम रह गया है। जितना गेहूँ, जौ और चावल पहले एक रुपये में आता था उतना अब दो में भी नहीं आता। अरहर, बाजरा और चना तो और भी अधिक महँगे हो गये हैं। आमदनी बढ़ी नहीं, महँगी इतनी। फिर क्यों न ग़रीब आदमी भूखों मरें! इस महँगी ने ही इस देश में भी हड़ताल आरम्भ कर दिये हैं। यह रोग अब यहाँ भी संक्रामक होना चाहता है।

७—स्मिथ साहब का भारतीय इतिहास।

विन्सेंट स्मिथ साहब बड़े नामी इतिहासवेत्ता थे—अपने देश के नहीं; भारत के इतिहास के वेत्ता। आप बहुत बरसों तक इस प्रान्त में ऊँचे ऊँचे पदों पर अफ़सरी कर चुके थे। आप पेंशन लेकर अपने देश—विलायत—में निवास कर रहे थे और वहीं बैठे बैठे इतिहास-विषयक पुस्तकें लिख कर भारत की सेवा में रत थे। खेद है, अभी हाल ही में आपका देहान्त हो गया। आपके लिखे हुए भारत के पुरातन इतिहास ने बड़ी प्रसिद्धि पाई है। उसकी बदौलत भारतवासियों को अपनी बहुत सी भूली हुई बातें फिर याद आ गई हैं। वह पुस्तक भारत के इतिहास-प्रेमियों का कण्ठहार हो रही है। स्मिथ साहब ने एक और भी इतिहास लिखने की कृपा की है। यह भी भारत का ही इतिहास है। पर पहले इतिहास से छोटा है। अपने पहले ग्रन्थ में स्मिथ साहब ने भारत का केवल पुराना इतिहास, विस्तारपूर्वक, लिखा है। इस दूसरे नये ग्रन्थ में आपने भारत के पुराने और नये, दोनों इतिहासों का समावेश कर दिया है। आरम्भ से लेकर १९११ ईसवी तक की प्रायः सभी मुख्य मुख्य ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख आपने इस पुस्तक में किया है और अपनी सम्मतियों से उन घटनाओं को महत्त्व भी प्रदान किया है। पुस्तक में ९ अध्याय हैं। १ से ३ अध्यायों तक भारत के प्राचीन इतिहास का वर्णन है। ४ से ६ तक मुसलमानी अमलदारी के समय के भारत का, और ७ से ९ तक अँगरेज़ी अमलदारी के समय का।

भिन्न भिन्न पुराणों में अनेक राजवंशों और उनके क्रिया-कलापों का वर्णन है। यह वर्णन अनेकांश में एक दूसरे से बहुत कुछ मिलता जुलता है। पुराणों की कितनी ही बातें, आज-कल की ऐतिहासिक खोज से, सही भी साबित हो चुकी हैं। परन्तु स्मिथ साहब इन सबको सच मानने के लिए तैयार नहीं। सर विलियम जोन्स, बूलर, परगीटर, मैक्स-मूलर आदि अनेक पाश्चात्य पण्डितों की राय है कि पुराणोक्त सभी बातें निराधार नहीं; विशेष करके उनकी वंशावलियाँ तो ज़रूर ही ऐतिहासिक आधार रखती हैं। पर स्मिथ साहब इस बात के क़ायल नहीं। वे तो धर्म्म-प्राण हिन्दुओं की रामायण को भी क़िस्से-कहानी की कच्चा की पुस्तक समझने की प्रवृत्ति की ओर झुके दिखाई देते हैं। अनेक लिखित, तथा अनेक ज्योतिषिक प्रमाणों से भी, यह बात सिद्ध समझी गई है कि महाभारत का युद्ध ईसवी सन् के ३१३९ वर्ष पूर्व हुआ था। इस विषय के कई प्रमाण सरस्वती में भी प्रकाशित किये जा चुके हैं। परन्तु साहब का कहना है कि भारत का सन्-संवतदार सच्चा इतिहास ईसा के ६५० वर्ष ही पहले के आस पास से आरम्भ होता है। आपकी यह भी राय है कि पाण्डव इस देश के असली निवासी न थे। वे कहीं बाहर से आकर यहाँ बस गये थे; यहाँ तक कि वे शायद आर्य्यों के वंशज ही न थे। आपके जिस इतिहास में ये बातें हैं वह विलायत के आक्सफ़र्ड-विश्वविद्यालय की पुस्तक-माला की एक मनका है। वह—The Oxford History of India

है। उस विश्वविद्यालय के छात्र बहुत करके इसी इतिहास के पाठ से भारतवर्षीय इतिहास का ज्ञान सम्पादन करेंगे। उनमें से, समय पाकर, यदि कोई उहदेदार बन कर इस देश में पदार्पण करेंगे तो अपने साथ अपना यह इतिहास-ज्ञान भी यहाँ लेते आवेंगे। शङ्कराचार्य्य के स्थिति-काल के विषय में श्रीयुत नारायण शास्त्री ने एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने बड़ी योग्यता और बड़ी गवेषणा का प्रमाण दिया है। उसमें शक-काल-सम्बन्धिनी बहुत सी अखण्डनीय दलीलें हैं। उनसे तो यही ज्ञात होता है कि कालिदास सन् ईसवी के पचास साठ वर्ष पहले ही विद्यमान थे। पर विन्सेंट स्मिथ साहब उन दलीलों को भी दाद नहीं देते। उन पर बहस भी नहीं करते। पर राय आपकी यही बनी हुई है कि कालिदास ईसा की पाँचवीं शताब्दी के पहले के नहीं; वे तो द्वितीय चन्द्रगुप्त के समकालीन थे। साहब ने हिन्दू और मुसल्मानी राज्य के समय की यथास्थान यत्र तत्र प्रशंसा की है और कहीं कहीं बहुत प्रशंसा की है—विशेष करके हिन्दुओं के शासन-समय की। पर आपकी यह भी भावना है कि हिन्दू-मुसल्मान शासकों के समय में क्रूरता, निर्दयता, नर-नाश और लूट-पाट का बड़ा ज़ोर था और जिस ढङ्ग से पश्चिमी देशों में शासन होता है वह ढँग भारतवासियों को ज्ञात ही न था। मतलब यह कि राज्यपरिचालन की प्रजासत्ताक या प्रतिनिधिसत्ताक प्रणाली से भारतवासी नितान्त अनभिज्ञ थे। स्मिथ साहब की इन सम्मतियों से उन लोगों को शायद परम प्रसन्नता हुई होगी जो भारत को हाल में दिये गये शासनाधिकार दिये जाने के बहुत विरोधी थे।

स्मिथ साहब ने ये जितनी बातें लिखी हैं मनमानी तो लिखी ही न होंगी। ये तो भारतीय इतिहास के चिरकाल-व्यापी अध्ययन का ही फल होंगी। अतएव हम यह नहीं कह सकते कि इसकी प्रेरणा उनके हृदय में किसी विशेष प्रकार की राजनीति ने उत्पन्न की है। क्योंकि सच्चे इतिहासवेत्ता कभी इस प्रकार की नीति के पेंच में नहीं आते। चाहे जो कुछ हो, भारत में भी यदि इस देश के निवासियों में से इतिहासज्ञता का गर्व रखनेवाले कुछ पण्डित हों तो उन्हें विन्सेंट स्मिथ साहब की बातों पर विचार करना चाहिए। और यदि साहब की बातों में कुछ कहने को जगह देख पड़े तो कह कर उन्हें अपनी इतिहासज्ञता सफल कर डालनी चाहिए। नहीं तो रामायण तो अब अलिफ़लैला का क़िस्सा हो ही चुकी।

साहब की मृत्यु से हमें दुःख है। यथासम्भव हम उनके चरित के प्रकाशन की चेष्टा करेंगे।

८—कुनैन।

दक्षिणी अमरीका में एक वृक्ष होता है। योरपवाले उसे सिंकोना कहते हैं। इसी वृक्ष की छाल से कुनैन तैयार की जाती है। मलेरिया अर्थात् फ़सली बुख़ार दूर करने के लिए डाक्टरी ओषधियों में इसके मुक़ाबले कोई दूसरी दवा नहीं।

जब कोलम्बस ने अमरीका का पता लगा लिया और योरपवाले वहाँ आने जाने लगे तब उन्हें इस सिंकोना के गुण का पता लगा। आश्चर्य्य की बात है कि सभ्य योरप ने इसे वहाँ के असभ्यों से सीखा! सन् १६४० में कौंटेस आव् सिंकोना दक्षिणी अमरीका गई थीं। वहाँ, उन्होंने, मूल-निवासी लाल इंडियनों को पानी में भिगो कर इस वृक्ष की छाल का प्रयोग मलेरिया से पीड़ित रोगी पर करते देखा। उन्होंने देखा कि उसके सेवन से लाभ भी बहुत होता है। तब वे उस वृक्ष की छाल और पौधे योरप ले गईं। इस तरह, सभ्य जगत् में, इस महौषधि की पैठ हुई। उसके वृक्ष को सभ्य जगत् ने उक्त कौंटेस के नाम से अभिहित किया। दक्षिणी अमरीका के पेरू और बोलिविया के एण्डीज़ पहाड़ पर इसके वृक्ष पहले पहल देखे गये थे। वहाँ अब इसकी खेती होती है। अधिकांश कुनैन वहीं से तैयार होकर अन्यान्य देशों को जाती है। यहाँ भारत के आसाम प्रान्त में भी यह वृक्ष बहुत होता है। उससे यहाँ भी कुनैन तैयार की जाती है। पर अमरीका की कुनैन, सुनते हैं, अधिक अच्छी होती है।

९—सङ्गीत-सम्मेलन में उपस्थित गुणि-जन।

अन्यान्य कई कलाओं के सदृश, इस देश ने सङ्गीत में भी बहुत उन्नति की थी। सुनते हैं, यहाँ के प्रसिद्ध गवैये जब दीपक अलापते थे तब दिये जल उठते थे और

जब मलार अलापते थे तब मेघ-मण्डल से आकाश छा जाता था। नाचने की कला ने भी बहुत उन्नति की थी। इस उन्नति के नमूने तो अब तक देखने को मिलते हैं। इस ललित-कला के एक उत्कृष्ट उपासक का सचित्र जीवन-चरित सरस्वती में निकल भी चुका है। जब से पियानो, हारमोनियम और ग्रामोफ़ोन आदि का प्रचार हुआ तब से नाद-विद्या का कुछ अधिक ह्रास हुआ है। तिस पर भी आठ आठ दस दस वर्ष के बालक भी, अपने कोमल कण्ठ और सशास्त्र गायन से हज़ारों श्रोताओं को अब भी चकित और स्तम्भित कर देते हैं। उस दिन बनारस में जो सङ्गीत-सम्मेलन हुआ था उसके उपलक्ष में आये हुए मनहर नामक एक दाक्षिणात्य बालक ने अपने गायन से बड़े बड़े सङ्गीतज्ञों को भी मोह लिया था। इस संख्या में हम कुछ चित्र ऐसे गुणियों के प्रकाशित करते हैं जिन्होंने अपनी विशेष विशेष ललित-कलाओं से यथेष्ट ख्याति पाई है। नम्बर (१) में दो पखावजियों और एक बीनकार का चित्र है। बीच के बीनकार, बाबू शिवेन्द्रनाथ वसु, वीणा बजाने में सिद्धहस्त हैं। पखावजी भी अपनी कला के पार-

भारतीय सङ्गीत-सम्मेलन, काशी।

(१)

लाला हरचरणलाल पखावजी टीकमगढ़। बीन बजाने में निपुण श्रीशिवेन्द्रनाथ वसु [रईस तथा आनरेरी मैजिस्ट्रेट] भारतीय सङ्गीत-सम्मेलन, काशी, के जनरल सेक्रेटरी। भगवान बाबू पखावजी।

भारतीय सङ्गीत सम्मेलन, काशी।

(२)

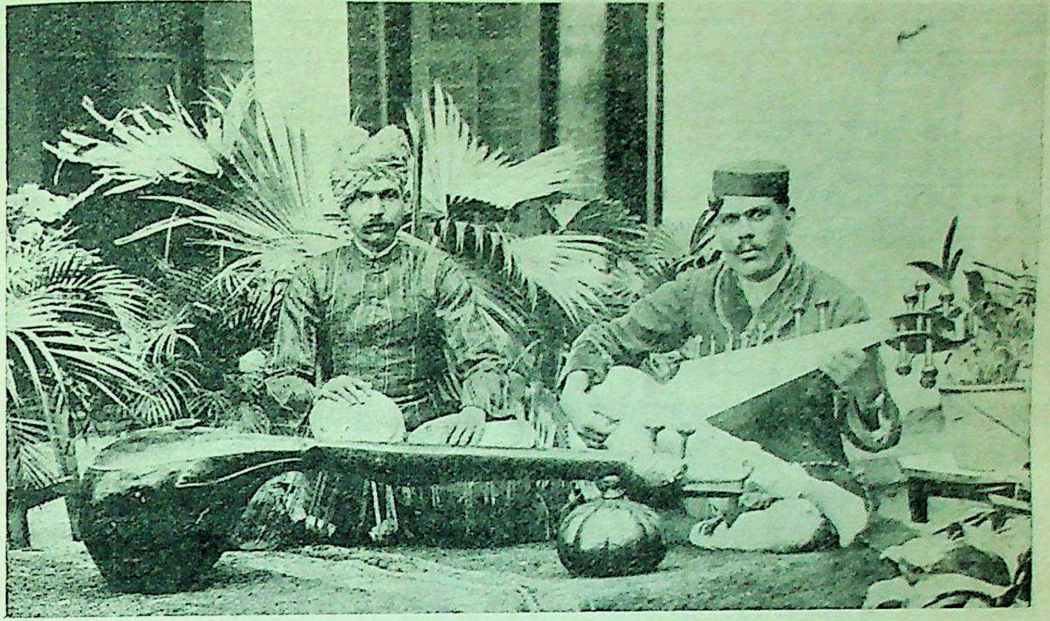

बीरू मिश्र, तबला बजानेवाले।　　　सख़ावतख़ाँ, सरोदिये।

भारतीय सङ्गीत-सम्मेलन, काशी।

(३)

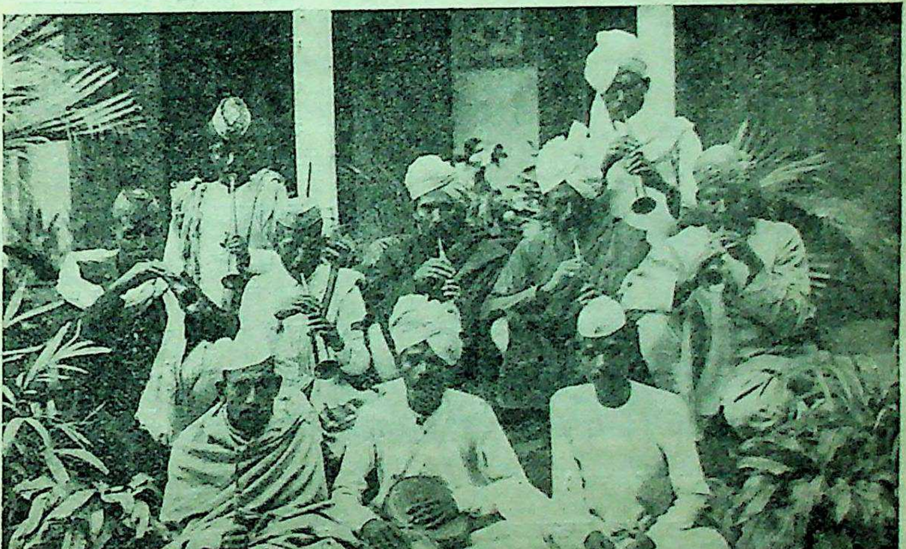

दूसरी क़तार के बीच में काशी के प्रसिद्ध शहनाईवाले।

दर्शक हैं। नम्बर (२) चित्र के सरोदिये और तबलिये महाशय को एक एक सोने का और तीन तीन चांदी के पदक मिले हैं। नम्बर (३) चित्र के शहनाईवाले ने भी स्वर्ण-पदक प्राप्त किया है।

१०—एक यज्ञस्तम्भ।

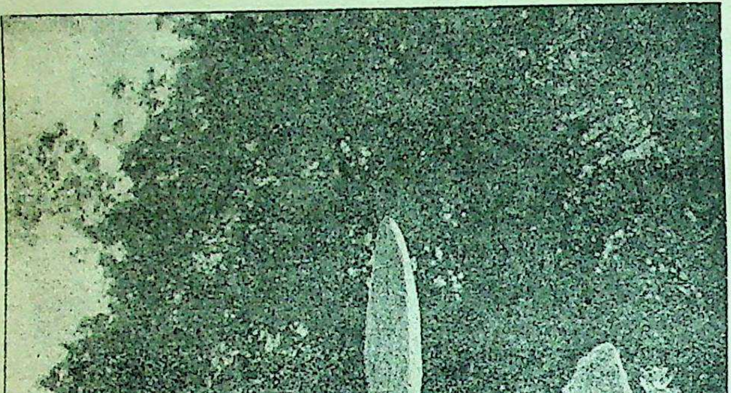

जनमेजय का यज्ञस्तम्भ।

इस देश में यज्ञ तो कहीं कहीं अब भी हो जाया करते हैं, पर पहले बहुत होते थे। पूर्वकाल में धनसम्पन्न धार्म्मिक भारतवासी यज्ञ करके अपना जन्म सफल करते और साथ ही परलोक भी खूब बनाते थे। साधारण आदमी छोटे छोटे यज्ञ करते थे, असाधारण आदमी बड़े बड़े। राजे-महराजे अश्वमेध यज्ञ करके अपने आधिपत्य और प्रभुत्व की पराकाष्ठा दिखाते थे। जहाँ वे यज्ञ करते थे वहाँ उस यज्ञ की यादगार बड़े बड़े स्तम्भ, यूपस्तम्भ, या यज्ञस्तम्भ गाड़ देते थे। वही देख कर पश्चाद्वर्तिनी पीढ़ी के लोग जान लेते थे कि यहाँ पर अमुक ने अमुक यज्ञ किया था। बड़े बड़े नरेश तो अपनी जीत की यादगार विजयस्तम्भ भी गाड़ते थे। ये यज्ञस्तम्भ और विजयस्तम्भ अब तक भी कहीं कहीं गड़े मिलते हैं। पौराणिक कथा है कि राजा परीक्षित सर्पदंश से मरे थे। इसका बदला लेने के लिए उनके पुत्र जनमेजय ने एक सर्प-सत्र किया। उन्होंने कहा, जिस सर्प के दंश से मेरे पिता की मृत्यु हुई है मैं उसके वंश का ही समूल नाश कर दूँगा। सुनते हैं, मन्त्रबल से, अनन्त सर्प खिँच आये। वे उस सर्प-सत्र या यज्ञ के अग्निकुण्ड में गिर गिर कर जल मरे। अन्त में निपटारा यह हुआ कि बिना छेड़े कोई सर्प किसी को न काटेगा। इस बात को जनमेजय ने मान लिया। फल यह हुआ कि सर्पों का समूल वंशनाश होने से बच गया। परीक्षित और जनमेजय उत्तरी भारत के राजा थे। किस स्थान पर पूर्वोक्त सर्पयाग हुआ था, मालूम नहीं। पर सुनते हैं, माइसोर की रियासत में एक जगह हिरिमगलूर या हरिमङ्गलम् है। वहाँ पर बरछे के आकार का एक ऊँचा स्तम्भ है। वह पत्थर का है। स्तम्भ के चारों ओर पत्थर की चहारदीवारी है। एक ओर लोहे की छड़ों का एक फाटक है; उसी से लोग भीतर प्रवेश करते हैं। वहाँवालों का विश्वास है कि जनमेजय ने वहीं यज्ञ किया था और वह स्तम्भ उसी सर्पयज्ञ की यादगार है। पास ही एक जलाशय है। उसका नाम है—सिद्ध-पुष्करिणी। साँप काटे हुए लोग वहाँ दूर दूर से आते हैं। पहले वे उस स्तम्भ की प्रदक्षिणा करते हैं। फिर पास के जलाशय में स्नान। इससे, सुनते

हैं, सर्प-विष का प्रभाव दूर हो जाता है और आदमी मरता नहीं।

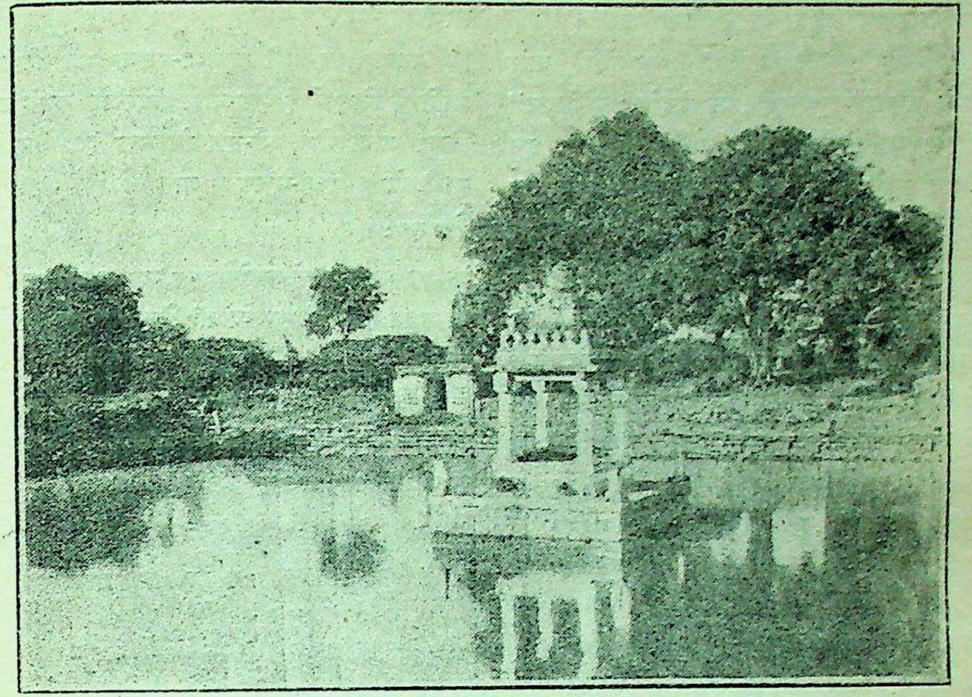

सिद्ध-पुष्करिणी।

उत्तरी भारत में किसी स्थान को यज्ञ के लिए न चुन कर जनमेजय ने सुदूर दक्षिणापथ के महीसुर प्रान्त को क्यों पसन्द किया? मलयगिरि उस प्रान्त के पास होने के कारण सर्पों की आहुति-प्राप्ति में वहाँ उन्होंने शायद विशेष सुभीता देखा। चन्दन की सुगन्धि के प्रेमी होने के कारण अधिकांश सर्प मलयाचल ही पर रहते हैं न।

११—"ऐङ्ग्लो-इण्डियन" और "यूरेशियन"।

ब्रिटिश जाति के जो लोग नौकरी के निमित्त अथवा व्यापार या और किसी व्यवसाय के कारण हिन्दुस्तान में बहुत समय तक रहते हैं उन्हें कुछ वर्ष पूर्व तक लोग (विशेष कर अँगरेज़ी-दाँ) "ऐङ्ग्लो-इण्डियन" कहते थे। इसके पश्चात् हिन्दुस्तान की सरकार ने यह नाम ("ऐङ्ग्लो-इण्डियन") उस जाति के लोगों को देना निश्चित किया जो योरोपियन पुरुष और देशी स्त्री के मिश्रित रक्त से उत्पन्न हुई है और जिसे पहले "यूरेशियन" कहते थे। इस नये नाम-करण पर अँगरेज़ लोग बहुत बिगड़े और विलियम आर्चर नामक एक लेखक ने अपनी पुस्तक "भारत और भविष्य" में इस विषय का घोर प्रतिवाद करके यह बताया कि इस नामान्तर से अर्थ में बड़ी गड़बड़ होगी।

आज-कल का यह नया नाम इस मिश्रित जाति के लिए नया नहीं है। सन् १८२६ ईसवी में सर जान मालकम ने अपने "राजनीतिक इतिहास" में इस शब्द का प्रयोग किया है। पुस्तक में इस जाति के सम्बन्ध की और और बातों के साथ यह भी लिखा है कि "यह 'अर्द्ध-जाति' Half caste अँगरेज़ जाति से मिलती जुलती है और 'ऐङ्ग्लो-इण्डियन' कहलाती है। यह बात सम्भव नहीं है कि ऐङ्ग्लो-इण्डियन लोग, सबके सब, हिन्दुओं अथवा मुसलमानों से हानि-कारक सम्बन्ध जोड़ लें।

देशी लोगों में इनके विषय में जो भाव हैं वे इनकी योरोपियन उत्पत्ति के कारण हैं। इन ऐङ्गलो-इण्डियन लोगों को ज़मींदारी ख़रीदने की आज्ञा देने के लिए जो प्रस्ताव हुआ था उसका बहुत विरोध किया गया"।

इन लोगों को "अर्द्ध-जाति" (अध-गोरा) नाम देना यथार्थ में अपमान-सूचक है ; पर निर्दोष "यूरेशियन" नाम स्वयं इस जाति को पसन्द नहीं। इसलिए, इन लोगों का मान रखने के लिए, एक लुप्तप्राय शब्द का पुनरुद्धार किया गया। तो भी इस शब्द का अर्थ-भ्रम शीघ्र ही मिटनेवाला नहीं है और सर्वसाधारण सरकारी नाम-करण का आदर सम्भवतः बहुत विलम्ब से करेंगे।

शायद आगामी मनुष्य-गणना की रिपोर्ट में इस जाति के लिए कोई ऐसा नाम निश्चित करने का विचार किया जाय जो अर्थ-भ्रम से मुक्त हो और स्वयं इस जाति को अपमान-सूचक न जान पड़े।

१२—शतायुर्वै पुरुषः।

किसी समय, हमारे देश में, अनेक मनुष्य कम से कम सौ वर्ष तक जीते थे। यहाँ तो मनुष्य की आयु १२५ वर्ष की मानी गई है। पर इस समय यह बात क़िस्से-कहानियों में रह गई है। अब सन्ध्या-वन्दन करनेवाले लोग ही साँझ-सबेरे इसका स्मरण-मात्र कर लेते हैं। जहाँ पेट की ज्वाला शान्त करते करते बेचारा भारतवासी स्वयं भस्मसात् हो जाता है, वहाँ स्वास्थ्य की चिन्ता के लिए उसे अवकाश कहाँ।

योरप में सौ, या इससे अधिक वर्ष की आयुवाले अनेक लोग मौजूद हैं। उसका हिसाब इस प्रकार है—

१.	सर्विया	में	प्रति	२२६०	मनुष्य	पीछे	१	अर्थात्	५७५	आदमी
२.	आयर्लैंड	में	,,	८१३१	,,	,,	१	,,	५७८	,,
३.	स्पेन	में	,,	४३०००	,,	,,	१	,,	...	...
४.	नारवे	में	,,	६६०००	,,	,,	१	,,	२३	,,
५.	ग्रेटब्रिटन	में	,,	१७७०००	,,	,,	१	,,	१८२	,,
६.	फ़्रांस	में	,,	१८०७५०	,,	,,	१	,,	२१३	,,
७.	स्वीडन	में	,,	२५००००	,,	,,	१	,,	२०	,,
८.	ज़र्मनी	में	,,	७०२०००	,,	,,	१	,,	७८	,,
९.	डेनमार्क	में	,,	१००००	,,	,,	१	,,	२	,,

१३—शिक्षा-दान की प्रणाली में परिवर्तन।

कलकत्ता-विश्वविद्यालय के काम-काज आदि की जाँच के लिए जो कमिशन नियत हुआ था उसकी बहुत बड़ी रिपोर्ट पर गवर्नमेंट आव् इण्डिया ने अपना वक्तव्य प्रकट कर दिया। कमिशन की प्रतिकूल आलोचनाओं और सिफ़ारिशों का सार यह है—

(१) हाई स्कूलों की निगरानी ठीक ठीक नहीं होती। मैट्रीकुलेशन की परीक्षा के लिए छात्र तैयार करने में इस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता कि देश कैसी शिक्षा माँगता है और कैसी शिक्षा पाये हुए युवकों को काम मिल सकता है।

(२) मैट्रीकुलेशन की पढ़ाई उथली होती है। इस दरजे को पास कर लेने पर छात्र कालेज में पढ़ने योग्य योग्यता नहीं प्राप्त कर सकते।

(३) ए० फ० क्लास की शिक्षा कालेजों में दी जानेवाली शिक्षा से कम है। उसे हाई स्कूलों में ही देना चाहिए।

(४) बहुत से भिन्न भिन्न कालेजों को विश्वविद्यालय के सूत्र से बाँधना दोषपूर्ण है। पर इसका इलाज अभी नहीं हो सकता। तथापि कलकत्ते में एक मध्यवर्ती शिक्षा-पीठ संस्थापित करना चाहिए और भिन्न भिन्न कालेजों की निगरानी का ठीक ठीक प्रबन्ध होना चाहिए—ऐसा कि सब कालेजों को अपनी आवश्यकता-पूर्त्ति के विषय में कहने सुनने का मौक़ा मिले।

कमिशन की सिफ़ारिशों के अनुसार, कुछ फेरफार के साथ, काम करने के लिए भारतीय गवर्नमेंट बहुत शीघ्र क़ानून बनानेवाली है। वह कमिशन की अधिकांश

बातों की क़ायल है। प्रान्तिक गवर्नमेंटों से उसने कह दिया है कि तुम भी अपने अपने प्रान्त में, अपनी अपनी आवश्यकताओं को देख कर, कमिशन की राय के अनुसार संशोधन और परिवर्तन कर दो।

सो मैट्रिकुलेशन की पढ़ाई अब और ऊँची हो जाने में सन्देह नहीं। ए० फ० दरजा कालेजों से निकल कर या तो स्कूलों में जुड़ेगा या स्कूलों और कालेजों के बीच में लटकता रहेगा। १६ वर्ष की उम्र में यदि कोई मैट्रीकुलेशन पास करे, १८ वर्ष की उम्र में ए० फ० और २१ वर्ष की उम्र में बी० ए० तो वह बेचारा अब यहीं का होगा। बी० ए० बन कर वह आई० सी० एस० इत्यादि बड़ी बड़ी परीक्षाओं के लिए शायद ही विलायत जा सकेगा। १८ या १९ वर्ष की उम्र में भी कालेज छोड़ने पर, वह शायद ही ऊँचे ऊँचे पदों की प्राप्ति की अभिलाषा से, विलायत-यात्रा कर सके। क्योंकि उसके लिए उम्र की क़ैद है। बड़ी उम्र के लोग उसके लिए पढ़ने या परीक्षा देने नहीं पाते। देखिए, पक्की शिक्षा देने के इस पचड़े से नजात मिलती है या नहीं।

१४—गिन्नी के गिरे दिन।

भाग्य परिवर्तनशील है। सब दिन एक से नहीं जाते। उतार-चढ़ाव—वृद्धि और हास—सभी चीज़ों के पीछे लगा हुआ है। यह नियम विधि-निर्दिष्ट सा है। एक दिन था जब कलकत्ते के धनिक व्यापारी—और अन्यत्र के भी—गिन्नियाँ बटोरने के लिए पागल हो रहे थे। उनके पीछे लाखों के वारे न्यारे हो गये। गिन्नियाँ अलभ्य सी हो गईं। एक एक गिन्नी बीस बीस रुपये में बिकी। फिर भी, और लावो, और लावो, की आवाज़ आती ही रही। सोना महँगा हो जाने से वे गलाई भी जाने लगीं। तब सरकार ने गिन्नी की रक्षा की। उसका बेंचना बन्द किया, गलाना बन्द किया, एक जगह से दूसरी जगह भेजना बन्द किया, माँगने पर खुद देना भी बन्द कर दिया। क़दर हो तो ऐसी! उधर चाँदी-सोना बाहर से मँगाना भी बन्द हुआ। मँगावे तो सरकार, और कोई नहीं। नियम तोड़नेवालों के लिए दण्ड तक निर्दिष्ट हुए। मामला दिन पर दिन पेचीदा होता गया। रुपये की कमी हो गई। सोना-चाँदी महँगी हो गई। एक्सचेंज बढ़ा। व्यापार में रुकावटें आईं। तङ्ग आकर सरकार ने एक कमिशन नियत किया। उसकी रिपोर्ट निकली। उस पर सेक्रेटरी आव् स्टेट का मन्तव्य भी, २ फ़रवरी २० के गैज़ट आव् इंडिया (एक्सट्रार्डिनरी) में, प्रकाशित हो गया। कमिशन ने सिफ़ारिश की कि (१) रुपया जैसा है वैसा ही रहे—न चाँदी में मेल किया जाय, न वज़न में कमी। (२) एक रुपये की क़ीमत ११·३००१६ ग्रेन सोने की क़ीमत के बराबर मानी जाय अर्थात् सावरेन (गिन्नी) के एक दशांश सोने के बराबर। (३) जो सावरेन आज-कल १५) का माना जाता है वह १०) की क़ीमत के बराबर माना जाय (४) सोने और चाँदी के बाहर जाने और बाहर से आने की रुकावटें बन्द कर दी जायँ और जो लोग सोना देकर बम्बई की टकसाल में सावरेन ढलाना चाहें उन्हें ढला लेने की इजाज़त हो जाय।

इस पर सेक्रेटरी आव् स्टेट ने फ़ैसला किया कि (१) बाहर से सोना मँगाने की रुकावटें अभी हाल में जारी रहें—जिन्हें लाइसंस दिया जाय वही मँगा सकें। (२) सरकार समय समय पर जो सोना बेचती है बेचती जाय और (३) कुछ समय तक गिन्नी १५) ही रुपये की चले।

इन कारणों से गवर्नमेंट ने अब नये नियम जारी किये हैं। वे इस तरह—जो विलायती सावरेन इस देश की गवर्नमेंट, गोल्ड इम्पोर्ट एक्ट के अनुसार, ले लेगी उसके दाम १०) फ़ी सावरेन देगी। इसी तरह और तरह का सोना जो वह ले लेगी उसकी क़ीमत फ़ी ११·३००१६ ग्रेन के १) के हिसाब से देगी। अब वह सावरेन के बदले रुपये अपने कलकत्ते, मदरास और बम्बई के अलग रक्खे हुए (Reserve) ख़ज़ाने से न देगी। कलकत्ते और बम्बई की टकसालों में अब वह सावरेन लेगी भी नहीं। चाँदी और चाँदी के सिक्के मँगाना, जो अब तक बन्द था, खुल गया।

बेचारी गिन्नी, तेरी यह गति! सो भी इतना जल्द! तिजोरियों से अब तू शीघ्र ही निकाल बाहर की जायगी। नहीं तो १५) के १०) ही हो जाने का डर है।

१५—आई० सी० एस० के लिए श्रीयुत हरिश्चन्द्र एम० एस-सी० का चुना जाना।

इलाहाबाद में मुंशी गुलज़ारीलाल साहब हाईकोर्ट के वकील हैं। आपके सुयोग्य पुत्ररत्न, श्रीयुत हरिश्चन्द्र, एम० एस-सी०, को इस प्रान्त की गवर्नमेंट ने आई० सी० एस० के पद-प्रदान के लिए चुना है। शीघ्र ही आप विलायत जायँगे और वहाँ नियमानुसार अध्ययन करके, परीक्षा में पास होने पर, स्वदेश को लौटेंगे। तब आप किसी उस पद पर प्रतिष्ठित होंगे जिससे उन्नति पाकर सरकारी कर्म्मचारी कलेक्टर, कमिश्नर और जज आदि होते हैं। हरिश्चन्द्रजी इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के नामी छात्र हैं। प्रायः प्रत्येक परीक्षा में आपने सर्वोच्च स्थान पाया है। सरकार ने छात्र-वृत्ति देकर आपको विद्याध्ययन के लिए विलायत भेजने का पहले ही निश्चय किया था। पर किसी कारण से आप विलायत नहीं जासके। विश्वविद्यालय ने भी आपको प्रान्तिक मुलाज़िमत के लिए चुना था। इ
बातों से सिद्ध है कि विश्वविद्यालय और गवर्नमेंट दोनों
आपकी योग्यता के क़ायल हैं। सम्भव है, इस नोट
निकलने के पहले ही आप विलायत के लिए प्रस्था
कर जायँ।

श्रीयुत हरिश्चन्द्र, एम० एस-सी०।

पुस्तक-परिचय।

१—शर्म्मा जी की पुस्तकें—पण्डित गोकुलच
शर्म्मा ने अलीगढ़ से दो पुस्तकें भेजने की कृपा की है
दोनों आपही की रचना हैं। पहली का नाम है—**गान्धी
गौरव**—इसका आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १६०, छपा
और काग़ज़ उत्तम, और मूल्य १२ आने है। यह
सर्गों का काव्य है। श्रीयुत मोहनदास कर्म्मचन्द गां
के गौरव के वर्णन से गौरवान्वित है। इस पुण्य-श्लो
महात्मा के देव-दुर्लभ चरित का मर्म्मस्पर्शी और सा
वर्णन करके कवि गोकुलचन्द्र ने अपनी वाणी को विम
करने की अच्छी चेष्टा की है। इस काव्य का कोई को
स्थल अतिशय ओजस्वी है। बोलचाल की भाषा में
छन्द आज-कल प्रयोग में अधिक लाया जाता है उसी
उपयोग इस पुस्तक में किया गया है। यत्र तत्र क्लिष्ट
का संश्लेष इसमें अवश्य है, पर उसका दूरीकर
पुस्तकान्त में एक शब्द-कोश जोड़ कर कर दिया गया है
आरम्भ में सपत्नीक गांधी जी का एक रङ्गीन चित्र
है। काव्य सामयिक है; शब्द-चित्र सुन्दर है; पढ़
सुनने और गाने लायक़ है। दूसरी पुस्तक का नाम है—
जयद्रथवध-नाटक। इसका भी आकार मँझोला है
छपाई और काग़ज़ साधारण, पृष्ठ-संख्या १३६ औ
मूल्य १० आने है। परशुराम नारायण पाटणकर, एम
ए०, नाम के एक महाराष्ट्र सज्जन हैं। आप संस्कृत
बड़े विद्वान् और काव्यमर्म्म के उत्कृष्ट ज्ञाता हैं। जिन्हों
आपके सटीक शाकुन्तल-नाटक को देखा है वे सहज ही
समझ जायँगे कि काव्यमर्म्मज्ञता में आप कितने ब
चढ़े हैं। किसी समय आप सेंट्रल-हिन्दू-कालेज में संस्कृ
के प्रधानाध्यापक थे। आपका बनाया हुआ एक नाट
"वीरधर्म्मदर्पण" नाम का है। उसकी भाषा संस्कृत है
महाभारत की जयद्रथ-वध-सम्बन्धिनी कथा के आधा

पर उसकी रचना हुई है। बड़ा अच्छा नाटक है। वीर और करुण-रस का अच्छा परिपाक हुआ है। पात्रों के चरित-निर्वाह की भी भरसक चेष्टा की गई है। प्रस्तुत नाटक उसीका हिन्दी-रूपान्तर है। मूल के प्रायः समस्त गुण इसमें आगये हैं। भाषा साधु और कविता सरस है। इसका नान्दी-निवेदन तो बहुत ही हृदयद्रावक है। उसका अन्तिमांश सुन लीजिए—

किया था जिसमें बालविनोद—निहारो उस भारत की गोद
लड़ें भाई से भाई आज—हुआ सर्वत्र फूट का राज
बढ़ा दो शीघ्र मेल की बेल—दिखा दो अपने अद्भुत खेल
नाथ! पहना दो फिर जयमाल—तुम्हीं हो दुष्टों के हित काल

अनुवादक ने, इसमें, अपनी शालीनता के उल्लेख में अपूर्व कवि-कौशल दिखाया है—

सत्कवि-सूर्य अस्त होने पर हो जाता जब निशा-निवास
दोषाकर कवि चन्द्रतुल्य तब करता है नव कला-विलास

यह नाटक खेला भी जा चुका है। इसकी भूमिका से सूचित है कि दर्शकों ने इसे बहुत पसन्द किया था। इसमें आक्षेप-योग्य शृङ्गार-रस नहीं। इस कारण इसे स्कूलों के छात्र भी खेल सकते हैं। इसके आरम्भ में श्रीयुत विश्वनाथ हरिहर शास्त्री द्रविड़, एम० ए०, का एक चित्र है। क्योंकि वे अनुवादक के परम श्रद्धेय हैं। दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—मैनेजर, भारत-बुक-डिपो, अलीगढ़।

⁂

२—प्रभा—इस नाम की एक बढ़िया मासिक पत्रिका कानपुर के प्रताप-प्रेस से निकलने लगी है। इसके प्रधान सम्पादक, प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र "प्रताप" के ही सम्पादक, श्रीयुत गणेशशङ्कर विद्यार्थी हैं। यद्यपि अनेक जन उलटा आपसे विद्याप्राप्ति के अर्थी हैं, तथापि छात्रावस्था से लेकर अब तक आप "विद्यार्थी" ही बने हुए हैं। विद्या-वदान्य होकर भी जो विद्यार्थी ही बना रहता है वही मनुष्य संसार में कुछ कर भी दिखाता है। आपकी इस नई पत्रिका के २ अङ्क अब तक निकले हैं—एक जनवरी का, दूसरा फ़रवरी का। प्रत्येक अङ्क में बड़े आकार के, दो दो कालमोंवाले, कोई ६४ पृष्ठ हैं। काग़ज़ मोटा लगाया गया है। चित्र भी हैं। फ़रवरी के अङ्क में उनकी संख्या २० है। वार्षिक मूल्य ४॥) है। इसके लेखकों को पुरस्कार भी दिया जाता है। काव्य, साहित्य, समाज, राजनीति, व्यापार-वाणिज्य और व्यवसाय आदि अनेक विषयों के लेख इसमें अब तक निकले हैं और शायद इसी तरह आगे भी निकलें। निकले हुए लेखों में इसके राजनैतिक और आर्थिक या साम्पत्तिक लेख बड़े महत्त्व के हैं। उदाहरणार्थ—फ़रवरी में राष्ट्रीय ऋण की वृद्धि का इतिहास, भारतीय मुद्रा-प्रणाली, अंडी और उसका तेल, हालेंड में स्वतन्त्रता का इतिहास आदि। कवितायें भी इसमें रहती हैं। अन्त में सम्पादकीय टिप्पणियों में सम्पादकों के सुन्दर विचार और सामयिक समालोचनायें पढ़ने को मिलती हैं। ऐसी अच्छी पत्रिका का प्रकाशित होना हिन्दी-भाषा के सौभाग्य का सूचक है। लक्षणों से जान पड़ता है कि "प्रताप" के प्रताप के साथ ही साथ "प्रभा" की प्रभा भी दिन पर दिन बढ़ती ही जायगी। एवमस्तु।

⁂

३—श्रीरामरससुधा (दो खण्डों में)—आकार मँझोले से कुछ बड़ा, पृष्ठ-संख्या २२२+४३२। इस पुस्तक के रचयिता श्रीठाकुर बद्रीसिंह चौहान हैं। प्रत्येक खण्ड का मूल्य १॥) है। दोनों खण्ड सजिल्द हैं। जिल्द काग़ज़ की है। इस पुस्तक की यह दूसरी आवृत्ति है। राधागञ्ज बाज़ार, पोष्ट नरघाट, ज़िला मेदिनीपुर के पते पर रचयिता से मिल सकती है। इसे हम अनोखी वस्तु कह सकते हैं, क्योंकि लेखक ने गोस्वामीजी की चौपाइयों के गुप्त अर्थ खोले हैं और उनको खोलने की क्षमता रामचन्द्रजी ने स्वयं ही उन्हें प्रदान की है। स्थानाभाव से यहाँ हम गुप्त अर्थों का नमूना नहीं दे सकते। पुस्तक का क्रम रचयिता ने अपनी इच्छा के अनुसार रक्खा है। अपने कथा-क्रम में रामचरितमानस की चौपाइयों का सङ्ग्रह करके लेखक ने अपने भाष्य या गुप्त अर्थ की रचना की है। जान पड़ता है कि लेखक ने लीला करनेवालों के सुभीते का ख़याल करके इसकी रचना की है। पुस्तक में कहीं विस्तृत भाष्य अपना रङ्ग दिखाता है तो कहीं 'बद्रि' कवि के कवित्त, सवैये, दादरे आदि अपनी अनोखी छटा दिखाते हैं। विचित्र पुस्तक है। भक्ति के उद्रेक में भक्त क्या नहीं लिख डालते और क्या नहीं कह जाते? विधि-निषेध के वे क़ायल नहीं होते।

४—उपदेश-रत्नमाला—आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या २४; लेखक, पण्डित रामचरित उपाध्याय। महात्मा गांधी के दिव्योपदेशरूपी रत्नों को अपने स्वाभाविक सुन्दर पद्यों में गूँथ कर उपाध्यायजी ने यह माला तैयार की है। माला में साधारणतया सुमेरु सहित १०९ दाने होते हैं। किन्तु उपाध्यायजी ने अपनी इस माला में ११३ दाने पिरोये हैं। इस माला के पद्यों में से अनेक पद्य कवित्वपूर्ण, सानुप्रास और सरस हैं। अस्पतालों, डाक्टरों, बारिस्टरों, वकीलों तथा रेल, तार, मोटर आदि के प्रतिकूल आपने जो कुछ कहा है वह कहीं कहीं खटकता है। गहमर, ग़ाज़ीपुर की राम एण्ड कम्पनी से ≡)॥ में यह माला मिलती है।

⁂

५—सुखसागर भजनावली—सम्पादक श्रीयुत शीतलप्रसाद ब्रह्मचारी, सम्पादक जैनमित्र; आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या १५२। मैनेजर, दिगम्बर जैन-पुस्तकालय, चन्दाबाड़ी, सूरत से ॥=) में प्राप्य। इसके सम्पादक जैन साधु हैं। उन्होंने अपने धर्म के सिद्धान्त-गर्भित भावों को इस पुस्तक में संग्रहीत भजनों में व्यक्त करने की चेष्टा की है। आपने लिखा है—"मन में आत्मरस के **झुकाव** से कुछ उन्मत्तता हो जाती थी तब मुख से गानरूप यह वचन रचना निकल जाती थी। पिङ्गल व छन्दशास्त्र से बिलकुल अजानकारी होने के कारण यह भजनावली सम्भव है बहुत से शास्त्रीय दोषों से भरपुर हो।" सो सम्पादकजी की यह सम्भावना निस्सार नहीं। भजन पुराने ढर्रे के हैं। भाषा उनकी नई-पुरानी बोली की खिचड़ी है। पुस्तक में छापे की अशुद्धियों की भी कमी नहीं।

⁂

६—विज्ञान-रामायण, पहला भाग। मूल विज्ञान-रामायण उर्दू में है। उसी के बालकाण्ड का यह हिन्दी-अनुवाद है। घटरामायण, ज्ञानरामायण आदि कई रामायणों के रचयिता, राधास्वामी-पन्थ के अनुयायी श्रीयुत शिवव्रतलाल वर्म्मन, एम० ए०, लाहौर-निवासी ने मूल पुस्तक लिखी है। प्रस्तुत खण्ड का हिन्दी-अनुवाद अखौरी प्रभुनारायण मुख़तार ने किया है। मूल्य आठ आने है, और शायद अनुवादक महाशय को राँची के पते पर लिखने से मिल सकती है।

पुस्तक का कथा-भाग रामचरितमानस से लिया ग है। गोस्वामी जी के भावों को लेखक ने सरस भाषा केवल विस्तृत रूप दे दिया है। बीच बीच में अपने भावों पुट भी देने की कृपा की है जो कहीं कहीं अरुचिकर मालू पड़ती है। इस भाग में मूल पुस्तक के चौंतीसवें प्रकरण लेकर इक्कावनवें प्रकरण तक का अनुवाद है। इनमें चा आरम्भिक प्रकरण हैं। ये लेखक की ख़ास उपज हैं। परन्तु उन गूढ़ तत्त्वों को, लेखक की तरह, पहुँचे हुए लोग ही समझ सकते हैं। उन्हें पढ़ कर हम तो इतना ही समझ सके रामायण की कथा ऐतिहासिक नहीं। वह तो एक प्रका का वैज्ञानिक रूपक-मात्र है। इस पर कुछ निवेदन कर हमारे लिए अनधिकार-चर्चा है। पुस्तक में यदि उ मुहाविरों के स्थान में हिन्दी मुहाविरों को स्थान दि जाता तो पुस्तक की भाषा अच्छी हो जाती।

⁂

७—मैकमिलन कम्पनी की पाँच पुस्तकें,—पू देशीय कथायें और कहानियाँ—

१. बैताल-पचीसी की १५ कहानियाँ	पृष्ठ-संख्या	१२४	मूल्य	।≡)
२. राजा और लाल	,,	१११	,,	।-)
३. महाभारत की कथायें	,,	९५	,,	।-)
४. अनवारसुहेली	,,	४६	,,	≡)
५. हितोपदेश	,,	३८	,,	=)

ये पुस्तकें (नम्बर १ को छोड़ कर) जे० सी० नेस्फील्ड साहब, एम० ए० द्वारा अँगरेज़ी में लिखित पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद हैं। बच्चों के लिए हैं। इनकी भाषा है तो सरल परन्तु बहुत अशुद्ध है। हिन्दी के मुहाविरों का ज़रा भी ध्यान नहीं रक्खा गया। कहानियाँ मनोरञ्जक हैं। परन्तु भाषा की दुर्दशा देख कर पढ़ने को जी नहीं चाहता। विलक्षणता तो यह कि ये कहानियाँ लिखी अँगरेज़ी में गई हैं, अनुवाद उनका हिन्दी में किया गया है। किसके लिए? भारतीय बच्चों के लिए! जैसे कोई अच्छी हिन्दी जानने और लिख सकनेवाला भारतीय लेखक मैकमिलन कम्पनी को सर्वथा अप्राप्य हो!

⁂

८—स्वामी विवेकानन्द, भाग पाँचमो—इसकी भाषा गुजराती, आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ३५०

ऊपर, जिल्द बँधी हुई और मूल्य १ रुपया है। मिलने का पता—सस्तुं साहित्यवर्धक कार्य्यालय, अहमदाबाद। पुस्तक अनुवाद-रूप है। श्रीयुत नर्म्मदाशङ्कर पण्ड्या और नटवरलाल शाह ने अनुवाद किया है। स्वामी विवेकानन्द के कई लेखों और निबन्धों आदि के अनुवाद इसमें हैं। उनमें से आत्मा का अमरत्व, पुनर्जन्म और कर्म्मयोग से सम्बन्ध रखनेवाले प्रबन्ध बड़े महत्त्व के हैं। इस कार्य्यालय की और पुस्तकों के सदृश यह पुस्तक भी बहुत उपादेय है।

※

९—हृदय-मन्थन—इसकी भाषा गुजराती, आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या ७०, छपाई और काग़ज़ अच्छा, जिल्द बँधी हुई, मूल्य १२ आने है। इसके रचयिता कल्याणजी विट्ठलभाई मेहता हैं। मिलने का पता—गुजरात-स्वदेशी-स्टोर्स, गिरगाम, बम्बई। पुस्तक पद्यमय है। छोटी छोटी ३९ कविताओं का संग्रह इसमें है। सभी कवितायें सरस और भावपूर्ण जान पड़ती हैं। विषय उनका विशेष कर देशभक्ति और लोकसेवा है। गाँधीजी के सत्याग्रह के तत्त्वों पर कवि ने अपनी लेखनी का ख़ूब सञ्चालन किया है। यही इस पुस्तक की विशेषता है।

※

१०—हिन्दी-मनोरञ्जन—यह एक नया मासिक पत्र है। इसी जनवरी से निकलने लगा है। प्रकाशन-स्थान कानपुर है। आकार छोटा है। छपाई अच्छी है। प्रति संख्या में कोई ६४ पृष्ठ रहते हैं। मूल्य २॥) वार्षिक है। बीसवीं सदी पुस्तक-माला के मैनेजर, बङ्गाली मुहाल, कानपुर को लिखने से मिलता है। इसमें कवितायें, कहानियाँ, समालोचनायें, हास्य-विनोद, सम्पादकीय विचार आदि प्रकाशित होते हैं। इसके गत दो नम्बरों में प्रकाशित कहानियाँ मनोरञ्जक तो हैं हीं, किसी हद तक शिक्षादायक भी हैं। बे सिर पैर के उपन्यास और क़िस्से पढ़ने की अपेक्षा इस मासिक पुस्तक की जैसी कहानियाँ पढ़ना अच्छा, क्योंकि इनमें सामाजिक बातें भी रहती हैं जिनके चित्रण से समाज के भले-बुरे दृश्य देखने को मिलते हैं। यह मनोरञ्जन अधिकांश आख्यायिकायें ही प्रकाशित करने के लिए निकाला गया है। इसमें एक विशेषता और भी है। वह इसका हास्य-विनोद है। इसके लेखक किसी का मुलाहज़ा करना नहीं जानते। मौक़ा मिलते ही आप विनोद के छींटे उड़ा देते हैं। आपने अपनी इस मासिक पुस्तक के पहले ही अङ्क में एक बूढ़े साहित्य-प्रेमी की ख़बर ले डाली है। अतएव आपके हास्य-विनोद की लावण्यलहरी से जवान और बूढ़े, बुज़ुर्ग और कमसिन, लार्ड्स और कामन्स सभी को सावधान रहना चाहिए।

※

११—गल्प-मन्दिर—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १८०, मूल्य ॥।=) आने। लेखक श्रीयुत विश्वम्भरनाथ शर्म्मा कौशिक; प्रकाशक, बीसवीं सदी पुस्तक-माला, कानपुर से प्राप्य। इसमें कुल ग्यारह कहानियों का सङ्ग्रह है। एक को छोड़ कर शेष कहानियाँ मासिक-पत्रों में निकल चुकी हैं। कहानियाँ मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद हैं। भाषा सरल है। पुस्तक पढ़ने लायक़ है। छपाई सुन्दर और साफ़ सुथरी है।

※

१२—समुद्बोधिनी—लेखक पण्डित रामसहाय पटसारिया (सेवा-समिति, कोंच, यू० पी०, के अध्यक्ष), प्रकाशक श्रीनागरी-निचय, कोंच, जालौन, यू० पी०; मूल्य आठ आने, पृष्ठ-संख्या ५२। टाइप बड़ा, काग़ज़ चिकना, छपाई साधारण है। इस पुस्तक के प्रकाशक ने अपने वक्तव्य में लिखा है,—"आप अपने सदयता और सहृदयता से युक्त चित्त को इस छोटी सी पुस्तक की भाषा आदि की अशुद्धियों में न अटका कर लेखक के हृदय-गत उच्च-भाव के देखने में लगाइए"। ठीक। तो हम इस बखेड़े में नहीं पड़ते। पड़ने से पार भी न पाते। लेखक के भाव सचमुच ही अच्छे हैं। देशोद्धार की इच्छा रखनेवालों के भाव कभी बुरे हो भी नहीं सकते। पुस्तक पद्य में है।

※

नीचे लिखी हुई पुस्तकें भी मिल गई हैं। भेजनेवाले सज्जनों को धन्यवाद—

(१) पद्य-पारिजात—लेखक, पण्डित भगवानदीन पाठक
(२) माता का हृदय—लेखक, "एक हृदय"
(३) गान्धर्व्व-महाविद्यालय की डायरी, १९२० ईसवी की
(४) काशी के थिआसफ़िकल नेशनल स्कूल के बाल-सैनिक संघ (Boy Scouts) का व्यवस्थापत्र।

भीषण वज्रपात।

२५ फ़रवरी बुधवार के सवेरे, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, के अधिपति, सरस्वती के सञ्चालक, बाबू चिन्तामणि घोष पर, वृद्धावस्था में, सहसा भीषण वज्रपात हो गया। जिस बात की कुछ भी सम्भावना न थी वही, आँखों के आगे, घटित हो गई! जिनको सारा कारबार सौंप कर बाबू साहब संसारी झगड़ों से छुट्टी लेना चाहते थे वे बाबू हरिपद घोष, केवल २६ वर्ष के वय में, अपने पिता, पत्नी, भाइयों और अन्य कुटुम्बियों को अथाह शोक-सागर में निमग्न करके उस परम धाम को चले गये—"यद्गत्वा न निवर्तन्ते"। सब लोग हाय हाय करते रह गये। किसी की नहीं चली। चली उसी की जिसके वार का निवारण नहीं हो सकता।

हरिपद बाबू ने अधिकांश शिक्षा घर पर ही प्राप्त की थी। पर जो कुछ उन्होंने सीखा खूब सीखा। और सबसे अधिक सीखा प्रेस का हर तरह का काम। इतने बड़े प्रेस के महज़ मामूली काम से लेकर बड़े से बड़े काम को वे अपने हाथों कर लेते थे। श्रीमान् पिता के पुत्र होने पर भी, छोटे से छोटा काम करने में भी उन्हें ज़रा भी झिझक न थी। वे तो उलटा इसमें अपना गौरव समझते थे और ठीक समझते थे। आवश्यकता पड़ने पर वे दफ़्तर में भी सब तरह का काम सँभाल लेते थे। जो काम करते थे, जी लगा कर करते थे। काम के आगे वे भूख-प्यास तक भूल जाते थे।

स्वभाव उनका बड़ा ही मिलनसार था। हृदय अ सरल था। किसी पर कारणवशात् अप्रसन्न हो जाते उनकी वह अप्रसन्नता देर तक न ठहरती। वे बड़े ही द थे। आप हिन्दी भी अच्छी जानते थे। लिपि आपकी सुन्दर थी। कभी कभी वे हिन्दी ही में पत्र लिखते थे।

जिस प्रेम से वे इस नोट के लेखक—सरस्वती सेवक की परिचर्य्या करते थे उसके स्मरण-मात्र से हृ द्विधा विभक्त होता है। इस दुर्घटना ने हमारी ही त न मालूम और कितने जनों को शोकाकुल किया होगा हरे! "किमिदमीदृगधिक्रियते त्वया?"

इधर दो महीने से बाबू साहब का सारा परिवार वेरी नामक रोग से आक्रान्त था। देशी-विदेशी सभी प्र की चिकित्सा, विख्यात चिकित्सकों से, कराई गई। कुछ फल न हुआ। सारी आशायें निर्मूल हो गईं। सप्ताह पूर्व हरिपद बाबू की माता को, और एक ही स बाद उनसे छोटी बहन को भी, यह रोग इस लोक से ले गया। "मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्"—यह सच है पर अकाल ही में और एक नहीं, तीन तीन! काल इस कुटिलता और निष्ठुरता को धिक्कार!

इस संख्या के आरम्भ में आपका चित्र प्रकाशित कि जाता है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press.Allahabad.

SARASVATI—Reg. No. A248.

भाग २१, खण्ड १] मार्च, १९२० [संख्या ३, पूर्ण संख्या २४३

सरस्वती

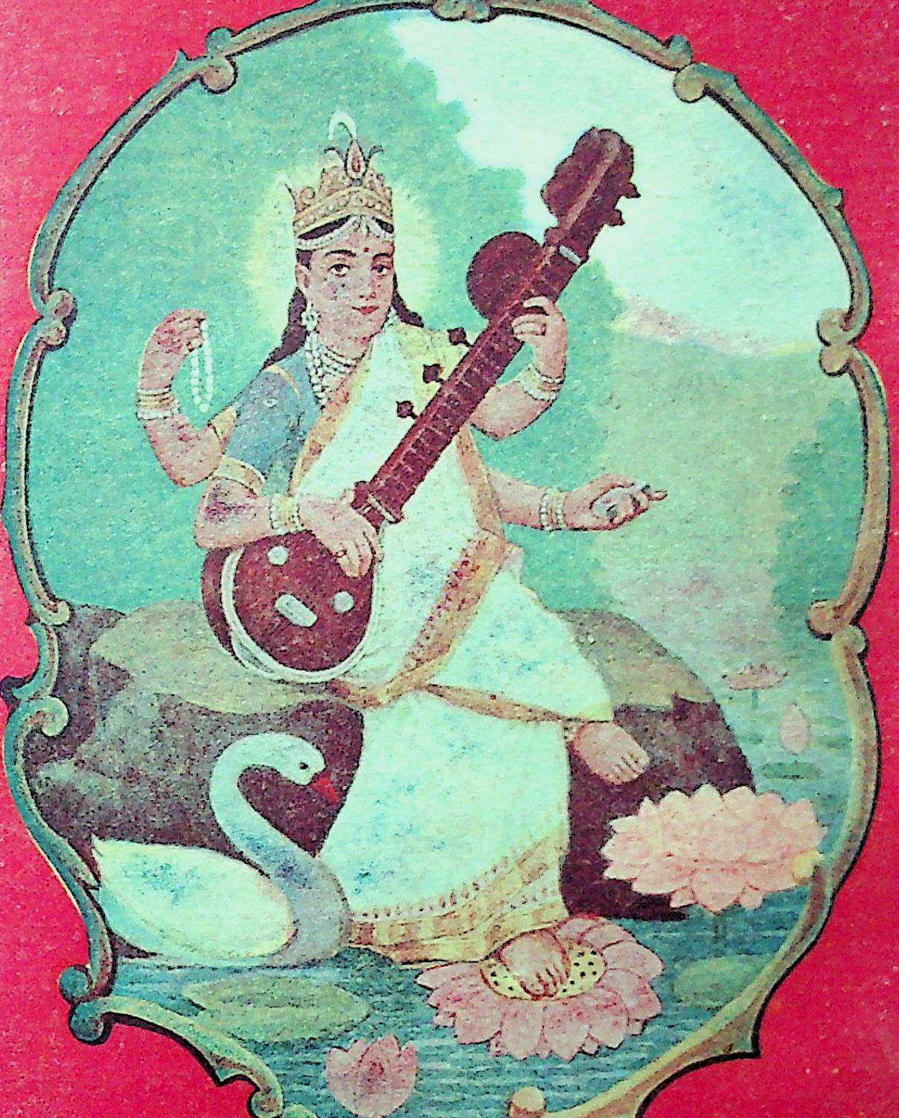

वार्षिक मूल्य ५)] सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।।)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित ।

लेख-सूची ।

पृष्ठ
(१) अभिलाषा (कविता)—[लेखक, बाबू मणिराम गुप्त १२७
(२) डाक्टर एल० पी० टैसीटोरी, एम० ए०, पी-एच० डी० ... ... १२८
(३) हवाई-द्वीप की सैर—[लेखक, एक यात्री १२६
(४) वन-वैभव [२] (कविता)—[लेखक, बाबू मैथिलीशरण गुप्त १३०
(५) कैसर का वर्तमान जीवन—[लेखक, श्रीयुत युगलसिंह, एम० ए०, एल-एल० बी० १४३
(६) सुख और दुःख (कविता)—[लेखक, "सनेही" १४५
(७) योरप का महायुद्ध और हिन्दुस्तान का सराफ़ा [२]—[लेखक, श्रीयुत कस्तूरमल बांठिया, बी० कामर्स... ... १४६
(८) मदरासी भाइयों से गाँधीजी की अपील १५४
(९) विवाह (कविता)—[लेखक, बाबू सियारामशरण गुप्त १५७
(१०) खेतों का सङ्गठन और एकीकरण—[लेखक, पण्डित चम्पाराम मिश्र, बी० ए० १५८
(११) जी की कचट (कविता)—[लेखक, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय ... १६१
(१२) ज्ञान का प्रथमाङ्कुर—[लेखक, पण्डित गोपाल दामोदर तामसकर, एम० ए० ... १६२
(१३) उत्कण्ठा (कविता)—[लेखक, पण्डित रामचरित उपाध्याय १६५
(१४) विधवा—[लेखक, पण्डित विश्वम्भरनाथ शर्म्मा कौशिक १६५
(१५) रहस्य (कविता)—[लेखक, श्रीयुत १७०
(१६) अज्ञात पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी,
(१७) सूखे फूल बी० ए० ... ... १७१
(१८) विविध विषय १७१
(१९) पुस्तक-परिचय १७६
(२०) चित्र-परिचय १८२

— —

चित्र-सूची ।

(१) व्रजाङ्गना (रङ्गीन) ।
(२) डाक्टर एल० पी० टैसीटोरी, एम० ए०, पी-एच० डी० ।
(३) बाल-गन्धर्व्व मनहर बरवे ।
(४) पण्डित हरनन्दन पाँड़े ।
(५) प्राच्य-विद्या-विशारदों [illegible] (पूना) ।

— —

नई पुस्तक ! नई पुस्तक !!

स्व० राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित

मेघदूत

सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०

महाकवि कालिदास का यह काव्य बहुत प्रसिद्ध है। हिन्दी में भी इसके एकाधिक अनुवाद हो गये हैं । सर्वसाधारण में उनका ख़ासा आदर है । हिन्दी में मेघदूत का अनुवाद सबसे प्रथम राजा लक्ष्मणसिंहजी ने किया था। सन् १८८४ में इसका दूसरा, और सन् १८९३ में तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था । किन्तु ऐसा अच्छा अनुवाद इधर अप्राप्य हो रहा था। इसलिए सुन्दर अक्षरों में, अच्छे काग़ज़ पर, हमने इसका नया संस्करण, हिन्दी-हितैषियों के अनुरोध से प्रकाशित किया है। मूल श्लोक के सामने ही उसका सरल पद्यानुवाद है । विषय को समझाने के लिए मूल संस्कृत के साथ, नीचे, टिप्पणियाँ हैं; और भाषा-छन्दों के नीचे, फुटनोट हैं। जिनमें पद्य का सरल भावार्थ है। मतलब यह कि इस पुस्तक में गद्यानुवाद भी है और पद्यानुवाद भी। दो रङ्गीन चित्र भी हैं । महाकवि कालिदास की कविता के साथ ही साथ राजा साहब के सरस गद्य-पद्य का भी आनन्द लीजिए । मूल्य सिर्फ़ ।।=) दस आने ।

डाकघर

डाकघर कैसा है ?—इसके लिए इतना ही लिखना काफ़ी है कि यह डाकूर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना है। कहानी के बहाने एक विशेष विषय पर विचार हैं। पात्रों के साथ आप पुस्तक की सैर कीजिए। यदि ध्यान दीजिएगा तो उस विषय से भेंट हो जायगी, कहानी का आनन्द है ही। मतलब यह कि पुस्तक सभी के काम की है। भाषा सरल है। विषय को समझाने के लिए आवश्यकतानुसार टिप्पणियाँ भी दे दी गई हैं। कहानी छोटी है किन्तु सरस अधिक है। मूल्य ।-) पाँच आने ।

मिलने का पता—

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड,
प्रयाग, कटरा।

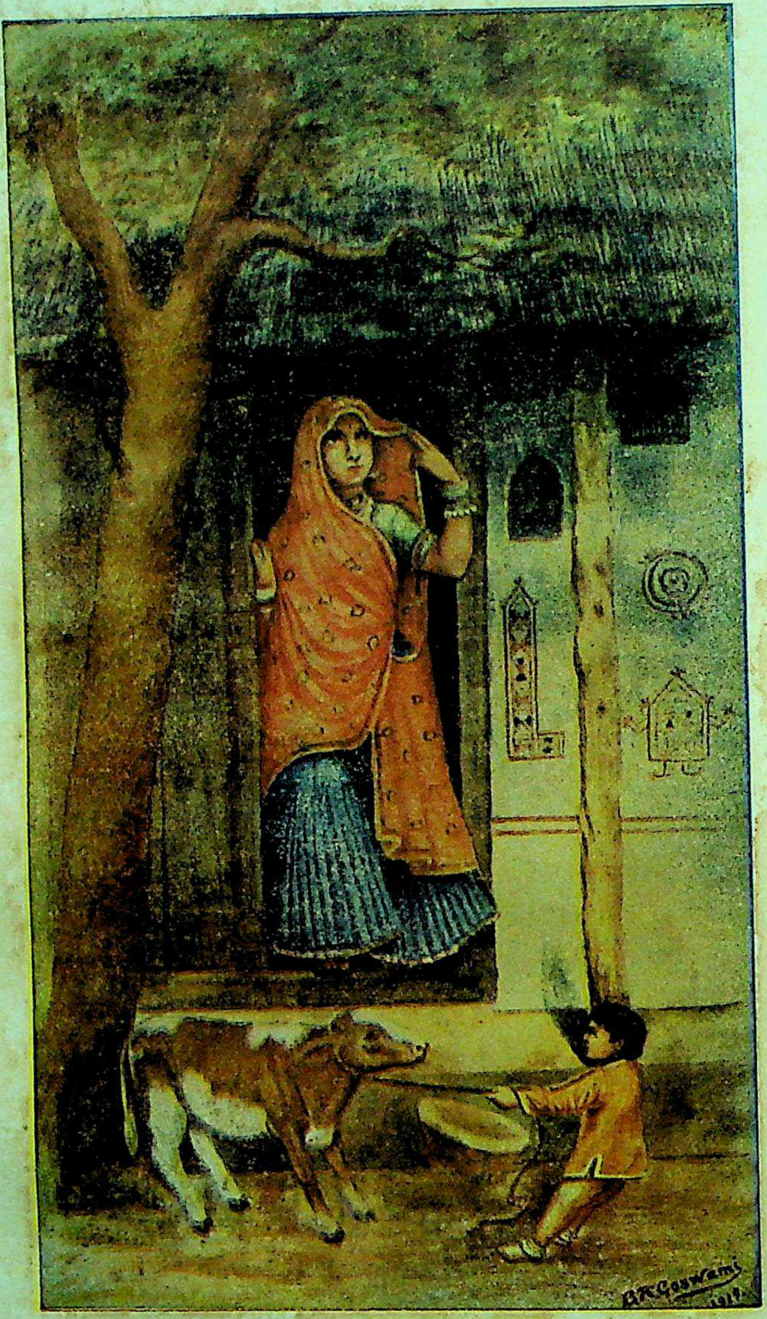
B.K.Goswami
1919

व्रजाङ्गना ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग कटरा ।

सरस्वती

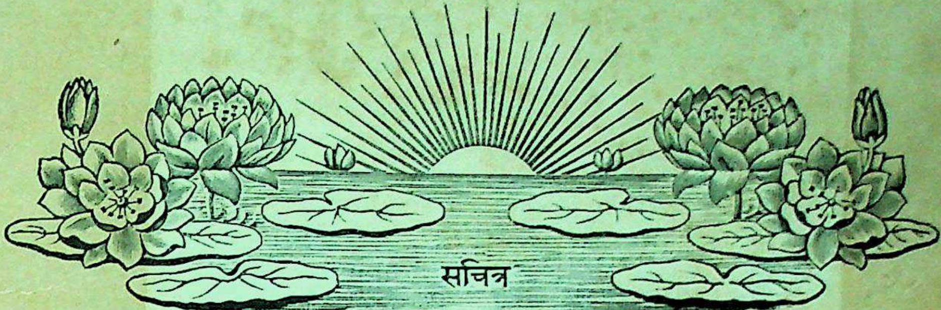

सचित्र
मासिक पत्रिका।

भाग २१, खण्ड १]   मार्च १९२०—चैत्र १९७६   [संख्या ३, पूर्ण संख्या २४३

अभिलाषा।

स्वदेश की उन्नति हो प्रभो सदा,
  स्वजाति-आशा-तरु हो फलों-लदा।
स्ववंश-मर्याद सदा बनी रहे,
  स्व-बन्धुओं में न तनातनी रहे ॥ १ ॥
स्व-कीर्ति की बेलि रहे हरी-भरी,
  कभी न सूखे प्रभु ! प्रीति-वल्लरी।
स्व-शक्ति का नाथ ! कभी न ह्रास हो,
  स्व-दुर्गुणों का नित ही विनाश हो ॥ २ ॥
स्वतन्त्रता का निज पूर्ण ज्ञान हो,
  प्रभो ! हमारा जग बीच मान हो।
सुकार्य में नाथ सदा लगे रहें,
  स्व-भाव ही मध्य सदा पगे रहें ॥ ३ ॥
स्व-बन्धुओं को न कदापि दुःख दें,
  तथा किसी का न कदापि स्वत्व लें।
बने जहाँ लों शुभ कर्म ही करें;
  न विघ्न-बाधा-डर से ज़रा डरें ॥ ४ ॥
क्रिया हमारी अति ही उदार हो,
  बुरा हमारा न कभी विचार हो।
असत्य को सत्य कभी न मान लें,
  कुकर्म की ओर न भूल ध्यान दें ॥ ५ ॥
न ऐक्य का भाव कभी विनष्ट हो,
  प्रभो ! हमारी प्रतिभा न भ्रष्ट हो।
सुबुद्धि हो, नाथ ! हमें विवेक हो,
  सुसिद्धियाँ सिद्ध हमें अनेक हों ॥ ६ ॥
न धर्म का अल्प कभी अभाव हो,
  विनम्र होवे न कड़ा स्वभाव हो।
स्वतेज का सूर्य प्रकाशमान हो,
  स्वराज्य का स्वत्व हमें प्रदान हो ॥ ७ ॥
न दुष्ट का साथ कभी किया करें,
  सुपात्र को दान सदा दिया करें।
बने रहें नाथ ! कभी न आलसी,
  प्रिया हमें हो न अनिष्ट "पालिसी" ॥ ८ ॥
स्व-धैर्य त्यागें न कभी हताश हो,
  तमिस्र हो दूर पुनः प्रकाश हो।

करें किसी की न कदापि चाकरी ,
विभो ! करे उन्नति नित्य नागरी ॥ ९ ॥
बना रहे प्रेम सदा स्वदेश का ,
तथा रहे ध्यान सदा स्व-वेश का ।
बुरा हमारा न प्रभो ! चरित्र हो ,
विचार-धारा अति ही पवित्र हो ॥ १० ॥

मणिराम गुप्त

डाक्टर एल० पी० टैसीटोरी, एम० ए०, पी-एच० डी० ।

हिन्दी बोलने और हिन्दी भाषा के पत्र और पुस्तकें पढ़नेवालों में से बहुत कम लोगों ने डाकृर टैसीटोरी का नाम सुना होगा । उनके काम से तो शायद ही दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी सज्जन परिचित हों । डाकृर साहब बड़े विद्वान्, बड़े विद्याव्यसनी और बड़े श्रमसहिष्णु थे । खेद है, पिछले नवम्बर महीने में, आपका शरीरान्त हो गया । इटली में रह कर भी, जिस देश की प्राचीन और अर्वाचीन भाषाओं पर आपका अप्रतिम प्रेम था उसी देश—भारतवर्ष—में आकर और कई वर्ष रह कर, बीकानेर में आपने शरीर छोड़ दिया । श्लेष्मज्वर, अर्थात् इनफ़्लुयञ्ज़ा, से आपकी मृत्यु हुई ।

डाकृर साहब की जन्मभूमि इटली का यूडाइन नगर था । भारतवर्ष की भाषायें सीखने का आपको व्यसन सा था । पचीस ही वर्ष की उम्र में, अपने ही देश में बैठे बैठे, बिना किसी अध्यापक की सहायता के, आपने हिन्दी, उर्दू, गुजराती (नई पुरानी दोनों), संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश आदि भाषाओं का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था—इतना ज्ञान कि आप हिन्दी में अपने विचार व्यक्त तक कर सकने लगे थे; हिन्दी में आप पत्र लिख सकते थे ।

३१ वर्ष के होने पर डाकृर साहब ने अपने भाषा-ज्ञान को और भी बढ़ा लिया । यहाँ तक कि इस देश की भाषाओं के सम्बन्ध में आपने कितने ही गवेषणापूर्ण लेख भी प्रकाशित कर दिये । लैटिन और ग्रीक भाषायें तो आप पहले ही से जानते थे । नई और पुरानी मारवाड़ी, डिङ्गल, व्रजभाषा इत्यादि का भी अच्छा ज्ञान सम्पादन कर लिया । अँगरेज़ी में आप एम० ए० थे ही । तुलसीदास की रामायण पर निबन्ध लिख कर अपने देश के विश्वविद्यालय से आपने पी-एच० डी० (अर्थात् दर्शन-शास्त्र के आचार्य्य) की भी पदवी प्राप्त कर ली थी ।

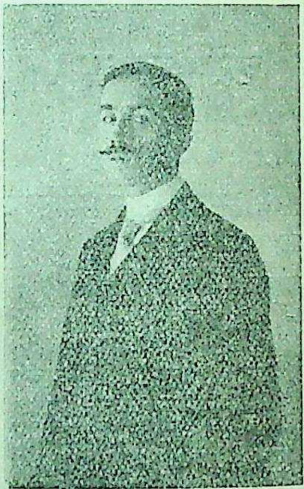

डाक्टर एल० पी० टैसीटोरी,
एम० ए०, पी-एच० डी० ।

और और लेखों के सिवा मारवाड़ी भाषा का व्याकरण लिख कर आपने इंडियन ऐंटिक्वेरी में प्रकाशित कराया । जैन-साहित्य पर भी आपका विशेष प्रेम था । उपदेश-माला, भववैराग्य-शतक तथा इन्द्रियपराजय-शतक का अनुवाद आपने अपनी

मातृभाषा इटालियन में कर डाला। जैन-साहित्य का ज्ञान सम्पादन करने में आपको जैनाचार्य्य श्रीविजयधर्म्म सूरि से बहुत सहायता मिली। आचार्य्य महाराज से डाकृर साहब का अनिर्बन्ध पत्र-व्यवहार रहता था।

भारतवर्ष आकर यहाँ अपने भाषाज्ञान की वृद्धि करने की इच्छा बहुत पहले ही से आपके हृदय में थी। इसे पूर्ण करने के लिए इस देश के सरकारी कर्म्मचारियों से आपने लिखा-पढ़ी शुरू की। इसमें आपको सफलता हुई। आप राजपूताने के भाटों की रचनाओं तथा ऐतिहासिक लेखों का सङ्ग्रह करने के लिए नियुक्त किये गये। यह काम दो-तीन वर्ष तक आपने बड़ी खूबी से किया। इन रचनाओं का एक सूचीपत्र आपने तैयार कर दिया। अपने काम की दो सालों की रिपोर्टें भी आपने लिखीं। उनमें कितनी ही महत्त्व-पूर्ण और अज्ञात बातों का उल्लेख आपने किया। रतनसिंह राठोड़ की वचनिका नाम की एक ऐतिहासिक पुस्तक का सम्पादन भी आपने किया। यह पुस्तक पुरानी मारवाड़ी भाषा में है।

भारत आने पर आचार्य्य विजयधर्म्म सूरि महाराज के पास बैठ कर आपने जैन-साहित्य तथा और भी कितने ही विषयों के ज्ञान को पुष्ट और पल्लवित किया। आचार्य्यजी पर आपकी बड़ी श्रद्धा थी। उनके साथ आप भी पैदल यात्रा करते थे। एक दफ़े सादड़ी से रानकपुर तक आप आचार्य्यजी के संघ के साथ साथ बराबर पैदल गये।

पीछे से आप बीकानेर में जा रहे थे। वहाँ के पास-पड़ोस के गाँवों में आप पुराने शिलालेखों, सिक्कों तथा अन्य वस्तुओं का सङ्ग्रह करते थे। यदि आप कुछ दिन और जीते तो बीकानेर में प्राचीन वस्तुओं का एक बहुत अच्छा सङ्ग्रहालय संस्थापित हो जाता। अब भी वहाँ डाकृर साहब की सङ्ग्रहीत वस्तुओं की अच्छी संख्या एकत्र है।

सोचने की बात है। इटाली में रह कर, बिना किसी की सहायता के, इस मनस्वी महापुरुष ने भारत की कितनी ही नई पुरानी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। अपनी इस ज्ञानप्राप्ति की पिपासा को दूर करने के लिए वह इतनी दूर, समुद्र पार करके, इस देश में भी आया और यहीं खप गया। एक हम हैं जो पुरानी भाषाओं की तो कथा ही क्या, अपनी निज की मातृभाषा में भी शुद्ध शुद्ध पत्र-व्यवहार तक नहीं कर सकते और जो लोग कर भी सकते हैं उनमें से अधिकांश अपनी भाषा लिखना अपनी इज़्ज़त घटाना समझते हैं। इन अन्धे और अनुदार विचारों के गर्त से निकलने की बुद्धि भगवान् हमें शीघ्र ही दे, यही उससे हमारी प्रार्थना है।

हवाई-द्वीप की सैर।

अमरीका के बड़े बड़े नगरों—न्यूयार्क, शिकागो, सैनफ्रान्सिस्को इत्यादि—में चाइना-टाउन नामक चीनियों की बस्तियाँ हैं। यात्री लोग उन्हें प्रायः देखने जाया करते हैं। मुझे अमरीका से हवाई-द्वीप होते हुए आगे बढ़ना था। मैंने कहा, लाओ चीनियों की बस्ती देख लूँ। तब यहाँ से डेरा-डण्डा उठाऊँ। यह निश्चय करके एक रोज़ रात को मैं भी उसे देखने चला। हमारे गरोह में लगभग २० मनुष्य थे। पथ-प्रदर्शक पहले हमें चीनी-मन्दिर में ले गया। यह विशाल देव-मन्दिर अपने यहाँ के ठाकुरद्वारों के ढँग का है। तीसरे मंज़िल पर एक कमरे में एक बड़ा सा सिंहासन था, जिस पर अत्यन्त उत्तम सोने का काम किया हुआ था। इस सिंहासन पर एक सुन्दर मूर्त्ति बैठी थी। मूर्त्ति मनुष्य की थी; उसके बड़ी लम्बी डाढ़ी थी। पास ही, छोटी छोटी अन्य देव-देवियाँ थीं। सिंहासन से हट कर, आगे, ऊँची वेदी पर धूप, दीप, नैवेद्य इत्यादि रखने की व्यवस्था थी। सिंहासन के दाहनी ओर एक नक़ारा

और बर्छे के सदृश तीन आयुध रक्खे थे । वाम-भाग में एक घोड़ा था ।

मूर्त्ति को जगाने के लिए वहाँ भी पहले कुछ वाद्य बजाया जाता है । पुजारी लोग वहाँ भी हर प्रकार की वस्तुयें देवता पर चढ़ाते हैं । एक विशेष काग़ज़ पर अपने मनोरथ लिख कर, देवता के सम्मुख उपस्थित करने के पूर्व, उसे एक अग्नि-कुण्ड में जलाते हैं । सारांश यह कि इस मन्दिर में जाने से प्राच्य रीति-रिवाज वैसे ही देख पड़ते हैं जैसे कि भारत के किसी मन्दिर में ।

हमारा भाग्य आज-कल ऐसा मन्द हो रहा है कि जो कुछ प्राच्य है सभी बेहूदा समझा जाता है । उसकी सभी हँसी उड़ाते हैं । वही बात यहाँ भी देखी । चीन कमज़ोर है ; उसका कोई माँ-बाप नहीं । इसीसे चीन-वालों के मन्दिर में जाकर सभी लोग हँसी-मज़ाक़ उड़ाते हैं । उनके पूजा-पाठ की सभी बातों में उन्हें अन्ध-विश्वास दिखाई पड़ता है । किन्तु मज़ाक़ उड़ानेवालों को अपने गिर्जे में मामूली रोटी के टुकड़े को ईसा का मांस समझने और शराब को उनका लहू मानने में अन्धविश्वास की ज़रा भी झलक नहीं देख पड़ती । गिर्जे में जाकर नास्तिक और अमरीका-निवासी यात्री भी वैसा बर्ताव नहीं करता, जैसा चीनी-मन्दिर में एक पादरी करता है । किन्तु जापानी मन्दिरों में ऐसा करने का साहस किसी भी माई के लाल को न होगा । क्योंकि उसके माई-बाप हैं ।

मैं यहाँ से व्यथित-हृदय ले कर निकला और चीनी महल्लों में घूमता रहा । वहाँ भी भारत की भाँति "चकले" देखे । चीनी-टोले की और अनेक वस्तुयें देखता हुआ मैं घर लौट आया ।

लन्दन को छोड़े मुझे पूरे छः महीने हो चुके थे । १२ मई को मैं अमरीका से रवाना हुआ ।

अमरीका छोड़ कर, अमरीकन जहाज़ पर, मैंने जापान की ओर प्रस्थान किया । जहाज़ छूटे अभी एक घण्टा भी न हुआ था, मुझे अनुभव होने लगा कि मैं प्राच्य देश की ओर जा रहा हूँ । जिस प्रकार भारत से चलते समय जहाज़ पर ख़ानसामा, नाविक और ख़लासी भारतीय एवं अरबी देखे थे, उसी प्रकार यहाँ चीनी देख पड़े । जिस प्रकार भारत से चलते समय जहाज़ के भोजनालय में गौराङ्ग-जन हिन्दुस्तानियों के साथ एक मेज़ पर भोजन के लिए नहीं बैठते, उसी प्रकार यहाँ भी अमरीकन श्वेताङ्ग, काले एशियायियों के साथ बैठना उचित नहीं समझते । भारत में अच्छी जगहें श्वेताङ्गों ही के लिए रक्षित रहती हैं । जापानी लोग इस पक्षपात को सहन नहीं कर सकते । किन्तु अभी उनमें रावण के सदृश अग्नि, वायु, इन्द्र और वरुण को पकड़ कर लङ्का में ले आने की शक्ति नहीं । इसलिए वे अमरीकन जहाज़ पर सफ़र ही नहीं करते । वे लोग अपनी जापानी कम्पनी के जहाज़ों द्वारा ही यात्रा करते हैं ।

दो दिन प्रशान्त महासागर पर चलते चलते बीते । यह सागर अपने नाम की मर्यादा को भली भाँति निभा रहा है—समुद्र शान्त है । जल की चादर भारत-महासागर की भाँति शीशे के तख्ते के सदृश नहीं है । ज़रा ज़रा हिलकोरे उठते हैं । पर उसे चैत्र मास की गङ्गा से अधिक अधीर नहीं कह सकते । मन्द मन्द वायु चल रहा है । मैं एक अमरीकन यात्री के बग़ल में खड़ा सूर्य्य के अस्त होने का दृश्य देख रहा हूँ । अहा ! क्या ही सुन्दर दृश्य है । अभी सूर्य्य की तेज़ किरणों के सामने निगाह न ठहरती थी । पर एक ही पल में आग उगलता हुआ सूर्य्य का गोला समुद्र के निकट आ गया । मानों गर्मी से घबरा कर स्नान करने के लिए वह समुद्र में कूदना चाहता है । यह एक-मात्र मेरी ही उत्प्रेक्षा न समझिए । आपके पुराने पण्डित महाकवि माघ की भी राय शरीफ़ ऐसी ही थी । आप अपने काव्य में लिख गये हैं—

अभितापसम्पदमथोष्णरुचिर्निजतेजसामसहमानिव ।
पयसि प्रपित्सुरपराम्बुनिधेरधिरोढुमस्तगिरिमभ्यपतत् ।।

ठीक वही बात जो मैंने कही । उत्प्रेक्षा ही क्यों । सूर्य तो देखते देखते सचमुच ही समुद्र में कूद पड़ा । वह देखो, आधा जल के भीतर भी चला गया । अब तो पूरी डुब्बी मार ली । नहीं, सूर्य्य तो पृथ्वी से १०० गुना बड़ा है । भला वह समुद्र में कहाँ नहा सकता है ? पृथ्वी के घूम जाने के कारण वह आड़ में चला गया । किन्तु जान ऐसा पड़ता है कि समुद्र में ग़ोता ही लगा गया है ।

थोड़ी देर बादलों में लाल, पीला, काला रङ्ग रहा । फिर धीरे धीरे कालिमा में वह भी लुप्त हो गया । जहाज़ के सामने, ठीक जहाँ पर मैं खड़ा था वहीं, आकाश में द्वितीया का चन्द्र निकल आया । उसकी शोभा और छटा

देख ताण्डव-नृत्य के कर्त्ता नटराज-राज काशिराज के भाल का बाल-शशि याद आ गया। कुछ देर मन उसी ओर लगा रहा। पर उसका भी अन्त हो गया। वह भी प्रगाढ़ निशा की गोद में मुँह छिपा कर सो रहा।

मैं भी वहाँ से हटा और नीचे की ओर चला; पर आ पड़ा पीछे की ओर। खुले डेक पर, क़नात के पीछे, आलोक देख पड़ा। मैं नीचे उतर कर उधर बढ़ा। क्या देखता हूँ कि वहाँ बहुत से चीनी नाविक और यात्री एकत्र हैं। वहाँ दीपावली की ख़ासी धूम है। छक्के पञ्जे की आवाज़ आ रही थी। भीड़ के भीतर घुस कर देखा तो मालूम हुआ कि चीनियों के मनोरञ्जनार्थ, जहाज़ के कप्तान की आज्ञा से, जुआ हो रहा है। कभी कभी प्रथम श्रेणी के यात्री भी यहाँ आकर फँस जाते हैं और कुछ गँवा बैठते हैं। सुना गया है कि एक यात्री एक दिन में २०० डालर हार गया था। इसे ६००) रुपये के ऊपर रक़म समझिए। प्रथम श्रेणी के यात्रियों में भी जुए की कमी नहीं। वहाँ भी धूम्र-पान के कमरे में ख़ूब जुआ होता है और साथ साथ वारुणी भी उड़ती जाती है। संसार की यही लीला है। वक्तृताओं की दाल दुनिया में कम गलती है। उपदेशक चिल्लाया ही करते हैं और संसार कान में तेल डाले अपनी राह चला ही जाता है।

आज रविवार है। इसकी घोषणा कल ही हो चुकी थी। अब दस बज गये। यात्री लोग पुस्तकालय के कमरे में बैठे हैं। नौकर ने प्रार्थना और भजन के गुटके लाकर रख दिये। एक ओर ऊँची मेज़ पर कपड़ा डाल कर मोटी सी बाइबिल रख दी गई। यात्रियों में जो पादरी थे वे आये। प्रार्थना कराई, भजन गाये, फिर कुछ उपदेश किया। चढ़ावा या भेंट एकत्र की। फिर अपना अपना काम करने लगे। थोड़ी देर के लिए जो यह पुस्तकालय गिर्जा बन गया था फिर मामूली पुस्तकालय बन गया।

कुछ देर बाद एक पादरी महाशय सब यात्रियों को एक पुस्तक बाँट गये। एक मुझे भी मिल गई। उसका नाम था Tourist Directory of Christian Work in the Chief Cities of the Far East, India and China. इस पुस्तक में छापेख़ाने का नाम नहीं है, पर उसकी जगह लिखा है—Presented by the Committee on the Religious Needs of Anglo-American Communities of Asia, Africa and South America, 1913.

भारत और चीन आदि पूर्वी देशों में हमारे ईसाई भाइयों ने धर्म्म-प्रचार-विषयक क्या क्या काम किये हैं, इसी के अतिरञ्जित वर्णन के लिए इस पुस्तक की सृष्टि हुई है। मैंने इसे उलट-पुलट कर देखना प्रारम्भ किया। ८३ पन्ने के आगे इसमें भारत के सम्बन्ध की बातें लिखी मिलीं। लेखक ने बड़ी कृपा करके हमारे सभी स्कूल-कालेजों को ईसाइयों की संस्था बताया है। कलकत्ते की निम्नलिखित संस्थायें ईसाई संस्थायें बताई गई हैं—प्रेसिडेन्सी कालेज, संस्कृत-कालेज, रिपन कालेज और बङ्गवासी कालेज। काशी का हिन्दू कालेज भी ईसाई संस्था कही गई है। इतना ही नहीं, आप और भी लिखते हैं। ८३ वें पृष्ठ पर इस पञ्जिका में जो कुछ लिखा है, उससे मैं थोड़ा सा अंश यहाँ उद्धृत करता हूँ—

"To a humble Baptist Minister, Williams Carey, belongs the honor of inaugurating a movement which has resulted in the establishment of the Christian Religion in India ... ...

To these missionaries is due ... ... the first vernacular newspaper printed in Bengali and the first attempts at education for Hindu girls and women × × × × They aided in the accomplishment of other important moral and political reforms. About one-tenth of all the children and youth under instruction at the present time are in Protestant Mission Schools.

Christian population has more than trebled during the past 30 years. A notable feature of recent years has been the mass movements, entire communities turning from their ancient faith to Christianity.

इसका मतलब थोड़े में यह हुआ—विलियम केरी नाम के पादरी के प्रयत्न से भारत में ईसाई धर्म्म की जड़ जमी। पादरियों ने ही वहाँ पहले पहल, बँगला भाषा में, एक अख़-

बार निकाला और उन्होंने हिन्दुओं की लड़कियों और स्त्रियों को पहले पहल लिखना-पढ़ना सीखने की ओर झुकाया। महत्त्वपूर्ण नैतिक और राजनैतिक सुधारों की संस्थापना में भी उन्होंने सहायता की। जितने लड़के इस वक़्त वहाँ शिक्षा पा रहे हैं उनका $\frac{९}{१०}$ अंश प्रोटेस्टंट ईसाइयों के स्कूलों में है। ३० वर्ष में ईसाइयों की संख्या तिगुनी हो गई है। अब तो यह हाल है कि फ़िरक़े के फ़िरक़े अपना पुराना धर्म्म छोड़ कर ईसाई होते चले जारहे हैं।

इन बातों में तथ्य कितना है और अतथ्य कितना, यह बताना पूरी जानकारी के बिना सम्भव नहीं। हमारे ईसाई भाइयों को समझ-बूझ कर लिखना चाहिए। इस तरह बे-पर की उड़ाना उन्हें शोभा नहीं देता। पर पाश्चात्य देशों में ईसाई-धर्म्म-प्रचारक संस्थायें भी एक प्रकार का रोज़गार है। और रोज़गार में असत्य नहीं तो अत्युक्ति के बिना शायद काम नहीं चलता। इसीलिए इन बेचारे पादरियों को, अपना पेट पालने के लिए, सभी कुछ कहना पड़ता है। ऐसा वे न करें तो काम ही न चले। फिर या तो मिशन त्यागना पड़े या भूखों मरना!

अब हम लोग हवाई-द्वीप के निकट आगये। जिस प्रकार दूर से अदन की सूखी साखी पहाड़ियाँ देख पड़ती थीं, उसी प्रकार ये भी जँचीं। जहाज़ घूम कर भीतर गया। होनोलूलू नामक नगर में हम उतरे। वहाँ उतरते ही मालूम हो गया कि पाश्चात्य देश छोड़ हम प्राच्य में आ गये। अमीरी की जगह ग़रीबी और ऊँची ऊँची अट्टालिकाओं की जगह छोटे छोटे मकान आँख फाड़ फाड़ देखने लगे।

गाड़ी किराये पर करके शहर के बाहर 'आइना हाऊ' होटल में हम जा उतरे। भोजन का प्रबन्ध साधारण था। उसमें से निरामिष पदार्थ शाक-पात को अलग करना कठिन था। इससे केवल रोटी, आलू और दूध पर गुज़ारा करना पड़ा।

रात्रि भर कोकिल की कुहू कुहू सुनता हुआ घर की याद करता रहा। प्रातःकाल पक्षियों के गान तथा "अरुण-शिखा-धुनि कान" सुन कर उठा। उठते ही, रसाल और चम्पे के प्रसूनों से अठखेलियाँ करके मन्द वायु घर में आने लगा। मैं नित्य कार्य्य से निबट कर नीचे गया। वहाँ, अपने देश के, सभी प्रकार के वृक्ष देखने में आये। मैं बड़ी देर तक आम के पेड़ के नीचे खड़ा खड़ा उसे प्रेम-भरी दृष्टि से देखता रहा। वृक्ष ने मेरे प्रेम को देख एक फल भी टपका दिया, जिसे बड़े चाव से लेकर मैं खाने लगा। थोड़ी देर में एक नारियल भी पेड़ से गिरा। उसे भी तोड़ कर मैंने खाया। वहाँ चिरसङ्गिनी चींटियों से भी भेट हुई। जब तक मैं चला नहीं आया, वे मारे प्रेम के मेरी मेज़ से हटी ही नहीं। मकड़ी और जाले भी वहाँ देखे। कहाँ तक कहूँ, ऐसा कुछ भी न था जो वहाँ न देखा हो। शाम तक वहाँ दिन बिता कर ३ बजे हिलो नामक स्थान की ओर, वहाँ के ज्वालामुखी पर्वत के दर्शनार्थ, चला।

हवाई का ज्वालामुखी।

२२ मई को, ३ बजे सन्ध्या समय, होनोलूलू बन्दर से मोनालिया नामक जहाज़ पर चढ़ हिलो (Hilo) के लिए प्रस्थान किया। यह नगर हवाई-द्वीप-माला के हवाई नामक द्वीप पर अवस्थित है। होनोलूलू ओआहू (Ohaw) द्वीप पर है, और इस द्वीप-माला का केन्द्र-स्थल तथा राजधानी भी है। वहाँ से हिलो प्रायः १ मील है। जहाज़ को यहाँ आने में १६ घण्टे लगते हैं। हवाई-द्वीप का क्षेत्र-फल ४०७५ वर्ग मील है। वहाँ ५५,३८१ मनुष्य रहते हैं। यात्री लोग इस द्वीप पर कीलामाऊ ज्वालामुखी के दर्शन करने आते हैं। प्रकृति की अपूर्व मूर्त्तियों में, हमारी इस पृथ्वी के गोले पर, इसे अत्यन्त विचित्र कहना अनुचित न होगा। उसका रूप कैसा है, उसके दर्शन के लिए यात्री किस भाँति आते हैं, प्रकृति ने अपनी इस सर्वोपम मूर्त्ति के मन्दिर के रास्ते को कैसा विलक्षण और मनोहर बनाया है, इसी का दिग्दर्शन कराना इस छोटे से लेख का उद्देश है।

२३ तारीख़ को प्रातःकाल, आँख खुलते ही, जहाज़ से पर्वतमाला देख पड़ने लगी। हमारा छोटा जहाज़ द्वीप के छोर से कोई आध मील की दूरी से ही तेज़ी के साथ अपने निर्दिष्ट स्थान, हिलो बन्दर, की ओर चला जा रहा था। बन्दर भी इस समय देख पड़ने लगा था। वहाँ पहुँचने में अभी घण्टे आध घण्टे की देर थी। मैं झटपट बिस्तरे से उठा और नित्य-क्रिया से निबट, कपड़े पहन कर, कलेवा करने चला गया। भोजनालय में कुछ खा पी कर, असबाब सँभाल, जहाज़ की छत पर आया। अब जहाज़ बन्दर के बिलकुल समीप आ गया था। थोड़ी देर में वह बन्दर

पर जा लगा। मैं भी जहाज़ से अपना बोरिया-बँधना उतरवा कर हवा-गाड़ी पर सवार हुआ। इस नगर के बीच से होकर यह गाड़ी मुझे ले चली। इस छोटे से नगर में भी साफ़-सुथरी सड़कें और बढ़िया पक्की पटरी देख कर स्वराज्य के प्रभाव का ध्यान हो आया। यह नगर क्या एक छोटा सा क़सबा है, जिसमें २२,५४५ मनुष्य रहते हैं। मकान सब साफ़, अच्छे और प्रायः लकड़ी के बने हैं। उत्तम उत्तम दूकानें और बैङ्क हैं। एक दैनिक पत्र भी यहां से निकलता है। गिर्जाघर, मन्दिर, स्कूल तथा हरे हरे स्वच्छ उद्यानों से नगर प्रफुल्लित जान पड़ता था। एक उद्यान में लड़कों के खेलने का प्रबन्ध था। अनेक बालक-बालिकायें यहां आमोद-प्रमोद में समय व्यतीत कर रही थीं। यह देख सभ्यता के इस निर्भ्रान्त सिद्धान्त की याद आ गई कि जीवित जातियां, जो संसार में उन्नति करना चाहती हैं, अपनी सन्तान को हृष्ट-पुष्ट बनाने, उनके दिल, दिमाग़ तथा शरीर को एक सा उन्नत करने एवं शिक्षा देने में आगा-पीछा नहीं करतीं। शिक्षा और स्वास्थ्य पर धन व्यय करना धन को गाड़ रखने से वे अच्छा समझती हैं। इसी लिए बालकों की उन्नति में लगाया हुआ धन, खेत में बोये गये धान्य की भांति, फलता फूलता तथा दिन पर दिन बढ़ता जाता है। यह सच है कि बालकों की उन्नति देश और जाति की उन्नति है। इसी लिए किसी नगर या देश की पाठशाला को उस जाति की उन्नति के माप का यन्त्र कहें तो अनुचित न होगा। अनुभवी लोग केवल पाठशालाओं ही को देख कर जाति की दशा एवं अवस्था का पता लगा लेते हैं।

इस छोटे से क़सबे में भी मोटरों की भरमार थी। एक दूकान में टाइप-राइटर मशीन और दूसरी में बाइसिकल भी देख पड़ी। यहां अधिकांश मनुष्य जापानी ही थे। बहुत से वर्ण-सङ्कर भी होंगे। इस द्वीप-माला को यदि जापान का उपनिवेश कहा जाय तो अनुचित न होगा। इसी कारण इस पर जापान का दांत है।

नगर के भीतर से घूमता हुआ मैं अब नगर के बाहर चला आया। यहाँ के सौन्दर्य का हाल लिखना असम्भव है। यहाँ की भूमि ऐसी उर्वरा है जिसका ठिकाना नहीं। एक के ऊपर एक वृक्ष, पौधा, फल, फूल मानों गिरे पड़ते हैं। पथिकों को जिस प्रकार बङ्गाल में वनस्पतियों की अधिकता देख पड़ती है उसी प्रकार यहां भी। और वृक्ष, लता, गुल्म भी प्रायः उसी जाति के हैं जैसे कि बङ्गाल में होते हैं। आम, अमरूद, ताड़, केला, गुलाचीन, कनैल तथा और भी अपने देश के अनेक वृक्ष देख पड़े। इनके अतिरिक्त, पहाड़ी जगहों में और जो अनेकानेक लतायें, गुल्म आदि देख पड़ते हैं उनकी तो गिनती ही नहीं। सड़कों को छोड़ कर और सब भूमि इन्हीं से भरी हुई है।

ये द्वीप कृषि-प्रधान हैं। यहां प्रायः ईख और अनन्नास की खेती होती है। ईख यहां बड़ी उत्तम और कई क़िस्म की होती है। किन्तु गन्ने प्रायः सभी लाल हैं और मुटाई प्रायः १॥ से २ इञ्च तक है। वे लम्बे ख़ूब होते हैं। चीनी का कारख़ाना देखने के उपरान्त इसका विवरण लिखूँगा। अभी इतना ही कह देना काफ़ी है कि यहां एक टन उत्तम चीनी बनाने का व्यय ५० डालर पड़ता है—अर्थात् १५० रुपया ख़र्च करने से २७ मन चीनी तैयार होती है। इस मोटे हिसाब से कोई ५।।) मन चीनी पड़ी। यह ईख से तैयार की हुई चीनी की बात है। अमरीका में इस समय चीनी का भाव फ़ी टन ९० डालर के लगभग है अर्थात् १०) मन। इस हिसाब से ४।।) मन का मुनाफ़ा हुआ। किन्तु यहां से अमरीका तक ले जाने का भाड़ा भी इसमें जोड़ना होगा। अनन्नास भी काट छील कर, टीनों में बन्द करके, बाहर भेजा जाता है। हमारे रास्ते में प्रायः इन्हीं दो पदार्थों की खेती देख पड़ी। कहीं कहीं अङ्गूर की बेलें भी देख पड़ीं। यहां अपने यहां के सदृश बेलों ही में अङ्गूर फलते हैं। पर केलीफ़ोर्निया में अङ्गूर की बेल नहीं होती। वहां ज़मीन पर ही छोटे छोटे वृक्षों में अङ्गूर के ख़ोशे लगते हैं।

थोड़ी दूर आगे चलने पर कृषि-क्रम का अन्त हुआ। किन्तु सड़क के दोनों ओर सघन वन ही वन देख पड़ता था। बीच में से हमारी गाड़ी चली जाती थी। वन में जङ्गली वृक्षों, लताओं और गुल्मों की बहुतायत थी। कोई दो घण्टे चलने के बाद ११ बजे हम किलाऊ (Kilau) ज्वालामुखी के पास पहुंच गये और वालकेनो-हाउस नामक होटल में उतरे। नहा धोकर भोजन किया। फिर बाहर निकले तो क्या देखा कि चारों ओर, जगह जगह पर, पृथ्वी से धुँआ निकल रहा है। ऐसा मालूम पड़ता था मानों जङ्गल में आस पास यात्री उतरे हों और रसोई बना रहे हों। किन्तु बात कुछ और ही थी। वह पृथ्वी के भीतर प्रकृति

के रसोई-घर से धुआँ निकल रहा था, जो वास्तव में भाफ़ थी। उसे देखते हुए एक घास के मैदान में पहुँचे। किन्तु वहाँ देखने को कुछ भी न था। गाड़ीवाले से पूछा—भैया, यहाँ क्यों लाये ? उसने उतरने को कहा और दो-तीन गढ़े दिखाये। ये गढ़े झावें के सदृश पत्थरों के थे। पूछने से ज्ञात हुआ कि एक समय, कुछ दिन हुए, ज्वालामुखी से गले हुए पदार्थों ने बह कर इस सारे मैदान को भर दिया था। जितने वृक्ष वहाँ पर थे उन्हें १० फुट तक द्रवित पदार्थों ने अपने गर्भ में छिपा लिया था। समय पाकर, जले हुए पेड़ों की राख को बहाता हुआ वह प्रवाह यहाँ से निकल गया। अब केवल पेड़ों का साँचा यहाँ रह गया है। इन गढ़ों को पेड़ों का साँचा कहते हैं। इन्हें देख कर होटल की ओर लौटे। बीच में गन्धक के गढ़ों के निकट पहुँचे। वहाँ गन्धक जमा हुआ था और बहुत से गढ़ों से भाफ़ के साथ निकल भी रहा था। एक जगह से मैं गन्धक निकालने लगा। किन्तु भाफ़ वहाँ इतनी उष्ण थी कि हाथ जल गया। पर मैंने थोड़ी सी गन्धक निकाल ही ली।

सन्ध्या के ४ बजे ज्वालामुखी देखने चला। मोटर-गाड़ी ने हमें ज्वालामुखी के तट तक पहुँचा दिया। यह एक बड़ा भारी गह्वर, कोई १ मील के घेरे का, है। गहरा भी ५०० फुट से कम न होगा। सिवा धुएँ के कुछ देख नहीं पड़ता था। केवल खचपच की आवाज़ आती थी। हमारे साथी पहले ही से यहाँ आ गये थे। मैंने पूछा, क्या ज्वालामुखी यही है ? उन्होंने उत्तर दिया, ठहरो, अभी देख पड़ेगा। थोड़ी देर में धुआँ हटा तो जो कुछ देखा उसने चकित कर दिया। सोचिए, एक बहुत बड़ा तालाब, जैसे रामनगर में महाराज का तालाब। फिर सोचिए, उसमें गला हुआ सोना या लोहा। और वह "खुद बुद" करके उबलता हो। बस, यही यहाँ भी था। सतह के ऊपर शीघ्र शीघ्र काली मलाई जम जाती थी जो पल पल पर फटती थी और सावन में जिस प्रकार काले मेघों में भूल-भुलैयाँ की रेखा के समान विद्युत् का प्रकाश होता है, वही समा यहाँ भी था। कभी सारी मलाई फट जाती थी ; तब सारा का सारा तालाब उबलता हुआ देख पड़ता था। यहाँ से जो भाफ़ या धुआँ उठ रहा था उससे गन्धक की बड़ी तेज़ बू आ रही थी और आँखों में भरती जाती थी। तथापि यहाँ से हटने को जी न चाहता था। घण्टों तक यही दृश्य देखा किया। फिर यहीं, अग्नि-कुण्ड के तट पर, सन्ध्योपासन करके घर लौटा। रास्ते में और कई ठण्डे ज्वालामुखी देख पड़े, जिनमें जमे हुए काले पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ न था। इस ज्वालामुखी से निकले हुए गले पदार्थों से एक बड़ा मैदान (१॥ कोस लम्बा, १ कोस चौड़ा) भरा था। ये पदार्थ, देखने में, जली ईंटों अर्थात् झावें के सदृश हैं—या यों कहिए कि सुनार की घरिया, सोना-चाँदी गलाने के उपरान्त, भीतर जिस प्रकार की हो जाती है उसी प्रकार के ये सारे पदार्थ थे !

रात को चन्द्रदेव के अस्त होने पर इस गह्वर के ऊपर का सारा धुआँ रक्तवर्ण देख पड़ने लगा। धुँधुआती हुई अग्नि के प्रकाश से मैदान धीमे धीमे लाल रङ्ग से रँग गया। इस दृश्य को देख कर मैं बिस्तरे पर जा लेटा। प्रातःकाल यन्त्र-शाला में गया, जो होटल के निकट है। वहाँ भूकम्प-मापक यन्त्र देखा। उसका अँगरेज़ी नाम सिसमोग्राफ़ (Sismograph) है। आले की शकल के ये यन्त्र एक ठोस पक्के चबूतरे पर रक्खे रहते हैं। वह नीचे पहाड़ या ठोस चट्टान पर बना होता है। डोरी के सहारे एक और लम्बा यन्त्र इसमें लटकता है। सामने एक गोल ढोल रक्खा रहता है जो घड़ी के सहारे घूमता है। पृथ्वी के भीतर ज़रा सा भी धक्का लगने से जो कम्पन होता है उसकी लहर आगे-पीछे, दायें-बायें, ऊपर-नीचे, प्रत्येक दिशा में जाती है और संसार में प्रायः सभी जगह उसका कुछ न कुछ असर पड़ता है। किन्तु उसका अनुभव बहुत ही सूक्ष्म यन्त्र के बिना नहीं हो सकता। भूकम्प के समय यह यन्त्र उस कम्पन से काँपने लगता है, किन्तु लटका हुआ लम्बा यन्त्र स्थिर रहता है और एक बाल के सदृश सुई से, गोल ढोल पर, जिसके ऊपर धुआँ लगा काग़ज़ होता है, एक विशेष प्रकार की रेखा बनाता जाता है। इसी रेखा से वैज्ञानिक लोग इस बात का पता लगाते हैं कि भूकम्प का केन्द्र यन्त्रालय से कितनी दूर तथा किस ओर है। यहाँ पर मैंने एक चित्र देखा, जिसमें १९०५ के दार्जिलिंगवाले भूकम्प का रेखा-खचित लेख जापान की टोकियो-स्थित यन्त्रशाला में लिखा गया

था। यहाँ के अध्यापक से पूछने पर ज्ञात हुआ कि संसार में कहीं भी भूकम्प हो, यह यन्त्र उसका पता लगा लेगा। मुझे बताया गया कि इस यन्त्र का आविष्कार जापानियों ने किया है। किन्तु जर्मनों ने, और फिर रूसियों ने इसकी उन्नति की है। इस समय सबसे उत्तम यन्त्र रूसियों का है। यहाँ यह भी बताया गया कि इस यन्त्र के आविष्कार से भूगर्भ-विद्या का यह सिद्धान्त, कि भूगर्भ अभी द्रवित अवस्था में है, बदल गया है। अब वे उसे ठोस समझने लग गये हैं, क्योंकि द्रव पदार्थ के कम्पन से इस प्रकार धक्के की लहर नहीं चल सकती। यह बात वैज्ञानिकों की सत्य-प्रियता की सूचक है कि वे सचाई को मानने के लिए हर समय तत्पर रहते हैं। वे धर्म्मान्धों के विश्वास के क़ायल नहीं कि बाइबिल, कुरान या वेद में जो लिखा है वह असम्भव होने पर भी सत्य ही है। हठ-धर्मी इनमें नहीं है। यदि होती तो सच्चे ईश्वरी ज्ञान की प्राप्ति भी दुस्तर हो जाती। असल में निर्भ्रान्त ज्ञान का नाम ही वेदवाक्य है।

यहाँ से मैं लौट चलने की तैयारी करने लगा। तब होटल की पुस्तक पर कुछ लिखने को मुझसे कहा गया। मैंने क़लम उठा कर अपनी गँवारी देशी भाषा और असभ्य देवनागरी लिपि में अपने विचार थोड़े में लिख दिये। साहबी ठाठ के हमारे हिन्दू भाई हँसेंगे कि यह अजब उल्लू है, जो हवाई-द्वीप में भी हिन्दी लिखता है। भला इसे पढ़ेगा कौन? किन्तु उन्हें अलमोड़ा, बदरिकाश्रम, रामेश्वर. द्वारका इत्यादि जगहों में योरप और अमरीका के निवासियों को अँगरेज़ी, जर्मन, फ़्रांसीसी भाषा में लिखते देख हँसी नहीं आती। उलटा उनकी नक़ल करके स्वयं अँगरेज़ी भाषा में वे लिखने लग जाते हैं। धन्य उनका देश-प्रेम और धन्य उनकी मातृ-भाषा-वत्सलता! होटल की पुस्तक में मैंने जो कुछ लिखा उसकी नक़ल नीचे दी जाती है—

> संसार के भिन्न भिन्न देशों को देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हिलो के पेली नामक ज्वालामुखी के दर्शन से मुझे जैसा आनन्द मिला वैसा नियागरा के जल-प्रपात के दर्शन से भी न मिला था। प्रकृति के भिन्न भिन्न रूपों के दर्शन से मानव-मनो-विकाश के ज्ञान-विस्तार में कितनी सहायता मिलती है, यह कहना दुस्तर है। पाश्चात्य सभ्यता के दौरदौरे में इस देश-विदेश-भ्रमण से बहुत लाभ होता है। मेरी इच्छा है कि पूर्वी देशों के निवासी भी दिन पर दिन अधिक संख्या में विदेश-यात्रा करने निकलें। हिन्दुओं के शास्त्रों में देशाटन करने की आज्ञा है। यदि यह भाव भारत की चहार-दीवारी के बाहर भी भारत-वासियों को ले जाय तो क्या ही उत्तम हो। मैं इस होटल में बड़े आराम से रहा। यहाँ हर प्रकार की सुविधा थी।
>
> हस्ताक्षर—
> १० ज्येष्ट १९०२

होटल से बिदा हो कर मैं जहाज़ की ओर रवाना हुआ। रास्ते में एक जगह कटहल का वृक्ष देखा, जिस पर कटहल लगे थे। तोड़ कर तरकारी बनाने को जी चाहा, पर मन को रोक कर चला आया। मार्ग में कोई विशेष घटना नहीं हुई। जहाज़ के किनारे यात्रियों की भीड़ थी। अधिकांश जापानी यात्री ही देख पड़ते थे। ये लोग अपनी पोशाक में थे और फूलों तथा पत्तों की मालायें पहने थे। जहाज़ के नीचे चटाई बिछा कर बैठते थे। इन्हें देख कर द्वारका जानेवाले जहाज़ पर हिन्दू-यात्रियों का चित्र आँखों के सामने आ गया। बिदा होने के समय आबाल-वृद्ध-वनिता रो रो कर बड़ी घड़ी झुक झुक जुहार करते थे। इसे देख मुझे भी अपने इष्ट-मित्रों से बम्बई में बिदा होते समय का दृश्य याद आ गया। आँखों में जल भर आया। मुशकिल से तबीअत को रोक कर जहाज़ के ऊपर जी बहलाने चला गया।

होनोलूलू को मैं फिर लौट आया। हिलो, अर्थात् ज्वालामुखी, के दर्शन से लौटने के उपरान्त इस होनोलूलू नगर में प्रायः चार दिन तक निवास किया। मैं, इस बार, नगर के बीच में बैसडोल नामक होटल में ठहरा। यहाँ डेढ़ डालर प्रति दिन किराये पर अच्छा कमरा मिला था। इन चार दिनों में मैंने एक चीनी का कारख़ाना, अक्वेरियम् अर्थात् मछली-घर, संग्रहालय और पुस्तकालय देखा। इनका संक्षिप्त वर्णन सुनाता हूँ—

चीनी का कारख़ाना—इस द्वीप-माला की ख़ास या यों कहिए कि प्रधान जीविका का सहारा ईख-चीनी से है। प्रायः सभी कारख़ाने बड़े बड़े हैं और सभी में धन का प्रधान अंश अमरीका-निवासियों की जेब से आया है इसी कारण आय का भी विशेषांश उन्हीं की जेबों में जाता है। इस पर भी मज़दूरी का भाग हवाई-द्वीप के निवासियों को मिलता है। यहाँ के निवासियों से किसी विशेष जाति

को न समझना चाहिए, क्योंकि यहाँ कई जातियाँ बस गई हैं, जिनका ब्योरा इस प्रकार है—

हवाईवाले	२६,०४१
एशियावाले	३,७३४
पोर्टोरिकावाले	४,८९०
काकेशियावाले	१४,८६१
जापानी	७९,६७४
हबशी और उनके मेल से उत्पन्न	६९५
पोर्चुगीज़	२२,३०३
स्पेन-निवासी	१,९९०
चीनी	२१,६७४
कोरियावाले	४,५३३
और लोग	११,५०८
	१,९१,९०९

इस तालिका से आपको ज्ञात हो गया होगा कि १,९१,९०९ मनुष्यों में हवाई के निवासी केवल २६,०४१ हैं अर्थात् उनकी संख्या कुल जन-संख्या में १३·५°/० है। यहाँ जापानियों की संख्या बहुत बढ़ रही है। इस समय भी उनकी संख्या ७९,६७४ है अर्थात् कुल जन-संख्या में ४१·५°/०। जिस प्रकार यह संख्या बढ़ रही है उससे उक्त राष्ट्र को आशङ्का है कि कुछ दिनों बाद यह द्वीप-माला जापानी मनुष्यों से भर जायगी। तब कदाचित् जापान, इसे अपना उपनिवेश बना कर, इस पर अधिकार जमाना चाहे। इस द्वीप तथा संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका में यदि आप किसी से बातें करें तो आपको पता लग जायगा कि संयुक्त-राष्ट्र और जापान में स्वाभाविक शत्रुता है। आज जापान को त्रिमूर्त्ति मित्र-दल का साथी समझ कर इस भ्रम में पड़ना भूल है कि जापान और त्रिमूर्त्ति का स्वार्थ एक ही है। वास्तव में इस संसार में कोई भी किसी का मित्र नहीं। निःस्वार्थ मित्रता केवल स्वप्न-मात्र है। "सुर नर मुनि सबकी यह रीती—स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती"।

अफ़ीमचियों की पङ्क्ति से अलग होकर, दूसरे एशियायियों को अँगड़ाई लेता छोड़, पीठ झाड़ पोंछ कर, जापान उठ खड़ा हुआ है और कहने लगा है कि सारे संसार में राज्य करने का ठेका गौर-वर्ण मनुष्यों, अर्थात् योरप और अमरीकावालों ने ही नहीं ले लिया। पर यह कहने से ही काम नहीं चलता। कहने को तो चीन, हिन्दुस्तान, फ़ारिस सभी यही बात कहते हैं, पर उनकी सुनता कौन है। किन्तु जापान ने सुनाने के लिए बड़े बड़े मेगोफ़ोन बनाये हैं, जिनके द्वारा शब्द की गति बढ़ जाती है और उसे बहरे आदमी भी सुनने लगते हैं। ये मेगोफ़ोन जहाज़, तोपें और बन्दूकें हैं। इनके द्वारा मनुष्य की शक्ति बढ़ जाती है।

हवाई के ४ प्रधान द्वीपों में, १९१४ ईसवी में, ६,१७,०३८ टन अर्थात् इसके २७ गुना मन चीनी तैयार हुई। इस छोटी सी द्वीपमाला में, जिसमें दो लाख से भी कम मनुष्य रहते हैं अर्थात् जहाँ की जन-संख्या काशी से भी कम है वहाँ, चीनी के ५५ कारख़ाने हैं और डेढ़ करोड़ मन से भी अधिक चीनी बनती है। यह सब उन्नति १५ साल से भी कम समय में हुई है।

जिस कारख़ाने को मैं देखने गया था उसकी ईख के खेतों में २००० मनुष्य काम करते हैं। किन्तु कारख़ाने में केवल ८२ मनुष्यों से ही सब काम हो जाता है। यह कलों की कृपा है। जो महाशय मुझे यह कारख़ाना दिखा रहे थे वे पहले मुझे एक जगह ले गये। वहाँ पर मोटी मोटी ईखों से भरी गाड़ियाँ खड़ी थीं। ऊपर से एक लोहे की सिकड़ी—जिसमें काँटे निकले थे—माला की भाँति घूमती जाती थी और गाड़ियों से एक साथ ईख उतार कर ज़मीन पर फेंकती जाती थी। यह ईख जली सी जान पड़ती थी। इसलिए मेरे प्रश्न करने पर बताया गया कि हाँ, पत्ती दूर करने के लिए ये जलाई जाती हैं। मैंने पूछा कि क्या इस तरह जलाने से चीनी को नुक़सान नहीं पहुँचता। जवाब मिला कि हाँ, चीनी को नुक़सान पहुँचता है और पत्तियाँ जल जाने से वे खेत में नहीं पड़तीं, जिससे खेत भी कमज़ोर होजाते हैं। पर पत्तियाँ नोचने की बनिस्बत जलाने से मज़दूरी में बचत हो जाती है। उस बचत के आगे वह नुक़सान कुछ नहीं।

ईख रेलगाड़ियों से लोहे के एक विशेष चौड़े पटरे पर गिरती है। जब ईख की एक ख़ास मिक़दार नीचे गिर पड़ती है तब यह पटरा सबको लेकर एक विशेष यन्त्र द्वारा ऊपर चढ़ता है। वहां से ईख कोल्हू में गिरती है। वह कोल्हू लोहे के मोटे मोटे तीन बेलनों का है और बीच में

चाकुओं का एक बेलन है। पहला बेलन ईख तोड़ देता है, दूसरा उनसे रस निकाल देता है। फिर चाकुओंवाला बेलन उन्हें काट देता है। अन्त का बेलन रहा सहा रस भी निकाल लेता है। दूसरी ओर सूखे भूसे की भांति खोई निकलती है। वह एञ्जिन में, कोयलों के बदले, झोंक दी जाती है। इसका काग़ज़ भी बन सकता है। यद्यपि इसका काग़ज़ बहुत चिमड़ा नहीं होता तथापि मोटा काग़ज़ या दफ़्ती इसकी बहुत उत्तम बन सकती है।

यहाँ ईख में १०० में प्रायः १५ या १६ भाग चीनी का होता है। पेराई के बाद खोई में कुछ अधिक भाग चीनी का रह जाता है, जिसके निकालने का यदि यत्न किया जाय तो आय से व्यय अधिक पड़े।

यहाँ रस छाना जाता है और तोल कर पकने भेजा जाता है। पकाने के बाद (यहाँ पर मुझे दिखानेवाले ने वह प्रक्रिया साफ़ साफ़ नहीं बताई) उसमें शायद चूना मिलाते हैं, जिससे वह कुछ साफ़ हो जाता है। फिर पका कर उसे लाल शकर की भाँति बना लेते हैं। बहुत से कारख़ाने इसी लाल शकर का ही चालान कर देते हैं। पर इस कारख़ाने में इसे साफ़ करते हैं। साफ़ करने के लिए यह फिर गलाई जाती है। गलाने के उपरान्त हड्डी के कोयले में यह छानी जाती है और गन्धक का धुआँ भी इसे दिया जाता है, जिससे इसका रङ्ग सफ़ेद हो जाता है। फिर यह पका कर गाढ़ी राब के सदृश बनाई जाती है। इसके बाद, हादी महाशय की सेन्ट्री-फ़ूगल मशीन के सदृश, मशीन द्वारा चीनी में से जूसी अलग कर ली जाती है। फिर एक विशेष मशीन में सुखा कर बोराबन्दी करके बाहर भेजने को तैयार होती है। रस से लेकर चीनी बनने तक एक से कम भाग चीनी का और नष्ट हो जाता है। अर्थात् १०० मन गन्ने में प्रायः १६ मन चीनी का भाग होता है। पर चीनी कोई १४ मन तैयार होती है, अर्थात् २ मन नष्ट जाती है। दरियाफ़्त करने पर मुझे मालूम हो गया कि सब दे ले कर कारख़ानेवालों को अन्त में -) सेर फ़ायदा होता है—यह कम नहीं है। खेद है कि मैंने अपने देश में कभी इसका परता नहीं देखा। किन्तु समझ में नहीं आता कि हमें इसमें नुक़सान क्यों होगा। नुक़सान का कारण केवल एक ही मालूम पड़ता है अर्थात् बड़े कारख़ानों का न होना। यहाँ के कारख़ानों के पास अपने खेत हैं, चीनी और शराब बनाने के अपने कारख़ाने हैं और अपनी ही आढ़त में चीनी बिकती है। यदि हम भी ऐसा ही करें तो अवश्य फ़ायदा हो।

हमारे यहाँ की ईख बहुत पतली होती है। कारण यह है कि खेतों में ख़ूब खाद नहीं पड़ती। यदि ईख की पत्ती भी खेत में डाल दी जाय तो खेत को काफ़ी खाद मिल जाय। ईख अच्छी बनाने के लिए अच्छा बीज लेना चाहिए और उसे वैज्ञानिक रीति से बोना, खाद देना तथा सींचना भी चाहिए। यह सब उसी समय हो सकता है जब आधुनिक कुप्रथा मिटे अर्थात् किसानों के पास अधिक भूमि हो, जिससे उनमें यथेष्ट उपचार के लिए काफ़ी धन लगाने की योग्यता हो। यह दो प्रकार से हो सकता है। एक तो आज-कल की ज़मींदारी की कुप्रथा दूर होने से अर्थात् या तो ज़मींदार रहें ही नहीं, या ज़मींदार स्वयं ही कृषक बन जायँ। दूसरे कृषक लोग एकत्र हो कर, समवाय-समिति बना कर, एके से काम करें। एक मनुष्य के जोत में बहुत भूमि आ जाने से अथवा ज़मींदारों के स्वयं खेतिहर बन जाने से देशवासियों का नुक़सान नहीं, किन्तु फ़ायदा है। क्योंकि अधिक मनुष्य उस नई अवस्था में उसी खेत पर, जिसे वे जोतते थे और झञ्झट उठाने पर भी पेट भर अन्न नहीं मिलता था, मज़दूर की भाँति काम करेंगे और झञ्झट से बचेंगे। शाम को मज़दूरी लेकर वे आनन्द से दिन काटेंगे। दूसरी ओर खेतिहर भी अधिक भूमि होने के कारण खाद देने और कुवें बनवाने में अधिक धन ख़र्च कर सकेगा, जिससे खेती वर्षा पर ही आश्रित न रहेगी।

बेदख़ल होने के डर से छोटे छोटे किसान खेतों को अधिक उपजाऊ बनाने में अभी पैसा नहीं लगाते। क्योंकि वे नहीं जानते कि उनका अधिकार कब तक खेत पर बना रहेगा। सो उपर्युक्त युक्ति से यह डर भी मिट जायगा। ज़मींदार के स्वयं खेतिहर हो जाने पर उसे बेदख़ल करनेवाला कोई होहीगा नहीं।

नये यन्त्रों के प्रयोग से मनुष्यों की आवश्यकता अवश्य घटेगी, पर उसी के साथ यन्त्रों के दर्शन-मात्र से अन्य

औद्योगिक राहें खुल जावेंगी। केवल कृषि पर अवलम्बित रहनेवाला देश संसार में जी नहीं सकता। वस्तु उपजा कर उसे काम के लायक़ बनाना भी उपजानेवाले का ही काम है। यदि ऐसा न होगा तो मलाई दूसरे मार ले जायँगे और छाँछ हमें मिलेगी, जैसा अभी होता है।

जूट हम उपजाते हैं, पर बुनते हैं दूसरे। रुई हम पैदा करते हैं, पर कपड़े बनाते हैं दूसरे। तेलहन के लिए हम खेतों में मरते हैं, पर तेल पेरते हैं अन्य लोग। इसी कारण हम ग़रीब हैं, दीन हैं, दुखी हैं, पेट भर अन्न नहीं मिलता। क़हत, प्लेग, मरी, वबा सदा सताये रहती है। यहाँ अमरीका और हवाई में ६) रुपया रोज़ मज़दूरी मिलती है। अपने देश से जो भाई मज़दूरी के लिए यहाँ आये हैं, उन्हें भी इतना ही मिलता है। ३) रुपया रोज़ खाते हैं बाक़ी सङ्ग्रह करते हैं। हमारे देश में २॥) रुपया महीना भर में मिलता है। यह क्यों? क्या हम लोग मनुष्य नहीं हैं? नहीं, हैं तो मनुष्य; लेकिन सोते हैं, जागते नहीं; और अपना काम दूसरों से करा कर उनका पेट भरते हैं। खुद भूखों मरते हैं।

ईख पेरने में अच्छा कोल्हू न होने से बहुत सा रस खोई में रह जाता है। फिर तुरन्त रस को पका कर गुड़ या राब न बना लेने से रस खट्टा हो जाता है, जिससे शीरा अधिक निकलता है। ये सब दिक़्क़तें, अधिक धन लगा कर एक जगह कारख़ाने बनाने से, दूर हो सकती हैं; इसका एक-मात्र उपाय भारत की जीवन-प्रणाली को बदलना ही है।

मत्स्यालय—यह मत्स्यालय समुद्र के किनारे है। नगर से यह प्रायः ढाई कोस दूर है। किन्तु ट्राम-गाड़ी इसके द्वार के सामने से होकर गुज़रती है। इस कारण नगर-निवासियों अथवा यात्रियों को यहाँ आने-जाने में कोई असुविधा नहीं। सन् १९०४ में इस मत्स्य-भवन को महाशय चार्ल्स एम्० कुक और उनकी पत्नी ने, महाशया जेम्स बी० कासेल की दी हुई भूमि पर, बनवा दिया था। इसमें मत्स्यों को एकत्र करने तथा उनकी देख-भाल का व्यय होनोलूलू रेपिड ट्रस्ट कम्पनी करती है। इस इमारत के बनवाने में २०,००० डालर लगे थे, किन्तु इसमें बराबर वृद्धि होती रहती है। यह मत्स्यालय सप्ताह के सभी दिनों में दर्शकों के लिए खुला रहता है और दर्शक २५ सेंट देने से भीतर जाकर प्रकृति के अद्भुत रहस्य का दर्शन कर सकता है।

हवाई-द्वीप के निकटवर्ती समुद्र में प्रायः चार सौ प्रकार की भिन्न भिन्न मछलियाँ पाई जाती हैं। इनमें से अनेक विलक्षण रूप की हैं। इनके रङ्ग को देख कर मनुष्य चकित हो जाता है। अत्यन्त सुन्दर सुन्दर रङ्ग, विचित्र विचित्र स्वरूप और मानव-विचार-शक्ति भिन्न भिन्न आकारों के जितने मेल बना सकती है सभी यहाँ के समुद्र में विराजमान हैं। इन जलचरों के स्वरूप में जितनी ही विभिन्नता है उतना ही अधिक रङ्गों का भी मेल है। इनके रूप-रङ्ग का वर्णन करना कठिन है। इन्द्र-धनुष में कोई भी ऐसा रङ्ग नहीं जो यहाँ न पाया जाता हो, अथवा चतुर चितेरे जितने रङ्ग मिलाने की शक्ति रखते हैं वे सभी यहाँ पाये जाते हैं। इन मीन-कुण्डों को देखने से मालूम होता है कि इन जन्तुओं को किसी कारीगर ने चित्रित किया है। किन्तु चित्रण इतना विचित्र, उत्तम और कठिन है कि उसकी नक़ल करना अच्छे अच्छे मुसव्विरों के लिए कठिन ही नहीं, असम्भव है। केवल लाल, पीले, नीले, काले, बूटीदार, कई रङ्ग के तथा विलक्षण प्रकार के चित्रों से चित्रित कहने से ही काम नहीं चलेगा। असल में बिना उनको देखे उनका अनुमान करना कठिन है। मैंने यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार की प्रायः दो सौ मछलियों के दर्शन किये। इनका जो प्रभाव मन पर पड़ा उसका उल्लेख नहीं हो सकता।

सङ्ग्रहालय—पाश्चात्य सभ्यता की यह विशेषता है कि सभी नगरों में यहाँ के पुरातन रीति-रिवाज, चाल-ढाल को भले प्रकार समझने तथा दूसरों को बताने के लिए बड़े बड़े सङ्ग्रहालय निर्माण किये जाते हैं, जिनमें वहाँ की सब वस्तुयें एकत्र करके रक्खी जाती हैं। इस छोटे से नगर में भी एक सङ्ग्रहालय है जिसके निरीक्षक पण्डित-वर टी० बृधम महोदय हैं। आपने इसी संस्था के सम्बन्ध में एक बार सारे संसार की यात्रा की है और एक पुस्तक भी उसी के सम्बन्ध में लिखी है।

इस सङ्ग्रहालय में इस द्वीप-माला के सम्बन्ध की सभी वस्तुयें हैं। पुराने देवता, मन्दिर और बलिदान-

स्थान, मकानों के नक़्शे, भोजन बनाने की रीति एवं कपड़े-लत्ते, फल-फूल, जलचर, नभचर, पशु, पत्ती, इत्यादि सभी कुछ हैं। विशेष कर मुझे इनके कपड़े बहुत अच्छे लगे। वे एक विशेष प्रकार के वृक्ष की छाल भिगो कर और उसे पीट कर बनाये जाते थे। काठ के बेलनों द्वारा यह छाल धीरे धीरे पीटी जाती थी। इससे वह बढ़ कर कागज़ की भाँति हो जाती थी। फिर उस पर पत्तों के रङ्ग से बेल-बूटे बनते थे। पानी में काम आने के लिए इनमें से कुछ कपड़े, विशेष प्रकार का मोम लगा कर, मोमजामे बना लिये जाते थे। गर्म कपड़े इतने गर्म होते थे कि उन्हें ओढ़ कर बर्फ़ में घूमने से भी ठण्ड नहीं लग सकती।

राजाओं के लिए एक विशेष प्रकार का वस्त्र, पत्तियों के परों को एक वस्त्र पर सटा कर, बनाते थे। ये बड़े परिश्रम, समय, तथा अनेक पत्तियों के परों से बनते थे। यहाँ पर ऐसे बहुत से वस्त्र रक्खे हैं। निरीक्षक महाशय ने बताया कि ये वस्त्र चार चार हज़ार रुपये में लेकर यहाँ एकत्र किये गये हैं। ये बड़े विलक्षण हैं, और देखने में बड़े सुन्दर लगते हैं। हवाइयन हिस्टारिकल सोसाइटी के एक व्यक्ति से भी वार्त्तालाप करने का अवसर मुझे मिला। आपसे भी इस द्वीप के निवासियों के बारे में बहुत कुछ मालूम हुआ।

नीचे लिखी दो-चार बातें और बता कर मैं इस द्वीप-माला के वृत्तान्त को समाप्त करूँगा। इस द्वीप-माला के द्वीपों के नाम, उनका क्षेत्रफल और उनमें बसनेवालों की संख्या का हिसाब नीचे दिया जाता है—

द्वीप का नाम	जन-संख्या	क्षेत्रफल
हवाई	५५,३८२	४,०१५ वर्ग मील
माऊई	२८,६२३	७२८ ,, ,,
ओआऊ	८१,९९३	५९८ ,, ,,
काऊआई	२३,७४४	५४७ ,, ,,
मोलोकाई	१,७९१	२६१ ,, ,,
लानाई	१३१	१३९ ,, ,,
नीहाऊ	२०८	७३ ,, ,,
काहूलावे	२	४४ ,, ,,
मिडवे	३५	,, ,,

इस छोटे से द्वीप-पुञ्ज में ज़रा शिक्षा का प्रसार और पाठशालाओं की संख्या तो देखिए।

पाठशाला	संख्या	शिक्षक			विद्यार्थी		
		स्त्री	पुरुष	जोड़	स्त्री	पुरुष	जोड़
सर्वसाधारण की	१६८	५७१	१४२	७१३	१२३७५	१४६१५	२६९९०
व्यक्ति विशेष की	५१	२०६	१०१	३०७	२७३९	३५५९	६२९८
	२१९	७७७	२४३	१०२०	१५११४	१८१७४	३३२८८

अब ज़रा विचार कीजिए कि काशी नगर से छोटी जन-संख्यावाले देश में २१९ पाठशालायें हैं! शिक्षकों की संख्या १,०२० है और विद्यार्थी ३३,२८८ हैं। जन-संख्या पर यह १७ फ़ी सैकड़े पड़ी अर्थात् यहाँ सभी बालकों को पाठशालाओं में जाने का अवसर मिलता है। इसीसे यहाँ इतनी उन्नति है।

यहाँ के व्यापार का हाल भी सुनिए। १९१४ में यहाँ से माल की रफ़्तनी ४,१५,९३,८२५ डालर की हुई और आमदनी ३,२०,५५,९७० डालर की। अर्थात् इस देश ने माल अधिक भेजा और मँगाया कम। बाक़ी रुपया घर में आया जिससे देश धनी हुआ।

बाहर भेजी गई ख़ास ख़ास वस्तुयें ये हैं—

लाल शक्कर ३,२१,०६,०११ डालर की
सफ़ेद चीनी १०,७९,९०९ ,,
फल और मेवे ४७,८३,५८३ ,,

राष्ट्रीय कर से यहाँ १९१४ में ३९,२५,१८७ डालर आय हुई और व्यय ४२,६२,८६३ हुआ। अर्थात् आय से व्यय अधिक हुआ। यह आश्चर्य्य की बात नहीं। सभी जीवित देशों में ऐसा ही होता है। जनता पर कर उतना ही लगाया जाता है जितना कि साधारण व्यय की आवश्यकता होती है। विशेष और असाधारण व्यय के लिए क़र्ज़ से काम चलाया जाता है।

एक यात्री

वन-वैभव।

[२]

(२६)

वहाँ बहु ऋषि-मुनि आते हैं ;
विविध व्याख्यान सुनाते हैं।
शान्ति उनसे सब पाते हैं ;
कुदिन यों कटते जाते हैं॥
पुरोहित हैं उनके जो धौम्य ,
कराते हैं सु-यज्ञ वे सौम्य॥

(२७)

दिखा कर अपना वैभव-वेश;
जलाने को उनका हृद्देश।
सुयोधन ने तज लज्जा-लेश;
किया वन में जिस समय प्रवेश
युधिष्ठिर शान्त सु-संयत थे ,
रुचिर राजर्षि यज्ञ-रत थे॥

(२८)

देख कर कौरव-दल भयभीत
भगे जो मृग-विहङ्ग कलगीत।
जान निज शरण उन्हें सुविनीत
हुए चिन्तित वे परम पुनीत॥
तभी आये कुछ वनचारी
उन्होंने कथा कही सारी

(२९)

युधिष्ठिर ने ली लम्बी साँस;
भीम के रोम थे कि कुश-काँस।
गड़ी अर्जुन को मानों गाँस;
नकुल के नख में थी क्या फाँस ?
सन्न सहदेव हुए निरुपाय,
हँसी या रोई कृष्णा हाय !

(३०)

मौन था फिर भी सभी समाज;
द्रौपदी बोली तब सव्याज—
"भाइयों की सुध लेने आज
पधारे हैं कौरव-कुल-राज॥
मिलूँगी, पर, मैं कैसे हाल—
खिंचा है चीर, खुले हैं बाल !

(३१)

करें आतिथ्य आप सब लोग;
रङ्क-राजों का हो संयोग।
हाय रे ! भङ्ग-भाग्य के भोग;
मरण ही है मेरा उद्योग !"
उमड़ आये फिर अश्रु असीम;
गरज कर बोल उठे तब भीम॥

(३२)

"उचित आतिथ्य करूँगा मैं;
हीनता सभी हरूँगा मैं,
काल से नहीं डरूँगा मैं;
कि मारूँगा कि मरूँगा मैं॥
गिरा कर सुगुरु गदा की गाज;
चुका लूँगा सब बदला आज॥

(३३)

द्रौपदी, मत हो यों बेहाल;
भीम जीवित है अरि-कुल-काल।
स्व-कर कर शत्रु-रुधिर से लाल;
वही बाँधेगा तेरे बाल॥
स्वयं हरि ने होकर अनुकूल;
दिया है तुझे अनन्त दुकूल॥

(३४)

हमारा विभव हमीं को आज;
दिखाने आया शत्रु-समाज ।
नहीं आती नीचों को लाज;
देख लूँगा मैं सारे साज ।
हँसें वे, मैं मुहँ तोडूँगा;
न जीता उनको छोडूँगा ॥"

(३५)

भीम थे या था क्रोध कठोर;
गिरा थी उनकी या घन-घोर ।
पार्थ ने धर धन्वा की डोर;
दृष्टि की धर्मराज की ओर
कि मिल जावे उनका आदेश ;
और मिट जावें मन के क्लेश ॥

(३६)

फेर कर तब धीरज के साथ
भाइयों की पीठों पर हाथ ।
विश्व-विश्रुत गुण-गौरव-गाथ,
बोलने लगे पाण्डुकुलनाथ—
"शान्त हो भाई, कृष्णे, शान्त;
न आतुर हो तुम यों एकान्त ॥

(३७)

हुआ जो सारा विभव विनष्ट;
हुए जो हम सब राज्य-भ्रष्ट ।
भोगने पड़े हमें जो कष्ट;
दोष यह है मेरा ही स्पष्ट;
किन्तु ज्यों तुमने इसे सहा;
सुनो त्यों मेरा आज कहा ॥

(३८)

पिता के हम प्रिय छोटे थे;
मरे जब वे, हम छोटे थे ।
रुदन कर भू पर लोटे थे ;
हमारे दिन जो खोटे थे ॥
उठाया था हम को किसने ?
उसे हैं सौ प्रणाम जिसने

(३९)

वही पालक बालकपन के ;
पिता हैं इस दुर्योधन के ।
वही रक्षक हैं जीवन के;
बड़े चाचा पाँचों जन के ॥
पूर्ण करके त्रुटियाँ सारी ।
बनी माद्री माँ गान्धारी ॥

(४०)

उन्हीं ने हमें सँभाला था;
पिता-माता ज्यों पाला था ।
प्यार सौ पुत्रोंवाला था;
तदपि हमको दे डाला था ॥
उन्हीं का सुत होने से मात्र
क्षमा का है दुर्योधन पात्र ॥

(४१)

सोच कर उनके वे उपकार;
क्षम्य हैं उसके दुर्व्यवहार ।
कहूँगा मैं भी किन्तु पुकार ;
न छोड़ेंगे हम निज अधिकार ॥
उचित समझेंगे हम जब जो,
करेंगे उनके हित सब सो ॥

(४२)

नहीं स्वत्वों का जिसको ध्यान ;
फेरता है वह विभु का दान ।
और करता है निज अपमान ;
किन्तु हम हैं क्षत्रिय-सन्तान ॥
करेंगे चाहे जितना त्याग ।
न छोड़ेंगे भय से निज भाग

(४३)

अबल भी हों तो क्या परवाह;
करेंगे हम स्वधर्म-निर्वाह ।
मरें भी पर न करेंगे आह;
स्वर्ग की खुली पड़ी है राह ॥
हमारा नहीं, प्रजा का राज्य ।
किन्तु वह नहीं धर्मतः त्याज्य

(४४)

करें तो कर लें वे उपहास;
पूर्ण हो ले अज्ञात-निवास ,
जायँगे तब हम उनके पास;
और फिर माँगेंगे निज न्यास ॥
उसे यदि देंगे वे हित मान;
क्षमा पावेंगे बन्धु-समान ॥

(४५)

किन्तु यदि वे हठ ठानेंगे,
न्याय की बात न मानेंगे ,
याद रक्खें, तो जानेंगे;
हमें मर कर पहचानेंगे ॥
राज्य के नहीं, धर्म के अर्थ;
उठेंगे तब ये शस्त्र समर्थ ॥

(४६)

शान्त हो भाई, कृष्णे, शान्त;
न आतुर हो तुम यों एकान्त ।
अभागा दुर्योधन है भ्रान्त;
न हो निज सहनशीलता श्रान्त ॥
तुम्हें है क्रोध, मुझे है खेद
नहीं है उसे हिताहित-भेद ॥

(४७)

दयामय, उसे बुद्धि-वर दो;
भाइयो, तुम भी यह कर दो ।
और उसको कुछ अवसर दो;
धैर्य अपना न यहीं धर दो ॥
क्षमा करके हरि ने सौ दोष,
किया था चेदीश्वर पर रोष ॥

(४८)

नहीं हो सकते हैं हरि हम;
स्वयं प्रभु हैं वे पुरुषोत्तम ।
किन्तु अनुकृति ही है क्या कम;
करेगी वही हमें सक्षम ॥
इसी से होते हैं अवतार;
कि उनसे शिक्षा ले संसार ॥”

(४९)

कहा तब अर्जुन ने—“हे आर्य्य !
आपका शासन शिरसा धार्य्य ।
हमारा क्रोध रहे अनिवार्य्य;
सफल हों किन्तु आपके कार्य्य ।
तदपि क्या दुर्योधन का चित्त;
फिरेगा अब भी शान्ति-निमित्त ?

(५०)

भले ही कुछ भी हो परिणाम;
फलाफल से है हमें न काम ।
करेंगे हम स्वकर्म निष्काम;
विफल भी देंगे वे विश्राम ॥
और भी शान्त रहें ये बाण,
हमारे हैं बस आप प्रमाण ॥

(५१)

शान्त हो आर्य्य भीम, इस बार”
भीम तब बोले मन को मार—
“आर्य्य का है जब यही विचार;
वहन करना ही होगा भार ॥
सहा सब इनके कहने से;
हटेंगे अब क्यों सहने से ?

(५२)

आर्य्य के पीछे बहु अपमान;
सहे हमने सम्मान समान ।
आज भी वही हमारा ध्यान;
किन्तु यह जीवन है बे-जान ॥
करूँ तो जाकर अब मैं लोप,
हिंस्र जीवों पर ही यह कोप ॥”

(५३)

भीम यों कह कर वचन यथार्थ;
गये आवेग-सदृश मृगयार्थ ।
समझ निष्फल-सा निज पुरुषार्थ ;
हुए निश्चल भी चञ्चल पार्थ ॥
युधिष्ठिर देकर पुनः प्रबोध,
मेटने लगे सभी का क्रोध ॥

(असमाप्त)

मैथिलीशरण गुप्त

क़ैसर का वर्तमान जीवन ।

समय की विचित्र गति है । जो क़ैसर संसार में महासाम्राज्य स्थापन करने के सुख-स्वप्न देखा करता था, वही आज हालेंड के एक ग्राम में अपने दिन बिता रहा है । सहस्रों मनुष्यों का सहायक और शरण-दाता क़ैसर आज दूसरों की शरण का भिक्षुक है ! जिस हालेंड को वह तुच्छ और नगण्य समझता था, उसी की उदारता और शरणागत-धर्म ने आज उसे महान् अभियोग के जाल से उबारा है । क़ैसर के अतीत गौरव पर जितना ही ध्यान जाता है, उतनी ही जिज्ञासा उत्कट होती है कि आज-कल उसका जीवन किस प्रकार व्यतीत हो रहा है ।

क़ैसर की वर्तमान जीवन-चर्य्या के विषय में लोगों ने अनेक प्रकार की कल्पनायें की हैं । कुछ ने उसे पराजय से लज्जित और उदासीन चित्रित किया है, तो औरों ने उसे क्रूर कर्मों के प्रायश्चित्त में संन्यस्त-वृत्ति-परायण बताया है । पर, इस समय उसकी जो दशा है उसका चित्र कविवर भर्तृहरिजी के भावपूर्ण शब्दों में अच्छा उतरता है—"आपत्सु च महाशैलशिला-सङ्घातकर्कशम्" । सम्पत्ति में उसका हृदय चाहे जैसा रहा हो, परन्तु इस आपत्काल में तो उसने शैल-शिला को भी मात कर दिया है । सारा संसार कुछ भी कहे, पर क़ैसर अपने मन में अब भी जर्मनी का सम्राट् बना है । जर्मनी में वह जैसी आत्म-श्लाघा, जैसा आत्म-गौरव और जैसा आत्माभिमान प्रदर्शित करता था, वही भाव हालेंड में भी उसकी बातों से टपकता है । सच है, प्राण और प्रकृति साथ ही पलटते हैं । बर्लिन के शाही महल में जिस प्रकार उसके आदेशों का पालन किया जाता था उसी तरह एमरजन के क़िले में भी होता है ।

क़ैसर की दिन-चर्य्या पूर्ववत् है । वह सबेरे, ठीक सात बजे, उठ बैठता है । आठ बजे कुछ कलेवा करता है । दस बजे तक पत्र-व्यवहार का कार्य्य करके व्यायाम करने लगता है । वह आरी से लकड़ी के चौरस टुकड़े काटा करता है । इन टुकड़ों पर नम्बर, तारीख़ और अपने हस्ताक्षर करके, अपने चित्रों के स्थान में, वह इनका प्रयोग करता है । शाम को हजामत बनवा कर, सैनिक वेष में, वह खाना खाता है । बातचीत करने का वही शाही ढङ्ग है; पर बीच बीच में चित्त की अस्थिरता प्रकट हो ही जाती है ।

स्वभाव वैसा ही उद्दण्ड है । एक दिन क़ैसर ने, शाहज़ादे के ज्येष्ठ पुत्र के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में, अपने सब आदमियों को दरबारी पोशाक में आने की आज्ञा दी । भूल या अज्ञान के कारण काउंट एलडस्टेट नामक एक मनुष्य सादी पोशाक में ही उपस्थित हुआ । यह देख कर क़ैसर के क्रोध का ठिकाना न रहा । उसी समय, एमरजन छोड़ कर जर्मनी लौट जाने का उसको हुक्म हो गया ।

क़ैसर के स्वाभिमान की मात्रा में भी रत्ती भर की भी कमी नहीं हुई । जो सरदार लोग उसके साथ हैं उनमें से केवल छः को ही वह अपने साथ, एक ही मेज़ पर, खाना खाने के योग्य समझता है । उसके साथियों की तो बात दूर रही स्वयं क़िले का स्वामी भी "महाराज" के सिवा और किसी सम्बोधन का प्रयोग उसके लिए नहीं कर सकता । पूर्व-मर्यादा में ज़रा सी भी कमी वह सहन नहीं कर सकता । उसकी ऐसी चाल-ढाल देख कर जान पड़ता है मानों वह केवल जल-वायु-परिवर्त्तन के लिए वहाँ आया है ।

जो मनुष्य झूठा अभिमान करता है, उसका मान-भङ्ग करने में लोगों को भी मज़ा आता है । क़ैसर को चिढ़ाने के लिए लोग पत्रों के सरनामे पर "विलियम होहेनज़ोलर्न एस्कायर"

या "मिस्टर विलियम होहेनज़ोलर्न" अथवा "हर विलहेल्म होहेनज़ोलर्न" लिखते हैं । एक दिन, इसी तरह का, एक पत्र सेक्रेटरी ने कैसर के हाथ में दे दिया । लिफ़ाफ़े पर इस ढङ्ग से अपना नाम लिखा देख उसको इतना क्रोध हुआ कि सेक्रेटरी के गाल पर उसने ज़ोर से थप्पड़ मार दिया ! और यदि वह भाग न जाता तो न जाने उसकी और क्या दुर्दशा होती । इस बर्ताव से सेक्रेटरी को ज़रा भी आश्चर्य्य नहीं हुआ । क्योंकि वह कैसर की रोषाग्नि की प्रचण्डता से पूर्णतया परिचित था; पर इतनी शिक्षा अवश्य मिली कि भविष्यत् में ऐसे पत्रों को हाथ जोड़ कर वह भस्म करने लग गया ।

कैसर को शिल्प-कला सिखाने के लिए जो कारीगर एमरजन में रक्खा गया था उसे कैसर के स्वभाव को जानने का यह पहला ही अवसर मिला था । एक दिन बात-चीत करते करते कैसर ने कहा, "युद्ध के कारण जर्मनी, संसार की गति में, सौ वर्ष पीछे पिछड़ गया है । यदि शान्ति बनी रहती, तो हम लोग न जाने सभ्यता के किस सोपान पर पहुँच गये होते । यदि योरप के राज्य-मण्डल में मेरी बात ज़रा भी सुनी जाय तो अपने जीवनकाल में न तो मैं एक गोली चलने दूँ और न एक भी तलवार म्यान से बाहर निकलने दूँ" । इन वचनों पर कारीगर को इतना दृढ़ विश्वास हो गया कि उसने "कैसर से बातचीत" नामक एक लेख लिखा । उसमें वह कहता है कि कैसर की सहृदयता पर मुझे पूर्ण विश्वास है । मुझे भरोसा है कि वह अपने वचनों का पालन करेगा और योरप में शान्ति-स्थापना करने में अपने सामर्थ्य का उपयोग करेगा ।

परन्तु कैसर के मन में कुछ और ही है । अनेक मनुष्यों के सामने वह दो-चार बार कह चुका है कि जर्मनी में जब तक सम्राट् की प्रतिष्ठा न की जायगी, तब तक शान्ति नहीं हो सकती । जर्मनी में तथा पूर्व में भी अशान्ति और गड़बड़ के समाचार सुनते ही वह परम प्रसन्न होता है । प्रति दिन तार द्वारा ख़बरें मिलने के लिए उसने पूर्ण प्रबन्ध कर रक्खा है । नीले कपड़े के एक बोर्ड पर प्रति दिन तार लगा दिये जाते हैं ।

दुर्घटना की आशङ्का के कारण ही कैसर के लिए वह क़िला कारागार में परिणत हो गया है । इस आशङ्का से वह कहीं बाहर नहीं निकलता कि हवाई जहाज़ पर से कोई गोला न मार दे । इसी कारण, उसने कई नौकरों को आकाश की ओर बराबर दृष्टि रखने के लिए आज्ञा दे रक्खी है । बाहर से कोई उसको देख न ले—इस डर से उसने मकानों की दीवारें ऊँची करवा दी हैं ।

इस आपत्काल में उसकी महारानी के कार्य देख कर भूरि भूरि प्रशंसा करनी पड़ती है । "आपत्काल परखियहि चारी । धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी " की परीक्षा में वह उत्तमता से उत्तीर्ण हुई है । जिस समय कैसर चारों ओर निराशा का अन्धकार देख कर अकुला उठता है, उस समय महारानी अनेक ऐतिहासिक दृष्टान्त सुना कर उसके हृदय में आशा का उजेला फैला देती है । अपने कामों का स्मरण करके जब वह उन्माद के आवेश में आता है तब महारानी मीठे रसीले वचनों से उसके हृदय में शान्ति का स्रोत सञ्चारित करती है । सदा उसके पास रहती है । उसे पत्र और पुस्तकें पढ़ पढ़ कर सुनाया करती है । पत्र-व्यवहार में उसको सहायता देती है । अपने पति के स्नेह-साम्राज्य में विचरण करती हुई वह अपने को सब तरह सुखी समझती है ।

सबसे छोटा प्रिन्स, जोकिम, कैसर को बहुत प्यारा है । उसका सुन्दर चित्र मेज़ के सामने की दीवार पर सदा लगा रहता है । बड़े शाहज़ादे, ल्युडनडार्फ़, होलवेग, वान कलक इत्यादि के चित्र

भी उसी कमरे में लगे हैं। पहले-पहल बेन्टिक-कैसल में आते ही कैसर ने एक कमरे में वीर नेलसन का तैलचित्र देखा। इससे वह इतना भड़क उठा कि केवल उस चित्र को ही वहाँ से नहीं निकलवा दिया, किन्तु इस असावधानी के लिए गृह-स्वामी को भी खूब आड़े हाथों लिया।

आवेश के वेग में आकर कैसर पागलों की तरह काम कर डालता है। महायुद्ध का इतिहास लिखने के लिए उसने बेरन सारवर्ग को अपने यहाँ रोक लिया है। जर्मन दृष्टि से इस युद्ध का मूल कारण बता देना ही इस पुस्तक का मुख्य हेतु है; और कैसर-कथन के अनुसार ही वह लिखी जाती है। परन्तु यह कार्य्य न जाने किस अशुभ घड़ी में आरम्भ हुआ है कि उसकी समाप्ति के कोई लक्षण नहीं देख पड़ते। बेरन का लेख दो बार नष्ट किया जा चुका है। पहली बार विचार बदल जाने के कारण ८० पृष्ठ अग्निदेव की भेंट किये गये। कैसर ने बेरन से कहा कि जो कार्य्य करने में मेरा दिल दुखे उसको न करना ही बुद्धिमानी है। कुछ दिनों बाद यह कार्य कर डालने का विचार फिर उत्पन्न हुआ। कुछ सप्ताह पश्चात् छः प्रकरण तक पढ़ कर वह क्रोध के मारे उबल उठा और कहने लगा कि यह शैली क्षमा-पात्र की सी प्रतीत होती है। मुझे जो रुचा, मैंने किया; उसके लिए माफ़ी माँगना या कारण बतलाना मैं कदापि नहीं चाहता। इतना कहते कहते उसने काग़ज़ों को नोच करके रद्दी की टोकरी में डाल दिया। परन्तु अब वही कार्य फिर आरम्भ किया गया है। मन की मौज इसी को कहते हैं।

कैसर पर एक धुन और भी सवार है। कभी कभी वह एकाएक अदृश्य हो जाता है। जब वह सम्राट् था तब भी, कभी कभी, अचानक कहीं चल देता था और एकाएक आ जाता था। बेन्टिक-कैसल से एक बार तीन दिन तक वह ग़ायब रहा। तरह तरह की गप्पें उड़ने लगीं। किसी ने कहा, वह भाग गया। किसी ने कहा, पेरिस चला गया। परन्तु वह सरहद के एक छोटे से गाँव में मौजूद था। एक रात उसने एक मज़दूर के झोंपड़े में बिताई। दो रातें रेल की गाड़ियों में काटीं। चौथे दिन अचानक क़िले में उपस्थित हो गया!

एमरजन का बेण्टिक-कैसल योरप के इतिहास में एक प्रसिद्ध स्थान है। फ्रान्स के राजा लुई चौदहवें ने, नैदरलैंड के सैन्य-समूह का सामना करने के लिए प्रस्थान करते हुए, यहीं मुक़ाम किया था। कहते हैं, रूस के मास्को नगर से लौट कर नेपोलियन ने भी उसी कमरे में विश्राम किया था जिसमें इस समय कैसर निवास करता है। उसका भाड़ा कैसर को प्रति मास पाँच सौ पाउंड देना पड़ता है। मकान के बाग़-बाग़ीचों के माली और नौकरों का वेतन गृह-स्वामी ही देता है।

विधि और समय के नियोग से आज कैसर इस दुर्गति में है। सोचने को उसने सब कुछ सोचा, पर हुआ वही जो परमात्मा चाहता था! जो रात को राव के ठाठ से सोया था, उसी को सबेरे रङ्क के रूप में प्राण लेकर भागना पड़ा। किसी कवि ने ठीक कहा है, "न जाने जानकीनाथ प्रातः किन्तु भविष्यति"?*

युगलसिंह

सुख और दुःख।

(१)

जगत् यह दुःख-सुख-मय है अगर यह हम समझते हैं;
समझिए तो, कि इनका भेद ही हम कम समझते हैं।
समझवाले इन्हें बस एक मन का भ्रम समझते हैं;
बुरा क्या वे समझते हैं बहुत उत्तम समझते हैं॥
हमारी वेदना ही दुःख-सुख का मूल होती है।
कभी प्रतिकूल होती है कभी अनुकूल होती है॥

---

* "बीसमीं सदी" नामक गुजराती मासिक पत्र के एक लेख के आधार पर।

(२)

हमें मिलता परम सुख है हुई जो बात मनभाई ;
हुआ प्रतिकूल मन के कुछ कि बस दुख की घड़ी आई।
यदपि हैं पुष्प कण्टक एक ही—देनों सगे भाई ;
सुख-प्रद एक है तो दूसरा है तीव्र दुखदायी।
वही सलिला सरस जिसमें हमारी सैर होती है,
महा निर्मम हृदय बन कर भरी-नौका डुबोती है॥

(३)

दिवाकर की दया पर यदि वनज-वन फूल जाता है ;
सुधारसमय करों पर वह भ्रमर-सा भूल जाता है॥
उसी की चाल से तो वह गँवा जड़ मूल जाता है ;
सलिल रखता न वह फिर डाल सिर पर धूल जाता है।
महा यह मित्र खोटा था न कुछ भी तो खरा निकला।
मधुर मधु-पूर्ण प्याला जानते थे विष-भरा निकला॥

(४)

जिसे हम सुख समझते हैं वही दुख से बदलता है ;
अधिक, सुस्वादु-भोजन अन्त में अत्यन्त खलता है।
शलभ ले दीप-दर्शन-सुख उसी के साथ जलता है ;
हुआ आनन्द कुछ तो साथ ही आँसू निकलता है।
चमन में फूल हँसते हैं पड़ी है ओस रोती है।
बहुत रोई हँसी कम शमुअ भी ख़ामोश होती है॥

(५)

मगर इसमें नहीं सन्देह ये सब खेल मन के हैं ;
तमाशे इस जगत् में कुल इसी के बाँकपन के हैं।
इसी के फेर में पड़ लोग घर के हैं न वन के हैं ;
इसी ने डाल रक्खे फन्द ये जीवन-मरण के हैं।
हँसाता है घड़ी भर तो महीनों है रुलाता भी।
दिखाता दुःख सुख दोनों छुड़ाता भी मिलाता भी॥

(६)

मनस्वी वीर अपने चित्त पर अधिकार रखते हैं ;
न दुख की भीति रखते हैं न सुख का प्यार रखते हैं।
स्ववश ये इन्द्रियाँ क्या, वे सकल संसार रखते हैं ;
हृदय में लोक का उपकार निज उद्धार रखते हैं।
नहीं कर्तव्य से हैं दुःख सुख उनको डिगा सकते।
वही हैं कर्म के मैदान में कुछ काम आ सकते॥

सनेही

योरप का महायुद्ध और हिन्दुस्तान का सराफ़ा।

[२]

काउन्सिल-ड्राफ़्ट।

सबसे पहले हम भारतीय मुद्रा-व्यवस्था की उस शाखा का उल्लेख करते हैं जो भिन्न भिन्न देशों के लेन-देन निपटाने में सहायक होती है। उसको काउन्सिल-ड्राफ़्ट कहते हैं। काउन्सिल-ड्राफ़्ट से हमारा अभिप्राय भारतवर्ष पर की गई उस मुद्दती और तार की हुण्डी से है जो भारत-मन्त्री हिन्दुस्तान को द्रव्य भेजनेवाले व्यापारियों को, भारत-सरकार पर, बँधे हुए भाव से, लिखते हैं। इण्डिया काउन्सिल के आफ़िस से लिखी जाने के कारण उनका नाम काउन्सिल-ड्राफ़्ट रख दिया गया है। हुण्डी द्वारा भारत से इँगलेंड रुपया भेजने की चाल कुछ आज-कल की नहीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी इसी तरह यहाँ का धन इँगलेंड भेजती थी। हुण्डी का सारा कारोबार इँगलेंड में इण्डिया आफ़िस करता है।

जन-साधारण के लिए सरकारी टकसाल बन्द होने तक (सन् १८९३ तक) तो भारत-मन्त्री को होम-चार्जेज़ की पूर्ति के लिए ही इन हुण्डियों द्वारा भारतवर्ष से रुपया इँगलेंड खींचना था। परन्तु सन् १८९९ से यह कार्य दिन दिन बढ़ता ही जाता है। इसी लिए सन् १९०४ ईसवी में भारत-मन्त्री ने १ शिलिंग ४⅛ पेंस प्रति रुपये के भाव से भारत-सरकार पर अगणित हुण्डियाँ बेचने की इच्छा प्रकट की। इस इच्छा का फल यह हुआ है कि भारतवर्ष से होम-चार्जेज़ के सम्बन्ध में जितना सोना इँगलेंड भेजना पड़ता है उसका ख़र्च ही भारतवर्ष को नहीं बच गया। उसे सोने-चाँदी के जाने-आने की डबल ख़र्च की बचत मद्धे लगभग २३ लाख रुपये सालाना मुनाफ़ा भी हुआ है। यह कुछ छोटा मोटा लाभ नहीं। पर इस लाभ के परदे में एक गुप्त रोग छिपा हुआ है। वह भारतवर्ष के लिए हानिकर है। २३ लाख की यह बचत भारतवर्ष से प्रति वर्ष लगभग पन्द्रह करोड़ रुपये की सोने-चाँदी की आय को रोक देती है। इँगलेंड

के अतिरिक्त आस्ट्रेलिया आदि देशों से आनेवाली सोने-चांदी की आय को इँगलेंड की ओर यह मोड़ देती है। इसका कारण यह है कि इँगलेंड से भारतवर्ष तक सोना लाने का सारा ख़र्च पन्द्रह रुपये पर लगभग दो आने पड़ता है। और भारत-मन्त्री इससे कम भाव में भारत-सरकार पर की गई अनन्त हुण्डियां बेचने को हर समय लन्दन के सराफ़ा-बाज़ार में तैयार रहते हैं। अतः उन व्यापारियों को, जिन पर भारतवर्ष का देना है, अपना देना हुण्डियों द्वारा चुकाना लाभदायक हो जाता है। ऐसा करने से उन्हें लगभग १½ रुपया सैकड़े की बचत रह जाती है। परन्तु शङ्का यह होती है कि यह फ़ायदा भारतवर्ष को उसी दशा में हो सकता है जब उसका वैदेशिक व्यापार सदा उसके अनुकूल हो। (If the balance of trade be always in favour of India) क्योंकि बिना इसके इँगलेंड आदि देशों से भारतवर्ष में सोना आना असम्भव है। परिणाम यह निकलता है कि क्या भारतवर्ष का वैदेशिक व्यापार भारतवर्ष को सदा ही लाभदायक रहता है? इस शङ्का का समाधान निम्नलिखित तालिका से पाठकों को सहज ही ज्ञात हो सकेगा।

सन्	आमदनी से रवानगी की अधिकता का परिमाण करोड़ रुपये	होम-चार्जेज़ करोड़ रुपये
१९०२—०३	४३·५	२७·७
१९०३—०४	६०·१	३४·८
१९०४—०५	५३·२	३६·६
१९०५—०६	४९·५	४७·४
१९०६—०७	६०·०	५०·१
१९०७—०८	४०·८	२२·१
१९०८—०९	२४·३	२०·८
१९०९—१०	६२·२	४१·१
१९१०—११	७५·२	३९·७
१९११—१२	८४·०	३३·६
१९१२—१३	७९·५	३८·७
१९१३—१४	५७·७	४६·६
१९१४—१५	३७·२	११·५
१९१५—१६	६४·०	३०·३
१९१६—१७	८१·३	× × ×

भारतवर्ष के बजट में प्रति वर्ष भारत-मन्त्री को भेजी जानेवाली रक़म का अन्दाज़ा लगा लिया जाता है। यह अन्दाज़ा साधारण समयों में ठीक उतरता है। लड़ाई के प्रथम वर्ष में (१९१४-१५ में) इसी रीति के अनुसार भारत के अर्थ-सचिव ने अपने जमाख़र्च-विषयक प्रस्ताव में भारतमन्त्री के लिए ३० करोड़ रुपयों की गुञ्जाइश रक्खी थी। यह अन्दाज़ा मार्च महीने में किया गया था जब युद्ध की कोई आशङ्का न थी। परन्तु दैवप्रकोप से इसके दो ही महीने पश्चात् युद्ध का मारू बाजा पश्चिमीय रण-क्षेत्र में बजने लगा। उसने भारतीय व्यापार में ही नहीं, किन्तु समस्त संसार के व्यापार में एक-दम उथल-पथल मचा दी। इस कारण, विदेशी पूँजी सभी कहीं से खींची जाने लगी। भारतवर्ष से इन चार ही पांच महीनों में विदेश को माल भी न भेजा जा सका। इन दोनों कारणों से विलायत के बाज़ार में भारतवर्ष पर की गई हुण्डियों के ख़रीदारों का अभाव सा हो गया और बेचनेवालों की संख्या बेहद बढ़ गई। इसलिए हुण्डी का भाव बहुत गिर गया। भारत-मन्त्री उस समय ३० करोड़ के स्थान में ३० लाख की भी हुण्डियाँ न बेच सके। इस परिस्थिति से लोग बेहद घबरा गये। उन्हें भारतवर्ष के वैदेशिक व्यापार की सुदूर-स्थिति बहुत ही निराशामय प्रतीत होने लगी।

विलायत भेजनेवालों को हमारी भारत-सरकार साधारणतया रुपयों के बदले गिन्नियां दे दिया करती है। परन्तु सच पूछिए तो वह ऐसा करने के लिए बँधी नहीं। यह केवल उसकी सदिच्छा पर आश्रित है। इस दशा में हम उसे हुण्डी के भाव को नीचा गिरने से रोकने के लिए भी किसी प्रकार नहीं दबा सकते। परन्तु उसे यदि अपनी प्रजा का सुख अभीष्ट है तो वह अपने इस अधिकार को कार्य-रूप में परिणत करने के बदले काग़ज़ में लिखा रखना ही अच्छा समझती है। इसीलिए वह समय असमय पर विलायती हुण्डी के भाव को १ शिलिङ्ग ३$\frac{२९}{३२}$ पेन्स के लगभग रखने की चेष्टा किया करती है।

इस समय की स्थिति को समझने के लिए ख़ास तौर पर ध्यान देने की बात यह है कि विलायत के बाज़ार में, जहाँ भारतवर्ष पर की गई हुण्डी की मांग सदा ही बनी रहती है, इस महायुद्ध के प्रारम्भ में यह मांग एक-दम घट गई थी।

इसके विपरीत भारतवर्ष के बाज़ार में विलायत पर की गई हुण्डियों की माँग बहुत ही बढ़ गई थी। भारतवर्ष में हुण्डी का भाव जो सदा १ शिलिङ्ग $३\frac{२९}{३२}$ पेन्स से ऊँचा रहा करता था वह इस विरुद्ध प्रभाव के कारण इससे भी नीचे गिरने लगा। इतने पर भी लोगों को विलायत रुपया भेजने के लिए हुण्डी अथवा सोना उचित परिमाण में न मिल सका। इस दुहरी मार से भारतवासियों को बचाने के लिए भारत-सरकार ने जो चेष्टायें उस समय कीं वे सभी चेम्बरलेन-कमीशन की सूचना के अनुसार थीं। पहली चेष्टा तो यह थी कि उसने दस हज़ार से कम एक-मुश्त माँगनेवाले व्यापारियों को गिन्नियाँ देना ही बन्द कर दिया। ऐसा करने के थोड़े ही दिनों बाद जब स्थिति सुधरती न देख पड़ी और सुवर्ण-कोष दिन पर दिन घटने लगा तब उसे अधिक घटने से रोकने के लिए उसने सर्वसाधारण को गिन्नियाँ देना ही बन्द कर दिया; और विलायत पर की गई हुण्डी १ शिलिङ्ग $३\frac{२९}{३२}$ पेन्स के भाव से १५ लाख रुपयों की प्रति सप्ताह बेचने का अभिवचन दिया। इन हुण्डियों को अँगरेज़ी में रिवर्स बिल्स (Reverse Bills) कहते हैं। फिर कुछ दिनों बाद, विलायत पर की गई तार की हुण्डी फ़ी १ शिलिङ्ग $३\frac{२७}{३२}$ पेन्स के भाव से बेचना शुरू कर दिया। इन दोनों ही तरीक़ों से उस वर्ष उलटे १३ करोड़ रुपये के विलायत पर किये गये रिवर्स बिल्स भारत-सरकार ने बेचे, जिन्हें भारत-मन्त्री को सकारना पड़ा। हुण्डियाँ बेचने से भारत-सरकार को यहाँ पर जो रक़म मिली वह सारी की सारी यहाँ गोल्ड स्टेण्डर्ड रिज़र्व में जमा की गई। और इतनी ही रकम विलायत में रक्खे हुए गोल्ड स्टेण्डर्ड रिज़र्व के कोष से निकाल कर भारत-मन्त्री ने हुण्डियाँ सकार दीं। इस तरह हुण्डियाँ बेचने से भारत-मन्त्री को केवल ११·५५ करोड़ रुपये मिले और $१३\frac{१}{२}$ करोड़ के लगभग की हुण्डियाँ सकारनी पड़ीं। अर्थात् तीस करोड़ को छोड़ उसे भारतवर्ष से गत वर्ष तक कोई ३२ करोड़ रुपया उलटा बाक़ी लेना रह गया।

विदेशी लेन-देन तो जैसे तैसे निपटाया गया, परन्तु इधर भारतवर्ष में एक और उपाधि उठ खड़ी हुई। लड़ाई से घबरा कर लोग डाकख़ाने के सेविङ्ग बेङ्कों से अपना अपना रुपया उठाने लगे। इससे डाकख़ानों में, जहाँ देखो वहीं, ख़ासी भीड़ जमा रहने लगी। लोगों की माँग पूरी करने के लिए डाकख़ाने को १०॥ करोड़ रुपया सरकार ने गोल्ड-स्टेण्डर्ड-रिज़र्व से उधार दिया, और डाकख़ाने पर आई हुई इस आफ़त से किसी तरह पल्ला छुड़ाया।

अस्तु, भारत-मन्त्री ने युद्ध के प्रथम वर्ष में अपने ख़र्च का प्रबन्ध इस प्रकार किया—

(अ) १३ करोड़ के लगभग तो उन्हें इँगलेंड की सरकार से, भारत-सरकार के खाते, लड़ाई के सामान के लिए ख़र्च करने की मद में मिले।

(आ) ६ करोड़ रुपये जो उन्हें भारतवर्ष के लिए क़र्ज़ लेने थे उसके बदले उन्होंने १५॥ करोड़ रुपया क़र्ज़ लिया।

(ई) और १॥ करोड़ रुपये इँगलेंड में स्थित पेपर-करन्सी-रिज़र्व से निकाल कर उसकी चलतू रोकड़ में जमा किये और उतनी ही रक़म यहाँ चलतू रोकड़ से पेपर-करन्सी रिज़र्व में रख दी गई। इस प्रकार पहला वर्ष बीत गया।

लड़ाई का दूसरा वर्ष।

सन् १९१५-१६ ईसवी के जमा-ख़र्च के प्रस्ताव में भारत-मन्त्री के लिए १०॥ करोड़ रुपये की गुञ्जाइश रक्खी गई। इस वर्ष के प्रारम्भ के कुछ महीनों तक हुण्डी का भाव बहुत नरम था, परन्तु सितम्बर १९१५ से वह ज़रा कड़ा हो गया, और धीरे धीरे जाड़ों के मौसम तक विलायत में भी भारतवर्ष पर की गई हुण्डी की माँग बहुत बढ़ गई। इसका कारण यह था कि अब लोगों ने अपने दिल को लड़ाई के धक्के सह कर कड़ा कर लिया था और व्यापार अपनी सामान्य गति पर आ गया था। लड़ाई के दूसरे वर्ष भारतवर्ष से चाय, चमड़ा और सन बहुत बड़ी तादाद में विदेश गया और बहुत ऊँचे भाव पर बिका। पर वहाँ से बहुत ही अल्प मात्रा में कपड़ा, कलें आदि सामान भारतवर्ष में आ सका। इस स्थिति का परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष सदा की तरह इँगलेंड का लेनदार हो गया। इस कारण लड़ाई के दूसरे वर्ष में काउन्सिल-ड्राफ़्टों की माँग ख़ूब तेज़ रही; और भारत-मन्त्री ने साल भर में लगभग ३० करोड़ रुपये की हुण्डियाँ बेच दीं। इन तीस करोड़ की हुण्डियों को सकारने के अलावा भारत-सरकार को उस साल लगभग २३ करोड़ रुपये का लड़ाई का सामान, और ४॥

करोड़ रुपये गेहूँ की ख़रीद के खाते विलायत-सरकार के लिए ख़र्च करने पड़े। इस प्रकार विलायत-सरकार की लगभग ४८॥ करोड़ रुपये की मांग को पूरा करने के लिए उन्होंने इँगलेंड में स्थित पेपर-करन्सी-रिज़र्व के भाग में सिक्यूरिटीज़ की तादाद बढ़ा कर भारतवर्ष के पेपर-करन्सी रिज़र्व से १२। करोड़ रुपया इस काम के लिए अलाहदा कर लिया। इसके सिवा, लगभग ११। करोड़ रुपये गोल्ड-स्टेन्डर्ड-रिज़र्व की भारतीय शाखा में से निकाल कर इँगलेंड में गोल्ड-स्टेण्डर्ड-रिज़र्व की शाखा में भारत-मन्त्री द्वारा बढ़ा दिये गये। इस प्रकार भारत-सरकार की रोकड़ बाक़ी में उस वर्ष लगभग २४ करोड़ की वृद्धि हुई। साथ ही नवीन रुपये भी बम्बई और कलकत्ते की टकसालों में बहुत अधिक परिमाण में ढाले गये। इन उपायों से भारतवर्ष की रुपये की माँग किसी क़दर उस वर्ष पूरी कर ली गई।

युद्ध का तीसरा वर्ष।

परन्तु यह मांग अब किसी तरह कम होनेवाली न थी। युद्ध की असुविधा से सब लोग निडर हो चुके थे। वैदेशिक व्यापार भी फिर जाग उठा था। इसलिए भारत-सरकार को युद्ध के तृतीय वर्ष (१९१६–१७) में इन उपायों को, विस्तृत रूप में, काम में लाना पड़ा। इस वर्ष भारत-मन्त्री के लिए भारतीय आय-व्यय के चिट्ठे में केवल ७॥ करोड़ रुपये की ही गुञ्जायश रक्खी गई थी। इसका कारण यह था कि भारत-मन्त्री को विलायत में भारतवर्ष के खाते विलायत और आस्ट्रेलिया की सरकार से लगभग २७ करोड़ रुपया मिलनेवाला था और जो आख़िरी साल तक २७ करोड़ के लगभग मिला। भारतवर्ष का वैदेशिक व्यापार तब तक पूर्ण-रूप से सञ्जीवित हो चुका था। यहां से विलायत को रुई, गेहूँ, चमड़ा तथा अलसी, सरसों आदि तिलहन ख़ूब गया। उधर सूत और भिन्न भिन्न प्रकार के कपड़े आदि का भाव विलायत में बहुत चढ़ गया था। इसलिए विलायत में भारतीय हुण्डियों (Councils) की मांग इतनी कड़ी थी कि भारत-मन्त्री ने इस वर्ष के प्रथम आठ महीनों ही में (१ अप्रेल १९१६ से १४ दिसम्बर १९१६ तक) लगभग ३० करोड़ रुपये की हुण्डियां बेच दीं। इसके सिवा, भारत-सरकार को दिन पर दिन विलायत-सरकार के लिए युद्ध का सामान ख़रीदना पड़ता था और उसकी क़ीमत भी चुकानी पड़ती थी। इससे भारतीय बाज़ार में रुपये की बहुत खींच थी। इस पर भी भारतवर्ष का चलन-बाज़ार सिक्का मेसोपोटामिया, ब्रिटिश ईस्ट आफ़्रीका और मिस्र में काम आने के लिए प्रचुर परिमाण में भेजा जा रहा था। इस समय भारतीय सराफ़े बाज़ार की ठीक वही दशा थी जो एक दिवालिये की चोरी हो जाने पर अथवा दुष्काल-पीड़ितों की मलमास आ जाने पर हुआ करती है। रुपये की ऐसी कड़ी माँग को पूरा करने के लिए टकसाल में रात-दिन रुपये ढलवाने के अतिरिक्त पेपर-करन्सी-रिज़र्व और गोल्डस्टेण्डर्ड-रिज़र्व की इँगलेंडवाली शाखा के काग़ज़ी भाग में वृद्धि करके भारतीय सरकार ने भारत के पावने का परिमाण बढ़ाने का प्रयत्न किया। यहां और वहां, दोनों ही जगह, रुपयों के लिए चांदी ख़रीदी गई। फिर भी व्यवस्था ठीक न हुई। क्या भारतीय बाज़ार में और क्या विलायती बाज़ार में भारतीय सिक्के की अपरिमित मांग थी। उसे इन साधारण उपायों से पूरा करने में भारत-सरकार बिलकुल असमर्थ थी। इसलिए पहले पहल भारतीय सिक्के की विलायती मांग को कम करने की चेष्टा की गई। इसके लिए भारत-मन्त्री ने १६ दिसम्बर १९१६ को विलायत में घोषणा कर दी कि हम अभी कुछ समय तक **इन्टरमीडियेट बिल्स**[1] न बेचेंगे; और प्रति बुधवार को ८० लाख रुपये की हुण्डियों की दर १ शिलिङ्ग ४$\frac{१}{८}$ पेंस के भाव से ऊपर और तार की हुण्डियों की दर १ शिलिङ्ग ४$\frac{५}{३२}$ पेंस के भाव से ऊपर के **टेंडर** स्वीकार करेंगे। इस घोषणा में, कुछ दिन बाद, यह बात और बढ़ा दी गई कि किसी भी मनुष्य को दस लाख रुपये से ज़ियादह की हुण्डी एक सप्ताह में न मिलेगी

इन दोनों घोषणाओं ने विलायती और भारतीय, दोनों ही बाज़ारों में बहुत हलचल मचा दी। सराफ़ा-बाज़ार में रुपयों (सिक्कों) का एक-दम टोटा हो गया। ख़ास ख़ास बेंकों ने विलायत से रुपयों की सहायता न पा सकने की आशङ्का करके अपनी पूँजी, व्यापार करने

---

[1] इन्टरमीडियेट बिल्स वे काउन्सिल बिल्स हैं जो भारत-मन्त्री बुधवार से मङ्गलवार तक भारतवर्ष के लिए रुपये भेजनेवाले को देते हैं।

को उधार देने से, इनकार कर दिया । हाँ, सरकार ने भी रेलवे कम्पनियों द्वारा माल भेजना प्रायः बन्द करवा कर बम्बई के सराफ़ा-बाज़ार को थोड़ा सा सहारा दिया; परन्तु वह विशेष उपयोगी न हुआ । भारत-मन्त्री की इस घोषणा का यही पहला प्रभाव भारतीय सराफ़ा-बाज़ार पर पड़ा ।

दूसरा प्रभाव जो इस घोषणा ने भारतीय सराफ़ा-बाज़ार पर डाला वह काग़ज़ों (Securities) के भावों पर पड़ा । इस घोषणा के होते ही काग़ज़ का भाव एकदम नीचे गिर गया । भाव गिरने का कारण यह था कि जिन बेङ्कों ने ये काग़ज़ गिरवी रख कर लोगों को रुपया उधार दिया था, वे उन्हें अपना क़र्ज़ चुका देने अथवा काग़ज़ रखने के लिए मजबूर करने लगे । पर पूँजी पास न होने के कारण ये लोग गिरवी रक्खे गये अपने काग़ज़ बेच बेच कर रुपया अदा करने लगे । इसलिए काग़ज़ का बाज़ार भी बेहद गिर गया ।

तीसरा प्रभाव हमारे वैदेशिक व्यापार पर पड़ा । जो बेङ्क वैदेशिक व्यापार के लिए पूँजी उधार दिया करते हैं, अब वे उधार देने से हिचकिचाने लगे; इसी लिए हमारा निर्गत व्यापार रुद्धप्राय हो गया ।

चौथा प्रभाव हमारे सारे व्यापार पर पड़ा । उसे भी इस कारण से बहुत धक्का पहुँचा ।

ऐसी परिस्थिति को सुधारने के लिए चारों ओर से सूचनायें दी जाने लगीं । कुछ विद्वानों ने इस सङ्कटापन्न स्थिति का निवारण करने के लिए और सराफ़ा-बाज़ार में उचित संख्या में रुपये उपस्थित करने के लिए पेपर करन्सी-रिज़र्व में से रुपये निकाल कर उसी परिमाण में उसका काग़ज़ी अंश बढ़ाने की सम्मति दी । कुछ ने इस युक्ति का अवलम्बन हानिकारक सिद्ध करते हुए सरकार को नोटों का चलन भी बढ़ाने की सम्मति दी । उन्होंने कहा कि यदि एक रुपये और ढाई रुपये के नोट चलाये जायँ तो भारतीय सिक्कों का बाज़ार बहुत कुछ ढीला हो सकता है । लोगों को चाँदी अथवा सोने के सिक्के से कुछ प्रयोजन नहीं है । सिक्के काम में लाने का मुख्य हेतु है विनिमय की सहूलियत । यह काम काग़ज़ी रुपये से भी उसी प्रकार हो सकता है जैसा कि धात्विक रुपये से । कुछ लोगों ने इस सूचना का विरोध भी किया और अब तक करते जा रहे हैं । इन लोगों का मत है कि एक रुपये और ढाई रुपयेवाले नोट भारतवर्ष में प्रचलित न करना चाहिए ; क्योंकि नोटों का चलन समाज के विकास से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रखता है । यदि समाज शिक्षित है तो वह इस प्रकार के उपायों को ख़ुशी से काम में ला सकता है । परन्तु अशिक्षित समाज में इस उपाय से कामयाबी नहीं हो सकती । भारतवर्ष अर्ध-शिक्षित और अशिक्षित सा ही है । यहाँ ५ रुपये के नोटों का चलन भी सन् १९१० से १९१६ तक केवल २॥ करोड़ रुपयों ही का रहा है । अतः वे लोग सरकार को ऐसी आपत्तिकारक युक्तियों का अवलम्बन करने की सलाह नहीं देते । इसके साथ ही वे प्रथम युक्ति के विषय में भी कहते हैं कि यदि नोटों का चलन न बढ़ा कर पेपर-करन्सी-रिज़र्व का काग़ज़ी भाग बढ़ा दिया जायगा तो सरकार अपने आप को व्यर्थ ही आपत्ति में फाँस लेगी । क्योंकि पेपर-करन्सी-रिज़र्व में अभी तक जितनी धातु है वह नोटों के मूल्य से कम है ; अर्थात् काम पड़ने पर देश भर के फालतू नोटों को सकारने के लिए काफ़ी नहीं ।

इन दोनों युक्तियों के अतिरिक्त दो युक्तियाँ और भी बतलाई गईं । यथा—

(१) भारतीय रुपये के बाज़ार को रुपयों से परिपूर्ण करने के लिए अमरीका अथवा जापान से भारतवर्ष में सोना लाने की आज्ञा दी जाय ।

(२) यदि ऐसा न हो सके तो—पेपर-करन्सी-रिज़र्व के धात्विक भाग से सोना निकाल कर बाज़ार में बेचा जाय ।

इन दोनों ही सूचनाओं का तात्पर्य यह था कि जिन लोगों ने रुपये बटोर कर रख छोड़े थे उन्हें सोना देकर उनके पास का रुपया निकलवा लिया जाय । बाज़ार में रुपयों की कमी का ख़ास कारण यह था कि जितना रुपया टकसाल अथवा करन्सी आफ़िस से बाहर निकलता था उसका अधिकांश बाज़ार में न फैल कर कजूसों की तिजोड़ियों में जा छिपता था । युद्ध ने अन्न और कपड़े आदि सभी चीज़ों के भाव आशातीत चढ़ा दिये । इसलिए काश्तकारों को उनके पैदा किये हुए अनाज के बदले में भी ख़रीदारों को पहले की अपेक्षा ज़ियादह रुपया देना पड़ता था । प्रत्येक चीज़ के ऊँचे भाव ने समाज की मुद्रा-

सम्बन्धिनी आवश्यकता बहुत बढ़ा दी थी ; और सरकार रात-दिन टकसाल चला कर इस मुद्रा-सम्बन्धिनी प्यास को बुझाने की प्राणपण से चेष्टा भी करती थी ; परन्तु जिन किसानों को यह रुपया दिया जाता था वे बहुधा इस रुपये को ख़र्च न करके रख छोड़ते थे। बात यह कि इस महायुद्ध ने किसानों को सञ्चय करने की फिर से आदत डाल दी। इस आदत को छुड़ाने के लिए सुवर्ण के अतिरिक्त अन्य हलकी दर की धातु समर्थ न थी। इसी से वह गिन्नी, जिसका मूल्य सरकार ने केवल १५) निश्चय कर दिया था। उस समय १७॥) रुपये तक में बाज़ार में बिकने लगी। फिर कुछ दिन बाद उसका भाव २०) तक हुआ। इन दोनों युक्तियों की सूचना विचारणीय थी और सरकार ने उन पर विचार किया भी ख़ूब।

विद्वानों ने इस विषय में सरकार को जो पहली सूचना दी थी वह भारतवर्ष के लिए निस्सन्देह लाभदायिनी थी। उससे भारतीय-मुद्रा-विषयक प्रश्न हल भी हो जाता। परन्तु भारतीय प्रश्न के साथ साथ हमारी सरकार को साम्राज्य का प्रश्न भी तो हल करना पड़ता है। वह ऐसा काम नहीं कर सकती जिससे साम्राज्य को हानि पहुँचे। इस युक्ति से यदि अमरीका और जापान से सोना आने दिया जाय, तो साम्राज्य को बहुत हानि हो। जापान और अमरीका की हुण्डी का भाव बहुत मन्दा हो जाय और इन देशों के व्यापार को बहुत धक्का पहुँचे। इसी ख़याल से भारत-सरकार ने इस युक्ति का अवलम्ब नहीं किया।

सरकार ने दूसरी ही सूचना से काम निकालने की चेष्टा की। तदनुसार उसने घोषणा द्वारा यह सूचित किया कि सरकार १८ जनवरी सन् १९१७ से प्रति सप्ताह सोना बेचना शुरू करेगी। इस सूचना के अनुसार पञ्जाब आदि में सोना बेचा भी गया। परन्तु स्थिति में विशेष परिवर्तन न हुआ। इस घोषणा के पश्चात् जो सोना दिया गया था वह पेपर-करन्सी-रिज़र्व के भारतीय विभाग का सोना न था। बैङ्क आव् इँगलेंड ने क़रीब क़रीब सोने की सारी खानों का ठेका ले लिया है। भारतवर्ष की कोलर आदि सोने की खानें भी उसी के ठेके में हैं। अभी, लड़ाई की वजह से, इन खानों से निकला हुआ सोना विलायत भेजना धोखे का काम है। अतएव बैङ्क आव् इँगलेंड की ओर से भारत-सरकार उस सोने को अपनी तिजोरी में (Earmark) रख लेती है। यह सोना यहाँ पर निकम्मा ही पड़ा रहता है। इसलिए सरकार ने बैङ्क आव् इँगलेंड से यह तय कर लिया कि भारतवर्ष में पड़े हुए इस सोने को हम काम में लावें और उसके एवज़ में बैङ्क अपने पास पड़े हुए पेपर-करन्सी-रिज़र्व के सोने में से उतना ही सोना लेले। भारतवर्ष में इस सोने की तादाद १०½ करोड़ के लगभग है। सरकार का अनुमान था कि इतनी तादाद में सोना बेचने से सोने का प्रीमीयम उड़ जायगा और गिन्नी का भाव मामूली १५) हो जायगा। परन्तु जब ऐसा होते न देख पड़ा और सोना ज्यों का त्यों ग़ायब होने लगा तब अपने पास के सोने की तादाद को विशेष घटाना उचित न समझ कर सरकार ने सोना देना बन्द कर दिया। इस स्थिति का दोष महायुद्ध अथवा, कुछ पण्डितों के विचार से, हमारी मुद्रा-व्यवस्था के सिर मढ़ा जाता है। यहाँ पर इसके विषय में हमें कुछ कहना नहीं है। परन्तु इतना कह देना कुछ अनुचित भी न होगा कि इस व्यवस्था ने युद्ध-जनित आशङ्का अथवा हलचल को बढ़ाने में अवश्य सहायता दी है। और इस बात को इसके पूर्ण पक्षपाती भी अस्वीकार नहीं करेंगे।

महायुद्ध और चलन-बाज़ार नोट।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, युद्ध का प्रारम्भ होते ही हमारे चलन-बाज़ार नोटों को बहुत धक्का लगा। वैदेशिक व्यापार प्रायः बन्द हो जाने से तथा अनेक प्रकार की अफ़वाहों से घबरा कर लोगों ने,—ख़ास कर हमारे मारवाड़ी भाइयों ने—अपना माल-असबाब तथा धनदौलत आदि सब समेट कर मारवाड़ जाना शुरू कर दिया। अस्तु, जो नोट उनके पास मौजूद थे उनका करन्सी आफ़िस से सिक्कों के रूप में वे परिवर्तन कराने लगे। इस बात से देश के सराफ़ा-बाज़ारों में नोटों पर भी बट्टा लगने लगा। तिस पर भी लोग नोट लेते हिचकते थे। इस दशा में सरकार के सामने दो कठिनाइयाँ थीं—एक तो घर की, दूसरी बाहर की। यदि घर की कठिनता न होती तो सरकार को बाहरी कठिनता दूर करने में कुछ विशेष

आपत्ति न झेलनी पड़ती। इन दोनों ही कारणों ने सिक्के की माँग बेहद बढ़ा दी। सरकार को कल्पनातीत ऊँचे भाव पर चाँदी ख़रीद कर टकसाल में रुपया ढालने के लिए विवश होना पड़ा।

इस आपत्ति से बचने के लिए पहले सोना देने की युक्ति भी आज़माई जा चुकी थी। परन्तु जितना सोना इस तरह बेचा गया वह सट्टेबाज़ों ने ही हड़प कर लिया। स्थिति में कुछ भी सुधार न हुआ। इसलिए सरकार ने १० लाख रुपये का सोना देने के बाद इस तरफ़ से भी हाथ खींच लिया। डाकख़ानों के सेविंग बेङ्कों पर भी रुपये की पूरी पूरी मार थी। वह गोल्डस्टेण्डर्ड-रिज़र्व से १०॥ करोड़ क़र्ज़ लेकर हटाई गई। इन कारणों से नोटों की संख्या, जो युद्ध के पूर्व ५६ करोड़ की थी, घट कर लगभग ४६ करोड़ ही रह गई।

यह बार बार कहा जा चुका है कि युद्ध ने स्थानीय मुद्रा की माँग को बेहद बढ़ा दिया था। अस्तु, धातु के सिक्के की बढ़ती असम्भव देख कर इस काग़ज़ी सिक्के को बढ़ाने की चेष्टा की गई। साथ ही इस काग़ज़ी सिक्के को सकारने के लिए कोष (Paper Currency Reserve) का काग़ज़ी भाग भी शनैः शनैः बढ़ाया गया। युद्ध के पूर्व यह काग़ज़ी भाग लगभग १४ करोड़ रुपये का था। परन्तु यह सन् १९१५ के नवम्बर महीने में बढ़ा कर २० करोड़ कर दिया गया।

पूर्वोक्त घोषणा-पत्र का अनुगामी एक और घोषणा-पत्र, सन् १९१६ के जनवरी मास में, निकाला गया जिससे आवश्यकता पड़ने पर यह काग़ज़ी भाग फिर छः करोड़ की तादाद में बढ़ाया जा सके। इन घोषणापत्रों को, साल के अन्त में, एक क़ानून का रूप दिया गया। प्रथम के छः करोड़, जिनसे कि काग़ज़ी भाग बढ़ाने की आज्ञा दी गई थी, ब्रिटिश ट्रेज़री बिल्स (British Treasury Bills) में लगा दिये गये। उपर्युक्त २० करोड़ के काग़ज़ों में आधे भारतीय काग़ज़ थे और आधे ब्रिटिश अथवा औपनिवेशिक। पूर्वोक्त काग़ज़ी भाग में नोटों की संख्या बढ़ाने के लिए, सन् १९१६ के नवम्बर और दिसम्बर में, २४ करोड़ के काग़ज़ और बढ़ाये गये। इस प्रकार ३१ मार्च सन् १९१७ तक पेपर-करन्सी-रिज़र्व का काग़ज़ी भाग इस प्रकार हो गया—

	लाख रुपये
भारतवर्ष का काग़ज़ी भाग	१,०२०
इँगलेंड में काग़ज़	३,८५०
	४,८७०

इस समय उसकी स्थिति जिस रूप में है उसका उल्लेख ऊपर किया ही जा चुका है।

परन्तु उपर्युक्त सभी प्रयत्न हमारे सराफ़ा बाज़ार को पूर्वावस्था में लाने में कृतकार्य्य नहीं हुए। सोने का प्रीमीवम (बढ़ती दर) दिनों दिन बढ़ता ही गया। टकसाल में रुपया जितने अधिक परिमाण में ढाला जाने लगा उतना ही ज़ियादह खपने भी लगा। सरकार की चाँदी की माँग ने चाँदी का भाव भी १३२) तक बढ़ा दिया। इस अवस्था में गिन्नी की भाँति लोग रुपया भी गलाने लगे। इस प्रकार रुपये की कमी और भी होने लगी। सरकार बड़े सोच विचार में थी। घर में इस प्रकार की स्थिति थी। बाहर—अर्थात् इँगलेंड में—काउन्सिल-बिल्स की माँग दिन पर दिन बढ़ती जाती थी। भारत का वैदेशिक व्यापार (जो युद्ध के पूर्व लगभग ४२१ करोड़ रुपयों का था वह) यद्यपि कुछ विशेष न बढ़ा था, परन्तु निर्यात (Export) व्यापार मूल्य में बहुत ही बढ़ गया था। इसके विपरीत आयात (Import) व्यापार घट गया था। इस कारण, हुण्डी का भाव विलायत के प्रति, दिन पर दिन, विरुद्ध होने लगा। इसको रोकने के लिए सरकार ने गोल्ड-स्टेण्डर्ड-रिज़र्व की जिस प्रकार सहायता ली वह ऊपर लिख ही चुके हैं। परन्तु अब अन्य उपायों से वह इस बात को रोकने लगी। इन उपायों में पहला उपाय युद्ध-ऋण था, जो पहले पहल सन् १९१६ में लिया गया। इसने सरकार की बहुत कुछ सहायता की।

इसके अतिरिक्त सोने और चांदी के आल्पकालिक घोषणा-पत्र भी निकाले गये। इसका कारण यह था कि विलायत में चाँदी का भाव भारतवर्ष की अपेक्षा बहुत ऊँचा चढ़ा हुआ था और इधर भारतवर्ष में सोने का भाव बहुत ऊँचा था। अस्तु, व्यापारी लोग भारतवर्ष से चाँदी भेज कर और विलायत से सोना मँगा कर मुनाफ़ा

सकते थे। इस पर भी विलायत के बाज़ारों में सोने का भाव चढ़ने तथा चाँदी का भाव गिर जाने की सम्भावना थी; और युद्ध के लिए सोने की पूरी पूरी आवश्यकता थी ही। अतः भारतवर्ष के और विलायत के सराफ़ा-बाज़ारों की स्थिति सुधारने के लिए उपर्युक्त दोनों आज्ञायें निकाली गईं, जिनसे जनसाधारण के लिए सोने का मँगाना और चाँदी का भेजा जाना रोक दिया गया। इस घोषणा-पत्र में सूचना दी गई कि जो सोना विलायत से आवेगा वह सब, प्रति गिन्नी १४॥) के भाव से, सरकार ले लेगी। लोग उन्हें १५) अथवा अन्य किसी भी भाव से भारतीय बाज़ारों में न बेच सकेंगे। इस सबका हेतु हुण्डी के भावों को नियमित रखना था। परन्तु इन आज्ञाओं का भी प्रभाव विशेष रूप से कुछ न हुआ। अन्त को भारत-मन्त्री ने हुण्डी का भाव १ शिलिङ्ग ५ पेन्स (अर्थात् नियमित भाव से १ पेन्स ऊँचा) मन्ज़ूर कर दिया। इसी भाव से उन्होंने भारतवर्ष पर की गई हुण्डी देना स्वीकार किया। इस भाव से भी हुण्डियों की माँग विलायत के बाज़ार में किसी क़दर कम न हुई। हुण्डी के इसी भाव को बढ़ने न देने के लिए विगत ही वर्ष, बहुत मतभेद रहने पर भी, सरकार ने एक रुपये और ढाई रुपये के नोटों का चलन शुरू कर दिया था।

परन्तु इन उपायों में से एक भी कारगर न हुआ। भारतीय मुद्रा की बढ़ती हुई माँग कम न हुई। और कम हो भी कैसे? मुख्य मुख्य वस्तुओं के भाव तेज़ होते ही जा रहे हैं। यह बात नीचे की सूची से स्पष्ट विदित होती है।

वस्तु का नाम	कितने पर	भाव				भाव-निदर्शक अङ्क	
		जुलाई १९१४	मार्च १९१५	मार्च १९१६	मार्च १९१७	जुलाई १९१४	मार्च १९१६
	एक मन पर	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.	रु. आ. पा.		
चावल	,,	५-८-२	४-१३-९	२-१३-९	४-७-१०	१००	८१
गेहूँ	,,	४-२-३	५-०-०	३-१५-०	४-५-०	१००	१०४
जौ	,,	३-१-१	३-२-५	३-०-०	२-१५-४	१००	९६
अलसी	,,	५-११-१०	५-०-०	५-२-७	५-७-७	१००	९५
रुई	,,	२०-०-०	१३-१०-०	१९-०-०	२७-८-०	१००	१३७
	,,	९-०-०	५-०-०		७-८-०	१००	८३

उपर्युक्त सूची में विगत पूर्व वर्ष तक के भाव दिये गये हैं। उन्हें देखने से सहज ही विदित होता है कि भाव बढ़ने की ओर हैं। इस साल के भाव तो सबको विदित ही हैं।

इस कारण, चाहे भारतवर्ष के निर्गत व्यापार की तादाद तोल में कम भी हो जाय, परन्तु उसकी क़ीमत दिन पर दिन बढ़ती जाती है। सोने का प्रीमीयम बहुत बढ़ गया है। इसे रोकने के लिए सरकार ने गिन्नियाँ ख़रीद

कर गलानेवालों को सज़ा देने का भी क़ानून बना दिया है। परन्तु इस घोषणा से भी विशेष फल नहीं हुआ। सरकार ने भारतीय निर्गत व्यापार को भी कम करने की चेष्टा की है, परन्तु स्थिति अभी तक पूर्ववत् ही है। स्थिति सुधारने के लिए निकल के सिक्के भी जारी किये गये हैं। बेङ्कों को आज्ञा है कि ऐसे व्यापारियों को मदद न दो जो विलायत आदि देशों को माल भेजते तो हैं, पर वहाँ से मँगाते कुछ भी नहीं। इतना ही नहीं, विलायत से माल मँगानेवाले व्यापारियों में भी उन्हीं व्यापारियों के निर्गत व्यापार को सहायता देने की स्वाधीनता बेङ्कों को दी गई है जो साम्राज्योपयोगी वस्तुओं का व्यापार करते हों—Commodities of National Importance. देश के आन्तरिक व्यापार में भी कुछ प्रतिबन्ध किये गये हैं।

कुछ पण्डितों ने देश की मुद्रा-स्थिति के विषय में आगे के लिए निम्नलिखित सूचनायें की हैं—

(१) चलन-बाज़ार नोट अपरिवर्तनीय (Inconvertible) कर दिये जायँ।

(२) भारतवर्ष में सोने के सिक्के ढालने के लिए टकसाल जारी कर दी जाय और भारतवर्ष के लिए एक सोने का सिक्का प्रचलित करा दिया जाय। यह टकसाल सोना लानेवाले व्यक्ति को, बिना ख़र्च के, सिक्का ढाल दिया करे जैसा कि इँगलेंड में होता है।

(३) एक और युद्ध-ऋण लिया जाय।

(४) आमदनी आदि पर कर बढ़ा दिये जायँ और इसके सिवा एक 'सुपर-टेक्स' और लगाया जाय।

(५) चाँदी की टकसाल भी मुक्त कर दी जाय। ऐसा प्रबन्ध कर दिया जाय कि हर एक व्यक्ति चाँदी लाकर भविष्य में रुपया ढलवा सके। इत्यादि।

इनमें कई युक्तियों से काम लिया जाने लगा है और आशा की जाती है कि यदि स्थिति बिगड़ेगी तो दूसरी युक्तियाँ भी कार्य्यरूप में लाई जायँगी। एकन्नी की भांति निकल की दुअन्नी भी निकाली जा चुकी है। अब तो निकल की चवन्नी और अठन्नी भी ढल गई है। द्वितीय युद्ध-ऋण भी लगभग ५० करोड़ का लिया जा चुका है। पहले जो ट्रेज़री बिल्स निकाले गये थे वे भी इसी के रूपान्तर थे। पोस्टआफ़िस बान्ड्स भी इसी के रूपान्तर हैं। सोने की टकसाल भी बम्बई में खुल गई है और भारतवर्ष के लिए १५ रुपये का एक नया सिक्का उसमें ढाला भी गया है। हुण्डी का भाव १ शिलिङ्ग ५ पेन्स से १ शिलिङ्ग ६ पेन्स कर दिया गया है। गोल्ड एक्सचेंज स्टेण्डर्ड के पक्षपातियों की हर एक दलील को इस युद्ध ने असत्य ठहरा दिया है। भविष्यत् में क्या होगा, सो भगवान् ही जाने।*

कस्तूरमल बाँठिया

मदरासी भाइयों से गाँधीजी की अपील।

अमृतसर की कांग्रेस में हिन्दी या हिन्दुस्तानी का बढ़ा हुआ दौरदौरा देख कर प्रयाग के दैनिक पत्र "लीडर" की तरह श्रीमती एनी बेज़ंट ने भी बहुत हाहाकार मचाया। यह देख कर गाँधीजी से न रहा गया। आपने अपने पत्र "यंग इंडिया" में एक अपील प्रकाशित की। यह अपील आपने अपने मदरासी भाइयों से की है। इसका आशय सुनिए—

मैं यहाँ मदरासी शब्द का प्रयोग उसके प्रचलित अर्थ में करता हूँ। मेरा मतलब मदरास-प्रान्त के सारे निवासियों से है, जो द्राविड़ भाषायें बोलते हैं।

मुझे मालूम होता है कि श्रीमती बेज़ंट इस बार की कांग्रेस के अधिवेशन से निराश हो गई हैं। उनकी इस निराशा का कारण यह है कि कांग्रेस की अधिकतर काररवाई हिन्दुस्तानी भाषा में हुई। अतएव वे इस विचित्र परिणाम तक पहुँची हैं कि हिन्दुस्तानी भाषा के व्यवहार के कारण कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था के उच्च पद से गिर गई। वह प्रान्तिक बन गई! मैं श्रीमती का तथा

---

* यह लेख सितम्बर १९१८ में लिखा गया था। तब से गवर्नमेंट मुद्रा-व्यवस्था में कई एक परिवर्तन कर चुकी है। उनका उल्लेख इस लेख में नहीं। सरस्वती-सम्पादक

उनके द्वारा की गई भारत की सेवाओं का बहुत ख़याल रखता हूँ। स्वराज्य का आन्दोलन जितनी सफलता के साथ उन्होंने किया है उतनी सफलता से कोई और नहीं कर सका। जिस अध्यवसाय तथा योग्यता से वे भारत की सेवा कर रही हैं वह हमारे उन श्रेष्ठ कार्य्य-कर्ताओं में भी नहीं पाई जाती जो उनसे उम्र में बहुत छोटे हैं। श्रीमती बेज़ंट ने अपने जीवन का उत्तमांश भारत की सेवा में लगा दिया है। इसके बदले में भारत ने, सम्भवतः लोकमान्य तिलक के बाद, उन्हीं को मान दिया है। परन्तु अब, इस समय, उनका मत शिक्षितों के एक विशाल दल को मान्य नहीं। इस कारण, उनकी लोक-प्रियता किसी क़दर घट गई है। ऐसी दशा में हिन्दुस्तानी भाषा का व्यवहार करने से कांग्रेस के प्रान्तिक हो जाने का जो मत उन्होंने प्रकट किया है उसका खुल कर विरोध करने में मुझे कष्ट होता है। मेरी तुच्छ सम्मति में विचार-विभ्रम का यह एक ख़ासा नमूना है। और, कर्तव्य-वश मुझे, इसके सम्बन्ध में, यहाँ कुछ कहना पड़ता है। सन् १९१५ से मैं, एक को छोड़, कांग्रेस के सभी अधिवेशनों में उपस्थित रहा हूँ। अँगरेज़ी के मुक़ाबले में हिन्दुस्तानी की उपयोगिता जाँचने के लिए मैंने उन सभी अधिवेशनों को विशेष ध्यान से देखा है। मैंने सैकड़ों प्रतिनिधियों तथा हज़ारों दर्शकों से बातचीत की है। सम्भवतः मेरे परिचय का क्षेत्र बहुत विस्तृत था। शिक्षित तथा अशिक्षित लोगों की बहुत ही अधिक संख्या से मेरा सम्पर्क हुआ है। इस सम्बन्ध में जितना अधिक सुभीता मुझे रहा है उतना किसी दूसरे को नहीं रहा—श्रीमती बेज़ंट तथा लोकमान्य तिलक को भी नहीं। इस सारे निरीक्षण से मेरी सम्मति यह स्थिर हुई है कि विचारों के परिवर्तन के लिए—राष्ट्रीय कार्य्य-सञ्चालन के लिए—हिन्दुस्तानी अर्थात् हिन्दी-उर्दू के मिश्रण के एक रूप को छोड़ कर किसी दूसरी भाषा की सहायता लेने से काम नहीं चल सकता। मेरी यह भी सम्मति है कि कांग्रेस की कारवाई, अन्तिम दो वर्षों को छोड़ कर, अधिकतर अँगरेज़ी में की जाने के कारण व्यवहार-दृष्टि से राष्ट्र की हानि हुई है। मेरी यह स्पष्ट सम्मति विस्तृत अनुभव का फल है। यहाँ पर मैं एक बात यह भी कह देना चाहता हूँ कि मदरास-प्रान्त के सिवा अन्यत्र कांग्रेस के दर्शकों तथा प्रतिनिधियों का अधिक समुदाय अँगरेज़ी की अपेक्षा हिन्दुस्तानी भाषा सदा अधिक समझता रहा है। अँगरेज़ी के व्यवहार के कारण कांग्रेस को वह महत्त्व नहीं मिला जो ऐसी संस्था को मिलना चाहिए था। केवल जलसे के लिए वह राष्ट्रीय रही है। यदि संसार के किसी दूसरे देश में ऐसी परिषद् होती जो वर्ष प्रति वर्ष लोक-प्रिय होती जाती तो वह अपने जीवन के ३४ वर्षों में ऐसी राजनैतिक शिक्षा देती जो घर घर में प्रकट होकर वहाँवालों को इस लायक़ बना देती कि वे अपनी भाषा में भिन्न भिन्न प्रकार के प्रश्न जनता के आगे उठाने लगते।

इस दृष्टि से कांग्रेस के पिछले अधिवेशन में चाहे जैसी त्रुटियाँ क्यों न रही हों, वह पहले के अधिवेशनों की अपेक्षा कहीं अधिक राष्ट्रीय भाव-पूर्ण था, और यह इस कारण कि दर्शक और प्रतिनिधि भी उसकी कारवाई को समझ सके थे। यदि श्रोता श्रीमती बेज़ंट के भाषण से ऊब गये थे तो इस कारण नहीं कि वे लोग उनकी उपेक्षा या अपमान करना चाहते थे, किन्तु असल कारण यह था कि वे उनके योग्यता-पूर्ण तथा मनोहर भाषण के भावों का अनुसरण ही न कर सकते थे। जातीयता का भाव भारत में जागृत हो रहा है और राजनैतिक ज्ञान तथा शिक्षा की भूख बढ़ रही है, इसलिए ऐसा तो होगा ही। किसी भी व्याख्याता के लिए, वह कैसा ही योग्य तथा लोक-प्रिय क्यों न हो, अँगरेज़ी में व्याख्यान देकर श्रोताओं का

ध्यान आकर्षित कर लेना भविष्यत् में और भी दुस्तर कार्य्य हो जायगा ।

अतएव मैं मदरास-प्रान्त के लोगों से अपील करता हूँ कि आप, सार्वजनिक जीवन बितानेवालों के लिए, हिन्दुस्तानी भाषा सीखना एक जातीय आवश्यकता समझ लें। मदरास के बाहर के श्रोता, बिना किसी कठिनाई के, थोड़ी बहुत हिन्दुस्तानी समझ लेते हैं। दयानन्द सरस्वती हिन्दुस्तानी भाषा में व्याख्यान दिया करते थे। उन्होंने उत्तरी भारत के बाहर, श्रोताओं को अपने भाषणों से वशीभूत कर लिया था। बहुत साधारण लोग भी उनके भाषणों को आसानी से समझ लेते थे।

इकतीस करोड़ पचास लाख की जन-संख्या में केवल मदरास-प्रान्त के निवासी, जो तीन करोड़ अस्सी लाख से कुछ ही ऊपर हैं, हिन्दुस्तानी भाषा में व्याख्यान नहीं समझ सकते। मदरास की उपर्युक्त जन-संख्या में मुसलमानों की गणना नहीं की गई। क्योंकि यह सभी जानते हैं कि मदरास-प्रान्त के अधिकांश मुसलमान हिन्दुस्तानी समझ लेते हैं। अब प्रश्न यह है कि उस प्रान्त के तीन करोड़ अस्सी लाख निवासियों का क्या कर्तव्य है? क्या उन लोगों के लिए सारा भारत अँगरेज़ी सीखे या भारत की सत्ताइस करोड़ सत्तर लाख प्रजा के लिए उन्हें हिन्दुस्तानी सीखना चाहिए? परलोकवासी जस्टिस कृष्णस्वामी ने भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के विचार-परिवर्तन के लिए हिन्दुस्तानी भाषा को देश-व्यापक भाषा के रूप में स्वीकार किया था। वर्तमान समय में किसी को इस सिद्धान्त का ज़ोर शोर के साथ खण्डन करते मैं नहीं देखता। इतनी विशाल जन-संख्या के लिए अँगरेज़ी को व्यापक भाषा बनाना सम्भव नहीं। यदि सम्भव भी हो, तो भी एक कारण-विशेष से यह नितान्त अनावश्यक है। वह कारण यह है कि उच्च तथा वैज्ञानिक शिक्षा जन-साधारण तक इस लिए नहीं पहुँच सकती कि वह अँगरेज़ी में ही जाती है। उसका जो कुछ प्रचार होता है वह उच्च जातियों में और वह भी देशी भाषाओं के द्वारा। क्योंकि सर जगदीशचन्द्र वसु की बँगला-पुस्तकों का गुजराती में अनुवाद कर लेना, हैक्सले के अँगरेज़ी-ग्रन्थों की अपेक्षा बहुत ही आसान काम है। मदरासियों को समग्र भारतवासियों के लिए हिन्दुस्तानी सीख लेना चाहिए। इस प्रार्थना को स्वीकार कर लेने से उनका कुछ ख़र्च भी न होगा। प्रति दिन केवल एक घंटे के हिसाब से एक वर्ष तक हिन्दुस्तानी का अभ्यास करने से ही काम निकल जायगा। उन मदरासियों को तो ज़रूर ही हिन्दुस्तानी सीखनी चाहिए जो मदरास-प्रान्त के बाहर राष्ट्रीय परिषदों में शरीक होते हैं। वे लोग एक वर्ष के अध्ययन के अन्त में कांग्रेस की थोड़ी बहुत कारस्वाई ज़रूर ही समझ सकेंगे। मदरास-प्रान्त के कई स्थानों में हिन्दी-प्रचार के लिए पाठशालायें खोल दी गई हैं। उनमें हिन्दुस्तानी की शिक्षा मुफ़् दी जाती है। वहाँ चाहे जो ख़ुशी से उसे सीख सकता है।

मैं श्रीमती बेज़ंट से भी इस अपील का समर्थन करने के लिए प्रार्थना करता हूँ। वे तो, समय समय पर, न्यू इण्डिया के द्वारा, हिन्दुस्तानी सीखने का समर्थन पहले से करती भी रही हैं।

गाँधीजी की अपील, बस, इतनी ही है। जो लोग हठी हैं, अथवा जो लोग गाँधीजी के सदृश परोपकार-व्रती और सत्यशील पुरुष के कामों की भी उलटी-सीधी आलोचना करके अपनी अहम्मन्यता प्रकट किये बिना नहीं रह सकते, उनको छोड़ कर और कौन ऐसा विचारशील सज्जन होगा जो इस अपील की दलीलों से क़ायल न हो जाय?

विवाह ।

१—रिपुओं के साथ युद्ध करके,
उर में वीरत्व-सुधा भर के ।
गन्नौर-राज्य के भूपति-वर,
जब हत हो चुके अमर होकर ॥
२—तब उनकी रानी भी रण में,
रत हुई धर्म्म के रक्षण में ।
रिपुओं से वे सानन्द लड़ीं,
भय से न नेक भी मन्द पड़ीं ॥
३—पर थी विशाल रिपु की सेना,
था दुष्कर उसे जीत लेना ।
मर कर रानी के वीर घटे,
पर फिर भी वे पीछे न हटे ॥
४—रानी का सैनिक बल टूटा,
उनका साहस न तदपि छूटा ।
वे लड़ती रहीं धीरता से,
अपनी अति अटल वीरता से ॥
५—आख़िर रिपुओं ने कौशल से,
बन्दी कर लिया उन्हें छल से ।
वे किसी एक गढ़ के भीतर,
हो गईं बद्ध घेरीं जाकर ॥
६—जब उन्हें विवशता में पाया,
तब यों नवाब ने कहलाया—
यदि एक बात मेरी मानों,
तो मुक्ति हुई अपनी जानों ॥
७—तुम मेरी बेगम बन जाओ,
निज खोया हुआ राज्य पाओ ।
यह बात जहां तुमने मानी,
तुम होगी रानी की रानी ॥
८—यदि इसे न तुमने स्वीकारा,
तो नहीं तुम्हारा छुटकारा ।
निज शक्ति काम में लाऊँगा,
मैं बेगम तुम्हें बनाऊँगा ॥"
९—रानी यह बात मान लेंगी,
निज धर्म—सतीत्व—छोड़ देंगी;
था यह विश्वास किसे हा ! कब,
पर मान लिया रानी ने सब ॥
१०—बिगड़े उनके सरदार सभी,
कह उठे कि "यह होगा न कभी ।
मर कर मिट जायँ न हम जब तक,
रोकेंगे रानी को तब तक ॥"
११—रानी ने उनको शान्त किया,
अपना अभीष्ट सब सुना दिया ।
कह दिया कि "तुम भय से न डरो,
मेरे ऊपर विश्वास करो ॥"
१२—फिर यों नवाब से कहलाया—
"प्रस्ताव मुझे यह है भाया ।
प्रस्तुत ही हूँ इसके हित मैं,
हूँ इसे मानती समुचित मैं ॥
१३—यह कार्य्य आज ही हो जावे,
क्या ठीक विघ्न कब क्या आवे ।
इस शुभ विवाह की तैयारी,
करती हूँ मैं तुरन्त सारी ॥
१४—वर-वस्त्र ब्याह के बनवा कर,
मैं अभी भेजती हूँ सत्वर ।
करके नवाब उनको धारण,
आवें मुझसे मिलने तत्क्षण ॥"
१५—'रानी नवाब को वरती हैं,
वे ब्याह दूसरा करती हैं ।'
यह चर्चा फैल गई घर-घर,
सब क्षुब्ध हो उठे रानी पर ॥
१६—पर था नवाब को हर्ष बड़ा,
यह ऊँचा उन्हें उत्कर्ष बड़ा ।
वे अत्युत्सुक थे दिखलाते,
कब वस्त्र ब्याह के हैं आते ॥
१७—आये वे वस्त्र वहां ज्यों ही,
झट पहन नवाब उन्हें त्यों ही ।
चल पड़े दुर्ग में जाने को,
दुर्लभ सुरत्न वह पाने को ॥
१८—वे हर्ष सहित आगे बढ़ के,
ज्यों ही पहुँचे भीतर गढ़ के,

जलने सी उनकी देह लगी,
भावी-सुख की सब भ्रान्ति भगी ॥

१९—विष की ज्वाला से हो अस्थिर,
वे लगे फाड़ने कपड़े फिर ।
हो गया ज्ञात सब भेद उन्हें,
हो उठा भयङ्कर खेद उन्हें ॥

२०—तब रानी को सम्मुख पाके,
यह कहा उन्होंने चिल्ला के —
"मैं वञ्चित किया गया इससे,
हैं कपड़े भरे हुए विष से ॥

२१ —क्यों धोखे में डाला मुझको,
क्या यही चाहिए था तुझको ?
झट इसे क़ैद कर लो पकड़ो,
झट इसे बेड़ियों से जकड़ो" ॥

२२—रानी बोली क्रोध-स्वर से,
"क्या हमें डराता है डर से ?
है कौन मुझे जो पकड़ सके,
किसकी मजाल जो जकड़ सके ?

२३—हो तुझ सा पापी जीव जहाँ,
छल भी है धर्म्म अतीव वहाँ ।
शठ से शठता में ही हित है,
जो किया गया वह समुचित है ॥

२४—अब ब्याह मृत्यु से ही कर तू,
कुत्ते की मौत अभी मर तू ।
मरते हैं पामर इसी तरह,
तू बच न सकेगा किसी तरह" ॥

२५—यों नवाब से कह, यम जिस पर डाल चुका था जाल,
कूद पड़ीं नर्मदा-नीर में नीचे वे तत्काल ।
गोदी में नर्मदा नदी ने उन्हें ले लिया शीघ्र,
जल के निज अञ्चल में उनको सुला फिर दिया शीघ्र ॥

सियारामशरण गुप्त

खेतों का सङ्गठन और एकीकरण ।

कुछ समय से अनेक प्रकार की उन्नतियों की ओर भारतवासियों का ध्यान जाने लगा है । भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है । इसलिए यह स्वाभाविक है कि अन्य प्रश्नों के साथ कृषि-सम्बन्धिनी उन्नति पर भी सम्यक् विचार हो।

कृषि की उन्नति में अनेक कठिनाइयां हैं । सबसे कठिन समस्या खेतों का छोटा और बिखरे हुए होना है । चिरकाल से इस ओर कृषि-विद्यारसिकों का ध्यान रहा है और अनेक उपाय इस कुव्यवस्था को मिटाने के लिए सोचे जा रहे हैं । हमारे सूबे में सबसे पहले मोरलैंड साहब ने एक नोट लिख कर इस ओर सरकार का और सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित किया था । उस नोट को निकले हुए कोई ७ वर्ष व्यतीत हो गये, परन्तु जङ्गल में रोने की भांति न तो उस पर किसी का ध्यान गया और न किसी ने उसके ऊपर कुछ काररवाई करने की चेष्टा ही की ।

उपर्य्युक्त दोष दो प्रकार के हैं । एक तो यह कि खेतों का परिमाण बहुत छोटा है और दूसरे यह कि कृषक के खेत उसके घर से और परस्पर एक दूसरे से बहुधा बहुत दूर दूर होते हैं । कहीं कहीं तो एक दूसरे खेत से मीलों का अन्तर पड़ जाता है । ऐसा होने में दोष क्या है ? इस विषय पर बड़ौदा में नियत हुई एक कमिटी की रिपोर्ट का सारांश सुनिए—

(१) मनुष्यों और बैलों को बहुत सा परिश्रम वृथा करना पड़ता है । यदि खेत दूर दूर हैं और किसान के घर से भी दूर हैं तो बहुत सा समय घर से खेतों पर पहुँचने और बैलों के लाने तथा ले जाने में ख़र्च हो जाता है। यह समय और परिश्रम बेकार जाता है ।

(२) बहुत सी भूमि मेंड़ बनाने और बाढ़ें लगाने में वृथा निकल जाती है । खेत बड़े बड़े हों तो एक ही मेंड़ बनानी और एक ही बाढ़ लगानी पड़े ।

(३) खाद बहुत नष्ट हो जाती है। खाद प्रायः घर के पास इकट्ठी की जाती है। यदि खेत घर से दूर हुए तो बहुत सी खाद लाते और ले जाते समय रास्ते में गिर जाती है। मूत्र किसी काम में नहीं आता। यदि पशु खेत के बीच में रहें तो यह सारी खाद उपजाऊ काम में लगाई जा सकती है।

(४) खेतों की फ़सल की देख-भाल करना बहुत कठिन हो जाता है। यदि १० खेत १० जगह हों तो कृषक खेत की फ़सल की देख-भाल कैसे कर सकता है? परिणाम यह होता है कि राह चलनेवाले आदमी और जङ्गली जानवर फ़सल को बहुत हानि पहुँचाते हैं।

(५) सींचने के लिए कुवें कम बनते हैं। दस स्थानों पर दस खेत होने से कृषक को १० कुवें चाहिए। किन्तु वह एक भी कुवाँ बनवाने का सामर्थ्य नहीं रखता। परिणाम यह होता है कि वह लम्बे चौड़े ख़र्च से भयभीत होकर एक भी कुवाँ नहीं खुदवाता। कुवें पर कोई पम्प या एञ्जिन नहीं लगा सकता, क्योंकि छोटे खेतों की सिँचाई के लिए कोई भी इतना व्यय नहीं कर सकता।

(६) यद्यपि कुछ लोगों का मत है कि कलों का प्रयोग भारतवर्ष में कभी सफल न होगा; परन्तु मज़दूरों की माँग बढ़ती जाती है, और पशु महँगे होते जाते हैं। अधिक दाम देने पर भी उनका मिलना दुर्लभ होता जाता है। भारतवर्ष की दशा देखनेवाला मनुष्य बहुत आसानी से अनुमान कर सकता है कि अब, थोड़े ही समय में, मज़दूरी और पशुओं का मूल्य कई गुना अधिक हो जायगा। ऐसी दशा में, कलों के प्रयोग के अतिरिक्त इस कठिन समस्या को हल करने की और कोई युक्ति दिखाई नहीं देती। इसलिए, कृषि को उपयोगी धन्धा बनाने के लिए, मज़दूरों की माँग को घटाने की चेष्टा आवश्यक प्रतीत होती है। इसके लिए अन्य देशों में जुताई, गुड़ाई, भराई और मँड़ाई का काम कलों से लिया जाता है। परन्तु भारतवर्ष में खेत छोटे छोटे और तितर बितर होने से कलों का प्रयोग नहीं हो सकता।

(७) गाँवों में सड़कें नहीं होतीं। अक्सर कृषकों को दूसरों के खेतों से होकर बैल ले जाने पड़ते हैं। इससे प्रायः आपस में झगड़े हो जाते हैं और अनेक पशु पास के फाटक (काँजी हाउस) में दाख़िल होते हैं।

(८) अधिक समय और द्रव्य के उपयोग की आवश्यकता होती है। यदि उनका अभाव हुआ तो उपज कम होती है।

(९) मान लीजिए कि एक आदमी के खेत के चारों ओर अन्य कृषकों के खेत हैं। अब, यदि वह नये तरीक़े से खेती करना चाहे या नई तरह की फ़सल बोना चाहे तो ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि यदि और खेत ख़ाली हो जायँ और एक ही खेत में फ़सल हो तो उसकी देख-भाल का भार उसी एक मनुष्य पर पड़ेगा और उसके लिए यह काम छाती का पीपल होगा।

(१०) देहात की बस्ती घनी हो जाती है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। बस्ती के घरों ही में पशु बाँधे जाते हैं, औज़ार रखने पड़ते हैं और बहुत सा सामान भी वहीं रक्खा जाता है। परिणाम यह होता है कि हाथ हाथ भर जगह के लिए झगड़े होते हैं। खाद भी बस्ती के पास रखनी पड़ती है। वहाँ से खेतों पर ले जाने में उसका बहुत कुछ अंश मार्ग ही में गिर जाता है।

खेतों के छोटे और बिखरे हुए होने के कारण ये हैं—

(१) इस देश की विरासत का क़ानून अर्थात् दायभाग (Law of Inheritance) कुछ ऐसा है कि एक कृषक के यदि चार पुत्र हुए तो उसके पीछे उसकी जोत चार भागों में बँट जाती है। अक्सर ऐसा होता है कि चारों पुत्र प्रत्येक खेत में से हिस्सा पाने का उद्योग करते हैं। वे किसी एक चक में चौथाई भाग लेकर सन्तुष्ट नहीं होना चाहते। परिणाम यह होता है कि जोत छोटी होने के साथ ही साथ खेत का परिमाण भी घट जाता है और उसकी शकल भी बिलकुल अण्डबण्ड हो जाती है।

(२) "उत्तम खेती मध्यम बंज" आदि कहावतों के अनुसार, हम भारतवासी, कृषि को प्रधान और आदरणीय उद्योग समझते हैं। फलतः प्रत्येक मनुष्य थोड़ी बहुत खेती करने का उद्योग करता है।

(३) खेती में रुपया लगाना धन का सबसे अच्छा उपयोग समझा जाता है। बैङ्कों में जमा किये गये धन को

कुपुत्र आसानी से ख़र्च कर सकता है, परन्तु भूमि बेचने और नष्ट करने में उसे कुछ रुकावटें पड़ती हैं। इसलिए, सब लोग थोड़ी बहुत भूमि रखना पसन्द करते हैं।

(४) रेहन, बिक्री आदि के द्वारा भूमि एक मनुष्य के अधिकार से दूसरे मनुष्य के अधिकार में चली जाती है। सैकड़ों पट्टियाँ हो जाती हैं और बटवारे आदि से खेतों का परिमाण बहुत छोटा रह जाता है।

इन दोषों को दूर करने के लिए दो भाँति के उपाय होने चाहिए। (१) भविष्यत् में जोत के खेतों के छोटे छोटे टुकड़े न होने दिये जायँ, (२) वर्तमान छोटे छोटे टुकड़ों का एकीकरण करने की चेष्टा की जाय।

लेखक को जहाँ तक ज्ञात है इस सूबे के किसी ज़िले में, किसी ने भी, मोरलैंड साहब के ध्यान दिलाने पर भी, इस बात का तजरिबा करने का साहस नहीं किया। अभी, हाल में, अवध के अन्तर्गत प्रतापगढ़ ज़िले में वहाँ के ज़िलाधीश, मिस्टर बी० एन० मेहता महोदय, ने एक गाँव में ऐसा प्रबन्ध करके अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और उदारता का परिचय दिया है। जिस काम में अब तक किसी ने हाथ नहीं लगाया था, जिसको छूने का किसी ने साहस तक नहीं किया था, जिसको लोग असम्भव सा समझ बैठे थे उसी को इन महोदय ने सम्भव कर दिखाया है। प्रतापगढ़ का यह सौभाग्य है कि उसका डिप्टी कमिश्नर एक ऐसा विद्वान्, उदार, साहसी, दूरदर्शी और किसानों से सहानुभूति रखनेवाला है। सुनिए, खेतों का यह सङ्गठन और एकीकरण किस प्रकार हुआ है। इस संक्षिप्त विवरण को पढ़ कर यदि कोई ज़मींदार इससे लाभ उठाने की चेष्टा करे तो बड़ी बात हो।

पहले एक ऐसा गाँव चुन लिया गया जिसमें भूमि विशेषतः एक ही क़िस्म की थी। फिर जिन खातों के $\frac{३}{४}$ या $\frac{३}{४}$ से अधिक खेत एक ही स्थान पर थे वे छाँट लिये गये। वे जैसे के तैसे छोड़ दिये गये। उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया। बाक़ी खातों में जो खाते ३ बीघे से कम के थे उनको तोड़ कर उनके खेतों को उन पुराने खातों में मिला दिया जो तीन बीघे से अधिक परिमाण में थे। इस तरह उनका सङ्गठन कर दिया गया। अब जो खेत इस भाँति दूसरे खातों में नहीं मिले उनको इकट्ठा करके, उनके ३ बीघे से अधिक के खाते बना दिये गये। ये नये खाते उन अच्छे अच्छे कृषकों को दे दिये गये जिनको अपने खाते केवल इसलिए छोड़ने पड़े थे कि वे तीन बीघे से कम के थे। इस तरह, सब खातों के खेत एक ही जगह हो गये। जो लगान पहले गाँव भर में था वही सब नये खातों पर बाँट दिया गया। अर्थात् जिस किसान को जिस हैसियत का नया खेत मिला था उसको उसी खेत का लगान देना पड़ा। इससे, किसी पर सख़्ती नहीं हुई। इस गाँव में कोई सड़क न थी और न गाड़ी आने-जाने के लिए कोई रास्ता ही था। अतएव, इस सङ्गठन के साथ ही साथ तीन चार नई सड़कें निकाल दी गईं। और, अब, क़रीब क़रीब प्रत्येक आबादी के बीच से सड़क जाने लगी है। सड़क में जो ज़मीन आ गई है उसका लगान कम कर दिया गया है। तीन बीघे से कम की जोत नहीं रक्खी गई, क्योंकि तीन बीघे की जोत में एक ऐसे गृहस्थ का निर्वाह होना कठिन है जिसमें २ स्त्री-पुरुष, २ बहू-बेटे, और एक कम उम्र बच्चा हो। तीन बीघे की जोत में उनको रोज़ाना दो आने मज़दूरी भी मिलनी दुर्लभ है। इससे कम में तो निर्वाह हो ही नहीं सकता। इस प्रबन्ध में सबसे कठिन काम लगान बाँट देने का होता है। इसके लिए एक पञ्चायत सी बना कर प्रत्येक खेत की हैसियत स्थिर कर ली गई और फिर उसी की सहायता से वर्तमान लगान के बराबर लगान बाँट दिया गया। मान लीजिए कि ४ खेत २,३,४,५ बीघे के हैं जिनका लगान, वर्तमान दशा में, ८७) है। अब यदि पञ्चायत ने उनको ६), ५), ४), ३) बीघे की दर का स्थिर किया तो पञ्चायत की राय से चारों खेतों का लगान—(२ × ६ + ३ × ५ + ४ × ४ + ५ × ३ = १२ + १५ + १६ + १५) = ५८ हुआ। अब त्रैराशिक से हिसाब लगाया। जब लगान ५८) है तब दर ६ है। यदि लगान ८७) हो तो उस खेत की दर क्या हो।

$$५८ : ६ :: ८७ \text{ का} = \frac{८७ \times ६}{५८} = ९$$

इसी तरह और खेतों की दर ७॥), ६), ४॥) हुई। इस तरह सब पर बाँट कर लगान लगा दिया। इस प्रबन्ध में सबसे बड़ी बात यह हुई कि किसी पर कोई

सख़्ती नहीं हुई। सब किसान प्रसन्न रहे और प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने अपनी पहली जोत छोड़ कर दूसरी जोत को ले लिया। अब यह तजवीज़ है कि जो किसान गाड़ी बनाना चाहें उन्हें लकड़ी मुफ़्त दी जाय। जो लोग सड़कों के किनारे पेड़ लगाना चाहें उनको वैसा करने की आज्ञा दी जाय। परन्तु काटने या बेचने का अधिकार न दिया जाय। हाँ, सूखी और गिरी पड़ी लकड़ी उन्हीं को दे दी जायगी। ऊसर और पड़ती ज़मीन में घास बोने के लिए पट्टे दिये जायँ और बीज मुफ़्त दिया जाय। हिसाब लगाने से ज्ञात हुआ कि इस गाँव में जितने पशु थे उनमें से आधे पशुओं को खाने भर के लिए भी गाँव में चारा नहीं होता। अतः यहाँ के किसान अन्यान्य स्थानों से चारा मोल लेकर पशुओं को खिलाते हैं। अब पड़ती और ऊसर में घास बोने के पट्टे दे देने से आशा है कि गाँव में ही सब पशुओं के लिए काफ़ी चारा मिला करेगा और जो पशु अभी बड़ी हीन और दुर्बल दशा में दिखाई देते हैं वे, पेट भरने से, मोटे ताज़े हो जायँगे। इसके सिवा, चारा होने पर, लोग और अच्छी अच्छी नस्ल के नये पशु मोल लेंगे। इससे अनेक प्रकार के लाभ होंगे। गाड़ियाँ चल सकेंगी। खाद अधिक परिमाण में होगा। बीज और माल अच्छे भाव से बाज़ारों में बिका करेगा। गाँववालों से यह भी कहा गया है कि यदि तुम लोग कृषि-सम्बन्धी नये आविष्कारों से लाभ उठाना चाहो, अर्थात् नई खाद मोल लेकर उसका प्रयोग करना चाहो, अथवा मिल कर बीज मोल लेना चाहो, या अपना माल इकट्ठा करके बेचना चाहो, अथवा कलें, पम्प आदि मोल लेना चाहो और इस काम के लिए सहयोगी-संस्था (Co-operative Society) स्थापन करना चाहो तो रियासत से सब प्रकार की सहायता दी जायगी।

इससे आशा है कि खेतों का परिमाण बढ़ जाने से सङ्गठन के साथ ही साथ मनुष्यों और पशुओं की दशा सँभलेगी और एक नये प्रकार के जीवन का सञ्चार इस गाँव के निवासियों में हो जायगा।*

——

चम्पाराम मिश्र

जी की कचट।

चौतुका

किसी के कभी यों बुरे दिन न आये
किसी ने कभी दुख न ऐसे उठाये।
भला इस तरह हाथ किसने बँधाये
किसी ने कभी यों न आंसू बहाये।
हमारी तरह बात किसने बिगाड़ी
उलहती हुई बेलि किसने उखाड़ी ॥१॥
हमारे लिये आन की बात कैसी
किसी की हुई आंख नीची न ऐसी।
हमारी गई है बिगड़ चाल जैसी
किसी की कभी चाल बिगड़ी न वैसी।
किसी के न यों उलझनें पास आईं
किसी ने बुरी ठोकरें यों न खाईं ॥२॥
किसी ने हमारी तरह है न खोया
किसी ने नहीं नाम हम सा डुबोया।
किसी ने नहीं इस तरह हाथ धोया
भला कौन यों मूद कर आंख सोया।
किसी की गई पीठ कब यों लगाई
भला यों गई धूल किसकी उड़ाई ॥३॥
कभी यों न पतले हुए दिन किसी के
कभी यों हुए रँग किसी के न फीके।
किसी ने किये काम कब यों हँसी के
कभी इस तरह हम बुरे थे न जी के।
किसी ने कभी है न इतना अँगेजा
भला थाम किसने लिया यों कलेजा ॥४॥
गिरे जिस तरह हम गिरेगा न कोई
कभी इस तरह पत किसी ने न खोई।
किसी की न मरजाद यों फूट रोई
किसी ने कभी यों न लुटिया डुबोई।

---

* जिस गांव में यह नया प्रबन्ध किया गया है वह ज़िला प्रतापगढ़ के कोर्ट आव् वार्ड्स के अधीन है। अतएव प्रतापगढ़ के डिप्टी कमिश्नर के सिवा कोर्ट आव् वार्ड्स के स्पेशल मैनेजर भी उस गांव के कृषकों और उन्हींके क्यों सारे सूबे के धन्यवाद के पात्र हैं।

सरस्वती-सम्पादक

हमारी तरह धाक किसने गँवाई
किसी ने न यों आग घर में लगाई ॥५॥

हमें हैं बहुत डाह के ढङ्ग आते
हमीं फूट को हैं गले से लगाते।
हमीं वैर को आँख पर हैं बिठाते
हमीं हैं घरों-बीच काँटे बिछाते।
हमीं ने सगों का लहू तक बहाया
हमीं ने बहँक जाति-बेड़ा डुबाया ॥६॥

हमारी रगों में भरी है बुराई
खुटाई सभी बात में है समाई।
हमें भूल सी अब गई है भलाई
हमें देख कर है कलपती सचाई।
हमीं हाथ हैं बेढबों का बँटाते
हमीं बेतरह हैं अड़ंगे लगाते ॥७॥
दिखावट हमें है बहुत ही लुभाती
बनावट बिना नींद ही है न आती।
हमें ऐंठ की रंगतें हैं रिझाती
ठसक की सभी बात ही है सुहाती।
बड़ा आज बेढंगपन है हमारा
सगों से हमीं कर रहे हैं किनारा ॥८॥
न जानें हुईं क्या उमङ्ग हमारी
उभरतीं नहीं आज चाहें उभारी।
बहुत ही जँची काम की बात सारी
उतरती नहीं है गले से उतारी।
गई गाँठ कायरपने से बँधाई
पड़ी बाँट में है हमारी कचाई ॥९॥
नहीं हम किसी के सँभाले सँभलते
नहीं हम बुरे ढङ्ग अपने बदलते।
पकड़ ठीक राहें हमीं हैं न चलते
बुरी लीक पर से हमीं हैं न टलते।
समय और आँखें हमीं हैं न देते
सबेरा हुआ करवटें हैं न लेते ॥१०॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

ज्ञान का प्रथमाङ्कुर।

बहुत लोगों को इस बात का अनुभव हुआ होगा कि बहुत छोटे बालक से किसी वस्तु का नाम पूछो तो वह प्रश्न ही को नहीं समझ सकता, नाम बतलाना तो दूर रहा। इसका कारण यह है कि वैसी समझ रखने के लिए मस्तिष्क की जैसी स्थिति होनी चाहिए, वैसी उस अवस्था में नहीं होती। बच्चे को उस वस्तु का ज्ञान होने के लिए कई प्रकार का अनुभव पहले से होना चाहिए। इस छोटे से लेख में हम, संक्षेप में, लिखेंगे कि ये अनुभव किस प्रकार होते हैं, बालक को धीरे धीरे कैसे ज्ञान प्राप्त होता है, और उससे हमें क्या शिक्षा मिल सकती है।

इस कठिन विषय को समझने के लिए यह आवश्यक है कि पहले मस्तिष्क और इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली शारीरिक रचना का विचार कर लिया जाय।

प्रत्येक काम करने में शरीर की किसी न किसी मांसपेशी (Muscle) को गति देनी पड़ती है। लाखों तन्तुओं के योग से एक एक मांस-पेशी बनी है। वह सिकुड़ सकता है और फैल भी सकती है। मांसपेशी का यही सञ्चालन-कार्य्य हुआ। परन्तु ये तन्तु स्वयं—मांस-पेशी का रूप धारण किये बिना—कुछ नहीं कर सकते। इसके सिवा शरीर में एक और तरह के भी तन्तु होते हैं। उन्हें मज्जा-तन्तु कहते हैं। वे देह के प्रत्येक भाग में हैं। शरीर में ऐसे स्थान बहुत कम हैं जहाँ वे नहीं। मस्तिष्क भी उसी पदार्थ से बना है जिससे कि मज्जातन्तु बनते हैं और वह मज्जातन्तु के जाल का केन्द्र स्थान भी है। इस जाल का दूसरा केन्द्र-स्थान पृष्ठ-वंश (मेरुदण्ड) के भीतर स्थित मज्जा-

रज्जु है। मज्जा-तन्तुओं का बड़ा भारी जाल यहीं से शरीर में फैला हुआ है। नवजात शिशु के मस्तिष्क की रचना बहुत कुछ अधूरी रहती है। उसका एक तृतीयांश नौ महीने में बन जाता है। दूसरा तृतीयांश तीन वर्ष के पहले बनता है, और शेष तृतीयांश, धीरे धीरे, बनता रहता है।

मस्तिष्क और मज्जा-रज्जु परस्पर जुड़े हुए हैं। बालक का शरीर-सञ्चालन-कार्य्य केवल मज्जा-तन्तुओं द्वारा ही सम्पादित होता है, मस्तिष्क से नहीं। ये मज्जा-तन्तु दो प्रकार के हैं। एक अभिगामी अथवा ज्ञानवाहक मज्जा-तन्तु (Afferent or Sensory Nerve), और दूसरे उद्गामी अथवा गतिवाहक (Efferent or Motor Nerve)। ज्ञानवाहक मज्जा-तन्तु बाहरी वस्तु की संवेदना को मज्जा-तन्तु के केन्द्रस्थान में पहुँचाते हैं। यह तो हुआ ज्ञानवाहक मज्जा-तन्तुओं का काम। अब संवेदना पाकर, केन्द्रस्थान, गति-वाहक मज्जा-तन्तुओं के द्वारा शरीर के भिन्न भिन्न स्थानों से आवश्यक कार्य कराता है। मज्जा-तन्तुओं की इस क्रिया-शीलता में मस्तिष्क का मुख्य भाग नहीं रहता। मज्जा-रज्जु से ही उचित व्यवस्था होती रहती है। इसे आन्तरिक प्रतिक्रिया (Reflex Action) कहते हैं।

अब प्रश्न यह है कि मज्जा-रज्जु के द्वारा यह कार्य किस प्रकार होता है? बात यह है कि मज्जा-रज्जु में भी उसी प्रकार अनेक मज्जा-गोलक (Nerve Cell) हैं, जिस प्रकार मस्तिष्क में हैं। और मज्जा-रज्जु के इन्हीं मज्जा-गोलकों से पूर्वोक्त दोनों प्रकार के मज्जा-तन्तु सारे शरीर में फैले हैं। तन्तुओं द्वारा एक गोलक का सम्बन्ध दूसरे गोलक से है। मज्जा-तन्तु के छोर में बहुत बारीक तन्तु होते हैं। वहीं पर दो तन्तुओं का संयोग होता है। इन बारीक तन्तुओं को हम अनुवृक्षदल कहेंगे। इन्हीं के द्वारा संवेदना या गति होती है, और उससे दो तन्तुओं का संयोग हो जाता है। जो संयोग जन्म-गत हैं उन्हीं के अनुसार बालक, पहले पहल, संवेदना होने पर, शारीरिक प्रतिक्रिया करता है। परन्तु अधिकांश संयोग जन्म के बाद ही होते हैं। अब यह देखना है कि ज्ञान किस प्रकार होता है।

किसी बाहरी वस्तु के कारण हमारी पञ्च ज्ञानेन्द्रियों* द्वारा संवेदना होती है। वह ज्ञानवाहक मज्जा-तन्तुओं द्वारा मज्जारज्जु को पहुँचाई जाती है। फिर गतिवाहक मज्जा-तन्तुओं के द्वारा शरीर के भिन्न भिन्न भागों में उचित आज्ञा भेजी जाती है। इससे, किसी एक भाग को गति प्राप्त होती है, और इस तरह कार्य हो जाता है। परन्तु इस गति से भी शरीर को संवेदना होती है। उस संवेदना का संस्कार मस्तिष्क पर होता है। इस तरह, बार बार उसी प्रकार की संवेदना होने तथा उसी तरह की गति मिलने से मस्तिष्क को वही गत्यात्मक संवेदना होगी। तब, अनुवृक्षदल द्वारा विशिष्ट ज्ञानवाहक और गतिवाहक तन्तुओं के बीच संयोग होगा। यही कारण है जो संवेदना उत्पन्न करनेवाली वस्तु का पहले बिलकुल स्पष्ट ज्ञान नहीं होता।

इसका एक स्पष्ट उदाहरण लीजिए। बालक पैदा होते ही दूध पीना नहीं जानता—उसे दूध पीने की आवश्यकता का भी ज्ञान नहीं रहता। शारीरिक क्रियाओं के कारण उसे कुछ पीड़ा होती है। मुँह में स्तन रखने से वह, बिना ही समझे-बूझे, स्तन चूसने लगता है। विशिष्ट पीड़ा से इस क्रिया का संयोग होने लगता है, और इस प्रकार वह क्रिया धीरे धीरे बुद्धिमूलक होने लगती है। इसका मूल उसी गत्यात्मक संवेदना (Motor Sensation) में है। अनेक संस्कारों से इन सबका

---

* स्मरण रहे कि इन पाँचों में से स्पर्शेन्द्रिय पहले बहुत तेज़ रहती है।

संयोग मस्तिष्क में हो जाता है। परन्तु यह कार्य होता है धीरे ही धीरे।

इस कारण, ज्ञानोत्पादिनी गत्यात्मक संवेदना बड़े महत्त्व की है। उसी के साथ इन सब क्रियाओं और वस्तुओं का संयोग होता है। अब माता-पिता और शिक्षक देख सकते हैं कि केवल दूर से ही बालक को किसी वस्तु का ज्ञान नहीं होता। जब तक किसी वस्तु से किसी प्रकार की गत्यात्मक संवेदना का संयोग नहीं होता तब तक किसी भी प्रकार का ज्ञान नहीं हो सकता। इसके सिवा, एक वस्तु की अनेक प्रकार की संवेदनाओं का संयोग होता है। स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, शब्द, गति ये सब तो कचित् ही एक साथ हो सकती हैं। परन्तु गन्ध को छोड़ कर शेष पाँच का संयोग कई बार हो सकता है। स्पर्श, रूप, रस और गति का संयोग होने की तो विशेष सम्भावना है। इससे स्पष्ट हो जायगा कि बालक प्रत्येक वस्तु को हाथ में लिये बिना, तरह तरह से उसको हेर फेर कर देखे बिना, और उसका स्वाद लिये बिना उसे क्यों नहीं जान सकता। क्योंकि बालक को स्पर्श, स्वाद अथवा रूप का ज्ञान तो है ही नहीं। स्पर्श होने से, रूप देखने से अथवा स्वाद लेने से विशिष्ट प्रकार की संवेदना होती है। फिर विशिष्ट प्रकार की क्रिया का होना भी स्वाभाविक ही है। ऐसा होने पर मस्तिष्क में, नाना तन्तुओं के संयोग के कारण, उसका संस्कार होता है। इसलिए भिन्न भिन्न प्रकार की जितनी संवेदनाओं का संयोग एक वस्तु अथवा क्रिया से होगा, उतना ही उस वस्तु अथवा क्रिया का ज्ञान विशद होता जायगा। अतएव प्रत्येक माता-पिता अथवा शिक्षक का कर्तव्य है कि बालक को पहले पहल जिस वस्तु का ज्ञान, जितनी तरह हो सके, कराया जाय। यह तो लिखा ही जा चुका है कि और इन्द्रियों की अपेक्षा स्पर्शेन्द्रिय ही, जन्म के बाद, बहुत तेज़ रहती है। अतएव, बालक के लिए घुमा फिरा कर प्रत्येक वस्तु को छूने की अत्यन्त आवश्यकता रहती है। यह उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। दूध पीना सीख जाने पर स्वाद लेने की प्रवृत्ति भी बढ़ जाती है। पहले पहल इन दो इन्द्रियों के ज्ञानोत्पादन में बहुत महत्त्व रहता है। किसी वस्तु को देख कर ही अथवा उसका शब्द सुन कर ही बालक को इतना जल्द ज्ञान नहीं होता। तब, यह स्पष्ट ही है कि हमारे शब्दों से उसे कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता। हमारे प्रत्येक शब्द के पीछे ये भिन्न भिन्न प्रकार के अनेक संस्कार लगे हुए हैं। हमारे तन्तुओं में कई तरह के संयोग हो जाते हैं। फिर विशिष्ट संवेदना होते ही हमें विशिष्ट ज्ञान हो सकता है। परन्तु पहले पहल यह स्थिति नहीं होती। इसलिए अगर बालक, वस्तु को छुए बिना ही, उसे न जान सके तो आश्चर्य ही क्या है। स्कूल की अपेक्षा घर पर इस तत्त्व के उपयोग का अवसर और आवश्यकता बहुत अधिक रहती है। क्योंकि अनेक प्रकार का ज्ञान पहले पहल उसे वहीं होता है। स्पष्ट कल्पना होने के लिए अनेक संस्कारों की बड़ी आवश्यकता है; और इन सबमें शरीर के किसी भाग की गति की पहले अत्यन्त आवश्यकता है। सारांश यह कि **हमारा ज्ञान हमारी विभिन्न क्रियाओं का परिणाम है। ज्ञान क्रियाजन्य है।** बड़े होने पर हमें इसकी आवश्यकता कम होती है, पर जब कभी कोई ऐसी कल्पना या वस्तु हमारे सामने उपस्थित होती है जिसके सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं जानते तब हमें उसे कई तरह से घुमा फिरा कर देखने की आवश्यकता होने लगती है। अपढ़ लोगों को, बिना छुए, वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता। इसका भी वही कारण है। बिलकुल नया ज्ञान प्राप्त करने के लिए शरीर के किसी भाग में गति होने की आवश्यकता, बड़े होने पर भी, थोड़ी बहुत बनी रहती है।

शब्दों का बोध तभी हो सकता है जब बालक वस्तुओं को हाथ में ले, और शब्द सुने। हो सके तो चख कर भी देखे और फिर उन शब्दों को कहे। किसी वस्तु को देख कर बालक, स्वभाव से ही, कुछ शब्द करता है और बार बार ऐसा होने पर वह उस वस्तु का वही नाम रख देता है। यदि लड़कों को किसी नई वस्तु का नाम बतलाया जाय तो वे नहीं समझते। इस कारण, वे बार बार पूछते हैं। यहाँ तक कि बतलानेवाला चिढ़ जाता है। परन्तु यह उसकी भूल है। उसका ज्ञान होने से पहले अनेक भिन्न भिन्न संस्कारों की आवश्यकता है, इस तत्त्व का हमें स्मरण रखना चाहिए। विभिन्न तन्तुओं का संयोग होना अत्यावश्यक है। यह कार्य पुनरावृत्ति से सुगम हो जाता है। इसी का नाम साहचर्य (Association) है। फिर जब कभी एक बात से किसी प्रकार की संवेदना होगी तब पूर्व की सब संवेदनाओं का, संयोजित तन्तुओं द्वारा, स्मरण हो जायगा और एक तन्तु के चलायमान होने पर, उससे सम्बन्ध रखनेवाले शेष तन्तु भी चलायमान हो जायँगे। इस तरह उस वस्तु का स्मरण होगा।

ज्ञान की प्रथम किरणों का कारण गत्यात्मक संवेदना ही—क्रिया का अनुभव ही—है। उसके बिना मस्तिष्क में प्रकाश पड़ ही नहीं सकता। केवल रूप अथवा शब्द से कोई अर्थ समझ में नहीं आ सकता। शिक्षा देने में यह तत्त्व बड़ा उपयोगी है। हमारी समझ में शिक्षक को ही नहीं, माता पिता को भी इस तत्त्व को न भूलना चाहिए।

गोपाल दामोदर तामसकर

उत्कण्ठा।

जन्म-दिन स्मरण करो अब राम।
सूख चली रसना रट रट कर सदा आप के नाम॥
चिन्तित-चित्त नित्य रहते हैं हम हो करके क्षाम।
तो भी नहीं आपको भूले, परख लीजिए श्याम॥
अशरण के हो शरण आप, पर हमें न मिलता ठाम।
करुणाकर होकर के कैसे बन बैठे हो वाम॥
हा-हा-रव से पूर्ण हुए हैं हाट, बाट, गृह, ग्राम।
दशो दिशायें हमें हुई हैं तमसावृत दुख-दाम॥
दर्शन-आशा के प्यासे हैं हम सब आठो याम।
हे सुख-धाम पालिए प्रण को तभी चलेगा काम॥
जन्म-दिन स्मरण करो अब राम।

रामचरित उपाध्याय

विधवा।

बाबू इन्द्रजीतसिंह और मुझसे बड़ी गहरी मित्रता थी। हम दोनों एक ही जाति, एक ही उम्र तथा एक ही विचार के आदमी थे। बाबू इन्द्रजीतसिंह मेरे घर से थोड़ी ही दूरी पर रहते थे। अतएव समय मिलने पर कभी मैं उनके घर चला जाता और कभी वे मेरे घर आ जाते थे। बाबू इन्द्रजीतसिंह एक हिन्दुस्तानी फ़र्म (व्यवसाय) में हेडक्लर्क अर्थात् बड़े बाबू थे; मासिक वेतन १२०) मिलते थे। उनके परिवार में उनके और उनकी अर्धाङ्गिनी के अतिरिक्त और कोई न था। उनकी एक भगिनी भी थी पर वह अधिकतर अपनी ससुराल में रहती थी; कभी कभी दो-एक मास के लिए चली आया करती थी।

उन दिनों मैंने डाक्टरी में एल० एम० एस० की पदवी प्राप्त करके अपना कारोबार आरम्भ ही किया था। उस समय मेरे परिवार में मेरी वृद्धा माता तथा एक विधवा बहिन के अतिरिक्त और कोई न था। मेरा विवाह न हुआ था। यद्यपि शहर में काफ़ी जायदाद होने के कारण मुझे आर्थिक चिन्ता न थी; परन्तु, तो भी, मैंने अपना विवाह नहीं किया था। मेरे विचारों में कुछ विचित्रता थी—लोग ऐसा ही कहते थे। तथापि मुझे अपने विचारों में कोई विचित्रता न दिखाई देती थी। मेरे विचारों की एक विचित्रता, यदि वह विचित्रता कही जा सकती है तो,

यह थी कि मैंने शिक्षिता और रूपवती विधवा से विवाह करने का प्रण सा कर लिया था। मेरे इस प्रण को मेरी माता तथा ज्येष्ठ भगिनी भी, जिन्हें हर तरह से सुखी रखना और जिनकी आज्ञाओं का पालन करना मैं अपना कर्तव्य सा समझता था, नहीं तोड़ सकी थीं। मैं यह जानता था कि मेरे विवाह न करने से मेरी माता तथा भगिनी को मानसिक क्लेश हो रहा है; उनके बहुत से अरमानों का ख़ून हो रहा है; किन्तु मैंने अपनी भीष्म-प्रतिज्ञा को तोड़ना पाप समझा।

एक दिन मैं शाम को बाबू इन्द्रजीत के मकान पर गया। वे आफ़िस से लौट कर कुछ जलपान करने के लिए बैठे ही थे। मुझे देख कर बोले—आओ, अच्छे समय पर आये। (अपनी स्त्री से) जाओ, इनके लिए भी कुछ लाओ।

इन्द्रजीतसिंह की पत्नी मुझ से पर्दा न करती थी—वह क्या न करती थी, प्रत्युत इन्द्रजीत ही नहीं करने देते थे। इन्द्रजीत की पत्नी चन्द्रकला मेरे लिए भी थोड़ा सा खाद्य ले आई। मैं भी खाने लगा।

इन्द्रजीत बोले—आज "हाल" नहीं गये क्या?

हाल से उनका तात्पर्य्य मेडिकल हाल (दवाख़ाने) से था।

मैंने उत्तर दिया—गया तो था। दिन भर ख़ाली बैठा कुरसी तोड़ता रहा। बैठे बैठे जी ऊब गया। इस समय यह समझ कर कि तुम आफ़िस से आ गये होगे, इधर चला आया।

इन्द्रजीत—अभी कोई मरीज़-वरीज़ नहीं मिला?

मैं—अभी तो कोई नहीं मिला। और मिले भी कहाँ से। ढेरों तो डाक्टर हैं। गली गली "मेडिकल हाल" और "फ़ार्मेसी" हैं। इसके अतिरिक्त अभी मुझे काम आरम्भ किये दिन ही कितने हुए?

इन्द्रजीत—हाँ, जब धीरे धीरे लोग जानेंगे तब मरीज़ भी मिलेंगे।

चन्द्रकला मुसकरा कर बोली—डाक्टर तो सबेरे उठ कर यही मनाते होंगे कि कोई बड़ा आदमी बीमार हो तो हमारी बन आवे।

मैंने कहा—हाँ, बहुत से मनाते भी हैं; परन्तु साथ ही यह भी मनाते हैं कि वह हमारी चिकित्सा से अच्छा हो जाय।

चन्द्रकला—अच्छा करना कुछ उनके हाथ में थोड़ा ही है। जो ऐसा हो तो फिर कोई काहे को मरे।

इन्द्रजीत बोल उठे—यदि अच्छा करना उनके हाथ में नहीं तो बीमार करना भी उनके हाथ में नहीं। वे लाख मनाया करें; उनके मनाने से होता ही क्या है।

हम दोनों जलपान कर चुकने के पश्चात् हाथ-मुँह धोकर बैठे। चन्द्रकला पान बनाने लगी।

इन्द्रजीत ने पूछा—अब कहाँ के इरादे हैं; घूमने चलोगे या घर जाओगे?

मैंने उत्तर दिया—घर में क्या धरा है? घर में तो मेरा जी ही नहीं लगता।

चन्द्रकला बोल उठी—जी क्या लगे पत्थर! जी लगने का सामान भी तो हो। कल मैं माँ जी (मेरी माता) के पास गई थी। सच कहूँ, वह इतनी दुखी हैं कि कुछ कहा नहीं जाता। कहती थीं कि मुझे और कोई दुख नहीं; केवल इतना दुख है कि रघुवीर की बहू का मुँह न देख सकी। उनकी तो यह अभिलाषा थी कि तुम्हारे लड़के बाले देख कर मरतीं; पर जब बहू का मुँह देखने ही के लाले पड़े हैं तब लड़के बालों की कौन कहे।

इन्द्रजीत बोले—हाँ, भई, यह बात तो तुम्हारी निस्सन्देह ठीक नहीं। आख़िर तुमने सोचा है क्या?

मैं—भई. मैं तो तुम्हें अपने विचार बतला चुका हूँ।

इन्द्रजीत—यार तुम्हारी सब बातें मुझे पसन्द हैं। तुम्हारे सब विचार मेरे विचारों से मेल खाते हैं। पर, इस सम्बन्ध में, मैं तुम्हारे विचार से सहमत नहीं। भला यह भी कोई बात है कि कोई सुन्दर और पढ़ी-लिखी विधवा न मिलेगी तो तुम विवाह ही न करोगे? ख़ासे रहे! मेरी समझ में तो यह पागलपन है।

चन्द्रकला—अपने आप तो डाक्टर बने बैठे हैं। दूसरों की नाड़ी टटोलते हैं। दूसरों का पागलपन दूर करते हैं। पर अपना पागलपन दूर करने की चेष्टा नहीं करते।

मैंने मुसकरा कर कहा—मनुष्य अपने रोग की स्वयं दवा नहीं कर सकता। डाक्टरों को भी अपने रोग की चिकित्सा के लिए दूसरे डाक्टरों की सहायता लेनी पड़ती है। अतएव मैं अपना यह पागलपन स्वयं नहीं दूर कर सकता। इसके लिए किसी दूसरे डाक्टर की आवश्यकता है।

चन्द्रकला पान लपेटती हुई बोली—ऐ हटो भी, निरर्थक बातें बनाते हो।

इन्द्रजीत—भई, रघुवीर, सचमुच यह बड़ी बुरी बात है। यह हठ छोड़ो। कोई समझदार आदमी तुम्हारी इस हठ को ठीक नहीं कह सकता।

मैं कुछ गम्भीर होकर बोला—यार, इन्द्रजीत, इस सम्बन्ध में वाद-विवाद करने की कोई आवश्यकता नहीं। माना, यह मेरा पागलपन है; पर यह ऐसा पागलपन है जो तर्क और वाद-विवाद से दूर नहीं हो सकता। ईश्वर ही इस पागलपन को दूर करे तो करे। मनुष्य नहीं कर सकता।

इन्द्रजीत—यदि यह बात है तो अब कुछ न कहूँगा। ईश्वर तुम्हारे इस पागलपन को दूर करे।

चन्द्रकला मेरे हाथ में पान देते हुए बोली—मेरा हृदय तो यह कहता है कि तुम्हारा यह पागलपन दूर हो जायगा और किसी मनुष्य ही द्वारा दूर होगा। लोहा लोहे ही से कटता है। तुम्हें भी जब कोई तुम्हारा ही सा पागल मिल जायगा तब तुम्हारा सारा पागलपन दूर हो जायगा।

मैंने मुसकरा कर कहा—तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर।

(२)

उपर्युक्त घटना के पश्चात् दो वर्ष व्यतीत हो गये। इतने दिनों में मेरा काम चल निकला। इन्द्रजीतसिंह के यहाँ मेरा आना-जाना कम हो गया, क्योंकि रोगियों से छुट्टी कम मिलने लगी।

शहर में इन्फ़्ल्यूएन्ज़ा अर्थात् श्लेष्मज्वर का ज़ोर था। मौत का बाज़ार गरम हो रहा था। मुझे खाने-पीने तक की छुट्टी न थी।

मैं एक रोगी को देख कर लौटा था। एक और सज्जन मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। जैसे ही मैं गाड़ी से उतरा, वे मुझ से बोले—डाक्टर साहब, मैं आपके लिए बड़ी देर से बैठा हूँ। कृपया मेरे साथ तुरन्त चले चलिए। ज़रा मेरी माता को देख लीजिए।

मैं उलटे पैरों लौट पड़ा और गाड़ी के पायदान पर पैर रक्खा ही था कि इन्द्रजीतसिंह का नौकर घबराया हुआ आया और बोला—बाबू जी, हमारे बाबू जी की तबीअत बहुत ख़राब है। बुख़ार चढ़ आया है। बदन में इतना दर्द है कि चिल्ला रहे हैं। मालकिन ने आपको बुलाया है। अभी चलिए। नौकर की बात सुन कर मेरा कलेजा धड़क गया। बुख़ार और बदन में दर्द—इतने ही से मालूम हो गया कि इन्फ़्ल्यूएन्ज़ा का आक्रमण है। पहले मेरे जी में आया कि उन महाशय से कह दूँ कि कोई दूसरा डाक्टर ले जाइए; मैं नहीं जा सकता। परन्तु फिर यह सोच कर कि इन बेचारों पर भी आपदा है। न जाने कितनी देर से मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐसी दशा में इन्हें निराश करना ठीक नहीं। यह विचार कर मैंने इन्द्रजीतसिंह के नौकर से कहा—अच्छा, अभी चलता हूँ। एक जगह हो लूँ। तुम भी गाड़ी के पीछे बैठ जाओ।

मैं उक्त महाशय के यहाँ गया। उनकी माता को देख कर नुसख़ा लिखा और वहाँ से सीधा इन्द्रजीत के यहाँ पहुँचा।

मुझे देखते ही चन्द्रकला रोने लगी। मैंने कहा—"रोने की कौन बात है? आज-कल मौसम ख़राब है; पर कोई चिन्ता नहीं। सब ठीक हो जायगा"—यह कह कर मैं इन्द्रजीत के पास गया। इन्द्रजीत पलँग पर पड़े तड़प रहे थे। दर्द के मारे उनका बुरा हाल था। मैंने उन्हें पुकारा—इन्द्रजीत—इन्द्रजीत। उन्होंने कुछ स्थिर होकर आँखें खोलीं और मेरी ओर देखा। मैंने पूछा—क्या हाल है?

इन्द्रजीत कराहते हुए बोले—बड़ा दर्द है, आह!

मैंने कहा—घबराओ नहीं; दर्द जाता रहेगा।

मैंने थर्मामीटर लगाया। बुख़ार १०३ दरजे का था। छाती की भी जाँच की। उस समय तक फेफड़े ठीक थे।

मैंने चन्द्रकला से पूछा—खाँसी तो नहीं आती।

चन्द्रकला—खाँसी आती है; पर बहुत नहीं। प्यास बहुत है।

मैं—पानी इन्हें मत देना। केवल बर्फ़ का टुकड़ा देना।

मैंने तुरन्त नुसख़ा लिखा और नौकर को अपने दवाखाने भेज दिया। नुसख़े पर मैंने 'शीघ्र' शब्द लिख दिया था। अतएव दस ही मिनट में नौकर दवा लेकर आ गया। मैंने अपने हाथ से उन्हें एक ख़ुराक पिला दी। एक औषध मालिश के लिए भी मँगाई थी। मैंने उसकी मालिश की

युक्ति बता दी और अन्य आवश्यक बातें भी समझा दीं। तत्पश्चात् मैं चलने के लिए उठ खड़ा हुआ। चलते समय मैंने चन्द्रकला से कहा—जो बातें मैंने बतलाई हैं उनका ध्यान रखना। घबराने की कोई बात नहीं। अच्छे हो जायँगे। मैं भोजन करके फिर आऊँगा।

वहाँ से मैं सीधा घर आया। कुछ भोजन करके मैंने इन्द्रजीतसिंह के रोगग्रस्त होने का समाचार माता तथा भगिनी को सुनाया। उन दोनों को भी चिन्ता हुई। मैंने अपनी बहिन से कहा—अच्छा हो, यदि तुम वहाँ चली जाओ। चन्द्रकला अकेली है और घबरा रही है। ऐसे समय में ढाढ़स बँधानेवाला कोई अवश्य होना चाहिए।

बहिन तुरन्त जाने के लिए प्रस्तुत हो गई। उसके उधर चले जाने पर मैं दवाख़ाने चला आया।

(३)

मैंने इन्द्रजीत को मौत के पञ्जे से छुड़ाने की भरसक चेष्टा की। दो दिन तक मैं उनके पास चौबीसों घण्टे उपस्थित रहा। अन्य रोगियों को देखना भी छोड़ दिया; केवल कुछ पुराने रोगियों को देख आता था। परन्तु मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ गया। तीसरे दिन इन्द्रजीत को न्यूमोनिया हो गया—उनके फेफड़ों में ख़राबी आ गई; साँस लेना कठिन हो गया। मैं घबराया। मैं समझ गया कि अब मेरी चिकित्सा से कोई लाभ न होगा। यह सोच कर मैंने शहर के अन्य बड़े बड़े डाक्टरों को एकत्र किया। उन सब के परामर्श से औषध दी गई। मैं धड़कते हुए हृदय से परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा।

रात के बारह बज चुके थे। मैं इन्द्रजीत के सिरहाने कुरसी पर बैठा एक पुस्तक पढ़ रहा था। मेरे बहुत कुछ समझाने पर चन्द्रकला कुछ समय के लिए कमर सीधी करने को लेट गई थी। सहसा इन्द्रजीत ने करवट लेकर पुकारा—चन्द्रकला—!

मैंने कहा—क्यों भाई, क्या चाहिए। चन्द्रकला को मैंने सुला दिया है। कई दिन की जागी हुई थी।

इन्द्रजीत ने आँखें खोल कर मेरी ओर देखा। थोड़ी देर स्थिर दृष्टि से देखने पर बोले—रघुवीर!

मैं—हाँ भाई, क्या चाहिए?

इन्द्रजीत—मैंने एक स्वप्न देखा है।

मैं समझा कि इन्द्रजीत बेहोशी की हालत में बातें कर रहे हैं। अतएव मैंने कहा—होगा, जाने दो स्वप्न को; चुपचाप पड़े रहो। बात करने से साँस फूलेगी।

इन्द्र—नहीं—···साँस···नहीं···मैं···ने···एक··· स्वप्न···स्वप्न देखा है।

मैंने पूछा—क्या स्वप्न?

इन्द्रजीत—तुमने··· चन्द्रकला··· चन्द्रकला···से··· विवाह···कर लिया।

यदि उस समय इन्द्रजीत एक-दम रोगमुक्त होकर उठ बैठते और मुझसे पूछते "घूमने चलोगे?" तब भी मैं इतना न चौंकता जितना उनकी इस बात से चौंका। मेरा मुँह बन्द हो गया। मैं नहीं समझ सका कि उनकी इस बात का क्या उत्तर दूँ।

इन्द्रजीत बोले—क्यों···चुप···क्यों···हो गये···।

और कुछ न सोच सकने के कारण मैंने कहा—ऐसी वाहियात बात मुँह से न निकालो—शान्त होकर पड़े रहो। ईश्वर तुम्हें उठ खड़ा करेगा। घबराते क्यों हो?

इन्द्रजीत—रघुवीर!

मैंने कहा—क्या कहते हो? तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आती।

इन्द्रजीत—तुम···जैसी···विधवा···चाहते···हो··· चन्द्रकला···वैसी ही है।

उफ़! मेरी सहन-शक्ति का अन्त हो गया। यदि इन्द्रजीत बीमार न होते तो मैं उनके पास से भाग जाता और समस्त आयु उनसे बात न करता। कुशल इतनी ही हुई कि चन्द्रकला सो रही थी। यदि वह पास होती तो न जाने मेरी क्या दशा होती।

मैंने कहा—भाई, इन्द्रजीत, ईश्वर के लिए तुम ऐसी बातें न कहो।

इन्द्रजीत—रघुवीर!

मैं—भाई, शान्त होकर पड़े रहो। कहना मानो। बातें करने से कष्ट बढ़ेगा।

इन्द्रजीत—मैं···इस···बात···से··प्र···प्रसन्न हूँ। मेरे···पश्चात्···उस पर···तुम्हारा··अधि···।

इतना कह कर इन्द्रजीत चुप हो गये। उनकी साँस फूल गई और वे ज़ोर ज़ोर से हाँफने से लगे।

मैंने औषध की एक मात्रा पिलानी चाही; पर उन्होंने हाथ से दवा हटा दी ।

इसके बाद फिर वे न बोल सके । दशा बिगड़ती ही गई । प्रातःकाल चार बजे के लगभग चन्द्रकला की आँख खुली । उसने मुझसे पूछा— क्या हाल है ?

मैंने गिरे हुए स्वर में कहा—वैसा ही है ।

सबेरे सात बजे इन्द्रजीत को फिर कुछ होश आया । श्वास बढ़ी हुई थी । बोल नहीं सकते थे । पलँग की एक ओर मैं बैठा था । दूसरी ओर चन्द्रकला बैठी थी । इन्द्रजीतसिंह ने पहले मेरी ओर देखा, फिर चन्द्रकला की ओर । तत्पश्चात् उनका एक हाथ मेरे हाथ की ओर बढ़ा, दूसरा चन्द्रकला के हाथ की ओर । हम दोनों उनका तात्पर्य्य नहीं समझ सके । हम दोनों ने इस विचार से कि वे उठना चाहते हैं उनको सँभालने के लिए हाथ बढ़ाये । उन्होंने हम दोनों के हाथ पकड़ लिये और चन्द्रकला का हाथ खींच कर मेरे हाथ में दे दिया । यह करके हमारे हाथ छोड़ कर फिर पूर्ववत् शान्त होकर लेट रहे ।

दिन के बारह बजे के निकट उनकी आत्मा इस असार संसार से सदैव के लिए बिदा हो गई ।

(४)

इन्द्रजीतसिंह की मृत्यु के छः महीने बाद एक दिन इन्द्रजीतसिंह के नौकर ने आकर मुझे एक पत्र दिया । मैंने पत्र खोल कर पढ़ा । पत्र चन्द्रकला का लिखा हुआ था । पत्र में केवल इतना लिखा था—

आज किसी समय मुझसे आकर मिलो । एक आवश्यक काम है ।
चन्द्रकला

मैंने पत्र की पीठ पर लिख दिया कि मैं शाम को आऊँगा ।

शाम को मैं चन्द्रकला के पास गया । बैठने के कुछ देर बाद मैंने पूछा—मुझे किस लिए बुलाया ?

चन्द्रकला बोली—उनके (इन्द्रजीतसिंह) पश्चात् मेरा भरण-पोषण तुम्हीं कर रहे हो । यदि इस अवसर पर तुम सहायता न करते तो न जाने मेरी क्या दशा होती । मेरे मायके में कोई नहीं । मेरी ननद और ननदोई ने भी मुझसे रूखा व्यवहार किया । अतएव इस समय तुम्हारे अतिरिक्त मेरा कोई नहीं । तुमने जो कुछ किया उसके लिए मैं समस्त आयु तुम्हारी ऋणी रहूँगी ।

मैंने कहा—इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं । मैंने जो कुछ किया वह अपना कर्तव्य समझ कर किया ।

चन्द्रकला—मैं तुम्हारे ऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकती । परन्तु मैं चाहती हूँ कि मुझसे भी तुम्हारी कुछ सेवा हो ।

मैंने कहा—तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आ रही । तुम्हारा तात्पर्य्य क्या है ?

चन्द्रकला कुछ क्षण तक नीरव रह कर बोली—मुझे निर्लज्ज समझो, बेहया समझो, चाहे जो समझो; परन्तु अब मुझसे कहे बिना नहीं रहा जाता । अब तक मैं आगा पीछा सोचती रही; सङ्कोच करती रही; पर अब मैंने निश्चय कर लिया है ।

मैं—क्या निश्चय कर लिया है ?

चन्द्रकला—तुम्हारे साथ विवाह करना ।

मैं चौंक पड़ा । मुझे अपनी श्रवण-शक्ति पर अविश्वास हुआ । मैंने फिर पूछा—क्या कहा ?

चन्द्रकला—यही कि तुम मेरे साथ विवाह करके मेरा उद्धार करो । मैं इस प्रकार अपना जीवन नहीं काट सकती । इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने से मेरे हृदय को शान्ति न मिलेगी ।

मुझे चन्द्रकला की बात पर आश्चर्य्य हुआ । मैंने सोचा—क्या यह पागल हो गई है ? यदि पागल न होती तो इतनी निर्लज्ज क्यों हो जाती । स्त्री अपने मुख से विवाह का प्रस्ताव करे, यह पागलपन नहीं तो क्या है ?

मैंने कहा—चन्द्रकला ! तुम यह क्या कहती हो ? तुम अपने होश में नहीं हो । इन्द्रजीत का स्वर्गवास हुए अभी छः ही महीने हुए हैं । इतनी जल्दी····।

चन्द्रकला मुझे रोक कर बोली—नहीं, उनको मैं इस जीवन में नहीं भूल सकती । परन्तु मुझे यह भी याद है कि उन्होंने अन्तिम समय मेरा हाथ तुम्हारे हाथ में दिया था । मैं उनका तात्पर्य्य समझ गई थी । मैं उन्हीं की इच्छा का पालन कर रही हूँ । इसमें मेरे दो लक्ष्य हैं—एक तो मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण करके तुम्हारी कुछ सेवा कर सकूँगी—तुमने हमारे साथ जो उपकार किये हैं उन उपकारों का कुछ बदला दे सकूँगी । दूसरे, मेरा जीवन भी शान्तिमय बीतेगा, क्योंकि मैं इस उदासीन जीवन में नहीं

रह सकती । मुझे जो कुछ कहना था कह चुकी । अब मेरा उद्धार करना—मेरे जीवन को शान्तिमय बनाना—तुम्हारे हाथ में है ।

मैं सोच में पड़ गया। इसमें सन्देह नहीं कि चन्द्रकला रूपवती थी; पढ़ी-लिखी थी । मुझे इस प्रकार की स्त्री से विवाह करने में कोई आपत्ति न थी । मेरा हृदय प्रलोभन और कर्तव्य के झूले में झूलने लगा । स्वार्थ कहता था, हानि ही क्या है । तुम्हारी रुचि के अनुसार कार्य्य हो रहा है । कर्तव्य कहता था—ख़बरदार - यह उस व्यक्ति की स्त्री है जिसे तुम अपने भाई के तुल्य समझते थे । बड़ी देर तक मेरे हृदय में स्वार्थ और कर्तव्य में द्वन्द्व-युद्ध होता रहा ।

अन्त में मैंने चन्द्रकला से कहा—मैं यह काम त्रिकाल में भी नहीं कर सकता । मैंने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी है । मैं अब विधवा से विवाह नहीं करना चाहता ।

चन्द्रकला—क्या तुम यह सच कह रहे हो ?

मैं—हाँ, सच कह रहा हूँ ।

चन्द्रकला—मुझे विश्वास नहीं आता ।

मैं—कैसे विश्वास दिलाऊँ ?

चन्द्रकला—तुम अब अपना विवाह किसी भी कन्या से करने के लिए तैयार हो ?

मैं—हाँ तैयार हूँ; पर रूपवती हो और पढ़ी-लिखी भी हो ।

चन्द्रकला—यह आवश्यक नहीं कि विधवा हो ?

मैं—नहीं ।

चन्द्रकला की आँखों से आँसू बहने लगे । उसने कहा—मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ । मैं तुम्हारे ही लिए इतना आत्मत्याग कर रही थी । मुझे विवाह की कोई लालसा नहीं । मैं इसे पाप समझती हूँ । परन्तु तुम्हारे लिए मैं यह पाप करने के लिए भी तैयार थी । तुमने मुझे इस पाप से बचा कर मेरे साथ वह उपकार किया है जिसका बदला मैं जन्म जन्मान्तर में भी नहीं दे सकती । अब मैं शान्तिपूर्वक अपना जीवन बिताऊँगी ।

मैं—अब तुमने अपने लिए क्या सोचा है ?

चन्द्रकला—बस, ईश्वर-भजन में अपना जीवन बिताऊँगी ।

मैं—बहन चन्द्रकला, मैं तुम्हें एक और मार्ग बता सकता हूँ, जिससे तुम्हारा जीवन अधिक शान्तिपूर्वक बीत सकता है ।

चन्द्रकला—मैं उस मार्ग पर चलने के लिए तैयार हूँ ।

मैं—संसार में परोपकार से बढ़ कर और कोई मार्ग नहीं । उसी से हृदय को सच्ची शान्ति मिल सकती है । मेरा विचार एक अनाथालय खोलने का है ।

चन्द्रकला—बड़ी सुन्दर बात है । निस्सन्देह इस प्रकार मैं अपना जीवन और भी अधिक शान्तिपूर्वक बिता सकूँगी । मैं तुम्हारे अनाथालय में आमरण अनाथों की सेवा करूँगी ।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

रहस्य ।

अन्धकार में दीप जला कर किसकी खोज किया करते हो।
तुम खद्योत क्षुद्र हो, तब फिर क्यों तुम ऐसा दम भरते हो।
हाहाकार जगत करता है, तो भी उसको क्या होता है!
पवन अहर्निश शान्त नहीं है, वह निश्चिन्त सदा सोता है।
नभ में ये नक्षत्र आज तक घूम रहे हैं उसके कारण।
उसका पता कहाँ है, किसको होगा यह रहस्य उद्घाटन।
हम हैं क्षुद्र, जानते हैं हम, जग में हमको सब हँसते हैं।
पर तम में वह श्यामरूप है जिसकी आशा में मरते हैं।
निराकार गुण-दोष-रहित वह फैला है सर्वत्र व्याप्त कर।
उसके ही आश्रय में सबको मिल जाती है शान्ति मनोहर।

अज्ञात ।

कहाँ है, नाथ, तुम्हारा वास ?
खोज फिरा सब देख लिया अब मैं हो गया हताश ।
मुझे व्यर्थ-श्रम देख जड़ प्रकृति भी करती उपहास ।
पाया जिसका पता नहीं वह रहता उसके पास ।
प्रातःकाल पवन लाती है उसका कुछ सन्देश ।
मूक प्रकृति को ही कह जाती है उसका आदेश ।
क्षण भर में तब जड़ में हो जाता चैतन्य-विकास ।
वृक्षों पर विकसित फूलों का होता हास-विलास ।
हँस हँस कर जल की तरङ्ग करती सानन्द विहार ।
मत्त खगों के कलरव से भर जाता है संसार ।

फिर मध्याह्नकाल में सबके सब हो जाते व्यग्र !
मैं बैठे देखा करता हूँ उनका कार्य्य समग्र ।
आती है सन्ध्या तब उनका फिर सजता है साज ।
नक्षत्रों के साथ गगन में आते हैं द्विजराज ।
तब किसकी उपासना में सब हो जाते निस्तब्ध ।
निश्चल होती प्रकृति, शान्ति सबको होती उपलब्ध ।

सूखे फूल ।

तुम भी हो क्या मालाकार ।
मेरे इन सूखे फूलों का लोगे क्यों उपहार ।
तुमको तो ऐसे ही फूलों से रहता है काम ,
जिनके सौरभ से उपवन में फैल गया है नाम ।
पर इनमें भी, सच जानो, कुछ है रस का आगार ।
होकर सबसे दलित करेगा सुरभित पाद-प्रहार ।
कोई निर्गुण होगा इनको कर लेगा स्वीकार ।
करके स्पर्शमात्र से होगा यह सुगन्धि-भाण्डार ।

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

विविध विषय ।

१—ब्राह्मण-ग्रन्थ ।

इस देश के धर्म्मप्राण पण्डितों का कथन था और अब भी है कि मन्त्र-संहिता और ब्राह्मण-भाग, ये दोनों ही मिल कर वेद नाम से विख्यात हैं । वे कहते हैं कि जिनको हम वेद कहते हैं उनकी रचना गद्य में भी है और पद्य में भी । पद्य-भाग का नाम मन्त्र और गद्य-भाग का नाम ब्राह्मण है । परन्तु आज-कल के नये ढङ्ग के वेदज्ञ विद्वान् कहते हैं कि बात ऐसी नहीं । वेदों की रचना, चाहे जिसने की हो, पहले हुई । उनके मन्त्र-भाग का प्रायः प्रत्येक मन्त्र, पद्य, या सूक्त अपना अलग इतिहास रखता है । क्यों उस मन्त्र की रचना हुई ? किसने की ? किस काम में वह आता रहा ? यह सब भूतपूर्व वैदिक ब्राह्मणों को मालूम था । जैसे जैसे समय बीतता गया, लोग उन बातों को भूलते गये । यज्ञादि-प्रसङ्ग में ऋत्विक् कुछ का कुछ कर या कह जाने लगे । यह देख कर वेद के बचे खुचे ज्ञाताओं को दुःख होने लगा । उन्होंने सोचा, यदि यही दशा रही तो किसी समय याग-यज्ञ का विधिवत् होना असम्भव हो जायगा । इससे इसका कुछ इलाज करना चाहिए । तब यह निश्चय हुआ कि कुछ रचना ऐसी की जाय जो गद्य में हो । उसमें नियम निर्दिष्ट हो जाय कि किस यज्ञ में, किस मन्त्र का, किस सम्बन्ध में प्रयोग किया जाय । उसमें मन्त्रों का संक्षिप्त इतिहास भी रहे और उससे सम्बन्ध रखनेवाली, यदि कोई हों तो, गाथायें या कथायें भी रहें । यह व्याख्यान-भाग वेदों के अन्तर्गत ही रक्खा जाय । ऐसा करने से याज्ञिकों को बहुत सुभीता होगा; उन्हें प्रत्येक मन्त्र का इतिहास और उसके प्रयोग की विधि यथास्थान मालूम हो जायगी; और, फिर, आज-कल की तरह मन्त्रों का दुरुपयोग न हो सकेगा । याद रखिए, यह युक्ति नवीन पण्डितों की है—उन पण्डितों की जो यह नहीं मानते कि सूर्य्य, चन्द्रमा और तारागणों के सदृश वेदों को भी ईश्वर ने ही बनाया है या मन्त्रकर्त्ता ऋषियों के हृदय में प्रविष्ट होकर उनके मुख से वेद बाहर कराये हैं ।

यह हवा, उस समय, इतने ज़ोर से चली कि ब्राह्मण पर ब्राह्मण बनने लगे । वेदों की भी शाखायें हैं । प्रत्येक शाखा के वेद-पाठियों के वेद-पाठ में कुछ अन्तर है । इसीसे इस शाखा-भेद की उत्पत्ति हुई है । हर शाखावाले वेदज्ञों ने अपने अपने ब्राह्मण बना डाले । किसी किसी शाखा में तो एक नहीं अनेक ब्राह्मण हो गये । फल यह हुआ कि अनन्त ब्राह्मणों की सृष्टि हो गई । उनमें से कुछ तो अब भी उपलब्ध हैं; कुछ के नाम-मात्र यत्र तत्र अन्य ब्राह्मणों में पाये जाते हैं; कुछ—अधिकांश—लुप्त या नष्ट हो गये । बचे हुओं में से मुख्य मुख्य के नाम सुन लीजिए—

(१) ऋग्वेद के दो ब्राह्मण—ऐतरेय या आश्वलायन और कौशीतकी या सांख्यायन ।
(२) यजुर्वेद के दो—तैत्तिरीय और शतपथ ।
(३) सामवेद के तीन—पञ्चविंश, षड्विंश और छान्दोग्य ।
(४) अथर्ववेद का एक—गोपथ ।

इन ब्राह्मण-ग्रन्थों को देखने और ध्यान से पढ़ने से मालूम होता है कि उस समय यज्ञों का कितना महत्त्व था । ऐतरेय-ब्राह्मणों में सोम-यज्ञ का बहुत विस्तृत वर्णन

है। जिस शुनःशेप को राजा हरिश्चन्द्र ने यज्ञ-पशु बनाना चाहा था उसका भी वर्णन इसी ब्राह्मण में है। कौशीतकी ब्राह्मण में ईशान और महादेव के नाम आये हैं, जिनसे सूचित होता है कि हमारे शिवालयों के शिवजी उस समय भी पूजे नहीं, तो स्मरण ज़रूर किये जाते थे। शतपथ-ब्राह्मण बहुत बड़ा ग्रन्थ है। उसे पढ़ने से कितनी ही ऐतिहासिक बातों का भी कुछ कुछ पता चलता है। उसमें अर्हत्, श्रमण और गौतम आदि शब्दों के दर्शन होते हैं। इससे कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि क्या उस समय बौद्ध-धर्म्म का आविर्भाव हो गया था? पुरूरवा और उर्वशी की कथा भी इस ब्राह्मण में है।

२—इन्दोर-नरेश की साहित्यसम्बन्धिनी उदारता।

इन्दोर-राज्य के अधिकांश निवासियों की भाषा हिन्दी है। कुछ लोग मराठी बोलनेवाले भी हैं—विशेष करके राज्य के कर्म्मचारी। ये दोनों ही भाषायें बोलनेवालों को महाराजा होलकर समदृष्टि से देखते हैं। दोनों ही भाषाओं के साहित्य की उन्नति के लिए वे एक सी उदारता दिखाते हैं। मराठी-ग्रन्थोत्तेजन के लिए भी आप हर साल ढाई हज़ार रुपया देते हैं और हिन्दी-साहित्योत्तेजन के लिए भी। आक्टोबर १९१८ से सेप्टम्बर १९१९ तक १३२५) रुपये, मराठी में लिखे गये नये ग्रन्थ छापने के लिए, सहायता-स्वरूप दिये गये और कोई एक हज़ार रुपये ग्रन्थकारों को पुरस्कार के रूप में बाँटे गये। बाक़ी फुटकर ख़र्च हुए। विवरण देखने से मालूम होता है कि रुपये का सद्व्यय हुआ। जिन पुस्तकों के छपाने के लिए सहायता दी गई वे भी अच्छी हैं और जिनके लिए पुरस्कार दिया गया वे भी कुछ न कुछ महत्त्व रखती हैं।

नीति-शास्त्रप्रवेश छपाने के लिए २५०), समाजहित-वाद छपाने के लिए २००) और योरप का अर्वाचीन इतिहास छपाने के लिए ४००) ख़र्च किये गये। गणेश विष्णु चिपलूणकर और कम्पनी को २५०), प्रोफ़ेसर भाटे को १००) और राव-बहादुर वैद्य को २००) पुरस्कार में मिले। बड़े बड़े धुक्कड़ लेखकों ने इनाम पाये। अर्थवान् प्रोफ़ेसरों और राव-बहादुरों तक ने पुरस्कार लिये। यह हुई मराठी भाषा के ग्रन्थों और ग्रन्थकारों की बात। अब हिन्दी की सुनिए। इन्दोर में एक मध्य-भारत-हिन्दी-साहित्य-समिति है। पुस्तक-प्रकाशन के लिए १३५०) रुपये सिर्फ़ इस समिति को मिले—४५०) किसी "वैज्ञानिक जीवनी" के लिए; ६००) की रक़म कोई "आरोग्य विषय की पुस्तक तैयार करने के लिए, पेशगी" और ३००) "स्टाक एक्सचेंज और इंडियन टैक्सेशन" नाम की किसी पुस्तक के अनुवाद के लिए। इन तीनों पुस्तकों के प्रकाशन के लिए दाता जनों ने अच्छी उदारता दिखाई। मराठी-विभाग में ७ पुस्तकों के प्रकाशन के लिए १३२५) ख़र्च किये गये; हिन्दी-विभाग में ३ के ही लिए १३५०) रुपये।

ख़रीदी गई पुस्तकों के मूल्य और फुटकर ख़र्च को छोड़ कर हिन्दी में प्रकाशित ९ पुस्तकों के लेखकों ने ८३५) पुरस्कार में पाये। कुछ लेखकों और उनकी पुस्तकों के नाम नीचे दिये जाते हैं—

(१) पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को "प्रवासी भारतवासी" नाम की पुस्तक के लिए २५०)

(२) धोलपुर के लाला कन्नोमलजी, एम० ए०, को गीतादर्शन के लिए १००)

(३) अलीगढ़ के पं० व्रजवल्लभजी मिश्र को त्रयभाषिक कचहरी-कोश के लिए २००)

(४) ग्वालियर के पं० दामोदर मोरेश्वर लघाटे को नर्मदा-परिक्रमा-वर्णन नाम की पुस्तक के लिए ५०)

इत्यादि। नं० (१) के सदृश महत्त्वपूर्ण पुस्तक के लिए केवल २५०), पर नं० (३) के लिए २००)! प्रकाशित विवरण से सूचित है कि महाराजा होलकर की हिन्दी-कमिटी पुरानी पुस्तकों के लेखकों को भी पुरस्कार देती है और लेखकों का दिल बढ़ाने के लिए नर्म्मदा-परिक्रमा के सदृश पुस्तकों को भी पुरस्कार-योग्य समझती है।

मालूम नहीं, इस कमिटी ने पुरस्कार और सहायता-दान के सम्बन्ध में कैसे नियम बना रक्खे हैं। पुरस्कार के लिए लोगों को अर्ज़ियाँ भेजनी पड़ती हैं या कमिटी ख़ुद ही पुरस्कार-योग्य पुस्तकें चुन लेती है। यदि ख़ुद ही चुनती है और नई पुरानी के भेद की परवा नहीं करती तो क्या उसे निर्दिष्ट पुस्तकों से अधिक अच्छी पुस्तकें मिली ही नहीं? सरकारी और सार्वजनिक पुस्तकालयों में बाँटने के लिए कमिटी ने १५९॥=)। की पुस्तकें ख़रीदीं, सो क्यों!

क्या महाराजा होलकर के ढाई हज़ार रुपये इस काम के लिए भी हैं ? क्या ये पुस्तकालय अपना कोई फ़ण्ड नहीं रखते ? हिन्दी-कमिटी को उनकी फ़िक्र क्यों ? पुस्तकें छपाने और लेखकों की सहायता करने से 'अधिक "साहित्योत्तेजन" होता है या पुस्तकालयों को पुस्तकें बाँटने से ?

३—देशी भाषाओं के द्वारा शिक्षा-प्राप्ति।

माइसोर के शिक्षा-विभाग अर्थात् सरिश्ते-तालीम के सर्वोच्च अधिकारी (डाइरेक्टर-जनरल) सी० आर० रेडी महाशय हैं। अभी कुछ ही समय हुआ, विचारपति शेषगिरि आइयर के सभापतित्व में आपने देशी भाषाओं के सम्बन्ध में एक वक्तृता की। यह वक्तृता कई अँगरेज़ी अख़बारों में प्रकाशित हुई है और इसकी बड़ी प्रशंसा भी हुई है। आपके कथन का सारांश यह था—शिक्षा देने का स्वाभाविक साधन मातृ-भाषा है। इस देश के सिवा अन्य किसी भी देश में इस बात पर कभी विचार ही नहीं किया जाता कि किस भाषा में शिक्षा दी जानी चाहिए। इसके विचार की ज़रूरत ही नहीं समझी जाती। अपनी ही भाषा में शिक्षा प्राप्त करना चाहिए, यह तो स्वयंसिद्ध परिभाषा है। फिर विचार किस बात का ? यह इस देश का दुर्भाग्य है जो कई कारणों से इस तरह के विचार की आवश्यकता उपस्थित हुई है। चाहे जिस दृष्टि से विचार कीजिए, आज-कल की शिक्षा-प्रणाली दोषपूर्ण अवश्य है। सभी मानते हैं कि विदेशी भाषा के द्वारा शिक्षा-प्राप्ति में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ज्ञान-प्राप्ति का नाम शिक्षा है। शब्दों और वाक्यों की रचना आदि की शिक्षा पाना, ज्ञान-प्राप्ति नहीं। इसे कौन अस्वीकार करेगा ? विदेशी भाषा के द्वारा यहाँ जो शिक्षा दी जाती है उसी का तो यह फल है कि फ़ी सदी बहुत ही थोड़े आदमी शिक्षा प्राप्त कर सके हैं। बाक़ी सभी अशिक्षित हैं। जो शिक्षित हैं उनकी भी शिक्षा उथली है। देशी भाषाओं का नाम सुनते ही लोग चौकन्ने हो उठते हैं। वे समझते हैं कि अँगरेज़ी भाषा को निकाल बाहर करने की चेष्टा हो रही है। पर बात ऐसी नहीं। अनेक कारणों से अँगरेज़ी पढ़नी ही पड़ेगी। उसके बहिष्कार की ज़रूरत नहीं। पर सच्ची शिक्षा की प्राप्ति—यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि—मातृ-भाषा के अवलम्ब से ही हो सकती है। जो लोग यह कहते हैं कि देशी भाषाओं में उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें हैं ही नहीं उन्हें समय का कुछ भी ज्ञान नहीं। पुस्तकें अवश्य हैं। यदि कुछ विषयों की पुस्तकें नहीं भी हैं तो आवश्यकता होने पर शीघ्र ही तैयार हो सकती हैं।

रेडी महाशय के कथन का यही सार है। सुनते हैं, काशी के हिन्दू-विश्व-विद्यालय में मातृ-भाषा का अखण्ड राज्य होनेवाला है। पर तब, जब पाठ्य पुस्तकें सुलभ हो जायँगी। अभी तक तो वे दुर्लभ या अलभ्य ही हैं।

४—देहात की सफ़ाई।

कुछ लोगों का ख़याल है—और वे कहते हैं कि हमारा यह ख़याल बहुत पक्का और बहुत दुरुस्त है कि यदि शासन की बागडोर पढ़े लिखे हिन्दुस्तानियों के हाथ में आ गई तो बेचारे देहातियों की दुर्गति का ठिकाना न रहेगा। वे बे-मौत मर जायँगे। ये शिक्षित भारतवासी ख़ुद तो माल-पुवे उड़ावेंगे और देहातियों को मकई की रोटी के टुकड़े भी पेट भर खाने को न देंगे। इन देहातियों के माँ-बाप तो हमी हैं। हम न होते तो ये कब के नष्ट न हो गये होते तो दाने दाने को मुहताज ज़रूर हो जाते; इनकी कुगति हो जाती। देहातियों के ये अकारण-बन्धु अधिकतर वे लोग हैं जो विदेशी हैं और वाणिज्य-व्यवसाय के लिए इस देश में विराजमान हैं। कितने ही पेंशनयाफ़्ता सरकारी मुलाज़िम भी ऐसे ही हैं। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो सरकारी मुलाज़िम हैं और बड़े ऊँचे ऊँचे पदों पर प्रतिष्ठित हैं। सम्भव है, इन लोगों का कहना ठीक हो। पर एक बात हमारी समझ में नहीं आती। यही लोग कहते हैं कि गन्दगी से बीमारी पैदा होती है और बीमारी से लोग मरते हैं। फिर ये लोग अपने इन पुत्र-कल्प देहातियों के गाँवों की सफ़ाई का प्रबन्ध क्यों नहीं करते या कराते ? ख़ुद कुछ न करें न सही। कभी सरकार से अनुरोध भी तो नहीं करते कि हुज़ूर ! ज़रा इधर भी नज़र डालिए। कूड़े के ढेर गली गली पड़े हुए हैं; मकानों के सामने ही राख और गोबर के टीले लगे हुए हैं; गन्दे पानी की मोरियाँ चारों तरफ़ बह रही हैं; छोटे छोटे गढ़ों में बरसाती पानी सड़ रहा है। उस दिन सफ़ाई के महकमे के कुछ कारपरदाज़ों की एक मीटिङ्ग हुई। उसमें जुलाई से सेप्टम्बर

१९१९ तक के तीन महीने के ख़र्च का चिट्ठा पेश हुआ। उससे मालूम हुआ कि सरकार ने देहाती सफ़ाई के लिए जो रुपया ख़र्च करना मंजूर किया था उसमें से भी बहुतसा रुपया इस काम में नहीं ख़र्च किया गया। जैसे इस प्रान्त के गाँव, कानपुर की माल-रोड सड़क या लखनऊ के कैसरबाग़ के आस पास की शाह-राहों की तरह, साफ़ सुथरे पड़े हों। कहीं सफ़ाई की ज़रूरत ही न हो। नमक मिले हुए पानी से कुल्ले करो, श्लेष्म-ज्वर न होगा; यह दवा तो बताई जाती है। पर नाबदान साफ़ कराने, कूड़ा उठाने और गन्दगी दूर कराने का बन्दोबस्त नहीं किया जाता। रुपया जो दिया गया वह ख़र्च क्यों नहीं किया गया? ख़र्च न करनेवालों से इसकी कैफ़ियत तो ज़रा डाँट कर पूछी जाय। अगर कभी कोई कुछ पूछता है तो वही स्वार्थ-तत्पर शिक्षित हिन्दुस्तानी। देहातियों के माँ-बाप बनने का दावा करनेवाले तो शायद ही कभी इस मामले में कान हिलाते हों। पञ्चायत के क़ानून का मसविदा आज न मालूम कितने दिनों से खटाई में पड़ा है। ग्रामीणों के किसी भी अकृत्रिम बन्धु ने सरकार को इस बात की याद नहीं दिलाई। दिलाई तो एक भारतवासी ही ने और उसी के ज़ोर लगाने से यह मसविदा अब कहीं जाकर कौंसिल में पेश हो पाया है। सो देहातियों के ये अकारण-बन्धु केवल ज़बानी जमा-ख़र्च की बन्धुता रखते हैं। दीन-दुखिया देहातियों के हित का काम करके अपनी वत्सलता बहुत ही कम प्रकट करते हैं। सफ़ाई का मुहकमा अब अगले साल से एक भारतवासी सचिव को आत्म-समर्पण करनेवाला है। देखें, तब भी हमारे गाँवों की गुहार मन्त्री महोदय के कान तक पहुँचती है या नहीं।

५—ग्वालियर-राज्य की उन्नति।

ग्वालियर के अधीश महाराजा सेंधिया सुशिक्षित नरेश हैं। वे राजा और प्रजा का कर्तव्य अच्छी तरह समझते हैं। उन्होंने दूर दूर तक भ्रमण किया है; सभ्य और शिक्षित राज्यों की राजकीय प्रणालियों से परिचय प्राप्त किया है; और इस बात को ख़ूब समझ लिया है कि प्रजा की समुन्नति और सन्तुष्टि से ही राजा की कृतकृत्यता है। इसीसे वे अपनी रियासत की प्रजा के सुभीते के लिए यथाशक्ति और यथाबुद्धि हर तरह की चेष्टायें किया करते हैं—उनको शिक्षा देते और उनके लिए व्यापार-व्यवसाय के अच्छे अच्छे साधन सम्पन्न करते रहते हैं। उद्योग-धन्धों की वृद्धि आदि के विचार से उन्होंने अपने यहाँ एक समिति बना दी है। उसका नाम है—Board of Economic development. यह समिति शिक्षा, कृषि, वाणिज्य, व्यवसाय आदि की समुन्नति के साधन प्रस्तुत करेगी। इसकी संस्थापना के समय उस दिन महाराजा सेंधिया ने अपनी रियासत की गत २५ वर्षों की अवस्था का संक्षिप्त दिग्दर्शन किया। आपने कहा—

दस वर्ष पहले ग्वालियर-राज्य में १६० लाख रुपये का माल बाहर से आया और २०८ लाख का यहाँ से अन्यत्र गया था। पर १९१९ में ५१९ लाख का माल आया और ४४० लाख का बाहर गया। अर्थात् माल की आमदनी और रफ़्तनी में दूनी तिगुनी तरक़्क़ी हुई। पहले केवल ३२ लाख एकड़ ज़मीन जोती बोई जाती थी। गत २५ वर्षों में बढ़कर वह ४६ लाख एकड़ हो गई। ड्योढ़ा रक़बा बढ़ गया। पहले २८ लाख एकड़ ज़मीन में खाद्य पदार्थ बोये जाते थे; अब ४० लाख एकड़ में बोये जाते हैं। इन २५ वर्षों में ४०० मील लम्बी तो रेलवे लाइन खुल गई है और कोई १००० मील पक्की सड़क बन गई है। रियासत की तरक़्क़ी के लिए कई लाख रुपये स्थायी तौर पर अलग रख दिये गये हैं। समय समय पर इस रुपये में और रुपया भी मिला दिया जाता है। इससे आवश्यकतानुसार तरह तरह के सुधार होते रहते हैं। बेंक भी खोले गये हैं। जहाँ पहले केवल १९ कल-कारख़ाने थे वहाँ अब १३१ कारख़ाने काम कर रहे हैं। रियासत की आमदनी १ करोड़ १७ लाख से बढ़ कर २ करोड़ ४० लाख सालाना हो गई है।

इस लेखे से सूचित है कि महाराजा सेंधिया को, भारत के कुछ अन्य समुन्नत नरेशों की तरह, अपनी प्रजा के आराम का यथेष्ट ध्यान है। आप झगड़े, बखेड़े, हड़ताल और दोषदर्शक सूखी समालोचनायें नहीं चाहते। आप चाहते हैं शान्ति। आपकी आज्ञा है कि शासन की कठिनाइयों को लोग दिखावें, पर उनके दूरीकरण की युक्ति भी बतावें। असन्तोष का कारण वे खुल कर सूचित करें,

पर यह भी बतावें कि किस तरह वह दूर किया जा सकता है। आपकी इन सदिच्छाओं से जान पड़ता है कि आप प्रकृत "राजा", अतएव प्रजारञ्जक हैं।

६—१९२०–२१ ईसवी के जमा-ख़र्च का चिट्ठा।

८ मार्च को इस प्रान्त के कौंसिल की बैठक में गवर्नमेंट ने अगले साल की आमदनी और ख़र्च का चिट्ठा पेश किया। और सालों की अपेक्षा अगले साल की आमदनी अधिक कूती गई है। ख़र्च भी, अगले साल, जी खोल कर किया जायगा। बड़ी बात यह होगी कि आमदनी से १ करोड़ ३५ लाख रुपया अधिक ख़र्च करने का विचार है। अच्छा, यह इतना अधिक रुपया आवेगा कहां से? बात यह है कि कई मदों में ख़र्च करने के लिए जितना रुपया पिछले सालों में अलग कर दिया गया था वह सब ख़र्च नहीं हुआ। उसमें से बहुत कुछ अभी बचा रक्खा है। वही बक़ाया अगले साल ख़र्च किया जायगा। अगले साल शिक्षा-विभाग के लिए १ करोड़ ७१ लाख के लगभग रुपया अलग कर दिया गया है। यह रक़म १९१९–२० से कोई २३ लाख रुपया अधिक है। सफ़ाई और तन्दुरुस्ती के महकमे में ख़र्च के लिए ४५ लाख २० हज़ार तथा कृषि के महकमे के लिए २७ लाख ख़र्च किया जायगा। ये दोनों रक़में वर्तमान वर्ष की रक़मों से कहीं ज़ियादह हैं। सो, इतनी मुद्दत के बाद, अब कहीं गवर्नमेंट ने शिक्षा, सफ़ाई और कृषि के सदृश महत्त्वपूर्ण महकमों का ख़र्च बढ़ाया है। प्रारम्भिक और माध्यमिक, दोनों प्रकार की, शिक्षाओं के लिए काफ़ी रुपया दिया जायगा। स्कूलों की नई इमारतों की तामीर और पुरानी इमारतों की मरम्मत आदि का भी प्रबन्ध होगा। देशी भाषाओं में माध्यमिक शिक्षा की वृद्धि के लिए २५ लाख रुपया एकमुश्त अलग ही दिया जायगा। कालेजों को भी यथेष्ट रुपया मिलेगा; सम्भव है इस रुपये से उनके अध्यापकों का वेतन भी बढ़ाया जाय। डेढ़ लाख रुपये के लगभग औद्योगिक और कला-कौशल-सम्बन्धिनी शिक्षा के लिए भी ख़र्च कर डालने का विचार है। एक बात और भी होगी और बिलकुल नई होगी। देशी भाषाओं के द्वारा जो शिक्षा दी जाती है उसकी निगरानी के लिए एक चीफ़ इन्स्पेक्टर नियत किया जायगा। ईश्वर करे, गवर्नमेंट इस पद पर किसी ऐसे सज्जन को नियत करे जो देशी भाषाओं का अच्छा ज्ञान रखता हो।

७—हाईकोर्ट के जजों की तनख़्वाहें।

अनेक विज्ञ लेखकों ने तुलना करके यह दिखाया है कि हमारे देश के बड़े बड़े उहदेदारों—जङ्गी और मुल्की दोनों—को जितनी तनख़्वाह मिलती है उतनी इस पृथ्वी की पीठ पर और किसी देश के उहदेदारों को नहीं मिलती। अँगरेज़ों की विलायत में तो उतनी तनख़्वाह मिलती ही नहीं। जो और अनेक देश या उपनिवेश उसकी सत्ता के अधीन हैं उनके उहदेदारों को भी उतनी तनख़्वाह नहीं मिलती। और देशों की अपेक्षा हिन्दुस्तान बहुत अधिक अर्थहीन और वैभव-हीन है। इतने पर भी यहां इतनी बड़ी बड़ी तनख़्वाहें मिलना एक बड़ी ही विचित्र—समझ में न आनेवाली—बात है। १४ फ़रवरी के गैज़ट आव् इण्डिया में हाईकोर्ट के जजों की तनख़्वाहों तथा छुट्टी, पेंशन आदि अन्यान्य बातों का विवरण प्रकाशित हुआ है। उसके अनुसार जजों की तनख़्वाहों का विवरण सुन लीजिए—

	मासिक
(१) कलकत्ता हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस	६ हज़ार रुपया
(२) मदरास, बम्बई, इलाहाबाद, पटना और लाहौर के चीफ़ जस्टिस	५ हज़ार रुपया
(३) सभी हाईकोर्टों के जज	४ हज़ार रुपया

इसके सिवा अलौंस—अर्थात् भत्ता वग़ैरह—अलग। पेंशन के नियम ऐसे हैं कि ७ वर्ष नौकरी करने पर भी ढकापेल पेंशन मिल सकती है।

८—बाल-गन्धर्व मनहर बरवे।

सरस्वती के तृतीय भारतीय सङ्गीत-सम्मेलन-विषयक नोट में जिस अद्भुत बाल-गन्धर्व, चिरञ्जीव मनहर बरवे, का उल्लेख है उसका चित्र आज सरस्वती-पाठकों की भेंट है।

यह विलक्षण बालक बम्बई के प्रसिद्ध गायक प्रोफ़ेसर गनपतराव बरवे का लड़का है। इसकी अवस्था अभी ६ वर्ष के ऊपर नहीं। जो पक्की चीज़ें सीखने में लोगों को महीनों लग जाते हैं और फिर भी वह बहुत कठिनता से

शुद्ध गाई जा सकती हैं उन्हें यह एक बार सुन कर ही ठीक ठीक गा देता है। साथ ही यह बंसी, तबला, सितार, इसराज, जलतरङ्ग, बेंज़ो, वायलीन, हारमोनियम और दो एक अन्य बाजे भी बड़ी ख़ूबी से बजाता है। सुना है कि जब यह ढाई वर्ष का था तभी बिना किसी से सीखे थोड़ा बहुत गाने लगा था। यह बात असम्भव नहीं। मनोविज्ञान के सिद्धान्त-ग्रन्थों में इस तरह के कई विचित्र बालकों का उल्लेख है। मेरे दो आइ० सी० एस० मित्रों ने, कोई तीन वर्ष पहले, इसे इतनी ही ख़ूबी से गाते बजाते सुना है। खेद है कि ऐसी प्रतिभा केवल इधर-उधर प्रदर्शित की जाने में नष्ट की जा रही है। प्रोफ़ेसर बरवे को उचित है कि ऐसा न करके मनहर को सङ्गीत की चूडान्त शिक्षा दें। अन्यथा देश एक होनहार निधि से वञ्चित रह जायगा।

एक सङ्गीत-प्रेमी

बाल-गन्धर्व्व मनहर बरवे।

९—पण्डित हरनन्दन पाँड़े का परलोकवास।

प्राचीन इमारतों को टूटने फूटने से बचाने और प्रत्न-तत्त्व-सम्बन्धिनी बातों की खोज के लिए सरकार ने आर्कियोलाजिकल सर्वे नाम का जो महकमा खोल रक्खा है उसके ऊँचे ऊँचे पदों पर पहले तो एक भी भारतवासी न था; पर अब, कुछ समय से, कुछ भारतीय विद्वानों की पहुँच भी धीरे धीरे उन तक होने लगी है। पर अधिकांश भारतवासी अभी तक उस सोपान-परम्परा की अधस्तन सीढ़ियों ही पर हैं। संस्कृत, अरबी, फ़ारसी के पण्डितों से इस महकमे का काम विशेष अच्छी तरह हो सकता है, क्योंकि प्राचीन पुस्तकों और प्राचीन ताम्रपत्रों तथा अन्य

ऐतिहासिक लेखों के मर्मोद्घाटन के लिए इन भाषाओं के ज्ञान की बड़ी आवश्यकता रहती है। इटली, जर्मनी, फ़्रांस और इँगलेंड के निवासी इन भाषाओं का मर्म्म उतनी अच्छी तरह नहीं समझ सकते जितना कि इस देश के निवासी समझ सकते हैं। अस्तु। सरकार ने अब भारतवासियों पर भी कृपा करनी शुरू कर दी है। कई भारतीय विद्वान् इस महकमे में प्रवेश पाकर अपनी कार्य्य-कुशलता दिखा रहे हैं। ऐसे ही लोगों में विहार के पण्डित हरनन्दन पाँड़े भी थे। पूने में, अभी हाल में, जो प्राच्य-विद्याविशारदों की एक सभा हुई थी उसमें शामिल होने के लिए पाँड़े जी भी गये थे। आप वहाँ से श्लेष्म-ज्वर (इनफ़्लुयंज़ा) से पीड़ित होकर लौटे और २५ नवम्बर को, जबलपुर में, परलोकगामी हो गये।

विहार के शाहाबाद ज़िले में चूरामनपुर नाम का एक गाँव है। वहीं आपका जन्म, १८९० ईसवी में, हुआ था। २२ वर्ष की उम्र में आपने पटना-कालेज से बी० ए० पास किया। आप हिन्दी के प्रेमी पहले ही से थे। संस्कृत में भी आपने अच्छी गति प्राप्त कर ली थी। आपकी प्रवृत्ति, कई कारणों से, पुराण-वस्तु-विषयक ज्ञान-सम्पादन की ओर हुई। अपने कालेज के प्रधान संस्कृताध्यापक पण्डित रामावतार शर्म्मा से आपने प्राचीन लिपियों का पढ़ना सीखा। फिर आर्कियेलाजिकल महकमे में प्रवेश करके उसके सबसे बड़े अफ़सर, सर जान मार्शल, की अधीनता में प्राचीन इमारतों या उनके भग्नांशों को खोद निकालने की रीति सीखी। आप तक्षशिला के खँडहर खोदने के काम की देखभाल बहुत दिनों तक करते रहे। इसके बाद आप ने, कुछ समय तक, शिमले में, अपने महकमे के डाइरेक्टर जनरल, सर जान मार्शल, के दफ़्तर में काम किया। साहब ने आपके काम से प्रसन्न होकर आपको असिस्टंट सुपरिंटेंडेंट नियत किया। तब आप ईस्टर्न सरकिल, अर्थात् सूबे विहार में, काम करने आये। अन्त तक आप वहीं थे।

पण्डित हरनन्दन पाँड़े, बी० ए०।

पाँड़े जी को प्राचीन सिक्कों का अच्छा ज्ञान था। विहार और उड़ीसे की रीसर्च सोसायटी (खोज-विषयक समिति) के जर्नल में आपके कई गवेषणा-पूर्ण लेख निकले। उनमें आपने कितने ही नूतन तत्त्वों का समुद्घाटन किया। गत वर्ष, वैशाली में, आपने एक पुराने स्तम्भ को ढूँढ़ निकाला, जो शायद अशोक के समय का है। सारन ज़िले के बेलवा नामक स्थान में खुदाई करके आपने कई काम की चीज़ें—मूर्तियाँ आदि—ढूँढ़ निकालीं। वे पटने के अजायबघर में रक्खी हुई हैं। आपने महापरिनिर्वाण-सूत्र का देवनागरी-संस्करण तैयार किया। दिव्यावदान के भी एक ऐसे ही संस्करण की तैयारी आप कर रहे थे कि २९ ही वर्ष की उम्र में आपकी मानव-लीला का अन्तिम

पटाक्षेप हो गया। आपके पिता जीवित हैं। दो छोटे भाई, दो छोटी छोटी कन्यायें और आपकी विधवा पत्नी—ये इतने कुटुम्बी और कितने ही मित्र आपकी अकाल-मृत्यु से व्यथित हुए हैं।

१०—निज़ाम सरकार का साहित्यानुराग।

हैदराबाद के निज़ाम अपने राज्य को समुन्नत करने के लिए विशेष दत्तचित्त जान पड़ते हैं। राज्य-सुधार-सम्बन्धी फ़रमान निकाल कर अपने राज्य में प्रतिनिधि-मूलक शासन-व्यवस्था का सूत्रपात करने का निश्चय तो आप अभी हाल ही में कर चुके हैं। अब आपका एक और महत्त्वपूर्ण फ़रमान निकला है। इस फ़रमान से आपके साहित्य-प्रेम का अच्छा परिचय मिलता है। इसकी कुछ बातें नीचे लिखी जाती हैं। आपका कथन है कि—

मुसल्मानों के प्राचीन विज्ञान तथा साहित्य की पुस्तकें अभी तक बहुत ही हीन रूप में प्रकाशित हुई हैं। उनकी वेष-भूषा तथा छपाई बुरी तो है ही, उनके पाठ तक दूषित हैं। अतएव, राज्य की ओर से एक ऐसा विभाग खोला जायगा जो विज्ञान तथा साहित्य की सारी पुस्तकों के नये संस्करण, शुद्धतापूर्वक, बड़ी सज-धज के साथ, प्रकाशित किया करेगा। इस कार्य्य को सुचारु रूप से सम्पादन करने के लिए सारे भारत से विशेष विशेष विषयों के ज्ञाता बुलाये जायँगे। उन्हें समुचित वेतन दिया जायगा। जो लोग, पुरस्कार लेकर, अपने घर पर ही, यह कार्य्य करना चाहेंगे उनके लिए वैसा प्रबन्ध किया जायगा। इस विभाग के लिए कम से कम एक लाख रुपये प्रति वर्ष अलग कर देने का निश्चय किया गया है।

सो निज़ाम महोदय की उदारता से अरबी-फ़ारसी के भाग्य खुल गये। अब फ़ारसी-अरबी तथा उर्दू तक की विज्ञान तथा साहित्य-सम्बन्धिनी प्राचीन पुस्तकों के शानदार संस्करण प्रकाशित होकर उनके रचयिताओं के कीर्ति-कलाप को सर्वत्र फैलावेंगे। देखें, संस्कृत भाषा का भी भाग्य कभी चमकता है या नहीं। ट्रावनकोर और बड़ोदा की रियासतों में संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन का थोड़ा बहुत प्रबन्ध अवश्य है; परन्तु निज़ाम सरकार की भाँति राज्य की ओर से एक विभाग खोल कर प्राचीन पुस्तकों के संस्करण निकलवाना एक नया उदाहरण है। जब देवभाषा संस्कृत के ही ऊपर, अभी तक, किसी हिन्दू-नरेश की ऐसी कृपा-दृष्टि नहीं हुई तब बेचारी हिन्दी की प्राचीन पुस्तकों के संस्करण निकलवाने की आशा करना तो बालू से तेल निकालने की आशा के सदृश है।

देवीदत्त शुक्ल

११—प्रतिभा।

प्रतिभा से हमारा मतलब "नवनवोन्मेष-शालिनी" बुद्धि से नहीं; इस नाम की जो मासिक पत्रिका मुरादाबाद के लक्ष्मीनारायण प्रेस से निकलती है उससे है। इसे निकलते तीन वर्ष हुए। यद्यपि यह पत्रिका लम्बे चौड़े आकार की नहीं और वार्षिक मूल्य भी इसका केवल २) है, तथापि इसमें कई विशेषतायें हैं। इसीसे उनका उल्लेख करने की आवश्यकता प्रतीत हुई है। इसकी पहली विशेषता है, समय पर निकलना। आज मार्च की आठवीं तारीख़ है। इसका इस महीने का अङ्क, तीन दिन हुए, हमें मिल चुका। इसकी दूसरी विशेषता है, अच्छी अच्छी कहानियों का प्रकाशन। इसकी कहानियों में समाज के किसी न किसी अंश का चित्रण अवश्य रहता है। उस चित्रण में सजीवता पाई जाती है। भाषा भी रोचक, कभी कभी विशेष सरस और स्वाभाविक होती है। मौलिक अर्थात् नवीन कहानियाँ भी इसमें निकलती हैं और अन्य भाषाओं में प्रकाशित चुनी हुई कहानियों के अनुवाद भी। इसकी तीसरी विशेषता है समालोचनायें। इसके सम्पादक, और कुछ लेखक भी, बड़े सरस-हृदय और काव्य-प्रेमी जान पड़ते हैं। इसीसे इसकी समालोचनाओं में, गुण-दोष-विवेचन के साथ ही साथ, हास्य-विनोद और व्यङ्गय की बौछार भी यदा कदा रहती है। विवेचना में कभी कभी कटुता और उपहास की मात्रा जो अधिक कर दी जाती है वह शायद इसलिए कि ऐसी शैली से अधिकांश पाठकों का कुछ अधिक मनोरञ्जन होता है। पर हमारी प्रार्थना है कि सुरुचि का ख़याल रख कर सच्ची बात कहने से ही गौरव-वृद्धि होती है। इसकी चौथी विशेषता है, इसका यज्ञ-प्रसङ्ग। किसी समय भारत में घर घर यज्ञ होता था। यज्ञ की बड़ी महिमा थी। यज्ञानुष्ठान से ही भारतवासी अपना जीवन सार्थक समझते थे। उन बातों को इस समय हम बहुत कुछ भूल चुके

हैं। इस भूले हुए प्रसङ्ग की स्मृति इस पत्रिका में कई महीने से बराबर दिलाई जा रही है। इस विषय में बङ्ग-भाषा के एक लब्धप्रतिष्ठ लेखक की एक पुस्तक का अनुवाद, क्रम क्रम से, इसमें निकल रहा है। उसमें ब्राह्मण-ग्रन्थों के आधार पर सभी मुख्य मुख्य यज्ञों का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। यह लेख-माला पुस्तकाकार छपनी चाहिए। यह बड़े काम की चीज़ होगी। ये तो इस मासिक पुस्तक की विशेषतायें हुईं। इसके अन्य लेख भी अच्छे होते हैं। छोटी होकर भी यह पत्रिका रसिकों, काव्य-मर्मज्ञों और अन्य हिन्दी-प्रेमियों के मनोरञ्जन के लिए बहुत कुछ सामग्री प्रस्तुत करती रहती है। अतएव यह सर्वथा सङ्ग्रहणीय है।

१२—बवासीर और कब्ज़ की अकसीर दवा।

पण्डित कुञ्जविहारीलाल अवस्थी, बी॰ ए॰, पोस्ट-मास्टर, बरेली लिखते हैं—

> निवेदन है कि मैंने सरस्वती में समालोचना पढ़ कर दवा खूनी बवासीर की पण्डित गंगाविष्णु वैद्य, महल्ला नाचघर, कानपुर के यहां से मंगाई थी। मुझको दूसरे ही दिन फ़ायदा हुआ और अब मैं बिलकुल अच्छा हूं। प्रार्थना है कि इस कठोर रोग से पीड़ित मनुष्यों के कष्ट दूर करने के लिए इस चिट्ठी को सरस्वती में छाप दीजिए।

इस चिट्ठी को पढ़ कर हमें इन्हीं वैद्यजी, पण्डित गङ्गाविष्णु, की रेचनवटी की भी याद आगई। आपकी यह वटी कब्ज़ की अकसीर दवा है। इससे स्वयं हमने बहुत लाभ उठाया है। जो काम कासकरा सेगराड़ा, कासकरा एवाकुएंट, मदर सीजिलस सिरप तथा और कितनी ही आयुर्वैदिक ओषधियों से नहीं हुआ वह इस वटी ने कर दिखाया है। क़ीमत भी बहुत नहीं; एक रुपये की एक सौ गोलियां मिलती हैं।

१३—कुछ दवायें।

बनारस के छोटी पियरी नाम के महल्ले में एक औषधालय है। नाम है—भारतहितकारी। उसके अध्यक्ष श्रीयुत गणेशसिंह वैद्य ने नीचे लिखी हुई दवायें भेजने की कृपा की है—

(१) अमृत-वटी। कफ, ज्वर, खांसी और दस्तों पर। २० गोलियों की एक शीशी। दाम १।)

(२) सुदर्शन-वटी। खूनी और बादी बवासीर पर। २० गोलियां। टीन की एक डिबिया में। दाम १।)

(३) श्वासभञ्जन-वटी। खांसी, श्वास, कफ पर। १६ गोलियां, एक शीशी में। दाम १)

(४) धातुवर्धक-वटी। प्रमेह आदि शुक्र-सम्बन्धी रोगों पर। २० गोलियां, एक शीशी। दाम ४)

(५) प्राणदाता (प्राणदा चाहिए)-वटी। हैज़ा और सरेशाम पर। २० गोलियां, एक शीशी। दाम १)

(६) अग्निवर्धक-वटी। अग्निमान्द्य पर। एक छोटी शीशी में २० गोलियां। दाम ॥)

(७) अमृतचूर्ण। पेचिश पर। टीन की डिब्बी में १४ खूराक। दाम ॥।)

(८) प्रदरान्तक वटी। प्रदर रोग पर। टीन की डिब्बी में २० गोलियां। मूल्य १)

(९) सुदर्शन तैल। गठिया वात आदि पर। एक छोटी शीशी का दाम १)

इनके प्रेषक वैद्यजी से प्रार्थना है कि ये दवायें लेकर हम क्या करें। किसे दें? हम तो इन सबकी परीक्षा कर नहीं सकते। सरस्वती पर यह अत्याचार है जो वैद्य-वृन्द उससे ओषधियों की जाँच-पड़ताल कराना चाहता है। सीधा और सच्चा तरीक़ा तो यह है कि विज्ञापन छपाया जाय और उसमें ओषधियों की गुणावली गाई जाय।

पुस्तक-परिचय।

१—विचित्र वीरता—इस छोटे आकार की पुस्तक में ८४ पृष्ठ हैं। छपाई और काग़ज़ साधारणतः अच्छा है। दाम ॥) हैं। पण्डित रामावतार शुक्ल, महल्ला हटिया, कानपुर, से मिलती है। इसकी रचना पण्डित गिरिधारीलाल शुक्ल ने की है। इसमें रामचन्द्र के पुत्र लव-कुश की वीरता का वर्णन उस छन्द में किया गया है जो आज-कल अधिक प्रचलित है। कुल ३८७ पद्य हैं। भाषा अधिकांश बोलचाल की है। पर पुराने ढंग की भाषा की भी पुट है; उसका परित्याग नहीं किया गया। लेखक महाशय के हृद्गत भाव सुन्दर हैं—ओजस्वी हैं। जान पड़ता है, भक्ति के उन्मेष में आकर शुक्लजी ने इस पद्यात्मक पुस्तक की

रचना की है। इस कारण, काव्य-दृष्टि से इसके गुण-दोषों के निरीक्षण की आवश्यकता नहीं।

⁂

२—भव्य भारत—इस ३६ सफ़े की पुस्तक के दाम ।=) हैं। भारत-राष्ट्रीय-कार्य्यालय, अलीगढ़, से मिलती है। इसकी रचना पण्डित रूपराम शर्म्मा ने की है। आपने अपना और माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय का चित्र भी पुस्तकारम्भ में दे दिया है। फिर भारत के—"प्राकृतिक दृश्य, सामाजिक तथा धार्म्मिक प्रतिष्ठा, और ऐतिहासिक प्रताप की सत्य सत्य घटनायें"—गीतों में, लिखी हैं। "यह जातीय गीत न तो कविता का कोई प्रसिद्ध छन्द ही है और न इसे विशेष कर अलङ्कार और रसों से ही सजाया गया है, हाँ, इधर का समय बचा कर नवीन नवीन जातीय पवित्र भावों से विषय को सारगर्भित बनाने में व्यतीत किया है"। पुस्तक की ये विशेषतायें रचनाकार महाशय ने अपनी प्रस्तावना में स्वयं ही लिख दी हैं। उन्हीं की पुनरावृत्ति हमने कर दी।

⁂

३—श्रीरामकृष्णकथामृत—इस नाम की एक हिन्दी पुस्तक का परिचय, कुछ समय पूर्व, दिया जा चुका है। प्रस्तुत पुस्तक की भाषा गुजराती है। सुन्दर जिल्द चढ़ी हुई है। पृष्ठ-संख्या कोई ४०० है। तिस पर भी मूल्य केवल १।) है। सस्तुं-साहित्य-वर्धक-कार्य्यालय, अहमदाबाद, ने इसका प्रकाशन किया है। उसी से यह पुस्तक मिलती है। बाबू महेन्द्रनाथ गुप्त के लिखे हुए मूल बँगला-ग्रन्थ का यह अनुवाद है। श्रीयुत नर्म्मदाशङ्कर बालाशङ्कर पण्ड्या ने इसकी अवतारणा की है। यह इस नाम की पुस्तक का दूसरा भाग है। पहला भाग एक वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। इसकी समालोचना ही क्या? इसके उपदेश यथार्थ ही अमृतवर्षी हैं। धन्य हैं वे लोग जो ऐसी दिव्य पुस्तकें सर्व-साधारण को कौड़ी मोल बाँट रहे हैं।

⁂

४—हिन्दी और खड़ी बोली—मँझोले आकार की इस ६४ सफ़े की पुस्तक का मूल्य ॥=) है। इसके प्रकाशक, श्रीयुत महबूब अहमद (पता—रतनपुरा, छपरा) से यह मिल सकती है। शूर-उपनाम-धारी किसी महाशय ने इसे लिखा है। लेखक ने इस पुस्तक में जिन सिद्धान्तों की अवतारणा की है उनमें से कुछ ये हैं—(१) हिन्दी कही जानेवाली व्रजभाषा, मागधी, तिरहुतिया, बैसवाड़ी, बुँदेलखण्डी, बिहारी आदि भाषायें एक नहीं, किन्तु जुदा जुदा हैं। (२) हिन्दी कहने से किसी एक भाषा या व्याकरण का बोध नहीं होता। (३) यथार्थ में, इस समय, सिवा खड़ी बोली के "और कोई भाषा तमाम हिन्दुस्तानी समाज में प्रचलित होने के योग्य नहीं"। (४) "अतएव इस समय की हिन्दी केवल खड़ी बोली ही मानी जा सकती है"। (५) संस्कृत, अरबी, फ़ारसी और अँगरेज़ी के जो शब्द हिन्दी में रायज हैं उन्हें निकालने की चेष्टा न करनी चाहिए। इन भाषाओं के नये शब्दों या मुहाविरों को लेना हो तो उन्हें अपने ढङ्ग का बना कर ले लेना चाहिए। यह तो लेखक के मोटे मोटे कुछ सिद्धान्तों की बात हुई। अब आपकी हिन्दी की बानगी देखिए—(१) "आख़िर उसके भी तो बहुतेरे पसन्दा हिन्दुस्तानी पड़े हैं"। (२) "याद रखिए कि शब्दों के जुटने से साहित्य की क्षति के बदले उन्नति है"।

⁂

५—मिश्र जी की पुस्तकें—ग्रन्थमाला-कार्य्यालय, बाँकीपुर, के मालिक, पण्डित रामदहिन मिश्र, ने दो पुस्तकें भेजने की कृपा की है। पहली पुस्तक है—**तर्कसंग्रहः**। इसका आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १००, छपाई सुन्दर, और मूल्य आठ आने है। न्यायशास्त्र की यह प्रसिद्ध "प्राइमर" है। अन्नंभट्ट की बनाई हुई है। इसकी टीकायें भी बहुत सी उपलब्ध हैं। पर मिश्र जी ने इसे अपनी नवीन टीका से विभूषित करके प्रकाशित किया है। अपनी बनाई संस्कृत-टीका के नीचे मूलग्रन्थ का भावार्थ आपने हिन्दी में भी लिख दिया है। आपकी रची हुई इस तर्कसंग्रह-बोधिनी नामक व्याख्या और सरल हिन्दी-अनुवाद, दोनों से परीक्षार्थी छात्र विशेष लाभ उठा सकते हैं। पुस्तकान्त में आपने गोवर्द्धन-पण्डित-रचित न्यायबोधिनी व्याख्या भी छाप दी है। वह व्याकरणशास्त्र-सम्बन्धिनी मध्यम-परीक्षा देने के अभिलाषी छात्रों के बड़े काम की है। दूसरी पुस्तक का नाम है—**हिन्दी ट्रान्सलेशन**। इसका भी आकार वही है। यह भी अच्छी छपी है। पृष्ठ-संख्या २६० और

मूल्य १।) है। इसे पण्डित रामदहिन मिश्र और बाबू शिवपूजन-सहाय ने मिल कर तैयार किया है। इसमें अँगरेज़ी से हिन्दी में अनुवाद करने की रीति बताई गई है। संज्ञा, वचन, लिङ्ग, विभक्ति, सर्वनाम, क्रिया, काल, विशेषण, उपसर्ग आदि भाषा के प्रत्येक अङ्ग की विशेषताओं का विस्तृत विचार, एक एक अध्याय में करके, हिन्दी में अनुवाद करने के लिए अभ्यासार्थ अँगरेज़ी-वाक्य-समूह दिये गये हैं। अपने विषय की यह बड़ी अच्छी पुस्तक है।

⁂

६—हित-शिक्षा—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १०+१३६, प्रकाशक—प्रेम-मन्दिर, आरा, से ।=) में प्राप्य। यह एक गुजराती पुस्तक का अनुवाद है। श्रीयुत भैयालाल जैन ने किया है। जैन धर्म्म के सिद्धान्तों के प्रचार की जो नीति इस पुस्तक में प्रयुक्त हुई है वह समयानुकूल ही है। मूल पुस्तक के लेखक ने दया, अहिंसा आदि आदर्श सिद्धान्तों को, सरल भाषा में, व्याख्यान रूप से, पुस्तक में सन्निविष्ट किया है। हिंसा-निषेध-पक्ष अच्छे ढङ्ग से समर्थित हुआ है। इस पुस्तक से जैनेतर लोग भी लाभ उठा सकते हैं। क्योंकि इसमें जिन सिद्धान्तों का वर्णन है वे सार्वदेशिक हैं। सभी धर्म्म के लोग उनका अनुसरण करके सुखी हो सकते हैं। आचार और देश-प्रेम से सम्बन्ध रखनेवाले उपदेश भी इसमें हैं। अच्छी पुस्तक है। छपाई और काग़ज़ भी अच्छा है।

⁂

७—प्राच्य और पाश्चात्य—आगरा से निकलनेवाली साहित्य-रत्नमाला का यह चौथा ग्रन्थ है। आकार मँझोला और पृष्ठ-संख्या ६० है। छपाई और काग़ज़ साधारण है। कोई १५ वर्ष हुए, स्वामी विवेकानन्द के ये निबन्ध बँगला के 'उद्बोधन' नामक पत्र में क्रमशः प्रकाशित हुए थे। यह पुस्तिका उन्हीं निबन्धों का हिन्दी-भाषान्तर है। पण्डित नरोत्तम व्यास इसके अनुवादक हैं। स्वामी जी ने अपने इन लेखों में भारतीय सभ्यता के साथ पाश्चात्य देशों की सभ्यता की तुलना की है। इस तुलना में उन्होंने अन्तर्दृष्टि से काम लिया है। आपका गुण-दोष-विवेचन बड़े मोल का है। भारत की सभी बातें बुरी नहीं; और योरप-अमरीका की सभी बातें अच्छी नहीं। स्वामीजी ने इस पर विचारपूर्वक अपनी सत्सम्मति दी है। उनकी राय है कि हमारे भारतीय साहित्य में अनेक अमूल्य रत्न भरे हुए हैं। उन्हें ढूँढ़ निकालना चाहिए और अपने देश की प्राचीन सभ्यता के सङ्ग्राह्य अंश को ग्रहण करना चाहिए; अन्धे बन कर सभी विषयों में विदेशियों की नक़ल न करनी चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक मनोरञ्जक ही नहीं, उपादेय भी है। इसमें निर्दिष्ट कितने ही सदुपदेश सर्वथा आचरणीय हैं। पुस्तक का मूल्य ।≡) है। मिलने का पता—साहित्य-रत्नमाला-कार्य्यालय, आगरा।

⁂

८—गोपालन—लेखक, बाबू भगवानदास वर्म्मा, मैनेजर, गवर्नमेंट डेरी फ़ार्म, मान्ट-गोमरी (पंजाब)। मूल्य १), यह वही पुस्तक है जिसकी समालोचना, तीन वर्ष पूर्व, सरस्वती में निकली थी। यह इसका दूसरा संस्करण है। प्रथम संस्करण की पृष्ठ-संख्या १०+१३५ थी। इस बार पृष्ठ-संख्या ड्योढ़ी बढ़ कर १०+२०५ हो गई है। इस नये संस्करण में कई नये विषयों का भी सन्निवेश किया गया है। इसके सिवा, प्रत्येक विषय आवश्यकतानुसार घटाया बढ़ाया भी गया है। हाँ, यह संस्करण पहले की तरह सज-धज के साथ नहीं निकाला गया। न तो वैसे सुन्दर चित्र ही इसकी शोभा बढ़ाते हैं और न वैसा चिकना तथा सफ़ेद काग़ज़ ही लगाया गया है। ख़ैर, नूतन विषयों को समाविष्ट करने से यह त्रुटि बहुत कुछ दूर हो गई है। कुछ भी हो, पुस्तक के उपयोगी होने में सन्देह नहीं।

×
× ×

नीचे नाम लिखी हुई पुस्तकें भी पहुँच गई हैं। भेजनेवाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) ज़मींदार-हितकारिणी सभा की पाँचवीं वार्षिक रिपोर्ट
(२) अनमोल लाल (श्रीस्वामी लालचन्दजी महाराज जैनमुनि का जीवन-चरित) भाषा उर्दू

चित्र-परिचय।

(१)

श्रीकृष्ण वन को गये हैं। व्रज-बालाओं ने देर से उनका दर्शन नहीं किया। उनके हृदय में श्रीकृष्ण-दर्शन की प्रबल लालसा है। जैसे तैसे दिन के तीन पहर बीते। अब गोधूलि-वेला है। श्रीकृष्णचन्द्र अपने सखाओं के साथ वन से, इसी रास्ते, लौटेंगे। तब उनकी माधुरी मूर्ति के दर्शन हो जायँगे। इस आशा से एक व्रजाङ्गना, देहली पर एक पैर रक्खे खड़ी है और घूँघट उठाये श्रीकृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है। उसे इस बात की रत्ती भर भी सुधि नहीं कि सामने, दरवाज़े पर, छोटा बालक बछड़े को पकड़े खेल रहा है; चर कर गाय लौटेगी तो बछड़े को दूध पिलावेगी; सम्भव है बालक को भी चोट लगे। उसका मन तो श्रीकृष्णमय हो रहा है; और बातों के लिए उसके चित्त में गुञ्जाइश कहाँ?

यह चित्र हमें पीलीभीत के आचार्य्य बालकृष्णजी गोस्वामी की कृपा से प्राप्त हुआ है। एतदर्थ आपको अनेक धन्यवाद।

(२)

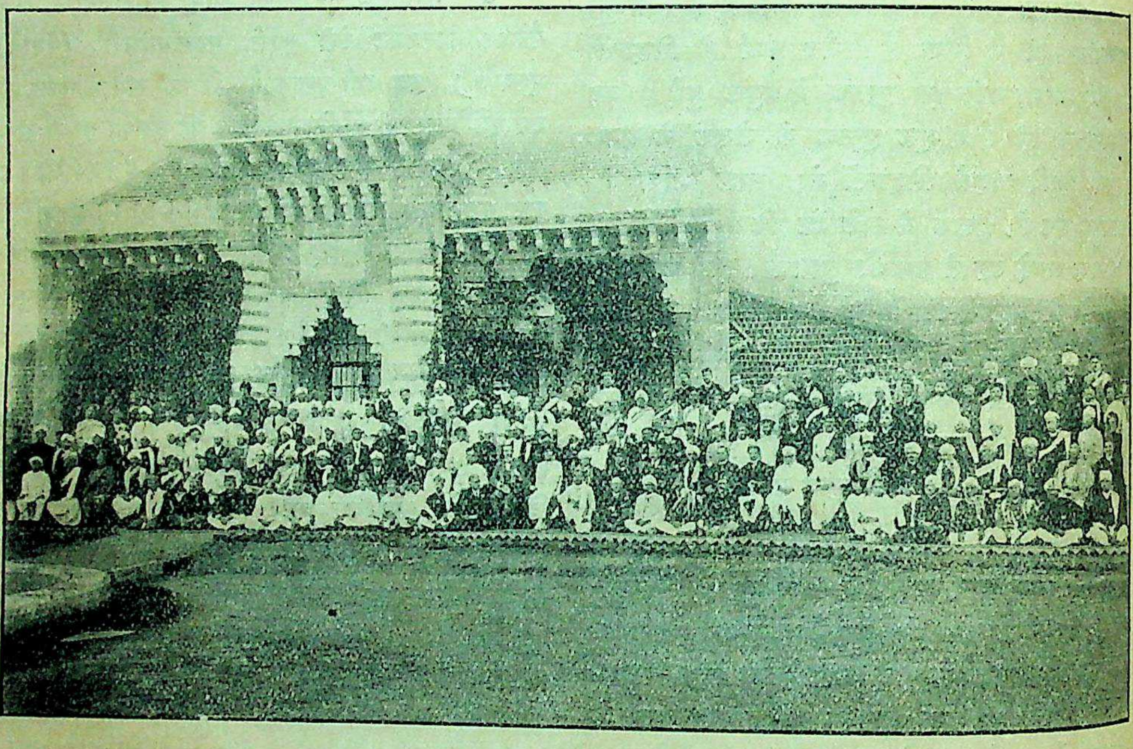

प्राच्य-विद्या-विशारदों का सम्मेलन (पूना)।

गत नवम्बर में प्राच्य-विद्या-विशारदों का जो सम्मेलन पूने में हुआ था उस पर एक नोट सरस्वती में यथासमय निकल चुका है। आज, हम, उस सम्मेलन में सम्मिलित विद्वानों के समुदाय का एक चित्र, इसी संख्या में, प्रकाशित करते हैं। सर रामकृष्ण भाण्डारकर की कृपा से पूने में जिस प्राच्य-विद्या-संशोधन-मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई है उसकी इमारत के दर्शन भी पाठकों को इस चित्र में हो जायँगे।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Ld., Allahabad

SARASVATI—Reg. No. A248

भाग २१, खण्ड १] एप्रिल, १९२० [संख्या ४, पूर्ण संख्या २४४

सरस्वती

[प्रति संख्या ।।)

वार्षिक मूल्य ५)]

सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित ।

लेख-सूची।

पृष्ठ
(१) सद्गुरु-प्रार्थना (कविता)—[लेखक, पण्डित बदरीनाथ भट्ट, बी० ए० ... १८१
(२) बाबू रामानुग्रहनारायणसिंह—[लेखक, श्रीयुत वंशीलाल १८३
(३) एक्सचेञ्ज [२]—[लेखक, लाला कन्नोमल, एम० ए० ... ... १८६
(४) वन-वैभव [३] (कविता)—[लेखक, बाबू मैथिलीशरण गुप्त... .... १९०
(५) लाला लक्ष्मणदास १९२
(६) अनाज की कमी दूर कैसे हो?—[लेखक, पण्डित दयाशङ्कर दुबे, एम० ए०, एफ़० आर० ई० एस० ... ... १९६
(७) हित की बात (कविता)—[लेखक, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय १९९
(८) विलेज-पञ्चायत-बिल २००
(९) ईश्वर कहाँ है?—[लेखक, श्रीयुत हरिकृष्ण बजरङ्गलाल २०४
(१०) अविश्वास (कविता)—[लेखक, बाबू सियारामशरण गुप्त २०८
(११) हिन्दी-समाचारपत्रों के लिए एक नया कार्य्य-क्षेत्र—[लेखक, श्रीयुत मावलीप्रसाद श्रीवास्तव २०९
(१२) श्रीलक्ष्मीकाव्यम् (समालोचना) ... २१२
(१३) दीन की आह (कविता)—[लेखक, "सनेही" २१४
(१४) शक्ति उत्पन्न करनेवाली बिजली—[लेखक, श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, ई० ई० ... ... २१६
(१५) ग्रीष्म—[लेखक, आयुर्वेदाचार्य्य पण्डित उमाशङ्कर द्विवेदी २१९
(१६) गुरुदेव (कविता)—[लेखक, पण्डित गोकुलचन्द शर्मा २२२
(१७) वायुमापक यन्त्र—[लेखक, पण्डित अम्बिकाप्रसाद पाण्डेय २२३
(१८) लज्जा-त्रस्त (कविता)—[लेखक, पण्डित मुकुटधर पाण्डेय २२५
(१९) विविध विषय २२५
(२०) पुस्तक-परिचय २३३
(२१) चित्र-परिचय २३८

चित्र-सूची

१ गुलबकावली (रङ्गीन)।
२ - बाबू रामानुग्रहनारायणसिंह।
३—लाला लक्ष्मणदास।
४ ,, ,, की धर्म्मशाला।
५—रुख़ बदलनेवाली बिजली पैदा करनेवाला डाइनमो।
६—वायुमापक यन्त्र।

नई पुस्तक! नई पुस्तक!!

स्व० राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित

मेघदूत

सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०

महाकवि कालिदास का यह काव्य बहुत प्रसिद्ध है। हिन्दी में भी इसके एकाधिक अनुवाद हो गये हैं। सर्व-साधारण में उनका ख़ासा आदर है। हिन्दी में मेघदूत का अनुवाद सबसे प्रथम राजा लक्ष्मणसिंहजी ने किया था। सन् १८८४ में इसका दूसरा, और सन् १८९३ में तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था। किन्तु ऐसा अच्छा अनुवाद इधर अप्राप्य हो रहा था। इसलिए सुन्दर अक्षरों में, अच्छे काग़ज़ पर, हमने इसका नया संस्करण, हिन्दी-हितैषियों के अनुरोध से प्रकाशित किया है। मूल श्लोक के सामने ही उसका सरस पद्यानुवाद है। विषय को समझाने के लिए मूल संस्कृत के साथ, नीचे, टिप्पणियाँ हैं; और भाषा-छन्दों के नीचे, फुटनोट हैं। जिनमें पद्य का सरल भावार्थ है। मतलब यह कि इस पुस्तक में गद्यानुवाद भी है और पद्यानुवाद भी। दो रङ्गीन चित्र भी हैं। महाकवि कालिदास की कविता के साथ ही साथ राजा साहब के सरस गद्य-पद्य का भी आनन्द लीजिए। मूल्य सिर्फ़ ॥=) दस आने।

डाकघर

डाकघर कैसा है?—इसके लिए इतना ही लिखना काफ़ी है कि यह डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना है। कहानी के बहाने एक विशेष विषय पर विचार हैं। पात्रों के साथ आप पुस्तक की सैर कीजिए। यदि ध्यान दीजिएगा तो उस विषय से भेंट हो जायगी, कहानी का आनन्द है ही। मतलब यह कि पुस्तक सभी के काम की है। भाषा सरल है। विषय को समझाने के लिए आवश्यकतानुसार टिप्पणियाँ भी दे दी गई हैं। कहानी छोटी है किन्तु सरस अधिक है। मूल्य ।-) पाँच आने।

मिलने का पता—
मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड,
प्रयाग, कटरा।

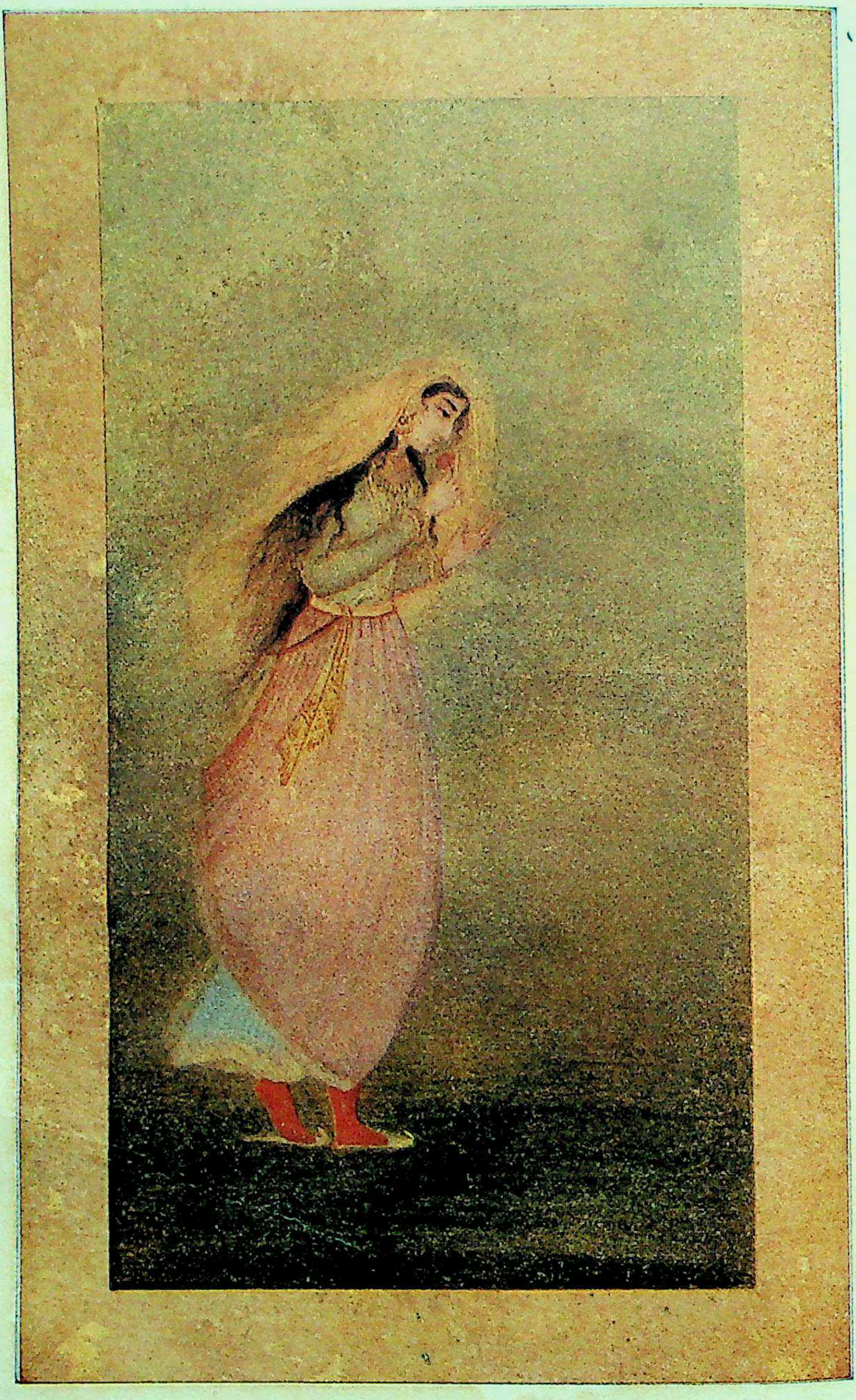

गुलबकावली ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग [illegible] ।

सरस्वती

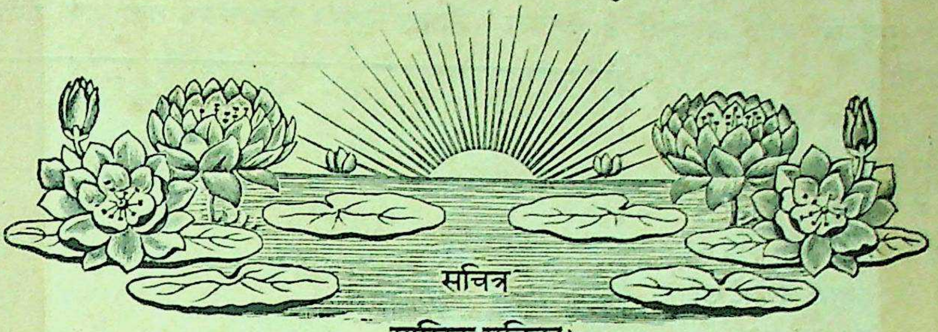

सचित्र
मासिक पत्रिका।

भाग २१, खण्ड १] एप्रिल १९२०—वैशाख १९७७ [संख्या ४, पूर्ण संख्या २४४

सद्गुरु-प्रार्थना।

जीवन-नौका बहती है,
तव कृपा-सुरसरी-धार में जीवन-नौका बहती है।

नहीं डाँड-पतवार यहाँ है,
बेसुध खेवनहार यहाँ है,
तुझ पर दार-मदार यहाँ है,
यों हँसती रहती है—जीवन-नौका बहती है॥ १॥

रुष्ट प्रकृति का हास यहाँ है,
यम-यातना विलास यहाँ है,
तथा मृत्यु-उपहास यहाँ है,
पर सब कुछ सहती है—जीवन-नौका बहती है॥ २॥

पार लगी तो भर पावेगी,
डूब गई तो तर जावेगी,
निश्चय अपने घर जावेगी,
आशा यों कहती है—जीवन-नौका बहती है॥ ३॥

बदरीनाथ भट्ट

बाबू रामानुग्रहनारायणसिंह।

बाबू रामानुग्रहनारायणसिंह का जन्म पटना ज़िले के बदलपुरा में, सन् १८५५ ईसवी में, हुआ था। इनके पिता का नाम राय टेकनारायणसिंह और प्रपिता का राय कन्हैयालालसिंह था। सन् १८५७ के ग़दर का दमन करने में राय रामानुग्रहनारायणसिंह के प्रपितामह राय सीतारामसिंहजी ने सरकार की बड़ी सहायता की थी। इस कारण सरकार में इनकी बड़ी इज़्ज़त और रसाई हो गई थी। उसी समय से बदलपुरा-वंशवालों पर सरकार की कृपा-दृष्टि विशेष रूप से रही है। आपके पूर्वज उत्तरी भारत से आकर बदलपुरा में बस गये थे। गत दो शताब्दियों से ये लोग ज़मींदार होते आये हैं।

बाल्यावस्था ही से बाबू रामानुग्रहनारायण-

सिंह को योग्य शिक्षक द्वारा शिक्षा मिलने लगी थी। धनाढ्य के पुत्र होने पर भी आप उत्साह के साथ पढ़ने-लिखने में मन लगाते थे। यही कारण है कि थोड़े ही समय में आपने संस्कृत, फ़ारसी, बँगला, उड़िया और गुरुमुखी आदि भाषाओं में योग्यता प्राप्त करली थी।

एन्ट्रेंस पास करके आप कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी कालेज के एफ० ए० क्लास में भर्ती हुए। एफ० ए० की द्वितीय श्रेणी में अभी आप पढ़ ही रहे थे कि बङ्गाल के छोटे लाट सर जार्ज कैम्पबेल (Sir George Campbell) की दृष्टि आप पर पड़ी। हिन्दुस्तानी सिविल-सर्विस-परीक्षा के लिए आपको उक्त लाट साहब ने मनोनीत किया। उक्त परीक्षा आपने बड़ी योग्यता के साथ पास करली। तब आप सारन ज़िले में डिप्टी कलेक्टर और कोर्ट आव् बोर्ड्स के मैनेजर नियत हुए। ये काम आपने बड़ी योग्यता और न्याय-परायणता से किये। अपनी कार्य-कुशलता, सहनशीलता, उदारता इत्यादि गुणों से आपने, हिन्दू, मुसल्मान, पारसी, ईसाई सभी को अपनी मुट्ठी में कर लिया। आपसे सभी प्रसन्न रहते थे। ऐसा विरला ही मनुष्य होगा जो आपसे मिल कर प्रसन्न न हुआ हो। आप बड़े ही मिलनसार थे। कोई याचक आपके घर से विमुख नहीं लौटा।

सन् १८८० ईसवी में सर ऐशले एडन (Sir Ashley Aden) ने आपको डिप्टी मैजिस्ट्रेट बनाया। पटना डिवीज़न के कई ज़िलों में, कई वर्षों तक, आपने योग्यता और उत्साहपूर्वक सरकारी सेवा करके, बड़े बड़े अफ़सरों को अपना हितैषी बना लिया। कुछ दिनों तक ससराम (शाहाबाद) में रह कर आपने वहाँवालों को अपने गुणों से मोहित किया। कुछ समय तक आप मुंगेर में भी रहे। वहाँ से आप दरभङ्गे को बदल दिये गये। दरभङ्गा-नरेश आपके मित्र थे। कई वर्षों तक आपने गया में डिप्टी मैजिस्ट्रेटी की। अनेक गया-वासियों को आपने सरकारी दफ़्तरों में भर्ती करवा दिया था, जिससे वे लोग तथा उनके वंशज अब तक आपका

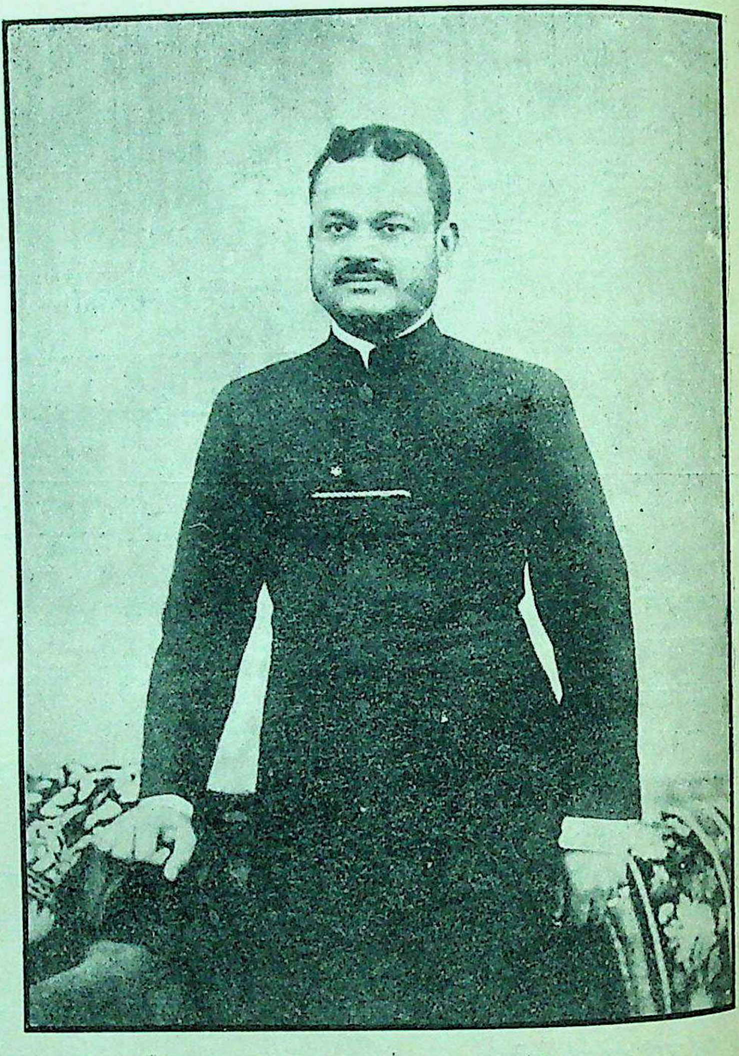

परलोकवासी बाबू रामानुग्रहनारायण सिंह।

यश गा रहे हैं। आपही के परिश्रम और उद्योग से गया में ग्रियर्सन कूप (Grierson's Well) तैयार हुआ। वह अब तक वर्त्तमान है। गया के प्रायः सभी अमीर-उमरा सन्ध्या को इसी स्थान पर आते थे। आपने वहाँ "गया-गोशाला" भी स्थापित कराई थी। गया से बदली होने के समय गयावालों ने आपका जो सम्मान किया वह शायद ही और किसी अफ़सर को नसीब हुआ होगा।

गया से आप की तबदीली पटने को हुई। वहाँ आपने अनेक धार्मिक संस्थाओं की स्थापना की। इनमें से बदलपुरा का "हिन्दू-मन्दिर" अब तक प्रसिद्ध है। वहाँ प्रति दिन सैकड़ों साधु-संन्यासियों, फ़क़ीरों और भिक्षुकों को भोजन मिलता था। अपनी जन्मभूमि, इसी बदलपुरा, में आपने एक "रविवार-दान-भवन" (Sunday Alms House) स्थापित किया था। प्रति रविवार को वहाँ अनेक दीन हीन भिक्षुकों को अन्न तथा वस्त्र मिलते थे। इसी स्थान पर आपने धर्म्मशाला भी बनवाई थी जहाँ पथिकों और यात्रियों को बहुत आराम मिलता था। दुखियों के लिए यहाँ भोजन का भी प्रबन्ध था। इन्हीं कारणों से आपका नाम दूर दूर तक फैल गया।

शिक्षा के आप बड़े पक्षपाती थे। बदलपुरा में आपने एक उच्च श्रेणी का विद्यालय बनवाया था। उसमें सैकड़ों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। उस विद्यालय में एक "छात्रावास" (Boarding House) भी था, जहाँ विद्यार्थियों को बिना मूल्य भोजन मिलता था। पटना ज़िले के कितने ही दीन बालकों को निश्शुल्क शिक्षा-प्राप्ति का प्रबन्ध करके आपने पुण्य लूटा था।

सरकार के आप बड़े विश्वास-पात्र थे। कई बार सरकार से आपको धन्यवाद-पत्र भी प्राप्त हुए थे। दी मारनिङ्ग-टाइम्स (The Morning Times) के सम्पादक ने सन् १८७५ की २४ दिसम्बरवाली संख्या में आपके धार्म्मिक कार्य्यों के लिए आपकी बड़ी प्रशंसा की थी।

पटना डिवीज़न की सन् १८९१-९२ ईसवी की शासन-रिपोर्ट (Administration Report, 1891-92) के प्रस्तावों में तथा १९०२-०३ की कर-सभा (Board of Revenue) में और भूमिकर-शासन की रिपोर्ट (Land Revenue Report) में भी आपकी प्रशंसा हुई थी। भारत-सरकार ने आपको सन् १८७७ और १९०३ ईसवी में सम्मानपत्र (Certificate of honour) और १८८७ ईसवी में "जुबिली" (Jubilee,) पदक से सम्मानित किया था।

बङ्गाल के छोटे लाट सर एन्ड्रू फ़्रेज़र (Sir Andrew Fraser) साहब द्वारा आप सन् १९०४ ईसवी में कलकत्ते बुलवाये गये। वहाँ आपको स्याल-दह-पुलिस कचहरी की मैजिस्ट्रेटी दी गई। दूसरे वर्ष आप कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी मैजिस्ट्रेट बनाये गये। इस पद पर आप कई वर्षों तक काम करते रहे। आपकी कार्य्य-दक्षता से प्रसन्न होकर भारत-सरकार ने, सन् १९०८ ईसवी में, आपको वीरभूम ज़िले के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट और कलेक्टर (District Magistrate and Collector) के पद पर नियुक्त किया। शायद आपही पहले बिहारी थे जिन्होंने, पहले पहल, बिना ही इँगलेंड गये, ज़िला-मैजिस्ट्रेट और कलेक्टर का पद प्राप्त किया था। इस बात का बिहारियों को—विशेषतः रौनियार वैश्यों को—बड़ा गौरव है। वीरभूम की प्रजा आपके आगमन से अत्यन्त प्रसन्न थी। कोई छः-सात महीने आप वीरभूम की मैजिस्ट्रेटी कर पाये थे कि एकाएक आपको बेहोशी की बीमारी हो गई। अनेक यत्न करने पर भी आप इस बीमारी से मुक्त न हुए।

आठही नैा घण्टे में, २३ सितम्बर सन् १९०८ ईसवी को, आपके प्राण-पखेरू उड़ गये। आपका शव वीरभूम से बदलपुरा लाया गया और वहीं, परम पुनीत श्रीभागीरथी के तट पर, आपकी अन्त्येष्टि-क्रिया की गई।

देवताओं पर आपका पूर्ण विश्वास था। यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, पूजा-पाठ इत्यादि पर आपकी दृढ़ भक्ति थी। ज्योतिष-शास्त्र में आपकी बड़ी श्रद्धा थी। भगवती दुर्गा आपकी इष्टदेवी थीं। हर साल, दशहरे के अवसर पर, अनेक ब्राह्मण आपके घर दुर्गा-पाठ और पूजा किया करते थे।

यद्यपि बाबू रामानुग्रहनारायणसिंह अब इस लोक में नहीं हैं, तथापि मैं उनको जीवित ही समझता हूँ। क्योंकि "कीर्तिर्यस्य स जीवति"। जिसकी कीर्ति है उसे संसार में जीवित ही समझना चाहिए।

वंशीलाल

एक्सचेञ्ज।

(२)

सरस्वती के गत जनवरी-मास के अङ्क में प्रकाशित एक्सचेञ्ज-शीर्षक लेख में इस विषय की जटिल समस्याओं को समझाने की चेष्टा की गई है। एक्सचेञ्ज को स्थिर करने के लिए जो जो उपाय सोचे जा रहे हैं उनके विषय में भी कुछ लिखा जा चुका है। लेख के अन्त में यह बतला दिया गया था कि इस विषय में जाँच करने के लिए भारत-मन्त्री ने एक करेंसी-कमिटी बिठाई है। इस कमिटी की रिपोर्ट अब प्रकाशित हो गई है। जो जो उपाय कमिटी ने सोचे हैं उनका सविस्तर विवरण उसमें है। नीचे उसी का सारांश दिया जाता है—

१—रुपये के भाव को स्थिर करना आवश्यक है। हिन्दुस्तान के चलन-बाज़ार-सिक्के को उसकी स्वाभाविक गति पर लाने की भी आवश्यकता है।

२—कमिटी की यह राय नहीं है कि रुपये की तौल अथवा उसकी चाँदी में कमी की जाय, या प्रचलित रुपये में जितनी चाँदी है उसे घटा कर दो, तीन रुपये की क़ीमत के चांदी के सिक्के बनाये जायँ अथवा निकल धातु के सिक्के ढाले जायँ।

३—नोटों के बदले में रुपये ज़रूर दिये जायँ। ऐसे प्रस्ताव का विचार न होना चाहिए, जिसका उद्देश यह हो कि नोटों के बदले में रुपये न दिये जायँ।

४—एक्सचेञ्ज के भाव का चढ़ जाना, जहां तक उसका प्रभाव वस्तुओं की मूल्य-वृद्धि को रोकने या कम करने का है, भारतवर्ष के लिए लाभदायक है।

५—एक्सचेञ्ज का ऊँचा भाव कर देने से भारतवर्ष के व्यापार को कोई स्थायी हानि होना सम्भव नहीं है। यदि आशा के विपरीत संसार में चीज़ों के भाव एकदम अधिक गिर जायँ और भारतवर्ष में चीज़ों के बनाने का ख़र्च इतना बढ़ जाय कि वे सस्ते भाव पर न बेची जा सकें, तो ऐसी दशा में इस प्रश्न पर फिर विचार करना उचित है।

६—एक्सचेञ्ज के तेज़ भाव से भारतवर्ष की औद्योगिक उन्नति में कोई बड़ी हानि नहीं हो सकती।

७—* होमचार्जेस के भेजने में भारतवर्ष को एक्सचेञ्ज के तेज़ भाव से लाभ होगा। इस लाभ पर भी ध्यान देना उचित है।

८—एक्सचेञ्ज का भाव स्थिर करने का प्रश्न यदि कुछ दिनों के लिए मुलतवी कर दिया जाय तो मनुष्यों को दोषारोपण करने का अवसर मिलेगा

---

* भारत-सरकार को भारत-मन्त्री के पास प्रति वर्ष लगभग ३७½ करोड़ रुपये, सरकारी ख़र्चे के लिए, भेजने पड़ते हैं। इस ख़र्चे की रक़म को होमचार्जेस कहते हैं। इस ख़र्चे में सरकारी कर्मचारियों की पेंशन तथा तनख़्वाह और सरकारी कर्ज़े का सूद और उस माल की क़ीमत जो भारत-सरकार विलायत से मँगाती है शामिल हैं।

और गवर्नमेंट को अभी जो अड़चनें हैं वे कुछ दिनों तक ज्यों की त्यों बनी रहेंगी।

९—सावरन अर्थात् गिन्नी के स्थान में रुपये का भाव सोने के भाव के साथ निर्धारित होना चाहिए। क्योंकि ऐसा ही करने से लाभ है।

१०—रुपये और सोने के भावों में जो स्थिर सम्बन्ध रक्खा जाय वह यह हो कि एक पौण्ड १०) के बराबर गिना जाय। अर्थात् देशी और विदेशी दोनों व्यवहारों के लिए एक रुपया, सोने के ११.३००१६ ग्रेनों के बराबर, समझा जाय।

११—यदि चाँदी का भाव इतना चढ़ जाय कि वह दो शिलिङ्ग रुपये की दर से बढ़ जाय तो ऐसी दशा में नोटों के बदले रुपये न देने के सिवा हम नीचे लिखे उपायों को भी काम में ला सकते हैं—

(अ) *कौंसिल-बिलों की, अर्थात् विलायत से हिन्दुस्तान की सरकार पर की गई हुण्डियों की, बिक्री कम कर दी जाय।

(ब) चाँदी न ख़रीदी जाय।

(स) चलनबाज़ार-सिक्के के लिए सोने से काम लिया जाय। अगर चाँदी ख़रीदना अत्यन्त ही आवश्यक हो तो सरकार घाटा सह कर भी चाँदी ख़रीद ले।

१२—कौंसिल-बिल्स व्यापार की सुविधा के लिए नहीं बेची जाती हैं, बल्कि होमचार्जेस का ख़र्चा वसूल करने के लिए। व्यापार के कामों के लिए हुण्डियाँ बेचने के लिए सरकार बाध्य नहीं है।

यदि सुविधा हो और भारत-मन्त्री को लाभ हो तो वह अपनी तत्काल की आवश्यकता से अधिक हुण्डियाँ भी बेच सकता है, विशेषतः जब उनकी माँग व्यापारिक दृष्टि से हो, पर ऐसा करने में उन नियमों पर ध्यान रहे जिनके अनुसार रिज़र्व कोष रक्खे जाते हैं। कौंसिल-बिलों का बेचान जैसे अब होता है वैसे ही खुले बाज़ार टेंडरों के द्वारा होता रहे। हिन्दुस्तान को सोना भेजने का जो ख़र्च पड़ता है उसका ख़याल कर, इन हुण्डियों का कम से कम भाव, समय समय पर, निश्चित कर दिया जाय। इस समय घटी-बढ़ी होगी किन्तु जब पौण्ड की क़ीमत सोने के बराबर हो जायगी तब भाव एकसा बना रहेगा।

१३—भारत-सरकार को भी अधिकार होगा कि भारत-मन्त्री से बिना पूछे प्रति सप्ताह विलायत के नाम सादी हुण्डियाँ और तार की हुण्डियाँ, एक्सचेञ्ज का भाव चढ़ जाने के समय, बेचे और इनकी दर निश्चित करने में यह ख़याल रहे कि भारतवर्ष से विलायत को सोना भेजने में क्या ख़र्च पड़ता है।*

१४—युद्ध के पहले भारतवर्ष में जितना सोना आया था वह भारतवासियों की रीति, व्यवहार तथा आर्थिक दशा देखते हुए अधिक नहीं था, किन्तु रुपये को ऐसे कामों में लगाना, जिनसे आमदनी होती रहे, अच्छा है।

१५—भारतवर्ष में सोने के आमदरफ़्त पर कोई सरकारी रुकावट नहीं होनी चाहिए।

१६—सरकार को चाहिए कि प्रजा जैसा सिक्का माँगे वैसा दे, चाहे वह सोने चाँदी का सिक्का हो चाहे काग़ज़ का। परन्तु सोना सरकार के कोषों में अन्य देशों के भुगतान के लिए रहे तो अच्छा है। इससे लाभ भी है।

भारतवर्ष में सोने को, सिक्के के रूप में, प्रचलित करना लाभदायक नहीं है। पर यह सम्भव है कि कभी कभी ऐसी आपत्ति आ जावे कि जितनी माँग हो उतना रुपया न

---

* होमचार्जेस का रुपया वसूल करने के लिए भारत-मन्त्री भारत-सरकार पर हुण्डियाँ करते हैं और उन्हें प्रति सप्ताह बेचते हैं। इन हुण्डियों को विलायत के व्यापारी ख़रीद कर भारतवर्ष में भेज देते हैं और इनका रुपया भारत-सरकार दे देती है। इस तरह रुपये का भुगतान हो जाता है। इन हुण्डियों को (Councils) कौंसिल्स कहते हैं।

*यद्यपि भारत-सरकार को भारत-मन्त्री से कुछ भी रुपया वसूल नहीं करना पड़ता है तथापि भारत-सरकार कुछ हुण्डियाँ भारत-मन्त्री पर करती है और ये हुण्डियाँ प्रायः हिन्दुस्तान के अँगरेज़-व्यापारी ख़रीद कर विलायत भेजते हैं। इन हुण्डियों को (Reverse Councils) रिवर्स-कौंसिल कहते हैं। इन हुण्डियों को बेचने में भारत का नुक़सान है।

दिया जा सके। तब यदि सोने से काम लेने की ज़रूरत पड़े तो कुछ सोने के सिक्के भी मामूली तौर पर चला दिये जायँ। पर इस बात पर ध्यान रहे कि एकदम सोने का सिक्का इतना न चला दिया जाय कि लोगों का विश्वास उठ जाय।

१७—रायलमिन्ट (टकसाल) की बम्बईवाली शाखा में सावरन और आधे सावरन के सिक्के फिर ढाले जायँ और लोगों को सोने का सिक्का बनवाने अथवा सोना साफ़ करवाने के लिए सुविधायें कर दी जायँ।

१८—सरकार सावरन के बदले रुपया देने को बाध्य न रहे।

१९—जिस समय यह नया क़ायदा जारी हो उस समय लोगों को १५) के भाव से अपने सावरन भुनाने का अवसर दिया जाय। और जिनके पास मोहरें हैं उन्हें भी मोहरें निकाल देने का अवसर दिया जाय। फिर मोहरें जारी न रक्खी जायँ।

२०—जहाँ तक जल्दी हो सके चाँदी के आने में जो रोक है वह हटा दी जाय।

२१—जब यह रोक हटा दी जाय तब चाँदी पर लगाया गया साइर-महसूल भी छोड़ दिया जाय। अगर सरकार की आर्थिक दशा अच्छी न हो तो यह महसूल भले ही बना रहे, नहीं तो कुछ ज़रूरत नहीं।

२२—भारतवर्ष से चाँदी के बाहर जाने में जो रुकावट है वह अभी बराबर बनी रहे, जिससे चाँदी भारत से बाहर न निकल जाय। जो चाँदी भारतवर्ष में निकलती है उसे लेना यदि सरकार बन्द करदे तो लैसन्स द्वारा उसकी निकासी की आज्ञा दे दी जाय।

२३—बेङ्कों के द्वारा काम करने में सुविधायें कर देना चाहिए और लोगों को अपनी बचत का रुपया बेङ्कों में जमा करने के लिए भी सुविधायें कर देनी चाहिए।

२४—सिक्का ढालने के लिए चाँदी जिस तरह ख़रीदी जा रही है उसी तरह ख़रीदी जाय। इस नियम में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है।

२५—*जितने के नोट प्रचलित हों उनकी एवज़ सोने, चाँदी के रूप में ४०) सैकड़े की पूँजी नोट-सम्बन्धी कोष में रक्खी जाय। बाक़ी ६०) सैकड़े की पूँजी इस भाँति रहे—भारत-सरकार के २० करोड़ रुपये के काग़ज़, जिन पर सूद लगता है, रहें; और बाक़ी पूँजी में ब्रिटिश राज्य की अन्य अन्य गवर्नमेंटों के वैसे ही काग़ज़। इस पूँजी में से १० करोड़ के काग़ज़ ऐसे हों जिनके सकारने की मीयाद एक वर्ष से ज़्यादह की न हो और बाक़ी सबकी मीयाद भी मुक़र्रर हो। ३० करोड़ रुपये के काग़ज़ तो वैसे ही हों जैसा ऊपर कहा गया है। बाक़ी रक़म में ब्रिटिश राज्य की अन्यान्य गवर्नमेंटों के ऐसे काग़ज़ होने चाहिए, जिन की मीयाद एक वर्ष से ज़्यादह न हो। इस कोष में १२० करोड़ रुपये की पूँजी कुछ नियत समय के लिए ही रहे।

नोट-सम्बन्धी कोष में सोने और पौण्डों की क़ीमत के काग़ज़ों के दाम २ शिलिङ्ग रुपये के हिसाब से लगाने चाहिए। इस तरह दाम लगाने से जो घाटा पड़ेगा वह एकदम पूरा नहीं हो सकता है, लेकिन एक्सचेञ्ज का भाव चढ़ जाने से जो मुनाफ़ा होगा उससे कुछ वर्षों में इस हानि की पूर्ति हो जायगी।

२६—समय समय पर जब रुपयों की अधिक माँग हो तब सरकार को चाहिए कि प्रेसीडेन्सी बेङ्कों को भारतवर्ष से माल जाने की हुण्डियों की ज़मानत पर जितने नोट जारी हैं उनसे ऊपर पांच करोड़ के और नोट निकाल कर कर्ज़े के तौर पर दे दे।

२७—नोट-सम्बन्धी कोष में जितना सोना-चाँदी है वह सब हिन्दुस्तान में रक्खा जाय। सिर्फ़ उतना ही

---

* जितने के नोट भारतवर्ष में जारी हैं उनकी रक्षा के लिए एक सरकारी कोष है, जिसे Paper Currency Reserve यानी नोट-सम्बन्धी कोष कहते हैं। इसमें, गत नवम्बर मास में १,७९.६७,००,००० रुपये की पूँजी थी। अर्थात् जितने नोट जारी थे उतनी ही पूँजी थी। इस पूँजी में अधिकांश सरकारी कर्ज़े के सूदी काग़ज़ रहते हैं। अब ४०) फ़ी सदी चाँदी-सोना रखने की भी तजवीज़ हुई है। यह कोष विलायत में है।

सोना-चाँदी बाहर रहे जो आने-जाने के सबब से रास्ते में हो ।

२८—जब आर्थिक दशा ठीक हो जाय तब नोटों का रुपया देने में पूरी सुविधायें की जायँ । युद्ध के समय जो रुकावटें रक्खी गई थीं वे भी हटा दी जायँ । सरकार अपने नोटों के बदले में सोने-चाँदी का पूरा सिक्का लोगों को दे दे ।

२९—* सोने के कोष में कितनी पूँजी रक्खी जाय, इस विषय में अभी कोई सीमा नहीं बाँधी जा सकती है । जब रुपये का सिक्का ढालने में मुनाफ़ा होने लगे तब उसकी कुल आमदनी इसी कोष में जमा की जाय ।

३०—वर्तमान स्थिति में सरकार को जितना सोना मिले उसे सोने के कोष में जमा न कर नोट-सम्बन्धी कोष में जमा करना चाहिए । जब सम्भव हो तब सरकार सोने के कोष में भी अधिक सोना रक्खे, किन्तु इस समय इस कोष में थोड़ी मीयाद के सूदी काग़ज़ रखना ही ठीक मालूम होता है । इस कोष में ३ वर्ष से अधिक मीयाद के काग़ज़ों की रक़म न बढ़ानी चाहिए और यह उद्देश होना चाहिए कि भारतवर्ष की सरकार के सिवा ब्रिटिश राज्य की अन्य अन्य गवर्नमेंटों के ऐसे सूदी काग़ज़ रक्खे जायँ जिनके सकारने की मीयाद बारह महीने से अधिक न हो ।

३१—सोने के कोष में जितना सोना है उसका अर्द्धांश हिन्दुस्तान में रखना चाहिए और जो पौण्डों की क़ीमत के काग़ज़ हैं वे लन्दन में ही रक्खे जाने चाहिए ।

करेंसी कमिटी के इन विचारों में से अधिकांश विचारों के साथ भारत-मन्त्री सहमत हैं और इस विषय में उन्होंने अपनी राय भी प्रकाशित करदी है; लेकिन भारतवर्ष में सोने के आने पर अभी यह रोक रक्खी है कि सोना बिना लैसंस के न आने पावे और उसका वही भाव रहे जो ऊपर कहा जा चुका है । दूसरी बात यह है कि भारत-सरकार सोने को, समय समय पर, बेचना उसी तरह जारी रक्खे जैसा कि वह अभी कर रही है । तीसरी बात यह है कि जब तक एक्सचेञ्ज का भाव स्थिर न हो जाय तब तक सावरन की क़ीमत पन्द्रह रुपया ही रहे ।

इस विषय में भारत-सरकार की यह विज्ञप्ति है—जो सोना लैसन्स से भारतवर्ष में आवेगा उसका भाव निश्चित कर दिया गया है और दूसरी फ़रवरी १९२० ईसवी से लगा कर सोने का जो सरकारी सौदा होगा उसका भाव दस रुपया सावरन के हिसाब से होगा, अर्थात् एक रुपया के ११.३०,०१६ सोने के ग्रेन होंगे । भारत-मन्त्री इँगलेंड के बेङ्कों में अपनी कौंसिल-हुण्डियाँ प्रति सप्ताह टेन्डरों द्वारा बेचते रहेंगे । जो भाव तार की हुण्डियों का रक्खा जायगा उससे १/१६ पेनी ऊँचा भाव इन हुण्डियों और डिफ़र्ड तार की हुण्डियों का रक्खा जायगा । अपनी हुण्डियों का कम से कम भाव प्रकाशित करने के लिए भारत-मन्त्री बाध्य न होंगे, बल्कि लोगों को टैन्डरों में अपने भाव लिखने होंगे और यह बात भारत-मन्त्री की इच्छा पर रहेगी कि वह चाहे जिस टेन्डर को मंज़ूर करें और चाहे जिसको नामंज़ूर करें । करेन्सी-कमिटी के विचारों के अनुसार भारत-गवर्नमेंट को भी अधिकार होगा कि जब आवश्यकता हो तब भारत-मन्त्री के नाम पर पौण्डों की क़ीमत की हुण्डियाँ प्रति सप्ताह बेचे, और इन हुण्डियों में तार की हुण्डियाँ भी शामिल हों । इन तार की हुण्डियों का भाव करेंसी महकमें के प्रबन्धकर्ता अफ़सर, समय समय पर, सूचित करते रहेंगे । यह भाव सोने के ११,३०,०१६ ग्रेन प्रति रुपये के भाव पर निर्धारित होगा । इतना होगा कि जो ख़र्च भारत से विलायत सोना भेजने में लगता है वह इस भाव में से घटा दिया जायगा । जो डिफ़र्ड हुण्डियाँ विलायत पर भारत-सरकार

---

* चलनबाज़ार-सिक्के की रक्षा के लिए एक सरकारी कोष है जिसे Gold Standard Reserve यानी सोने का कोष कहते हैं । चाँदी-सोने का सिक्का ढालने से सरकार को जितना फ़ायदा अब तक हुआ है वह सब इसी में जमा है । गत नवम्बर में इसकी पूँजी ५६,१५,७४,७५५ रुपये थी । ये सब रुपये सरकारी क़र्ज़े के सूदी काग़ज़ों में थे । यह कोष भी लन्दन में ही है । अब इसका कुछ हिस्सा भारत में रखने की भी तजवीज़ है । सिक्का ढालने में सरकार को चाँदी तेज़ होने से जो नुक़सान इस वक़्त हो रहा है उसका घाटा इसी कोष से दिया जा रहा है । इसलिए यह कोष अब घटता जा रहा है ।

करेगी उनका भाव दर्शनी हुण्डियों से $\frac{१}{१६}$ पेनी बढ़ कर रहेगा* ।

भारत-सरकार के फ़ाईनन्स महकमें से सूचना प्रकाशित हुई है कि कलकत्ता, मदरास और बम्बई के रिज़र्व कोषों से सावरन और अर्द्ध सावरन के बदले १५) और ७॥) देने का जो हुक्म था वह मंसूख़ किया गया है। इसी प्रकार टकसालों में सावरन और हाफ़ सावरन न लिये जायँगे। चाँदी के आने पर जो रुकावट है वह हटा दी गई है और चाँदी पर चार आने औंस का जो साइर महसूल लिया जाता है वह भी छोड़ दिया गया है, लेकिन चाँदी के बाहर जाने पर रोक बराबर बनी हुई है। सोने, चाँदी के सिक्के सिवा सिक्के के तौर पर और किसी काम में नहीं लाये जाते थे। उन सिक्कों को ज़्यादह दामों में बेचने पर भी रुकावट थी। वह भी हटा दी गई है।

करेंसी-कमिटी के इन विचारों पर तथा भारत-मन्त्री और भारत-सरकार की विज्ञप्तियों पर अभी बहुत कुछ कहना है। पर लेख बढ़ जाने से हम इसे यहीं समाप्त करते हैं।

कन्नोमल एम० ए०

वन-वैभव।

[३]

(५४)

इधर कौरव-दल गौरव धार
विपिन में करने लगा विहार
गूँजने लगी गान-गुन्जार
नूपुरों की नव नव झङ्कार
कहीं कुञ्जों में क्रीड़ा, भेट
कहीं जल-केलि, कहीं आखेट

(५५)

उसी वन में था एक तड़ाग
जहाँ उड़ता था पद्म-पराग
वहाँ का हरा भरा भू-भाग
आप उपजाता था अनुराग
चौखटे में जो हरे जड़ा
धरा पर था सुर-मुकुर पड़ा!

(५६)

चाँदनी छिटकी थी उस रात
विचरता था वासन्तिक वात
सो रहे थे यद्यपि जलजात
अयुत शशि थे सर में प्रतिभात
सरस सर की निहार शोभा
सुरों का भी मानस लोभा

(५७)

अप्सराओं को लेकर सङ्ग
नैशनिस्तब्ध भाव कर भङ्ग
बहाता हुआ राग-रस-रङ्ग
चित्ररथ भरे अपूर्व उमङ्ग
चन्द्र-तारों को दे व्रीड़ा
वहाँ करता था जल-क्रीड़ा

(५८)

अचानक इसी समय अनिवार
विपिन में करता हुआ विहार
झूमता हुआ कुञ्जराकार
साथ में लिये प्रणय-परिवार
स्वयं भी जल-विहार के हेतु
वहाँ पर आ पहुँचा कुरु-केतु

(५९)

उसे गन्धर्वों ने टोका
तर्जनी दिखलाई, रोका
ज़रा सा खाकर तब झोका
क्रोध से उसने अवलोका
उठी जो उसकी भृकुटि कराल
खिँचीं सौ तलवारें तत्काल

---

* आज-कल भारत-सरकार इन हुण्डियों को धड़ाधड़ बेच रही है। इससे भारतवर्ष को नुक़सान है और भारतवासियों का कहना है कि सरकार की इस काररवाई से सरकार को १० करोड़ रुपये का घाटा पड़ा है जो Gold Standard Reserve से दिया जा रहा है। जब पौण्ड का भाव १०) का बाँध दिया तब उससे कम दर में हुण्डियाँ बेचने से सरकार का घाटा है। इस समय ये हुण्डियाँ ७॥) या ८) पौण्ड के भाव से बेची जा रही हैं।

(६०)

हुआ गन्धर्वों पर आघात
चित्ररथ तक पहुँची यह बात
कि 'कोई उद्धत मानव-जात
मचाता है आकर उत्पात'
सिन्धु से उच्चैःश्रवा-समान
हुआ सरनिर्गत वह बलवान

(६१)

क्षोभ से जलने लगा शरीर
बिना पोंछे ही सूखा नीर
बदल कर वस्त्र शीघ्र वह वीर
उठा कर धनुष, चढ़ा कर तीर
जिधर होता था रण का शोर
चला शार्दूल-सदृश उस ओर

(६२)

अप्सरायें पुष्करिणी-सी
देख भय-बाधा करिणी-सी
विकल हो हहरीं हरिणी-सी
काँपती थीं सब तरिणी-सी
हाथ से देकर उन्हें प्रबोध
चित्ररथ चला गया सक्रोध

(६३)

पहुँच दुर्योधन-सम्मुख शूर
घोर नेत्रों से उसको घूर
कूकता हो ज्यों कुपित मयूर
वचन बोला सुस्वर से क्रूर
"कौन है तू ओ उद्धत धृष्ट,
यहाँ जो आया मरणाकृष्ट ?"

(६४)

सुयोधन भी बोला सक्रोध-
"ज्ञात क्या तुझको नहीं अबोध,
कि करके जिसका मार्ग निरोध
किया है तुमने आत्म-विरोध
वही इस पृथ्वी का स्वामी
सुयोधन नृप हूँ मैं नामी"

(६५)

"अरे, तू ही दुर्योधन है ?
दुष्ट दाम्भिक जो दुर्जन है ?
अनुज जिसका दुःशासन है ?
प्रकट जिसका पामरपन है ?
भाइयों को भिक्षुक करके
बना नृप उनका धन हर के !

(६६)

"मानता हूँ, तू है नामी
किन्तु कुल-काल, कुपथगामी
आज इस पृथ्वी का स्वामी
बना फिरता है तू कामी
पकड़ रखना तू इसका हाथ
सती होगी यह तेरे साथ !

(६७)

"मूढ़, तुझसे कितने भूपाल
हुए हैं, होंगे, विपुल विशाल
किन्तु सबके पीछे है काल
रहा इसका ऐसा ही हाल
बहुत है यही, कहूँ क्या और
कि देगी तुझको भी यह ठौर

(६८)

तुझे है लगा राज्य का रोग
इष्ट है अपना ही भू-भोग
कि भाई हैं जो पाण्डव लोग
सह्य उनका भी नहीं सुयोग
किन्तु है भू पर सबका भाग
करेंगे जिसे न तृण भी त्याग !

(६९)

"समय है अब भी चेत अचेत !
नहीं तो उजड़ जायगा खेत
धर्म्म-पथ धर कर धैर्य्य समेत
लौट जा जीवित नृपति-निकेत
हुआ था यद्यपि मुझको रोष
क्षमा करता हूँ तेरा दोष"

(७०)

"किन्तु मैं दूँगा तुझको दण्ड,
कि कोई भी हो तू पाषण्ड !
सँभल, अब यह मेरा कोदण्ड
छोड़ता है चञ्चल शर चण्ड"
बाण यों कहते कहते जोड़
दिया झट दुर्योधन ने छोड़

(७१)

किये कर्णादिक ने भी वार
चित्ररथ सँभला किसी प्रकार
और बोला—"धिक् पापाचार !
दण्ड ही है तेरा उपचार"
न करके उसने भी विक्षेप
किया सम्मोहन-शर-निक्षेप

(७२)

शीघ्र उस शर का पड़ा प्रभाव
हुआ सब कौरवदल हतहाव
चढ़ा तब गन्धर्वों को चाव
उन्होंने किया विकट बर्ताव
कि सारे शूरों को पकड़ा
विमानों से बाँधा, जकड़ा !

(७३)

कौरव-स्त्रियाँ देख यह हाल
पीटने लगीं वक्ष या भाल
विकल थे कौरव क्रुद्ध कराल
सिंह ज्यों तोड़ न पाकर जाल
हुआ कातर कोलाहल नाद
शिविर तक पहुँचा यह संवाद

(७४)

वहाँ थे वृद्ध सचिव या दास
व्यर्थ था उनका रण-प्रयास
विवश होकर, लेकर निश्वास
चले वे धर्म्मराज के पास
किन्तु लज्जित थे मन मन में
पुकारें और किसे वन में !

(अपूर्ण)

मैथिलीशरण गुप्त।

लाला लक्ष्मणदास।

किसी कवि की उक्ति है—

किं जन्मना महति किं पितृपौरुषेण
शक्त्यैव याति निजया पुरुषः प्रतिष्ठाम्।
कुम्भो हि कूपजलशोषयितुं न शक्तः
कुम्भोद्भवेन मुनिनाम्बुधिरेव पीतः॥

घड़े से आप कुवें के भीतर से निरन्तर पानी खींचा कीजिए; वह कभी ख़ाली न होगा। मजाल क्या जो बड़े से बड़ा घड़ा भी कुवें का पानी, सबका सब, खींच ले। उसमें इतनी शक्ति ही नहीं। पर उसी कुम्भ अर्थात् घड़े से उत्पन्न कुम्भज ऋषि की शक्ति को देखिए। उन्होंने अपने चुल्लू में रख कर सारा का सारा समुद्र पी डाला। बात यह है कि न बाप-दादे का पुरुषार्थ काम आता है और न बड़े घर में जन्म लेने ही से नाम होता है। मनुष्य अपनी निज की ही शक्ति से, अपने निज के ही बाहु-बल से, संसार में प्रतिष्ठा पाता और बड़े बड़े काम कर दिखाता है।

कानपुर के लाला लछमनदास ऐसे ही पुरुष थे। फाल्गुन संवत् १९०८ में उनका जन्म हुआ और वैशाख संवत् १९७६ में, कोई ६८ वर्ष की उम्र में, परलोक-वास। वे अग्रवाल वैश्य थे। अल्ल लोहिया थी। साधुमार्गी श्वेताम्बर-जैन-धर्म के अनुयायी थे। उनके पिता का नाम मूलचन्द था।

लछमनदास के पिता एक साधारण स्थिति के गृहस्थ थे। लछमनदास ने विशेष पढ़ा-लिखा नहीं। केवल हिसाब-किताब और मतलब भर के लिए मुड़िया सीखी। पर उद्दण्डता खूब सीखी। कुश्ती लड़ना, दण्ड पेलना और मुग्दल हिलाना ही उन्होंने अपने लिए सबसे बड़ा काम समझा। जब वे १६ वर्ष के थे तभी पिता का परलोकवास

हो गया। कुछ समय के लिए वे अपने ननिहाल फ़ीरोज़ाबाद चले गये। वहाँ भी वे अपनी ही धुन में मस्त रहे। विवाह २० वर्ष की उम्र में हो चुका था। थे वे हाथरस के रहनेवाले। वहाँ, एक दिन, उनके चचा इत्यादि ने उनकी अकर्मण्यता पर बहुत खेद प्रकट किया; उन्हें तीव्र शब्दों में सदुपदेश भी दिया। उस शब्दात्मक कड़ुवे भेषज ने लछमनदास को प्रकृतिस्थ कर दिया। उन्हें बड़ी ग्लानि मालूम हुई। वे सोते से जाग से पड़े। बस झट आप ख़ाली हाथ घर से निकल पड़े और कानपुर पहुँचे।

कानपुर में आपने लोहे-लक्कड़ का अपना पैतृक व्यवसाय शुरू किया। रेलवाले अपना लोहे का सामान, पुराना हो जाने पर, बेच दिया करते हैं। धीरे धीरे लछमनदास ने इसी काम में हाथ लगाया। वे रेल के सामान की ठेकेदारी और दलाली करने लगे। इसमें उन्हें खूब कामयाबी हुई। दिन पर दिन व्यवसाय उन्नति करने लगा। उद्धत स्वभाव के लछमनदास शान्त, सुशील, व्यापार-कुशल और श्री-सम्पन्न हो चले। कानपुर में दलाली जारी रख कर, संवत् १९४३ में, आपने एक दुकान कलकत्ते में खोल दी। कुछ दिन बाद कानपुर और बम्बई में भी लोहे की दुकानें कर लीं। रोज़गार चमक उठा। अपनी बुद्धि और व्यवसाय-कुशलता से लछमनदास ने अपने कारोबार को बढ़ा कर उन्नति की ऊँची सीमा तक पहुँचा दिया। विख्याति और वैभव गले पड़े। लोहे की बदौलत स्वर्ण-राशि के वे स्वामी बन गये। ऐसे पुरुषार्थी और परिश्रमी पुरुष पर कमलालया क्यों न भला अपनी आसक्ति प्रकट करे? अदम्य साहस और अनवरत उद्योग से लाला लछमनदास ने बहुत बड़ी जायदाद पैदा करली। विष्णु की दासी लक्ष्मी लछमन की दासी बन गई।

धनोपार्ज्जन के साथ ही साथ लछमनदास ने कीर्ति का उपार्जन भी आरम्भ कर दिया। परोपकार की ओर जो उनकी प्रवृत्ति हुई तो अन्त समय तक उस प्रवृत्ति का साथ उन्होंने न छोड़ा। सत्पात्रों को दान देने, दीन दुखियों का दुख दूर करने, कन्याओं का विवाह करने, कुवे खुदवाने और आपत्तिग्रस्तों को उबारने में उन्होंने अपने धन का यथेच्छ सदुपयोग किया। धार्म्मिक कृत्यों के लिए भी उन्होंने बहुत कुछ दान दिया। जो कुछ उन्होंने इस तरह दिया प्रायः चुपचाप दिया। न अख़बारों में उसका लेखा प्रकाशित कराया और न यह किया—वह किया, कह कर दीनशीलता दिखाने ही की चेष्टा

लाला लक्ष्मणदास।

की। सदा सादा जीवन व्यतीत किया। यह बात उनके उस चित्र से प्रकट हो जायगी जो अन्यत्र इस संख्या में प्रकाशित है।

लाला लछमनदास ने एक बात अवश्य की है। वह छिपाने से छिप सकने योग्य नहीं। आपकी परोपकारशीलता का वह बहुत बड़ा स्मारक है। वह है आपकी धर्म्मशाला। खेद है, उसकी प्रतिष्ठा आपके जीवन में न हो सकी। कानपुर में यों तो और भी धर्म्मशालायें हैं, पर लछमनदास की यह नई धर्म्मशाला उन सबसे बढ़ चढ़ कर है। १९१५ ईसवी में इस धर्म्मशाला के निर्म्माण का काम शुरू हुआ। कोई ५ वर्ष में बन कर वह तैयार हुई। गत वसन्त-पञ्चमी के दिन उसकी प्रतिष्ठा थी। ३० हज़ार रुपये तो सिर्फ़ ज़मीन ख़रीदने में ख़र्च हुए। इमारत में चार लाख रुपये के लगभग लगे होंगे। धर्म्मशाला में तीन चौक और तीन ही मंज़िलें हैं। इमारत ख़ूब पुख़्ता है। बड़ी सुन्दर है। अच्छी कारीगरी दिखाई गई है। चित्र से इस बात का थोड़ा बहुत अनुमान ज़रूर हो जायगा।

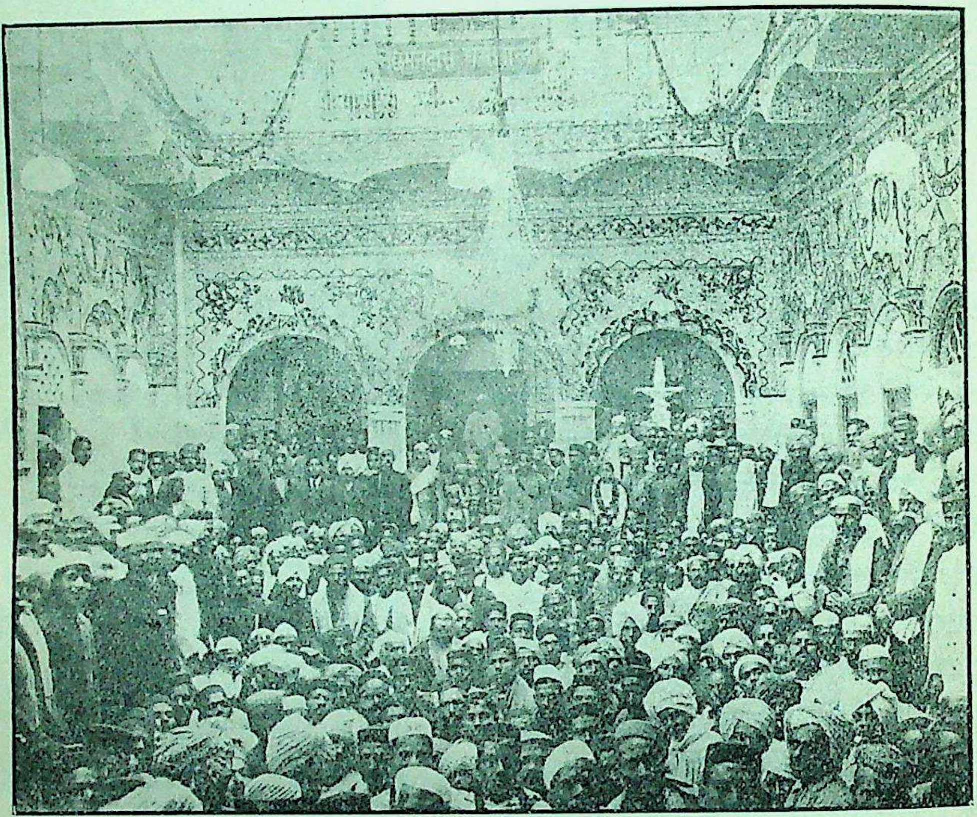

लक्ष्मणदास-धर्मशाला का भीतरी दृश्य और उद्घाटन के समय का समारोह।

धर्म्मशाला की प्रतिष्ठा बड़े समारोह से हुई। बाहर से भी अनेक प्रतिष्ठित सज्जन पधारे थे। कई कविजन भी आये थे। कवितायें पढ़ी गईं। बहुत बड़ा हवन हुआ। ब्रह्मभोज हुआ। दक्षिणायें बटीं। दावतें हुईं। कोई ३० हज़ार रुपये इस अवसर पर ख़र्च किये गये। कविवर "सनेही" ने इस जलसे में जो कविता पढ़ी थी वह नीचे दी जाती है—

(१)

शोभित है यह सभा या कि यह नन्दन-वन है ; सुर-तरु-सज्जन-वृन्द प्रफुल्लित सबका मन है।
यह सुख-श्वासोच्छ्वास है कि यह त्रिविध पवन है ; यश-सौरभ की महक फूल सा धर्म्म-भवन है ॥
वाणी मत्त-मिलिन्दनी सी करती गुञ्जार है।
आई प्रियवर देखिए विमल वसन्त-बहार है ॥

(२)

क्यों न फूल फल लगें इस तरह इस उपवन में ; पारिजात किस तरह न फूलें इस नन्दन में।
लाला लक्ष्मणदास लक्ष्य रखते थे मन में ; जीवन देते रहे निरन्तर वे जीवन में ॥
अपने चिर चातुर्य्य से, उद्यम से, उद्योग से।
साहस-बल से, धैर्य्य से, विविध गुणों के योग से ॥

(३)

वे कुछ हैं कर गये कठिन है जिसका करना ; खेल नहीं इस तरह भवार्णव पार उतरना।
अपनी उन्नति और उदर औरों के भरना ; करना पूर्ण अभीष्ट विघ्न से कभी न डरना ॥
उद्योगी थे वे बड़े साहस के अवतार थे।
बड़े धर्म्म-श्रद्धालु थे करते पर-उपकार थे ॥

(४)

मनुज-सृष्टि का सार सार मनुजों का जीवन ; जीवन का है सार सदा नीरोग रहे तन।
तन का है यह सार उपार्जित करे धान्य-धन ; धन का है यह सार धर्म्म पर वारे तन मन ॥
धन्य धन्य है धरा में धवल सुधा की धार है।
धर्म्म-सार संसार में केवल पर-उपकार है ॥

(५)

निज भुज-बल से वही उन्होंने कर दिखलाया ; लही सफलता सबक सफलता का सिखलाया।
कभी समय या अर्थ न अपना व्यर्थ गँवाया ; सादा जीवन बड़ी शान से सदा बिताया ॥
अपने श्रम से बहुत कुछ अर्जन कर व्यापार में।
मुक्त-हस्त अर्पित किया सादर पर-उपकार में ॥

(६)

धर्म्म-धाम यह धवल समुज्ज्वल यश समान है ; जैसे ऊँचे भाव बना वैसा महान है।
क्या ही सज धज वाह ! निराली आन-बान है ; है सुमेरु, कैलास कि सुरपति का मकान है।
सन्त-हृदय की तरह से इसमें परम प्रकाश है।
क्लान्त पथिक के अर्थ सुख-शान्ति-सुधा की आश है ॥

(७)

क्यों न आश हो हैं सुपुत्र सज्जन के सज्जन ; उपकारी, निष्काम और अतिशय उदार-मन।
समझे हैं वे ठीक सुकृत में व्यय करना धन ; किया परम आतिथ्य आगतों का विनम्र बन ॥
वे श्रीचम्पाराम हैं या श्रीबाबूराम हैं।
फूलचन्द हैं खिल रहे सबके सब अभिराम हैं ॥

(८)

चिरजीवी हों और मनोहर कीर्ति कमावें ; धर्म्म-भूमि में सदा प्रेम-सुरसरी बहावें ।
अपनावें सब इन्हें विश्व को ये अपनावें ; करें देश का काम गुणावलि कवि-जन गावें ॥
धर्म्म-धनी बन कर रहें बनें धर्म्म के प्राण हों ।
धवल-धर्म्मशाला-सदृश दीन जनों के त्राण हों ॥

इस धर्म्मशाले के सम्बन्ध में लाला लछमनदास की आज्ञा से नीचे लिखे अनुसार मासिक रुपया ख़र्च किये जाने का प्रबन्ध है—

(१) सदावर्त के लिए २५)
(२) औषधालय के लिए ७५)
(३) मुलाज़िमों वग़ैरह की तनख़्वाह ५०)
(४) कबूतरों के लिए दाना ५)

लाला लछमनदास अपने मुलाज़िमों को भी नहीं भूले। उनके आदेश के अनुसार धर्मशाले के उद्घाटन के समय उनके मुख्य मुनीम को ५०००) रुपये की क़ामत का एक मकान देने का प्रबन्ध किया गया। औरों में से किसी को पाँच सौ, किसी को दो सौ और किसी को सौ रुपये पुरस्कार मिले।

और धर्म्मशालाओं में तो कभी कभी बारातें भी विराजती हैं। आशा है, इसमें यह बात न होगी।

लाला लछमनदास के तीन पुत्र हैं—चम्पाराम, बाबूराम और फूलचन्द। इनमें से, हम पिछले सज्जन, बाबू फूलचन्द, से स्वयं परिचित हैं। परिचय अभी कुछ ही दिन से हुआ है। पर इतने थोड़े समय में ही हमें आपके कितने ही सद्गुणों का ज्ञान हो गया है। आप बड़े ही नम्र, मिष्टभाषी और सरल-हृदय हैं। हिन्दी-कविता के आप परम प्रेमी क्या उपासक हैं। सत्कवियों की कविता सुनने के लिए सदा उत्सुक रहते हैं।

अनाज की कमी दूर कैसे हो ?

सरकारी जेलों में भारतीय क़ैदियों को जितनी ख़ूराक दी जाती है वह उतनी ही होती है जितनी से क़ैदियों का स्वास्थ्य न विगड़े। परन्तु हमारे देश के, कम से कम, आधे युवकों और युवतियों को, क़ैदियों से भी कम ख़ूराक़ पर सारी उम्र बितानी पड़ती है! सरस्वती की किसी पिछली संख्या में, प्रत्यक्ष हिसाब लगा कर, यह बात सिद्ध की जा चुकी है। क्या यह अत्यन्त आश्चर्य और शोक की बात नहीं है कि देश के प्रायः ६ करोड़ जवान स्त्री-पुरुषों को, जी-तोड़ मेहनत करने पर भी, उतना भी भोजन नहीं मिलता जितना सरकारी जेलों में कठिन कारावास की सज़ा काटनेवाले दुराचारी क़ैदियों को मिलता है। भोजन के सम्बन्ध में उन क़ैदियों की हालत जेल से बाहर रहनेवाले निर्दोष लोगों से कहीं अच्छी है। भला जिन्हें भरपेट खाना भी नसीब नहीं होता वे सुख की कल्पना स्वप्न में भी कैसे कर सकते हैं? किसी भी मनुष्य को जब तक आधा पेट भोजन ही मिलेगा तब तक वह सुख की नींद सो कैसे सकता है? इस आधे पेट भोजन पाने का प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा पड़ता है। पूरी पूरी ख़ूराक न मिलने से लोग दुर्बल हो जाते हैं। तब रोगों के चक़्क़ू में फँस कर, शीघ्र ही दुनिया से कूच कर देना उनके लिए स्वाभाविक ही है। भूख से जर्जर इन दुर्बल भारतवासियों पर मलेरिया, प्लेग, हैज़ा इन्फ़्लूएन्ज़ा आदि रोग भी ख़ूब हाथ साफ़ करते हैं। इस तरह लाखों मनुष्य प्रति वर्ष यमराज की भेंट हो जाते हैं। इसी कारण, इस देश की मृत्यु-संख्या बढ़ती जाती है। गत दस वर्षों का औसत लगाने पर मालूम होता है कि वह संख्या ३१·२ प्रति हज़ार प्रति वर्ष तक पहुँच गई है। शायद ही और कोई

देश इस मामले में भारत की बराबरी कर सके। भारतवासियों के जीवन-काल की औसत अवधि भी इसी कारण से केवल २४·७ वर्ष की है जब कि इँगलेंडवालों की ४७ और न्यूज़ीलेंडवालों की ५० है। ऐसी दशा में क्या हमारा कुछ भी कर्तव्य नहीं ? हमारी समझ में इन ६ करोड़ आधे पेट भोजन पानेवालों को पूरे प्रमाण में भोजन दिलाने की व्यवस्था का प्रश्न सबसे अधिक महत्त्व का है। भारतीय जनता और सरकार को मिल कर इस भयङ्कर दशा से देश का पीछा छुड़ाने के लिए शीघ्र ही प्रयत्न करना चाहिए।

मध्य एशिया और रूस में बोल्शेविज़्म की भयङ्कर आग धधक रही है। बोल्शेविकों के आदर्श चाहे कितने ही उच्च हों, किन्तु जिन साधनों के द्वारा वे अपने आदर्श को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं वे सर्वथा निन्दनीय हैं। साथ ही इस पर भी हमारा ध्यान रहना चाहिए कि हमेशा भूखों मरने के कारण असह्य कष्ट उठानेवाले, और अत्यन्त नीच दशा में रहने के कारण कई प्रकार के अत्याचारों से पिसे हुए, मनुष्यों पर ही बोल्शेविकों का प्रभाव अधिक पड़ता है। जब उन्हें जीवन कष्टमय प्रतीत होने लगता है और सर्वत्र दुख ही दुख दिखाई पड़ते हैं तथा जब उन्हें कठिन परिश्रम करने पर भी रूखा सूखा अन्न पेट भर खाने को नहीं मिलता तब, यन्त्रणा से पीड़ित होकर, यदि वे बुरे से बुरा काम करने को तैयार हो जायँ तो क्या आश्चर्य्य ? इसलिए, देशवासियों को और भारत-सरकार को समय पर उनकी चिन्ता करनी चाहिए और जनता की दशा सुधारने का इस तरह प्रयत्न करना चाहिए जिससे अत्याचार घटें और जनता में उत्तरोत्तर सुख की वृद्धि हो। देश में अन्न के परिमाण की इस प्रकार से वृद्धि की जाय कि कम से कम १५–२० वर्षों के बाद देश भर को, काफ़ी परिमाण में, भोजन मिलने लगे।

अब प्रश्न यह है कि अन्न के परिमाण की वृद्धि हो किस तरह। उसके केवल दो ही साधन हैं। एक तो यह कि यहाँ से अन्य देशों को जितना अनाज भेजा जाता है उसका परिमाण घटाया जाय; और दूसरा यह कि देश में अनाज की उपज बढ़ाई जाय। पहले हम देश से बाहर जानेवाले अनाज के परिमाण को घटाने के विषय में विचार करते हैं। गत सात आठ वर्षों में भारत से बाहरी देशों को अनाज इस प्रकार भेजा गया—

(लाख टन में)

	चावल	गेहूँ	ज्वार बाजरा जव	दाल	चना	अन्य प्रकार का अनाज
१९११-१२	२६·२	१४·१	३·२	२·८	३·५	१·५
१९१२-१३	२७·६	१७·३	६·५	२·०	१·४	०·३
१९१३-१४	२४·५	१२·८	२·७	१·१	०·७	०·०४
१९१४-१५	१५·६	७·६	१·३	०·९	०·२	०·०३
१९१५-१६	१४·२	७·१	२·१	१·१	०·३	०·०७
१९१६-१७	१६·५	८·०	२·५	१·७	०·४	०·३
१९१७-१८	१९·६	१५·२	४·०	२·३	३·३	०·९
१९१८-१९	२०·५	५·१	२·३	०·५	२·८	१·२

इस कोष्टक से यह भली भाँति मालूम होता है कि चावल और गेहूँ की रफ़्तनी ही अधिक परिमाण में होती है। अन्य प्रकार का अनाज कम भेजा जाता है। इसलिए, यदि हम बाहर भेजे जानेवाले अनाज का परिमाण कम करना चाहते हैं तो हमें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए जिसमें इस देश से बाहर गेहूँ और चावल कम भेजा जाय। दूसरी बात उक्त कोष्टक से यह मालूम होती है कि यूरोपीय महायुद्ध के पहले इस देश से बाहर अनाज बहुत अधिक परिमाण में भेजा जाता था। महायुद्ध के समय यह परिमाण बहुत कम हो गया था। पर, अब फिर उसके बढ़ने की सम्भावना है। इसका एक कारण तो महायुद्ध के समय में जहाज़ों का अभाव या न्यूनता थी, जिससे माल कम भेजा जा सकता था। दूसरे, भारतीय सरकार ने विदेश को अनाज भेजने का अधिकार अपने हाथ में ले लिया था। अतएव देश से अधिक माल बाहर नहीं भेजा जा सका। इसका परिणाम देश के लिए अच्छा ही हुआ। यदि भारत-सरकार राली ब्रादर्स के सदृश कम्पनियों को मनमाना अनाज देश से बाहर ले जाने देती तो वह बेहद महँगा होजाता। इससे, देश में असन्तोष एवं दुख और भी अधिक बढ़ जाता। अन्न की दर चढ़ जाने से उन

किसानों को कुछ लाभ अवश्य होता जो केवल बेच देने के लिए ही गेहूँ चावल बोते हैं; परन्तु हमारी समझ में तो बीच के दलाल ही मुनाफ़े की गहरी रक़म हड़प कर जाते; और इस तरह देश घाटे में ही रहता। इसलिए, हमारी समझ में, यदि इन व्यापारियों को, स्वतन्त्र रूप से, मनमाना गेहूँ-चावल विदेश भेजने दिया जाय तो देश का हित नहीं। जब तक सारे देशवासियों को काफ़ी परिमाण में भोजन नहीं मिलता तब तक देश से गेहूँ-चावल विदेश भेजना बिलकुल ही बन्द कर दिया जाय तो बहुत अच्छा हो। यदि किसी कारण से भारत-सरकार ऐसा करने में असमर्थ हो तो कम से कम वह व्यापारियों को स्वतन्त्र रूप से गेहूँ-चावल विदेश न भेजने दे; और जितना कम हो सके उतने कम परिमाण में गेहूँ-चावल विदेश को जाने दे। नीचे के कोष्टक में यह बतलाया गया है कि गत आठ वर्षों में कितना गेहूँ और चावल ब्रिटिश भारत और रक्षित राज्यों में उत्पन्न हुआ और उसमें से विदेश को कितना भेजा गया।

(लाख टन में)

वर्ष	चावल		गेहूँ	
	उपज (संपूर्ण भारत और रक्षित राज्यों में)	विदेश भेजे गये का परिमाण	उपज (संपूर्ण भारत और रक्षित राज्यों में)	विदेश भेजे गये का परिमाण
१९११-१२	३११	२६·२	९९	१४·१
१९१२-१३	२८५	२७·६	९८	१७·३
१९१३-१४	२८८	२४·५	८४	१२·८
१९१४-१५	२७२	१५·६	१०१	७·६
१९१५-१६	३२८	१४·२	८६	७·१
१९५६-१७	३४८	१६·५	१०२	८·०
१९१७-१८	३५९	१९·६	१०२	१५·३
१९१८-१९	२४६	२०·५	७४	५·१

इस कोष्टक से यह पता लगता है कि गेहूँ, चावल की उपज का कितना भाग प्रति वर्ष, देशवासियों के भूखों मरने पर भी, अन्य देशों को चला जाता है। कुछ महाशयों का मत है कि यदि सरकार अनाज की रफ़्नी में दस्तन्दाज़ी करेगी तो अनाज की क़ीमत, ज़मीन की अन्य उपजों के मुक़ाबले में, बहुत कम हो जायगी। इससे कृषक लोग अनाज बोने की अपेक्षा कपास, सन, तिली आदि का बोना अधिक लाभदायक समझेंगे। इसलिए वही चीज़ें अधिक परिमाण में बोई जायँगी और गेहूँ-चावल की खेती कुछ कम हो जायगी। इस कारण उनकी उपज भी पहले से कुछ कम होगी। अतएव गेहूँ और चावल की क़ीमत फिर भी बढ़ जायगी; और अन्त में इस नीति से देश को कुछ भी लाभ न होगा। लेकिन इस आक्षेप में कुछ भी सार नहीं। क्योंकि गत चार-पांच वर्षों की कृषि-सम्बन्धिनी रिपोर्टें उक्त आक्षेप का समर्थन नहीं करतीं। गेहूँ और चावल की रफ़्तनी करने का अधिकार सरकार के अधीन हो जाने पर उन चीज़ों की दर अवश्य ही उतनी नहीं बढ़ी जितनी कि अन्य चीज़ों की बढ़ गई थी; परन्तु इससे गेहूँ और चावल पहले से कम भूमि में नहीं बोये गये। अनाज बोये जाने का दारोमदार उसकी क़ीमत की अपेक्षा वर्षा पर और ज़मीन के विशेष गुणों पर ही अधिकतर है। अनाज की उपज का दारोमदार भी वर्षा पर ही है। कुछ महाशयों का यह भी मत है कि यदि गेहूँ-चावल रोक लिया जायगा तो सस्ता अन्न, अधिक परिमाण में, विदेश जाने लगेगा। इससे ग़रीबों को फिर भी अन्न के लाले पड़ने लगेंगे। हमारी समझ में, इसकी वैसी सम्भावना प्रतीत नहीं होती। यदि भारत-सरकार सब प्रकार के अनाज की रफ़्तनी स्वतन्त्र-रूप से न होने दे तो बहुत अच्छा हो। परन्तु यदि सस्ता अन्न स्वतन्त्र-रूप से जाने भी दिया गया तो उसकी मांग विदेशों में बहुत कम होने के कारण उसका परिमाण अधिक बढ़ने की सम्भावना बहुत कम है। केवल गेहूँ और चावल की ही मांग विदेशों में बहुत है और उनका, स्वतन्त्र-रूप से, इस देश से न भेजा जाना ही आवश्यक है। इसलिए, हमारी समझ में, यदि भारत-सरकार व्यापारियों को स्वतन्त्र-रूप से गेहूँ-चावल की रफ़्तनी न करने देने की नीति का परित्याग न करे तो उससे देश को लाभ ही अधिक है। अभी, इस वर्ष के लिए तो भारत-सरकार ने ऐसा ही किया है। भविष्यत् में भी उसे इसी नीति का अनुसरण करना चाहिए। आशा है, व्यवस्थापक सभा के हमारे प्रतिनिधि उससे ऐसा कराने के लिए यथा-शक्ति प्रयत्न करेंगे। देश में जो अनाज की कमी हो जाती है उसकी पूर्त्ति भी, कुछ अंश में, इससे हो सकेगी।

यदि भारत-सरकार इन विदेशी व्यापारियों को स्वतन्त्र रूप से अनाज का व्यापार करने देने की नीति को देश के लिए हितकर समझे तो उसे देश से बाहर जानेवाले गेहूँ और चावल पर १० या १५ प्रति सैकड़े के हिसाब से टैक्स लगा देना चाहिए। स्मरण रहे कि ऐसा कर लगाने से देश को किसी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं, प्रत्युत इस उपाय से भी देश से बाहर जानेवाले अनाज का परिमाण कुछ कम हो जायगा और अनाज की कमी को, कुछ अंश में, दूर करने में सहायता भी मिलेगी।

परन्तु विदेशों को भेजे जानेवाले अनाज के परिमाण को घटा देने से ही काम न चलेगा। यदि अनाज का विदेश भेजा जाना बिलकुल ही बन्द कर दिया जाय तो भी कई लाख टन की अनाज की कमी बनी ही रहेगी। नीचे के कोष्टक से यह बात बहुत आसानी के साथ समझ में आ जायगी—

(लाख टन में)

	अनाज की कमी*	विदेश को अनाज की रफ़्तनी
१९११–१२	७८·३	५१·१
१९१२–१३	१२१·०	५५·१
१९१३–१४	१ ५·०	४१·७
१९१४–१५	१०४·३	२५·३
१९१५–१६	६४·८	२३·८
१९१६–१७	४९·५	२९·०
१९१७–१८	७७·७	४५·१

अन्न की रफ़्तनी घटाने के सिवा हमको देश में अन्न की उपज भी बढ़ानी होगी। हमारे देश की ज़मीन कम उपजाऊ हो गई है। यहाँ एक एकड़ ज़मीन में यदि दस मन अनाज उत्पन्न हो जाय तो बहुत ही अच्छी उपज समझी जाती है। कृषि-विभाग के कर्मचारियों ने ऐसी ही ज़मीन पर नये प्रकार के यन्त्र, खाद और सिँचाई आदि का उपयोग करके सिद्ध कर दिया है कि उन्हीं खेतों में दुगुनी तिगुनी उपज उत्पन्न की जा सकती है। क्या ही अच्छा हो यदि हमारे सब किसान भाई नये नये यन्त्र, खाद और सिँचाई का उपयोग करके उपज को, अधिक नहीं तो दूना करने में ही, समर्थ हो जायँ। तब तो अवश्य ही सुख का साम्राज्य हो जाय और किसी को भी भूखों न मरना पड़े। हमारे देशवासी भी अपना पेट भर कर दूसरे देशों को अन्न देने में समर्थ हो जायँ। परन्तु इन साधनों का उपयोग करने में अगणित कठिनाइयाँ हैं। भारतीय किसान बहुत ग़रीब हैं। उनकी ज़मीन बहुत ही छोटे छोटे टुकड़ों में, भिन्न भिन्न स्थानों में, बँटी हुई है। इससे वे नये नये प्रकार के खाद देकर, और नये नये यन्त्र लगा कर भी ज़्यादह लाभ नहीं उठा सकते। उनको सिँचाई की भी ठीक ठीक सुविधा नहीं है। उनके बैल बहुत कमज़ोर होने के कारण, नये प्रकार के वज़नी हल खींचने में असमर्थ हैं। वे प्रायः लालची साहूकारों के चङ्गुल में फँसे रह कर मनमाना व्याज देते देते उजड़ गये हैं। ज़मींदार को लगान भी बहुत देना पड़ता है। दूसरे रूप में रिश्वत भी उन्हें देनी पड़ती है। सौ बात की बात यह है कि वे अविद्यारूपी अन्धकार में पड़े हुए हैं, जिसके कारण वे जहाँ जाते हैं वहीं धोखा खाते हैं और परिश्रम से कमाये हुए मुनाफ़े का बहुत सा भाग व्यर्थ ही खो देते हैं। प्रश्न बहुत जटिल है। इस सम्बन्ध में हम अपने विचार फिर कभी प्रकट करेंगे।

दयाशङ्कर दुबे

हित की बात।

जब हितू को रही न पतियाती—
जाति, सब तो न किस तरह सहती।
जब सुनी बात ही नहीं हित की—
तब भला बात किस तरह रहती ॥१॥

भूल है, पहुँचें ठिकाने हम न जो—
राह सीधी कब न दिखलाई गई।
है कसर जो कर उसे बरपा न हों—
कब नहीं हित बात बतलाई गई ॥२॥

किस तरह से बची रहे हुरमत—
और मुँह की बनी रहे लाली।
सैकड़ों टालटूल कर, हित की—
बात ही जब गई बहुत टाली ॥३॥

---

* सरस्वती में प्रकाशित हमारे लेख के अनुसार।

है बड़ी बेहूदगी जो काम की—
बात सुनने के लिए बहरे बने ।
तो किसी गँव की न गहराई रही—
जो न गहरी बात कह गहरे बने ॥४॥
दून की लेंगे बहँक कर बकेंगे—
काम के हित जी हुआ बैही नहीं ।
किस तरह लेंगे खेलौना चाँद का—
बात है, करतूत कुछ है ही नहीं ॥५॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

विलेज-पञ्चायत-बिल ।

किसी समय भारत के प्रायः प्रत्येक गाँव में पञ्चायत थी । लोग अपने आपस के झगड़े वहीं निपटा लिया करते थे । आमिल, नाज़िम, चकलेदार, क़ाज़ी या न्यायाधीश के दरबार में जाने की कम ज़रूरत होती थी । हम अपनी आँख-देखी बात कहते हैं कि यह प्रथा अब तक भी निर्मूल नहीं हुई । अब तक, कहीं कहीं, गाँव के किसी सुभीते के स्थान में, एक बड़ा सा चबूतरा देख पड़ता है। उस पर पञ्चायती छप्पर पड़ा रहता है । चबूतरे पर टाट, चटाई या तख़्त बिछा रहता है । कहीं कहीं बारादरी बनी होती है । वहीं, शाम को, गाँव के लोग एकत्र होते हैं और नाना प्रकार की गप-शप करते तथा ज़रूरत पड़ जाने पर छोटे मोटे मामले-मुक़द्दमे—विशेष कर धार्म्मिक और सामाजिक—भी निपटा दिया करते हैं । हमारी इसी आँखों देखी बात का अस्तित्व या सचाई साबित करने के लिए कितने ही भारतीय विद्वान् पुस्तकें और लेख लिख रहे हैं । यह इसलिए कि कुछ विदेशी लेखकों ने कह दिया है कि यह प्रथा भारत में कभी न थी । उनका ख़याल है कि जिसे प्रजा-सत्ताक राज्य कहते हैं उससे भारत सदा ही वञ्चित रहा है ।

इस प्रथा को एक नये रूप में चलाने या पुनरुज्जीवित करने के लिए इस प्रान्त की गवर्नमेंट ने, १८९२ ईसवी में, एक क़ानून बनाया और उसका नाम रक्खा—विलेज कोर्ट्स एक्ट, नंबर ३ (The Village Courts Act, No. III of 1892) इसके द्वारा उसने देहातियों को यह अधिकार दे दिया कि वे २०) तक के दीवानी मुक़द्दमे अपने ही यहाँ, या अपने ही पास-पड़ोस के किसी गाँव में, दायर कर दिया करें और वहीं उनका फ़ैसिला करा लिया करें । इस क़ानून की रू से कोई पढ़ा-लिखा आदमी देहाती मुंसिफ़ मुक़र्रर हो जाता है और वही इनसाफ़ करता है । गाँव बड़ा हुआ तो वह उस एक ही गाँव के मुक़द्दमे लेता है । छोटा हुआ तो कई गाँवों का एक हलक़ा बना दिया जाता है और उस हलक़े भर के निवासी उस देहाती कचहरी से लाभ उठाते हैं । मुंसिफ़ को सम्मन निकालने, मुद्दआलेहों और गवाहों को तलब करने, डिगरियाँ देने और जायदाद मनकूला कुर्क़ करा लेने के अख़्तियार हासिल रहते हैं । कोर्ट-फ़ीस नहीं लगानी पड़ती । सिर्फ़ कुछ पैसे देने पड़ते हैं । यदि मुंसिफ़ योग्य हुआ तो हलक़े के आदमियों को बहुत सुभीता होता है । दो दो, चार चार रुपये की नालिश के लिए उन्हें मुंसिफ़ी कचहरी तक नहीं दौड़ना पड़ता; व्यर्थ ख़र्च नहीं करना पड़ता; समय नहीं बरबाद करना पड़ता; और कचहरी के बड़े बदार, बड़े भलेमानुस और बड़े ही मिष्ट-भाषी अहलकारों के कृपा-कटाक्ष का लक्ष्य नहीं बनना पड़ता । देहाती मुंसिफ़ को अपना काम मुफ़्त में ही करना पड़ता है । न उसे तनख़्वाह ही मिलती है और न कुछ किसी तरह का अलौंस या पुरस्कार ही मिलता है । उसे ज़िले का प्रधान अफ़सर मुक़र्रर करता है । फ़ौजदारी के कुछ भी अख़्तियार उसे नहीं रहते । ऐसी ऐसी कचहरियाँ इस सूबे के कितने ही ज़िलों में हैं; किसी में थोड़ी किसी में बहुत ।

अपने देश, प्रान्त, क़सबे और गाँव का शासन करने में हमें अधिक अधिकार मिलने चाहिए; यह हमारा जन्म-सिद्ध हक़ है कि हम अपना शासन, बहुत नहीं तो थोड़ा, अवश्य ही करें—इस तरह की दलीलें पेश करके भारतवासी बहुत समय से गवर्नमेंट से कह सुन रहे हैं। पहले तो यह सारी कहा-सुनी अरण्य-रोदन ही होती थी। पर कुछ समय से सरकार ने इन बातों को सुन लेने की उदारता दिखानी आरम्भ कर दी है। समय की गति को देख कर उसने अपना रुख़ बदल दिया है। अब तो वह यही क्या, इससे भी बहुत अधिक अधिकार देने को तैयार हो गई है। और क़ानूनन उन्हें दे भी डाला है। तदनुसार अगले साल से इस देश के शासन में बड़े बड़े परिवर्तन होनेवाले हैं।

भारतवासियों की माँग पर ध्यान देकर, कोई ३ साल हुए, गवर्नमेंट ने लोकल-सेल्फ़ गवर्नमेंट के विषय में अपना एक लम्बा चौड़ा मन्तव्य प्रकट किया। उसमें उसने स्पष्ट कह दिया कि हम भारतवासियों को अधिकाधिक अधिकारदान देने के लिए तैयार हैं। किस ढँग से और कैसे कैसे अधिकार देंगे, यह भी उसने उस मन्तव्य में बता दिया। यह बड़े लाट की गवर्नमेंट की बात हुई।

इधर इस प्रान्त में हम लोग अपनी गवर्नमेंट पर भी इस तरह के अधिकार पाने के लिए दबाव डाल रहे थे। इस पर हमारी गवर्नमेंट ने फेल्फ साहब और मिस्टर मुसन्ना को आज्ञा दी कि तुम विलेज-कोर्ट्‌स एक्ट (अर्थात् देहात की मुंसिफ़ी कचहरियोंवाले क़ानून) से होनेवाले हानि-लाभ पर रिपोर्ट लिखो। उसमें यह भी लिखो कि देहातियों के लाभ के लिए इस प्रथा को जारी रखना चाहिए या नहीं और रखना चाहिए तो क्या उनके लिए कुछ और भी सुभीते कर देने की ज़रूरत है। ये दोनों महाशय सारे प्रान्त में घूमे। खूब जाँच-पड़ताल की। अन्त में अपनी रिपोर्ट दी और सिफ़ारिश की कि ये कचहरियाँ जारी रहें; पर परिवर्तित अर्थात् पञ्चायत के रूप में; और इन्हें फ़ौजदारी के भी कुछ अधिकार दिये जायँ। उन्होंने एक नये क़ानून का मसविदा भी बना कर अपनी रिपोर्ट के साथ गवर्नमेंट की सेवा में भेज दिया।

उनकी रिपोर्ट पढ़ कर प्रान्तिक गवर्नमेंट ने कहा कि भाई, जल्दी न करनी चाहिए। ज़रा अपने अफ़सरों से भी सलाह कर लेने दो। तब उसने अपने जजों, कलेक्टरों, कमिश्नरों तथा और भी कितने ही लोगों से रिपोर्टें मँगाईं। उनका एक बहुत बड़ा पोथा हो गया। अधिकांश लोगों ने यही सलाह दी कि बेचारे देहातियों के सुभीते के लिए दीवानी और फ़ौजदारी दोनों तरह के थोड़े थोड़े अधिकार उन्हें दे दीजिए। पर कुछ ने विरोध किया। इन विरोधियों में हमारे कई देशवासी क्या, प्रान्तवासी भी निकल आये। लखनऊ के वाजपेयिवीर पण्डित शीतलाप्रसाद ने बड़े ज़ोरदार शब्दों में इस प्रथा का विरोध किया और देहाती मुंसिफ़ों को सर्वथा अयोग्य बताया। आप शायद कहीं के डिस्ट्रिक्ट जज हैं और बड़े दबङ्ग, बड़े क़ानूनदाँ और बड़े लायक़ जज समझे जाते हैं। और भी कुछ लोगों ने आपका अनुकरण किया।

ख़ैर इतनी ही हुई कि गवर्नमेंट को विरोधियों की बात न जँची। उसने फेल्फ और मुसन्ना महाशय के बनाये हुए क़ानूनी मसविदे को दाद देने का निश्चय कर लिया। यह निश्चय हुए बहुत समय बीत गया।

तब से अभी एक दो महीने पहले तक वह मसविदा खटाई में ही पड़ा रहा। वह छोटे लाट और बड़े लाट के दफ़्तरों के दरमियान झोंके खाता रहा। कभी यह तरमीम हुई, कभी वह तरमीम हुई। कभी कुछ घटाया गया, कभी कुछ बढ़ाया गया। कभी कुछ नये शब्दों की आयोजना हुई, कभी कुछ पुरानों का बहिष्कार हुआ।

इधर प्रान्तीय कौंसिल में गवर्नमेंट से सवाल पर सवाल किये गये। माननीय मिस्टर चिन्तामणि ने गवर्नमेंट की नाकों दम कर लिया। अब क्या हो रहा है? अब कितना काम बाक़ी है? क्यों देरी हो रही है? बताइए, कब यह मसविदा कौंसिल में पेश होगा? इसी तरह के सवाल कर करके उन्होंने गवर्नमेंट को एक नहीं अनेक बार खटखटाया। इस प्रान्त के निवासियों को उनकी इस तत्परता और कर्मण्यता के लिए हृदय से उनका कृतज्ञ होना चाहिए। यदि वे इतना ज़ोर न लगाते तो शायद ही यह मसविदा अभी कुछ समय तक कौंसिल में उपस्थित होता। ख़ैर, राम राम करके, चतुर चूड़ामणि चिन्तामणि की बदौलत, ८ मार्च १९२० को, प्रान्तीय कौंसिल की बैठक में वह बाज़ाब्ता पेश होही गया। उपस्थित मेम्बरों में से कितने ही मेम्बरों ने, इस काम के लिए, गवर्नमेंट को धन्यवाद दिया और ऐसा क़ानून बनने की आवश्यकता बताई। गवर्नमेंट ने अपनी कह कर और सबकी सुन कर, कई मेम्बरों की एक कमिटी बना दी। उसमें माननीय चिन्तामणि को भी रक्खा। अब यह कमिटी इस मसविदे के गुण-दोषों पर विचार करके अपनी रिपोर्ट गवर्नमेंट को भेजेगी। तब कभी, आगे चल कर, कौंसिल में इस मसविदे पर फिर विचार किया जायगा और इसे क़ानून का रूप मिलने की घड़ी आवेगी।

इस क़ानूनी मसविदे की कुछ विशेष विशेष बातें नीचे दी जाती हैं—

क़ानून के पास होते ही देहाती मुंसिफ़ों का क़ानून रद हो जायगा। देहाती कचहरियाँ एक-दम टूट जायँगी। पर नया क़ानून तभी जारी समझा जायगा जब गवर्नमेंट अपने गैज़ट में कह देगी कि वह अमुक अमुक ज़िले या ज़िलों में जारी होगा।

यह ठीक नहीं, इससे बड़ी हानि होगी। घर के भी धान पयाल में जायँगे। इधर वर्तमान कचहरियाँ बन्द हो जायँगी; उधर नया क़ानून भी बिना गैज़ट में घोषणा निकले जारी न समझा जायगा। इससे देहातियों को जो सुभीते अभी हैं उनसे भी उन्हें कुछ समय तक हाथ धोना पड़ेगा। फिर अर्ज़ी-पुर्ज़ा लगाने पर यदि नया क़ानून जारी भी होगा तो बरसों में जारी होगा। अतएव गवर्नमेंट को चाहिए कि जहाँ देहाती मुंसिफ़ हैं वहाँ पर यह क़ानून पास होते ही जारी कर दिया जाय। ज़िले के अफ़सर जाँच करें। यदि वर्तमान देहाती कचहरियों के आस-पास योग्य पञ्च मिल सकें तो वहाँ पञ्चायतें क़ायम कर दें। अर्थात् इस समय की देहाती कचहरियों को पञ्चायतों का रूप दे दें। तभी इस क़ानून से देहातियों को पूरा पूरा लाभ पहुँच सकेगा। अन्यथा—दोनों से गये पाण्डे; न हलवा मिला न माण्डे—वाली बात बनी बनाई है।

हर पञ्चायत में कम से कम ४ और अधिक से अधिक ७ पञ्च रहेंगे। एक उनमें से सरपञ्च का काम करेगा। लिखने-पढ़ने का काम उसी के सिपुर्द रहेगा। नालिशों और दावों की काररवाई सरसरी होगी। सिर्फ़ एक रजिस्टर में कुछ बातें लिखनी होंगी। पर समन वग़ैरह ख़ूब निकालने पड़ेंगे। कई तरह के सरटीफ़िकेट भी देने होंगे। रिपोर्टें भी लिखनी पड़ेंगी। यह सारा काम सरपञ्च साहब को ही करना पड़ेगा। मुहर्रिर न मिलेगा।

हमारी राय में सरपञ्च से यह सब काम होना असम्भव-सा है। देहात में पढ़े-लिखे लोग बहुत कम हैं। जो हैं भी वे लिखने के आदी नहीं। वे कहीं महीने में—कोई कोई तो ६ महीने में—शायद एक-आध चिट्ठी लिखते होंगे। फिर उन्हें अपने निज के कामों से फ़ुरसत कहाँ? ऐसों से दरजनों समन लिखाने, तथा और भी ऐसे ही काम लेने, की इच्छा रखना यथार्थ स्थिति से अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना है। इस तरह काम

चलने का नहीं। या तो मुहर्रिर दिया जाय, या कुछ रुपया माहवार इस काम के लिए मंज़ूर किया जाय, या क़ानून में ही कुछ रद्दोबदल किया जाय। बिना ऐसा किये यह पञ्चायती इमारत, खड़ी हो जाने पर भी, ढहे बिना न रहेगी।

पञ्चायतें बड़े बड़े गाँवों में यदि होंगी तो अपने ही गाँव के लिए होंगी। छोटे गाँव होंगे तो दो चार मिला कर उनका एक हलक़ा बना दिया जायगा और इन सबके लिए एक ही पञ्चायत काम आवेगी। इससे एतराज़ के लिए जगह नहीं।

पञ्चायतों का काम—समन वग़ैरह ले जाने का—अपनी हद का कोई चौकीदार करेगा।

इस पर वक्तव्य यह है कि चौकीदार साहब पुलिस के मातहत रहते हैं। वही उनके मालिक हैं। मालिक का काम पहले, बेगार पीछे की जाती है। अपने मातहतों की बेगार को मालिक कभी पसन्द करता नहीं। इस हालत में कम से कम एक चौकीदार पञ्चायत के काम के लिए अलहदा होना चाहिए। अथवा एक एक हफ़्ते या एक एक पखवारे, या एक एक महीने के लिए, एक एक चौकीदार सिर्फ़ पञ्चायती काम करने हीं के लिए अलग कर देना चाहिए। तभी काम सहूलियत से होगा। नहीं तो इधर दुर्जन चौकीदार को सरपञ्च सरकार बुलावेंगे उधर वे अपने दर्शन देने थाने चल देंगे, या और ही किसी काम का बहाना करके घर बैठ रहेंगे।

पञ्चायतों को २५) तक के दीवानी दावे सुनने का अधिकार होगा। वे साधारण मार-पीट, ५) तक की चीज़ की चोरी, ५) तक के हरजाने, जान-बूझ कर किसी पर ज़ोर-जब्र करने वग़ैरह की फ़ौजदारी नालिशें भी सुन सकेंगी। सफ़ाई और तन्दुरुस्ती से सम्बन्ध रखनेवाले छोटे छोटे जुर्म तथा फाटक में जाते हुए मवेशियों को छीनने के भी जुर्म करनेवालों पर की गई शिकायतें पञ्चायतें सुन सकेंगी।

पञ्चायतों के फ़ैसलों से अपील न हो सकेगी। फ़ौजदारी के मुक़द्दमों में वे ५) तक जुर्माना कर सकेंगी। कुर्क़ी का अख़तियार उन्हें न होगा। इसके लिए उन्हें ज़िले के अफ़सर को लिखना पड़ेगा। अभी यह अख़तियार देहाती कचहरियों को है। शायद काम कम करने और झंझट से बचाने के लिए यह अधिकार अब देहातियों से छीना जा रहा है।

यदि गवर्नमेंट मंज़ूरी दे दे तो कुछ पञ्चायतों को विशेष अधिकार भी दिये जा सकेंगे। ऐसी पञ्चायतें ५०) तक के दीवानी दावे सुन सकेंगी और फ़ौजदारी के मुक़द्दमों में १०) तक जुर्माना कर सकेंगी।

पञ्चायतों को अपने हलक़े की सफ़ाई और तन्दुरुस्ती का काम भी देखना पड़ेगा। जुर्माने और फ़ीस वग़ैरह का रुपया अपने ही पास जमा रखना पड़ेगा। कुछ रुपया गवर्नमेंट या डिस्ट्रिक् बोर्ड भी देगी। उसी से उनका काम चलेगा। देहातियों के लाभ के लिए उन्हें और भी कुछ खट-पट काम करने पड़ेंगे। ज़रूरत पड़ने पर, गवर्नमेंट और ज़िलाबोर्ड को यथाशक्ति मदद भी देनी पड़ेगी। पर देहाती मदरसों के प्रबन्ध-सम्पर्क से दूर रहना पड़ेगा। यह क्यों? पञ्चायतों का तो यह भी काम होना चाहिए कि अपनी हद या हलक़े के मदरसों की वे निगरानी करें और उनकी उन्नति के उपाय सोचें। यही नहीं, नये नये मदरसे जारी करने के काम में भी उनसे सहायता लेनी चाहिए। पर इस बहुत बड़ी बात का कुछ भी ज़िक्र इस मसविदे में नहीं। मसविदे पर विचार करनेवाली कमिटी के मेम्बर क्या इस त्रुटि को दूर करने की कृपा करेंगे? कम से कम चेष्टा तो उन्हें ज़रूर ही करनी चाहिए।

ईश्वर कहाँ है ?*

(गुरु-शिष्य-संवाद)

शिष्य—भगवन्, एक बात जानने की मेरे जी में प्रबल इच्छा है। कल की बात है, धर्म्मप्रचार के विषय में एक ईसाई व्याख्यान दे रहा था। व्याख्यान देते देते उसने कहा, "वह जो आकाश दिखाई देता है उसके ऊपर स्वर्ग नामक एक स्थान है। मृत्यु के पश्चात् महात्मा लोग वहीं जाते हैं। वहाँ न रोग है, न शोक है, न पाप है, और न ताप है। वहाँ हमेशा आनन्द ही आनन्द रहता है। ईश्वर उसी स्थान में रहता है"। प्रभो! मुझे समझाइए, क्या स्वर्ग में ही ईश्वर रहता है? क्या बाइबिल का भी यही मत है?

गुरु—हाँ, बाइबिल का यही मत है। ईसा मसीह का विश्वास था कि स्वर्ग नामक एक स्थान है। उसी स्थान में ईश्वर रहता है। वे समझते थे कि मृत्यु होने पर शिष्यों समेत हम भी वहीं जायँगे। स्वर्ग में ईश्वर के लिए जैसा सिंहासन है वैसा सिंहासन हमारे लिए भी वहाँ तैयार रहेगा। हम भी उसी पर बैठेंगे। मुहम्मद का भी विश्वास था कि स्वर्ग नामक एक विशेष स्थान में ईश्वर रहता है। कहते हैं, मुहम्मद साहब ने एक बार स्वर्ग जाकर ईश्वर के दर्शन भी किये थे।

शिष्य—हमारे देश के लोग भी तो यह समझते हैं कि स्वर्ग नामक एक मनोहर स्थान है। मृत्यु के पश्चात् साधु सन्त उसी स्वर्गधाम को जाते हैं।

गुरु—यह समझ कुछ सर्वसाधारण की ही नहीं, किन्तु धर्म्मशास्त्रों का भी प्रायः यही सिद्धान्त है। उपनिषद् आदि ग्रन्थों में भी स्वर्ग का उल्लेख है। उसमें भी श्रेणि-विभाग है। मनुष्यों के जैसे कर्म्म होते हैं उनके अनुसार, देहान्त होने पर, वे भिन्न भिन्न श्रेणियों में पहुँचते हैं। शास्त्र कहते हैं कि स्वर्ग में कोठे के कोठे षट्रस-परिपूर्ण पक्वान्नों से भरे पड़े हैं, वहाँ सोमरस-स्रावी अश्वत्थ वृक्ष है, रहने के लिए सुन्दर सुन्दर भवन हैं और नाना प्रकार की सामग्रियाँ विद्यमान हैं। मुसलमानों के कुरान आदि धर्म-ग्रन्थों में भी स्वर्ग इच्छित भोग करने का एक सुन्दर स्थान बतलाया गया है।

शिष्य—तो ईश्वर उसी स्वर्ग में रहता है?

गुरु—लोग जैसा विश्वास करें, क्या सदा वही सत्य हो सकता है? मनुष्य सोचते हैं कि ईश्वर हमारी ही तरह है। जिस तरह मकान न होने से हमारा काम नहीं चल सकता, उसी तरह ईश्वर का भी नहीं चलता। जिस प्रकार हमारे स्त्री, पुत्र और परिवार आदि हैं उसी प्रकार देवताओं के भी हैं। रामायण में लिखा है कि "सुरा" पान करने के कारण देवता "सुर" कहे गये, और "सुरा" न पीने के कारण उनके विरोधी "असुर" कहाये। मनुष्य जिस वस्तु को पसन्द कर लेते हैं वही देवताओं को अर्पण करते हैं, और समझते हैं कि देवताओं को भी यही वस्तु प्रिय है। मनुष्य अपने मत के अनुसार देवताओं की कल्पना कर लेते हैं। इसी कारण ईश्वर का निवासस्थान स्वर्ग मानने की कल्पना की गई है।

शिष्य—जो स्वर्ग नहीं है तो ईश्वर क्या अन्तरिक्ष में अथवा नक्षत्रलोक में रहता है?

गुरु—नहीं, वह इनमें से कहीं भी नहीं रहता।

शिष्य—तो क्या ईश्वर देह के भीतर वर्तमान है?

गुरु—देह भी उसके रहने का स्थान नहीं।

शिष्य—तो फिर क्या ईश्वर स्वर्ग, मर्त्य आदि स्थानों में व्याप्त है?

गुरु—नहीं, वह किसी भी स्थान में नहीं।

शिष्य—तो क्या ईश्वर है ही नहीं?

गुरु—नहीं, मैं यह बात कब कहता हूँ।

शिष्य—हाँ, आपने साफ़ साफ़ तो यह नहीं कहा।

गुरु—फिर तुम्हें यह सन्देह कैसे हुआ?

शिष्य—आप कहते हैं कि ईश्वर किसी भी स्थान में नहीं। इससे, मैंने समझा कि जब ईश्वर किसी भी स्थान में नहीं है तब उसका अस्तित्व कैसे हो सकता है।

गुरु—क्या तुम कोई ऐसी वस्तु जानते हो जो स्थान-व्यापक नहीं?

शिष्य—मैंने इस विषय का विचार नहीं किया।

गुरु—अच्छा बताओ, जीवात्मा कहाँ रहता है?

---

* प्रवासी में प्रकाशित श्रीमहेशचन्द्र घोष, बी० ए०, के एक लेख का भाव।

शिष्य—इसी शरीर में ।

गुरु—तो बताओ, जिसका शरीर स्थूल है उसकी आत्मा क्या अधिक स्थान में रहती है और जिसका शरीर कृश है उसकी आत्मा के लिए क्या थोड़ा सा ही स्थान चाहिए ?

शिष्य—स्थूल मनुष्य की आत्मा को स्थूल और कृश मनुष्य की आत्मा को कृश मानना ठीक नहीं ।

गुरु—देखो, आत्मा स्थान-व्यापक मान ली जाय तो यह भी स्वीकार करना होगा कि यदि कोई कृश व्यक्ति स्थूल हो जाय तो उसकी आत्मा भी बढ़ कर स्थूल हो जायगी और यदि मोटा ताज़ा मनुष्य दुबला हो जाय तो उसकी आत्मा भी सङ्कुचित होकर थोड़े ही से स्थान में आ जायगी ।

शिष्य—यह कहना भी उचित नहीं ।

गुरु—यदि आत्मा देहव्यापी मानी जाय तो बिना हाथोंवाले व्यक्ति की आत्मा को भी हाथों से अलग मानना पड़ेगा और लूले-लँगड़े की आत्मा को भी अपाहिज मानना पड़ेगा ।

शिष्य—जो आत्मा देहव्यापी कही जाय तो बहुत से असङ्गत सिद्धान्त उपस्थित होते हैं ।

गुरु—इसी से तो कहता हूँ कि आत्मा को शरीर-व्यापक मानना युक्तिसङ्गत नहीं । अच्छा बताओ, देह किस प्रकार की वस्तु है ?

शिष्य—देह जड़ पदार्थ है ।

गुरु—जड़ की क्या विशेषता है ?

शिष्य—जड़ में विस्तृति होती है ।

गुरु—आत्मा की विस्तृति क्या है ?

शिष्य—आत्मा जड़ वस्तु नहीं । उसमें विस्तृति किस प्रकार हो सकती है ?

गुरु—जो विस्तृति-हीन है वह विस्तारवान् होकर कैसे रह सकता है ?

शिष्य—यह बात ठीक है ।

गुरु—देखो, ज्ञान एक वस्तु है । वह किसी एक स्थान में व्याप्त नहीं । इसी प्रकार प्रेम, पवित्रता आदि भी किसी एक स्थान में व्याप्त नहीं । ज्ञान, प्रेम, पवित्रता आदि जब स्थान-विशेष में व्यापक नहीं तब जो वस्तु ज्ञानमय, प्रेममय, पवित्रतादिमय है वह स्थानव्यापिका किस प्रकार होगी ? आत्मा चैतन्य वस्तु है । और जब चैतन्य का स्थानव्यापी होना सम्भव नहीं तब आत्मा का स्थानव्यापी होना भला कैसे सम्भव है ?

शिष्य—तो फिर आत्मा कहाँ रहती है ?

गुरु—'कहाँ रहती है' ? यह पूछने से ही प्रश्न होता है कि 'आत्मा किस स्थान में है' । मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आत्मा किसी स्थान में नहीं रहती । स्थान-विशेष पर अधिकार न करना ही उसका नियम है अर्थात् उसका अस्तित्व है । यदि कोई पूछे कि घोड़े के दो सींग हैं या तीन ? तो हमें क्या उत्तर देना चाहिए ? हम कहेंगे कि घोड़े के न तो दो सींग हैं न तीन;—घोड़े के तो सींग होते ही नहीं । इसी तरह यदि कोई पूछे—आत्मा किस स्थान में रहती है ? तो हम कहेंगे कि आत्मा न यहाँ रहती है न वहाँ, अर्थात् आत्मा स्थान-विशेष में नहीं रहती । घोड़े के जैसे सींग नहीं होते वैसे ही आत्मा के लिए कोई विशेष स्थान नहीं है । हम लोग ऐसे मूर्ख हो गये हैं कि बिना विचारे आत्मा को एक प्रकार सूक्ष्म जड़ समझते हैं । लोगों का विश्वास है कि शीशी के भीतर जिस प्रकार गैस है उसी प्रकार शरीर के भीतर आत्मा भी है—यह मूर्खों का कथन है । जैसे घड़ा जल का आधार है, दावात स्याही का आधार है, और बोतल दवा का आधार है, इसी तरह कुछ न कुछ आधार आत्मा का भी होना चाहिए । किन्तु किसी भी अर्थ से घड़ा, बोतल, दावात, देह या इसी तरह का कोई भी पदार्थ आत्मा का आधार नहीं कहा जा सकता । ज्ञान, प्रेम, पवित्रता आदि वस्तुयें तीन हाथ लम्बी, दो हाथ चौड़ी और एक हाथ ऊँची कहाँ रहती हैं ? आत्मा के लिए आधार की बात बिलकुल युक्तिहीन है । तो क्या आत्मा की प्रतिष्ठा-भूमि नहीं ? मनुष्य की आत्मा निराश्रय नहीं रह सकती । उसका आश्रय-स्थान ज़रूर है और परमात्मा ही उसकी आश्रय-भूमि है ।

शिष्य—आत्मा यदि शरीर में व्यापक नहीं तो शरीर को यन्त्रणा होने से उसका अनुभव मन को कैसे होता है ?

गुरु—शरीर में आत्मा व्यापक न रहे तो क्या कष्ट का अनुभव नहीं हो सकता ? माता-पिता अपनी सन्तान को कष्ट में देख उसके कष्ट का अनुभव करते हैं । तो क्या

वे सन्तान के शरीर में व्यापक हैं ? जिस जगह एक विशेष सम्बन्ध है उसी जगह के सुख से मनुष्य सुखी और दुख से दुखी रहते हैं। तुम्हारा कोई प्रिय मित्र यदि नष्ट हो जाय तो क्या तुम्हें दुख नहीं हो सकता ? उसके साथ एक विशेष सम्बन्ध होने से ही तुमको दुःख होता है। उसी प्रकार शरीर से आत्मा का विशेष सम्बन्ध है। इसलिए शरीर की यन्त्रणा से मन को कष्ट होता है। देह से आत्मा का क्या सम्बन्ध है ? पण्डितों का इस विषय में बड़ा भारी मतभेद है।

शिष्य—मानवी आत्मा परमात्मा में रहती है, पर शरीर में नहीं रहती—यह ठीक है; किन्तु परमात्मा कहाँ रहता है ? आप अभी कह चुके हैं कि वह स्वर्ग आदि किसी भी स्थान में नहीं रहता।

गुरु—जीवात्मा के विषय में जो बात कही गई है वह परमात्मा के लिए भी चरितार्थ है। जिस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि जीवात्मा स्थान-व्यापक है उसी प्रकार यह कहना भी ठीक नहीं कि परमात्मा स्थान-व्यापक है।

शिष्य—तो क्या यह नहीं कहा जा सकता कि परमात्मा इस जगत् में है ?

गुरु—हाँ, यह ज़रूर कहा जा सकता है। लेकिन किस प्रमाण से कहा जाता है, यह जानना ज़रूरी है। जिस प्रकार ज्ञानी ज्ञान में, प्रेमी प्रेम में और सत्यवादी सत्य में वर्तमान है उसी प्रकार जगत् में परमात्मा वर्तमान है। इस जगत् में ब्रह्म की ही शक्ति, ब्रह्म का ही ज्ञान, ब्रह्म का ही प्रेम और उसी का सौन्दर्य है। इसी लिए कह सकते हैं कि ब्रह्म जगत् में वर्तमान है। जिस प्रकार गैस बोतल में, और ईश्वर जगत् में है उसी प्रकार जगत् में ब्रह्म का अस्तित्व मानना पड़ता है।

शिष्य—जगत् में ब्रह्म वर्तमान है, इसी प्रकार देश में क्या ब्रह्म का अस्तित्व नहीं कहा जा सकता ?

गुरु—देश और काल की प्रकृति के विषय में भिन्न भिन्न मत हैं। एक पक्षवाले पण्डित कहते हैं कि जड़ वस्तु एक प्रकार से अस्तित्वशाली है, किन्तु देश के लिए वैसी कोई सत्ता निश्चित नहीं। जड़ जगत् के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए देश एक 'प्रकार-मात्र' है। देशरूपी उपाय की सहायता से हम लोग जड़ जगत् को जानते हैं। देश एक मानुषी व्यापार अथवा कल्पना है। किन्तु वास्तव में उसका कोई अस्तित्व नहीं। यदि यही मत सत्य मान लिया जाय तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने की आवश्यकता ही नहीं। यदि उत्तर देने के लिए बाध्य ही किया जाय तो कहा जा सकता है कि जिस अर्थ में और और मनोव्यापार ईश्वर में वर्तमान हैं उसी अर्थ में देशरूपी मनोभाव भी ईश्वर में है। दूसरे पक्षवाले कहते हैं कि जड़ जैसे एक सत्ताशाली वस्तु है वैसे ही देश की भी एक प्रकार की सत्ता है। देश को एक तरह का पर्दा कह सकते हैं, जिस पर सम्पूर्ण जड़ जगत् प्रकाशित होता है। इस मत के अनुसार देशरूपी परदा ईश्वर ही में स्थित है। दूसरे शब्दों में इसको ब्रह्म की ही शक्ति कह सकते हैं। यदि तुम इस मत को मानते हो तो कहा जा सकता है कि जिस अर्थ में शक्तिमान् शक्ति में है उसी अर्थ में देशरूपी शक्ति में ईश्वर है। साधारण आदमी जिस प्रकार देश को एक तरह की स्वतन्त्र सत्ता समझते हैं, उसी प्रकार बहुत लोग कहते हैं कि ईश्वर देश को परिपूर्ण करता रहता है। वह उसमें चारों तरफ़ विस्तृत रहता है। यह मत जड़वाद के सिवा और कुछ नहीं। इसी प्रकार मान लेने से कहना होगा कि ब्रह्म, ईथर की तरह, एक सर्वव्यापी वस्तु मान ली गई है। किन्तु वास्तव में ब्रह्म ईथर की तरह कोई वस्तु नहीं। ईश्वर आकाश में ओत-प्रोत भाव से व्याप्त है, यह बात नहीं मानी जा सकती।

शिष्य—तब तो ईश्वर को सर्वव्यापी कहना उचित नहीं।

गुरु—हाँ, उसको सर्वव्यापी कहना असङ्गत है।

एक समय था जब लोग विश्वास करते थे कि देवता भिन्न भिन्न स्थानों में रहते हैं। कोई देवता वृक्ष पर रहता है तो कोई नदी, पृथ्वी और स्वर्गादि में। ज्ञान की उन्नति के साथ ही साथ देवताओं की संख्या का भी ह्रास होने लगा है। अब बहुत से लोग एक ही देवता के अस्तित्व पर विश्वास करने लगे हैं। किन्तु बहुदेववाद और एक-देववाद में बहुत ही साधारण अन्तर है। किसी समय भिन्न भिन्न राजा भारत के भिन्न भिन्न प्रदेशों का शासन करते थे। किन्तु समय के फेर से उनका अस्तित्व लुप्त हो गया है। अब समस्त भारतवर्ष एक राजा के अधीन है। हमारे

सम्राट् के साथ पूर्वोक्त छोटे छोटे राजाओं का जो सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध एक देव-वाद के साथ बहु-देव-वाद का है। ज़रा विचार करने से यह बात सत्य मालूम होती है। यहूदी धर्म्म और उसकी सन्तान ईसाई धर्म्म या मुसलमानी धर्म्म एक-देव-वाद के ही अन्तर्गत हैं। किसी समय भिन्न भिन्न जातियाँ भिन्न भिन्न देवताओं की उपासना करती थीं। किसी युद्ध में कोई जाति परास्त होने पर सोचती थी कि हमारे देवता हमारी रक्षा नहीं कर सके। शत्रुओं के देवता बलवान् हैं और हमारे कमज़ोर। अतः दुर्बल देवता का आश्रय त्याग करके पराक्रमी देवता का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए। विजयी लोग पराजितों के देव-मन्दिर और मूर्त्तियाँ नष्ट करके कहते थे कि हमारे देवताओं की आराधना करो। यहूदी जाति में, इसी प्रकार, बहुत से देवताओं का अस्तित्व लुप्त हुआ और एक देवता का ही राजत्व जम गया। किन्तु चाहे बहुदेवताओं का अस्तित्व स्वीकार करो, चाहे उनमें से किसी एक को "सर्वश्रेष्ठ" मान कर और देवताओं का अस्तित्व मिटा डालो, परन्तु देव-प्रकृति स्थिर बनी रहेगी। हिन्दुओं ने भी नाना प्रकार की कल्पनायें कर ली हैं। देवताओं के रहने के लिए जिस प्रकार स्थान हैं, उसी तरह ईश्वर भी किसी निर्दिष्ट स्थान में रहता है। अन्तर यह है कि क्षुद्र क्षुद्र देवता क्षुद्र क्षुद्र स्थानों में रहते हैं और ईश्वर या तो अधिक स्थान में रहता है या सारे स्थानों में। इस तरह, सिर्फ़ ईश्वर का भी अस्तित्व स्वीकार कर लेने से धर्म्ममत को कुछ लाभ नहीं हुआ। सभी कहीं देवता स्थान-व्यापी माने जाते हैं, किन्तु इस तरह स्वीकार करने से ईश्वर आधेय और स्थान आधार कहा जा सकता है, किन्तु जो समस्त वस्तु का आधार है कहीं उसका भी कुछ आधार हो सकता है? कैसा आश्चर्य है!

मनुष्य यह नहीं पूछते कि ब्रह्माण्ड कहाँ है। पूछते हैं, ब्रह्म का पता-ठिकाना। यह प्रश्न क्यों किया जाता है, इसका भी एक गूढ़ कारण है। लोगों का विश्वास है कि वृक्ष, पत्र आदि एक एक वस्तु है और इसी तरह ईश्वर भी एक वस्तु है। अन्य वस्तुओं की तरह समझ कर लोग पूछते हैं—ईश्वर कहाँ है? ईश्वर यदि अन्यान्य संसारी वस्तुओं की तरह एक वस्तु होता तो यह प्रश्न सचमुच किया जा सकता था। सब वस्तुओं के रहने के जब स्थान हैं तब ईश्वर के रहने का स्थान क्यों नहीं? किन्तु ईश्वर अनेक वस्तुओं की तरह एक वस्तु नहीं। एक वस्तु दूसरी वस्तु से पृथक् है, किन्तु ईश्वर का यह हाल नहीं। एक वस्तु को हम दूसरी वस्तु से पृथक् कर सकते हैं, किन्तु ब्रह्म से किसी भी वस्तु को अलगाया जा सकता तो उस वस्तु का अस्तित्व ही न रहता। क्योंकि ईश्वर की सत्ता से ही यह जगत् सत्तावान् है; वही इस जगत् का एक-मात्र कारण है। यह ब्रह्माण्ड उसी में प्रतिष्ठित है; उसी ईश्वर के सत्ता-सागर में जगत् निमज्जित है। विश्व उसके रहने की जगह नहीं। वह स्वयं इस विश्व का वास-स्थान है। हम लोग पराधीन हैं, इसलिए हमें एक अवलम्ब की आवश्यकता है। इस ब्रह्माण्ड का अस्तित्व उसके अस्तित्व पर आश्रित है। वही इस ब्रह्माण्ड का आधार है, और ब्रह्माण्ड उसी में टिका हुआ है। किन्तु परमात्मा निरपेक्ष, निरवलम्ब, है। उसका कोई आधार नहीं हो सकता। उसके रहने के लिए किसी स्थान की ज़रूरत नहीं। वह अपने आप ही प्रतिष्ठित है। देवता के लिए मनुष्य छोटा सा मन्दिर बनाते हैं, किन्तु हम लोग यदि यह कहें कि "हमारे देवता का मन्दिर क्षुद्र नहीं—यह सुविशाल विश्व ही उसका मन्दिर है" तो यह भी ठीव नहीं। क्योंकि इससे उसका स्वरूप खर्व होता है। ब्रह्माण्ड को उसका मन्दिर कहने के बदले यह कहना ठीक है कि वही इस ब्रह्माण्ड का मन्दिर है।

उपनिषदों के नारद-सनत्कुमार-संवाद में इस विषय की बड़ी सुन्दर मीमांसा हुई है। सनत्कुमार से नारद पूछते हैं कि "स भगवन् कस्मिन् प्रतिष्ठित इति" अर्थात् हे भगवन्! वह भूमा कहाँ प्रतिष्ठित है? सनत्कुमार कहते हैं—"स्वे महिम्नि" वे अपनी महिमा में आपही प्रतिष्ठित हैं। किन्तु यह कह कर वे सोचने लगे कि यदि नारद फिर पूछे कि वह महिमा कहाँ प्रतिष्ठित है, तो क्या उत्तर दूँगा। इसलिए सनत्कुमार फिर बोले, "न महिम्नीति" अर्थात् वे अपनी महिमा में भी प्रतिष्ठित नहीं अर्थात् वे अप्रतिष्ठित हैं। उनके रहने के लिए स्थान दरकार नहीं। जो समस्त ब्रह्माण्ड की प्रतिष्ठा-भूमि है उसकी प्रतिष्ठा क्या? वह निरवलम्ब अथवा ब्रह्माण्ड का अवलम्बन है। ब्रह्मवादियों का यही मत है।

—— हरिकृष्ण बजरङ्गलाल

अविश्वास ।

(१)

बल-गर्वित औरंगज़ेब का मद हरने को,
रण-चण्डी को प्राण-दान तक भी करने को,
चूड़ावत सरदार कर चुके हैं तैयारी,
सज्जित है हो चुकी वीर-सेना भी सारी ॥

(२)

रण-यात्रा के पूर्व प्रिया से मिल आने को,
ले कर उससे बिदा नया साहस पाने को ।
चूड़ावत झट गये वहाँ आह्लादित मुख से,
उनकी हृदयेश्वरी जहाँ बैठी थी सुख से ॥

(३)

उठ कर उसने उन्हें वहाँ सादर बिठलाया,
शुभागमन के लिए तथा निज हर्ष जनाया ।
चूड़ावत ने कहा—प्रिये रण में जाना है,
दिल्लीश्वर को खेल युद्ध का दिखलाना है ॥

(४)

"सच कहते हो ?" कहा प्रिया ने प्राणेश्वर से,
"सच ही हो यह, यही प्रार्थना है प्रभुवर से ।
पर ऐसी क्या बात अचानक सम्मुख आई,
सहसा जिससे आज छेड़ दी गई लड़ाई ?"

(५)

चूड़ावत ने कहा प्रिया को पास खींच कर—
"नित्य नया अन्याय कर रहा है दिल्लीश्वर ।
चारुमती है रूप-नगर की राजकुमारी,
है विवाहना उसे चाहता अत्याचारी ॥

(६)

चारुमती की किन्तु यही इच्छा है जी से ।
हो उसका न विवाह किसी विध उस पापी से,
रानाजी ने पत्र कुमारी का पाया है;
उसने उनको स्वीय-त्राण-हित बुलवाया है ॥

(७)

वह लिखती है—तुम्हें वर चुकी हूँ मैं मन से,
आप ब्याहिए मुझे बचा कर अधम यवन से ।
उसको राना राजसिंह ब्याहेंगे जाकर,
पालेंगे कर्तव्य विपद से उसे बचा कर ॥

(८)

दिल्लीश्वर भी उसे ब्याहने को आवेगा,
उससे मेरा युद्ध बीच में छिड़ जावेगा ।
करके ब्याह न लौट आयँगे राना जब तक,
रोकूँगा इस भाँति शत्रुओं को मैं तब तक ॥

(९)

यही सुखद संवाद इस समय मैं लाया हूँ,
और प्रियतमे, बिदा माँगने भी आया हूँ ।
क्या जानें, हो यही आख़िरी भेंट हमारी,
चिन्ता कुछ हो चली मुझे इस समय तुम्हारी ॥

(१०)

तुम सुरम्य हो, और अभी नूतन जीवन है,
विविध-वासना-पूर्ण अतृप्त तुम्हारा मन है ।
होगा कैसे सह्य तुम्हें वह विरह हमारा,
कर देगा वह शोक हाय ! क्या हाल तुम्हारा" ॥

(११)

क्षत्राणी ने कहा प्राणपति से विस्मय से,
"करते हो क्यों नाथ, हृदय चिन्तित संशय से ?
धर्म्म आपका श्रेष्ठ वीर-गति का पाना है,
तो मेरा भी धर्म्म साथ ही जल जाना है ॥

(१२)

अविश्वास को दूर कीजिए शीघ्र हृदय से,
रण में जाकर धन्य हूजिए शत्रु-क्षय से ।
हूँगी क्या मैं खिन्न भला इस भाग्योदय से,
नहीं समझिए भीत मुझे कुछ भी इस भय से ॥

(१३)

समर-भूमि के लिए आप सुखपूर्वक जावें,
मेरी चिन्ता सभी चित्त से दूर हटावें ।
चारुमती को शत्रु न जिसमें छूने पावें,
वही यत्न कर आप जाति की कीर्ति बढ़ावें" ॥

(१४)

चूड़ावत ने कहा—"सत्य हो कथन तुम्हारा,
है अभीष्ट इस समय एक बस यही हमारा ।
जाता हूँ तो प्रिये, किन्तु प्रण भूल न जाना,
विमल चरित से विमल वंश को विमल बनाना" ॥

(१५)
"रहें आप निश्चिन्त" प्रथम यह गिरा सुनाई,
फिर पत्नी ने उन्हें पुष्प-माला पहनाई।
चूड़ावत ने कहा पुनः यह जाते जाते,
हम फिर प्रण का ध्यान प्रिये हैं तुम्हें दिलाते॥

(१६)
चले गये वे, किन्तु गये कुछ ठहर ठहर के,
देख प्रिया की ओर हृदय चिन्तान्वित करके।
सेना में भी पहुँच गये पर हुए न सुस्थिर,
पहुँचाया सन्देश पुरोहित के द्वारा फिर—

(१७)
"प्रिये, चले हम, नहीं लौटने की आशा है,
मिले वीरगति और यही चिर अभिलाषा है।
किन्तु देख कर तुम्हें, सोच हो रहा तुम्हारा,
है प्रणपालन-हेतु शेष अनुरोध तुम्हारा"॥

(१८)
सुन कर प्रिय का कथन व्यग्र हो उठी वधू वह,
रह कर कुछ क्षण मौन पुरोहित से बोली यह—
"मेरी चिन्ता व्यर्थ हुई है जीवन-धन को,
दूँ कैसे विश्वास भला मैं उनके मन को॥

(१९)
आये वे जिस समय यहाँ मन से प्रमुदित थे,
पर जाने के समय हो उठे चिन्तान्वित थे।
जब तक यह सन्देह न मिट जावेगा उनका,
बढ़ने युद्धोत्साह नहीं पावेगा उनका॥

(२०)
मन की शुचिता उन्हें हाय! किस तरह जताऊँ,
सम्भव हो तो अभी फाड़ कर हृदय दिखाऊँ।
किन्तु नहीं मैं अभी काट कर सिर देती हूँ।
पहले ही से मार्ग-स्वर्ग का मैं लेती हूँ॥

(२१)
कहना उनसे—लड़ें आप जाकर अरि-गण से,
होकर संशय-रहित अन्त तक हटें न रण से।
देखूँगी मैं राह स्वर्ग में जाकर प्रियवर,
होऊँगी कृतकृत्य तुम्हें फिर पाकर प्रियवर"!

(२२)
झट उसने निज शीश काट डाला यह कह के,
खड़े पुरोहित रहे विस्मयार्णव में बह के।
कुछ क्षण में कर्तव्य-ज्ञान जब उनको आया,
चूड़ावत के पास गये वह मुण्ड दिखाया॥

वे मुण्ड प्रिया का देख कर
मत्त हुए हृद्धाम में।
फिर एक नये ही जोश से,
चले गये सङ्ग्राम में॥

सियारामशरण गुप्त

हिन्दी-समाचारपत्रों के लिए एक नया कार्य-क्षेत्र।

समाचारपत्रों का मुख्य काम टटके समाचारों का सङ्ग्रह करना और जनता की गति को एक अभीष्ट दिशा में बदल देना है। जनता में विशेष प्रकार की जागृति उत्पन्न करना, संसार के प्रत्येक कोने की महत्त्वपूर्ण बातों और हलचलों का पूरा पूरा ज्ञान रखना और लोगों की प्रवृत्ति को अपनी मुट्ठी में कर लेना सम्पादकों के लिए बड़े आवश्यक और महत्त्व के काम हैं। उनके लिए यह भी आवश्यक और उपयोगी कर्तव्य है कि वे महत्त्व के किसी गम्भीर सामयिक प्रश्न पर ज़ोरदार और प्रमाणपूर्ण मत दे सकें, तथा राष्ट्र की नाज़ुक समस्याओं के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित सरकारी कर्मचारियों की तथा देश के नेताओं की राय का पता लगावें। इन कर्तव्यों का पालन करने के लिए अनेक साधनों का आश्रय लिया जाता है। कोई तार द्वारा ख़बरें मँगाता है। कोई अपने संवाददाताओं के द्वारा

समाचार सङ्ग्रह करता है। कोई अन्य समाचार-पत्रों की सहायता से यह काम करता है। और कोई सम्पादक, ख़ास ख़ास अवसरों पर, समाचार सङ्ग्रह करने के लिए, अपना प्रतिनिधि भी भेजता है। इसमें सन्देह नहीं कि पत्र-सम्पादन-कला के ये सब आवश्यक अङ्ग हैं और हिन्दी-सम्पादक-समुदाय में, इन पर न्यूनाधिक ध्यान भी दिया जाता है। परन्तु देश के प्रकृत नेताओं और प्रभावशाली पुरुषों की राय जानने के लिए उनसे मुलाक़ात करने को प्रतिनिधि भेजने की जो प्रणाली यूरोपीय देशों में ख़ूब प्रचलित है उसका भारतवर्ष में बहुत अभाव है। इस प्रणाली के द्वारा सार्वजनिक हित के बड़े बड़े कार्य, कभी कभी, अत्यन्त सरलता से हो जाते हैं। यह वैयक्तिक भेंट की प्रणाली Interviewing कहाती है। इस ओर हिन्दी के समाचार-पत्रों ने बहुत कम कार्य किया है। अतएव इस ओर अग्रसर होने की नितान्त आवश्यकता है।

महत्त्वपूर्ण विषयों पर नेताओं, उच्च पदस्थ सरकारी कर्मचारियों और समाज के प्रतिष्ठित तथा प्रभावशाली पुरुषों के मत जानने की सदैव बड़ी आवश्यकता रहती है। वर्तमान युग में, इस कार्य का भार पत्र-सम्पादकों पर विशेषतया आ पड़ा है। अतएव, बड़े बड़े अधिकारी पुरुषों का मत जानने के लिए सम्पादक लोग उनके पास अपने चतुर और विश्वस्त प्रतिनिधि भेजा करते हैं। ये प्रतिनिधि, अभीष्ट सज्जन के पास जाकर, उससे मुलाक़ात करते और बातचीत, प्रश्नोत्तर और कभी कभी वाद-विवाद तक करते हैं और सभी बातें तुरन्त लिख लेते हैं। इस प्रणाली की उत्पत्ति पहले पहल अमरीका में हुई। फिर धीरे धीरे उसका प्रचार फ़्रांस, इँगलेंड आदि देशों में भी हुआ। इस प्रणाली के द्वारा जाँच-पड़ताल और जासूसी के काम बड़ी सुगमता से हुआ करते हैं। सार्वजनिक लाभ के कामों के लिए व्यक्ति विशेष से भेंट करना आवश्यक है। परन्तु अमरीका में किसी की घरेलू बातें, पोशाक, इच्छायें, भोजन की रुचि और अन्य महत्त्वहीन बातें जानने के लिए भी मुलाक़ात की जाती है और वे बातें सर्वसाधारण में प्रकाशित भी कर दी जाती हैं। कहीं कहीं तो किसी की भीतरी बातें और अनुचित आचरण भी प्रकट कर दिये जाते हैं। पर इँगलेंड में ऐसा नहीं होता। वहाँ भेंट और बातचीत होने पर केवल वही बातें प्रकाशित की जाती हैं जिनका किसी सार्वजनिक प्रश्न से सम्बन्ध रहता है। यद्यपि बड़े आदमियों से मुलाक़ात करना सहज नहीं है, तथापि इँगलेंड की अपेक्षा अमरीका में यह काम सरलता से हो जाता है। क्योंकि वहाँ के मनुष्यों का स्वभाव प्रायः अधिक गूढ़ नहीं।

मुलाक़ात करके मत-सङ्ग्रह करना बड़ी ज़िम्मेदारी और बुद्धिमानी का काम है। यह काम करनेवाले को बहुत सी बातों पर ध्यान देना पड़ता है; जैसे नम्रतापूर्वक बातचीत करना, अपनी बातें स्पष्ट रीति से संक्षेप में बतलाना, अनावश्यक बातों से दूर रहना, दूसरे के आशय को एक बार सुनते ही समझ लेना, थोड़े समय में अधिक काम कर लेना, सब बातें ठीक ठीक समझ कर ज्यों का त्यों लिखना आदि।

लेखक-प्रतिनिधि को दूसरे के मनोविकार समझने के लिए मानस-शास्त्र का सम्यक् ज्ञान हो और वह दूसरी बार भेंट करने का पुछल्ला भी न लगावे। जिस विषय पर बातचीत अथवा प्रश्नोत्तर होनेवाला हो उस विषय में भेंट करनेवाले प्रतिनिधि को अच्छी योग्यता और सन्तोष-जनक ज्ञान भी होना चाहिए। जो कुछ प्रकाशित किया जाय उसमें अज्ञान, मूर्खता, असत्य अथवा ईर्ष्या-द्वेषजनित बातें न हों, अन्यथा सार्वजनिक उपकार होना तो दूर रहा, बहुत बड़े अपकार की नौबत आ सकती

है। पाठकों को भली भाँति विदित है कि विलायती पत्र-सम्पादकों के अग्रगण्य, ''रिव्यू आव् रिव्यूज़'' के जन्मदाता और उद्भट विद्वान् डब्ल्यू० टी० स्टेड साहब बड़े पक्षपात-रहित लेखक और निर्भीक समालोचक थे। बड़ी कठिनाइयाँ झेल कर और ऐयारी हिकमतों की सहायता से, अपने समय के कुछ लज्जा-जनक सामाजिक अत्याचारों का ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया था। वे सब बातें उन्होंने पत्र में प्रकाशित कर दी थीं। इस परोपकार के बदले उन्हें तीन मास तक कारागृहवास करना पड़ा, क्योंकि उनकी प्रकाशित बातें सच तो थीं, परन्तु अधिकारि-वर्ग उन्हें, किसी ख़ास मतलब से, गुप्त रखना चाहता था।

अस्तु। भारतवर्ष में इस प्रणाली से काम नहीं किया जाता। यदि कहीं किया भी जाता है तो बहुत ही कम। हिन्दी-समाचारपत्रों को इस ओर बहुत काम करना है। इसमें सन्देह नहीं कि भेंट करने के लिए जानेवाले प्रतिनिधियों को आरम्भ में वर्षों अनेक कठिनाइयों और असुविधाओं का सामना करना पड़ेगा; परन्तु केवल इस आशङ्का से सम्पादनकला के एक आवश्यक अङ्ग की ओर उपेक्षा नहीं की जा सकती। साम्पत्तिक बाधायें भी आवेंगी। कभी कभी रूखे स्वभाववालों से भी सामना करना पड़ेगा। कभी अत्यन्त मितभाषी सज्जनों से काम पड़ेगा और कभी ऐसे व्यक्ति से भेंट होगी जो या तो ऐसे प्रतिनिधियों से किसी तरह अपना पिण्ड छुड़ाना चाहते हों, या जो इन्हें नगण्य समझते हों, अथवा जिन्हें सचमुच अवकाश ही न हो। परन्तु उद्दिष्ट कार्य करने के लिए सब कुछ करना और सहना पड़ेगा।

एक बार एक प्रतिनिधि महाशय अमरीका के सुप्रसिद्ध धनवान् मार्गन साहब से मिलना चाहते थे। उन्होंने कार्ड पर लिख भेजा कि मुझे एक अत्यन्त आवश्यक विषय पर आपसे सम्भाषण करना है। मार्गन साहब को मालूम था कि प्रतिनिधि लोग, मुलाक़ात करने के लिए, ऐसे बहाने ढूँढ़ा ही करते हैं। अतएव उन्होंने उत्तर भेज दिया कि हमें अनेक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण कामों से फ़ुरसत नहीं। हमारे प्रत्येक मिनट का मूल्य एक सुवर्णमुद्रा—गिनी—के बराबर है। प्रतिनिधि ने तुरन्त लिख भेजा कि मैं, प्रति मिनट के लिए, तीन तीन सुवर्ण-मुद्रायें देने को तैयार हूँ। इस शर्त पर प्रतिनिधि की इच्छा पूर्ण हुई। असंख्य सम्पत्ति के स्वामी मार्गन साहब ने वह धन, उसी समय, एक सार्वजनिक कार्य के लिए दे डाला। इससे यह बात प्रकट है कि प्रतिष्ठित नेताओं का मत सङ्ग्रह करने के लिए, पश्चिम के अख़बार-नवीस कुछ भी उठा नहीं रखते। लन्दन के एक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक ने देखा कि अमरीका के भूतपूर्व प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट साहब ने, यूरोपीय महासङ्ग्राम पर, अभी तक अपना कुछ भी मत प्रकट नहीं किया। अतएव उसने अपना प्रतिनिधि अमेरिका भेजने का निश्चय किया। सम्पादक महाशय से किसी व्यक्ति ने पूछा कि अमरीका भेज कर इतना अधिक द्रव्य ख़र्च करने की ऐसी क्या आवश्यकता है। उत्तर मिला—ख़र्च चाहे जितना हो जाय, परन्तु पाठकों के लिए यह एक नूतन और आकर्षक विषय होगा। अतएव इस काम में ख़र्च करना वृथा न होगा। सारांश यह कि पश्चिमी देशों में मुलाक़ात करके गम्भीर विषयों पर नेताओं के मत सङ्ग्रह करने के लिए तन, मन, धन से दृढ़तापूर्वक और निरन्तर प्रयत्न किया जाता है। भारतीय छापेख़ानों के स्वामी इन फ़िज़ल कामों में ख़र्च करने के लिए कहाँ तक तैयार होंगे—यह सोचने की बात है।

परन्तु अब आर्थिक कठिनाइयों का बोझ भी हलका कर दिया गया है। लन्दन में एक नूतन प्रणाली से काम लिया जाने लगा है। वहाँ नेताओं से आवश्यक विषयों पर संक्षिप्त नोट अथवा लेख मँगा लिये जाते हैं। इन पर उनके हस्ताक्षर भी

रहते हैं। यदि पुरस्कार देने की आवश्यकता होती है तो इसके लिए भी सुभीता है। जहाँ अभिमत लिखा लेने के लिए सुभीता नहीं होता वहाँ समाचार-पत्रों के प्रतिनिधि स्वयं जाते हैं और भाग्यवश यदि अभीष्ट व्यक्ति से भेंट हो गई और मिनट दो मिनट तक बातचीत करने के लिए अवसर मिल गया तो वे शीघ्र ही सभी बातों को एक चित्ताकर्षक निबन्ध अथवा बातचीत के रूप में लिख लेते हैं और उस पर उस व्यक्ति से हस्ताक्षर करा लेते हैं। लेखक-प्रतिनिधि यदि सब बातों को स्मरण रख कर फिर कभी उन्हें लिपिबद्ध करता है तो कभी कभी भूलें होने की, और पत्र में प्रकाशित होने पर मत-दाता के द्वारा अस्वीकृत किये जाने की तथा स्वयं लेखक के व्यक्तित्व की छाया दिखाई पड़ने की अधिक सम्भावना रहती है। परन्तु लन्दन में जो नई प्रणाली चली है उसके द्वारा यह आशङ्का नहीं रही। नई प्रणाली के अनुसार लेखक-प्रतिनिधि तुरन्त सब बातों को उत्तम पुरुष की क्रिया से युक्त वाक्यों में लिख कर मत-दाता से प्रार्थना करके हस्ताक्षर करा लेता है और अपने समाचार-पत्र में प्रकाशित करने की अनुमति भी प्राप्त कर लेता है। जिस नेता का मत लिया जाता है उसे भी इस बात का तुरन्त विश्वास हो जाता है कि मेरी राय के प्रकाशन में किसी तरह का भ्रम अथवा त्रुटि होने की आशङ्का नहीं। इस नई प्रणाली से एक यह भी लाभ है कि जो नेता किसी विषय पर अपने विचार प्रकट करना चाहते हों और जिन्हें बड़े बड़े कामों के कारण थोड़ा भी अवकाश न मिलता हो उन्हें अपना मत प्रकट करने के लिए अनायास ही मौक़ा मिल जाता है; साथ ही उस समाचार-पत्र की माँग और प्रभाव भी बहुत बढ़ जाता है। कभी कभी प्रतिनिधियों को निराश होकर भी लौटना पड़ता है, क्योंकि कार्य-मग्न नेता एक क्षण के लिए भी प्रतिनिधि से नहीं मिल सकते।

भारतवर्ष के पत्र-सम्पादक बड़े लोगों के पास अपने प्रतिनिधि बहुत कम भेजते हैं। इसके कारण ऊपर बतलाये जा चुके हैं। प्रतिनिधि को कभी तो असफल और निराश होकर लौटना पड़ता है, कभी बहुत सा द्रव्य ख़र्च करना पड़ता है। कभी मुलाक़ात होने में ही अत्यन्त सन्देह रहता है और कभी रूखा जवाब मिलने की आशङ्का रहती है। सम्भव है कि कोई महाशय इस प्रणाली को अनावश्यक समझते हों। परन्तु प्रयोग करने से और धैर्य के साथ कुछ समय व्यतीत करने से इसकी उपयोगिता अपने आप प्रकट हो जायगी। हिन्दी के दो-एक समाचार-पत्रों ने इस विषय पर थोड़ा सा ध्यान अवश्य दिया था; परन्तु अब वे भी इस ओर उदासीन हैं। आशा है, सर्वसाधारण की जागृति के लाभ का महत्त्व समझनेवाले हमारे हिन्दी-समाचार-पत्रों के सम्पादक इस सामयिक विषय पर समयानुसार पूरा ध्यान देंगे।*

मावलीप्रसाद श्रीवास्तव

श्रीलक्ष्मीकाव्यम्।

यह एक काव्य है। संस्कृत भाषा में है। कवि की ही लिखी हुई संस्कृत-टीका से समन्वित है। पृष्ठ-संख्या लगभग ३०० के है। आकार बड़ा है। काग़ज़ दबीज़ है। मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं; शायद ३॥) है।

पञ्जाब में एक जगह वज़ीराबाद है। वहाँ कोई—"पण्डित-कुल-दिवाकर - श्रीगोस्वामिवंशावतंस—महाकविवर—श्रीगोस्वामी—श्रीलक्ष्मीनाथ" हो गये हैं। यह उन्हीं की रचना है। विक्रम-संवत् १९०५ में इसकी रचना हुई थी—अर्थात् इसे बने

---

* एक अँगरेज़ी लेख के आधार पर।

७० वर्ष से ऊपर हो गये। छप कर प्रकाशित हुआ था यह १८९७ ईसवी में। तब से, अर्थात् २३ वर्ष से, अब तक इसके पहले संस्करण की सब कापियाँ नहीं खपीं। इसी से शायद यह इतनी पुरानी पुस्तक समालोचना के लिए भेजी गई है। भेजा है इसे कवि के आत्मज पण्डित अमरनाथ शर्म्मा ने। आपही ने इस काव्य का प्रकाशन किया है और आपही ने समर्पण। समर्पण हुआ है जम्बू और काश्मीर के राजा सर अमरसिंह बहादुर, के० सी० एस० आई० को। खेद है, इस इतने बड़े आदमी के नाम पर समर्पित होने पर भी इसकी चाह कवियों और काव्य-प्रेमियों को न हुई।

इस ग्रन्थ को हमने यत्र तत्र देखा। कुछ अंश विचारपूर्वक पढ़ा भी। इससे हमारे मन में यह भावना हुई है कि इसके कर्ता का व्याकरण-ज्ञान खूब गहरा था। जान पड़ता है, छन्दो-रचना करते समय उसे मनमाने व्याकरण-सङ्गत प्रयोग ढूँढ़ निकालने में बहुत ही कम आयास पड़ा है। संस्कृत के साहित्य-शास्त्र का भी कवि ने खूब मन्थन किया था, यह बात भी उसकी रचना से सिद्ध है। प्राचीन काव्य तो उसे कण्ठस्थ से थे। क्योंकि उन काव्यों की छाया इस काव्य के प्रायः प्रत्येक पृष्ठ पर देखने को मिलती है। इसकी रचना में कवि ने विशेष करके श्रीहर्ष का अनुधावन किया है। जिस तरह अपने माता-पिता आदि का नाम देकर श्रीहर्ष ने नैषध-चरित के प्रत्येक सर्ग की पूर्ति की है उसी तरह लक्ष्मीनाथ ने भी की है। नैषध के कितने ही प्रयोग लक्ष्मीनाथ ने ज्यों के त्यों अपने काव्य में रख दिये हैं। यथा—भगवती चण्डिका से राक्षस-राज के मन्त्री कहते हैं—

अयि [illegible]त्सुन्दरतैकशेवधे
[illegible]धेहि साफल्यममुष्यवर्ष्मणः ।
मन[illegible]ं व्यथितं जगत्पते-
[illegible]ात्र किं त्वां करुणा रुणद्धि न ॥

इसके चतुर्थ चरण में नैषधचरित के पहले सर्ग के—"अहो विधे त्वां करुणा रुणद्धि न"—का, देखिए, किस तरह अनुधावन किया गया है। इस तरह के और भी अनेक स्थल इस काव्य में हैं।

इसमें लक्ष्मी देवी के द्वारा महिषासुर का वध वर्णित है। सामग्री विशेष करके मार्कण्डेयपुराण की कथा से ली गई है। पर उसमें कवि ने बहुत कुछ न्यूनाधिकता कर दी है। उस कथा में मन-मानी बातें बढ़ा कर उसे उसने पल्लवित कर दिया है। कवियों का यह काम ही है।

इसमें एक दोष बड़ा भारी है। वह है इसकी क्लिष्टता। यदि कवि स्वयं ही इसकी टीका न लिख जाता तो इसके अनेक श्लोकों का आशय शायद बड़े बड़े पण्डितों की भी समझ में न आता। वह समय ही ऐसा था; और अब तक भी बना हुआ है। कवि अपना पाण्डित्य दिखाने के लिए क्लिष्ट प्रयोग ही नहीं करते, अनेकार्थवाची रचना भी कर डालते हैं। इसी से क्लिष्टता आ जाती है।

लक्ष्मीनाथ ने भी अपनी रचना के, कहीं कहीं, दो दो तीन तीन अर्थ बताये हैं। आरम्भ के मङ्गला-चरण में कवि ने शारदा से प्रार्थना की है। पर उससे लक्ष्मी, विष्णु, राम, शिव, सूर्य आदि के भी अर्थ निकाले हैं। इस दशा में, क्लिष्ट कल्पना के सिवा कैसे काम चल सकता? तथापि काव्य में अनेकानेक स्थल सरस और प्रसादगुण-पूर्ण भी हैं। यथा—राक्षसराज का दूत चण्डी से कहता है—

चण्डि यत्प्रलपितं हि भवत्या
वेदूम्यरण्यरुदितं निखिलं तत् ।
क्वाबला प्रकृतिभीरुरहो त्वं
कासरः क्व च तृणीकृतकालः ॥

महिषासुर के विषय में चण्डिका कहती है—

कथं बताहंत्यधमः पशुस्स्वयं
जगत्प्रसूं मामपि वीक्षितुं दृशा ।

समो हि लोकेषु सुखाय सङ्गमो
न कामधेनुः खरमीहते क्वचित् ॥

कामधेनु क्या कभी गधे के सङ्गम की भी इच्छा कर सकती है ? कैसा अच्छा तमाचा है। इस श्लोक को पढ़ कर किरातार्जुनीय में कही गई अर्जुन की यह उक्ति याद आ जाती है—

सहापकृष्टैर्महतां न सङ्गतं
भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः ।

भगवती भवानी की बाण-वर्षा का वर्णन देखिए—

अमूमुचद् वृष्टिमसावथैषवीं
प्रकुप्यदाशीविषघोरदर्शनाम् ।
अचूर्णयत्तामचिरेण चण्डिका
प्रचण्डकोदण्डविनिःसृतैः शरैः ॥

कवि ने कालिदास के यमकपूर्ण द्रुतविलम्बित छन्द का भी ख़ूब अनुकरण किया है—

स वरुणं करुणं कृतवान् रणे
स धनदञ्च जिगाय धनञ्जयम् ।
वसुगणं तृणकल्पमजीगणद्
भयमथो मरुतो मरुतोयवत् ॥

इसमें ११ सर्ग हैं। चूंकि इसमें सर्गबन्ध है, इस कारण दण्डी कवि की आज्ञा से, लक्ष्मीनाथ-कवि ने इसे महाकाव्य की पदवी दी है—“सर्गबन्धो महाकाव्यम्”। इस काव्यत्व और महाकाव्यत्व का बतङ्गड़ कवियों ही को मुबारक रहे।

खेद है, छपने में इस काव्य की बड़ी ही दुर्दशा हुई है। टाइटिलपेज तक में भूलें हैं—सुबोधिन्या का सबोधिन्या और सहितं का सहतं छपा है। भीतर तो कोई पृष्ठ ऐसा न होगा जिसमें भूलें न हों। पदच्छेदों की भी बुरी गति हुई है। टाइप कहीं उठा है, कहीं नहीं—विशेष करके श्लोकोंवाला बड़ा टाइप। नवम सर्ग के अन्त में छपा है कि यह छठा सर्ग समाप्त हुआ। दशम सर्ग के अन्त में अष्टम सर्ग का उल्लेख है। पृष्ठ २९० पर जिस श्लोक के अन्त में ५६ का अङ्क है उसी के आगे के श्लोक पर ७० का अङ्क है। पृष्ठ २५७ पर ६७,६८,६९ के श्लोकाङ्क हैं ही नहीं। इस काव्य के साथ इस प्रकार बड़ी निर्दयता का व्यवहार हुआ है। इसके कर्ता कवि यदि इसे इस दशा में देखते तो अवश्य ही हृत्ताड़न करते। बात यह हुई जान पड़ती है कि पुस्तक के प्रकाशक संस्कृत नहीं जानते और लाहोर के जिस प्रेस में यह पुस्तक छपी है उसमें तो संस्कृतज्ञों के सम्पर्क की आशा ही नहीं। पर प्रकाशक को चाहिए था कि इसके प्रूफ़ किसी सुयोग्य पण्डित को दिखा लेते, तब छपाते। किसी अच्छे प्रेस या प्रकाशक को चाहिए कि इस काव्य को सुन्दर टाइप में शुद्धतापूर्वक छपा कर इसका प्रकाशन करे। चीज़ अच्छी है और कवि की ही लिखी टीका होने से इसमें विशेषता भी आ गई है। इसका कथानक पुराना अवश्य है; पर कवि की रचना ने उसमें नवीनता पैदा कर दी है।

पेंशनयाफ़्ता तहसीलदार, पण्डित अमरनाथ शर्म्मा को, वज़ीराबाद (पञ्जाब) के पते पर, पत्र लिखने से यह काव्य मिल सकता है।

दीन की आह।

(१)

ज्येष्ठ के मध्याह्न के लू की लपट ; या दहक है घोर खाण्डव-दाह की।
या कि बड़वानल बहक आया यहाँ ; या किसी दुख-दीन ने है आह की।

(२)

ख़ून से हैं रँगे जिन्होंने हाथ ;
हैं कलेजे पकड़ पकड़ मसले ।
आज वे हाय से ग़रीबों की;
कह रहे हैं कि हाय हाय जले ॥

(३)

छेद कर अवनी-गगन को पार कर ; ढूँढ़ती है हैं कहाँ त्रिभुवन-धनी ।
"दीन का सन्देश लाई दीन-बन्धु ! लो ख़बर अब जान पर है आ बनी ॥

(४)

बाष्प-मय थी बनी सलिल-सुन्दर ;
जा बसी है रमेश-आँखों में ।
आँसुओं से मिली कहेगी दुख ;
कर लिया है प्रवेश आँखों में ॥

(५)

प्रकट करुणासिन्धु की करुणा हुई ; दीनवत्सल का हृदय उट्ठा पिघल ।
चक्र-धर ने चक्र से अपने कहा , देख अबलों को सताते हैं सबल ॥

(६)

चल दिया चक्र और यों घूमा ;
जो तले थे वही हुए ऊपर ।
अब गुनहगार सर झुकाये हैं ;
उड़ रही हैं हवाइयाँ मुँह पर ॥

(७)

फाँदने जाओ हिमालय के शिखर ; लवण बनकर सिन्धु की तुम थाह लो ।
अङ्ग पर ले लो दवानल की लपट , पर सता कर दीन की मत आह लो ॥

(८)

हो किसी देश में न हे ईश्वर !
हाय हालत तबाह दीनों की ।
आग इसकी लगी नहीं बुझती ;
है * जहाँ-सोज़ आह दीनों की ॥

सनेही

---

* जगद्दाहक ।

२

शक्ति उत्पन्न करनेवाली बिजली।

बिना आग और पानी के ट्राम-गाड़ी को चलते देख किसे आश्चर्य न होगा? बिना घोड़ों या बैलों की सहायता के रेल-गाड़ी को चलते देख कर हम सन्तोष कर लेते हैं कि वह पानी और आग के ज़ोर से चलती है। किन्तु ट्राम-गाड़ी में न आग होती है न पानी। वह तो केवल एक तार के सहारे चलती है।

रुख़ बदलनेवाली बिजली पैदा करनेवाला डाइनमो

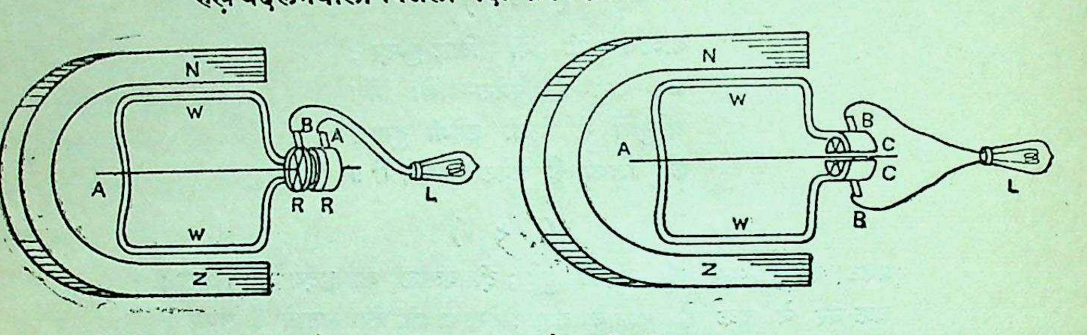

N और Z = चुम्बक का उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव
W = तांबे के तार का गुच्छा
A = डाइनमो का धुरा
W और A मिल कर आर्मेचर कहलाते हैं
R = धातु के छल्ले, तार के गुच्छे पर बँधे हुए—
B = छल्ले पर रगड़ खानेवाले ब्रश।
L = लैम्प—
C = धातु के छल्ले के दो टुकड़े।

प्राकृतिक नियमों में सबसे प्रधान नियम यह है कि संसार में शक्ति कभी नष्ट नहीं होती और न किसी वस्तु का ही समूल नाश होता है। कोयले के भीतर शक्ति का ख़ज़ाना रहता है। जब हम कोयले को जलाते हैं तब वह शक्ति अग्नि और तेज के रूप में प्रकट होती है। उस समय हम इस तेजरूपी आग के ऊपर पानी रखते हैं, जिससे पानी भाफ़ बन जाता है और आग की शक्ति भाफ़ में आ जाती है। इस भाफ़ को हम एञ्जिन के सिलेंडर नामक पुर्ज़े में पहुँचाते हैं, जहाँ जाकर यह पिस्टन नामक डण्डे को धक्का देता है। इस भाफ़ की शक्ति के धक्के से एञ्जिन के पहिये चल पड़ते हैं जिससे रेल गाड़ी चलने लगती है और हम सैकड़ों कोसों की यात्रा समाप्त कर लेते हैं।

हम ट्राम-गाड़ी की ओर ध्यान दें तो देखेंगे कि उसके पेंदे में बिजली की मोटर नामक एक कल लगी है जो चलने में बड़ी तेज़ खरखराहट की आवाज़ करती जाती है। इस मोटर में रबर और कपड़े से ढके हुए तांबे के तार के दो टुकड़े लगे होते हैं। एक टुकड़ा तो ट्राम-गाड़ी के पहिये से जुड़ा रहता है और दूसरा टुकड़ा गाड़ी के ऊपर आकर उस बड़े डण्डे से लगा रहता है जो ट्राम की छत के ऊपर रहता है और सड़क पर गड़े हुए खम्भों के ऊपर लगे तांबे के तार को उस समय छूता जाता है जब गाड़ी चलती है।

अब यह देखना चाहिए कि ट्राम को चलाने के लिए बिजली कहाँ से और कैसे आती है? सड़क पर गड़े हुए खम्भों पर जो बिजली का तार लगा रहता है उसके साथ साथ यदि हम चलें तो कुछ दूर पहुँच कर हम एक कारख़ाने में पहुँच जायँगे जहाँ बिजली बनती है। इस कारख़ाने के अन्दर जाकर हम भाफ़ के बड़े बड़े एञ्जिनों को चलते देखेंगे। इन एञ्जिनों के द्वारा हम बिजली की

बड़ी बड़ी मशीनों (कलों) को तेज़ी से चलते पावेंगे। इन मशीनों की शकल वैसी ही होती है जैसी कि ट्राम के नीचे लगे हुए मोटर की। किन्तु इस मशीन को मोटर न कह कर डाइनमो (Dynamo) कहते हैं। इन डाइनमों के भीतर होकर, काले कपड़ों से ढके हुए, तार के दो टुकड़े बाहर निकले होते हैं जो बिजली नापने के औज़ारों में आते हैं। ये औज़ार खड़े हुए एक संगमरमर पत्थर में लगे रहते हैं। यहाँ से एक तार ऊपर, कारख़ाने की छत में से होकर, सड़क के खम्भों पर आ जाता है और दूसरा पृथ्वी के अन्दर ही अन्दर सड़क पर बिछी हुई लोहे की पटरी में लगा रहता है। कोयले के ताप से पानी की भाफ़ बनती है। इससे एञ्जिन धक्का खाकर चलने लगता है। एञ्जिन के चलने से डाइनमो चलता है। डाइनमो के चलने से बिजली बन कर, तार के सहारे, सड़कों पर खड़े हुए खम्भों के ऊपर लगे तार में आती है। इस तार से छूते ही बिजली, ट्राम की छत पर लगे डण्डे में आकर, दूसरे तार के सहारे ट्राम के नीचे आकर, मोटर को चलाती है। इस प्रकार बिजली अपना काम करके मोटर में लगे हुए दूसरे तार के सहारे, ट्राम के पहिये से होकर, लोहे की पटरी में होती हुई कारख़ाने में वापस आ जाती है। इस प्रकार डाइनमो से उत्पन्न होकर बिजली एक तार द्वारा बाहर निकली और अपना काम करके फिर दूसरे तार द्वारा उसी डाइनमो में वापस आ गई। इससे पता लगा कि कारख़ाने में कोयले की शक्ति को बिजली की शक्ति में परिवर्तित करके, तार द्वारा ट्राम-गाड़ी तक ले जाकर, इस बिजली की शक्ति से ही मोटर को चलाते हैं। यह मोटर, गाड़ी के धुरे में ख़ूब जकड़ा हुआ लगा रहता है। इस कारण जब मोटर चलता है तब धुरा घूमने लगता है और धुरे के साथ पहिया, जिससे गाड़ी चल पड़ती है।

अब प्रश्न यह हो सकता है कि ट्राम का यह मोटर कैसे चलता है? ऊपर हम बतला आये हैं कि अँगरेज़ विद्वान् फ़राडे ने सबसे पहले इस बात का पता लगाया था कि रुई के धागे अथवा रेशम के तागे से लपेटे हुए तार के एक गुच्छे को चुम्बक पत्थर के पास घुमाने से तार में बिजली उत्पन्न हो कर बहने लगती है। उसने यह भी मालूम किया कि चुम्बक के नज़दीक तार के गुच्छे के केवल रक्खे ही रहने से बिजली नहीं बन सकती। बिजली उत्पन्न करने के लिए दो बातों की आवश्यकता है; एक तो तेज़ चुम्बक का नज़दीक होना और दूसरे गुच्छे का घुमाया जाना। इस विद्वान् ने इससे यह नतीजा निकाला कि चुम्बक पत्थर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक शक्ति की लहरें या लकीरें (Lines of Force) निकलती हैं और जब तार का गुच्छा इन लहरों से गुज़र कर इन्हें काटता है तब बिजली पैदा होती है। इसलिए जितनी तेज़ी से गुच्छा इन लहरों को काटता है उतनी ही तेज़ी से बिजली पैदा होती है। अतएव तेज़ी से घुमाने के लिए तार का गुच्छा एक धुरे पर लपेटा गया, जिससे वह तेज़ी के साथ लकीरों को काट सके।

इस आविष्कार के बाद लोगों ने ऐसी मशीनें बनाना शुरू किया जिनमें एक पेचक के ऊपर रेशम के तागे से तांबे के बारीक तार को बहुत बार लपेट कर, चुम्बक धातु के उत्तरीय और दक्षिणीय दो सिरों के बीच रख कर, वे उन्हें हाथ से घुमाने लगे। तार के एक सिरे के एक ध्रुव के नीचे आने से बिजली उत्पन्न होकर एक ओर बहने लगती है; किन्तु जब तार का वही सिरा चुम्बक के दूसरे ध्रुव की ओर जाता है तब बिजली का रुख़ बदल जाता है और वह तार के दूसरी ओर उलट कर बहने लगती है। इस प्रकार, एक ओर से दूसरी ओर बार बार बदल जानेवाली बिजली को आल्टर्नेटिङ्ग करेन्ट (Alternating Current) अर्थात् बदलनेवाली बिजली कहते हैं।

अच्छा तो तार के गुच्छे में पैदा हुई बिजली को बाहर किस प्रकार लाना चाहिए। गुच्छे के दोनों सिरों में तार बाँध कर बिजली नहीं लाई जा सकती; ऐसा करने से घूमता हुआ गुच्छा बाहरी तार को अपने साथ लपेट कर तोड़ मोड़ देगा। इसलिए एक और उपाय सोचा गया। गुच्छे के आगे और पीछे तांबे का एक एक छल्ला, गुच्छे के धुरे से कस कर, लगा दिया गया और गुच्छे का एक सिरा अगले छल्ले से और दूसरा सिरा पिछले छल्ले से जोड़ दिया गया। गुच्छे के साथ छल्ले भी घूमते हैं। इसलिए कोई हानि नहीं पहुँच सकती। पेचक या धुरे में लपेटे हुए तार के गुच्छे को आर्मेचर (Armature)

कहते हैं। इस गुच्छे के भीतर से बिजली को बाहर लाने के लिए बाहर, आगे पीछे, एक एक खूँटी स्थायी रूप से लगा दी जाती है। उनमें ताँबे की पतली चादर के दो टुकड़े इस प्रकार लगे होते हैं कि वे घूमते हुए छल्ले को बराबर छूते रहें। चादर के इन टुकड़ों को ब्रश (Brush) कहते हैं। इन ब्रशों में तार बँधे रहते हैं, जिनके द्वारा बिजली आती-जाती है।

इस प्रकार इस डाइनमो मशीन के अन्दर बिजली पैदा होकर बाहर लाई जाती है। हम पहले ही कह आये हैं कि लोहे के किसी टुकड़े पर रेशम के तागे से ढका हुआ बारीक तार लपेट कर और उस तार में बिजली डाल कर हम उस लोहे को चुम्बक बना सकते हैं। जितनी बार इस लोहे में तार लपेटा जाता है और जितनी अधिक बिजली डाली जाती है वह लोहा उतना ही अधिक तेज़ चुम्बक बनता है और डाइनमो में जितना अधिक तेज़ चुम्बक होता है (वह चुम्बक जिसके बीच तार का गुच्छा या आर्मेचर घूमता है) उतनी ही अधिक बिजली उत्पन्न होती है। स्वाभाविक चुम्बक अधिक तेज़ नहीं होता। इसलिए चुम्बक के बदले डाइनमो में लोहे के ऊपर तार बाँध कर लगाते हैं और इसी लोहे को तेज़ चुम्बक बनाने के लिए डाइनमो में उत्पन्न हुई कुछ बिजली को इस लोहे के ऊपर बँधे तार में डालते हैं।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि डाइनमो के तार का गुच्छा (अर्थात् आर्मेचर का एक सिरा) जब चुम्बक के उत्तरीय ध्रुव के सामने आता है तब उस सिरे में एक ख़ास ओर को दौड़ती हुई बिजली उत्पन्न होती है। जब वही सिरा दक्षिणी ध्रुव के सामने आता है तब बिजली का रुख़ बदल जाता है। इसलिए धुरे में लगे हुए छल्लों में बिजली का रुख़ बार बार बदलता रहता है। बार बार रुख़ बदलनेवाली यह बिजली यदि चुम्बक बनाने के लिए तारों के द्वारा लोहे में डाली जाय तो वह लोहा कदापि चुम्बक नहीं बन सकता। क्योंकि जब तारों में बिजली एक बार एक ओर को बहती है तब इन तारों से लपेटे हुए लोहे के टुकड़े का एक सिरा उत्तरीय ध्रुव बन जाता है और दूसरा सिरा दक्षिणी ध्रुव। किन्तु ज्योंही बिजली का रुख़ दूसरी ओर को बदला कि उत्तरीय ध्रुव वाला लोहे का सिरा दक्षिणीय ध्रुव हो जाता है और दक्षिणीय ध्रुव-वाला सिरा उत्तरीय ध्रुव।

इस प्रकार बार बार ध्रुव बदलनेवाले चुम्बक में बिजली बनाने की कुछ शक्ति नहीं रहती। इस कारण लोहे में लपेटे हुए तारों में डालने के लिए ऐसी बिजली होनी चाहिए कि जिसका रुख़ न बदला करे और जो सदैव एक ही ओर को बहती रहे। और आर्मेचर के भीतर तारों के गुच्छे में तो अवश्य ही रुख़ बदलनेवाली बिजली उत्पन्न होगी; क्योंकि आर्मेचर को हमेशा घूमना पड़ता है; और घूमने से एक सिरे को, एक फेरा फिरने पर, एक बार उत्तरीय ध्रुव के सामने आना पड़ता है और दूसरी बार दक्षिणीय ध्रुव के सामने। इसलिए एक फेरे में इस आर्मेचर में उत्पन्न हुई बिजली दो बार रुख़ बदलती है। हाँ, बाहर आकर ब्रश में हम ऐसा उपाय कर सकते हैं कि बिजली का रुख़ एक ही ओर को रहे।

किन्तु यदि हम आर्मेचर के धुरे के आगे और पीछे दो छल्ले न रक्खें, और यदि हम एक ही ओर एक ही छल्ले को दो बराबर बराबर भागों में काट कर इस प्रकार लगावें कि ये दोनों भाग आपस में छूने न पावें; और धुरे में लपटे हुए तारों के गुच्छे के एक सिरे को एक भाग में लगा दें और दूसरे सिरे को दूसरे भाग में; और इसके साथ ही दो ब्रशों को, आमने सामने दो भागों को अलग अलग छूते हुए लगावें, तो इन ब्रशों में बिजली सदैव एक ही ओर बहती रहे। यदि हम ज़रा ध्यान देकर सोचें तो शीघ्र ही हमारी समझ में आ जायगा कि ऐसा क्योंकर हो सकता है। आर्मेचर के घूमने पर उसका एक सिरा जब चुम्बक के उत्तरीय ध्रुव के सामने आता है तब उस सिरे से लगे हुए छल्ले का एक भाग भी उसी ओर आकर एक ब्रश से छूता रहता है, जिससे एक ख़ास रुख़ की ओर बिजली बाहर बहती रहती है। बाहर आकर इस प्रकार बिना रुख़ बदले हुए एक ही ओर बहनेवाली बिजली को डाइरेक्ट करेन्ट (Direct Current) कहते हैं। तार के एक गुच्छे के दो सिरे होते हैं। इसलिए उन सिरों को लगाने के लिए छल्ले के दो भाग होते हैं। इस हिसाब से दो गुच्छों के लिए छल्ले के चार भाग होते हैं अर्थात् तार के जितने गुच्छे आर्मेचर में होते हैं उनसे दुगने छल्ले के भाग होते

हैं। इस प्रकार कई भागों में विभक्त किये गये छल्ले को कम्यूटेटर (Commutator) कहते हैं जिनके द्वारा आर्मेचर के भीतर रुख़ बदलनेवाली बिजली को हम बाहर एक ही ओर बहनेवाली बिजली बना देते हैं।

इस प्रकार एक ही रुख़ की ओर बहनेवाली बिजली को, तार द्वारा, लोहे में लपेटे हुए तार में भेज कर, हम उस लोहे को बड़ा शक्तिशाली चुम्बक बना सकते हैं, जिससे वही चुम्बक फिर आर्मेचर में अधिक बिजली पैदा कर सकता है।

पहले डाइनमो के बनते ही उसमें लगे हुए लोहे में चुम्बक की थोड़ी सी शक्ति, बैटरी के द्वारा, डाल दी जाती है, जिससे वह कुछ कुछ चुम्बक बन जाता है। फिर जब भाफ़ या तेल इत्यादि से चलनेवाले एञ्जिन द्वारा वह डाइनमो इस चुम्बक के बीच चलाया जाता है तब इसके आर्मेचर में कुछ कुछ बिजली बहने लगती है। इस बिजली को चुम्बक में डालते हैं, जिससे वह अधिक शक्तिशाली बन जाता है। तब वह अधिक बिजली उत्पन्न करने लगता है; और यह अधिक बिजली फिर उसी में डाली जाती है, जिससे वह अधिक अधिक शक्तिशाली होकर और भी अधिक बिजली उत्पन्न करता है। यहाँ तक कि वह चुम्बक अपने क़द और उसमें लपेटे हुए तार के अनुसार एक हद तक इतना शक्तिशाली बन जाता है जिससे अधिक शक्तिशाली वह नहीं बन सकता। जब एञ्जिन अपनी पूरी गति से चलता है तब डाइनमो का आर्मेचर चुम्बक के सिरों से निकली हुई शक्ति की लकीरों को ख़ूब तेज़ी से काटता है। तब पूर्वोक्त चुम्बक ख़ूब अधिक बिजली पैदा करता है। इसे हम भीतर-बाहर को बिजली जमा करनेवाले दो अंशों में दो तार बाँध कर कारख़ाने के बाहर ले आते हैं और (जैसा ऊपर बतलाया गया है) ट्राम-गाड़ी के मोटर में बिजली पहुँचाते हैं।

ऊपर हम बतला आये हैं कि जब किसी तार में बिजली डाली जाती है तब वह चुम्बक की सुई को अपनी ओर खींचता है। यदि चुम्बक किसी वस्तु से जकड़ा हो और यह बिजलीवाला तार ढीला हो तो चुम्बक के स्थान पर यह तार ही चुम्बक की ओर खिँच जाता है। इसलिए जब मोटर के आर्मेचर में बिजली डाली जाती है तब वह मोटर के ढाँचे में लगे चुम्बक की ओर खिँचता है, जिससे वह चलने लगता है। मोटर बिलकुल डाइनमो की तरह होता है। इस मोटर से कितने ही प्रकार के काम लिये जा सकते हैं। पंखे से लेकर चक्की तथा ट्राम और रेल तक इन मोटरों से चलाई जाती है।

जगन्नाथ खन्ना

ग्रीष्म ।

कहाँ तो ऋतुराज का सौख्य-मय सङ्गठन, जिसमें बाल-वृद्ध, युवा-युवती, निर्धन-सधन, ग्रामीण-नागरिक, निरक्षर-साक्षर, रोगी-नीरोगी, पशु-पक्षी, गुल्म-लता-वनस्पति, स्थावर-जङ्गम, सभी नवजीवन में परिणत होकर अलौकिक शक्ति से अकथनीय आनन्द के उपभोग में मग्न रहते हैं—सारा संसार ही आनन्दमयी, रसमयी और लावण्यमयी लहरों में लहराता प्रतीत होता है, कवियों की लेखनी भी अद्भुत सज-धज के साथ प्रकृति के प्राङ्गण में नृत्य करने लगती है; और कहाँ ग्रीष्म का भीष्म प्रताप, जिसके कारण दीर्घाङ्गिनी यामिनी भी, अत्याचार के भय से सङ्कुचित हो, छिपने के लिए प्रयत्न करती है। ऐसा भयङ्कर व्यवहार हो रहा है, जिसके सामने राजा वेन की उच्छृङ्खलता को भी मस्तक नीचा करना पड़ता है। जिस ओर दृष्टि जाती है उसी ओर प्रत्येक वस्तु अपनी रक्षा करने में तन्मय देख पड़ती है। आमोद-प्रमोद का तो किसी को ध्यान ही नहीं।

यह देखो, ग्रीष्म से पीड़ित जल भी यद्यपि उसी की हाँ में हाँ मिलाने के लिए उद्यत होकर उसका सहकारी बना हुआ है, तथापि एकदम पृथ्वी में विलीन होता चला जा रहा है।

ग्रीष्म का शत्रु बर्फ़ पर्वतों में छिपा बैठा था। किन्तु अब पर्वत भी उसको धक्के दे देकर घर से

बाहर निकाल रहे हैं। बेचारे बर्फ़ के ढेले, दुःख से द्रवीभूत हो, लुढ़कते पुढ़कते रास्ते में शरण खोजते हुए पलायन कर रहे हैं। शीत तो स्वयं ग्रीष्म का प्रबल शत्रु है। किन्तु अब उसके भी पैर उखड़ गये हैं। वह अब इधर-उधर भागता फिरता है। कहीं गिरि-कन्दरा में छिपता है, तो कहीं कुवों के भीतर जा बैठता है। कभी बरगद के पैरों पड़ता है, तो कहीं पुत्र बन कर कारुण्यमयी युवतियों का आश्रय ढूँढ़ता है। कदली-पत्र, कपूर, वापी, व्यजन और चन्द्र-ज्योत्स्ना इत्यादि सभी के यहाँ अपना कुछ न कुछ प्रस्थान रख कर वह आश्रय खोज रहा है। यदि उसका कोई पक्का साथी और सहायक है तो एक-मात्र अँधेरा है। शीत ने उसी के यहाँ अपना डेरा जमाया है।

बहुत से रईसों और ज़मीदारों ने भी उसे आश्रय देने का वचन दिया है। शीत की रक्षा के लिए दुर्ग तैयार किये गये हैं। दुर्गों में ख़स की दीवारें हैं। सदैव जल के सींचे जाने से वे चिकनी रहती हैं। भीतर, धारागृहों में, फ़वारों की सदैव झरझराहट होती रहती है। वहाँ ग्रीष्म के प्रधान दूत सूर्यदेव को प्रवेश न करने देने के लिए तीव्र नियम तैयार किये गये हैं। शीत-देव वहीं, छिपे छिपे, समय बिताते हैं। परन्तु प्रचण्ड-प्रताप ताप-राज ने "अल्पोऽपि शत्रुर्न विसह्यते जनैः" के अनुसार उन दुर्गों पर आधिपत्य जमाने को सर्वत्र गतिशील अपने मध्याह्न-कालीन वीर वायु को आज्ञा देदी है। वह भी बड़े वेग से, पवन-चक्ररूपी व्यूह की रचना करके, पृथ्वी के रजः कणों की सेना के साथ, चारों ओर अन्धकार फैलाता हुआ उन दुर्गों को धूल में मिला देने के लिए असाधारण वीरता दिखला रहा है। वह मर्मर-ध्वनि के साथ विकराल रूप धारण करके शीत के आश्रयदाता वृक्षों को भी उखाड़ता पछाड़ता जाता है।

ग्रीष्म के सहचारी बन्धु, सहस्रांशु सूर्यनारायण भी प्रति दिन, उदय होते ही, प्रचण्ड रूप धारण कर लेते हैं, मानों वसन्त के सखा मनोज को भस्म करने के लिए भगवान् रुद्र का तीसरा नेत्र खुला है। अथवा यह सूर्य नहीं, यह तो ग्रीष्म के आवागमन के लिए नया दरवाज़ा खोला गया है, या यों कहिए कि वसन्त के वियोगियों की वियोगाग्नि, समष्टि-रूप से, आकाश में उदित हुई है। अथवा वसन्त की देखादेखी स्वयं ग्रीष्म-राज, प्रकृति देवी के साथ, सूर्यरूप पिचकारी ले कर असंख्य किरणों द्वारा अग्निकणों की वर्षा करके होली का त्योहार मना रहे हैं। इधर प्रकृति देवी भी धूलि के कुमकुमा बना बना कर ऊपर को फेंकने में तत्पर है। सूर्य-रूप देदीप्यमान मशाल लिये दिग्विजयी ग्रीष्म-देव शीत-शत्रु को खोज तो नहीं रहे?

प्रचण्ड मार्तण्ड ने अखण्ड भूमण्डल को प्रतप्त करके अपना सा कर लिया है। नभश्चरों को पीड़ित करने में सूर्यदेव, और स्थलचरों को पीड़ित करने में तवे की भाँति तपा हुआ धरातल कुछ कमी नहीं कर रहा। चिल्ला चिल्ला कर पक्षी आकाश में चक्कर काट रहे हैं। चीलहों का चीत्कार भयावना लगता है। सारा गगन-मण्डल, तपे हुए ताँबे की भाँति चमकता हुआ, नेत्रों में चकाचौंध उत्पन्न कर रहा है।

जङ्गलों में गर्मी से व्याकुल जीव, अपने स्वाभाविक विरोध को भूल कर, परस्पर एक दूसरे की शरण ले रहे हैं। उष्णता से पीड़ित मृगराज एक कन्दरा में निश्चेष्ट पड़ा है। एक मृग भी कहीं से भागा आया है और सोये हुए सिंह के पेट से लग कर सो रहा है। कहीं धरती पर पड़े हुए अजगर को सूँड़ से उठा कर उसके आलिङ्गन से भीमकाय हाथी अपनी तप्त सूँड़ को शीतल कर रहा है। कहीं रीछ और बाघ हाँफते हाँफते उस भीमकाय हाथी के नीचे, उसकी छाया में, सिर झुकाये खड़े हैं। जहाँ नाम मात्र के लिए भी जलाशय है वहाँ शूकरों के झुण्ड

के झुण्ड टूट पड़े हैं । प्यास से व्याकुल चीता उन्हें चाट रहा है और वे भी उसकी कोमल शीतल जिह्वा के स्पर्श का सुख पाकर चुप-चाप खड़े हैं ।

तृषार्त हरिणों के झुण्ड मृग-मरीचिका के भ्रम में पड़ कर भागते हैं; परन्तु वहाँ भी जल न पाकर, विवश हो, क्षण भर के लिए खड़े रह जाते हैं और दूसरे ही क्षण गरमी से व्याकुल हो उड़ान भर रहे हैं । जङ्गल एक-दम निर्जीव सा प्रतीत होता है । पृथ्वी पर एक चींटी भी नहीं देख पड़ती । वह भी वृक्षों पर चढ़ी चली जा रही है । सारे वन-उपवन तप्त हैं । धरातल तप्त है । भूधर तप्त हैं । वृक्ष तप्त हैं । लतायें तप्त हैं । नदियाँ तप्त हैं; पल्लव तप्त हैं । नीचे तप्त, ऊपर तप्त, इधर तप्त, उधर तप्त—समस्त वस्तुजात तापमय हो रहा है ।

उधर वृक्ष के कोटर में स्थित शुक-शावक चोंच खोल कर जीभ लपलपाते हुए जल की इच्छा से बाहर की ओर सिर निकाल रहे हैं; परन्तु ज्यों ही सरसर चलनेवाली गरम हवा का थपेड़ा लगता है त्यों ही बेचारे आँख मीच कर, चुपके से, फिर भीतर सरक जाते हैं ।

इधर वायु भी एकान्त समझ वृक्षों की पत्नी-लताओं के साथ अठखेलियाँ कर रहा है । मेरे कार्य को वृक्ष कहीं देख न लें, इसलिए उनके पुष्परूपी नेत्रों में वायु ने पहले ही धूल झोंक दी; फिर वृक्षों से लग कर खड़ी हुई लताओं के पत्ररूपी वस्त्रों को हटा हटा कर वह उनके मृदुल अङ्गों को देखने में व्यस्त हो गया । उधर बेचारी लतायें लज्जा के मारे अङ्गों को झुकाती हुई दुहरी चौहरी होती चली जा रही हैं । इस भीषण प्रलयकारी ग्रीष्म की दृष्टि से ग्राम, नगर और जनपद भी बच नहीं सके; वहाँ भी सर्वत्र इसके सहकारियों की धूम है । नगरों की सड़क तो ऐसी लगती है मानों प्रकृति ने जीवों को भूनने के लिए तवा रख कर उसके नीचे आग जला रक्खी है । तनिक उन बेचारे पथिकों की ओर भी देखिए जिनके पास जूती और छतरी नाम लेने को भी नहीं । वे उछलते ओफ़ ओफ़ करते, पैरों को सुहराते, मृग-गति से चले जा रहे हैं । बड़े बड़े राजप्रासाद उत्तप्त हो, दूर से ही अपनी ऊष्मा को छोड़ते हुए, विकट अजगर की भाँति श्वाससा ले रहे हैं । मनुष्य भी किसी तरह इससे प्राण-रक्षा कर एक-दम भीतर छिपे पड़े हैं ।

क्या धनी और क्या नृपति प्रायः सभी लोग अत्याचारी ग्रीष्म के हाथों लुट जाने के भय से, दरिद्र वेष में, आभूषणहीन, वस्त्रविहीन होकर, दैन्य भाव से समय बिताने में त्रस्त रहते हैं । उधर ग्रीष्म ने भी सबके यहाँ से सुवर्ण-चाँदी-पीतल आदि के बर्तनों को उठवा दिया; उनके स्थान पर उसने मिट्टी के बर्तन रखवा दिये हैं । हर एक आदमी के हाथ में तृण (पंखे) दिलवा दिया है ।

घर्मार्त्त मनुष्यों के शरीर पर स्वेद ने मानों चिरकाल के लिए आधिपत्य सा जमा लिया है । रोम-राजियों में प्रथम उसका अल्प रूप में प्रादुर्भाव होता है । थोड़ी देर के पश्चात् मोतियों के रूप में परिणत हो कर वह ग्रीष्म के हास्य को परिलक्षित करता है । इसके पश्चात्, एक एक बिन्दु आपस में मिल कर सोते का रूप धारण करके प्रत्येक अङ्ग से झरने लगते हैं । मानों बाह्य ऊष्मा से सन्तप्त शरीर को शीतल करने के लिए अन्तरात्मा ने वारि-वर्षण किया हो । बाह्य जगत् के मन्दिरों में धारागृहों और फ़व्वारों की स्पर्धा से ही मानों शरीर-मन्दिर में भी प्रकृति देवी ने पसीने के सोते बहा दिये हैं ।

यह देखो, अल्पवयस्क बालक माता की गोद से उतर घुटनों के बल धरती पर चलते चलते ज्यों ही किसी वस्तु को उठा कर चट मुख पर रखते हैं त्यों ही उनके वे कोमल पल्लव जैसे ओष्ठ, ग्रीष्म की ज्वाला से जलती हुई उस तप्त वस्तु से झुलस जाते हैं । बस, तुरन्त ही चुपके से उसको छोड़ वे अपने

प्रबल अस्त्र रोदन का अवलम्ब करते हैं। रे निर्दय ग्रीष्म! इन निरीह बालकों को तो शान्ति देता, परन्तु अशान्तिमय में भला शान्ति कहाँ!

भगवन् कालदेव! आप भी भय मान कर ग्रीष्म का साथ देने पर तुले हुए हो। क्या और किसी ऋतु में दिवस नहीं थे जो आप उनमें अपने दिवसाङ्क को विस्तृत कर सकते? परन्तु आप भी तो मनुष्यों को कष्ट देना चाहते थे। इसी से तो सब ऋतुओं की अपेक्षा ग्रीष्म के दिन लगातार बढ़े चले जा रहे हैं। इतने लम्बे दिन हैं कि काटे नहीं कटते। सर्वत्र रूक्षता का अनुभव होता है। ज़रा दुपहरी को तो देखिए, आधी रात के समान सन्नाटा खिँचा हुआ है। मनुष्य का कहीं शब्द भी नहीं सुन पड़ता। दर्शन होना तो दूर की बात है। यदि कुछ शब्द है तो केवल लू की विजय-दुन्दुभि का नाद है, या है वृक्षों से पत्ते गिरने का चुरमुर शब्द, या कपाटों का फटफट होना। ऐसे विकट समय में यदि कोई मनुष्य निद्रा के वशीभूत हो इस सङ्कट से बचना चाहते हैं तो पसीने की धारा उनके सिर से बह कर कभी कानों में या मुख में अथवा नेत्रों में जाकर अपने क्षारयुक्त गुण से चुनमुनाहट उत्पन्न कर तत्काल ही उन्हें जगा देती है। इस तरह सर्वत्र बेचैनी का राज्य है; भयङ्करता का साम्राज्य है। इसी अन्याय एवं निर्दय कर्म के कारण सूर्यदेव का मुखमण्डल, मध्याह्न काल में भी, मलिन हो रहा है। लोगों की उन पर जैसी श्रद्धा-भक्ति प्रातःकाल थी वैसी अब नहीं रही। यहाँ तक कि सूर्य के सम्मुख होने में भी लोग सङ्कोच करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी से, लज्जा के मारे, पश्चिमोदधि में निमज्जित होने को सूर्यदेव भी फुर्ती से भागे जा रहे हैं।

उमाशङ्कर द्विवेदी
(आयुर्वेदाचार्य)

गुरुदेव।

श्री सद्गुरु के दिव्यरूप का चिन्तन कर के,
महिमा मायातीत भाव-भवनों में भर के।
पावन पद-रज-सुप्रभाव से संशय हर के,
पाकर पुण्य-प्रकाश मोह-मति-सरिता तर के।
निर्मलमति मन में सदा, उठता यह उद्गार है।
सुगति, स्वर्ग, अपवर्ग का गुरु-प्रसाद ही द्वार है॥

(२)

हे विश्वम्भर, विश्वबीज, माया-तम-सविता।
किस उपमा से व्यक्त करे तुमको कवि-कविता?
सूर्यदेव की तमो-वारिणी अद्भुत क्षमता—
कहाँ, कहाँ गुरुदेव तुम्हारी कार्य-क्षमता?
रवि से तम हटता सही, होती फिर भी रात है।
आवागमन विनाश कर, गुरु का ज्ञान प्रभात है॥

(३)

अमित अलौकिक उपदेशों की वह अक्षयता,
गुरुभक्तों को प्राप्त कराती प्रभु-तन्मयता।
पारस छूकर सार स्वर्ण की पाता समता,
रह जाती है शेष तदपि पारस-पद-ममता।
पारस-कृत सोना नहीं, रखता तुल्य प्रभुत्व है।
पर गुरु-कृत गुरु-शिष्य में, रहता वही गुरुत्व है॥

(४)

सागरसम गम्भीर तीन लोकों से न्यारा,
पर न गिरामृत गुरु-रसना का तद्वत् खारा।
क्षीरोदधि है मधुर किन्तु कल्पान्तलयी है,
सतत गूढ़ गुरु-बोल-लोल-कल्लोल नयी है।
मेरु महान विशाल है, पर जड़ है पाषाण है।
कोंपल-सा कोमल हृदय, गुरु-गौरव का प्राण है॥

(५)

सलिलोपम है शान्ति किन्तु कब सलिल अचञ्चल?
ध्रुवक्षयी धीरा धरती धरती कब गुरुबल?
सदा भार से लदा कहाँ गुरु-सदृश सहसफन?
कोटि कल्पतरु कहाँ कल्पनातीत तुल्य घन?
कामधेनु का काम है, वहीं जहाँ कुछ काम है।
गुरु का हृदय उल्लास है, निस्पृह नित निष्काम है॥

(६)

चिन्तामणि की चाह करें चिन्ता के चेले ,
गुरु के उर-उद्यान चैन-शिशु निशिदिन खेले ।
कृपावारि-समकक्ष अमृत किस विधि से ठहरे ?
लोकोत्तर है दृश्य नहीं गुरुवर-छवि छहरे ।
अमृत पान कर अमर भी , मृत्यु-मार्ग-गामी रहे ।
कृपा-पात्र गुरु के सदा , मुक्ति-धाम-स्वामी रहे ॥

(७)

गुरु-गङ्गा-संयुक्त शिष्य-सरिता जब होती ,
होती गङ्गा स्वयं जन्म-दूषण सब खोती ।
पाती भूषण भव्य-भावमय मानस-मोती ,
स्वामी-सागर-गोद मोद भर कर फिर सोती ।
विपुल वर्णनातीत है , गुरु-महिमा गम्भीर है ।
अनुभव में पाता उसे , कोई धार्मिक धीर है ॥

गोकुलचन्द्र शर्म्मा

वायुमापक यन्त्र ।

वायु-मण्डल का दबाव जिस यन्त्र से नापा जाता है उसको वायुमापक यन्त्र (Barometer) कहते हैं । वायु-मापक यन्त्र बनाने की साधारण रीति यह है—काँच की, ३४ इञ्च की, एक नली लो, जिसका एक सिरा तो बन्द हो और दूसरा खुला हो। उसके भीतर एक सा छेद होना चाहिए । उस नली में मुँह तक पारा भरो । फिर उसके मुँह पर अँगूठा रख कर उसे उलटाओ, और पारे से भरे हुए बर्तन में डुबो कर अँगूठा निकाल लो । नली को ऊपर पकड़े रहो ताकि वह गिर न पड़े। कुछ देर में मालूम होगा कि पारा नीचे उतर रहा है और ऊपर थोड़ी सी जगह ख़ाली हो गई है। एक जगह जब पारा स्थिर हो जायगा तब आप कहेंगे कि उस ख़ाली स्थान में हवा है, किन्तु असल में वहाँ हवा है नहीं। क्योंकि जब पहले नली में पारा भरा गया था तब उसकी सब हवा निकल गई थी । आप कहेंगे कि वायु-मण्डल का दबाव सब ओर होता है, इसलिए वह कटोरे के पारे को भी दबाता है तो फिर पारा नली में ऊपर क्यों नहीं चढ़ता ? इसका उत्तर यह है कि वायु-मण्डल का दबाव ३० इञ्च पारे के बराबर है, अधिक नहीं । नली के पारे का ऊपर की ओर से नीचे की ओर जो दबाव है वह और बाहर की हवा का दबाव, जो पारे को ऊपर ठेलती है, ठीक बराबर है। इसी कारण अब न तो नली का पारा नीचे आ सकता है और न वायु-मण्डल का दबाव उसे ऊपर ठेल सकता है। नली में जो ख़ाली स्थान रह जाता है उसका कारण यह है कि नली ३० इञ्च से लम्बी है।

अब जैसे जैसे वायुमण्डल में परिवर्तन होता है वैसे ही वैसे पारे की सतह में परिवर्तन होता है। इस बात को अच्छी तरह देखने के लिए नली में एक स्केल (माप-सूचक-चिह्न) लगा देते हैं। उसमें इञ्च के चिह्न रहते हैं। अब देखना चाहिए कि वायु-मापक यन्त्र का आविष्कार कैसे हुआ।

इटली के एक विद्वान् गैलेलियो ने इस बात का पता लगाया कि पानी खींचने की किसी भी कल में पानी केवल ३४ फ़ीट तक उठता है। गैलेलियो के विद्यार्थी टारसेलीन ने सोचा कि पानी के ऊपर उठने का कारण कदाचित् वायु-मण्डल का दबाव होगा। अतएव उसने अनुमान किया कि पारा, जो पानी से १३ गुना भारी है, केवल पानी की उँचाई के १३ वें हिस्से तक उठेगा। उसने इसकी परीक्षा भी की और जैसा सोचा था वैसा ही पाया। इसी सिद्धान्त पर पारे के वायु-मापक यन्त्र का आविष्कार हुआ । टारसेलीन ने कई परीक्षाओं द्वारा सिद्ध किया कि पानी के अथवा पारे के ऊपर उठने का कारण वायु-मण्डल का दबाव ही है। उसने पहले एक बहुत ऊँची पहाड़ी पर अपने अनुमान की परीक्षा की। किन्तु वहाँ पारा उतना नहीं उठा जितना समुद्र-तट पर उठा था । वहाँ की अपेक्षा यहाँ कुछ कम उठा। इसी प्रकार उसने एक गहरी खाई के भीतर प्रयोग करके देखा तो वहाँ पारा ज़ियादह ऊपर चढ़ा । अतएव उसको पूर्ण विश्वास हो गया कि पारे के न्यूनाधिक चढ़ने का कारण वायु-मण्डल ही का दबाव है। कुछ दिनों के पश्चात् देखा गया कि वायु-मापक यन्त्र एक ही स्थान पर रहने पर भी उसकी नली का पारा एक ही स्थान पर नहीं रहता। इससे यह अनुमान किया गया कि एक ही स्थान के वायु-मण्डल का दबाव भी सदा एक ही सा नहीं बना रहता। यदि वायु-मापक यन्त्र न होता तो इस बात का किसी को सन्देह भी न होता।

जैसे जैसे इस ओर मनुष्यों का ध्यान आकर्षित होने लगा तैसे तैसे वायु-मापक यन्त्र के और और गुण भी मालूम होने लगे। वायु-मापक यन्त्र से इस बात की भी सूचना मिलने लगी कि मौसम साफ़ रहेगा या आँधी-पानी की सम्भावना है। जब हवा शान्त और साफ़ रहती है तब वायु-मापक यन्त्र का पारा ऊँचा रहता है और जब तूफ़ानी हवा रहती है तथा पानी बरसता है तब उसका पारा नीचे उतर आता है। इसका कारण यह है कि हवा में मिली हुई भाफ़ जब पानी बन कर हवा से अलग हो जाती है तब वायु-मण्डल का दबाव घट जाता है। इससे पारा नीचे उतरता है।

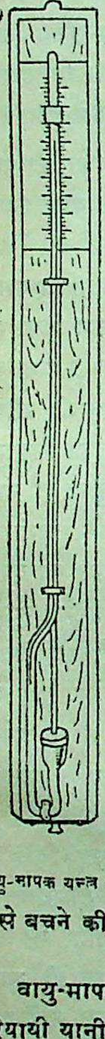

वायु-मापक यन्त्र।

किसानों तथा नाविकों के लिए वायु-मापक यन्त्र बहुत उपयोगी है। पहले किसानों को पानी और हवा के आसार जानने के लिए और और चिह्न देखने पड़ते थे। किन्तु ऐसा करने से उनका मतलब बड़ी कठिनाई से हल होता था। पर अब इस यन्त्र के सहारे वह काम सहज ही हो सकता है। इसी प्रकार पहले जब नाविक समुद्र में रहता था तब उसे कुछ पता न रहता था कि तूफ़ान कब किस ओर उठेगा। वह तूफ़ान से बचने के लिए पहले से कुछ भी सावधानी न कर सकता था। किन्तु अब वायु-मापक यन्त्र के द्वारा इसकी सूचना पहले ही से मिल जाती है। क्योंकि जब तूफ़ान उठने को होता है तब वायु-मापक यन्त्र का पारा बहुत नीचे उतर आता है और इसीलिए नाविक उससे बचने की तैयारी कर सकता है।

वायु-मापक यन्त्र प्रायः दो प्रकार होते हैं, एक दरियायी यानी जिसका उपयोग समुद्रों में किया जाता है और दूसरा स्थलीय। इसका उपयोग ज़मीन पर होता है। इन दोनों के बीच में थोड़ा ही सा अन्तर है। आज-कल सभ्य समाज वायु-मापक यन्त्र और उसके उपयोगों से परिचित है; किन्तु जब पहले पहल इसका आविष्कार हुआ था तब बहुतेरे मनुष्य यही समझते थे कि यह एक स्वर्गीय वस्तु है। इसको देख कर लोगों को बड़ा अचरज होता था।

खानों में बहुधा हैड्रोजन गैस रहती है या निकलती है। वहाँ काम करनेवालों को वायु-मापक यन्त्र बहुत उपयोगी है। जब किसी छेद या दरार से, जिसमें हाइड्रोजन रहती है, पत्थर निकाल लिया जाता है तब वहाँ से हाइड्रोजन निकल कर किसी लैम्प की ओर बढ़ती और मनुष्यों की हानि करती है। तब, उसके वहाँ तक पहुँचने के पहले ही, वायु-मापक यन्त्र से सूचना मिल जाती है और उसकी रोक-थाम कर ली जाती है।

यह तो लिखा ही जा चुका है कि वायु-मापक यन्त्र एक ही स्थान पर रहे तो भी उसके पारे के धरातल में परिवर्तन हो जाता है। समुद्र-तट पर पारा बहुधा शान्त हवा में ३० इञ्च पर रहता है, परन्तु वहाँ भी वह २८ से ३१ इञ्च तक बदलता रहता है। किन्तु लिस्बन नगर में जब बड़ा भूकम्प हुआ था तब लन्दन में वायु-मापक यन्त्र का पारा ५ इञ्च से भी नीचे आ गया था। वायु-मापक यन्त्र की नली के निचले हिस्से में Wind and Rain (तूफ़ान और पानी) तथा ऊपर के भाग में Dry and Fine (साफ़ और शान्त) शब्द लिखे रहते हैं।

वायु-मापक यन्त्र वायु-मण्डल का दबाव तो बतलाता ही है; इसके सिवा समुद्र-तट से किसी भी स्थान की ऊँचाई भी बतलाता है।

ऊपर दिखलाया गया है कि वायु-मापक यन्त्र की नली के पारे का उतार-चढ़ाव वायु-मण्डल के दबाव पर आश्रित है। यदि हम वायु-मापक यन्त्र को किसी ऊँचे स्थान पर ले जायँ तो पारे के उतार-चढ़ाव से हम बतला सकते हैं कि समुद्र के धरातल से हम कितने ऊपर हैं। यदि यह मान लिया जाय कि वायु-मापक यन्त्र का पारा समुद्र-तट पर ३० इञ्च पर रहता है और यदि हम किसी ऊँचे पहाड़ पर पारे को २० इञ्च पर देखें तो हम कह सकते हैं कि एक तिहाई वायु-मण्डल नीचे रह गया। समुद्रीय तट का धरातल सब ओर एक सा है। इस कारण जहाँ जहाँ वायु-मापक यन्त्र का पारा २० इञ्च पर रहे वे सब स्थान एक सी ऊँचाई

पर समझने चाहिए। यह भी अनुमान किया गया है कि समुद्र-तट के पास की हवा, अपने आयतन के बराबर पारे से १२,००० हिस्से हलकी है । इसलिए वायु-मापक यन्त्र में एक इञ्च पारे के उतार-चढ़ाव से हवा में १२,००० इञ्च अथवा १००० फुट का अन्तर पड़ेगा। ऊपर की हवा, नीचे की हवा से, विरल रहती है। इस कारण यदि हम वायु-मापक यन्त्र को बहुत ऊँचे स्थान पर ले जायँ तो हमारा यह नियम ठीक ठीक नहीं उतरता। पर, हाँ, कुछ ही कमी-बेशी आ जाती है ।

चौकस हिसाब लगाने के लिए विद्वान् लोग वायु-मापक यन्त्र के साथ एक उष्णता-मापक यन्त्र और कुछ बीज-गणित एवं रेखा-गणित की विधि का भी उपयोग करते हैं। उनके द्वारा वे किसी भी स्थान की उँचाई ठीक ठीक मालूम कर सकते हैं ।

यदि वायु-मापक यन्त्र को टेम्स नदी से लन्दन के सेंट-पाल चर्च में अथवा हेमस्टेड पहाड़ी पर ले जावें तो पारा आध इञ्च उतरता है । अतएव इनकी उँचाई का अन्तर ५०० फुट है। मौन्ट ब्लाक नामक पर्वत पर वह पारा १५ इञ्च पर रहता है और १५,००० फुट की उँचाई सूचित करता है ।

इसके सिवा वायु-मापक यन्त्र का उपयोग और कामों में भी होता है । स्थानाभाव के कारण यहाँ उन पर विचार नहीं किया जा सकता ।

अम्बिकाप्रसाद पाण्डेय

लज्जा-त्रस्त ।

होने में तव सम्मुख आज
नाथ, सताती मुझको लाज ॥
प्राङ्गण में है हुई जनों की भीड़ अपार
भरा शङ्ख-रव से नभ का है हृदयागार ॥
सजता है पूजा का साज ।
नाथ, सताती मुझको लाज ॥१॥
मुझे सामने पा न करो जो कुछ अनुमान
समझो मुझको कुटिल तथा दम्भी अज्ञान;
इसमें कुछ भी नहीं अकाज ।
नाथ, सताती मुझको लाज ॥२॥
मन्दिर-पथ में मुझे उठा जो कोई हाथ,
पूछ बैठता—'कहाँ !'—विनत हो जाता माथ;
पुनः यहाँ तो भरा समाज ।
नाथ, सताती मुझको लाज ॥३॥
जब सन्ध्या को हट जावेगी भीड़ महान,
तब जा कर मैं तुम्हें सुनाऊँगा निज गान ।
नहीं तीसरे का कुछ काज ।
नाथ, सताती मुझको लाज ॥४॥
शून्य-कक्ष के अथवा कोने ही में एक,
करूँ तुम्हारा बैठ यहीं नीरव-अभिषेक ।
सुनो न तुम भी वह आवाज़ ।
नाथ, सताती मुझ को लाज ॥५॥

मुकुटधर

विविध विषय ।

१—थोड़ी, सो भी सूखी शिक्षा ।

बड़े लाट की कौंसिल में, उस दिन, माननीय मिस्टर सच्चिदानन्दसिंह के पूछने पर, गवर्नमेंट ने बताया कि १९१८–१९ ईसवी में कुल हिन्दुस्तान में प्रारम्भिक शिक्षा देनेवाले १५,०२७ मदरसे थे और उनमें २९, ४१, ४८२ लड़के शिक्षा पाते थे । इस देश की जन-संख्या यदि ३२ करोड़ मान ली जाय तो यह कहना पड़ेगा कि फ़ी एक सौ निवासियों पीछे दो बच्चे भी प्रारम्भिक मदरसों में न थे। और, प्रारम्भिक शिक्षा देनेवाले मदरसे अधिकतर देहात ही में हैं। अतएव देहात में जो निरक्षरता देवी का अटल राज्य है उसके कारणों में से एक कारण शिक्षा-प्राप्ति के साधनों की कमी भी है। मदरसे अधिक हों तो अधिक लड़के-लड़कियाँ शिक्षा पावें। दस पाँच गावों के बीच कहीं एक मदरसा होने से शिक्षा-प्राप्ति में सुभीता नहीं होता। सरकार यद्यपि चाहती है कि देहात में शिक्षा सुलभ हो जाय; पर कहना एक बात है, कर दिखाना दूसरी बात। फिर, इस तरह की शिक्षा मुफ़्त नहीं दी जाती; लड़कों को फ़ीस देनी पड़ती है और पुस्तकों तथा काग़ज़, क़लम-दावात के लिए भी पैसे ख़र्च करने

पड़ते हैं। नमक के लिए भी महीने में जो लोग आने दो आने मुश्किल से ख़र्च कर सकते हैं वे, बताइए, अपने लड़कों के लिए फ़ीस और पुस्तकों आदि का ख़र्च कहाँ से लावें। उस दिन कौंसिल में सरकार ने इस बात का भी हिसाब बताया कि किस किस देशी राज्य में प्रारम्भिक शिक्षा मुफ़्त दी जाती है और किस किस राज्य में उसका प्राप्त करना अनिवार्य है। सरकारी लेखे से प्रकट है कि कम से कम ४८ रियासतें—विशेष करके बम्बई हाते में—ऐसी हैं जो अपने यहाँ प्रारम्भिक शिक्षा मुफ़्त देती हैं; फ़ीस के नाम एक कौड़ी भी किसी से नहीं लेतीं। बम्बई-प्रान्त की बरिया, धर्म्मपुर, लखतर, लीमड़ी आदि पाँच-छः रियासतों में तो माध्यमिक शिक्षा भी मुफ़्त ही दी जाती है। औंध, कोल्हापुर, लीमड़ी, मोरवी, बरोदा और माइसोर इत्यादि कई रियासतों में तो प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य्य भी है। सो इस विषय में तो हमारी अनेक देशी रियासतें ही भली। अपनी प्रजा को शिक्षित बनाने के लिए हमारी विपुल-शक्तिशालिनी सरकार से तो वही अधिक दत्तचित्त हैं। पर सरकार बेचारी करे क्या? उसके सिर पर ख़र्च कितना है। फ़ौज के लिए वह ख़ूब ख़र्च न करे तो भारत पर ख़ैबर के रास्ते किसी शत्रु के टूट पड़ने का डर है। रेलें न बनावे तो हम लोग शिमला-सबाथू आदि की सैर कैसे करें; प्रयाग, हरद्वार, पुरी और द्वारका आदि तीर्थों के दर्शन करने कैसे जायँ; ज़रूरत पड़ने पर एक जगह से दूसरी जगह फ़ौज कैसे रवाना करें; माल कैसे ढोवें; हज़ारों रुपया महीना तनख़्वाह पानेवाले बड़े बड़े अफ़सर न रक्खें तो हम लोगों पर शासन कौन करे। इतने, और बहुत ज़रूरी, ख़र्च करने के उपरान्त जो कुछ बच जाता है उसी में से सरकार को शिक्षा का ख़र्च निकालना पड़ता है। अतएव वह लाचार है। उसका विशेष दोष नहीं। इस कारण, इस कमी के लिए, हमें उसे माफ़ कर देना चाहिए, पर सरकार की एक कमी के लिए माफ़ी देने को जी नहीं चाहता। वह है उसकी सूखी शिक्षा। देहात के प्रारम्भिक मदरसों में वह पढ़ाती है भूगोल और इतिहास, अधिकतर क़िस्से-कहानी, कुछ हिसाब और थोड़ा सा बीज-गणित तथा रेखा-गणित। देहातियों के लिए यह इतनी शिक्षा कुछ विशेष काम की नहीं। लड़के योरप, अमेरिका, चीन और जापान के पहाड़ों, नगरों, नदियों और राजाओं के नाम आदि रट कर बहुत ही कम लाभ उठा सकते हैं। मिडिल स्कूलों के छात्रों के पढ़े हुए बीज-गणित और रेखा-गणित शायद ही कभी काम आते हों। सई नदी कहाँ से निकली है और कहाँ किसमें गिरती है, इस बात के जानने से शायद छात्रों को कुछ लाभ भी हो; पर मिसीसिपी और वाल्गा के विवरण रटने से उन्हें कुछ भी लाभ नहीं। अधिकारियों को देखना चाहिए कि और और देशों में कैसी शिक्षा दी जाती है। हालेंड, बेलजियम और स्विज़रलैंड देश हिन्दुस्तान के किसी किसी सूबे से भी छोटे हैं। वहाँ क्या ऐसी ही शिक्षा दी जाती है? क्या वहाँ ऐसी ही शिक्षा की बदौलत लोग सुखी और समृद्ध हैं? क्या वहाँ छोटे छोटे क़सबों तक में कृषि, दस्तकारी, व्यापार और व्यवसाय की शिक्षा नहीं दी जाती? जो उन देशों के लिए अमृत वह भारत के लिए मधुरता-विरहित मठा कैसे? कल्लू काश्तकार के लड़के को भारत के गवर्नर-जनरलों के नाम कण्ठ कर लेने से क्या लाभ? और बल्लू बढ़ई के पोते को औरङ्गज़ेब की राजनीति समझ लेने से हल बनाने में क्या सुभीता? हमें सारी शिक्षा ऐसी न चाहिए। हमारे देहाती भाइयों को ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे दिन में दो दफ़े उन्हें खाने को तो मिल जाया करे। किसी ने ठीक कहा है—

पढ़ो पूत वा इल्म को तत्तो चूल्हो होय

हमें आपकी कोरी जुग़राफ़िया और तवारीख़ रटना अभीष्ट नहीं। हमें तो आप हल और फाल बनाना सिखलाइए; खेत जोतना, खाद डालना, अच्छी खेती करना, तरकारी बोना सिखलाइए। और कुछ आपसे न बन पड़े तो हाथीचिग्घार के रेशों से रस्सियाँ तैयार करना और टोकरियाँ बुनना ही सिखला दीजिए। कपड़े बुनना, खिलौने बनाना, लोहे-पीतल की अनेक व्यावहारिक चीज़ें तैयार करना, व्यापार-व्यवसाय की युक्तियाँ बताना आप अभी न सिखलावें तो न सही; कुछ मोटे ही मोटे उद्योग-धन्धे सिखला दीजिए। देहातियों को किसी तरह शाम तक पेट भर खाने को तो मिले। माईसोर की रियासत के दीवान, कान्तिराज उर्स, ने अभी हाल ही में जो घोषणा की है उससे ही कुछ सजग हो जाइए। हाई स्कूल से नीचे की सारी शिक्षा ही

इस राज्य ने मुफ़्त दी जाने का निश्चय नहीं किया; उसने क़सबों और छोटे छोटे गाँवों तक में कृषि और व्यवसाय-विषयक शिक्षा देने का बीड़ा उठाया है। ऊँचे दरजे के स्कूलों में तो वह तरह तरह की दस्तकारी और उन्नत उद्योग-धन्धों की शिक्षा का भी प्रबन्ध करने जाती है। बात यह है कि ऐसी ही शिक्षा की ज़रूरत है। सूखी शिक्षा से विशेष लाभ नहीं। अगले साल नये कौंसिलों की मेम्बरी पाने के लिए अनेक अकर्मण्य लोग भी अभी से दौड़-धूप करने लगे हैं। इन हज़रतों में से शायद ही कभी किसी ने देहात की सैर की हो और देहातियों के सुख और सुभीते—आराम और तकलीफ़—का विचार किया होगा। देहाती मरें या जियें, इन्हें माननीयता मिल जानी चाहिए! भाइयो, ज़रा समझ बूझ कर, इनको अपना प्रतिनिधि चुनना। क्योंकि तुम्हारी सूखी शिक्षा को कुछ सरस बना देना, किसी अंश तक, इन्ही महात्माओं के हाथ की बात होगी।

२—शिक्षा-सम्बन्धिनी कुछ नई समस्यायें।

जब से इस प्रान्त के शासन का भार हमारे वर्तमान लफ़्टिनेंट गवर्नर, सर हरकर्ट बटलर, ने अपने ऊपर लिया है तभी से आप शिक्षा-दान के काम की ओर बहुत अधिक ध्यान देते आ रहे हैं। आप चाहते हैं कि शिक्षा के शरीर या शिक्षा की मशीन में जान सी पड़ जाय और उसमें ख़ूब ही शक्ति-सञ्चार हो जाय। इसीलिए आप समय समय पर शिक्षा की उन्नति के नये नये ढँग निकाला करते हैं। कहीं नये विश्वविद्यालय बन रहे हैं, कहीं नये कालेज खुल रहे हैं, कहीं नई कमिटियाँ बन रही हैं। कभी नये नये नियम बनते हैं; कभी नई नई बातों की खोज होती है। कभी कुछ होता है, कभी कुछ। कुछ समय हुआ, आपने सात-आठ विद्वानों की एक कमिटी बना दी थी। उसमें दो-तीन प्रोफ़ेसर भी थे। इस कमिटी को आज्ञा हुई थी कि बताओ—

> क्या किया जाय जो पश्चिमी देशों की शिक्षा के ढंग पर यहाँ भी शिक्षा दी जाने लगे और ख़ूब पढ़े लिखे हिन्दुस्तानी आदमी शिक्षा-विभाग में भरती होकर शिक्षोन्नति के काम के अगुवा बनें।

इस कमिटी की रिपोर्ट १३ मार्च १९२० के प्रान्तिक गैज़ट में छपी है। उसकी कुछ बातों का उल्लेख नीचे किया जाता है। जो काम गवर्नमेंट करना चाहती है उसके लिए तीन बातें बहुत ज़रूरी हैं—

(१) शिक्षा की ख़ूब उन्नति की जाय

(२) यह उन्नति हिन्दुस्तानियों ही के द्वारा कराई जाय

(३) एतदर्थ हिन्दुस्तानियों को योग्य बनने का यथेष्ट मौक़ा दिया जाय।

इस विषय में सफलता-प्राप्ति के तीन मार्ग हो सकते हैं—देशी भाषायें, निगरानी करनेवाले ज़िले के इन्स्पेक्टर और नार्मल स्कूलों के हेड मास्टर। यह हुई उस शिक्षा की बात जो देशी भाषाओं द्वारा दी जाती है। जिन स्कूलों में अँगरेज़ी और देशी दोनों तरह की भाषाओं के द्वारा शिक्षा दी जाती है उनके लिए भी तीन ही मार्ग हैं—ट्रेनिङ्ग कालेजों के अध्यापक, इन्स्पेक्टर और हेड मास्टर।

इन मार्गों से कार्य्यसिद्धि होने के लिए डिपटी इन्स्पेक्टरों की तनख़्वाह कम से कम २५०) महीना और नार्मल स्कूलों के हेड मास्टरों की भी २५०) ही होनी चाहिए। तभी योग्य आदमी मिल सकेंगे और तभी वे ख़ूब अच्छा काम कर सकेंगे। इतनी ही तनख़्वाह ट्रेनिङ्ग कालेजों के अध्यापकों या प्रोफ़ेसरों की और इतनी ही हाईस्कूलों के हेड मास्टरों की भी होनी चाहिए। इन्स्पेक्टरों में से कम से कम दो इन्स्पेक्टर ख़ूब ऊँची योग्यता के और ख़ूब बड़ी तनख़्वाह पर रखने चाहिए।

यहाँ के ट्रेनिङ्ग कालेजों में जिन लोगों ने शिक्षा पाई है उनमें से कुछ ख़ूब योग्य और ख़ूब सुशिक्षित हिन्दुस्तानियों को हर साल इँगलेंड, अमेरिका और कनाडा आदि को भेजना चाहिए। वहाँ वे लोग उन उन देशों की शिक्षा-प्रणाली देखें, सीखें और आवश्यकता होने पर अध्ययन भी करें। ऐसे लोगों का चुनाव एक पक्षपातरहित कमिटी करे। इन लोगों को विदेश जाने-आने और वहाँ रहने का ख़र्च सरकार दे। जो लोग विदेश से सब कुछ सीख कर लौट आवें उन्हें २५०) मासिक से कम वेतन न दिया जाय। ऐसे लोग पहले यहाँ २ वर्ष मास्टरी कर लें। तब विलायत भेजे जायँ।

कमिटी की राय है कि इन सिफ़ारिशों के अनुसार काम करने से शिक्षादान के काम में सजीवता आ जायगी,

ऊँची शिक्षा पाये हुए हिन्दुस्तानी आदमी मास्टरी करने पर राज़ी हो जायँगे और शिक्षा दान के सुफल शीघ्र ही दिखाई देने लगेंगे। तथास्तु।

३—इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के कुछ नये नियम।

बी० ए०, और बी० एस-सी० की परीक्षाओं में यदि कोई छात्र किसी एक भी विषय में फेल हो जाय तो वह उस पूरी परीक्षा में फेल समझा जाता है और पास होने के लिए उसे फिर परीक्षा देनी पड़ती है। इस कारण, विश्वविद्यालय के सिनेट की किसी पिछली बैठक में मुंशी नारायणप्रसाद अस्थाना ने यह प्रस्ताव किया था कि यदि कोई छात्र किसी एक या एकाधिक विषय में फेल हो जाय, पर और विषयों में ४५ फ़ी सदी नम्बर पावे, तो आगे चल कर उसकी परीक्षा उन्हीं विषयों में ली जाय जिनमें वह फेल हो चुका है। इस दशा में यदि उसे उन विषयों में भी ४५ फ़ी सदी नम्बर मिल जायँ तो वह पूरी परीक्षा में पास समझा जाय। कहने की ज़रूरत नहीं कि यह कितने सुभीते की बात है। इस पर सिंडीकेट ने १२ मार्च १९२० की मीटिंग में अपनी रिपोर्ट पेश की। उसमें उसने कहा कि अस्थाना जी की तजवीज़ ठीक नहीं। कालेज के छात्रों के लिए यह सुभीता नहीं किया जा सकता; पर जिन्होंने कालेज छोड़ दिया है, अर्थात् जो कहीं मुलाज़िम हो गये हैं या जो अपने घर बैठ रहे हैं, उनके लिए ऐसा करना ठीक होगा। बहुमत से सिंडीकेट की ही तजवीज़ पसन्द हुई और नियम के रूप में वह निर्दिष्ट हो गई। चलो, यही क्या कम है।

१२ मार्च की बैठक में यह भी तय हुआ कि मैट्रिकुलेशन के छात्रों को सफ़ाई और तन्दुरुस्ती की प्रारम्भिक शिक्षा दी जाया करे। पर यह विषय अभी आर्ट्स और सायन्स (कलाओं और विज्ञान) के विशेषज्ञों के विचार के लिए भेजा जायगा। वे किसी एक और विषय के परचे को निकाल कर उसकी जगह सफ़ाई और तन्दुरुस्ती के परचे की योजना करेंगे। डाक्टर सप्रू ने ज़ोर दिया कि कहीं देशी भाषाओं का कोई परचा न निकाल बाहर किया जाय; अतएव इसका निश्चय पहले ही से हो जाना चाहिए। पर उनकी न सुनी गई। अब डर है कि कहीं हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत में से किसी एक की शामत न आ जाय। देखिए क्या होता है। सिंडीकेट की जिस कमिटी ने इस विषय पर विचार किया था उसकी राय तो इन्हीं भाषाओं में से किसी एक के एक परचे को अर्द्धचन्द्र देने की थी। पर डाक्टर गङ्गानाथ ने इसे अभी टाल दिया है। उनकी तजवीज़ से इन भाषाओं का नाम निकाल कर उनकी जगह "किसी और विषय का कोई परचा" कर दिया गया है। डाक्टर सुलेमान ने यह तजवीज़ पेश की कि विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में यदि कोई छात्र और सब विषयों में ५० फ़ी सदी नम्बर पावे, पर किसी एक विषय में फेल हो जाय तो उसकी उस विषय की कमी की फिर से जांच की जाय। इसकी ख़बर उस छात्र को न होने पावे और इसके लिए उससे कुछ फ़ीस भी न ली जाय। डाक्टर साहब ने इसके उचित कारण भी बताये। पर डाक्टर ज़ियाउद्दीन को वे न भाये। उन्होंने कहा, यह बात बहुत कुछ जांच-पड़ताल चाहती है; जल्दी न कीजिए। इस तजवीज़ को सिंडीकेट की राय के लिए भेजिए। उसकी रिपोर्ट आने पर देखा जायगा। आपकी यह तजवीज़ अधिकांश लोगों को बहुत पसन्द आई। इस कारण वही "पास" समझी गई। डाक्टर सुलेमान साहब की तजवीज़ अधर में लटकती रह गई।

४—प्रान्तिक मकतब-कमिटी के काम।

हमारी न्यायशीला सरकार हमारे मुसलमान भाइयों को पढ़ा लिखा कर ख़ूब चैतन्य कर देने की सदा फ़िक्र रखती है। इस कारण मकतबों की निगरानी वग़ैरह के लिए उसने एक कमिटी बना दी है। इस कमिटी की एक बैठक २६ नवम्बर १९१९ को अलीगढ़ में हुई थी। कमिटी ने क्या क्या काम किया, इसका विवरण सरकार ने अब, ३ मार्च के प्रान्तीय गैज़ट में, प्रकाशित किया है। कमिटी के कुछ निश्चयों का निर्देश नीचे किया जाता है—

(१) मुसलमानी स्कूलों के इन्स्पेक्टर साहब हर ज़िले में, साल में, कम से कम एक दौरा ज़रूर करें।

(२) अनिवार्य्य प्रारम्भिक शिक्षा प्रचलित होने के पहले मकतबों और मुसलमानी स्कूलों की संख्या ख़ूब बढ़ाई जाय।

(३) अरबी और फ़ारसी पढ़नेवाले छात्र यदि प्राच्य भाषाओं की कोई निर्दिष्ट परीक्षा पास न कर सकें तो

उनके लिए कोई और छोटी-मोटी परीक्षा नियत कर दी जाय। यह छोटी परीक्षा वर्नाकुलर फ़ाइनल परीक्षा के बराबर समझी जाय और जो लोग इसे पास करलें वे लड़के पढ़ाने के लिए मौलवी बन सकें।

यह रियायत इसलिए कि जो लोग निर्दिष्ट परीक्षा नहीं पास कर सकते वे कोई छोटी सी ही परीक्षा पास कर लेने पर मौलवी की जगह पा जायँ।

(४) हर ज़िले में एक मुसलमान सब-डिपटी-इन्स्पेक्टर नियत किया जाय। मकतबों और मुसलमानी मदरसों की निगरानी का भार उसी पर रहे।

यह शायद इसलिए कि हिन्दू सब-डिपटी-इन्स्पेक्टरों से यह आशा नहीं कि वे इस तरह के विद्यालयों की देख-भाल ठीक ठीक कर सकेंगे।

(५) मकतबों में मौलवी का काम करनेवाले अध्यापक तैयार करने के लिए नार्मल स्कूल के बदले हर ज़िले में एक ट्रेनिंग क्लास खोली जाय। उसमें ऐसे लोग भी भरती किये जायँ जिन्होंने सनद नहीं पाई।

यह रियायत भी बड़े काम की होगी। इसकी बदौलत थोड़ी शिक्षा पाये हुए लोग भी पढ़ाना सीख कर मज़े में मौलवी बन जायँगे।

(६) धार्म्मिक शिक्षा की पाठ्य पुस्तकों या विषयों का निश्चय होते ही उनकी सूची सभी मकतब-कमिटियों के पास भेज दी जाया करे, जिसमें वे लोग यदि इस प्रकार की शिक्षा देना चाहें तो उसके लिए यथेच्छ प्रबन्ध कर सकें।

(७) जहाँ म्यूनिसिपैलिटी है वहाँ जमा-ख़र्च के वार्षिक चिट्ठे में मकतबों और मुसलमानी मदरसों के ख़र्च के लिए काफ़ी रक़म अलग कर दी जाया करे।

आशा है अधिकारि-वर्ग ये सब सुभीते कर देने में विलम्ब न करेगा।

५—आयुर्वेदिक और तिब्बी कालेज के लिए सहायता।

देहली में, कुछ समय से, एक कालेज खुला है। उसमें आयुर्वेद की भी शिक्षा दी जाती है और तिब्बी की भी। हकीम अजमल ख़ां उसके सबसे बड़े सहायक हैं। लार्ड हार्डिङ्ग ने इस कालेज की नींव डाली थी। गत मास में, १९२०—२१ ईसवी के सरकारी जमा-ख़र्च के चिट्ठे पर वाइसराय के कौंसिल में कई दिनों तक विचार हुआ। उसकी १० मार्च की बैठक में मिस्टर जाफ़र ने एक प्रस्ताव उपस्थित किया और ५ लाख रुपये सरकार से इस कालेज की मदद के लिए मांगे। कई मेम्बरों ने आपके प्रस्ताव का समर्थन किया और देशी वैद्यक—यूनानी और हिन्दुस्तानी दोनों—की उपयोगिता के विषय में बहुत कुछ कहा। ये चिकित्सायें बहुत पुरानी हैं; देहात में केवल इन्हीं के प्रयोग से रोग-नाश का उपाय हो सकता है—इत्यादि दलीलें पेश करके हिन्दुस्तानी मेम्बरों ने सिफ़ारिश की कि इस कालेज के लिए इतना रुपया सरकार को ज़रूर ही देना चाहिए। उत्तर में सर विलियम विन्सेंट ने कहा कि भूतपूर्व बड़े लाट ने इस कालेज की नींव डाली है। अतएव अब यह मानना ही पड़ता है कि गवर्नमेंट को इन चिकित्साओं की उपयोगिता स्वीकार्य्य है। सभी ग़ैर सरकारी मेम्बर इनको लाभदायक समझते हैं। एक बात और भी है। वह यह कि अगले साल से चिकित्सा-विभाग प्रजापक्ष के मन्त्रियों की देख रेख में रहेगा। इस कारण अब इस विषय में सरकार प्रतिकूलता नहीं करना चाहती। प्रान्तिक गवर्नमेंटों से इस सम्बन्ध में जो रिपोर्टें मांगी गई थीं वे भी आगई हैं। यह सब है, तथापि मैं नहीं कह सकता कि लार्ड चेम्सफर्ड इस विषय पर फिर से विचार करना पसन्द करेंगे या नहीं। मुझे यह भी तो मालूम नहीं कि तिब्बी, आयुर्वेदिक और डाक्टरी चिकित्साओं में से कौन अच्छी और कौन बुरी है। आप एक बात कीजिए। कुछ सज्जन कोई तजवीज़ तैयार करें और मुझसे मिल कर बतावें कि वे रुपया लेकर उसे किस काम के लिए किस तरह ख़र्च करेंगे। अगर उनकी तजवीज़ उचित और लाभदायक मालूम होगी तो मैं गवर्नमेंट के अर्थ-सचिव से कह दूँगा कि भाई, इन्हें इतना रुपया दे दो।

सो अब हकीमों और वैद्यों का भाग्य खुलना चाहता है। बहुत सम्भव है, इतने दिनों की रगड़ के बाद तिब्बी और आयुर्वेदिक चिकित्सा को सरकारी दाद मिल जाय। अनवरत चेष्टा और निरन्तर की चर्चा से क्या नहीं हो सकता? आशा है, डेपुटेशन (चुने हुए सज्जनों का समुदाय) कोई ऐसी तजवीज़ पेश करेगा जिसमें दोष दिखाने

के लिए गवर्नमेंट को जगह न रहे; उसको मंज़ूर करके उसे रुपया देना ही पड़े।

६—सफ़ाई और तन्दुरुस्ती का काम।

चाहे जो देश हो और उसमें चाहे जिस प्रकार की शासन-प्रणाली प्रचलित हो, उसका काम बिना रुपये के एक मिनट भी नहीं चल सकता। इसी से प्रजा को टैक्स या कर देना पड़ता है। उसी टैक्स के रुपये से शासन-कार्य्य चलता है। गवर्नर, कमिश्नर, कलेक्टर, कमांडर इत्यादि सरकारी अफ़सर और कर्म्मचारी जो हज़ारों रुपये हर महीने, तनख़्वाह के रूप में, पाते हैं वह सब रुपया आसमान से नहीं फट पड़ता। वह तो उसी टैक्स की बदौलत प्राप्त होता है। यह टैक्स देती है प्रजा। और अधिकांश प्रजा देहात में—गाँवों और क़सबों में—रहती है। कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, लखनऊ और बनारस में नहीं रहती। कर से जो रुपया सरकार को मिलता है उसका अधिकांश लगान और मालगुज़ारी से ही प्राप्त होता है। और यह लगान और मालगुज़ारी देनेवाले भी देहात ही में अधिक रहते हैं। सो, यह कहना चाहिए कि शासन का चर्ख़ा चलानेवाले विशेष करके बेचारे देहाती ही हैं। पर ज़रा शासन की ख़ूबी तो देखिए। वाटर-वर्क्स (नलों द्वारा स्वच्छ पानी पहुँचाने के काम) जारी होंगे तो बड़े बड़े शहरों में! स्कूल और कालेज खुलेंगे तो बड़े बड़े शहरों में! हृदयहारी उद्यान बनेंगे तो बड़े बड़े शहरों में! अस्पताल और शफ़ाख़ाने खुलेंगे तो बड़े बड़े शहरों में! सफ़ाई और तन्दुरुस्ती की निगरानी के लिए हेल्थ आफ़िसर, इन्स्पेक्टर और डाक्टर तैनात किये जायँगे तो बड़े बड़े शहरों में। इस सुन्दर, सुहावने और बखानने योग्य सुप्रबन्ध को तो देखिए। कैसी दिल्लगी है। देहाती कूड़े-करकट में लोटा करें, निरक्षरता के गढ़े में पड़े रहें, बीमारी से अधमरे होकर जीवन व्यतीत करें, एक पुड़िया कुनैन के लिए तरसें, हर्ज नहीं। उनका काम सिर्फ़ लगान और मालगुज़ारी देना है। अपने उस रुपये से फ़ायदा उठाने के वे बहुत कम मुस्तहक़ हैं। मुस्तहक़ हैं कौन? लखनऊ, इलाहाबाद और कानपुर वग़ैरह के सेठ-साहूकार, वकील और बैरिस्टर, महाजन और मास्टर तथा और लोग भी जिन्हें इन बड़े बड़े नगरों के नागरिक होने का सौभाग्य, दैवयोग से, प्राप्त है। इनके लिए नये नये ट्रस्ट, नये नये कालेज, नये नये विश्वविद्यालय पहले ही से खुले हुए हैं; अब और भी खुल रहे हैं। शासन के अभ्रंकश प्रासाद या ऊँची इमारत के स्तम्भ यही हैं न! देहाती नहीं। उनका काम सिर्फ़ कर देना और इन नागरिकों का काम सिर्फ़ उस कर की बदौलत सुखोपभोग करना है। जान तो कुछ ऐसा ही पड़ता है। क्योंकि न तो उनके लिए ठीक ठीक शिक्षा का प्रबन्ध है, न दवापानी का प्रबन्ध है और न उनके गाँवों की सफ़ाई का ही प्रबन्ध है। सरकार कृपा करके ज़िले के हाकिमों को रुपया देती है और कहती है, इसे देहातियों की शिक्षा और देहातों की सफ़ाई में ख़र्च करना। पर हाकिम इतनी तकलीफ़ क्यों गवारा करने लगे। वह रुपया अथवा उसका अधिकांश ज्यों का त्यों रक्खा रहता है। पूछने पर कह दिया जाता है, रुपया रक्खा है; क्या कोई खा गया है। क्या कहना है। क्या ही अच्छी गुर्बा-परवरी है! माँ-बाप समझे जानेवाले इन ग़रीब-परवरों की इस उदारता का वर्णन मनुष्य तो क्या शेष जी और शारदा माई भी नहीं कर सकती। भाई देहातियो, ज़रा तो ज़बान हिलाओ। कुछ तो सोचो। बात समझ में न आवे तो किसी समझदार से पूछ देखो। अपना काम करो। तुम्हारे करने ही से होगा। तुम्हारे गाँवों में सफ़ाई कराने और तुम्हारे बच्चों को पढ़ाने के काम का बोझ अगले साल से तुम्हारे ही भाई-बन्द अपने ऊपर लेनेवाले हैं। उनसे ठीक समझौता किये बिना किसी की तरफ़दारी न करना। सावधान!

७—शकर की पैदावार और ख़र्च।

और चीज़ों की तरह शकर भी बहुत महँगी हो गई है। पाँच वर्ष पहले—अर्थात् युद्ध के पहले—वह जिस भाव बिकती थी, सम्भव नहीं कि उस भाव वह फिर कभी बिके। १९०९ से १३ तक, ५ वर्ष का औसत लगाने से जाना गया है कि शकर पैदा करनेवाले बड़े बड़े देशों में, युद्ध के पहले, कितनी शकर हर साल बनती थी। हिसाब इस प्रकार है। वह टनों में है। एक टन कोई २७ मन का होता है—

हिन्दुस्तान	...	२५, २०, ५८७
जर्मनी	...	२३, ८५, ५५१

क्यूबा	...	२०, ५०, ८४३
आस्ट्रिया-हंगरी	...	१५, ८६, ८१५
रूस	...	१५, ७२, १३६
जावा	...	१४, ५४, ५४०

अर्थात् सबसे अधिक शकर पैदा करनेवाला देश, दुनिया में, हिन्दुस्तान ही है। अच्छा। युद्ध के कारण जब हमारे विलायतवासियों को रूस, जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी से शकर न मिलने लगी और फीकी चाय पीने की नौबत आई तब हिन्दुस्तान में शकर अधिक बनाई जाने की चेष्टा की गई। गन्ना खूब बोया गया। फल यह हुआ कि शकर पहले से अधिक बनी। देखिए—

	टन
१९१७ में	३०, ५५, ३६०
१९१८ में	३७, ७८, ३२०

कहाँ पहले, साल में, सिर्फ़ २५ लाख टन बनती थी, कहाँ १९१७ में ३० लाख टन से भी अधिक बनी। १९१८ में तो उसकी तौल ३७ लाख टन हो गई। इस बीच में क्यूबा, अमेरिका, जावा और हवाई आदि ने भी, मौक़ा देख कर, अपनी पैदावार बढ़ा दी। जहाँ शकर कम होती है या नहीं होती वहाँवालों को ये देश अधिकाधिक शकर भेजने लगे। नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तान में शकर की पैदावार बढ़ाने की जैसी चेष्टा पहले की गई थी वैसी न की गई। वह शिथिल कर दी गई। पैदावार कम हो गई। यहाँ तक कि १९१९ में उसकी पैदावार २६ लाख टन ही कूती गई है। उधर जावा, हवाई, फ़्रांस, अमेरिका और क्यूबा अपनी पैदावार बेतरह बढ़ाते चले जा रहे हैं। क्यूबा ने तो अपनी पैदावार १९१३ की अपेक्षा १९१९ में दूनी तक कर दी है। अच्छा, हिन्दुस्तान में शकर ख़र्च कितनी होती है? बहुत ख़र्च होती है। सबसे अधिक शकर खानेवाला देश अमेरिका है, फिर भारत, फिर इँगलेंड। इनका सालाना ख़र्च सुनिए—

अमेरिका	३४, ००, ००० टन
हिन्दुस्तान	२८, ३०, ००० ,,
इँगलेंड	१८, ००, ००० ,,

भारत की आबादी को देखते साल में २८ लाख टन शकर खा जाना बहुत नहीं। शायद सौ में कहीं एक आदमी को शकर मयस्सर होती होगी। पर बहुत हो या कम, बात यह है कि पैदा करो तो खाव। दूसरों की कमाई का खाना और घर का धन बाहर फेंकना बुद्धिमानी नहीं। हम लोग खायँगे तो २८ लाख टन, पर पैदा करेंगे २५ ही लाख टन। क्या ख़ूब! मनाने पथाने से कुछ दिन अधिक ईख बो दी। दबाव या ख़ुशामद ज़रा कम हो गई तो फिर पैर फैला कर सो रहे। शरबत या शीरीनी के लिए शकर कम पड़ी तो १५–२० फ़ी सदी शकर मारीशस, जावा और आस्ट्रिया-हँगरी से मँगा ली। रूस, जर्मनी और आस्ट्रिया-हँगरी से शकर आना बन्द हो गया, या कम हो गया, यह देख छोटे छोटे टापू तक जाग पड़े और करोड़ों रुपये कमाने लगे। पर अपने राम जहाँ के तहाँ पड़े चैन कर रहे हैं। और देशों के कृषक शिक्षित हैं, हमारे कृषक निरक्षर भट्टाचार्य। उन्हें दीन दुनिया की क्या ख़बर? भगवान ही जाने, कब इन्हें काफ़ी शिक्षा मिलेगी और कब ये लोग तथा अन्य व्यवसायी अपना घर सँभालेंगे।

८—देशी वनस्पतियों से ओषधि-निर्म्माण।

कुछ लोगों के बहुत कहने सुनने से सरकार ने एक कमिटी बनाई। उसे उसने काम यह दिया कि पता लगाओ, अँगरेज़ी दवाख़ानों में जो दवायें काम आती हैं उनमें से कोई इस देश की जड़ी-बूटियों आदि से यहीं तैयार भी की जा सकती हैं या नहीं और ये जड़ी-बूटियाँ और पेड़-पौधे अधिक मात्रा में बोये, लगाये और पाले-पोसे भी जा सकते हैं या नहीं? इस कमिटी के सेक्रेटरी लफ़्टिनेंट कर्नल एच० रास, आई० एम० एस० ने, कमिटी के काम की अब एक रिपोर्ट पेश की है और उसका मतलब अख़बारों में भी छपा दिया है। आप कहते हैं कि इस कमिटी की अभी तक एक ही बैठक हो पाई है। उसमें तय हुआ है कि—

(१) इस विषय की जाँच-पड़ताल का प्रधान काम उस शोध-शाला में होना चाहिए जिसका सम्बन्ध डाक्टरी महकमे के स्टोर-विभाग से है।

(२) इस बात का पता लगाना चाहिए की वानस्पतिक ओषधियाँ कहाँ कहाँ पैदा होती हैं; कितनी पैदा होती हैं और कोई उन्हें बोता, लगाता या पालता-पोसता भी है या नहीं?

(३) जिन दवाओं का उपयोग अब तक डाक्टर नहीं करते उनकी भी जांच पड़ताल होनी चाहिए।

(४) इस तरह की खोज अगर और भी कोई करना चाहे तो उसे सब तरह की सहायता दी जाय, पर शर्त यह है कि उसकी खोजी या तैयार की हुई दवायें ऐसी हों जो उन कीड़ों का नाश कर दें जो रोग फैलाते हैं, तथा और कीड़ों का भी।

(५) प्रान्तिक गवर्नमेंटों को इस कमिटी की स्थापना की सूचना दे दी जाय। उनसे कह दिया जाय कि यह कमिटी देशी वनस्पतियों तथा और चीज़ों से भी दवायें तैयार कराने जाती है। तुम्हें कुछ सूचनायें देनी हों तो दो।

इसके बाद लफ्टिनेंट कर्नल साहब ने अनेक ओषधियों के नाम दिये हैं जो युद्ध के पहले विलायत से आती थीं, पर जो अब यहीं बनने लगी हैं।

सो हकीम जी के इमामदस्ते खुशी से चलें। उन्हें इस कमिटी के काम से कुछ भी हानि-लाभ नहीं। इसकी कृपा और चेष्टा से तो अँगरेज़ी दवाख़ानों के लिए दवायें बनेंगी। हाँ, उनके लिए इतनी जगह ज़रूर है कि यदि वे कोई कृमिनाशक दवायें तैयार करें तो जाँच के लिए उन्हें वे कमिटी के पास भेज सकेंगे। पर उनके लिए यह कोई विशेष सुभीते की बात नहीं।

९—महाराजा सेंधिया का प्रजा-रञ्जन।

भारत के उन्नतिशील देशी राज्यों की गणना के समय ग्वालियर राज्य का नाम भुलाया नहीं जा सकता। यद्यपि वहाँ मैसूर, बड़ोदा जैसे रजवाड़ों के सदृश प्रतिनिधि-मूलक शासन-व्यवस्था का प्रचार अभी तक नहीं है, तथापि प्रजाहितैषणा की दृष्टि से ग्वालियर का पद पूर्वोक्त प्रकार की व्यवस्था द्वारा शासित राज्यों की अपेक्षा हीन भी नहीं। ग्वालियर के वर्तमान महाराजा के शासन के पिछले कई साल राज्य की कृषि को समुन्नत करने में ही बीते हैं। आपको अपने इस प्रयत्न में बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है।

महाराजा सेंधिया का ध्यान अब अपने राज्य के उस कलङ्क को धोने की ओर आकृष्ट हुआ है जिसके लिए ग्वालियर राज्य ज़माने से बदनाम है। वह है उनके राज्य में डाकुओं के अड्डों का होना। नरवर ज़िले के करेरा मौज़े में, आपने हाल ही में एक दरबार किया था। दरबार में राज्य के ज़मींदार या उनके प्रतिनिधि और दरबारी उपस्थित थे। इस अवसर पर महाराज सेंधिया ने अपना वक्तव्य सुनाया। वक्तव्य के आरम्भ में आप कहते हैं—

> "पेश्तर इसके कि मैं इस महीने भर की कार्रवाई को इख़्तताम पर पहुंचाऊं, यह मुनासिब समझता हूं कि चन्द बातें जो मुफ़ीद मतलब हर ख़ासो-आम हैं उनको एक बार फिर आप पर ज़ाहिर करूं और हाथ जोड़ कर आपकी ख़िदमत में अर्ज़ करूं कि परमेश्वर के लिए इन बातों को मत भूलना; बल्कि उन पर पूरी तौर से अमल करना, ताकि तुम सबका भला हो और तुम्हारे साथ मेरा भी।"

इसके आगे आपने श्रोताओं को कीर्ति तथा साख का महत्त्व सुझाते हुए, डाकेज़नी बन्द कराने के लिए इन शब्दों में अपील की—

> "मेहरबानी फ़रमा के और मेरे हाल पर रहम करके ऐसा इन्तज़ाम करो कि कुल रियासत में डाकाज़नी बन्द हो और इन वाहियात झगड़ों का रियासत में नाम तक न रहे। इसमें तुम्हारी भलाई ही नहीं बल्कि नेकनामी भी है। मैं परमेश्वर की क़सम खाकर अर्ज़ करता हूं कि मैं अकेला नाम नहीं चाहता और परमेश्वर को गवाह करके कहता हूं कि मेरी हमेशा यह ख़्वाहिश रहती है कि पहले तुम्हारा नाम हो और तुम्हारी जूतियों के तुफ़ैल से मेरा नाम हो।"

ये शब्द एक ऐसे शासक के मुख से निकले हैं जो सर्वथा अनियन्त्रित है; जो अपने राज्य का हर्ता कर्ता है और जिसकी प्रजा दीन एवं वर्तमान समय की राजनैतिक हलचल के सम्पर्क से दूर है। महाराजा साहब का यह व्याख्यान उनके उदार विचारों की महत्ता का द्योतक ही नहीं, किन्तु प्राचीन काल के भारतीय नरपतियों के आचरण का स्मरण दिलानेवाला है।

देवीदत्त शुक्ल

१०—दशम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन।

इस दफ़े, अप्रेल के आरम्भ में, हिन्दी का साहित्य-सम्मेलन पटने में हुआ। समय के कई महीने पहले ही सभापति-निर्वाचन की चर्चा "यथापूर्व" छिड़ गई। कई हिन्दी-हितैषियों, हिन्दी-लेखकों और हिन्दी-पण्डितों की योग्यता, विद्वत्ता, पाण्डित्य आदि की नाप-जोख हुई। व्यङ्ग्य-विभ्राट्, कटुवाद, सदाचार-संहार ही नहीं, खुल्लम-खुल्ला गाली-गलौज तक की भी नौबत आगई। अमुक महाशय सभापति के लायक़ और अमुक नालायक़ हैं; अमुक व्यक्ति वर्षीयान् और अमुक कनीयान् हैं; अमुक

नामी लेखक और अमुक गुमनाम हैं—इस तरह की दलीलों का तूफ़ान सा आगया । गोवर्धनाचार्य्य की उक्ति है कि बेचारी स्तुतिरूपिणी कन्या अब तक क्वारी ही बैठी है । कारण यह कि जिन्हें स्तुति की चाह है उन्हें वह पसन्द नहीं करती और जिन्हें चाह नहीं है वे ख़ुद ही उसे पसन्द नहीं करते । यही बात कुछ कुछ इस सम्मेलन-सभापतित्व की पदवी-प्राप्ति के विषय में चरितार्थ हुई देख पड़ती है । जिन्हें अधिकांश लोग सभापति बनाना चाहते हैं वे किसी न किसी कारण से नहीं बनते । जिनको कुछ ही लोग इस पद पर बिठाना चाहते हैं वे इस पद के योग्य नहीं समझे जाते । देखना यह चाहिए कि किसे सभापति बनाने से सम्मेलन का उद्देश अधिक सिद्ध होने की आशा है और कौन अगले सम्मेलन तक इस संस्था का काम अच्छी तरह जी लगा कर कर सकेगा । परन्तु मुख्य बात कहीं की कहीं रह जाती है । अस्तु । राय बहादुर पण्डित विष्णुदत्त जी शुक्ल, बी॰ ए॰, इस पद के लिए इस बार चुने गये । ज़िला जबलपुर में एक जगह सिहोरा है । आप वहीं के ज़मींदार हैं । आप बड़े योग्य और हिन्दी के बड़े शुभचिन्तक हैं । कितने ही अन्य गुणों से भी आप अलङ्कृत हैं । अतएव यह चुनाव बहुत अच्छा हुआ । अपने अभिभाषण से शुक्ल जी ने अपनी योग्यता का यथेष्ट परिचय दिया । उससे अच्छी तरह प्रकट होगया कि आप अपनी मातृभाषा के बड़े भक्त हैं ; हृदय से उसकी उन्नति चाहते हैं । भाव, भाषा, तर्क, युक्ति-प्रकर्ष आदि सभी दृष्टियों से आपका अभिभाषण प्रशंसनीय हुआ । उसमें अन्य साधारण बातों के सिवा आपने ऐसी भी कुछ बातें कहीं जिनमें बहुत कुछ विशेषता है । आप हिन्दी-साहित्य की त्रुटियों का ही वर्णन करके चुप नहीं होगये ; उन्हें कैसे दूर करना चाहिए और साहित्य की वृद्धि तथा भाषा के प्रचार की परिधि बढ़ाने के लिए क्या उपाय करने चाहिए, यह भी बताया । इस दफ़े सभापति के अभिभाषण में जैसे विशेषता थी वैसे ही निश्चित हुए प्रस्तावों में भी थी । उनके उल्लेख की तादृश आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे समाचार-पत्रों में छप चुके हैं । सुनते हैं, सम्मेलन की सखी प्रदर्शिनी भी अच्छी हुई । किसी किसी का ख़याल है कि सम्मेलन करने से, अर्थ और समय के व्यय को देखते, लाभ उतना नहीं होता । न होता होगा, पर ऐसी संस्थाओं के अधिवेशनों के प्रभाव से जो चर्चा और जो जागृति होती है उसे कम न समझना चाहिए । उसका बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है । उस प्रभाव की दिन पर दिन वृद्धि हो रही है । हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य के वर्तमान प्रचाराधिक्य के कारणों में से उसकी सतत चर्चा भी एक कारण है । इस प्रकार की चर्चा के द्वारा जैसे ही जैसे हिन्दी भाषा और हिन्दी-साहित्य की उपयोगिता लोगों की समझ में आती जायगी वैसे ही वैसे उसकी व्याप्ति और उन्नति का क्षेत्र भी विस्तृत होता जायगा ।

पुस्तक-परिचय ।

१—**प्रभाकरपञ्चाङ्गम्**—ज्योतिषी कहते हैं, आजकल के पञ्चाङ्ग ठीक नहीं । ग्रहों के उदयास्त-समय में भी भूलें रहती हैं । जिन सारिणियों और ग्रन्थों के अनुसार पञ्चाङ्ग-निर्म्माण होता है वे पुराने हो गये हैं । तब से ग्रहों की गति में अन्तर आगया है । इसी से गणित ठीक ठीक नहीं उतरता । इन दोषों को दूर करने के लिए सभायें तक करके ज्योतिषी लोग बहुत कुछ वाद-विवाद और विचार कर चुके हैं । "प्रभाकर-मण्डल" नाम की एक संस्था या कम्पनी बम्बई में, शायद इसी दोष के दूरीकरण के निमित्त, खुली है । उसके दफ़्तर का पता है—लालबाग, पो॰ नं॰ १२ । इसी मण्डल ने यह प्रभाकर-पञ्चाङ्ग प्रकाशित किया है । इसका सम्पादन एलिचपुर के पण्डित दीनानाथ शास्त्री नाम के किसी गणक ने किया है । सम्पादक के निवेदन से सूचित होता है कि कई विद्वानों ने आपको इस काम में सहायता दी है । उनमें श्रीयुत तिलक और प्रोफ़ेसर विश्वनाथ बलवन्त नायक भी हैं । इन दोनों महाशयों ने इस पञ्चाङ्ग की उपयोगिता और शुद्धता के विषय में सारटिफ़िकेट दिये हैं । इस पञ्चाङ्ग में ग्रहों की दैनिक स्थिति दी गई है । "उज्जयिनी के रेखांश लेकर निरक्षदेश की तिथि, नक्षत्र, योग इत्यादि तथा मध्यम सूर्योदय की वेला के दैनिक ग्रह भी दिये हुए हैं" । कलकत्ता, बम्बई, मदरास, इलाहाबाद, कानपुर इत्यादि प्रसिद्ध प्रसिद्ध बारह तेरह शहरों के रेखान्तर, उदयान्तर और चर भी एकत्र करके कोष्ठकों में,

प्रति दिन के हिसाब से, दिये हैं। इसके सिवा और भी विशेषतायें इसमें हैं। इस तरह का यह नया पञ्चाङ्ग कितना उपयोगी है, इसका अनुमान ज्योतिषी ही कर सकेंगे। हम तो केवल इतना ही कह सकते हैं कि इसमें नवीनता अवश्य है। मूल्य इसका १) है। छपा पुस्तकाकार है।

⁂

2—A Manual of Higher Hindi Grammar and Composition.—इस मध्यमाकार पुस्तक की पृष्ठ-संख्या २०० है। पतले चिकने काग़ज़ पर, छोटे टाइप में, छपी है। दाम १।) है। इसे बाबू शिवनारायणलाल (लाला ?) ने लिखा है। आप कलकत्ते के एक कालेज में अध्यापक हैं; हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य पढ़ाते हैं। आपका पता है—४, कार्नवालिस स्कोयर, कलकत्ता। आप ही से यह पुस्तक मिलती है। पुस्तक अँगरेज़ी भाषा में है। उसी भाषा के आसरे हिन्दी-व्याकरण के नियमों और सिद्धान्तों के वर्णन की चेष्टा की गई है। आरम्भ में हिन्दी का कुछ इतिहास भी लिख दिया गया है। कालेजों में—और स्कूलों के ऊँचे दरजों में भी—जो छात्र हिन्दी-भाषा का भी अध्ययन करते हैं विशेष करके उन्हीं के लिए यह व्याकरण लिखा गया है।

जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं वे लोग भी इस व्याकरण से लाभ उठा सकते हैं। हमने इसे यत्र तत्र पढ़ कर देखा। हमारे विचार में इस पुस्तक के लेखक महाशय को हिन्दी-व्याकरण का अच्छा ज्ञान है और उन्होंने इस पुस्तक में उस ज्ञान का सदुपयोग किया है। उनके बताये हुए नियम यदि कहीं कहीं सदोष हों या यदि उनकी सम्मति किसी विषय में औरों से न मिले तो यह कोई बहुत बड़ा दोष नहीं। सब बातों का विचार करके हम तो यही कहेंगे कि आपका यह व्याकरण इस तरह के और व्याकरणों से कई अंशों में अच्छा है। इस पुस्तक का यह पहला ही भाग है। और भाग शायद फिर कभी निकलें। यह कोरा व्याकरण ही नहीं; इसमें रचना-विचार भी है।

⁂

३—ज्योतिषविज्ञानम्—रियासत जुब्बल, ज़िला शिमला, से पण्डित तारादत्त जी ज्योतिषी ने इस नाम की एक छोटी सी, बहुत दिन की छपी हुई, पुस्तिका भेजी है। इसके दाम =) और पृष्ठ-संख्या २० है। आपने ज्योतिष-विज्ञान नामक कोई पुस्तक लिखी है। उसी की यह बानगी है। इसके आरम्भ में इस नये विज्ञान के ४३ सूत्र, संस्कृत में, हैं। उसके आगे हिन्दी में, थोड़े में, आपने यह दिखाया है कि आकाशचारी ग्रहों का प्रभाव पृथ्वी पर पड़ता है और पृथ्वी का ग्रहों पर। मनुष्य भी पृथ्वी के अंश हैं। इस कारण यह प्रभाव उन पर भी पड़ता है। और चूँकि फलित ज्योतिष में इसी प्रभाव का वर्णन है, अतएव वह निराधार नहीं। हमारी प्रार्थना है कि जो लोग फलित-ज्योतिष पर विश्वास करते हैं उनको समझाने बुझाने की ज़रूरत नहीं। जो नहीं विश्वास करते—जो अपनी बुद्धि से भी काम लेना चाहते हैं—उनमें विश्वास उत्पन्न कर देना ज़रा मुश्किल काम है। तथापि, ऐसे लोगों को भी, यह बानगी देख कर, ज्योतिषी जी के कथनानुसार "गौसियस" पदार्थों से भरे हुए अपने दिमाग़ को एक बार फिर टटोलना चाहिए।

⁂

४—भारत-माता—इस छोटी सी ४० पृष्ठों की पुस्तक की रचना विहारीपुर, बरेली, के पण्डित राधेश्याम कथावाचक ने की है। मूल्य ४ आने है। रचयिता से मिलती है। इसमें "स्त्री-शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाले, नाटक के ढंग पर, देश की दशा के तीन दृश्य"—दिखाये गये हैं। ये दृश्य देखने लायक़ हैं। पुस्तक छोटी, पर अच्छी है।

⁂

५—कुललक्ष्मी—आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या ११ + ११६; प्रकाशक, श्रीयुत रामनरेश त्रिपाठी, साहित्य-भवन, प्रयाग से १।) में प्राप्य। मूल बँगला-पुस्तक के लेखक बाबू सुरेन्द्रनाथ राय हैं। उसी बँगला-पुस्तक का यह हिन्दी-भाषान्तर श्रीयुत पुरुषोत्तमदास लोहिया ने किया है। पुस्तक का विषय स्त्रियों को नैतिक सदाचार की शिक्षा देना है। इसलिए भिन्न भिन्न विषयों पर, अलग अलग, छोटे छोटे निबन्ध लिख कर उद्देश-पूर्ति की गई है। पुस्तक स्त्रियों के काम की है। सुन्दर जिल्द बँधी हुई है। काग़ज़ और छपाई अच्छी है। भीतर तीन चित्र भी हैं, जिनमें से एक रङ्गीन है।

क्या ही अच्छा होता यदि हिन्दी के सुलेखक ऐसी पुस्तकें स्वयं ही लिखते। मामूली पुस्तकों के लिए भी अन्य भाषाओं का मुँह ताकना खेद की बात है।

⁂

६—विचित्र परिवर्तन—आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या ८ + ३०१; प्रकाशक, नागरी-साहित्य-भूषण-भण्डार, कासगंज से दो रुपये में प्राप्य। इसके लेखक "सेवक" नामधारी कोई महाशय हैं, जिन्होंने इसे ज़बर्दस्ती उपन्यासों की लड़ी में पिरो कर "राष्ट्रीय उपन्यास" बतलाया है। लेखक के कथनानुसार यह पुस्तक "प्रताप" में प्रकाशित एक कहानी का विकसित रूप है। हमें यह कहते हुए खेद होता है कि इस विकास ने उस कहानी की सरलता का भी रस चूस लिया। क्योंकि इस पुस्तक में सन्निविष्ट भारतदास महोदय की लेख-माला, जिसने इसके औपन्यासिक रूप को विकृत कर दिया है, वास्तव में अच्छी वस्तु है और पाठ करने योग्य है। ठीक ठीक यह उपन्यास तो है नहीं, पर देश-विषयक अनेक विचारणीय बातों का न्यास इसमें अवश्य है। भाषा बहुत सदोष है।

⁂

७—हिन्दी-पुस्तक-एजेंसी की पुस्तकें—(१) प्रेम-पूर्णिमा—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या २५८, लेखक श्रीयुत प्रेमचन्द, मूल्य दो रुपये। यह प्रेमचन्दजी की लिखी उन १५ आख्यायिकाओं का सङ्ग्रह है जो, समय समय पर, हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। कुछ सरस्वती में भी निकल चुकी हैं। पुस्तक की जिल्द, काग़ज़ और छपाई बड़ी सुन्दर है। भाषा सरल और बामुहावरा है। बँगला में प्रभात बाबू की आख्यायिकाओं से जैसे एक न एक शिक्षा मिलती है, उसी प्रकार इस पुस्तक की आख्यायिकाओं से भी कुछ न कुछ उपदेश मिलते हैं। प्रभात बाबू की सङ्ग्रह-पुस्तकों के आरम्भ में बतला दिया जाता है कि कौन आख्यायिका किस मासिक पत्र में प्रकाशित हो चुकी है; परन्तु इस सङ्ग्रह में इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं कि ये कभी कहीं प्रकाशित भी हुई थीं या नहीं। पुस्तक में ३ सादे चित्र भी हैं। मनोरञ्जक, सरस और उपदेशजनक रचना है। अतएव पढ़ने और सङ्ग्रह करने लायक है।

(२) लोक-रहस्य—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १०८, मूल्य १० आने। बाबू बङ्किमचन्द्र चैटर्जी की बँगला-पुस्तक का यह अनुवाद है। इसमें छोटे छोटे पन्द्रह निबन्ध हैं। ये हास्य-रस की पुट देकर बड़ी मार्मिकता के साथ लिखे गये हैं। यदि हम भूलते नहीं हैं तो लोक-रहस्य के एक अनुवाद को, कुछ वर्ष पूर्व, किसी और प्रकाशक ने छपा कर बहुत सस्ते दामों में बेचा था। शायद यह बिलकुल नया अनुवाद है। अनुवादक का नाम पुस्तक पर नहीं। पुस्तक के अच्छे होने में सन्देह नहीं। काग़ज़ और छपाई दोनों उत्तम हैं।

(३) आरोग्य-साधन—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १६२ + १०, मूल्य ।-), यह श्रीयुत गाँधीजी की एक गुजराती-पुस्तक का अनुवाद है। अनुवादक हैं पण्डित वलदेवप्रसादजी शुक्ल। भाषा सरल है। गाँधीजी की इस पुस्तक के एक अनुवाद की चर्चा सरस्वती में पहले हो चुकी है। उसका नाम है – आरोग्य-दिग्दर्शन। उसके अनुवादक हैं पण्डित गिरिधर शर्म्मा और प्रकाशक है हिन्दी-गौरव-ग्रन्थ-कार्य्यालय, गिरिगाँव, बम्बई। ऐसी अच्छी पुस्तक का जितना ही अधिक प्रचार हो उतना ही अच्छा। इस नई पुस्तक के प्रकाशक ने एक काम प्रशंसा-योग्य किया है। वह यह कि आपने अपने दो मित्रों को इसकी १८०० प्रतियाँ, लागत-मात्र मूल्य लेकर, बाँटने के लिए दे दी हैं। आवश्यकता पड़ने पर, इस काम के लिए, आप दूसरा संस्करण निकाल देने के लिए भी तैयार हैं। एतदर्थ आपको साधुवाद। इस पुस्तक की भी छपाई और काग़ज़ दोनों प्रशंसनीय हैं।

(४) खाद—आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या १७५ + ६; मूल्य १ रुपया। सुन्दर जिल्द चढ़ी हुई यह पुस्तक कृषकों के बड़े काम की है। पर इसका मूल्य इतना न होना चाहिए था। श्रीयुत मुख्त्यारसिंह वकील ने इसे बड़े परिश्रम से लिखा है। यद्यपि साधारण कृषक इस पुस्तक से विशेष लाभ न उठा सकेंगे; तथापि इससे इसका महत्त्व बहुत नहीं घट सकता। लेखक ने खाद के वैज्ञानिक मूल तत्त्व, भिन्न भिन्न प्रकार की खादों में उनका पाया जाना और खादों के प्रयोग का खेती पर प्रभाव आदि ज्ञातव्य विषयों का वर्णन सरल भाषा में योग्यतापूर्वक किया है।

इसके सिवा, नई चाल की खादों का भी वर्णन किया है। किस प्रकार की वस्तु की खेती में कौन सी खाद, कितने परिमाण में, और पौधे या खेत की किस अवस्था में डालने से विशेष लाभ होगा, ये बातें भी लेखक ने अच्छी तरह समझाई हैं। यदि लेखक महोदय देश की खेती की दशा का निरीक्षण करके अपने वर्णित विषय के साथ उन बातों की भी सङ्गति लगाते जाते जो उनकी समझ में गवाँर किसानों की भूलों का फल हैं तो पुस्तक का महत्त्व और भी बढ़ जाता। पुस्तकारम्भ में दो तरह के खेतों का एक चित्र भी है।

ये चारों पुस्तकें हिन्दी-पुस्तक-एजंसी, १२६, हरिसन रोड, कलकत्ते से मिल सकती हैं। यह एजंसी उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित करने के सिवा अच्छी छपाई के लिए भी दूसरे प्रकाशकों की मार्ग-दर्शक बन रही है। यह और भी स्तुत्य है।

⁂

८—अपूर्व रामायण (बाल-काण्ड)—आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या ९२; प्रकाशक, श्रीयुत बाबू सीताराम गुप्त, ज़मींदार, कोपरगञ्ज, कानपुर, से छः आने में प्राप्य।

यह रामायण खड़ी बोली में गोस्वामीजी के रामचरितमानस के आधार पर लिखा जा रहा है। इसके रचयिता पण्डित मन्नीलाल मिश्र हैं। इस बाल-काण्ड में ३२० हरिगीतिका छन्द हैं। अतएव इसकी कथा संक्षिप्त है। लेखक महाशय की रामभक्ति प्रशंसनीय है। रचना कहीं कहीं क्लिष्ट है। यत्र तत्र कुछ दोष भी हैं। पर इससे क्या—

"भणित भदेसि वस्तु भलि वरणी।
रामकथा जगमङ्गलकरणी"॥

फिर इसकी "वस्तु" तो वैसी है भी नहीं। अतएव आशा है, राम-कथा के प्रेमी इसका ज़रूर आदर करेंगे।

⁂

९—हलवाई कान्यकुब्ज वैश्य परिचय—आकार मँझोले से कुछ बड़ा; लेखक, बाबू अम्बिकाप्रसाद गुप्त; प्रकाशक, हलवाई-वैश्य-संरक्षक-कार्य्यालय, नई सड़क, बनारस सिटी से दस आने में प्राप्य।

इस पुस्तक में एतद्देशीय हलवाइयों को वैश्य वर्ण के अन्तर्गत सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। किन्तु लेखक महाशय के दिये हुए प्रमाणों के पर्य्यवेक्षण से भी सन्देह की मात्रा कुछ न कुछ बनी ही रहती है। आलोच्य पुस्तक में वैश्यों की ऊर्जितावस्था का वर्णन जितनी खोज के साथ किया गया है उतनी खोज के साथ हलवाई वैश्यों की उत्पत्ति आदि का नहीं किया गया। सामान्य दृष्टि से पुस्तक हलवाई वैश्यों के काम की है। किसी को यदि इस बात को सिद्ध करने की चेष्टा करनी पड़ती है कि हम अमुक वर्ण के हैं तो उसकी यह चेष्टा ही इस बात का प्रमाण है कि लोगों को उस विषय में सन्देह है। पर ऐसे सन्देह का विशेष सम्पर्क उसी वर्ण के लोगों से रहता है, औरों से नहीं। हलवाइयों से यदि कोई सम्बन्ध करेगा तो हलवाई ही करेंगे। इस दशा में और वर्णों को झगड़े में पड़ने से क्या लाभ? हलवाई यदि वैश्य हैं तो उनकी वैश्यता और उनकी वैश्य-वृत्ति उनको मुबारक रहे। उनकी जातिवाले उन्हें वैसा समझें। हो गया। इतनी कृपा अवश्य करें कि और वर्णवालों को वे इसी तरह मिठाई खिलाते रहें। चाहे वे वैश्य-वर्ण में अपने को मानें, चाहे उससे भी किसी और ऊँचे वर्ण में।

⁂

१०—ज्ञानप्रकाश—आकार मँझोले से कुछ बड़ा; पृष्ठ-संख्या ११२; लेखक, बाबू श्रीलाल अग्रवाल, बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील, अजमेर। बाबू कन्हैयालाल जैन अग्रवाल, डिग्गी बाज़ार, अजमेर से आठ आने में प्राप्य।

यह पुस्तक नाटक के ढँग पर लिखी गई है। लेखक ने मारवाड़ी वैश्यों की सामाजिक कुरीतियों का चित्र खींचा है और लगे हाथ ब्राह्मणों के ऊपर भी छींटे उड़ाये हैं। कुछ लोगों का स्वभाव सा हो गया है कि अपना दुखड़ा रोते समय अगल-बगल बैठे हुए लोगों को भी कोसने लगते हैं। ब्राह्मणों को फटकारें बताये बिना भी पुस्तक लिखी जा सकती थी और उसकी उपयोगिता भी न घट सकती थी। आशा है, जिनकी कुरीतियाँ इसमें दिखाई गई हैं वे सँभल जायँगे और कुरीतियाँ सब नहीं तो, कम से कम बड़ी बड़ी, छोड़ देंगे। पुस्तक की भाषा सीधी-सादी, बहुत मामूली है।

११—रोगपरिचय—आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या ३ + ८४; लेखक, श्रीयुत हरिनारायण शर्म्मा, काव्यतीर्थ; प्रकाशक, पण्डित रामनारायण वैद्य। आयुर्वेद-ग्रन्थ-कल्पलता-कार्य्यालय, भदैनी, बनारस सिटी से आठ आने में प्राप्य। उक्त कल्पलता का यह पहला पल्लव है। इसे देख कर, उक्त कार्य्यालय के बड़े भारी आयोजन की सफलता में सन्देह होता है। क्योंकि वैद्यक के महत्त्व-पूर्ण सटीक ग्रन्थ-रत्नों को यदि इसी तरह पल्लवों का रूप प्रदान किया गया तो उनके पूर्ण होने में कितना समय लगेगा, यह ज़रा सोचने की बात है। आलोच्य पुस्तक आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ माधव-निदान की मधुकोष नामक टीका के "पञ्च-लक्षण" मात्र का हिन्दी-भाषान्तर है। अनुवाद की भाषा स्पष्ट है और समझ में आजाती है। पुस्तक संस्कृत न जाननेवाले वैद्यों के काम की है। हिन्दी में ऐसी पुस्तकों के निकलने की बड़ी आवश्यकता है। कल्पलता-कार्य्यालय को चाहिए कि इस व्यवसाय को उन्नत-रूप में सम्पन्न करने की विशेष चेष्टा करे।

⁂

१२—माता—आकार छोटा; पृष्ठ-संख्या ४ + १७२; लेखक, श्रीयुत ज्ञानचन्द्र विद्यार्थी; प्रकाशक श्रीयुत रामप्रसाद एण्ड ब्रदर्स, बुकसेलर्स, चौक, आगरा से ॥/) में प्राप्य।

यह छोटा सा उपन्यास है। लेखक ने अपने कल्पित पात्रों के चरित्र-चित्रण में सावधानी से काम लिया है। हाँ, जिस ढँग की माता की कल्पना लेखक ने की है वैसी माता देश में शायद ही कोई हो। तथापि आदर्श दिखाने में हर्ज नहीं। पुस्तक पढ़ने योग्य है। भाव सुन्दर और भाषा सरल है। यत्र-तत्र जो भाषा-दोष रह गये हैं वे पुस्तक की रोचकता में बाधा नहीं देते। लेखक ने विद्यार्थि-दशा में, बहुत थोड़ी उम्र में, इसे लिखा है। अतएव आपका उत्साह और हिन्दी-प्रेम अवश्य ही प्रशंसनीय है।

⁂

१३—शान्तिदायी विचार—आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या ७८; रचयिता और प्रकाशक पण्डित शिवकुमार शास्त्री, ज्ञानशक्ति-कार्य्यालय, गोरखपुर से आठ आने में प्राप्य। इस पुस्तक के विचारों की लेख-रूपिणी धारा पहले "ज्ञान-शक्ति" में, बहुत दिनों तक, बहती रही है। वही अब पुस्तकाकार प्रकाशित हुई है। पुस्तक वेदान्त-सम्बन्धिनी है। अतएव पहुँचे हुए पण्डित ही इसके गुण-दोषों की समुचित परीक्षा करने के अधिकारी हो सकते हैं। क्योंकि ईश्वर, योग, समाधि, संसार, ब्रह्म, वैराग्य और शान्ति आदि का रहस्य शास्त्री जी ही के सदृश सच्चे विरागी, योगी और वेदान्ती जान सकते हैं।

⁂

१४—सत्यकलि-संवाद—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ६४ + ६, मूल्य आठ आने। नेपाली-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, वीरगंज बाज़ार, पो॰ रक्सौल, ज़िला चम्पारन से प्राप्य। यह कविता-पुस्तक है। पौने चार सौ पद्य हैं। इसकी रचना नेपाली भाषा में लेखनाथ शर्मा पौड्याल्य ने की है। इसमें हिन्दुओं के पतन, मुसलमानों के आक्रमण, मरहटों के उत्थान तथा और भी कितने ही विषयों पर, सत्य और कलि के पारस्परिक संवाद-रूप में, लेखक ने अपने विचार प्रकट किये हैं। इसकी गुण-दोष-विवेचनात्मक ठीक आलोचना तो वही कर सकता है जो नेपाली भाषा जानता हो।

⁂

१५—बदरीकेदार-पथ-प्रदर्शिका—इसके लेखक गढ़वाल के डिप्टी कमिश्नर, जे॰ यम क्ले साहब, आई॰ सी॰ एस॰ हैं। आपसे ही मुफ़्त मिलती है। इसकी आलोचना सरस्वती में हो चुकी है। बदरी-केदार की यात्रा करनेवालों के यह बड़े काम की है। इसमें यात्रा-विषयक अनेक ज्ञातव्य बातों का वर्णन है।

⁂

१६—रालट एक्ट—आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या १६ + ३८४; लेखक पण्डित मातासेवक पाठक; प्रकाशक, भारत-पुस्तक-भण्डार, २६ बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ते से २) में प्राप्य। इसमें उस रौलट एक्ट की आदि से अन्त तक की काररवाई है जिसके कारण देश भर में उथल-पुथल मच गई थी। इस क़ानून के विषय में बड़े लाट की कौंसिल में जो कुछ काररवाई हुई थी उस सबका अनुवाद है। भारत और विलायत में जिन लोगों ने इस पर अपना मत-प्रकाशन किया था उसका भी उल्लेख है। सत्याग्रह के कार्य्य-कलाप तथा पञ्जाब के विद्रोह का भी वर्णन है। पास होने के पहले इसके मसविदे तथा पास होने पर इस ऐक्ट के अन्तिम रूप का भी अनुवाद है। विश्व-

मित्र नामक दैनिक पत्र में इसके विषय में जो कुछ लिखा गया था वह भी है। सारांश यह कि इस पुस्तक को पढ़ लेने से इस क़ानून के रूप और इसके परिणाम का यथेष्ट ज्ञान पाठक को हो सकता है। इसके एक संस्करण का मूल्य २॥) है। वह शायद नक़द दाम देनेवालों के लिए है। समालोचकों के लिए नहीं!

⁂

१७—विक्रयकला अथवा माल बेचने की रीति—लेखक श्रीयुत गङ्गाप्रसाद भोतीका, एम० ए०, बी० एल०, काव्यतीर्थ; हिन्दी-पुस्तक-एजेंसी, १२६ हरिसन रोड, कलकत्ते से प्राप्य। पुस्तक जिल्ददार है। बहुत अच्छी छपी है। रूप-रङ्ग मोहक है। जहाँ तक हम जानते हैं, हिन्दी में अपने विषय की पहली है। इसमें क्या है, यह इसके नाम ही से प्रकट है। सात अध्यायों में लेखक ने अपने विचार प्रकट किये हैं। पुस्तक व्यवसायिकों के काम की है। पर बहुत छोटी है। मँझोले आकार के ४४-४५ पृष्ठों की इस पुस्तिका का मूल्य आठ आने रक्खा गया है।

⁂

नीचे लिखी हुई पुस्तकें तथा अन्य चीज़ें भी मिल गईं। भेजनेवाले महाशयों को धन्यवाद।—

१—सुदामा नाटक—लेखक, श्रीयुत धीरजलाल। प्रकाशक—राधाचरण शर्म्मा भारद्वाज विद्याविनोद-पुस्तकालय, जयगंज, अलीगढ़, से ।=) में प्राप्य।

(२) श्रीहीरविजय सूरि का जीवनवृत्तान्त (पद्य में)—प्रेषक—श्रीआत्मानन्द-जैन-ट्रैक्ट-सोसायटी, अम्बाला शहर।

(३) विद्यार्थी-हस्त-पुस्तिका—प्रकाशक, बाबू देवेन्द्रप्रसाद जैन, दौलतगंज, छपरा।

(४) मिस्टर वीरचन्द राघवजी गान्धी का जीवनचरित्र—प्रकाशक, श्रीआत्मानन्दजैनसभा, अम्बाला।

(५) भारत-सङ्गीत—प्रकाशक, श्रीयुत जगदम्बाप्रसादसिंह।

(६) श्रीसत्तर्कसुधातरङ्गिणी (दिगम्बर) जैन पाठशाला, सागर, की ९-१० म वर्ष की वार्षिक रिपोर्ट।

(७) प्रभुगुञ्जमालिचरितम्—प्रेषक, पण्डित लोकनाथ-संस्कृत-पुस्तकालय, बाज़ार लूणमण्डी, मुरकी महल्ला, अमृतसर।

(८) Gardener's Pain Balm—sent by the South India Agency, Khetwadi, Bombay.

(९) श्रीतुलसी-महिमा—लेखक, पण्डित नन्दकिशोर शुक्ल, टेढ़ा, उन्नाव।

चित्र-परिचय।

गुल-बकावली का क़िस्सा बहुत प्रसिद्ध है। यह राजकुमारी अमरकण्टक के समीपवर्ती राजा मैकलजोग की दुलारी बेटी थी। रूप इसका अनोखा था। इसकी दो सखियाँ भी थीं। एक नाई की बेटी थी। नाम उसका झीला था। दूसरी थी मन्त्री की लड़की—हिमाला। रूप इनका भी ख़ासा था। बकावली का नाम पहले कुछ और था। एक दिन तीनों सखियों को एक साथ आते देख रानी ने कहा कि यह हंसों का झुण्ड है या बकावली—बगुलों की पाँत। बस, उसी दिन से राजकुमारी का नाम बकावली पड़ गया।

इसके रूप-लावण्य की धूम थी। इसको प्राप्त करने के लिए बड़ों बड़ों का चित्त चञ्चल था। शोणभद्र नामक एक राजा, योगी बन कर, राजा के महलों के पास अलख जगाने लगा। एक दिन अवसर पाकर उसने राजकुमारी से एक ऐसे पौधे को बाग़ में लगाने की अनुमति माँगी जिसके फूल की सुगन्धि तो अनोखी हो ही, पर उसमें गुण भी बड़ा विचित्र हो। अनुमति मिलते ही योगी ने शीघ्र ही पौधा लाकर बाग़ में लगा दिया। उस पौधे के पुष्प की सुगन्धि से सारा बाग़ आमोदित हो गया। चित्र में राजकुमारी गुल-बकावली उसी विचित्र पुष्प को सूँघ रही है और प्रसन्न हो रही है।

ऐसा विचित्र पौधा बाग़ में लगा देने के उपलक्ष में जब योगी से कुछ माँगने को कहा गया तब उसने किसी और वस्तु को न माँग कर राजकुमारी को ही माँगा। राजकुमारी ने इसमें कोई आपत्ति न की। किन्तु जब वह विवाह के योग्य हुई और उसको ब्याहने के लिए जब बाहर से बारात आई तब, झीला से यह ख़बर पाकर, योगी शोणभद्र क्रुद्ध हो गया। उसके शाप से बकावली को नदी हो जाना पड़ा। योगी शोणभद्र भी नद के रूप में बह निकला। यही दशा बकावली की सहेलियों की भी हुई। यह चित्र हमें बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा की कृपा से प्राप्त हुआ है। इसके लिए उन्हें धन्यवाद।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Ld., Allahabad.

SARASVATI—Reg. No. A248.

भाग २१, खण्ड १] मई, १९२० [संख्या ५, पूर्ण संख्या २४५

सरस्वती

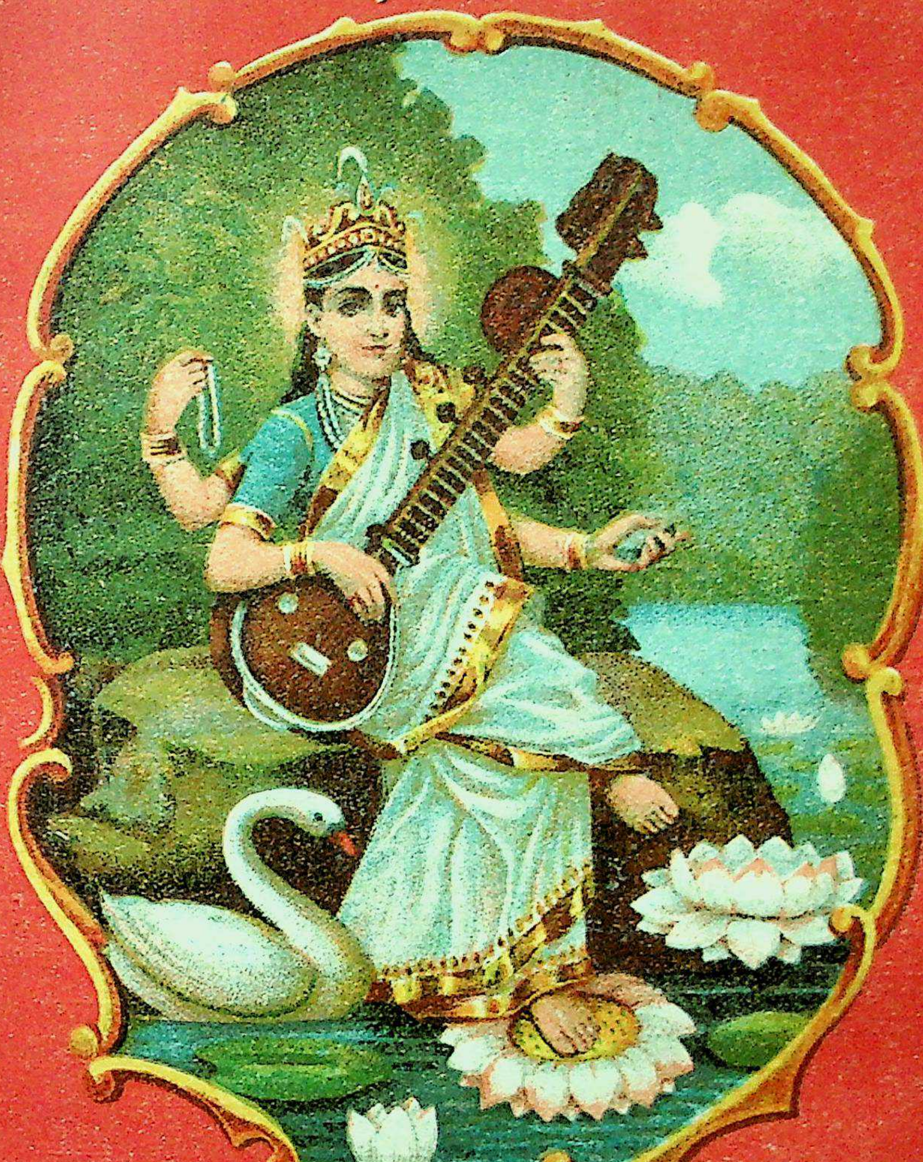

वार्षिक मूल्य ५)] सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ॥)

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित ।

लेख-सूची ।

पृष्ठ
(१) प्रतीक्षा (कविता)—[लेखक "सनेही" ... २३६
(२) योरप में कालिदास २३९
(३) नगर-निवासी निर्धन जनों का सुधार—[लेखक, सेंट निहालसिंह, लन्दन ... २४१
(४) हिन्दू-नाटक २४८
(५) वन-वैभव (४)—[लेखक, बाबू मैथिलीशरण गुप्त २५०
(६) गीता-दर्शन—[लेखक, बाबू गुलाबराय, एम० ए०, एल-एल० बी० ... ... २५३
(७) एक्सचेञ्ज (३)—[लेखक, लाला कन्नोमल, एम० ए० ... ... २५५
(८) पाप की चोरी (आख्यायिका)—[लेखक, "प्रवीण" २६०
(९) अन्त (कविता)—[लेखक, श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए० ... ... २६४
(१०) नास्तिक के तर्क का खण्डन—[लेखक, कोचक, कृषि-महाविद्यालय, कानपुर ... २६४
(११) अँगरेज़ी और देशी भाषायें—[लेखक, "अध्यापक" २६८
(१२) माली (कविता)—[लेखक, बाबू सियारामशरण गुप्त २७२
(१३) ख़्वाजा आतिश—[लेखक, पण्डित ज्वालादत्त शर्म्मा २७२
(१४) वियोग (कविता)—[लेखक, बाबू कुशहरीदयाल निगम २८१
(१५) अटलांटा नगर की सैर—[लेखक, एक यात्री २८१
(१६) विविध विषय २८४
(१७) पुस्तक-परिचय २९१
(१८) चित्र-परिचय २९४

चित्र-सूची ।

१—ध्रुव की परमेश-प्रार्थना (रङ्गीन) ।
२-५—नगर-निवासी निर्धन जनों के सुधार नामक लेख से सम्बन्ध रखनेवाले ४ चित्र ।
६—राय-बहादुर मुंशी नानकचन्द, सी० एस० आई०, सी० आई० ई० ।

नई पुस्तक ! नई पुस्तक !!

स्व० राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित

मेघदूत

सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०

महाकवि कालिदास का यह काव्य बहुत प्रसिद्ध है। हिन्दी में भी इसके एकाधिक अनुवाद हो गये हैं। सर्व-साधारण में उनका ख़ासा आदर है। हिन्दी में मेघदूत का अनुवाद सबसे प्रथम राजा लक्ष्मणसिंहजी ने किया था। सन् १८८४ में इसका दूसरा, और सन् १८९३ में तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था। किन्तु ऐसा अच्छा अनुवाद इधर अप्राप्य हो रहा था। इसलिए सुन्दर अक्षरों में, अच्छे काग़ज़ पर, हमने इसका नया संस्करण, हिन्दी-हितैषियों के अनुरोध से प्रकाशित किया है। मूल श्लोक के सामने ही उसका सरस पद्यानुवाद है। विषय को समझाने के लिए मूल संस्कृत के साथ, नीचे, टिप्पणियाँ हैं; और भाषा-छन्दों के नीचे, फुटनोट हैं। जिनमें पद्य का सरल भावार्थ है। मतलब यह कि इस पुस्तक में गद्यानुवाद भी है और पद्यानुवाद भी। दो रङ्गीन चित्र भी हैं। महाकवि कालिदास की कविता के साथ ही साथ राजा साहब के सरस गद्य-पद्य का भी आनन्द लीजिए। मूल्य सिर्फ़ ।।=) दस आने।

डाकघर

डाकघर कैसा है ?—इसके लिए इतना ही लिखना काफ़ी है कि यह डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना है। कहानी के बहाने एक विशेष विषय पर विचार हैं। पात्रों के साथ आप पुस्तक की सैर कीजिए। यदि ध्यान दीजिएगा तो उस विषय से भेट हो जायगी, कहानी का आनन्द है ही। मतलब यह कि पुस्तक सभी के काम की है। भाषा सरल है। विषय को समझाने के लिए आवश्यकतानुसार टिप्पणियाँ भी दे दी गई हैं। कहानी छोटी है किन्तु सरस अधिक है। मूल्य ।-) पाँच आने।

मिलने का पता—
मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड,
प्रयाग, कटरा।

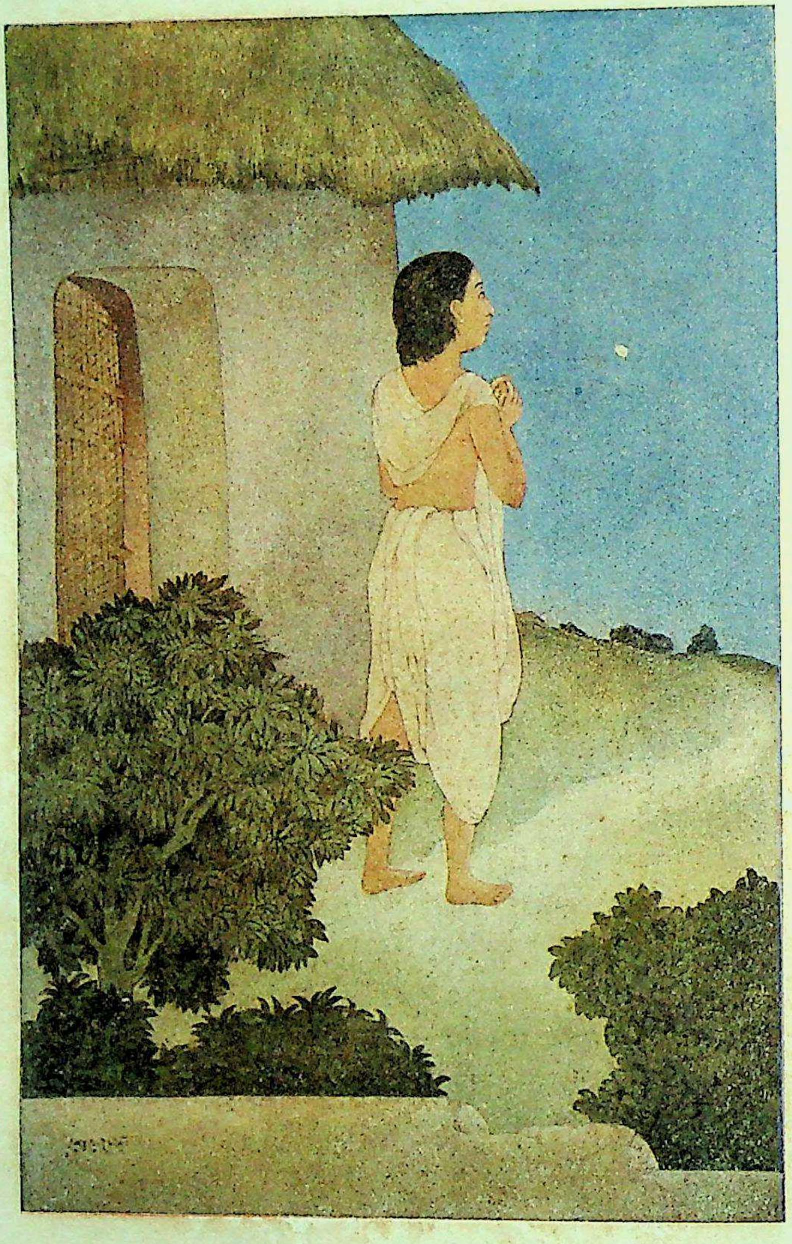

ध्रुव की परमेश-प्रार्थना।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

सरस्वती

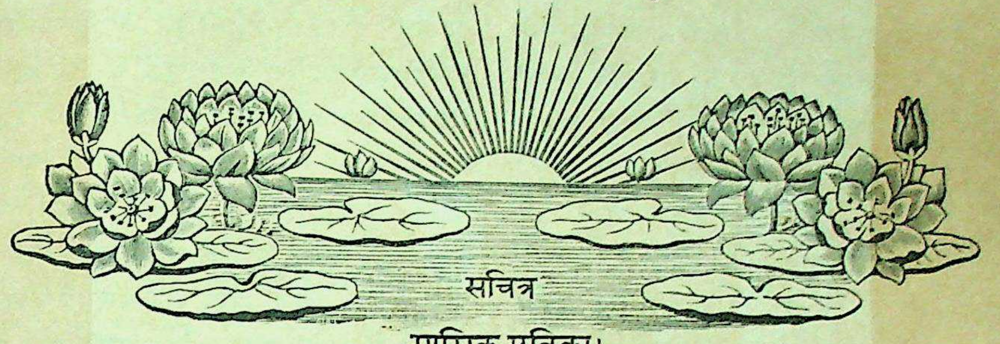

सचित्र
मासिक पत्रिका।

भाग २१, खण्ड १]　　मई १९२०—ज्येष्ठ १९७७　　[संख्या ५, पूर्ण संख्या २४५

प्रतीक्षा।

इधर कब होगी करुणा-कोर ?
अन्धकार है बिना तुम्हारे मुझको चारों ओर।
इधर कब होगी०
तुम घनश्याम प्राण-धन मेरे मैं मधुवन का मोर ;
तुम व्रजचन्द्र नयन मेरे हैं तुम पर बने चकोर।
इधर कब होगी०
पल पल बीत रहे हैं युग सम विरह-वेदना घोर ;
डूब रहा हूँ दुख-सागर में जिसका ओर न छोर।
इधर कब होगी०
डावाँडोल हृदय है मेरा उठती विषम हिलोर ;
कौन सुने क्रन्दन-ध्वनि मेरी है लहरों का शोर।
इधर कब होगी०
जीवन धन जन के मन-मनके चतुर चित्त के चोर ;
भोर हुआ जाता है प्यारे ! लगी तुम्हारी डोर।
इधर कब होगी०

सनेही

योरप में कालिदास।

कवि का जन्म मानव-जाति का कल्याण करने के लिए होता है। उसकी कृति पर किसी एक ही देश अथवा जाति का अधिकार नहीं रहता। वह समस्त विश्व के लिए है ; उसके काव्य पर सम्पूर्ण मानव-जाति का समान अधिकार रहता है। शेक्सपीयर की जन्म-भूमि होने का गर्व इँगलेंड को है ; पर आज सभी देशों में उसका यशो-गान होता है ; सभी उस की रचनाओं से शान्ति-लाभ करते हैं। जर्मनी ने तो यह बात अभिमानपूर्वक कही है कि शेक्सपीयर हमारा है। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ कवि ऐसे भी होते हैं जिनका सम्बन्ध केवल एक ही देश अथवा काल से रहता है। ऐसों की गणना विश्व-कवियों में नहीं होती। विश्व-कवि तो वे होते हैं जिनकी कविता से प्रभावान्वित होकर मनुष्य अपनी

अहन्ता, अपना वैरभाव और अपना व्यक्तित्व तक भूल जाता है। यदि पृथ्वी पर कभी "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सिद्धान्त प्रचलित होगा तो वह ऐसे ही कवियों के द्वारा होगा।

कालिदास विश्व-कवि हैं। उनकी जन्मभूमि होने का गौरव तो भारतवर्ष ही को है, पर अब उनकी कृति संसार की सम्पत्ति होगई है। सभी उसका उपभोग कर रहे हैं। जब तक संस्कृत-भाषा का प्रचार योरप में नहीं हुआ था तब तक कालिदास की कीर्ति-प्रभा भारतवर्ष में ही अवरुद्ध थी। पर अब उनकी ज्योति योरप में भी फैल गई है और बढ़ती जा रही है। कुछ ही समय बाद वह सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हो जायगी। ऐसा होना असम्भव नहीं। कालिदास के काव्य यथार्थ ही सार्वजनिक और सार्वकालिक हैं।

योरप में कालिदास के काव्यों का प्रचार सबसे पहले सर विलियम जोन्स ने किया। सर विलियम जोन्स भारतवर्ष में न्यायाधीश होकर आये थे। यहाँ आने पर उन्हें हिन्दू-धर्मशास्त्र समझने के लिए संस्कृत-भाषा का अध्ययन करना पड़ा। संस्कृत सीखने में उन्हें कितनी कठिनाई पड़ी, उसे यहाँ बताने की ज़रूरत नहीं। सरस्वती में यह हाल प्रकाशित भी हो चुका है। संस्कृत पढ़ते समय उन्हें अपने गुरु से यह जान कर बड़ा कौतूहल हुआ कि संस्कृत-भाषा में नाटक भी हैं और वे कभी रङ्गभूमि पर खेले भी जाते थे। तब उन्होंने अपनी कौतूहल-निवृत्ति के लिए अपने गुरु से कालिदास का अभिज्ञान-शाकुन्तल पढ़ा। वह उन्हें इतना पसन्द आया कि उन्होंने उसका अनुवाद अँगरेज़ी में कर डाला। यह अनुवाद कुछ अच्छा न हुआ था, तो भी उसे पढ़ कर जर्मन कवि गेटी मुग्ध होगया। शकुन्तला की प्रशंसा में उसने एक पद्य-रचना भी कर डाली। उसका मतलब यह था—"अगर कोई वसन्त के फूल और शरद ऋतु के फल पाने की अभिलाषा करे—अगर कोई मन को अपनी ओर खींचनेवाली, अर्थात् वशीकरण की, वस्तु देखना चाहे—अगर कोई स्वर्ग और पृथ्वी को एक जगह देखने की इच्छा करे, तो वह कालिदास के अभिज्ञान-शाकुन्तल को पढ़े"। गेटी जर्मनी का साहित्य-सम्राट् था। उसकी इस प्रशंसा ने योरप में कालिदास की कीर्ति फैलाने में बड़ा काम किया। शेज़ी (Chezy) ने अभिज्ञान-शाकुन्तल का अनुवाद फ़्रेञ्च में किया। आर० पीशल (R. Pischal) ने भी आलोचना-सहित शकुन्तला का एक अच्छा संस्करण, १८७७ में, निकाला। उसमें वही पाठ-प्रणाली रक्खी गई जो बङ्गाल में प्रचलित थी। देवनागरी पाठ-प्रणाली का अनुसरण करके शकुन्तला-नाटक के और भी कई संस्करण निकले। एक का प्रकाशन ओ० बाटलिंक (O. Bohtlink) ने किया। जर्मन भाषा में रुकर्ट ने, १८७६ में, उसका अनुवाद किया। उसी साल फ़ीटज़े का किया हुआ भी अनुवाद निकला।

कालिदास का अभिज्ञान-शाकुन्तल पढ़ कर योरप के विद्वानों का ध्यान संस्कृत-भाषा की ओर आकृष्ट हुआ। संस्कृत-भाषा का प्रचार धीरे धीरे बढ़ने लगा। इसके साथ ही साथ कालिदास के अन्य काव्यों और नाटकों के अनुवाद भी प्रकाशित होने लगे। कालिदास का विक्रमोर्वशी नामक जो दूसरा नाटक है उसका सम्पादन करके, १८७५ में, आर० पीशल ने उसे प्रकाशित किया। विल्सन और कावेल ने उसको अँगरेज़ी में अनुवादित किया। कावेल का अनुवाद १८५१ में निकला था। १८८० में फ़ीटज़े ने भी लिपज़िक से एक अनुवाद निकाला। मालविकाग्निमित्र का अनुवाद, अँगरेज़ी में, सी० यच० टानी (C. H. Tawney) ने, १८९१ में, किया। इसके पहले जर्मन भाषा में ए० वेबर द्वारा उसका एक अनुवाद, १८५६ में, निकल चुका था। शकुन्तला नाटक का एक अनुवाद मानियर विलियम्स ने भी

किया है। फ़्रीटज़े का मालविकाग्निमित्र, १८८१ में, निकला।

कालिदास के काव्यों में रघुवंश श्रेष्ठ है। हरप्रसाद शास्त्री ने लिखा है कि उसमें एक ऐसी विशेषता है जो अन्य किसी काव्य में नहीं पाई जाती। उसमें मुख्य पात्र बीच में ही लुप्त होते जाते हैं, पर कथा की शृङ्खला नहीं टूटती; वह वैसी ही बनी रहती है। रघुवंश का लैटिन भाषा में अनुवाद करके, १८३२ में, स्टेञ्जलर साहब ने प्रकाशित किया। उन्होंने, १८३८ में, कुमारसम्भव का भी अनुवाद लैटिन भाषा में किया। ग्रीफ़िथ साहब का किया हुआ भी कुमारसम्भव का एक अनुवाद अँगरेज़ी में है। वह १८७९ में प्रकाशित हुआ था।

कालिदास के काव्यों में मेघदूत की भी बड़ी प्रशंसा है। गेटी तो उससे मुग्ध होगया था। स्टेञ्जलर साहब ने, १८७४ में, उसका सम्पादन कर के उसे प्रकाशित किया। उनके इस संस्करण में शब्दों की एक सूची भी दी गई। विलसन ने उसका अनुवाद अँगरेज़ी-पद्यों में किया। वह १८६७ में प्रकाशित हुआ। टी० क्लार्क का मेघदूत, लन्दन में, १८८२ में, प्रकाशित हुआ। मैक्समूलर द्वारा जर्मन भाषा में किया गया, मेघदूत का अनुवाद, १८४७ में, निकला। १८५९ में स्कूट्ज़ का (Schutz) और १८७९ में फ़्रीटज़े (Fritze) का अनुवाद निकला।

ऋतुसंहार कालिदास का सबसे छोटा काव्य है। वह कदाचित् उनकी प्रथम रचना है। पर उसमें भी कवि की प्रतिभा झलक रही है। मुग्धानलाचार्य ने उसकी बड़ी तारीफ़ की है। लैटिन और जर्मन भाषाओं में किया गया उसका अनुवाद पी० वी० बोलन (P. V. Bohlen) द्वारा, लिपज़िक में, १८४० में, प्रकाशित हुआ।

इनके सिवा भारतीय विद्वानों ने भी कालिदास के काव्यों के अनुवाद अँगरेज़ी में किये हैं। अरविन्द बाबू का किया हुआ विक्रमोर्वशी का, अँगरेज़ी-पद्य में, अनुवाद अपूर्व है।

इससे यह भली भाँति स्पष्ट है कि संसार के श्रेष्ठ कवियों में कालिदास का जो स्थान है उसके अनुकूल ही उनके काव्यों का प्रचार हो रहा है।

मानियर विलियम्स ने कहा है, "कालिदास की कल्पना-शक्ति की प्रबलता, मानवीय अन्तःकरण का उत्कृष्ट ज्ञान, रचना-चातुर्य आदि ऐसे गुण हैं जिनसे हमें उन्हें भारतवर्ष का शेक्सपीयर कहना चाहिए।" फिर भी खेद की बात है कि जैसी आलोचना शेक्सपीयर के नाटकों की हो रही है वैसी आलोचना इस भारतवर्ष के शेक्सपीयर (कालिदास) की कृतियों की नहीं हो रही।

नगरनिवासी निर्धन जनों का सुधार।

भारतवर्ष में पुराने नगर तो बढ़ ही रहे हैं, नये नये नगरों की भी सृष्टि हो रही है। यन्त्रों की वृद्धि से व्यवसाय की भी बड़ी उन्नति हो रही है। इससे समस्यायें कठिन होती जा रही हैं। लन्दन की जन-संख्या संसार के सब नगरों की जन-संख्या से अधिक है। इस जन-संख्या के आधिक्य से यहाँ दरिद्रों की बड़ी दुर्दशा है। इसके सुधार के लिए मेरे एक मित्र आज पच्चीस वर्षों से प्रयत्न कर रहे हैं। उससे भारतवर्ष के सुधारक बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। इसलिए यहाँ उस प्रयत्न का कुछ वृत्तान्त दिया जाता है।

लन्दन का यह भाग—जहाँ मेरे मित्र काम कर रहे हैं—वालवर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। यह टेम्स नदी के दक्षिण में बसा है। एक तो यह घनी बस्ती है; दूसरे यहाँ के घर, सड़कें और गलियाँ बहुत तङ्ग और गन्दी हैं। उनकी बुरी हालत है। खुली जगह बहुत कम है। जब यहाँ थोड़ी जगह पर बड़े बड़े मकान बनवा कर मालिक अच्छी रक़म पैदा कर सकते हैं तब उन्हें खुली जगह छोड़ने से क्या

ग़रज़ ? ऐसे मकानों से तो उन्हें इतनी आमदनी हो जाती है जितनी किसी अच्छे महल्ले के मकानों के मालिकों को नहीं होती । इसीलिए यहाँ मकान, एक के बाद एक, एक ही क़तार में सटे हुए रहते हैं । घर के सामने और पीछे थोड़ा सा सहन रहता है । पर उसमें प्रायः घास भी नहीं रहती । यदि दो-चार पौधे हों भी तो वे बुरी हालत में रहते हैं । अधिकतर मकान दो या तीन मन्ज़िले होते हैं । उनके सामने का भाग सङ्कुचित रहता है । ऊँचे ऊँचे मकान भी बहुत से होते हैं । उन्हें टेनेमेण्ट्स (Tenements)—निवास-गृह कहते हैं । उनमें बहुत से छोटे छोटे कमरे होते हैं, जो सभी गन्दे रहते हैं । उन्हीं में रह कर दरिद्र-परिवार अपना काल-यापन करते हैं । ये लोग बहुत मिहनत करके किसी प्रकार अपना पेट भर लेते हैं । इधर बस्ती भी ख़ूब घनी है । इसका अनुमान हम इतने ही से कर सकते हैं कि यहाँ ब्राउनिङ्ग सेटिलमेण्ट (Browning Settlement) के सात साल बाद, २६४ एकड़ ज़मीन में, ६१,५२२ आदमी रहते थे । एक एकड़ में कोई २३३ आदमी गुज़र करते थे । एक ख़ास महल्ले में तो एक एकड़ में १००० आदमी रहते थे । उस समय लन्दन की जन-संख्या का औसत प्रति एकड़ ५६ आदमी था ।

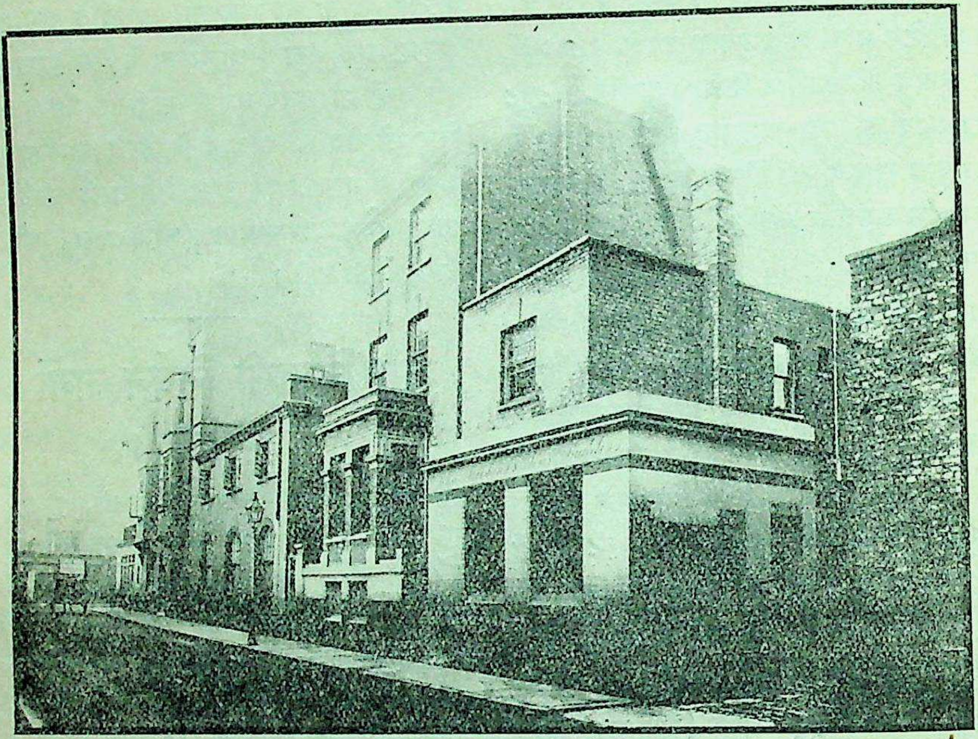

ब्राउनिङ्ग सेटिलमेण्ट नाम का आश्रम ।
(यहाँ पर इस संस्था के कार्यकर्त्ता रहते हैं ।)

लन्दन के इस हिस्से में कारख़ाने बहुत कम हैं । इसलिए अधिकांश लोगों को काम करने के लिए दूसरी जगह जाना पड़ता है । सच तो यह है कि वे यहाँ रात को सोते हैं और दिन भर बाहर ही अपने अपने काम पर रहते हैं । सुबह होते ही स्त्री, पुरुष और लड़के, झुण्ड के झुण्ड, बाहर चले जाते हैं । कुछ तो कारख़ानों में काम करते हैं और कुछ बन्दरगाहों में । जो स्त्रियाँ काम के लिए बाहर नहीं जातीं वे घर पर ही दर्ज़ियों के लिए कपड़े सीती हैं । ये दर्ज़ी उनसे निर्दयतापूर्वक सख़्त काम लेते हैं । यदि ऐसी

स्त्रियों को यह काम नहीं मिलता तो वे कोयले वग़ैरह का काम करने के लिए बाहर जाती हैं।

यह अचरज की बात है कि इतना होने पर भी न तो यहाँ अधिक ख़ून-ख़राबी होती है और न चोरी। फिर तारीफ़ यह कि यहाँ शराब का प्रचार भी ख़ूब है—स्त्रियाँ तक शराब पीती हैं। लोग जुआ भी खेलते हैं। दरिद्रता से तो सभी ग्रस्त हैं। यदि कभी किसी ने कुछ रक़म पैदा कर ली तो वह फिर यहाँ रहता भी नहीं; वालवर्थ छोड़ कर दूसरी जगह चला जाता है। जिनका कहीं निर्वाह नहीं ऐसे ही लोग यहाँ रहते हैं। युद्ध के पहले यहाँ एक घर की आमदनी का औसत, प्रति सप्ताह, एक पौण्ड था। आज-कल उनकी आमदनी कुछ ज़रूर बढ़ गई है, पर सभी चीज़ें महँगी हो जाने से उनकी आर्थिक दशा वैसी ही है जैसी पहले थी।

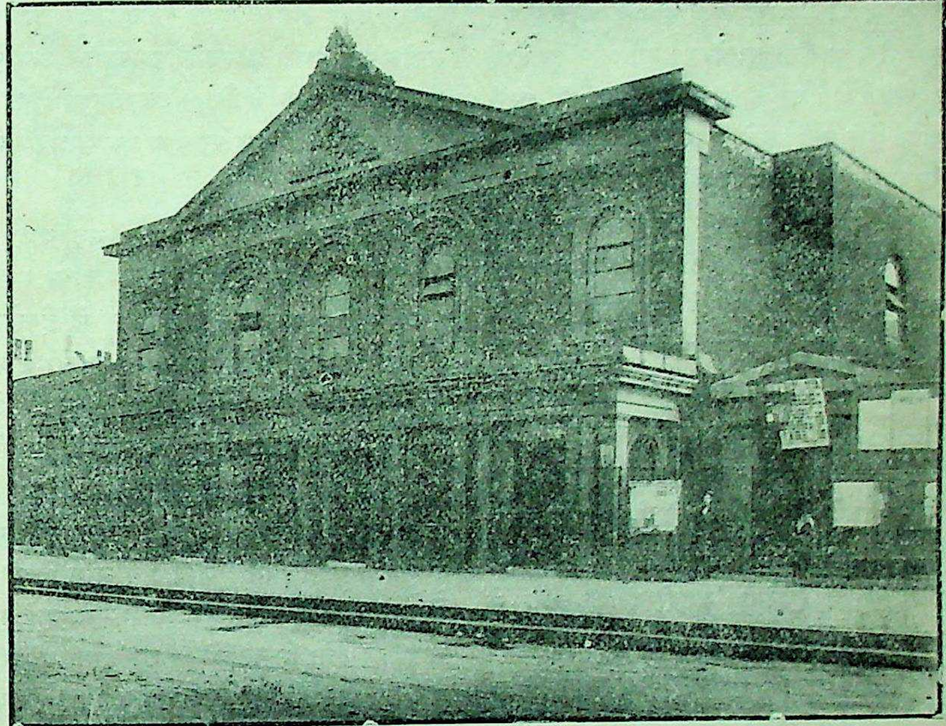

ब्राउनिङ्ग हाल।

(यह ब्राउनिङ्ग सेटिलमेण्ट के सब कार्य्यों का केन्द्र है।)

लन्दन के इस भाग में, जो दैव की दया-दृष्टि से वञ्चित है, २६ वर्ष पहले समाज-संशोधकों का एक दल आया। उसके नेता मेरे मित्र, मिस्टर यफ़० हर्बर्ट स्टीड, एम० ए० हैं। उनके साथ कुछ और लोग भी, उनको सहायता देने के लिए, आये। उनकी स्त्री और उनके तीन लड़के भी साथ ही आये। ये लोग सब मिला कर सात थे। स्टीड साहब को अपना काम चलाने के लिए ओल्ड यार्क स्ट्रीट (Old York Street) का गिरिजाघर मिल गया। यह गिरिजाघर पहले पहल १७६० में बना था। यहीं १८१२ में इँगलेंड के प्रसिद्ध कवि रावर्ट ब्राउनिङ्ग को ईसाई धर्म्म की दीक्षा, नियमानुसार, दी गई थी। जब वह १८ वर्ष का था तब एक बार जार्ज क्लेटन नामक एक महाशय की धर्मचर्चा में मन न लगाने के कारण पादरी साहब ने उसकी ख़बर ली थी। तब से इसका नाम ब्राउनिङ्ग हाल पड़ गया। स्टीड साहब और उनके साथियों ने जब यह स्थान ले लिया तब इसका नाम ब्राउनिङ्ग सेटिलमेंट रख दिया गया।

इन लोगों ने पहले ही से यह निश्चय कर लिया था

कि हम जिनकी सेवा करने के लिए आये हैं उन्हीं के साथ रहेंगे। इसलिए यार्कस्ट्रीट में एक बड़ा सा मकान किराये पर लेना निश्चित हुआ। पर यह मकान उन्हें न मिल सका। तब उन्हें अपने अपने घरों में जाकर रहना पड़ा। वहीं से ये लोग ब्राउनिङ्ग हाल आया करते थे। पर घर दूर दूर होने के कारण उनको बड़ा कष्ट होता था। तब उन्होंने एक दूसरा मकान लिया, जहाँ से १५ मिनट में ही वे अपने कार्यस्थल पर पहुँच सकते थे। पर यह मकान था सबसे अधिक गन्दे महल्ले में। उसके दो मकानों के बाद घास की एक दूकान थी। उसके बाद ही एक और मकान था, जहाँ प्रति दिन चार या छः पेन्स (आने) देकर लोग रात भर ठहर सकते थे। घर के ठीक पीछे रेल की पटरी थी। उसके बाद कुछ बड़े गन्दे महल्ले थे। पर उनको इसकी क्या परवा। फ़रवरी १८९५ में किसी भी बात का ख़याल न करके ये लोग उस मकान में चले गये। उस समय लन्दन में ख़ूब ठण्ड पड़ती थी। वहाँ वे लोग छः साल तक रहे। स्टीड साहब के सबसे छोटे लड़के का जन्म वहीं हुआ। जब स्टीड साहब के मित्रों ने सुना कि वे अपने बाल-बच्चों के साथ ऐसे गन्दे महल्ले में रहने के लिए जाते हैं तब तो सबको बड़ी आशङ्का हुई। सभी ने यही कहा कि इस पागलपन से मृत्यु अवश्यम्भावी है। परन्तु उनको विश्वास था कि जिस परमात्मा ने उनको इस महत्कार्य के लिए उत्साहित किया है वही उनकी सन्तानों की रक्षा करेगा। जगदीश्वर की कृपा से उनकी सभी सन्तति जीवित रही। आज उनके सभी बच्चे युवावस्था को प्राप्त करके, समय समय पर, अपने माता-पिता के कार्य में सहायता देते हैं।

इनका कार्य १३ दिसम्बर १८९४ में आरम्भ हुआ। उसी दिन ब्राउनिङ्ग हाल की बैठक में सब लोग भगवान की प्रार्थना करने के लिए एकत्र हुए। तीन हफ़्ते बाद, ६ जनवरी १८९५ को, रविवार के दिन उनका भ्रातृसंघ सङ्गठित हुआ।

लन्दन के ऐसे महल्लों में समाज-संशोधकों के लिए रविवार का सन्ध्याकाल बड़ा बुरा होता है। लोगों को उस दिन कुछ काम-काज तो रहता नहीं; शाम होते ही सब लोग शराब की दूकानों पर पहुँचते हैं। आज-कल ६ बजे के बाद कोई भी सिनेमा (Cinema) अर्थात् चित्रालय में जाकर अपना मनोरञ्जन कर सकता है। पर १८९५ में यह बात कहाँ? उस समय रविवार के दिन सर्वसाधारण के मनोरञ्जन के लिए जो नियम प्रचलित थे वे बड़े कठोर थे। तब ये बेचारे अपना मन कैसे बहलाते? दिन भर अँधेरे घरों में ये लोग बन्द पड़े रहते थे। तब भला शराब पीकर अपना मन बहलाना इन्हें अच्छा क्यों न लगता? उनकी यह बुरी आदत छुड़ाने के लिए स्टीड साहब ने सबसे पहले रविवार के दिन उनके मनोरञ्जन के उपाय निकाले। नोटिस देकर उन्होंने बहुत आदमियों को इकट्ठा किया। सङ्गीत का अच्छा प्रबन्ध किया गया। उन्होंने लोगों को खुद उठ कर गाने के लिए उत्साहित किया। इसके बाद उनकी दशा के सुधार पर एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया गया।

कार्य आरम्भ होने के साल भर बाद स्टीड साहब ने अपनी इस संस्था का उत्सव मनाया। उसमें माननीय एच० एच० एस्क्विथ—जो पीछे से इँगलेंड के प्रधान सचिव हुए—आये। इस अवसर पर लोगों का ध्यान इस ओर ख़ूब आकृष्ट हुआ। सामयिक पत्रों में भी इसके विषय में चर्चा चली। इन सुधारकों को सबसे पहले लोगों के अज्ञान और ढोंग का सामना करना पड़ा। अधिकांश लोग ऐसे थे जो इसीलिए सदाचार का ढोंग करते थे जिससे उन्हें दान में कुछ मिल जाय। ये लोग किसी धार्मिक सभा में जाने के लिए तब तैयार होते थे जब इन्हें मुफ़्त में रोटी, चाय, या दवा मिलने की आशा होती थी। इस तरह घूस लेने की आदत इन्हें उन पादड़ी महात्माओं के कारण पड़ गई थी जो ऐसी ही चीज़ों का लालच देकर इन्हें गिरिजाघर बुलाया करते थे।

उनके अज्ञान को दूर करने के लिए स्टीड साहब और उनके साथियों ने एक ऐसा स्कूल खोला जहाँ ऐसे लोग भी—जिन्हें बाल्य-काल में लिखने-पढ़ने का अवसर नहीं मिला—शिक्षा पा सकें। यह प्रयत्न सिर्फ़ दिखाने के लिए नहीं किया गया था। यह सच है कि यहाँ शिक्षार्थियों की हाज़िरी कभी अच्छी नहीं रही। पर इसमें किसी को सन्देह नहीं हुआ कि भविष्य में इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा। यहाँ शिक्षा देने का ढँग भी दूसरा है।

शिक्षक तख़्ते पर पहले एक अच्छी लोकोक्ति (कहावत) लिख देता है। शिक्षार्थी, चाहे पुरुष हो या स्त्री, उसे नक़ल करता है। इसके बाद सब उसी विषय पर विवाद करते हैं। इससे यह लाभ होता है कि जिन्हें कभी सोचने की आदत नहीं वे भी स्वयं विचार करते हैं और अपने विचारों को अच्छी भाषा में प्रकट भी करने लगते हैं।

धार्मिकता का ढोंग दूर करने के लिए इन देश-भक्तों ने उन लोगों को—जिनके साथ वे रहते थे—अपनी सहायता आप करने के लिए उत्साहित किया। इसके लिए उन्होंने क्लब (मिलन-मन्दिर) खोले। उनमें लोग अपनी बचत—चाहे वह कितनी ही कम क्यों न हो—जमा करते थे। जब कुछ जमा हो जाता था तब वे उसे निकाल कर अपने काम में लाते थे। कल्पना कीजिए कि कोई आदमी प्रति सप्ताह एक आना जमा करता है। जब कुछ रक़म जमा हो जायगी तब मिडसमर (Midsummer) नामक त्योहार अथवा बड़े दिन (Christmas) पर उसे उतनी रक़म मिल जायगी जितनी से वह अपने इच्छानुसार कुछ चीज़ें ख़रीद सके अथवा बाहर किसी गाँव अथवा समुद्र के किनारे रहने के लिए जा सके।

स्टीड साहब के चलाये हुए क्लबों में सबसे अधिक लोक-प्रिय क्लब गूज़ नामक क्लब (Goose Club) था। उसमें, साल में, सात शिलिङ्ग छः पेन्स देने से बड़े दिन पर खाने पीने की बढ़िया चीज़ें दी जाती थीं। शराब की दूकानें रखनेवालों ने भी पहले एक ऐसा ही क्रिसमस क्लब (Christmas Club) अर्थात् बड़े दिन का क्लब खोल रक्खा था। पर उससे लाभ उठाने के लिए लोगों को क्लब के शराबख़ाने में जाना पड़ता और वहाँ उन दूकानदारों को आशा थी कि आनेवाला ज़रूर शराब ख़रीदेगा। बड़े दिन पर उन्हें भोजन का जो पिटारा मिलता उसमें खाने की चीज़ें तो कम रहतीं, शराब की बोतलें ही अधिक।

इन्हीं बुराइयों को दूर करने के लिए गूज़ क्लब (Goose

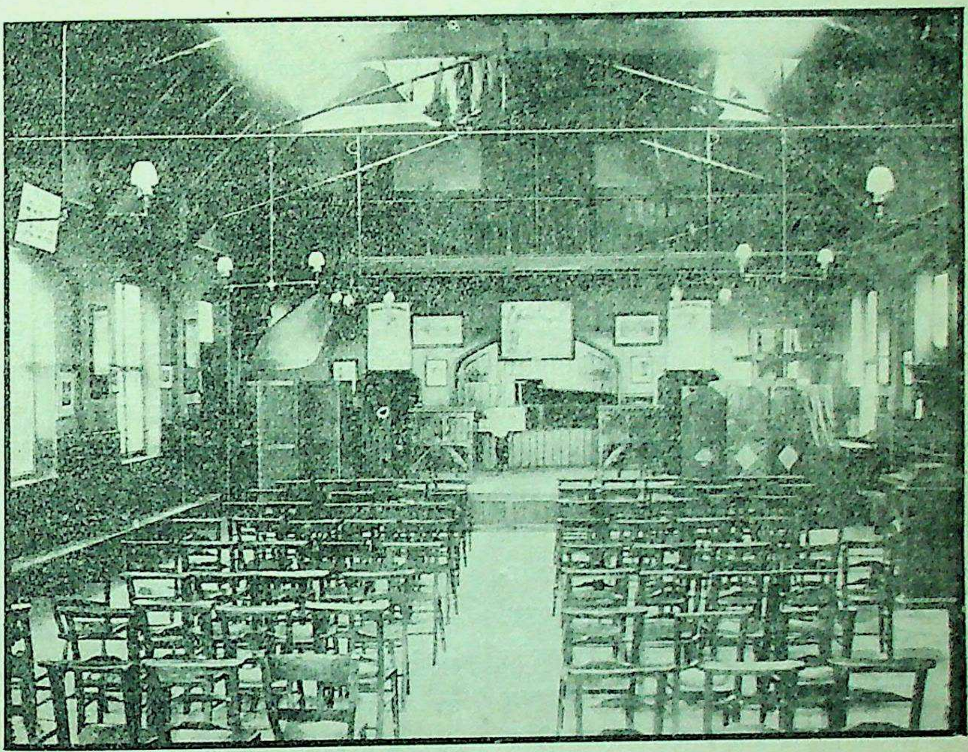

क्रेटन हाल का भीतरी दृश्य।
(यहाँ पर ब्राउनिङ्ग सेटिलमेण्ट का बहुत सा काम होता है।)

Club) खोला गया था। जो उसमें शामिल होता उसे बड़े दिन पर एक पिटारा पाने का हक़ हासिल होता। उस पिटारे में खाने-पीने की तरह तरह की चीज़ें रहतीं, जिन्हें बड़े दिन पर अँगरेज़ बहुत पसन्द करते हैं। इस क्लब का काम इतना बढ़ गया कि एक साल १०,३८३ पिटारे बाँटे गये। इसके लिए उन्हें कोई ५०,००० रुपये मिले। इन पिटारों को भरने के लिए खाने-पीने की ६१ टन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती। क्लब को अपना ग्राहक बनाने के लिए कनेडा और आस्ट्रेलिया की कम्पनियों के प्रतिनिधि कोशिश करते। एक देश के प्रधान सचिव भी इसी मतलब से ब्राउनिङ्ग हाल आये कि उनके देश को आज्ञा मिल जाय कि वह भी क्लब को एक आध चीज़ बेच सके! पर ये लोग, जहाँ तक हो सकता था, अपनी ही जगह की दूकानों से चीज़ें ख़रीदते थे। इसलिए यहाँ के व्यवसायियों की कुदृष्टि इनके इस कार्य पर कभी नहीं पड़ी।

इस संस्था का एक काम और ऐसा था जिसे लोग ख़ूब पसन्द करते थे। वह यह था कि इसके मेम्बर प्रति सप्ताह एक शिलिङ्ग दिया करते थे। ५० हफ़्ते बाद संस्था की ओर से मेम्बर कहीं बाहर यात्रा के लिए जाते। प्रबन्ध सब संस्था की ओर से किये जाते थे। पहले साल २६ आदमियों के लिए, तीन दिन तक, पेरिस में रहने का प्रबन्ध हुआ। दूसरे साल ५० आदमी संस्था की ओर से स्काटलेंड गये। इसके बाद ७४ लोगों ने एक सप्ताह डसलडार्ट (Dusseldort) नामक नगर में आनन्द से व्यतीत किया। एक साल के बाद एक दूसरा दल अमस्टरडम और हेग गया। इसके बाद जो गये उन्होंने एक सप्ताह क्वीन्सटाउन में रह कर आयर्लेंड के प्राकृतिक दृश्यों का निरीक्षण किया। इसके अनन्तर जर्मनी के ड्यूसबर्ग नगर में एक सप्ताह तक लोग रहे। सबसे अच्छी यात्रा स्विटज़रलेंड की रही। उसमें ३१ मनुष्य ८ दिन तक आल्प्स पहाड़ों में भ्रमण करते रहे। इन लोगों ने १५०० मील की यात्रा की। पर ख़र्च प्रति मनुष्य ६० ही रुपये पड़ा।

इन सब यात्राओं का उद्देश यही था कि स्थान-परिवर्तन से इन लोगों को लाभ पहुँचे और साथ ही इनका मानसिक विकास भी हो। इसके लिए इन्हें दूसरे का मुँह भी न ताकना पड़े। सङ्गठन की ख़ूबी और कम-ख़र्ची से इन्हें अपनी यात्रा का ख़र्च भी मिल गया और दूसरी जगह जाने और वहाँ के निवासियों को देखने से इनके मन में अन्य मनुष्यों के प्रति भ्रातृ-भाव भी उत्पन्न हो गया।

इसी क्लब के ढँग पर Summer Holiday Camp अर्थात् वसन्त-भ्रमण की प्रथा निकाली गई। इससे गर्मी की छुट्टियों में दूसरी जगह लोग जा सकते थे। इसमें ख़र्च बहुत कम पड़ता था। स्त्री-पुरुष, सभी एक ही साथ खाते, पीते और काम करते।

इस संस्था ने एक काम और जारी कर रक्खा है। वह है उद्यान तैयार करना। वालवर्थ की अब यह एक विशेषता हो गई है। जिसका सबसे अच्छा उद्यान होता है उसे संस्था की ओर से पारितोषिक दिया जाता है। इसका बड़ा अच्छा परिणाम हुआ है। ऐसे उद्यान एक बड़े से मेज़ से अधिक विस्तृत नहीं होते। इतनी छोटी जगह में भी कोने कोने में ऐसे ढँग से फूल के पौधे लगाये जाते हैं कि अच्छे अच्छे मालियों को भी वह दृश्य देख कर आश्चर्य्य होता है। घरों के आगे पीछे अब छोटे छोटे मनोहर उद्यान लग गये हैं। इसका मतलब यह नहीं कि अब वालवर्थ उद्यानमय नगर हो गया है। पर इसमें सन्देह नहीं कि इससे उसमें बहुत सुधार हो गये हैं; उसका सौन्दर्य्य भी बढ़ गया है।

इस संस्था में ६ वकील हैं। वे साल में प्रायः १००० ऐसे मनुष्यों को क़ानूनी मामलों में मुफ़्त सलाह देते हैं जो दरिद्रता के कारण अपने ख़र्च से कोई वकील नहीं कर सकते। जब तक यहाँ मेडिकल मिशन अर्थात् वैद्य-समुदाय था तब तक साल भर में ४००० से ५००० तक मनुष्यों को मुफ़्त में दवा मिलती और उनकी चिकित्सा भी की जाती थी। पर एक नये क़ानून के जारी होने पर वह बन्द कर दिया गया, क्योंकि उससे दरिद्रों को सरकार की ओर से सहायता मिलने लगी।

वालवर्थ के अल्पवयस्क बालकों के लाभ के लिए भी बहुत प्रयत्न किया जा रहा है। रविवार के दिन बाल-शिक्षालय में बच्चों को रेती, मिट्टी और ऐसी ही चीज़ों की सहायता से शिक्षा दी जाती है। उनके लिए एक सनशाइन क्लब (Sunshine Club) भी है। वहाँ, घर के भीतर ही, उनके लिए खेल-कूद का प्रबन्ध किया जाता है। कभी कभी गर्मी के दिनों में लड़के बाहर भ्रमण के लिए

भेजे जाते हैं। उनके लिए एक और भी क्लब है। उसे Toddlekins Club कहते हैं। वहाँ कहानी सुनाने के बहाने उन्हें सदाचार और सद्व्यवहार की शिक्षा दी जाती है। एक Play Centre भी है जो हफ़्ते में दो बार खुलता है। वहाँ लड़कों को सङ्गीत द्वारा क़वायद की शिक्षा मिलती है। पुराने गीत भी वे यहीं सीखते हैं। और भी ऐसी ही मनोरञ्जक बातें उन्हें सिखाई जाती हैं। ग्रीनिच पार्क (Greenwich Park) में एक स्कूल खोला गया है, जहाँ छुट्टी के दिनों में लड़के कुछ पढ़ सकें। हफ़्ते में एक बार २०० से अधिक लँगड़े लड़के वहाँ एकत्र होते हैं। उनके लिए और भी तरह तरह के काम किये जाते हैं, जिनका पूरा विवरण इस लेख में हम नहीं दे सकते।

इस संस्था से कितने ही अच्छे अच्छे सिद्धान्तों का भी प्रचार हुआ है। सबसे अधिक सफलता उस आन्दोलन में मिली है जो यहाँ के कुछ कार्य-कर्त्ताओं ने वृद्धों को पेन्शन दी जाने के लिए किया था। इस विषय में सफलता पाने का अधिक श्रेय इसी संस्था के कार्य-कर्त्ताओं को है। उनके इस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि सरकार की ओर से अब ७० वर्ष अथवा इससे अधिक उम्र के लोगों को, उनकी जीविका के लिए, ७॥) प्रति सप्ताह दिये जाते हैं। लन्दन से १५ मील दूर, एक स्वास्थ्यकर जगह में, वृद्धों के लिए इन लोगों ने Bethany Home नामक निवासालय खोले हैं। यहाँ १०० से अधिक लोगों के रहने का प्रबन्ध है। यहाँ उन्हें मुफ़्त में घर मिलता है और ईंधन तथा दवा भी मुफ़्त में ही दी जाती है, जिससे सरकारी पेन्शन से उनका जीवन-निर्वाह भली-भाँति हो जाय। स्टीड साहब वर्षों से इस बात का आन्दोलन कर रहे हैं कि इँगलेंड के सभी नगरों में वृद्धों के लिए ऐसे ही निवास-गृह स्थापित हो जायँ। उन्होंने यह सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि म्यूनीसिपेलटी इन लोगों को काम देकर इनके लिए जितना खर्च करती है उससे कम ही ख़र्च

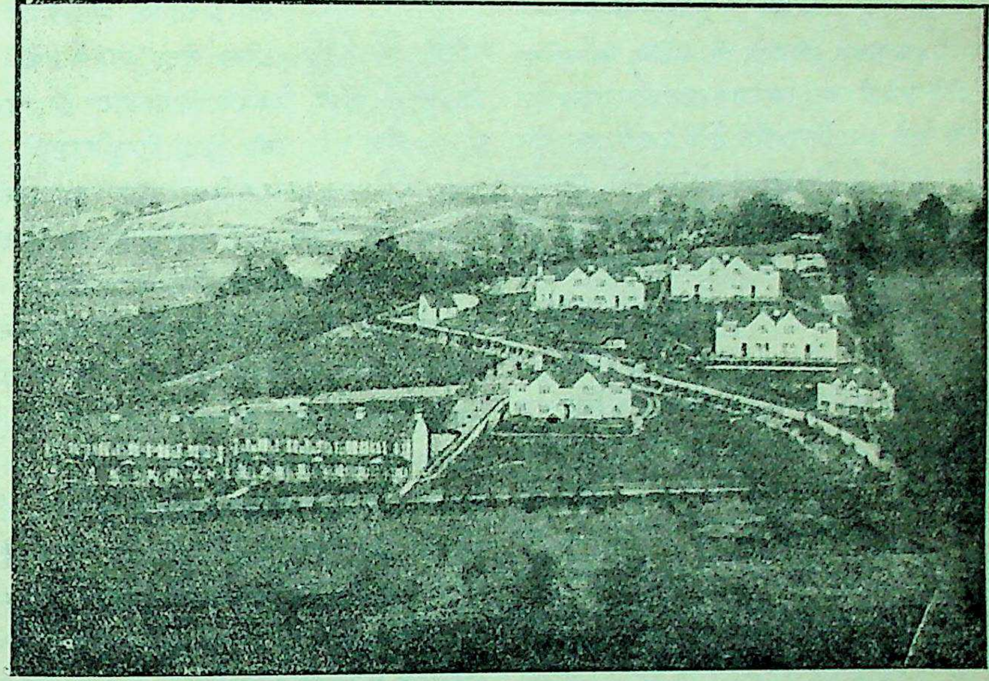

बेथानी होम्स नाम के निवास-भवन।

(ये लन्दन से १५ मील दूरी पर, एक स्वास्थ्यकर जगह में ब्राउनिङ्ग सेटिलमेण्ट की ओर से वृद्धों के रहने के लिए बनाये गये हैं।)

में इन वृद्धों का भरण-पोषण हो सकता है। बात इतनी ही है कि इस संस्था के सिद्धान्तों और तरीक़ों का अनुसरण किया जाय।

ब्राउनिङ्ग सेटिलमेंट की ओर से स्त्रियों के लिए भी एक ग्रीनहाउ कालेज (Greenhow College) खोला गया है। उसके मकानों का बीमा २०,००० पौण्ड में हुआ है। यहाँ कारख़ानों में काम करनेवाली स्त्रियों के मानसिक सुधार और ज्ञान-वृद्धि के लिए—जिससे वे अपने जीवन में अधिक सफल हो सकें—सुभीते कर दिये गये हैं।

१९१० में इस संस्था की ओर से वार्षिक कान्फ़रेन्स (सम्मेलन) होने लगे हैं। यह सम्मेलन सात दिन तक रहता है। इसमें देश के नेता शामिल होते हैं। उन्होंने इस बात की आवश्यकता बताई है कि इस आन्दोलन को धार्मिक रूप दिया जाय। गत वर्ष के सम्मेलन में भारतीय मज़दूरों के नेता मिस्टर वी० पी० वाडिया भी उपस्थित थे। उन्होंने वहाँ भारतीय मज़दूरों के विषय में व्याख्यान दिया था।

१९१६ में स्टीड साहब ने युद्ध बन्द करने के लिए एक समिति स्थापित की। उसका उद्देश यह था कि युद्ध बन्द किया जाय और भिन्न भिन्न जातियों में एकता स्थापित की जाय। इसी अभिप्राय से संसार की सभी जातियों को यह संस्था यह उपदेश देती है कि वे लोग अपनी सामरिक शक्ति को सिर्फ़ इतनी रक्खें जिससे देश के भीतर शान्ति रहे। युद्धोपयोगी सामग्री तैयार करने के लिए जो चेष्टायें की जा रही हैं उन्हें रोकने की भी सलाह उसने दी है।

यही सब स्टीड साहब, उनकी धर्मपत्नी और उनके साथी कर रहे हैं। मैंने उनकी कार्यावली का वर्णन इसीलिए किया है कि भारत के देश-भक्त भी—यदि वे अपने देशबान्धवों की आवश्यकतायें जान कर उनको पूर्ण करने की कोशिश करें तो—ये सब सुभीते कर सकते हैं। जैसा मैंने आरम्भ में कहा है—नगरों की वृद्धि और व्यवसाय की समृद्धि से भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में कठिन समस्यायें उपस्थित हो गई हैं। जिनमें शक्ति है उन्हें चाहिए कि वे देश के हतभाग्यों की दशा सुधारें, उनमें ज्ञान फैलावें, उन्हें शिक्षित करें और उन्हें जीवन का सत्पथ बतलावें जिससे वे अच्छी तरह अपना जीवन व्यतीत कर सकें और यह भी जान लें कि वे स्वयं अपने पास-पड़ोस के लोगों की सहायता किस तरह कर सकते हैं।

सेंट निहालसिंह

हिन्दू-नाटक।

कुछ समय पहले लोगों की यह धारणा होगई थी कि भारतीय नाटकों में ग्रीस देश के नाटकों का अनुकरण किया गया है। इसकी पुष्टि के लिए हिन्दू-नाटकों में प्रयुक्त यवनिका शब्द का उल्लेख किया जाता था, यद्यपि अभी तक इसी का निश्चय नहीं हुआ कि ग्रीक लोग यवनिका का उपयोग करते भी थे या नहीं। श्रीयुक्त वसवानी ने हिन्दू-नाटकों के विषय में कुछ समय पहले एक व्याख्यान दिया था। वह प्रकाशित भी हुआ था। नीचे प्रायः उसी के आधार पर कुछ लिखा जाता है।

लोगों का यह समझना ठीक नहीं कि भारत ने ग्रीक नाटकों का अनुकरण किया है। इसमें सन्देह नहीं कि ग्रीस और भारत ने परस्पर बहुत कुछ लिया दिया है। पर इसका मतलब यह नहीं कि एक ने दूसरे का अनुकरण किया है। प्रतिभा अनुकरण नहीं करती। वह अभीष्ट वस्तु को ग्रहण करके उसे अपना कर लेती है। न तो ग्रीस ने भारत का अनुकरण किया है और न भारत ने ग्रीस का। दोनों ने अपनी अपनी प्रतिभा से अपने अपने साहित्य की वृद्धि की है। ग्रीक और भारतीय नाटकों में परस्पर समता ही नहीं है। हिन्दू-नाटकों में ग्रीक नाटकों की एकताओं की उपेक्षा की गई है। ग्रीक भाषा में दुःखान्त-नाटक हैं; परन्तु हिन्दुओं के साहित्य में एक भी ऐसा नाटक नहीं। इतना हम ज़रूर कहेंगे कि हिन्दू-नाटकों के विदूषक को

ही इँगलेंड की रानी इलिज़ाबेथ के समय के नाटकों में, तथा रोमन नाटकों में भी, क्लाउन (Clown) का रूप प्राप्त होगया है। क्लाउन कहते हैं भाँड़ को। पीशेल नामक विद्वान् का भी यही कहना है कि विदूषक के ही आदर्श पर योरप के नाटकों में बफ़ून (Buffoon) अर्थात् भाँड़ की सृष्टि हुई है।

हिन्दू-नाटकों की उन्नति प्राचीन काल में ही होगई थी। मध्य-एशिया में एक उपलब्ध एक ताड़पत्र के ग्रन्थ से विदित होता है कि कुशाण राजाओं के काल में ही—जब मध्य-एशिया भारतीय साम्राज्य के अन्तर्गत था—हिन्दू-नाटकों की श्रीवृद्धि होगई थी। छठी शताब्दी में हिन्दू जावा द्वीप में बस गये थे। वहाँ के छाया-नाटकों को देख कर हम जान सकते हैं कि हिन्दू-नाटकों का कितना प्रभाव उन पर पड़ा है। ब्रह्मदेश, स्याम और कम्बोडिया में भी रङ्गमञ्च पर, राम और बुद्ध के चरित्रों का अवलम्बन करके लिखे गये, नाटक खेले गये हैं। रामावतार का अभिनय तो मलाया द्वीप-समूह में ही नहीं, चीन तक में किया गया था।

हिन्दू-नाटकों की इस श्रीवृद्धि का कारण यह है कि हिन्दू-मात्र की दृष्टि में नाटकों का महत्त्व धार्मिक है। योरप में नाट्य-शालाओं पर अनेक बार घृणा प्रदर्शित की गई। उनका प्रचार भी रोका गया। धार्मिक ईसाई का यह विश्वास था कि लोगों को पाप-पथ में लेजाने के लिए ही शैतान ने इन आमोद-प्रमोदों की सृष्टि की है। रोम में नाटक खेलनेवालों का कुछ भी आदर नहीं होता था। चीन में उनकी सन्तानों को यह अधिकार न था कि वे परीक्षाओं में बैठ सकें। पर हिन्दू लोग नाट्यशास्त्र को पञ्चम वेद मानते हैं। उनका विश्वास है कि भरत मुनि ने संसार के कल्याण के लिए उसका आविष्कार किया है।

सबसे प्राचीन नाट्यशास्त्र भरत मुनि ही का है। पाणिनि के समय में भी नाट्यशास्त्र प्रचलित थे। उन्होंने दो आचार्यों का उल्लेख किया है—शिलालिन और कृशाश्व। पतञ्जलि के समय में नाटक खेले जाते थे। उनके महाभाष्य में कंस-वध और बलि-बन्धन के खेले जाने का साफ़ साफ़ उल्लेख है।

हिन्दू-नाट्य-साहित्य का प्राचीनतम रूप देखने के लिए हमें वेदों की आलोचना करनी चाहिए। ऋग्वेद के कुछ सूक्तों में कुछ संवाद हैं—जैसे यम और यमी का संवाद, पुरूरवा और उर्वशी का संवाद। इनकी गणना हम नाटकों में कर सकते हैं। पुरूरवा और उर्वशी का संवाद ही पुराणों में, कथा-रूप में, विस्तारपूर्वक वर्णित हुआ है और उसे ही कालिदास ने नाटक का रूप दिया है। जान पड़ता है कि पहले पहल नाटकों में सिर्फ़ सङ्गीत ही रहता था। पीछे से उनमें संवाद अर्थात् भाषण या कथोपकथन जोड़े गये हैं। फिर, इसके अनन्तर, कदाचित् उनमें कृष्णचरित्र का समावेश किया गया है। कुछ भी हो, इसमें तो सन्देह नहीं कि अति प्राचीन काल में ही नाटकों का अभिनय होने लगा था।

हिन्दू-नाटककार कार्यों और विचारों की एकताओं का खूब ख़याल रखते थे। उनके कर्म-वाद ने सभी नाटकों की घटनाओं को कार्य-कारण की शृङ्खला में बाँध रक्खा है। हिन्दू-साहित्य में संयोगान्त और वियोगान्त नाटक अलग अलग नहीं हैं। उनमें हर्ष और शोक के भाव मिश्रित रहते हैं। रङ्ग-भूमि में अत्यन्त शोकोत्पादक अथवा विकार-वर्द्धक दृश्य न दिखलाये जाते थे; क्योंकि ऐसा करने से मन विकृत हो जाने का डर था। शोक की उपेक्षा न की जाती थी, पर ज़ोर इस बात पर दिया जाता था कि शोक का सहन त्याग से किया जाना चाहिए। संसार जिन नियमों से बद्ध है वे हम लोगों के लिए श्रेयस्कर हैं।

प्रत्येक नाटक के आरम्भ और अन्त में आशीर्वादात्मक श्लोक रहते हैं । इनका विषय प्रायः धार्मिक ग्रन्थों से लिया जाता है । ग्रीक नाट्यकार, जर्मन कवि और शेक्सपीयर चरित्र-चित्रण में ही अपनी शक्ति लगा देते हैं । उनका विषय है मनुष्य । हिन्दू-नाटककारों का विषय है प्रकृति । उनके लिए प्रकृति ही यथार्थ में शिक्षा देनेवाली है । यही कारण है कि हिन्दू-नाटक प्रकृति-सम्बन्धी उत्सवों में खेले जाते थे; अधिकतर वसन्त के उत्सव में जब विश्व-प्रकृति का नव-जीवन आरम्भ होता है । बिना दुःख के, बिना तपस्या के, पवित्रता नहीं आती; बिना आत्मत्याग के आत्मोन्नति नहीं होती । हिन्दू-नाटकों में यही भाव स्पष्ट करके दिखाया गया है ।

वन-वैभव ।

[४]

(७५)

भाइयों सहित द्रौपदी-सङ्ग
पार्श्व में रक्खे चाप-निषङ्ग
सुना कर सुन्दर कथा-प्रसङ्ग
दिखाते हुए धर्म्म के अङ्ग
यज्ञ-वेदी के सम्मुख शान्त
युधिष्ठिर बैठे थे विश्रान्त

(७६)

बिछे थे नीचे मृदु मृग-चर्म
सुनो उनकी वाणी का मर्म—
"करें यदि अन्य मनुज दुष्कर्म
तजें तो हम क्यों अपना धर्म
धैर्य्य ही धर्म्म-परीक्षा है
वही वीरों की दीक्षा है

(७७)

राम ने राज्य-विभव छोड़ा,
उन्हें था वन में दुख थोड़ा ?
भरत ने भी निज मुख मोड़ा,
धर्म्म-धन ही सबने जोड़ा
सहेंगे दुख हम भी धर्म्मार्थ
पुण्य ही तो है परम-पदार्थ

(७८)

पाप का क्षणिक प्रभाव विलोक
लोभ यदि सके न कोई रोक
शोक, तो उसकी मति पर शोक
बना क्या, बिगड़ा जब परलोक
विजय है वही कि सब संसार—
करे पीछे भी जय-जयकार

(७९)

धर्म्म क्या है इतना असमर्थ
कपट जो करे प्रगति के अर्थ ?
अर्थ ही तब तो हुआ अनर्थ
पुण्य का होना ही है व्यर्थ !
शोक में ही तब तो सुख हो
हमें फिर क्यों दुख में दुख हो ?

(८०)

कौरवों से उनके अनुसार
करें यदि हम भी दुर्व्यवहार
रहा हम में भी फिर क्या सार ?
करो कुछ इसका तुम्हीं विचार
हमारा उनका तो है नाम
किन्तु है पुण्य-पाप-सङ्ग्राम

(८१)

'नियम का पालन किसके सङ्ग' ?
प्रश्न है कृष्णा का स-व्यङ्ग्य,
किन्तु वह है आत्मा का अङ्ग
करें हम कैसे उसका भङ्ग ?
नियम ही अपना तोड़ा जाय
मेघ ही बरसें फिर क्यों, हाय !"

(८२)

अचानक हुआ करुण चीत्कार
"दुहाई धर्म्मराज के द्वार
कहें कैसे हे परमोदार,
बचाओ अपना कुरु-परिवार।"
चौंक कर पाण्डव खड़े हुए
सचिव थे पैरों पड़े हुए

(८३)

"विजित हैं बन्धु आपके सर्व
उन्हें हैं बाँध चुके गन्धर्व
शकुनि, कर्णादिक का भी गर्व
हो गया रण में सहसा खर्व।"
शत्रुओं का सुन यों अपकर्ष
वृकोदर बोले शीघ्र सहर्ष—

(८४)

"शूर-मद था उनको भरपूर
हुआ वह आज अचानक चूर
चलो, हम सबके कांटे क्रूर
हुए ऊपर के ऊपर दूर!
लड़ें उनके पीछे हम क्यों?
करें प्रतिकूल परिश्रम क्यों?

(८५)

चले थे हमें कुढ़ाने को
हमारी हँसी उड़ाने को।
जायँ हम उन्हें छुड़ाने को
कि बैठें हृदय जुड़ाने को?
वीर वे और बली भी हैं
करें छल ही कि छली भी हैं।

(८६)

कहो उनसे, अब धैर्य धरें
विमानों में विचरें, न डरें
जायँ सुरपुर की सैर करें
स्वर्ग का भी साम्राज्य हरें;
स्वर्ग यदि न भी मिलेगा हाल
नरक कोई न सकेगा टाल!"

(८७)

भीम के ऐसे भाव विलोक
हुआ पाण्डव-पति को अति शोक
सके वे और न मन को रोक
और यों बोले उनको टोक—
"भीम, शरणागत का अपमान!
कहाँ है आज तुम्हारा ज्ञान?

(८८)

कौरवों ने जो अत्याचार
किये हैं हम पर बारंबार
करेंगे उनका हमीं विचार
नहीं औरों पर इसका भार;
क्रूर कौरव अन्यायी हैं
हमारे फिर भी भाई हैं

(८९)

जहाँ तक है आपस की आंच
वहाँ तक वे सौ हैं, हम पांच
किन्तु यदि करे दूसरा जांच
गिने तो हमें एक सौ पांच।
कौन हैं ये गन्धर्व गँवार
करें जो आकर यह व्यवहार?

(९०)

वीरता इसे नहीं कहते
कि हम-से पांच बन्धु रहते
हमारे भाई हों बहते
और हम रहें इसे सहते
दण्ड उनको देने के अर्थ
नहीं हैं क्या हम स्वयं समर्थ?

(९१)

वत्स अर्जुन, सत्वर जाओ
और तुम उन्हें छुड़ा लाओ
शत्रु-समझो तो भी आओ,
द्विगुण जय यों उन पर पाओ
भीम, सहदेव, नकुल, सब लोग,
करो जाकर समुचित उद्योग।"

(९२)

कहा अर्जुन ने—"जो आदेश
किन्तु सब लोग करें क्यों क्लेश ?
द्रौपदी, क्या है राज्योद्देश ?
बाँध सकती हो अब तुम केश
आर्य्य के इस सद्भाव-समक्ष
और क्या हो सकता है लक्ष ?"

(९३)

द्रौपदी ने शोकाश्रु पिये
भीम थे भू पर दृष्टि दिये
गर्व से ऊँचा शीश किये
गये अर्जुन गाण्डीव लिये
लिया उनको सिर पर पथ ने
समादर किया चित्ररथ ने—

(९४)

"मित्र, अच्छे आये इस काल
देख लो निज रिपुओं का हाल
तुम्हारे काँटे ये विकराल—
लिये हैं मैंने सभी निकाल
मिले थे सुरपुर में हम लोग
आज फिर आया शुभ संयोग ।"

(९५)

प्रेमपूर्वक बोले तब पार्थ—
"हुआ मैं आज अतीव कृतार्थ,
यहाँ है ऐसा कौन पदार्थ
करूँ जिससे आतिथ्य यथार्थ ?
किन्तु ये भाई हैं मेरे
आप यों जिनको हैं घेरे ।"

(९६)

चित्ररथ बोला—"कैसी बात !
ज्ञात तो हैं इनके उत्पात ?"
कहा अर्जुन ने—"सब हैं ज्ञात,
विश्व भर में हैं वे विख्यात
किन्तु कहते हैं आर्य्य उदार
करेंगे उनका हमीं विचार ।"

(९७)

चित्ररथ बोला बाहु पसार—
"नहीं क्या मुझको यह अधिकार ?"
कहा अर्जुन ने उसी प्रकार—
"आप से जाऊँ जब मैं हार"
"चाहते हो तो यही सही"
चित्ररथ ने यह बात कही ।

(९८)

कहा अर्जुन ने—"अच्छी बात,
कीजिए प्रथम आप आघात
किन्तु वे दिव्यायुध विख्यात,
ज्ञात हो, मुझको भी हैं ज्ञात ।
समझिए मुझको प्रस्तुत ही
वैरयुत नहीं, प्रेमयुत ही ।"

(९९)

अन्त में होने लगा सु-युद्ध
नहीं था फिर भी कोई क्रुद्ध
कार्य्य करते थे विनय-विरुद्ध
किन्तु दोनों के मन थे शुद्ध
पालने को निज पक्ष पवित्र
तर्क-सा करते थे दो मित्र

(१००)

चित्ररथ ने तब की माया,
हुई उसकी अदृश्य काया
त्राण उसने न किन्तु पाया
शब्दवेधी शर धर लाया
बनी वह बाणों की कारा
हुआ बन्दी सा बेचारा !

(१०१)

स्वयं वह करता जो जो वार
पार्थ करते उसका प्रतिकार,
न होता उनका विफल प्रहार
हुई गन्धर्वों की ही हार ।
देख यह रीति लड़ाई की
उन्होंने स्वयं बड़ाई की ।

(१०२)

पार्थ फिर बोले वचन विनीत—
"क्षमा करना मुझको हे मीत !
हार हो चाहे मेरी जीत,
किया है मैंने कर्म्म पुनीत
भाव अब भी हैं मेरे भव्य
कठिन ही होता है कर्तव्य

(१०३)

हुई रक्ताक्त आपकी देह !"
चित्ररथ बोला तब सस्नेह—
"बिजलियाँ चमकीं, बरसा मेह
तृप्त ही हूँ मैं हे गुण-गेह !
आत्मजय तुमने पाया है
शत्रु का शत्रु हराया है !"

(१०४)

लिये तब कौरव-दल को सङ्ग
उड़ा था जिसके मुँह का रङ्ग
फिरे अर्जुन ज्यों मत्त मतङ्ग
पीठ पर डुलता चला निषङ्ग
पहुँच कर पाण्डवराज-समीप
प्रणत वे हुए पाण्डु-कुल-दीप ।

(१०५)

झुका दुर्योधन का भी भाल,
अङ्क में भर उसको तत्काल
युधिष्ठिर बोले आँसू डाल—
"कुल-व्रत पालो हे कुलपाल !"
किन्तु दुर्योधन का वह मौन
कहेगा सम्मतिसूचक कौन ?

मैथिलीशरण गुप्त

गीता-दर्शन ।

लाला कन्नोमल जी, एम ए०, हिन्दी के नामी लेखक हैं । उनके गीता-दर्शन के प्रकाशन से उनकी पाण्डित्य-प्रभा खूब छिटक उठी है । अँगरेज़ी भाषा के आचार्य होने पर भी लाला साहब ने हिन्दी-भाषा का महत्त्व बढ़ाने के लिए यह पुस्तक हिन्दी ही में लिखना पसन्द किया है । यही चाहिए भी । अपनी भाषा का आदर सभी को करना उचित है ।

पाठकों की प्रायः यह इच्छा रहती है कि एक विषय पर जितना जानना हो एक ही स्थान पर, संक्षिप्त शब्दों में, मिल जाय । लाला साहब का गीता-दर्शन पाठकों की इस रुचि के बहुत अनुकूल है । इस पुस्तक में न केवल श्रीमद्भगवद्गीता के सिद्धान्तों का शृङ्खलाबद्ध वर्णन है, किन्तु छहों दर्शनों, एवं नारदीय भक्ति-सूत्रों की भी संक्षिप्त व्याख्या है । लेखक इतने से ही संतुष्ट नहीं ; उन्होंने ईश्वर-गीता और गणेश-गीता का भी आस्वादन कराया है । यह सब इसलिए कि श्रीमद्भगवद्गीता ऐसे अमूल्य ग्रन्थ को समझने के लिए जो बातें आवश्यक हैं वे सभी बता दी जायँ । इसके अतिरिक्त इन सब शास्त्रों का विवरण पढ़ कर मनुष्य को भारतीय विचारों की एकतानता, दृढ़ता और उत्तरोत्तर संवर्धनशीलता में विश्वास हो जाता है । कोई अमर पुस्तक पूर्वार्जित ज्ञानकोष का तिरस्कार नहीं कर सकती । श्रीमद्भगवद्गीता पूर्णतया जातीय पुस्तक है । उसमें भारतीय ज्ञान-भाण्डार का अपूर्व रीति से समावेश हुआ है । श्रीमद्भगवद्गीता में सात्विक ज्ञान की जो कसौटी बताई गई है वह है—अविभक्तविभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्" । इस कसौटी से श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञान पूर्णतया सात्विक है । इस बात को

समझने में लाला साहब के ग्रन्थ से बड़ी सहायता मिलती है। श्रीमद्भगवद्गीता के श्लोकों की जो समता उपनिषदों तथा गणेश-गीता से दिखाई गई है वह—"सर्वोपनिषदो गावः"—वाले वाक्य को चरितार्थ करके श्रीमद्भगवद्गीता का गौरव और भी बढ़ा देती है। लाला साहब ने दर्शनशास्त्रों को परस्पर-विरोधी कहनेवाले लोगों का भले प्रकार नेत्रोन्मीलन किया है। यदि हम श्रीमद्भगवद्गीता के बताये हुए तामसी, राजसी और सात्विकी ज्ञान की परिभाषाओं पर विचार करें तो हमको दर्शन-शास्त्रों के क्रम-विभाग में बड़ी सहायता मिलेगी।

तामस ज्ञान का लक्षण है—

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्॥
गीता १८। २२

अर्थ—जिस ज्ञान से कोई कार्य, हेतु के बिनाही, ऐसा समझा जाय कि जो कुछ है सब वही है, जिससे तत्त्व-बोध भी न हो, और जो अल्प हो वह तामस है।

इस दृष्टि से चार्वाकों के सिद्धान्त तामस ज्ञान में दाख़िल हैं, क्योंकि वे शरीर को ही सब कुछ मान लेते हैं। शरीर—पञ्चमहाभूतों—को ही सब कुछ मान कर हम सारे संसार की व्याख्या नहीं कर सकते। यह सिद्धान्त पूर्ण व्याख्या न करने के कारण अल्प ही है।

अब राजसी ज्ञान की परिभाषा लीजिए —

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नाना भावान् पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्॥
१८। २१

अर्थ—जिस ज्ञान-द्वारा भूतों के नाना भाव पृथक् पृथक् दिखाई पड़ें वह ज्ञान राजस है। इस दृष्टि से वैशेषिक, न्याय और सांख्य राजसी ज्ञान हैं। वैशेषिक में नानात्व पूर्णतया दिखाई पड़ता है। वह नानात्व क्रमशः न्याय और सांख्य में कम होता जाता है। पूर्ण एकता वेदान्त-दर्शन में पाई जाती है। इसीलिए वह सात्विक ज्ञान कहलाने का अधिकारी है। सात्विक ज्ञान का लक्षण गीता में इस प्रकार कहा गया है—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तमविभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥
१८। २०

अर्थ—जिस ज्ञान से सब भूतों में वही अव्यय ब्रह्म दिखाई दे अर्थात् पृथक् वस्तुओं या नानात्व में एकत्व दिखाई दे वह सात्विक ज्ञान है।

यह पुस्तक पढ़ने से अनेक नये नये विचार उत्पन्न होते हैं जिनकी समालोचना थोड़े में नहीं हो सकती। जिज्ञासु पाठक इस पुस्तक को गीता-दर्शन आफ़िस, धौलपुर, से मँगा कर पढ़ें तो उससे बहुत लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक से श्रीमद्भगवद्गीता-विषयक प्रायः सभी मुख्य मुख्य बातें जान सकते हैं। गीता के रचना-काल पर भी अच्छी विवेचना की गई है। श्रीकृष्ण भगवान् का चरित-वर्णन भी संक्षेप में किया गया है। यद्यपि प्राकृत शब्दों में भगवान् के चरित का वर्णन श्रद्धालु लोगों को रुचिकर न होगा, तथापि गीता का तत्त्व समझने में यह वर्णन बहुत उपयोगी होगा।

यदि इस पुस्तक में कुछ कमी है तो इस बात की कि पहले से एक दृष्टि निश्चित नहीं की गई, जिसकी सहायता से सब बातें देखी जायँ। शायद लेखक महाशय तटस्थ या निष्पक्ष रहना चाहते हैं। किन्तु पक्षहीन होने से गति मन्द हो जाती है। पक्षहीनता का फल प्रत्यक्ष है; दूसरों का वर्णन अधिक है, व्याख्या कम है। साथ ही यह बात भी माननी पड़ेगी कि निष्पक्षता के कारण यह ग्रन्थ वृथा खींच खाँच और भ्रम में डालनेवाली शाब्दिक

विवेचना से ख़ाली है। इस गुण ने पुस्तक की उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है। लेखक की कृति प्रशंसनीय है। आशा है कि हिन्दी-भाषा-भाषी इसका समुचित आदर करेंगे।

गुलाबराय, एम० ए०, एल-एल० बी०

एक्सचेञ्ज।

(३)

एक्सचेञ्ज क्या है? उससे क्या लाभ है? उसके भाव में क्यों घटी-बढ़ी हुआ करती है? इस भाव को स्थिर करने के लिए भारत-मन्त्री ने जो करन्सी कमिटी नियत की थी उसने क्या निश्चय किया है और क्या उपाय बताये हैं? ये सब बातें एक्सचेञ्ज शीर्षक पहले दो लेखों में लिखी जा चुकी हैं। यहाँ हम उन उपायों पर विचार करेंगे जो कमिटी द्वारा निश्चित किये गये हैं, और जो जो चेष्टायें भारत-सरकार एक्सचेञ्ज स्थिर करने के लिए कर रही है उनकी भी आलोचना हम यहीं करेंगे।

कमिटी का यह मन्तव्य ठीक नहीं कि निकिल धातु की अठन्नी के प्रचार में बाधा पड़े तो ५) या १०) तक उसका लेना-देना सरकारी आज्ञा से बाँध दिया जाय। यदि सरकार को चाँदी का रुपया ढालना आवश्यक है तो चाँदी की अठन्नी भी बनाना आवश्यक है। निकिल धातु की अठन्नियों का प्रचार करने से सरकार की बात में बट्टा लगता है। निकिल की इकन्नी, दुअन्नी अथवा चवन्नी से इतनी हानि नहीं है जितनी निकिल की अठन्नी से है। रुपये के लिए जहाँ से चाँदी प्राप्त की जाती है, वहीं से अठन्नियाँ बनाने के लिए भी चाँदी का प्रबन्ध करना चाहिए। यह तो स्पष्ट बात है कि अठन्नी, चवन्नी आदि छोटे सिक्कों का चलन परिमित ही है,—अपरिमित नहीं। पर रुपये का यह हाल नहीं है। अपनी साख बनी रखने के लिए सरकार को सभी छोटे सिक्के निकिल के न बनाने चाहिए। अन्य छोटे सिक्कों की अपेक्षा अठन्नी का प्रचार बहुत सङ्कुचित है। उसके लिए चाँदी पाने में ऐसी विशेष उलझनें न पड़ेंगी। कमिटी ने निकिल की अठन्नी चलाने की सिफ़ारिश की है। पर भारतवासियों को उसकी यह राय उपयुक्त नहीं जँचती। वे तो निकिल की अठन्नी चाहते ही नहीं।

कमिटी का यह भ्रम है कि एक्सचेञ्ज के तेज़ भाव से भारतवर्ष में चीज़ों की क़ीमत अधिक नहीं बढ़ने पाई। जब एक्सचेञ्ज का भाव एक शिलिङ्ग चार पेन्स फ़ी रुपया था तब चीज़ों का भाव इतना नहीं चढ़ा था। चीज़ों के भाव की इस घटी-बढ़ी के और भी कई कारण हैं। यदि एक्सचेञ्ज का भाव तेज़ होने से चाँदी का भाव गिर जाता है तो यह सभी को कहना पड़ेगा कि चार-पाँच वर्ष पहले जब चीज़ों का भाव मद्दा था तब एक्सचेञ्ज का भाव भी तेज़ रहा होगा। पर यह बात नहीं है। उस समय एक्सचेञ्ज का भाव बहुत मद्दा था। अतः कमिटी का उपर्युक्त सिद्धान्त ठीक नहीं है। हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि यह युक्ति केवल एक्सचेञ्ज का भाव ऊँचा रखने के उद्देश से ही सुझाई गई है।

कमिटी समझती है कि भारतवर्ष के व्यापार और औद्योगिक धन्धों में एक्सचेञ्ज के तेज़ भाव से कोई बाधा न पड़ेगी। पर कमिटी का यह सिद्धान्त भी निर्भ्रान्त नहीं। भारतवर्ष से विलायत माल भेजनेवालों को एक्सचेञ्ज के तेज़ भाव के कारण लाखों और करोड़ों रुपये का नुक़सान पड़ा है और पड़ रहा है। भारतवर्ष की जिस वस्तु की क़ीमत पहले १०००) रु० मिलते थे उसी की क़ीमत अब लगभग ६००) ही आते हैं। कल्पना करो कि भारतवर्ष से इँगलेंड को १०० मन रुई गई। उसकी क़ीमत ३०० पौण्ड मिलते हैं। जब पौण्ड का भाव १५) का था तब उसके दाम ४५००) होते थे। अब पौण्ड का भाव ८) रुपये के लगभग है। इसलिए उसके दाम सिर्फ़ २४००) हुए। इन दोनों रक़मों में २१००) का अन्तर है। भारतवर्ष से रुई भेजनेवालों को यही नुक़सान है। जब एक छोटी सी रक़म में ही इतना नुक़सान पड़ता है तब लाखों करोड़ों रुपये की चीज़ों की बिक्री में कितना नुक़सान पड़ेगा? एक्सचेञ्ज के तेज़ भाव से भारतवर्ष के व्यापार और उद्योग को सचमुच ही नुक़सान है, इसे सिद्ध करने की ज़रूरत नहीं। इस विषय में भारत के सभी व्यापारियों और

अर्थ-शास्त्रज्ञों का यही मत है। कमिटी कहती है कि अभी यह आशा नहीं है कि चीज़ों का भाव उतर जाय, पर यदि एक्सचेञ्ज का भाव तेज़ होने से हानि होने लगे तो इस विषय पर फिर विचार किया जाय। यह कोई बड़ी बुद्धिमत्ता की बात नहीं। बार बार विचारार्थ कमिटी नियत करने में भारतवासियों के रुपये तो ख़र्च होते ही हैं, इधर कमिटी के विचारों का फल दीर्घकाल में होता है। तब तक भारतवासियों को कितनी हानि होती है—यह सभी जानते हैं। यह बात समझ में नहीं आती कि इस प्रश्न को कमिटी ने अधूरा क्यों छोड़ा और पहले ही ऐसे उपाय क्यों नहीं सोच निकाले जिससे कम से कम १५-२० वर्षों के लिए फिर कमिटी नियत करने की आवश्यकता न रहती। क्या इतना व्यय, इतना परिश्रम और इतना समय व्यर्थ ही गया? सभी भारतवासियों का ख़याल था कि कमिटी ऐसे उपाय सोच निकालेगी जिनका फल सन्तोषदायक होगा और यह जटिल प्रश्न भी हल हो जायगा। पर उसने तो यह काम अधूरा ही छोड़ दिया और जो कुछ उपाय बतलाये भी वे ऐसे हैं कि उनसे भारत के व्यापार और उद्योग में बाधा पड़ती है।

भारतवर्ष से प्रति वर्ष ३७½ करोड़ रुपये इँगलेंड को, सरकारी ख़र्च के लिए, भेजे जाते हैं। इस ख़र्च का नाम अँगरेज़ी में होम चार्जेज़ (Home Charges) है। सरकारी कर्मचारियों की पेन्शन, छुट्टी पर गये अफ़सरों की तनख़्वाह, विलायत के धनाढ्यों के उन रुपयों का सूद जो भारतवर्ष में रेल, नहर आदि महकमों में लग रहे हैं, भारतमन्त्री और उसके दफ़्तर के कर्मचारियों की तनख़्वाह, भारत-सरकार के लिए जो माल इँगलेंड से आता है उसकी क़ीमत—इन्हीं सब ख़र्चों के लिए यह रक़म भेजी जाती है। यदि पौण्ड का भाव १५) का है तब तो इस ख़र्चे की रक़म ३७½ करोड़ रुपये होती है और यदि १०) है तो सिर्फ़ २५ करोड़ ही होती है। कमिटी लिखती है कि अब पौण्ड का भाव १०) बाँध दिया गया है। पहले वह १५) था। अतः भारत-सरकार को इस ख़र्च के भेजने में १२½ करोड़ का फ़ायदा होगा, क्योंकि अब उसे २५ ही करोड़ रुपये भेजने पड़ेंगे। यह बात ठीक है, पर सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो जो रक़म फ़ायदे की समझी गई है वह ग़रीब किसानों का पेट काट कर आई है; क्योंकि वह देश कृषि-प्रधान है और लगभग सभी माल, जो हिन्दुस्तान से विलायत को भेजा जाता है, किसानों का उत्पन्न किया हुआ रहता है। विलायत में एक्सचेञ्ज के कारण जिस माल के दाम इन्हें २००) मिलते थे उसके दाम अब सिर्फ़ १००) या १२५) मिलते हैं। इस प्रकार यह सरकारी फ़ायदा किसानों का पेट काटता है।

एक्सचेञ्ज के तेज़ भाव से जितना नुक़सान भारतवासियों को माल भेजने में पड़ता है उसकी अपेक्षा जो बचत होम चार्जेज़ के सम्बन्ध में होगी वह बहुत ही कम है। सच पूछो तो यह बचत काल्पनिक ही है।

कमिटी ने अब सोने-चाँदी का सम्बन्ध नियत करके पौण्ड का भाव १०) बाँधा है। एक रुपये का वज़न १८० ग्रेन होता है जो एक तोले के बराबर है। इसमें से १६५ ग्रेन तो चाँदी होती है और १५ ग्रेन अन्य धातुयें, जिनका मिश्रण चाँदी के साथ किया जाता है। एक सावरिन (पौण्ड) का वज़न १२३.२७४४७ ग्रेन होता है, जिसमें ११३.००१६ ग्रेन सोना होता है और बाक़ी अन्य धातुओं का मिश्रण। यह सम्बन्ध १ : १५ के लगभग है अर्थात् एक तोला सोना १५ तोले चाँदी के बराबर है। एक रुपये में चाँदी सिर्फ़ १६५ ग्रेन होती है, १८० ग्रेन नहीं। वह एक तोले के बराबर है। इसलिए एक तोले सोने की क़ीमत लगभग १६) हुई। प्राचीन समय में सोने-चाँदी का सम्बन्ध पहले पहल बेबिलोनिया देश में बाँधा गया था। परन्तु दैनिक व्यवहारों में इसका प्रयोग ईरानवालों ने ही किया था। यह सम्बन्ध १ : १३ या १३½ था। इस समय सरकार ने १ : १५ के लगभग सम्बन्ध बाँधा है। अब विचारणीय यह है कि सरकार ने जो सम्बन्ध बाँधा है वह वास्तव में है भी या नहीं। सरकार के नियत किये हुए सम्बन्ध से १ तोला सोना १६) रुपये का होता है, किन्तु सोने का भाव २३) या २४) तोला है। अर्थात् नियत भाव में ७) या ८) रु० तोले का भेद है। यदि यह भाव निश्चित बना रहे तो सोना सस्ता होना चाहिए और सोना सस्ता होने का उपाय वही है जो कमिटी ने बतलाया है। वह यह कि भारतवर्ष में सोना आने पर जो सरकारी रुकावटें हैं वे हटा दी जायँ और अन्य वस्तुओं के समान सोना भी आता रहे; सरकार की तरफ़ से कोई

रुकावट न हो। यह उपाय ठीक है, पर सरकार ने कमिटी की और और बातों को तो माना है, पर इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया है। पौण्ड का भाव १०) रक्खा था; उसे तो मान लिया, लेकिन जिस मूल नियम के आधार पर कमिटी ने यह भाव बाँधा था उसे वैसा ही छोड़ दिया है। उसने सोना सस्ता करने को अपना निराला ही उपाय निकाला है। वह यह है कि सरकार महीने में दो बार सोना खुद बेंचती है। बेंचने का भी ढँग यह रक्खा है कि वह लोगों से सोने के भाव के टेन्डर माँगती है और उनमें जो सबसे अधिक भाव होता है उसी पर बेचती है। यदि सरकार स्वयं १६) तोले का भाव नियत करके सोना बेचती तो कमिटी का बाँधा हुआ सम्बन्ध ठीक हो जाता। पर सरकार ने यह बात न की। जो लोग सोने का सट्टा करते हैं और जिन्होंने तेज़ भाव पर सोने की ख़रीद की है वे कब चाहेंगे कि सोने का भाव गिर जाय और उन्हें नुक़सान हो। इसलिए वे ऊँचे भावों के टेन्डर देते हैं और परिणाम यह होता है कि सोने का भाव अधिक नहीं गिरने पाता। इस तरह सोने को नियत भाव पर लाने के लिए सरकार को अभी वर्षों चाहिए। कमिटी की सिफ़ारिश के विरुद्ध सोने की रुकावटें न हटाने में सरकार की कोई गूढ़ नीति है। रुकावटें हटाना तो दूर रहा, उन्हें और भी दृढ़ करने के लिए एक नया क़ानून बना दिया गया है, जिसका नाम Gold Import Act है।

सोने का भाव अभी १६) तोला नहीं हुआ; इसलिए एक्सचेन्ज का भाव, जो सरकार ने बाँधा है, स्थिर नहीं हो सकता। यह भाव १०) पौण्ड अर्थात् १) दो शिलिङ्ग के बराबर है। पर इस समय भी १) दो शिलिङ्ग और चार पेन्स के बराबर है। जब कमिटी की रिपोर्ट निकली थी तब एक्सचेञ्ज का भाव एकदम २ शिलिङ्ग ९ या १० पेन्स तक हो गया था।

एक्सचेञ्ज का भाव स्थिर करने में सोने पर जो रुकावटें हैं उन्हें दूर करना अत्यन्त ही आवश्यक है और कमिटी की राय भी यही है। किन्तु इन रुकावटों को दूर करने के लिए अभी सरकार उद्यत नहीं है। इसलिए कमिटी का करा धरा सब ख़ाक में मिल गया है। न सरकार सोने की आमद पर रुकावटें हटायगी, न सोना सस्ता होगा, और न १०) पौण्ड का भाव स्थिर होगा। भाव स्थिर न होने से व्यापारियों को जो नुक़सान हुआ है और हो रहा है वह वैसा ही होता रहेगा।

कमिटी ने सिफ़ारिश की थी कि जब एक्सचेञ्ज का भाव सस्ता हो जाय तब जैसे भारतमन्त्री भारत-सरकार पर होम चार्जेज़ इत्यादि वसूल करने के लिए हुण्डियाँ बेचा करते हैं वैसे ही भारत सरकार भी भारतमन्त्री पर हुण्डियाँ बेचा करे। इसका परिणाम यह होगा कि भाव फिर तेज़ हो जायगा। पहली हुण्डियों को कौन्सिल बिल्स (Council Bills) और दूसरी हुण्डियों को रिवर्स कौन्सल्स (Reverse Councils) कहते हैं। इस सिफ़ारिश को भारत-सरकार ने बड़ी ख़ुशी से स्वीकार किया है। पर जिस नियम पर सिफ़ारिश की गई थी उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया गया। नियम यह था कि जब एक्सचेञ्ज का भाव सस्ता हो तब ऐसी हुण्डियाँ बेची जायँ। पर भारत-सरकार ने एक्सचेञ्ज का तेज़ भाव रहते हुए भी इन हुण्डियों को धड़ाधड़ बेचना आरम्भ कर दिया है। उसका फल यह है कि इँगलेंड में भारतवर्ष की जो रक़म थी वह धीरे धीरे अन्तर्द्धान हो रही है। इस काररवाई से अब तक उसमें से लगभग १० करोड़ रुपये उठ गये हैं। यह भारतवर्ष का दुर्भाग्य है। यदि कोई सरकार से पूछता है कि ऐसी भद्दी काररवाई क्यों की जाती है तो उसका कोई सन्तोषदायक उत्तर नहीं मिलता। इस काररवाई का भद्दापन इसी से मालूम हो सकता है कि इसकी निन्दा पानियर ने भी की है, जो नौकरशाही का मुख्यपत्र है। पहले तो यह काररवाई कमिटी की सिफ़ारिश के विरुद्ध है, और फिर साधारण बुद्धिमत्ता के भी प्रतिकूल है। इसमें भारतवर्ष का खुल्लमखुल्ला नुक़सान है। फ़ायदा है तो केवल भारत के अँगरेज़-व्यापारियों और अँगरेज़-कर्मचारियों का, जिन्हें लाखों रुपये इँगलेंड भेजने पड़ते हैं। इन्हें बाज़ार-भाव से कम दामों में विलायत की हुण्डियाँ मिल जाती हैं, जिनसे वे विलायत में अपना भुगतान कर देते हैं। समाचार-पत्रों में इस बात की भी शिकायत है कि ये हुण्डियाँ हिन्दुस्तानियों को कम मिलती हैं। न मिलें, ऐसा कोई हुक्म तो नहीं है, पर अमलदरामद कुछ ऐसा रक्खा गया है कि अँगरेज़ों को तो ये

हुण्डियाँ सुगमता से मिल जायँ, पर हिन्दुस्तानियों को भरपूर चेष्टा करने पर भी कम मिलें। यह शिकायत कहाँ तक ठीक है, हम नहीं कह सकते। यह बात भी नहीं कि सरकार हिन्दुस्तान के अँगरेज़-व्यापारियों और अँगरेज़-कर्मचारियों के दबाव में आकर उनके फ़ायदे के लिए ऐसी काररवाई कर रही है। भारतवर्ष को प्रति वर्ष करोड़ों रुपये होमचार्जेज़ के लिए विलायत भेजने पड़ते हैं। उसे वसूल करने के लिए भारतमन्त्री हुण्डियाँ, जिन्हें कौन्सिलस कहते हैं, निकालते रहते हैं। परन्तु इँगलेंड पर भारतवर्ष का कुछ रुपया न चाहिए, जिसे वसूल करने के लिए भारत-सरकार लन्दन पर हुण्डियाँ करे। यदि भारत-सरकार हुण्डियाँ करना भी चाहे तो वह करेगी कैसे, क्योंकि भारतवर्ष को तो इँगलेंड से कुछ रुपया लेना ही नहीं है, जिसका इन हुण्डियों द्वारा जमाख़र्च हो जाय।

भारतवर्ष में चांदी-सोने का सिक्का ढालने से भारत-सरकार को जो फ़ायदा होता रहा है वह सब इँगलेंड में एक कोष में जमा होता है, जिसे Gold Standard Reserve (सुवर्णकोष) कहते हैं। इस कोष में, सन् १९१९ ईसवी के नवम्बर महीने में, ५६,१५,७४,७५५) रुपये जमा थे। नाम कोष का है सुवर्णकोष, लेकिन सोना उसमें टका भर भी नहीं। उसमें २, ३ या ३½ फ़ी सैकड़ा वार्षिक सूद के काग़ज़ रहते हैं। जब ये काग़ज़ ख़रीदे गये थे तब पौण्ड का भाव १५) था। उसी भाव से इनकी क़ीमत के रुपये दिये गये थे। अब सरकार ने पौण्ड का भाव १०) बांधा है—जो प्रचलित नहीं है क्योंकि बाज़ार भाव ७॥) या ८) है—इस भाव से ये काग़ज़ लगभग आधी क़ीमत के रह गये हैं। इस पर भी तुर्रा यह कि जिन गवर्नमेंटों के ये काग़ज़ हैं उनकी साख गत युद्ध में कम होने से इन काग़ज़ों का भाव गिर गया है। आप भारत-सरकार के प्रामिसेरी नोटों को ही देखिए। इनका भाव पहले ९८) या ९९) रुपये था। अब ५६) या ५७) रुपया है। इसी तरह पहली ख़रीद का १०००) रुपये का प्रामिसेरी नोट अब ५५०) रुपये का रह गया है। इस तरह इन काग़ज़ों की भी क़ीमत घट गई है।

आधी क़ीमत तो एक्सचेञ्ज में चली गई और कुछ क़ीमत भाव घटने से घटी। इस प्रकार जो काग़ज़ १०००) का था वह अब ३००) या ४००) का रह गया। जो हुण्डियाँ भारत-सरकार विलायत पर करती है उनका रुपया भारत-मन्त्री इन काग़ज़ों को बेच कर देता है और इस तरह इस कोष की पूँजी नष्ट होती जाती है। १५० लाख की क़ीमत के काग़ज़ ७० लाख की हुण्डियों के भुगतान में ख़र्च हो गये हैं। इस कोष के विषय में कमिटी की राय है कि इस कोष में यथाशक्ति सोना अधिक रक्खा जाय और इसका अर्द्धांश भारत में रहे। बाक़ी रुपये के सरकारी काग़ज़ रहने चाहिए। इस सम्बन्ध में भारतवासियों की सम्मति यह है कि वह पूरा कोष ही भारत में रहना चाहिए, क्योंकि वह भारत ही का है। गवर्नमेंट ने अभी इस विषय में कुछ नहीं किया। यह कोष लन्दन में ही है। यदि इस कोष में सोना-चांदी रहती, जैसा कि उसका उद्देश है, तो सरकार को उसकी पूँजी में घाटा कभी न पड़ता। बड़ी अच्छी बात हो यदि सरकार इस कोष को भारत में ही रक्खे। यदि उसके रुपये से सूद ही लेना हो तो अच्छे प्रतिष्ठित बेङ्कों और साहूकारों को रुपया उधार दे दे, और उनसे सूद लिया करे। सरकारी काग़ज़ों के सूद से, जो उसमें ख़रीद कर रक्खे जाते हैं, उतनी आमदनी नहीं हो सकती जितनी भारत के बेङ्कों और साहूकारों को रुपया देने से हो सकती है। यहाँ व्यापार के लिए कभी कभी रुपये की बड़ी माँग रहती है और साहूकारी हुण्डी का भाव २॥) या ३) तक पहुँच जाता है, जिसका अर्थ है १५) या १८) रुपये फ़ी सैकड़ा वार्षिक सूद। भारतवर्ष में जितने रुपयों के नोट जारी हैं उनकी क़ीमत का रुपया एक और कोष में रक्खा जाता है जिसे Paper Currency Reserve (पेपर करन्सी रिज़र्व) कहते हैं। यह कोष भी लन्दन में ही है। इसमें पिछले नवम्बर मास में १,७९,६७,००,०००) रुपये की पूँजी थी, जिसमें सौ पीछे ४४.६ रुपये की सोना-चांदी थी और बाक़ी रुपये के सरकारी सूदी काग़ज़। कमिटी ने यह निश्चय किया है कि इस कोष में सौ पीछे ४० रुपये की सोना-चांदी रहे; बाक़ी सब रुपया सरकारी काग़ज़ों में रहे। इसका यह मतलब है कि जितना चांदी-सोना पहले रहता था उससे भी कम रहे। मान लो कि इस समय के क़ानून में कम से कम ३३.२ फ़ी सदी सोना-चांदी रखना निर्दिष्ट है। पर अमलदरामद तो यह रहा

कि इसकी तादाद बहुत ज़ियादह रही है। यदि ऐसी तादाद ही बाँधी जाती है तो ४० फ़ी सदी से कम न होनी चाहिए।

कमिटी ने यह सिफ़ारिश भी की है कि इस कोष में जितना चाँदी-सोना रहे वह हिन्दुस्तान में ही रक्खा जाय; क्योंकि इस विषय में भारतवासी बड़ा आन्दोलन मचा रहे हैं। सरकार ने यह भी अभी तक नहीं किया है। सच तो यह है कि सभी कोषों को भारत में ही रखना चाहिए, जिससे सरकार की साख बनी रहे और लोग यह न कह सकें कि सरकार काग़ज़ के नोट बना बना कर रुपया इकट्ठा करती और इँगलेंड भेजती है। बुद्धिमान् और शिक्षित पुरुष तो समझते हैं कि जितने के नोट जारी हैं उतने की रक़म सरकार अलग जमा रखती है। पर सर्व-साधारण मनुष्यों का ख़याल यही है कि सरकार तो केवल काग़ज़ का रुपया ही बना देती है; उसके एवज़ में कुछ नहीं रखती। यदि यह कोष भारतवर्ष में रहे तो कोई भी ऐसा न कह सके।

सोने-चाँदी के सिवा, कोष का बाक़ी रुपया भारतवर्ष में उसी प्रकार काम में लाया जाय जैसा सुवर्ण-कोष का रुपया। यदि इन दोनों कोषों के रुपये से भारत के व्यापार को सहायता मिले तो व्यापार का रूप ही बदल जाय। इन कोषों के रुपयों से विलायत के व्यापारी फ़ायदा उठाते हैं—हिन्दुस्तान के व्यापारी, जिनका हक़ फ़ायदा उठाने का है, उससे वञ्चित रहते हैं।

यदि इन दोनों कोषों की पूँजी मिलाई जाय तो वह २,३५,८२,७४,७५५) रुपये होती है। भारत की यह सब रक़म लन्दन में ही रहती है और इससे लाभ उठाते हैं इँगलेंड के व्यापारी। यदि भारत के साथ न्याय किया जाय तो सबसे पहले ये सब रुपये भारत में लाकर रक्खे जायँ। उनमें से आधे रुपये का तो सोना-चाँदी रक्खा जाय। और आधे रुपये अच्छे सूद पर बेङ्कों अथवा साहूकारों के काम में लगा दिये जायँ। यह रक़म अन्य देशों के कमसूदी काग़ज़ों में न लगाई जाय। इन काग़ज़ों की क़ीमत ही नहीं घट गई है, बल्कि एक्सचेञ्ज तेज़ होने के कारण उनके आधे दाम रह गये हैं। सरकार भारतवर्ष में इस रुपये से फ़ायदा उठाने के लिए एक ऐसा महकमा खोल सकती है जिसका उद्देश केवल इस रुपये को ऐसे काम में लगाना हो जिससे उसकी वृद्धि होती रहे। अच्छी कम्पनियों के शेयर ख़रीदना, अच्छी हैसियत की जायदाद गिरवी रखना, अच्छी जमानत पर राजा-महाराजाओं तथा सेठ-साहूकारों को क़र्ज़ देना, अच्छे सरकारी काग़ज़ ख़रीदना, जिससे एक्सचेञ्ज के कारण नुक़सान न उठाना पड़े। रुपया बड़े बड़े कामों में—जैसे नहर, रेलवे आदि बनाने में—लगाना चाहिए। इससे सरकार की आमदनी अच्छी होगी। यह बात सभी को मालूम है कि भारतवर्ष में बड़े बड़े कामों में विलायत के आदमियों का बहुत सा रुपया लग रहा है, जिसका लाखों रुपया सूद आता है और सरकार को प्रति वर्ष भेजना पड़ता है। होम-चार्जेज़ में इस सूद की रक़म बहुत बड़ी है। प्रश्न होता है कि जब भारतवर्ष का इतना रुपया कोषों में है तब फिर विलायतवालों का रुपया क्यों न चुका दिया जाय, और उससे जो फ़ायदा होता है वह ख़ुद ही क्यों न उठाया जाय। इस तरह करने से होम-चार्जेज़ भी कम होंगे और सरकार को लाभ भी अधिक होगा।

अर्थ-शास्त्र का सिद्धान्त है कि जिस देश से माल बाहर अधिक जाय और बाहर से कम आवे वह देश समृद्धि-सम्पन्न है। पर इस नियम में मर्म की एक बात यह है कि यदि बाहर जानेवाला माल उसी देश का बना हुआ है—जैसे सौदागरी माल, दस्तकारी, कलों का बना माल—तब तो वह देश समृद्ध है, पर यदि ये कच्चे माल हैं और ज़मीन की पैदावार है—जैसे अनाज, रुई, जूट, बीज आदि—तो वह देश ऐश्वर्य्यवान् नहीं है। भारतवर्ष की यही दशा है। यहाँ से कच्चे ही माल जाते हैं और आते हैं विदेश के बने हुए माल। जब तक यहाँ से बना हुआ माल बहुत सा न जायगा तब तक इस देश की अर्थ-वृद्धि नहीं हो सकती।

अब अर्थ-शास्त्र का दूसरा सिद्धान्त देखिए। वह है Balance of Trade अर्थात् व्यापार की तराज़ू का पलड़ा स्थिर रखना। सभी देशों में उनके व्यापार की तराज़ू का पलड़ा किधर झुकता हुआ है, अपनी ओर या दूसरे देशों की ओर? यदि उसकी तरफ़ झुकता हुआ है तो उसकी साहूकारी पक्की है; उसे दूसरे देशों का कुछ देना नहीं रहता है; उलटा उसे दूसरे देशों से लेना रहता है। वह महाजन व्यवहारी है और अन्य देश उसके ऋणी। इस विषय में

भारतवर्ष की साख पक्की है। उसके व्यापार का पलड़ा उसकी ओर ही झुका रहता है। अन्य देशों को हमेशा उसे देना रहता है।

पिछले साल, अर्थात् १९१८—१९१९ के भारतीय व्यापार का चिट्ठा देखिए—

	पौण्ड
भारतवर्ष से अन्य देशों को माल गया—	१,६९,२४,२०,०००
,, में अन्य देशों से माल आया—	११,२६,८९,०००
बाक़ी निकाल कर भारत का अधिक माल कितना गया ?	५,६५,५३,०००
सोना-चाँदी आदि कितना आया—	१,५६,५१,०००
कुल बाक़ी—	४,०९,०२,०००

यदि इस रक़म को १०) पौण्ड के हिसाब से बढ़ावें तो ४०,९०,२०,०००) रुपये होते हैं और १५) पौण्ड के भाव से ६१,३५,३०,०००) रुपये हो जाते हैं। यदि एक्सचेञ्ज के औसत भाव से लगावें तो ४५ करोड़ रुपये हुए। यही भारत के व्यापार का नीचा पलड़ा है। अर्थात् अन्य देशों से भारत को सन् १९१८–१९ में इतनी रक़म और लेनी थी। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि अन्य देशों के साथ भारत के व्यापार का पलड़ा इतनी रक़म से भारी था, या नीचे को झुका था।

अब आप विचार कीजिए कि, यदि एक्सचेञ्ज का भाव तेज़ होगा तो अन्य देशों को कम रुपया देना पड़ेगा और मद्दा होगा तो अधिक।

यदि पौण्ड का भाव १५) है—जिसका मतलब एक्सचेञ्ज का भाव सस्ता होना है— तो कुल बाक़ी निकाले हुए ४,०९,०२,००० पौण्डों के ६१,३५,३०,०००) रुपये देने पड़ेंगे। यदि १०) रुपये पौण्ड है—जो एक्सचेञ्ज का तेज़ भाव है—तो ४०,९०,२०,०००) और देने पड़ेंगे। यदि पौण्ड का भाव ७॥) का है—जो और भी तेज़ एक्सचेञ्ज हुआ, तो यह रक़म सिर्फ़ ३०,६७,६५,०००) ही रह जायगी।

पहले १५) का भाव था, अब १०) का भाव बाँधा गया है; पर लेन-देन लगभग ७॥) के भाव से ही हो रहा है। अब विचार कीजिए कि इससे भारतवर्ष को कितना नुक़सान हुआ है और हो रहा है।

सन् १९१७ के जनवरी महीने से आज तक, अर्थात् अप्रेल सन् १९२० तक, ३ वर्ष ३ महीने हुए। इस इतने समय में दिन पर दिन एक्सचेञ्ज का भाव बढ़ता ही गया है। देखिए—

सन् और महीना					
१९१७ जनवरी	१ शिलिङ्ग	४ $\frac{१}{४}$	पेन्स	एक रुपये का भाव
१९१७ अगस्त	१ शि०	५	पे०	,,
१९१८ अप्रेल	१ शि०	६	पे०	,,
१९१९ मई	१ शि०	८	पे०	,,

सन् और महीना				एक रुपये का भाव
१९१९ अगस्त	१ शि०	१०	पे०	,,
१९१९ सितम्बर	२ शि०			,,
१९१९ नवम्बर	२ शि०	२	पे०	,,
१९१९ दिसम्बर	२ शि०	४	पे०	,,

१९२० जनवरी फ़रवरी अप्रेल } एक्सचेञ्ज का भाव २ शिलिङ्ग ११ पेन्स तक चढ़ गया और फिर धीरे धीरे उतर रहा है। तब भी अभी २ शि० ४ पे० या ३ पेन्स से नीचे नहीं गया।

इन तीन वर्षों और तीन महीनों में एक्सचेञ्ज की तेज़ी के कारण भारत को करोड़ों रुपयों का नुक़सान हो गया है। इस नुक़सान से माल मँगानेवालों का फ़ायदा निकाल दिया गया है—अर्थात् यह नुक़सान Balance of Trade की रक़म पर ही लिया गया है। यदि इस नियम से कुल नुक़सान आज तक का निकाला जाय तो लगभग एक अरब बैठेगा। इस दरिद्री देश के लिए तीन वर्षों में असली नुक़सान एक अरब के लगभग होना बहुत ही शोचनीय है। यह उसकी आर्थिक दशा का मार्मिक ह्रास है।

कन्नोमल, एम० ए०

पाप की चोरी।

(१)

उसका पूरा नाम वसन्तराम था; पर गाँव के सभी आदमी उसे वसन्ता कहते थे। चचा, चाची के सिवा वसन्ता का, कम से कम क़ानूनन, अपना कोई आदमी न था। गाँव के आदमियों ने क़ानून के ख़िलाफ़ हो कर उसे अपना लिया था। और, जो क़ानून की रू से वसन्ता के अपने होते थे वे पराये हो गये थे। हाँ, इसमें सिर्फ़ उसके चचा, चाची का ही क़ुसूर न था, उसका भी था।

गाँव भर की बेगार भुगताने में वसन्ता बड़ा मज़बूत था। किन्तु घर के, अर्थात् चचा के, काम में हाथ तक न लगाता था। वसन्ता खेती के काम में भी खूब होशियार था; किन्तु उसके चचा को उससे कभी सहायता न मिलती थी। उसे घर के काम में लगाने के लिए उसके चचा ने, बहुत कोशिश की; पर उसने हमेशा हाँ-हूँ करके टाल ही दिया। इधर उधर की बेगारें भुगता कर जब वह दोपहर को घर वापस आता और हँसते हँसते चाची से रोटी माँगता तब वह उस पर बिना चिल्लाये न रहती।

वसन्ता के चचा, चाची इसके लिए सिर्फ़ वसन्ता पर ही चिल्ला कर ठण्ढे न होते थे, बल्कि पास-पड़ोसियों को भी दो-चार उलटी-सीधी सुनाने से बाज़ न आते थे। पड़ोसियों में भी जगुआ पर वे बहुत ही सख़्त नाराज़ थे। उन का ख़याल था कि इसी कढ़िये (जगुआ) ने हमारे भतीजे को कुछ दवा-दारू खिला कर अपने बस में कर लिया है। नहीं तो वह इसे इतना मानता ही क्यों।

(२)

बूढ़ा जगन्नाथ (जगुआ) ज़ात का माली था। एक धेवते और धेवती के सिवा उसके कोई न था। धेवता चुनुआ जवान होते हुए भी घर का काम बिलकुल न देखता था। इधर उधर गप्पें लड़ाने से ही उसे फ़ुरसत न मिलती थी। उसने एक साँग की मण्डली में नौकरी कर ली थी। बीच में जब कभी उसे रुपए-पैसे की ज़रूरत पड़ती थी तभी घर आता था और नाना को तङ्ग किया करता था। जगुआ की दो-चार बीघे जो ज़मीन थी उसमें खेती होती थी। घर पर सिर्फ़ जगुआ और उसकी धेवती सुखिया ही रहती थी। सुखिया की अवस्था क़रीब १२ वर्ष के थी।

वसन्ता भी जगुआ को नाना कहता था। बूढ़ा जगुआ तम्बाकू बहुत पीता था। इसी से तम्बाकू के धनी वसन्ता से उसकी खूब पटती थी। एक दिन जगुआ धान कूट रहा था। खूब ज़ोर का पानी पड़ रहा था। इसी समय वसन्ता आ पहुँचा। उसने आते ही कहा—"सुखिया, कली कहाँ है री"?

धूम्रपान करने के बाद वसन्ता ने कहा—"नाना, लाओ मैं भी हाथ लगवा दूँ।" दोनों मिल कर धान कूटने लगे। सुखिया बहुत देर से वसन्ता का मुँह देख देख कर कुछ सोच रही थी। वह एकाएक कह उठी—"भइया, क्या तुमने आज रोटी नहीं खाई"?

एकाएक सुखिया के इस सवाल से वसन्ता सिटपिटा सा गया। उसके मुँह से यह साफ़ मालूम हो गया कि सचमुच ही आज उसने कुछ नहीं खाया है। जगुआ ने कहा—"अरे, अब तलक नहीं खाया? सुखिया, तू कैसे जान गई? मैं तो बुड्ढा हूँ। तो भी कुछ नहीं समझा"। बूढ़े की आँखों में आनन्द-मिश्रित वेदना के आँसू छलक आये।

सुखिया उसी वक़्त वसन्ता के लिए खाना ले आई। वसन्ता ने खाते खाते कहा—"सुखिया, खाना तूने ही बनाया है"? सुखिया ने ज़रा झेंप कर कहा—"हाँ।"

"वाह, तू तो बड़ा अच्छा खाना बनाती है।"

सुखिया—"हैं, झूठ कहते हो। हँसी करते हो। क्या बुरा बना है"?

"तेरी क़सम, बुरा नहीं बना। बहुत अच्छा बना है। चाची के से भी अच्छा"।

"चाची बहुत अच्छा बनाती है?"

वसन्ता—"हाँ। बहुत अच्छा बनाती है।"

चाची का ज़िक्र आने के कारण सुखिया ने पूछा—"हाँ भइया, आज तुमने खाया क्यों नहीं? क्या चाची चिल्लाई थी?"

वसन्ता ने उदास हो कर कहा—"चचा ने खेत पर बल्द ले जाने को कहा था। मैं ले नहीं गया। इसी से चिल्लाई थी।"

"तुमने चचा का कहना क्यों नहीं माना?"

"मैं तो ले जाने ही वाला था; पर उसी वखत मोदा के घर से एक आदमी बुलाने आ गया। इसी मारे बल्द न ले जा सका।"

"चचा का काम छोड़ के उसके यहाँ तुम क्यों गये हो?"

"जाता नहीं तो क्या करता। उसके यहाँ कोई पानी देनेवाला भी नहीं है। सबी को बुख़ार आरया है। चचा का काम करनेवाले भतेरे आदमी हैं। मेरे न जाने से उनका हरज ही क्या हुआ।"

सुखिया और वसन्ता की ये बातें जगुआ भी धान

कूटते कूटते सुन रहा था । उसके मन में एक बात रह रह कर उठ रही थी । एकाएक उसने एक गहरी साँस ली और धान कूटना बन्द कर दिया । मूसल रख कर कुछ सोचने लगा । बहुत देर तक सोचने के बाद फिर कूटने लगा ।

थोड़ी देर तक हुक्क़ा पीते पीते वसन्ता जगुआ के पास आया और कहा—"नाना, लो पियो ।"

बुड्ढे ने मूसल रख दिया और हुक्क़ा पीने लगा । हुक्क़ा पीते पीते बुड्ढे ने कहा—"दीनू" !

वसन्ता धान कूट रहा था । रुक कर बोला—"क्यों" ?

बुड्ढे ने कहा—"एक बात कैता हूँ । मानेगा ?"

"अरे, तुमारी बात ना मानूंगा तो मानूँगा किसकी ।"

बूढ़े ने एक ज़ोर की दम मार कर कली वसन्ता को दे दी । और बोला—"अच्छा तो सुन–" कह कर खाँसने लगा । खाँसी रुकने पर कहने लगा—"देख वसन्ता, वैसे तेरे भी कोई नहीं है और मेरे भी इस सुखिया को छोड़ कै और कोई नहीं है । मैं कहता हूँ कि तू सुखिया से ब्याह कर ले और यहीं रह । जो दो-चार बीघे ज़मीन-वमीन है, तेरे नाँव लिख दूँगा । तू यहाँ चला आ । दो टुकड़ों के पीछे चचा की गालियें क्यों सुनता है ?"

वसन्ता ने यह बात सुनी और दाँतों से जीभ काट कर बोला—"अरे बाबा, मैं और एक आदमी को धोखा दूँ । तुमारा माल-मता सब चुनुआ का है । मैं उसका हक खाऊँगा ? पेट के कारन नरक को जाऊँगा ? राम राम, ये नहीं होगा । और ब्याह तो मैं कभी करूँगा ही नहीं ।"

बुड्ढे ने हताश होकर कहा—"क्या कहा ?"

वसन्ता ने मूसल उठाते उठाते कहा—"अरे नाना, तुम बुड्ढे होने को आये । तौ भी नहीं समझते, मुझ से ब्याह करने को कहते हो । ब्याह होते ही मैं तुम्हें पराया समजने लगूँगा । ये ही चचा—अम्मा कहती थी, मुझे बड़ा प्यार करै हे । जिस दिना से चाची आई उसी दिना से—और क्या कहूँ—कुछ डर न हो तो मुजे कच्चा खा जायँ ।"

(३)

उस दिन शाम को चुनुआ गाँजा पी कर बैठा था । आँखें लाल अँगारा हो रही थीं । कृपाराम बनिये ने आकर, उससे अपने रुपयों का तकाज़ा किया । पाँच वर्ष हुए उससे कुछ रुपए लाया था । अब नक देने का नाम न लिया था । कृपाराम आज ज़रा तेज़ होकर आया था । इधर चुनुआ भी गाँजे के प्रभाव से ख़ूब गर्म हो रहा था । इस कारण कृपाराम ने उससे सख़्ती के साथ रुपये माँगे तो चुनुआ ने आँखें दिखला कर कहा—"अबे बिज्जू की सी आँखें क्यों निकालता है । जा, रुपये नहीं देंगे ; नालस कर दे" ।

कृपाराम ने रुपए वैसे ही दस्त गरदाँ उधार दे दिये थे; इससे नालिश करने पर डिग्री होने का पूरा निश्चय न था ।

उसने कहा—"क्या कहा—नहीं देगा ? मैं भी देखूँगा कि देता है या नहीं । इतना करूँगा कि साले जनम भर भी देते देते पार न पायगा" ।

नशे में चूर चुनुआ ने कूद कर कृपाराम के सिर पर एक मुक्का जमाया । मुक्का बड़े ज़ोर से उसकी किसी नस में लगा । मुक्के के लगते ही उसने आँखें फैला दीं और ज़मीन पर गिर पड़ा । कृपाराम के गिरते ही चुनुआ के होश ठिकाने आ गये । वह पानी लाया और मुँह पर छींटे देने लगा । किन्तु कृपाराम टस से मस न हुआ । उसी तरह पड़ा रहा । पास ही खड़ी हुई सुखिया थर थर काँप रही थी और बुड्ढा जगुआ बुख़ार के मारे बेहोश पड़ा था ।

बहुत कोशिश करने पर भी जब कृपाराम को होश न हुआ तब चुनुआ मारे डर के काँप उठा । उसने बहुत धीरे से कहा—"अरी सुखिया, अब क्या होगा ?"

सौभाग्य से चुनुआ का मकान बस्ती के एक कोने में था । बिलकुल पास और किसी का घर न था । नहीं तो चुनुआ और कृपाराम का गाली-गलौज सुनते ही बहुत आदमी जमा हो जाते ।

भाई बहन जब निरुपाय होकर ईश्वर का मुँह देख रहे थे तभी किसी की पैछट मालूम दी । पहचानी हुई आवाज़ में किसी ने कहा—"अरी सुखिया, अब तलक घर में दीवा नहीं बाला । नाना को बुखार बढ़ आया क्या ?"

सुखिया ने चुपचाप आगे बढ़ कर कहा—"भइया, दुन्द न मचाओ, चुप रहो । बड़ी आफ़त हो गई ।"

आफ़त की बात सुन कर वसन्ता भी घबरा गया । उस ने आहिस्ता से कहा—"क्या बात है, बतला तौ ? वह कौन बैठा है और वह बाहर कौन पड़ा है ?"

सुखिया ने वसन्ता के मुँह पर हाथ रख कर कहा—"चुप चुप।"

सब क़िस्सा सुन कर वसन्ता ने कहा—"अब क्या होगा?"

चुनुआ ने वसन्ता के दोनों पैर पकड़ लिये। उसने बहुत गिड़गिड़ा कर कहा—"वसन्ता, अब तू ही बचा"।

सुखिया ने भी रोते हुए वसन्ता से कहा—"भइया, अब तुम ही बचाओ। जिस तरह हो, मेरे भइये की जान बचाओ।"

वसन्ता ने कुछ देर सोच कर कहा—"डरने की कुछ बात नहीं है। मैं सब ठीक किये देता हूँ। कोई बोरी है?"

सुखिया ने रोते रोते कहा—"हाँ, है।"

वसन्ता ने कहा—"ले तो आ"।

वसन्ता और चुनुआ ने मिल कर उस लाश को बोरी में बन्द कर दिया। यह तय हुआ कि रात को, जब गाँव निस्तब्ध होगा, वसन्ता उस बोरी को नदी में डाल आयगा।

रात्रि की निस्तब्धता छा गई। गाँव का चौकीदार भी आवाज़ लगा कर चला गया। रास्ता सुनसान था। उसी समय वसन्ता लाश को पीठ पर लाद कर नदी की ओर चल पड़ा। घर से वसन्ता के चले जाने के बाद चुनुआ अपने को निरापद समझने लगा।

(४)

बोरी को नदी में डाल कर वसन्ता रात ही में चुनुआ के यहाँ वापस आने को कह गया था। किन्तु दिन निकलने को हो गया। तब भी वसन्ता वापस नहीं आया। चुनुआ को रात भर नींद नहीं आई। उसे वसन्ता की फ़िक्र न थी, फ़िक्र थी अपनी। कहीं वसन्ता पकड़ा गया तो भण्डा फूट जायगा--यही फ़िक्र थी।

सुबह ८, ९ बजे तक तमाम गाँव में यह बात फैल गई कि वसन्ता ने कृपाराम का ख़ून कर डाला। उसने ख़ुद इक़बाल किया है कि कृपाराम को उसी ने मारा है।

यह बात सुनते ही सुखिया का चेहरा फक पड़ गया। चुनुआ गुम हो गया। उसके मन में बार बार एक प्रश्न उठने लगा—एक दिन मरना तो है ही; फिर इस तरह कुछ दिन और जीने से क्या फ़ायदा? थाने में जाकर सच्ची बात कह दूँ? इसका परिणाम?—ओह! चुनुआ काँप उठा। बुड्ढे जगुआ ने जब सुना कि कृपाराम का ख़ून करने के अपराध में वसन्ता पकड़ा गया है—तब वह ठीक न समझ सका कि वह जाग रहा है या स्वप्न देख रहा है। वसन्ता की दशा का स्मरण करके सुखिया का मन बैठा जाता था। किन्तु वह चुनुआ की सगी बहन है। बहन की ममता ने, भाई के अमङ्गल की आशङ्का से, सच्ची बात न खुलने दी। सुखिया को नाना से भी सब बात खोल कर कहने की हिम्मत न हुई।

इस दुर्घटना के बाद चुनुआ घर के बाहर बहुत कम निकलता था। चुपचाप पड़ा कुछ सोचता रहता था। एक दिन उसका मन बहुत चञ्चल हो उठा। उसी दिन वसन्ता का मुक़द्दमा होने वाला था। चुनुआ की सूरत देख कर सुखिया घबरा गई। उसने पूछा—"आज तुमारा मूँ क्यों उतर रहा है, तुम्हें हो क्या गया है?"

चुनुआ ने बहन की तरफ़ तीव्र दृष्टि से—उस दृष्टि में अपने ऊपर अभिमान, आत्मग्लानि और एक छिपी यातना मिली हुई थी—देख कर कहा—"मुझे क्या हो गया है?—तू क्या समझ सकती है—सुखिया।"

× × × ×

मुक़द्दमे के दिन कचहरी में चुनुआ को देख कर वसन्ता के मन में खटका हुआ। चुनुआ डिप्टी साहब के सामने जाकर खड़ा हो गया। उसने कहा—"हजूर, यह बसन्ता बड़ा बेढब आदमी है। यह मेरे पाप का बोझा चुरा लाया है। कृपाराम मुझसे अपने रुपयों का तगादा करने आया था। उसने मुझे गाली-वाली दीं। मैं भी गाँजा पिये हुए था। मैंने गुस्से में आकर उसके एक मुक्का मार दिया। मुक्का लगते ही वह धड़ाम से गिर पड़ा। मैंने सोचा कि बेहोस हो गया दीखै है। मुँह पै पानी छिड़का, पंखा करा, मगर वह मुझे सजा कराने के मारे जान बूझ कै मर गया। उसके बाद यह चोर बसन्ता मेरे घर आया। मुझसे इसने कहा कि मैं लास को नदी में फैंक आऊँगा। इसी मारे मैंने बोरी में बाँध के इसकी कमर पै उसे लाद दिया। अब यह मुजे धोका देना चाहता है। हजूर. यह बड़ा बेढब आदमी है"। यह कह कर वह वसन्ता की तरफ़ टकटकी बाँध कर देखने लगा।

अब फिर नये सिरे से विचार आरम्भ हुआ। चुनुआ सेशन-सुपुर्द किया गया। खून को छिपाने की साज़िश में वसन्ता को भी लम्बी सज़ा होनी चाहिए, इसके सुबूत में कोर्ट इन्सपेक्टर ने बहुत बहस की। किन्तु हाकिम ने सब बातों पर ग़ौर करने के बाद, दया करके, वसन्ता को डेढ़ वर्ष की सज़ा का ही हुक्म दिया। सेशन के मुक़द्दमे में चुनुआ को फाँसी न हुई।

× × × ×

डेढ़ साल के बाद, जेल से छूट कर, वसन्ता 'नाना' के सामने उदास-मुँह आकर खड़ा हो गया। वसन्ता ने चुनुआ की बाबत किसी से भी कुछ नहीं पूछा। उसने समझ लिया था कि चुनुआ को फाँसी ज़रूर हो गई होगी।

जगुआ से वसन्ता ने कहा—"नाना, उसकी तकदीर"।

बुड्ढे ने कहा—वसन्ता, उसने मरदपन का ही काम किया है। हाँ, तू तो बता कि तूने योंही इतनी तकलीफ क्यों उठाई"?

वसन्ता ने कहा—"मेरे बाप नहीं, मा नहीं। मेरा रोनेवाला कोई नहीं। मुझे फाँसी हो जाती तो अच्छा ही था"।

बुड्ढे ने क्रुद्ध होकर कहा—"जो तू ऐसा समझता है तो आज से मुजे 'नाना' मत कहना। क्या ग़ैर आदमी को कोई अपना नहीं समझ सकता? क्यों रे बसन्ता"?

उत्तर में वसन्ता ने म्लान सन्ध्या के समय म्लानमुखी सुखिया की ओर बस एक बार देख दिया*।

प्रवीण

अन्त।

किससे प्रेरित होकर मैं आगे ही बढ़ती आती हूँ?
क्षण भर भी रुक कर थोड़ी भी चैन नहीं मैं पाती हूँ॥

था जब तक उस गिरि का बन्धन,
व्याकुल रहता था मेरा मन;
यही सोचती थी मैं क्षण क्षण,
कब मैं बाहर जाती हूँ।
किससे प्रेरित होकर अब आगे ही बढ़ती आती हूँ?
छोड़ चुका मुझको जब गिरिवर,
आई नीचे उछल उछल कर;
करती रहती थी मैं झर झर;
अब क्या वैसा गाती हूँ।
किससे प्रेरित होकर मैं आगे ही बढ़ती आती हूँ?
मन में नहीं उमङ्ग रही अब,
उठती है वैसी तरङ्ग कब!
शिथिल हो गये आज अङ्ग सब;
घोर निराशा लाती हूँ।
किससे प्रेरित होकर मैं आगे ही बढ़ती आती हूँ?
यह कैसा उठता भीषण रव!
अब क्या होगा, हे मेरे भव!
यह क्या? तू ही मेरा उद्भव,
तुझमें ही मैं जाती हूँ।
किससे प्रेरित होकर मैं आगे ही बढ़ती आती हूँ?

पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी

नास्तिक के तर्क का खण्डन।

गत जनवरी मास की सरस्वती में, मकरन्द महाशय के हृदय में जो शङ्कायें उत्पन्न हुई हैं उनको दूर करना कुछ कठिन नहीं। भारतवर्ष में भी बड़े बड़े नास्तिक हो गये हैं। इस समय योरप में भी बड़े बड़े नास्तिक हैं। इँगलेंड में Rationalistic Press Association (रैशनालिस्टिक प्रेस एसोसियेशन) नामक संस्था नास्तिकों का ही कार्य्यालय

---

* श्रीयुक्त पाँचूलाल घोष की एक बँगला-कहानी का अनुवाद।

है। योरप में प्रोफ़ेसर हैकिल बड़े भारी नास्तिक थे। उनका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ रिडिल आव दी यूनीवर्स (Riddle of the Universe) नाम का है। विज्ञान के विख्यात आचार्य सर अलीवर लाज ने उसका खण्डन किया है। हैकिल का खण्डन करनेवाले महाशयों के उत्तर में एक विद्वान् ने Haeckle's Critics Answered (हैकल्स क्रिटिक्स एन्सर्ड) नामक पुस्तक लिखी है। अभी हाल में एक और पुस्तक इन सब नास्तिकों के खण्डन में निकली है।

योरप में ईसाई पादरियों ने अज्ञान का जाल फैला रक्खा था। जब विज्ञान का प्रकाश हुआ तब यह जाल नष्ट हो गया। विज्ञान के प्रेमी हर्ष से उन्मत्त हो गये। वे कहने लगे कि ईश्वर कोई चीज़ नहीं; सृष्टि का रहस्य हमने जान लिया। वैज्ञानिक आविष्कारों के साथ ज्यों ज्यों ज्ञान की वृद्धि होने लगी त्यों त्यों दो विषय स्पष्टतर होने लगे। इस समय कोई ऐसा वैज्ञानिक नहीं जो इनको न मानता हो। वे दो विषय ये हैं—१ मैटर, अर्थात् पदार्थ, अनन्त है, २ इनर्जी, अर्थात् शक्ति अनन्त है। अतः अनन्त होने से ये दोनों ही अवश्य अनादि भी हैं। अब रहा सृष्टिकर्त्ता का अस्तित्व। सो यदि ज्योतिषशास्त्र, रसायनशास्त्र, प्राणिशास्त्र, जीवाणुशास्त्र आदि किसी भी शास्त्र के आधार पर सृष्टि रचना पर विचार किया जाय, तो यह भली-भाँति सिद्ध हो जाता है कि सृष्टि-रचना का तत्त्व मनुष्य के ज्ञान के लिए अगम्य है। पर यह भी निश्चय हो जाता है कि जहाँ तक मनुष्य के ज्ञान की गति है वहाँ तक सृष्टि-रचना की सीमा नहीं है; वह असीम है।

मुझको सन्देह होता है कि कदाचित् मकरन्द जी महाराज विज्ञान नहीं जानते। कुछ भी हो, इनके लेख में जो तर्क हैं हम उन्हीं पर कुछ विचार करते हैं। अच्छा होता यदि मकरन्द जी महाराज अपने लेख को दो भागों में विभक्त कर देते; क्योंकि, मेरी समझ में उसके दो भाग हो सकते हैं। पहले भाग में इस पर विचार किया गया है कि ईश्वर है या नहीं, दूसरे में इसकी चर्चा की गई है कि यदि ईश्वर है तो उसके गुण क्या हैं।

गुणों के विषय में मत-भेद होना असम्भव नहीं। न होना ही मैं अत्यन्त असम्भव समझता हूँ। उदाहरणार्थ मैं मकरन्द जी महाराज से पूछता हूँ कि उनके पिता के विषय में उनके हृदय में क्या भाव था और क्या वह भाव वैसा ही था जैसा कि उनकी माता, उनकी स्त्री, उनके पड़ोसी, उनके नौकर, उनके निवासस्थान के थानेदार आदि उनके पिता के विषय में रखते थे। साइकोलाजी (मानस-शास्त्र) में कहा गया है—और इस बात को सभी विद्वान् मानते हैं कि No two men see the same rainbow, अर्थात् भिन्न भिन्न दो आदमी एक ही चीज़ को एक सा नहीं देखते। तब, आप बतलाइए कि इतने बड़े निरुपमेय पुरुष के गुणों के विषय में मत-भेद होना कौन बड़े आश्चर्य्य की बात है?

भारतवर्ष में निरीश्वरवाद के सम्बन्ध में जो कुछ अभी तक कहा गया है वह केवल बकवाद है। वह विज्ञान के आधार पर नहीं है। मकरन्द जी के लेख में भी केवल बकवाद है; अतएव हमारा यह खण्डन भी केवल बकवाद है।

मकरन्द जी कहते हैं कि बहुमत होने के कारण माना जाता है कि ईश्वर है। तो हम, आपके इसी मत के आधार पर, आपकी तरफ़ से कह सकते हैं कि शायद महाराज रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, ईसा मसीह, पृथ्वीराज आदि संसार में कभी हुए ही नहीं। उनका अस्तित्व केवल बहुमत के बल पर लोगों ने मान लिया है, क्योंकि इस समय तो आपको कोई मिलेगा ही नहीं जिसने उनको देखा हो। हम तो यह कहेंगे कि मकरन्द जी महाराज के प्रपितामह थे ही नहीं। मकरन्द जी स्वयं बतलावें कि उन्होंने अपने प्रपितामह को देखा था या किसी ऐसे मनुष्य से उनके अस्तित्व की बात सुनी थी जिसने उन्हें देखा था। आप इसका क्या उत्तर देंगे? जो उत्तर आपके मन में है उसी से आपके इस तर्क का खण्डन हो जाता है कि नहीं? आप लिखते हैं—

इस आश्रय का न तो हमारे मन में कोई चित्र ही है और न उसका कोई अर्थ ही स्पष्ट होता है।

अच्छा! एक बात बताइए। आपने सुना है कि हमारी पृथ्वी सूर्य से ९,१४,३०,००० मील दूर है। आपने यह भी सुना है कि हमारी पृथ्वी का व्यास ८,००० मील है।

लोग यह भी कहते हैं कि हिमालय का एवरेस्ट शिखर ३०,००० फुट ऊँचा है। क्या आप बतला सकते हैं कि इनका कैसा चित्र आपके मन में अङ्कित होता है? यदि चित्र नहीं अङ्कित होता तो क्या आप कहेंगे कि संसार में इनकी स्थिति ही नहीं? आपको निर्बुद्धि जड़ मनुष्य भी मिले होंगे और बुद्धिमान् भी। क्या आप बतला सकते हैं कि आपके हृदय में जड़ता और बुद्धिमत्ता का कोई चित्र अङ्कित है और है तो कैसा है? क्या आप बतला सकते हैं कि वायु का क्या चित्र है? हम तो कहते हैं कि आपके हृदय में सारस्वत मकरन्द का भी कोई चित्र नहीं है। पाठक इस लेख को पढ़ते समय इस स्थान पर क्षण भर रुक जायँ और आँख बन्द करके देखें कि उनके हृदय में उनका भी कोई चित्र अङ्कित है कि नहीं।

आपकी धारणा है कि **गुण मान कर आश्रय को भी कल्पित कर लेना कल्पना की ही प्रबल गति की सूचना देता है।** ख़ैर, आप कल्पना को तो मानते हैं। अब आप बतलाइए कि कल्पना क्या है, कल्पना को कौन सूचना देता है, कल्पना को सूचना देने का क्या अर्थ है और सूचना कैसे होती है?

आपने अपने लेख में ईश्वर के बहुत से गुण ऐसे भी गिना दिये हैं जो एक दूसरे के विरुद्ध प्रतीत होंगे। इसका कारण यह है कि ईश्वर और उसके गुणों के ज्ञान का आधार कुछ दूसरा ही है। श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि सब ब्रह्माण्ड मुझमें है; निर्भय राम कहते हैं—

तूने ही तो विश्व रचा, तू ही तमाशाई है;

शम्स तबरेज़ कहते हैं—

हम् चु मौज अज़ ख़ुद बरा वुर्दम सर
बाद अन्दर ख़ुद तमाशा मीरवेम्।

हाफ़िज़ कहते हैं—

गुलवुते हुस्नत न ख़ुद शुद दिलफ़रेब
मादमे हिम्मत बरो बू गुमाश्तेम।

मुझे मालूम नहीं भगवान् श्रीकृष्ण, निर्भयराम, शम्स तबरेज़, और हाफ़िज़ आपके मत के अनुसार कभी हुए भी थे या नहीं।

अच्छा, आप मान लीजिए कि उपर्युक्त वाक्य मेरे ही हैं। मेरा कथन यह है कि प्रत्येक मनुष्य का सांसारिक ज्ञान भिन्न भिन्न है। जिसको जितना ही ज्ञान संसार का है उसके लिए वही और उतना ही सत्य है। इस संसार के विषय में मेरे हृदय में जो कल्पना है वही आपके भी हृदय में है। मेरी और आपकी कल्पनायें कितने विषयों में एक दूसरे के विरुद्ध होंगी। क्या आप कह सकते हैं कि मेरी और आपकी कल्पनाओं में कौन सत्य हैं और कौन असत्य? मेरे लिए यह संसार उतना ही है जितने का ज्ञान मुझको है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न मनुष्यों के हृदयों में ईश्वर भिन्न भिन्न गुणों का समूह होता है। इस कारण जो मनुष्य ईश्वर के जितने गुणों का चिन्तन अपने मन में करता है उसके लिए ईश्वर उतना ही है। इसमें आपको आश्चर्य्य क्यों करना चाहिए? बहुत से मनुष्य तो यह कहते हैं कि समाधि द्वारा परमेश्वर नहीं पाया जाता। कुछ इसके विरुद्ध हैं। मैं उन मनुष्यों की ओर से—जिनकी धारणा है कि ईश्वर समाधि द्वारा पाया जाता है—कहता हूँ कि जिन योगियों ने परमेश्वर में लीन होकर शरीर में रहने की इच्छा की, उन्होंने भूल की; यह उनकी त्रुटि थी।

धर्म की आवश्यकता क्या है, आपके लेख से यह स्पष्ट नहीं होता। धर्म के क्या अर्थ हैं, इस विषय पर बहस करना व्यर्थ है—"आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी।" आप हमारे प्रश्न का उत्तर दीजिए। आप एक चुटकी भर शक्कर अपनी जिह्वा पर रखिए और बतलाइए कि कैसा स्वाद है। आप कहेंगे, मीठा। आप अपने हृदय में सोचिए कि शक्कर किसने चक्खी? क्या आपने चक्खी? शक्कर तो जीभ पर रक्खी गई थी। तो क्या आप जीभ हैं?

गुणों के आधार पर आपका तर्क करना व्यर्थ है। पहले आप यह बतलाइए कि आपने यह सिद्ध कहाँ से किया कि ईश्वर नहीं है। जब तक आप यह सिद्ध न कीजिएगा तब तक आपको मानना पड़ेगा कि ईश्वर है। अब यह प्रश्न है कि ईश्वर है तो उसके गुण क्या हैं। उसके उत्तर में हम कहते हैं कि आप ही बताइए कि उसके गुण क्या हैं।

वेद, शास्त्र, इतिहास, पुराण आदि समग्र साहित्य में यही कहा जाता है कि ईश्वर की महिमा का वर्णन कोई नहीं कर सकता; उसके गुणों को कोई नहीं जान सकता। आप

अपने विचार के अनुसार कुछ गुण पेश कीजिए। तब खण्डन-मण्डन किया जाय। अँगरेज़ी में मिल्टन ने लिखा है—

> " Binding Nature fast in Fate "
> " Left free the human will ......"

इसका भी खण्डन वैसेही किया जाता है जैसे आप कर रहे हैं। हम कहते हैं कि अन्त में सबका निवारण अथवा निर्वाण होगा। यह कितने जन्मों में होगा, कोई नहीं जानता। कोई दुष्ट जन इस समय कोई बुरा काम कर रहा है और उसको दण्ड मिल रहा है। निर्वाण होने तक उसकी जितनी दशायें होंगी उनमें से एक यह भी है। हमारी दृष्टि में यही बुरा और भला है। पर यह कौन कहता है कि ईश्वर की दृष्टि में भी वैसा ही बुरा या भला होगा।

आप भ्रम में हैं। यदि आप यह समझते हैं कि दुष्ट जो दण्ड पाता है यह उसके कर्म्म का फल है, तो यह आप की भूल है। यह आप मानते हैं या नहीं कि सैकड़ों मनुष्य ऐसे हैं जो दुष्ट कर्म्म करते हैं। उनको हम दण्ड नहीं दे सकते। ऐसी दशा में एक ही कर्म्म करने से एक समय में दण्ड-फल होता है दूसरे समय में नहीं होता। देखिए, कोई मुसलमान एक ही समय में दो स्त्रियों से विवाह करे तो उसको कोई दण्ड नहीं मिलता। पर ईसाई अगर ऐसा करे तो तुरन्त दण्ड पाता है। कर्म्म-योग का यह सिद्धान्त नहीं कि किसी कर्म्म का फल कभी हो और कभी न हो। कर्म्म का फल अवश्य होता है और हमारा दण्ड देना अथवा न देना उसमें कोई बाधा नहीं डाल सकता। आपका प्रश्न है—**क्या कोई कभी कह सकता है कि शंकर और नेपोलियन अपने पूर्व्व-जन्म के कर्म्मों का फल भोग कर बड़े हो गये ?** हम कहते हैं कि यह बिलकुल सच है। आपको इसमें शङ्का क्यों है ? हमारा तो यह मत है कि मनुष्य का जन्म-जन्मान्तर होता है और आत्मा एक शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर में जाती है। इस प्रकार असंख्य शरीर पाकर अन्त में उसका निर्वाण होता है। इस समय नेपोलियन के शरीर में जो आत्मा आई है वह अपने पूर्व्व संस्कारों को लेकर आई है। एक शिक्षक एक ही शिक्षा बहुत से शरीरधारियों को एक ही समय में देता है, पर उसका फल भिन्न भिन्न होता है। दयानिधान, इसका कारण तो बता दीजिए।

बात यह है कि भिन्न भिन्न जीवात्मायें भिन्न भिन्न अवस्थाओं में हैं। आपका कथन है—**बड़ा बनाना न बनाना ईश्वर के अधीन है। अच्छा तो क्या परिश्रम करना उचित नहीं ?** सुनिए, परिश्रम का फल तो अवश्य होता है और परिश्रम अवश्य करना चाहिए। आप कर्म्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग तीनों मार्गों को एक में मिलाये देते हैं। गुणों का जो ब्योरा आपने लिखा है उसमें भी आपने बहुत से मतों को एक में मिला कर खिचड़ी कर दिया है। आप किसी एक मार्ग को लीजिए और कहिए कि हम इसका खण्डन करेंगे। खण्डन करने के पहले आप बतला दीजिए कि उस मत को आप कैसा समझते हैं। जब विपक्षी आपके कथन को स्वीकार करलें तब आप खण्डन कीजिए। आपको उत्तर दिया जायगा।

यह हम मानते हैं कि बहुत से गुण, जो वर्णन किये जाते हैं, एक दूसरे के प्रतिकूल होते हैं। ऐसे गुणों का होना असम्भव नहीं। हम देखा करते हैं कि एक मनुष्य दयालु भी होता है और कठोर भी। जज साहब चोर को कठोर मालूम होते हैं पर अपने पुत्र की दृष्टि में दयालु। **क्या वस्तुतः भगवान् वैसे ही हैं जैसा कि भक्तों ने उन्हें माना है ?** इस पर प्रार्थना है कि सच्चे भक्त अवश्यमेव ऐसे ही होते हैं। भक्ति सहज नहीं है। आप धन पैदा करने में कितना परिश्रम करते हैं। रुपये कमाने की इच्छा छोड़ने की प्रतिज्ञा कीजिए। देखिए, इच्छा-त्याग में कितना अधिक परिश्रम करना होता है। सच्चे भक्त बनने के लिए—'सब तज, हरि भज'— अत्यन्त कठिन परिश्रम करना पड़ता है। इतने कठिन कर्म्म का ऐसा उत्तम फल आपको असम्भव क्यों मालूम पड़ता है ? आपकी आज्ञा है—**यदि भगवान् भक्तों पर दयालु है तो परिणाम यह निकलेगा कि वह न्यायकारी नहीं !** सच्चा न्याय दया है। आप भी किसी मनुष्य के ऊपर केवल सच्चा न्याय ही करके दया कर सकते हैं। जब आपने एक मनुष्य को भक्त कहा तब भक्त कहने ही से वह दया का अधिकारी हो गया। आपका निष्कर्ष है—**अनुमान तो यही निकलता है कि मनुष्यों**

ने मनःकल्पित अमानव-संसार को मर्त्यसंसारवत् मान कर अपनी समाज की सभी रीति-नीतियाँ उसको समर्पित कर दी हैं। आपको यह असत्य क्यों मालूम पड़ता है ? आप अपने बच्चे को कैसे बतलायेंगे कि समुद्र क्या है ? इसकी दो ही रीतियाँ हैं। पहली रीति यह है कि समुद्र दिखलाइए। सबसे उत्तम रीति यही है। दूसरी यह कि बच्चे ने जो वस्तुयें देखी हैं—तालाब, झील इत्यादि—उनका उदाहरण देकर उसे समझा दीजिए। पहली रीति की अपेक्षा यह रीति सदा दूषित रहेगी। सब लोग कहते हैं कि ईश्वर अजेय और निरुपमेय है। अस्तु, ऐसी दशा में मानव-जाति जो कुछ बतलाती है वह दृष्ट या ज्ञात विषयों का उदाहरण देकर बतलाती है। इस कारण उसमें अनेक त्रुटियाँ रहती हैं। कृपा करके आप कोई तीसरी रीति बतलाइए।

कोचक
(कृषि-महाविद्यालय, कानपुर)

——

अँगरेज़ी और देशी भाषायें।

जिस शिक्षा-नीति का पालन इस देश में लार्ड मेकाले के समय से हो रहा था, जिसके द्वारा अँगरेज़ी भाषा का खूब प्रचार हुआ, और जिसके बहाने देशी भाषाओं ने भी थोड़ी बहुत उन्नति की उसकी आज-कल अच्छी तरह जाँच हो रही है; और वह समय बहुत निकट है जब इस नीति में बहुत कुछ परिवर्तन होगा। अभी तक शिक्षा-नीति की बागडोर अँगरेज़ों ही के हाथ में थी। नये सुधारों के विषय में लोगों की चाहे जैसी राय हो, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उनके अनुसार शिक्षा-नीति में सुधार करने का अधिकतर भार भारतवासियों ही के सिर होगा। देशी भाषाओं की ओर अब हमको अँगरेज़-शासकों का ही नहीं, भारतीय नेताओं का भी ध्यान दिलाना होगा।

देशी भाषाओं की उन्नति पर ज़ोर देने से हमारा तात्पर्य्य यह नहीं कि अँगरेज़ी का बहिष्कार कर दिया जाय। अँगरेज़ी से हमको बहुत कुछ लाभ पहुँचा है और पहुँचता रहेगा। इस समय अँगरेज़ी एक प्रकार से सारे संसार की भाषा हो रही है। उसके द्वारा संसार को हमारे विषय में और हमको संसार के विषय में ज्ञान होता रहता है। जातीयता के विचार इसी भाषा के द्वारा भारतवर्ष में फैले हैं। देशी भाषाओं को भी इसके द्वारा बहुत कुछ लाभ पहुँचा है। जो कुछ गद्य-साहित्य इन भाषाओं में हम देखते हैं, सब अँगरेज़ी ही की बदौलत है। यदि अँगरेज़ी राजभाषा न होती तो भी उसका बहिष्कार करना हानिकारक होता। इँगलिस्तान से सम्बन्ध होने के कारण तो इसका प्रश्न ही उठाना व्यर्थ है।

परन्तु इतना होते हुए भी जिस उद्देश से इस समय अँगरेज़ी पढ़ाई जाती है, जितना अधिक ज़ोर उसकी पढ़ाई पर दिया जाता है और साथ ही साथ जितना कम ध्यान देशी भाषाओं की उन्नति की ओर दिया जाता है उसके हम अवश्य विरोधी हैं। इस समय भारतीय छात्रों को अँगरेज़ी पढ़ाने का जो उद्देश रक्खा गया है वह यह है कि वे अँगरेज़ी के पूर्ण पण्डित हो जायँ। अँगरेज़ी भाषा समझने ही की योग्यता उनमें न हो, किन्तु वे अच्छी तरह उसे लिख और बोल भी सकें। बच्चा नौ वर्ष का भी नहीं होने पाता कि उसको अँगरेज़ी आरम्भ करा दी जाती है। योग्यता बढ़ाने के लिए कोई बात उठा नहीं रक्खी जाती। सबसे अधिक समय अँगरेज़ी पढ़ाने ही में ख़र्च किया जाता है। सबसे अधिक योग्य अध्यापकों ही को यह कार्य्य सौंपा जाता है। बच्चों पर कितना अधिक बोझ पड़ता है, कितने कम बच्चे योग्यता प्राप्त कर पाते हैं, कितने बच्चे स्वास्थ्य से हाथ धो बैठते हैं और कितने हार मान कर घर बैठ रहते हैं इसका अच्छी तरह अनुभव करना इन कुर्सी पर बैठे विद्वान् नेताओं के लिए

कठिन है जिनको अँगरेज़ी बोलना और लिखना एक साधारण सी बात मालूम होती है।

यह पूछिए कि इकतीस करोड़ आबादी में कितने ऐसे आदमी हैं जो अँगरेज़ी में पूरी योग्यता रखते हैं। यदि थोड़े से हैं भी तो उन्हें भारतीय बुद्धि की प्रखरता का प्रसाद ही समझना चाहिए। परन्तु इससे यह नहीं सिद्ध होता कि विदेशी भाषा में योग्यता प्राप्त करना भारतीय युवकों के लिए सरल है, न यह कि यदि वे मातृभाषा की ओर ध्यान देते तो अपनी तथा अपनी मातृभाषा की उन्नति न कर सकते।

अब देशी भाषाओं की ओर ध्यान दीजिए। मेकाले के शिक्षा-सम्बन्धी मन्तव्य से सन् १८५४ के ख़रीते, और लार्ड कर्ज़न के विश्वविद्यालय-विषयक कमीशन तक, सब लोगों ने शासकों का तथा जनता का भी ध्यान इनकी ओर दिलाया है। शासकों ने यथा-शक्ति बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु जो कुछ उन्नति हुई है उसका अधिक-तर श्रेय उन प्रकाशकों को है जिन्होंने घाटे की परवा न करके देशी भाषाओं में लिखे गये ग्रन्थों को प्रकाशित किया, और उन लेखकों को भी जिन्होंने निर्धन रह कर अपनी मातृ-भाषा को श्रीसम्पन्न बनाने का उद्योग किया। शिक्षा-विभाग से जो कुछ लाभ अँगरेज़ी-भाषा की पुस्तकों के प्रकाशकों और लेखकों को पहुँचा है, उसका दशमांश भी हमारी भाषा की पुस्तकों के प्रकाशकों के हिस्से में नहीं पड़ा।

कारण क्या है? सुनिए, हम देशी भाषाओं की उन्नति के लिए चिल्लाते अवश्य हैं, परन्तु हमने अपने उद्देश को स्थिर नहीं किया। हम चाहते हैं कि अँगरेज़ी की उन्नति हो और मातृ-भाषा की भी हो। हमें ट्रेनिंग कालेजों में यह शिक्षा मिलती है—और ठीक भी है—कि मनुष्य के मस्तिष्क को किताबों से भरना ही हमारा कर्तव्य नहीं। परन्तु देखते क्या हैं कि किताबों का बोझ दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है। सब विषयों में एक ही साथ उन्नति नहीं की जा सकती। यदि देशी भाषाओं की उन्नति करना है तो इसका निश्चय कर लेना चाहिए कि उस ओर अग्रेसर होने के लिए दिमाग़ से कितना काम लेना चाहिए।

अभी तक अँगरेज़ी पढ़ाने का उद्देश यही रहा है कि अँगरेज़ी भाषा और साहित्य दोनों में योग्यता प्राप्त हो और अँगरेज़ी ही के द्वारा सब विषयों में शिक्षा दी जाय। इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी गई कि अँगरेज़ी-भाषा के साहित्य-सागर के रत्नों से उन देशवासियों को भी लाभ पहुँचे जो अँगरेज़ी नहीं जानते। देशी भाषाओं के लिए कोई उद्देश ही निश्चित नहीं। यह मान लिया गया है कि संस्कृत के पण्डित और फ़ारसी-अरबी के मौलवी बहुत अच्छी तरह हिन्दी-उर्दू पढ़ा सकते हैं। उन्हें न अधिक योग्यता की आवश्यकता है; न पुतलीघर के एक कुली के वेतन से अधिक वेतन की। देशी भाषाओं का साहित्य इतना सङ्कुचित समझा गया है—कलकत्ता-विश्वविद्यालय तथा बँगला भाषा की बात जाने दीजिए—कि गुरुकुल तक में, सरकारी पाठशालाओं की कौन कहे, विश्वविद्यालय-विभाग में उनके लिए कोई जगह ही नहीं। जब उनका साहित्य इतना सङ्कुचित है तब उनको शिक्षा का माध्यम बनाना भी ठीक नहीं समझा जाता। बहुत प्रयत्न के बाद संयुक्त-प्रान्त में मिडिल तक देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा देने की आज्ञा हुई है। स्कूल की उच्च श्रेणियों में अँगरेज़ी ही के द्वारा शिक्षा और अँगरेज़ी भाषा ही में परीक्षा देना अभी तक जारी है। प्रयाग-विश्वविद्यालय की वह पवित्रता, जिसकी ओर बड़े भाव-पूर्ण शब्दों में वाइस चैन्सलर महोदय ने इस वर्ष के युवक स्नातकों का ध्यान आकर्षित किया था, शायद

'नमःशूद्र' देशी भाषाओं को अपने पास न फटकने देने ही में है।

हम फिर यही कहते हैं कि अँगरेज़ी भाषा अवश्य पढ़ाई जाय, परन्तु हम उसका उद्देश बदलना चाहते हैं। हम यह चाहते हैं कि अँगरेज़ी अँगरेज़ी के लिए नहीं, किन्तु देशी भाषाओं के लिए पढ़ाई जाय। वह इसलिए पढ़ाई जाय कि हम उन विचारों को, जो अँगरेज़ी भाषा ही पढ़ने से प्राप्त होते हैं, अपनी मातृ-भाषा द्वारा प्रकट कर सकें। देशी भाषाओं की उन्नति के लिए इस सिद्धान्त को मान लेना ही बहुत है।

अँगरेज़ों की बात जाने दीजिए, क्योंकि वे यदि इस उद्देश का विरोध करें तो ऐसा करना एक प्रकार से स्वाभाविक है। परन्तु हमें भय है कि हमारे भारतीय नेताओं में भी कुछ ऐसे हैं जो इस उद्देश से सहमत न होंगे। उनका विचार है कि हम में जातीयता के भावों की जागृति अँगरेज़ी शिक्षा ही के द्वारा हुई है। वे यह भी समझते हैं कि उसकी जड़ अभी इतनी कच्ची है कि अँगरेज़ी शिक्षा में कुछ भी कमी होने से इस नवीन अङ्कुर को बहुत हानि पहुँचेगी ; मानों उनका यह कथन है कि किसी देश में जातीयता विना जातीय भाषा के भी टिक सकती है—उनका यह भी अनुमान है कि देशी भाषा जाननेवाली जनता के सामाजिक विचार कच्चे हैं। यदि हम समाज-सुधार-सम्बन्धी कुछ बातें सीख सकते हैं तो अँगरेज़ी भाषा और पश्चिमीय सभ्यता से ही। मानों समाज-सुधार का अर्थ देशी भाषा-वेष को भूल जाना ही है!

अँगरेज़ी भाषा के पक्षपातियों की तरफ़ से कुछ और भी दलीलें पेश की जाती हैं। यथा—अँगरेज़ी भाषा में योग्यता प्राप्त कर लेना बहुत सरल है। पढ़ी लिखी जनता की रुचि भी उसकी ओर अधिक है। अँगरेज़ी राज-भाषा है और बहुत समय तक राष्ट्र-भाषा रहेगी भी। राष्ट्रीय सभाओं में और अँगरेज़ों के साथ व्यवहार में इसका प्रयोग करना होगा। इन सब दलीलों का एक-मात्र उत्तर यही है कि हमारे उक्त उद्देश को स्वीकार कर लेने से अँगरेज़ी की इतनी हानि न होगी कि हम अँगरेज़ों से बातचीत न कर सकें, राष्ट्रीय और व्यवस्थापक सभाओं में बोल न सकें, अपने विचार दूसरे प्रान्त के निवासियों पर प्रकट न कर सकें, और अँगरेज़ी-साहित्य के उच्च विचार अपनी भाषा में व्यक्त न कर सकें। जातीयता और समाज-सुधार कमज़ोर पड़ने के बदले और पुष्ट हो जायँगे। क्योंकि इन उद्देशों के अनुसार शिक्षा देने से पश्चिमीय विचार और भी अधिक वेग से हमारी भाषा में आने लगेंगे।

उद्देश सरल परन्तु उसके साधन का उपाय साधारणतः कठिन समझा जाता है। साधन में कठिनाइयाँ अवश्य हैं, परन्तु भाग्यवश इस सम्बन्ध में वे ऐसी नहीं कि हम सफल-मनोरथ न हो सकें।

पहला उपाय यह है कि शिक्षा-विधि में परिवर्तन हो। जिस श्रेणी से अँगरेज़ी आरम्भ की जाय उससे लेकर विश्वविद्यालय की स्नातक-परीक्षा तक अँगरेज़ी अनिवार्य विषय रहे, जैसा नियम कि इस समय है। परन्तु बहुत नीचे दर्जों में अँगरेज़ी पढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं। आज कल तीसरे दर्जे से अँगरेज़ी पढ़ाना आरम्भ कर दिया जाता है। छठे दर्जे से अँगरेज़ी की पढ़ाई शुरू की जाय। इस दर्जे तक लड़के का अधिक समय मातृ-भाषा के पुष्टीकरण में लगाया जाय। जब वह अँगरेज़ी पढ़ना शुरू करे तब उसको डाइरेक्ट मेथड (Direct Method) से पढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं। अँगरेज़ी के अर्थ देशी भाषा में समझाये जायँ न कि अँगरेज़ी ही में। आज-कल देशी भाषा से अँगरेज़ी में अनुवाद करने का अभ्यास कराया जाता है। अँगरेज़ी से देशी भाषाओं में भी अनुवाद कराने का अभ्यास कराया जाय। अँगरेज़ी-साहित्य पढ़ाया जाय, परन्तु जहाँ तक बने उसकी तुलना देशी

भाषा के साहित्य से कराई जाय, न कि अँगरेज़ी के ही साहित्य से।

साथ ही साथ देशी भाषाओं के लिए अच्छे अध्यापक नियत किये जायँ। उनकी शिक्षा प्राचीन भाषाओं के पण्डितों के हाथ से निकाल कर इन भाषाओं के पण्डितों के ही हाथ में देना चाहिए। हिन्दी के लिए सम्मेलन की विशारद परीक्षा पास अध्यापक माध्यमिक शिक्षालयों के लिए संस्कृतज्ञ पण्डितों से अधिक योग्य होंगे।

तीसरा उपाय यह है कि देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रयत्न किया जाय। संयुक्त-प्रान्त में मिडिल तक देशी भाषायें ही माध्यम हैं। पर आगे क़दम बढ़ाने की ज़रूरत है। थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि पाठ्य पुस्तकें देशी भाषाओं में नहीं हैं। केवल शिक्षा-विभाग की कृपादृष्टि चाहिए। फिर तो सैकड़ों पाठ्य पुस्तकें ले लीजिए। परन्तु सबसे पहले यह आज्ञा तो अवश्य प्रचलित कर दी जाय कि परीक्षार्थी मातृ-भाषा में उत्तर लिखें। स्कूल की अन्तिम परीक्षा के लिए यह नियम बम्बई और बङ्गाल में प्रचलित है। संयुक्त-प्रान्त में कोई कठिनाई न होगी।

माध्यमिक शिक्षालयों ही तक में देशी भाषाओं को स्थान देने से उनकी यथेष्ट उन्नति न होगी। विश्वविद्यालयों में उनका प्रवेश ही नहीं, आदर भी होना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि अभी ये भाषायें उच्च स्थान नहीं पा सकतीं। पर क्रमशः इनको उच्च पद तक पहुँचाने का प्रयत्न तो करना चाहिए।

पहला क्रम यह है कि जिस तरह अँगरेज़ी पढ़ना अनिवार्य विषय है उसी तरह देशी-भाषा पढ़ना भी अनिवार्य विषय रक्खा जाय। आरम्भ में यह आवश्यक नहीं कि उनके लिए पाठ्य पुस्तकें नियत ही की जायँ और भाषा-साहित्य में योग्यता प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय। अभी इतना ही आवश्यक है कि जहाँ और पर्चे होते हैं वहाँ एक पर्चा मातृ-भाषा में लेख लिखने का भी हो। यदि छात्रों पर इस पर्चे के कारण बोझ बढ़ता हो तो अँगरेज़ी की पाठ्य पुस्तकों में कुछ कमी कर दी जाय, क्योंकि अँगरेज़ी-साहित्य की उन्नति उतनी आवश्यक नहीं है जितनी कि प्रचलित भाषा की। लोगों का ध्यान साहित्य से हटा कर भाषा की ओर आकर्षित किया जाय। जो समय बचे वह अपनी मातृ-भाषा में योग्यता प्राप्त करने में ख़र्च किया जाय।

इस नियम से भी मिहनत की बहुत कुछ बचत हो सकती है कि परीक्षार्थी अँगरेज़ी छोड़ कर और सब विषयों के प्रश्नों के उत्तर अपनी मातृ-भाषा में लिखें।

जब तक इधर मातृ-भाषा की ओर जनता की रुचि बढ़ाने और भाषा की शिक्षा देने योग्य स्नातकों के तैयार करने का प्रयत्न किया जाय तब तक साहित्य-सेवी अच्छी अच्छी पुस्तकें लिख कर साहित्य को पुष्ट करने का प्रयत्न करते रहें। अधिक समय की आवश्यकता नहीं। पाँच ही वर्ष के भीतर हमारी भाषायें इस योग्य हो जायँगी कि हम उनके साहित्य को वह उच्च पद दे सकेंगे जो कलकत्ता-विश्व-विद्यालय ने बँगला-भाषा को दिया है। एम० ए० और बी० ए०, दोनों में उनका वही पद हो जो आज-कल संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, दर्शन, इतिहास, सम्पत्ति-शास्त्र आदि विषयों का है।

अन्तिम उपाय, जो इन सब उपायों को कार्य-रूप में परिणत करने का है, सङ्गठन और आन्दोलन है। सङ्गठन बहुत कठिन नहीं, क्योंकि इस देश में भिन्न भिन्न भाषाओं के होते हुए भी उद्देश सबका यही है कि वे देश की शिक्षा-पद्धति में उच्च पद प्राप्त करें। जहाँ प्रान्तीय भाषाओं के अलग सम्मेलन होते हैं वहाँ भारतीय भाषाओं का भी एक जातीय सम्मेलन हो, जिसमें प्रत्येक देशी भाषा के चुने

हुए विद्वान् एकत्र हो कर इस प्रश्न पर विचार करें, और जो कुछ निश्चय हो उसके आधार पर पत्रों, पत्रिकाओं, और वक्तृताओं द्वारा अपने नेताओं और शासकों का ध्यान अपनी शिकायतों की ओर आकर्षित करें।

देशी पत्रों और पत्रिकाओं को इस सङ्गठन और आन्दोलन के विषय में दो बातों की ओर तुरन्त ही ध्यान देना चाहिए। एक तो यह कि हिन्दी और उर्दू के विद्वान् एक जगह बैठ कर अपने मत-भेद का समझौता कर लें। हिन्दी और उर्दू में कोई विरोध नहीं। हम एक ही भाषा बोलते हैं; हाँ लिखने में कुछ भिन्नता आ जाती है—दाहिनी तरफ़ से या बाईं तरफ़ से। शब्द फ़ारसी, अरबी के हों या संस्कृत के। उनको बदल कर ग्रहण करने में कोई विशेष हानि नहीं। उर्दू की नफ़ासत को कम न कीजिए। बस उसको बाईं तरफ़ से लिखना शुरू कर दीजिए। इधर हम फ़ारसी और अरबी के लिए अपना साहित्य-द्वार खोल दें। राज-नीति-क्षेत्र में जिस तरह सङ्गठन और समझौते से अधिकारों की प्राप्ति के लिए रास्ता साफ़ हो गया, उसी तरह साहित्य-क्षेत्र में भी इसी ढँग से साफ़ हो सकता है।

दूसरी बात यह है कि जिस संस्था के अधीन शिक्षा-नीति हो उसमें, यदि वह हमारे वोट के अधीन हो तो, हम ऐसे सदस्यों को भेजने का प्रयत्न करें जो हमारे उद्देश से सहमत हों। वह समय बहुत निकट है जब हमें अपने अधिकारों को काम में लाना होगा। क्यों न तब तक हम इस प्रश्न के विषय में अपने विचारों को अभी पुष्ट कर लें?

अध्यापक

माली!

माली देखो तो, तुमने यह
कैसा वृक्ष लगाया है;
कितना समय हो गया इसमें
नहीं फूल भी आया है।
निकल गये कितने वसन्त हैं
बरसातें भी बीत गईं,
किन्तु प्रफुल्लित इसे किसी ने
अब तक नहीं बनाया है।
शाखायें सब साथ छोड़ती
जातीं बड़ी रुखाई से,
शुष्क हुए पत्तों को इसने
जहाँ तहाँ बिखराया है।
अतुल तुम्हारे इस उपवन की
इससे भी कुछ शोभा है?
क्या निज कौशल दिखलाने को
इसे यहाँ उपजाया है?
इसे काट ही डालो अथवा
हरा भरा कर दो जिसमें
कहें सभी आहा! तुमने यह
कैसा वृक्ष लगाया है!

सियारामशरण गुप्त

ख़्वाजा आतिश।

आपका नाम था ख़्वाजा हैदरअली। तबीयत में ग़ज़ब की गरमी थी। 'आतिश' उपनाम ही इसका सूचक है। सच तो यह है कि उपनाम की गरमी का पता आपके हर पद्य से मिलता है। आप सुप्रसिद्ध कवि 'मसहफ़ी' के शिष्य थे। आपके कारण 'मसहफ़ी' का भी ख़ूब नाम हुआ। आज़ाद ने ठीक लिखा है—"इनकी आतिश-बयानी ने उस्ताद के नाम को रोशन किया, बल्कि कलाम की गरमी और चमक की दमक ने उस्ताद-शागिर्द के कलाम में अँधेरे-उजाले का इम्तियाज़ दिखाया।"

आपके पिता दिल्ली के रहनेवाले थे, पर लखनऊ चले आये थे। यहीं आतिश का जन्म हुआ। आतिश लखनऊ के पूरे शाइर थे। वहीं पैदा हुए, वहीं पढ़े-लिखे, वहीं शिष्य हुए और वहीं अपनी ईश्वर-दत्त कवित्व-शक्ति की बदौलत उस्ताद हुए। दिल्ली-लखनऊ के झगड़े उर्दू-काव्य-जगत् में, दुःख है, विरल नहीं हैं। दिल्लीवाले उर्दू-कविता के लिए दिल्ली के निवास को भी एक बड़ा साधन समझते हैं। कितना ही अच्छा कवि हो, उसकी कैसी ही सुन्दर रचना हो, यदि वह दिल्ली में नहीं रहा है और वहाँ के उस्तादों की सेवा का उसने सौभाग्य प्राप्त नहीं किया है, तो उसकी उस्तादी में सन्देह करना पाप नहीं समझा जाता। उर्दू-कवियों के गौरव, महाकवि मीर, कहा करते थे कि उर्दू के लिए कोई कोश उतना प्रामाणिक नहीं समझा जाता जितनी जामा-मसजिद की सीढ़ियाँ। मतलब यह है कि पुस्तकें पढ़ कर कोई उर्दू का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता जब तक कि वह दिल्ली में किसी उस्ताद की सीढ़ियों पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त न करे। पर, इस समय, उर्दू-साहित्य की दृष्टि से दिल्ली में वह बात कहाँ है। आतिश के उस्ताद मसहफ़ी के जीवन का बड़ा, और काम का, हिस्सा यद्यपि लखनऊ में बीता और बड़े आदर-सत्कार के साथ बीता था, पर जब मौक़ा होता तभी वे अपने दिल्ली-निवास पर गर्व किया करते थे। एक स्थान पर दिल्ली की दुर्दशा का चित्र खींचते हुए आप कहते हैं :—

दिल्ली कहे हैं जिसको ज़माने में मसहफ़ी।
मैं रहनेवाला हूँ उसी उजड़े दयार का॥

समालोचक-शिरोमणि विद्वत्प्रवर आज़ाद बड़े ही आज़ाद थे। सच्ची बात कहने में और काव्य की बारीकियाँ समझने में उनके जोड़ का आदमी उर्दू-साहित्य-सेवियों में मिलना मुश्किल है। पर दिल्ली-निवास के माहात्म्य-वर्णन में उन्होंने भी अन्य कवियों का अनुकरण किया है और जिसका नाम सुन्दर भाषा है उसे वे दिल्लीवालों ही के हिस्से की चीज़ समझते हैं। उस्ताद मसहफ़ी की जन्म-भूमि अमरोहा (मुरादाबाद) थी। वे दिल्ली में पैदा न हुए थे। यद्यपि उन्होंने शिक्षा वहीं प्राप्त की थी, पर आज़ाद ने उनके दिल्ली में जन्म न लेने के नम्बर आख़िर काट ही लिये। मसहफ़ी और उर्दू के प्रकाण्ड कवि इंशा समसामयिक थे। दोनों में किसी बात पर चल पड़ी थी। दोनों ही माने हुए उस्ताद थे। दोनों ही के सैकड़ों शिष्य थे। इस काव्य-युद्ध का वर्णन करते हुए महामति आज़ाद लिखते हैं :—"ग़रज़ इस ग़ज़ल की ख़बर शेख़ मसहफ़ी को पहुँची। वह पुराना मश्शाक़, लखनऊ भर का उस्ताद, कुछ छोटा आदमी न था। बावजूद बुढ़ापे के बिगड़ खड़ा हुआ और यह ग़ज़ल फ़ख़रिया कही। अब ख़्वाह इसे बुढ़ापे की सुस्ती कहो, ख़्वाह **तबीयत का अमरोहापन कहो**, ख़्वाह आईने-मतानत की पाबन्दी समझो। ग़रज़ अपनी वज़ा को हाथ से न दिया और अपने अन्दाज़ में ख़ूब कहा।"

इस 'अमरोहेपन' में एक ओर लखनऊ के मज़ाक़ पर कटाक्ष है, दूसरी ओर दिल्ली के माहात्म्य का छिपा वर्णन है। आज़ाद ने आचार्योचित ढँग से यह बात कही है।

मतलब यह कि आम तौर से दिल्ली ही उर्दू की टकसाल समझी जाती थी। उसके बाद फिर किसी शहर का नम्बर था तो वह लखनऊ का। आतिश लखनऊ के नामी शाइर थे। उनके काव्य की भाषा को देख कर अनेक 'देहलवी शाइरों' के मुँह में पानी भरता है। सच तो यह है कि उर्दू के शाइरों में जो दरजा, भाषा की दृष्टि से, आतिश को मिला वह दिल्ली के भी बहुत कम शाइरों को मिला है।

आतिश भी दाग़ की तरह बहुत बड़े विद्वान् न थे, पर पूरे कवि थे। फ़ारसी और अरबी भाषा में उनका प्रवेश ज़रूर था, पर उन भाषाओं का उन्हें असाधारण ज्ञान न था।

आतिश बड़े सीधे सादे आदमी थे, पर तबीयत के बाँके थे। सिपाहियों की धज में रहते थे और फ़क़ीरी से भी प्रेम था। जो कुछ मिल जाता था उसी पर सन्तोष करते थे और निश्चिन्त मन से काव्य-रचना करते रहते थे। माली ख़ाँ की सराय में एक छोटे से मकान में रहते थे। तबीयत के उदार थे। जो कुछ मिलता उसमें से घर का ख़र्च निकाल कर बाक़ी ग़रीबों को बाँट देते थे। बाहर से सिपाही और भीतर से साधु थे। शहर के रईस और आपके शिष्य सदा आपकी सेवा करते रहते थे और आप भी उनकी दी हुई भेंट को प्रेम से स्वीकार कर लेते थे। लखनऊ के नवाब आपको ८०) मासिक देते थे। एक घोड़ा भी रखते थे।

कभी कभी धन की कमी से निराहार व्रत की भी नौबत आजाती थी। पर क्या मजाल, किसी से सवाल करें। शिष्यों को ख़बर लगती तो कोई कुछ और कोई कुछ लेकर आता और शिकायत करता—"उस्ताद हमें अपना नहीं समझते; तभी तो कभी कुछ नहीं कहते।" आप हँस कर जवाब देते—"तुमने खिला खिला कर हमें लोभी बना दिया है।" आपके अनेक शिष्य, नियमित रूप से, आपकी आर्थिक सहायता करते थे। इनमें कविवर वज़ीर और उनके शिष्य, यानी आतिश के प्रशिष्य, कवि गोया और रिन्द के नाम उल्लेख योग्य हैं।

आप कभी किसी रईस के मकान पर न जाते थे; किसी की तारीफ़ में अपनी शाइरी का बेजा ख़र्च न करते थे। सर्वसाधारण में आपके काव्य का बड़ा मान था, पर अपने काव्य को सर्वसाधारण तक पहुँचाने में आप कोई कोशिश न करते थे। एक टूटे फूटे मकान में, बोरिया बिछाये, सन्तोष और शान्ति के साथ बैठे रचना करते रहते थे। ग़रीब आते तो उनसे अच्छी तरह मिलते। कोई रईस आता तो बड़ा रूखा व्यवहार करते। रईस सलाम करके खड़ा रहता कि आप कहें तो बैठें। यह देख कर, आप कहते—"क्यों साहब, बोरिये को देखते हो, कपड़े ख़राब हो जायँगे, यह तो फ़क़ीर का तकिया है, यहाँ मसनद तकिया कहाँ"। यह फ़क़ीराना बे परवाही थी। इस विषय पर हाली का एक शेर है—

जो चाहो फ़क़ीरी में इज्ज़त से रहना।
न रक्खो अमीरों से मिल्लत ज़ियादह॥

हाली की इस नैतिक ग़ज़ल के और भी कुछ शेर पढ़ने, नहीं याद रखने, योग्य हैं—

फिर औरों की तकते फिरोगे सख़ावत।
बढ़ाओ न हद से सख़ावत ज़ियादह॥
हर इक से मुसीबत का अहवाल कहना।
मुसीबत से है यह मुसीबत ज़ियादह॥

आतिश की कविता में वह आकर्षण था कि इस बेपरवाही के होने पर भी शहर के अमीर ग़रीब उनके टूटे मकान के सहन में, बिछे बोरिये पर, आकर बैठते थे और काव्यामृत पान कर वहाँ नन्दनकानन का सुख भोगते थे।

शिष्यों की कविता में संशोधन करना, उसमें इसलाह देना बड़ा मुश्किल काम है। उर्दू के नामी शाइर इस कला में ख़ूब प्रवीण होते थे। उसका एक कारण था। उन्हें रोज़ ही दस बीस ग़ज़लें बनानी पड़ती थीं। पर सबका ढँग एक सा न था। कोई शेर को ही बदल देता था। इसे इसलाह कहना भूल है। यह संशोधन नहीं—नई रचना है। इसमें शिष्य की उभरती हुई प्रतिभा का रङ्ग उड़ जाता है और उसकी जगह गुरु की पुख़्तामश्क़ी का सिक्का बैठ जाता है। संशोधन ऐसा होना चाहिए कि शिष्य का रङ्ग बना रहे और गुरु की क़लम उसमें जो कोर कसर है उसे निकाल कर कवित्व को सुडौल कर दे। आतिश इसी तरह के संशोधक थे। उनके एक शिष्य ने एक बार किसी कवि-समाज में, उन्हें बिना दिखाये, कोई ग़ज़ल पढ़ दी। इसकी ख़बर आपको लग गई। दूसरे दिन वह शिष्य आपके पास आया। पूछा—कल कौन ग़ज़ल पढ़ी थी? शिष्य ने बड़े गौरव के साथ यह शेर सुनाया—

मुद्दत के बाद आज वह ऐ मेहरबाँ मिले।
दिल की कहूँ जो जान की मुझको अमाँ मिले॥

सुन कर आपने कहा—'यह 'जो जान' आपकी ख़ाला का नाम था'?

शिष्य सन्नाटे में आ गया। थोड़ी देर बाद उसने पूछा—'उस्ताद आख़िर क्या होता'? आपने कहा—

मुद्दत के बाद आज वह ऐ मेहरबाँ मिले।
दिल की कहूँगा जान की मुझको अमाँ मिले॥

आपका दस्तूर था कि शिष्य की ग़ज़ल सुनते समय मामूली, पर दोष-विहीन, शेर पर 'हूँ' कह देते थे; अच्छे शेर पर दाद देते थे। एक दिन आपके प्रसिद्ध शिष्य सुकवि सबा अपनी ग़ज़ल सुना रहे थे। उन्होंने जब यह शेर पढ़ा—

फ़स्ले गुल में मुझे कहता है कि गुलशन से निकल।
ऐसी बे-पर की उड़ाता न था सय्याद कभी॥

तब भी उस्ताद ने 'हूँ' कह दिया। इस पर सबा ने कहा—'हज़रत, मैंने यह शेर ख़ूनं-जिगर खा कर कहा है।' मतलब यह था कि इसकी दाद न देना सख़्त बे-इन्साफ़ी है। उस्ताद ने कहा—फिर पढ़िए। जब दुबारा उन्होंने शेर पढ़ा तब आपने कहा—पहला मिसरा यों बना दीजिए—

पर कतर कर मुझे कहता है कि गुलशन से निकल ।
ऐसी बे-पर की उड़ाता न था सय्याद कभी ॥

'पर कतरने' के बाद 'बे पर की' में कितना बल आ गया कि शेर उड़ कर एक साथ आसमान पर चढ़ गया। नहीं तो 'बे परी' के कारण धूल में लोट रहा था ।

इन्हीं सबा का एक शेर है—

ऐ सबा जज़्ब पै जिस दम दिलेनाशाद आया ।
उड़के आग़ोश में वह बानिये बेदाद आया ॥

उस्ताद ने इस शेर को इस तरह बनाया—

ऐ सबा जज़्ब पै जिस दम दिले नाशाद आया ।
अपने आग़ोश में उड़ कर वह परीज़ाद आया ॥

'सबा' उपनाम के साथ 'उड़ कर' और 'परीज़ाद' शब्दों के आने से कुछ और ही बात आ गई ।

सबा—न जेब में न गिरेबाँ में तार बाक़ी है ।
यह सुन रहा हूँ कि फ़स्ले बहार बाक़ी है ॥

उस्ताद ने इस पर इसलाह की रोशनी इस तरह डाली—

न जेब का है न दामन का तार बाक़ी है ।
जुनूँ का जोश है फ़स्ले बहार बाक़ी है ॥

'जुनूँ के जोश' ने कुल शेर के अर्थ को चमका दिया। शेर वही रहा, पर एक आध शब्द के हेर फेर से अर्थ में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया ।

कविवर आतिश को शेर बनाने का बड़ा अभ्यास था। लखनऊ के एक बड़े मुशायरे में आतिश और नासिख़ अपने अपने शिष्यों के साथ मौजूद थे। और भी अनेक छोटे बड़े शाइर वहाँ थे। आतिश और नासिख़ में चलती रहती थी। इसका ज़िक्र आगे आवेगा। महाकवि मसहफ़ी भी आनेवाले थे। मुशायरा शुरू हुआ। एक लड़के ने ग़ज़ल पढ़ी। उसका पहला शेर था—

जिस कमसखुन से मैं करूँ तक़रीर बोल उठे ।
मुझमें कमाल वह है कि तस्वीर बोल उठे ॥

इस पर मुशायरे में ख़ूब वाह वाह हुई। उस्ताद नासिख़ ने कई बार इस शेर को पढ़वाया और इस तरह लड़के को ख़ूब दाद दी। इस ग़ज़ल के पढ़े जाने के बाद मियाँ मसहफ़ी आये। उनकी प्रतिष्ठा के लिए सब खड़े हो गये। बीच में आपको गद्दी पर बिठाया। जब उस्ताद के आगे दीपक आया और उन्होंने ग़ज़ल पढ़ने का इरादा किया तब नासिख़ ने कहा—उस्ताद, आपके आने से पहले इस लड़के ने बड़े ग़ज़ब का मतला (ग़ज़ल का पहला शेर) पढ़ा था। उसकी तारीफ़ नहीं हो सकती। मसहफ़ी ने बात टालने के लिए कहा—पढ़ा होगा। नासिख़ ने फिर कहा—मैं चाहता हूँ कि आप भी सुन लें। यह कह कर उन्होंने इशारा किया और उनके एक शागिर्द ने उस्ताद के आगे से दीपक उठा कर उस लड़के के सामने रख दिया। यह देख कर आतिश आग हो गये। इसे उन्होंने अपने गुरु का अपमान समझा। उन्होंने नासिख़ से कहा—इस ग़लत मतले पर क्यों इतना नाज़ किया जाता है। तसवीर का कमसखुन होना कुछ मानी नहीं रखता। फिर लड़के से कहा—मियाँ, इसे यूँ पढ़ो—

जिस बे-ज़ुबाँ से मैं करूँ तक़रीर बोल उठे ।
मुझमें कमाल वह है कि तस्वीर बोल उठे ॥

उस्ताद मसहफ़ी अपने प्रत्युत्पन्नमति शिष्य आतिश की योग्यता पर मन में मुग्ध हो गये और नासिख़—"चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे"।

एक मुशायरे में आतिश ने एक मतला पढ़ा—

सुर्मा मंज़ूरे नज़र रहता है चश्मे यार को ।
नील का गंडा पिन्हाया मर्दुमे बीमार को ॥

नासिख़ भी मौजूद थे, बोले—क्या ख़ूब! नील का गंडा पिन्हाया मर्दुमे बीमार को। एक बार और पढ़िए—क्या कहा है। आतिश समझ गये कि व्याज-स्तुति है। फ़ौरन इसलाह देकर यों पढ़ा—

सुर्मा मंज़ूरे नज़र रहता है चश्मे यार को ।
नील गूँ गंडा पिन्हाया मर्दुमे बीमार को ॥

आतिश के एक शिष्य का नाम रिन्द था। रिन्द बड़े अच्छे शायर थे। उनका एक शेर है—

फिर ले चला है दिल मुझे बुतख़ाने की तरफ़ ।
अब साकिनाने काबा हमारा सलाम है ॥

इसे उस्ताद आतिश ने इस तरह ठीक किया—

फिर खींचती है उल्फ़ते बुत दैर की तरफ़ ।
लो साकिनाने काबा हमारा सलाम है ॥

'फिर खींचती है उल्फ़ते बुत'—इस टुकड़े ने शेर में जान डाल दी। 'लो' ने दूसरे मिसरे को मुहावरे में डबो

दिया। आतिश की 'लो' ने 'अब' की शिथिलता को जला दिया।

इन्हीं रिन्द का एक शेर है—

मर गया ख़ाक हुआ गो मेरा मदफ़न न रहा।
तेरा खटका भी तो बर्क़े शरर अफ़गन न रहा॥

आतिश की इसलाह के बाद इसकी यह सूरत हो गई।

जल गया ख़ाक हुआ गो मेरा मदफ़न न रहा।
ख़ौफ़ तेरा भी तो बर्क़े शरर अफ़गन न रहा॥

बिजली के खटके या ख़ौफ़ से मरने की जगह 'जलना' अच्छा ही है। इतने ही हेर फेर से मतला आसमान पर पहुँच गया।

रिन्द का एक और शेर है—

कब तक डटे रहोगे बुतों की गली में रिन्द।
तलवार खींचो भीड़ हटे रास्ता मिले॥

उस्ताद ने इसे इस तरह बनाया—

कब तक डटे रहोगे बुतों की गली में रिन्द।
तलवार खींचो भीड़ छटे रास्ता मिले॥

'हटे' और 'छटे' में कितना अन्तर है, मुहावरे की क़द्र करनेवाले जानते हैं। 'तलवार' के साथ 'छटे' आने से अर्थ में गौरव हो गया।

आतिश का काव्य उर्दू की कविता का आला नमूना है। उनके दीवान की हर ग़ज़ल उनके ख़ास रङ्ग में डूबी हुई है। महामति आज़ाद उसे उर्दू-मुहावरों का विधान-पत्र बताते हैं। जिसका नाम काव्य है वह उनके हर शेर में मौजूद है। कोई शेर बाँकपन से ख़ाली नहीं। फिर भाषा इतनी सरल कि मानों बातें हैं और सोचो तो उत्कृष्ट कविता। उन्होंने ठीक ही कहा है—

शाइरे हाल गो था मैं आतिश।
मेरे हर शेर में बँधा मतलब॥

फिर कहते हैं—

दुरे दन्दानो लाले लब के मज़मूँ लिखते हैं आतिश।
जवाहरख़ाना है हर बैते मौज़ूँ अपने दीवाँ का॥

इनके काव्य ने सबके मन मोह लिये। सच यह है कि दुश्मन भी इनके काव्य की प्रशंसा करते थे। एक जगह आप कितना अच्छा कहते हैं—

हर इक मिसरे में यां मज़मूँ है आतिश दोस्तदारी का।
हमारे शेर का इन्साफ़ है इन्साफ़े दुश्मन पर॥

बड़े बड़े अलङ्कारों या क्लिष्ट कल्पनाओं से काव्य को भर देना उतना मुश्किल नहीं जितना सीधी सादी, पर बामुहावरा, भाषा में काव्य-रचना करना। इसलिए काव्य-कला-मर्मज्ञ सीधी सादी भाषा में, पर रस में डूबे, कवि कालिदास के काव्य की जितनी प्रशंसा करते हैं उतनी किसी अन्य अकारण कठिनता-प्रिय कवि की नहीं। काव्य को सुन कर यदि तबीयत न फड़की, मन न मुग्ध हुआ, तो काव्य क्या हुआ। वह क्या काव्य है जिसे सुन कर सिर में दर्द होने लगे और जिसको समझने के लिए आलमारी भर पुस्तकें और बाल की खाल निकालनेवाले समझानेवालों की ज़रूरत हो। बात साफ़ हो, स्वाभाविक हो, पर कही इस तरह जाय कि उसमें एक तरह का चमत्कार आजाय; उसके सुनने से सुननेवाले को एक तरह की ख़ुशी क्या मस्ती मालूम हो। इतना बारीक कहना या इतना ऊँचा उड़ना कि दिखाई न दे, किस काम का। हाँ, ऐसी बारीकी और ऐसी ऊँची उड़ान, जो देखनेवालों की आँख को 'तर' करे और उन्हें प्रसन्नता दे, अच्छी है। फिर भी सुनने और समझनेवाले की योग्यता पर काव्य की उत्तमता का दारोमदार है। आतिश एक जगह इस बात को बड़े अच्छे ढँग से कहते हैं:—

आतिश सखुनशनास है क़दरे सखुन समझ।
सारा है इस गुहर का ख़रीदार पर घमंड॥

फ़ारसी के कालिदास 'सायब' इस विषय पर बहुत अच्छा कह गये हैं:—

सायब दो चीज़ मे शिकनद लुत्फ़े शेर रा।
तहसीने नाशनासो सुकूते सखुनशनास[*]॥

कविवर नासिख़ आतिश के प्रतिद्वन्द्वी थे। एक शहर और एक समय के दोनों कवि ही नहीं, उस्ताद थे। दोनों में कविता-सम्बन्धी नोक-झोक प्रायः होती रहती थी। नासिख़ बड़े मुश्किलपसन्द कवि थे। जिस ज़मीन पर कोई न चले उस पर चलने के लिए वे कमर कसे रहते थे। जिस मज़मून को कोई न निकाले उसे वे बाहर

---

[*] सायब, दो चीज़ें शेर का मज़ा बिगाड़ देती हैं, मूर्ख की तारीफ़ और जाननेवाले की चुप।

करते थे । इसलिए, आतिश के कुछ शागिर्द उन्हें 'बेमानी शाइर, कहा करते थे । इस कृपा-कटाक्ष का उत्तर नासिख़ के शागिर्द भी दिया करते थे । वे कहते थे, आतिश 'बातों के शाइर' हैं, उनके यहाँ बातें ही बातें हैं । पर सच तो यह है कि उस्तादों के ज़िन्दा-दिल शागिर्दों की ये बातें सिर्फ़ बातें और किसी अंश में बेमानी बातें थीं । न नासिख़ के यहाँ अर्थ का अकाल था और न आतिश के यहाँ बारीकी का, किन्तु एक थले के इन दो शेरों में शेर के सम्बन्ध में अक्सर मुठभेड़ हो जाती थी ।

नासिख़ का रङ्ग काला था; शरीर खूब मज़बूत था; कसरती था । उन पर यार लोग दुमकटे भैंसे की फबती उड़ाते थे । आतिश ने एक शेर लिखा—

रूसियाह दुश्मन का यूँ पापोश से कीजे फ़िगार ।
जैसे सिलहट की सिपर पर ज़ख़्म हो शमशीर का ॥

इसके जवाब में नासिख़ ने बड़ी गम्भीरता से कहा—

मैं गो हुस्न में ज़ाहिर में मिस्ले माह नहीं ।
हज़ार शुक्र कि बातिन मेरा सियाह नहीं ॥

नासिख़ के पट्ट शिष्य 'गोया' ने भी इसके जवाब में एक शेर लिखा—

है यक़ीं गुल हो जो देखे गेसुए दिलबर चिराग़ ।
आगे काले के भला रोशन रहे क्योंकर चिराग़ ॥

इसके जवाब में आतिश के शिष्य सबा ने एक शेर लिखा—

फ़रोग़े हुस्न पै कब ज़ोरे ज़ुल्फ़ चलता है ।
यह वह चिराग़ है काले के आगे जलता है ॥

एक मुशायरे में शैख़ नासिख़ उस समय पहुँचे जब सभा क़रीब क़रीब भङ्ग हो चुकी थी । आतिश ने कुशल-प्रश्न के बाद कहा—शैख़ साहब, लोगों को आपकी ग़ज़ल सुनने का चाव रह गया । शैख़ नासिख़ ने उसी समय एक शेर कहा—

जो ख़ास हैं वह शरीके गिरोहे आम नहीं ।
शुमार दानये तसबीह में इमाम नहीं ॥

ख़ास आदमी आम लोगों से वास्ता नहीं रखते । माला में सुमेरु का दाना ख़ास है और इसी लिए माला के मामूली दानों के साथ उसकी गणना नहीं होती । 'इमाम' सुमेरु के दाने को कहते हैं और 'नासिख़' का नाम भी इमामबख़्श था । इसलिए मज़मून की लताफ़त के साथ 'इमाम' के इस श्लेष ने सभा के लोगों को फड़का दिया । आतिश भी मौजूद थे ही । उन्होंने उसी समय इसके जवाब में एक शेर कहा—

यह बज़्म वह है कि लाख़ैर का मुक़ाम नहीं ।
हमारे गंजफ़े में बाज़िये ग़ुलाम नहीं ॥

उस्ताद नासिख़ के शिष्य वज़ीर ने उसी समय इस लाजवाब शेर का जवाब बड़ी कामयाबी से दिया कि जिसे सुन कर सब फड़क गये और उस्ताद के गौरव का तो अन्त ही न रहा । वह शेर यह है—

जो ख़ास बन्दे हैं वह बन्दये अवाम नहीं ।
हज़ार बार जो यूसुफ़ बिके ग़ुलाम नहीं ॥

नासिख़ के एक नवाब-शिष्य के यहाँ मुशायरा था । नवाब साहब ने अपने उस्ताद नासिख़ को उस मुशायरे में ख़िलअत देने का विचार किया था । भीतरी मंशा यह भी था कि आतिश के सामने नासिख़ को ख़िलअत दी जाय और आतिश बैठे बैठे जलें । फिर एक शरारत और की । आतिश के पास समस्या सिर्फ़ एक रोज़ पहले भेजी । दूसरे दिन मुशायरा था और मार्के का मुशायरा था । आतिश को सब हाल मालूम हो गया । मुशायरे से एक दिन पहले समस्या भेजने पर वे जल गये । कहने लगे, बड़ी बेइंसाफ़ी है; अब लखनऊ रहने की जगह नहीं । शिष्यों ने कहा—आप फ़िक्र न करें । हम लोग दो दो शेर भी कहेंगे तो सैकड़ों शेर बात की बात में हो जायँगे । मगर उस्ताद का गुस्सा इस बात से कम होने के बजाय और बढ़ गया । वे उठ कर पास के जङ्गल में चले गये और किसी मस्जिद में जाकर ग़ज़ल लिखने लगे । ग़ज़ल लिख कर मुशायरे में पहुँचे । आज सिपाहियाना धज के साथ भरी हुई बन्दूक़ भी साथ थी । आप नासिख़ के ठीक सामने बैठ गये और बन्दूक़ पास रख ली । आपके रँग ढँग देख कर सब डर गये । बन्दूक़ भरी हुई थी और उससे ज़ियादह आप ख़ुद भरे हुए थे । बार बार बन्दूक़ उठाते थे और रखते थे । दीपक सामने आया तो सँभल कर बैठ गये और नासिख़ की ओर इशारा करके अपनी अमर ग़ज़ल पढ़ने लगे । उसका पहला शेर है—

सुन तो सही जहाँ में है तेरा फ़िसाना क्या।
कहती है तुझको ख़ल्के ख़ुदा ग़ायबाना क्या॥

फिर ये शेर पढ़े—

तबलो अलम है पास कुछ अपने न मुल्को माल।
हमसे ख़िलाफ़ हो के करेगा ज़माना क्या॥
चारों तरफ़ से सूरते जाना हो जलवागर।
दिल साफ़ हो तेरा तो है आईनाख़ाना क्या॥
आती है किस तरह से मेरी क़ब्ज़े रूह को।
देखूँ तो मौत ढूँढ़ रही है बहाना क्या॥

इस ग़ज़ल का आख़िरी शेर कितना ज़ोरदार है, देखिए—

याँ मुद्दई हसद से न दे दाद तो न दे।
आतिश ग़ज़ल यह तूने कही आशिक़ाना क्या॥

इस ग़ज़ल को सुन कर सब सन्नाटे में रह गये। इतने थोड़े समय में, ऐसी मुश्किल ज़मीन में, इतनी अच्छी ग़ज़ल कहना उस्तादों का ही काम है। ग़ज़ल के प्रत्येक शेर में नासिख़ पर भीतरी चोट थी। उसकी यातना का अनुभव सिर्फ़ उन्हीं ने किया, पर ग़ज़ल का आनन्द सबने लूटा। समझनेवाले समझते थे कि आतिश बातों बातों में क्या बात पैदा कर रहे हैं और क्या कह रहे हैं और किधर बरस रहे हैं। नवाब साहब ने उसी समय दूसरी ख़िलअत मँगाई और नासिख़ और आतिश दोनों का यथोचित सत्कार किया।

जिन नासिख़ से आतिश की इस तरह चलती थी उन्हीं नासिख़ के मर जाने पर आतिश ने शेर कहना छोड़ दिया। कहने लगे—अब कहने का मज़ा नहीं। जिसे सुनाने के लिए कहते थे जब वही नहीं रहा तब शेर कहना नहीं बकवास है। कैसी सहृदयता थी, कैसी मानसिक स्वच्छता थी।

नासिख़ के काव्य-गुरु भी आरम्भ में महाकवि मसहफ़ी ही थे। किन्तु बाद को उनसे किसी बात पर बिगड़ गई थी। नासिख़ ने उस दिन से अपनी ग़ज़ल किसी को न दिखाई। ख़ुद कहते और ख़ुद ही ठीक करते थे। ईश्वर ने कवित्वशक्ति दी थी। समय पाकर अच्छे कवि ही नहीं हुए, बल्कि लखनऊ जिन उस्तादों पर नाज़ करता है उनमें उनकी गणना हुई।

उस्ताद मसहफ़ी से आख़िर में आतिश का भी वैमनस्य हो गया था। उर्दू के साहित्य में उस्तादों को, मालूम होता है, किसी का शाप है कि शिष्यों से उनकी खटपट हो जाती है। बहुत से नालायक़ शिष्य गुरु की निन्दा में अपनी कवित्वशक्ति और ईश्वरदत्त प्रतिभा को अपवित्र करने लगते हैं। किन्तु आतिश ने ऐसा नहीं किया। सदा उनका दिल से मान करते रहे। पर फिर उनसे वास्ता न रक्खा। बात यह हुई कि आतिश ने एक ग़ज़ल लिखी जो उर्दू-काव्य में अपने रङ्ग की अद्वितीय ग़ज़ल है। उसे सुनाते हुए जब ये—

अमानत की तरह रक्खा ज़मीं ने रोज़े महशर तक।
न इक मू कम हुआ अपना न इक तारे कफ़न बिगड़ा॥१॥

लगे मुँह भी चिड़ाने देते देते गालियाँ साहब।
जबाँ बिगड़ी तो बिगड़ी थी ख़बर लीजे दहन बिगड़ा॥२॥

शेर आये तब गर्व में भर कर कहने लगे—"उस्ताद, इस रदीफ़ क़ाफ़िये में कोई ये शेर निकाले तो कलेजा निकल पड़ता है"। उस्ताद ने हँस कर कहा:—"हाँ मियाँ, सच कहते हो। अब तो किसी से ऐसे शेर नहीं हो सकते"। कहने को तो उस्ताद ने यह कह दिया; किन्तु शिष्य की गर्वोक्ति उन्हें अच्छी न लगी। उसी समय इसी क़ाफ़िये-रदीफ़ में एक ग़ज़ल कही, जिसमें 'क़फ़न' और 'दहन' का क़ाफ़िया एक अजब ढँग से बिठाया और उस ग़ज़ल को अपने एक नौसिखिये शिष्य को दे दिया। मुशायरे में जब उस लड़के ने उस ग़ज़ल को पढ़ा, तारीफ़ के मारे मकान की छतें हिलने लगीं। वे दो शेर ये थे—

लिखा है ख़ाक्के कूये यार से ऐ दीदये गिरियाँ।
क़यामत मैं करूँगा गर कोई हर्फ़े कफ़न बिगड़ा॥१॥

न हो महसूस जो शै किस तरह नक़्शे में ठीक उतरे।
शबीहे यार खिचवाई कमर बिगड़ी दहन बिगड़ा॥२॥

पढ़ने को ये शेर लड़के ने पढ़े थे। पर उसके मुँह पर यह शेर खिलते न थे। ताड़नेवाले ताड़ गये कि उस्ताद की उस्तादी है। आतिश उसी समय गुस्से में भरे हुए उस्ताद के पास गये और अपनी ग़ज़ल फेंक कर उनसे कहा:—"यह आप हमारे कलेजे में छुरियाँ मारते हैं, नहीं तो इस लड़के का क्या मुँह था जो इन क़ाफ़ियों में

शेर निकाल लेता"। गुरु-शिष्य का वैमनस्य यहीं से शुरु हुआ।

उर्दू-भाषा की प्रौढ़ता और उज्ज्वलता यदि किसी को देखनी हो तो आतिश और ज़ौक़ के काव्य का अध्ययन करे। जिसका नाम उर्दू है वह इन दो महाकवियों के काव्य में ही मिलती है। इनके काव्य में भाषा का जो सुथरापन है वह और कहीं मुश्किल से मिलता है। पुराने कवियों में मीर, सौदा, मोमिन और नयों में दाग़, आज़ाद और जलाल भाषा के सुथरेपन के लिए प्रसिद्ध हैं। इन लोगों की भाषा टकसाली भाषा समझी जाती है। किन्तु आतिश और ज़ौक़, जो लखनऊ और दिल्ली के आख़िरी दौरे के सबसे बड़े कवि हैं, अपनी मीठी पर साफ़ और मुहावरे में डूबी हुई भाषा के लिए जितने प्रसिद्ध हैं उतना और कोई नहीं। रहे ग़ालिब, सो उनका रङ्ग निराला है; साफ़ कहें तो कमाल करें और मुश्किल कहें तो उर्दू-फ़ारसी का भेद ही मालूम न हो। उन्हें उर्दू का कवि कहना भूल है; वे फ़ारसी के प्रकाण्ड पण्डित और कवि थे और गद्य-उर्दू के अद्वितीय लेखक। उर्दू के पद्य में उन्होंने जो कुछ लिखा है वह अपने ढँग में लाजवाब है और अर्थालङ्कार का उत्कृष्ट उदाहरण है। किन्तु वह उर्दू का बढ़िया नमूना नहीं कहा जा सकता। इस मैदान में आतिश और ज़ौक़ ही सर्व-प्रधान हैं। इन महाकवियों का एक एक शेर सुनिए: आप स्वयं इसका निर्णय कर लेंगे।

*मीर—मैख़ाना वह मनज़र है कि हर सुबह जहाँ शैख़।
दीवार पै ख़ुरशेद का मस्ती से सर आवे ॥१॥
सौदा—मुबादा हो कोई ज़ालिम तेरा गिरेबाँगीर।
मेरे लुहू को तो दामन से धो हुआ सो हुआ ॥२॥
मोमिन—नाविक अन्दाज़ जिधर दीदये जानाँ होंगे।
नीम बिस्मिल कई होंगे कई बेजाँ होंगे ॥३॥
ग़ालिब—मै से ग़रज़ निशात है किस रूसियाह को।
इकगूना बेख़ुदी मुझे दिन रात चाहिए ॥४॥
ज़ौक़—गुलहाय रंग रंग से है ज़ीनते चमन।
ऐ ज़ौक़ इस जहाँ को है ज़ेब इख़्तलाफ़ से ॥५॥
आतिश—किसी की जब कोई तक़लीद करता है मैं रोता हूँ।
हँसा गुल की तरह ग़ुंचा जहाँ उसका दहन बिगड़ा ॥६॥

कवि के लिए ईश्वरदत्त प्रतिभा के साथ समय के ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। समयानुकूल रचना करनेवाले कवि अपने समय के बड़े कवि कहलाते हैं और इतिहास के अमिट अक्षरों में उनका नाम छप जाता है। आतिश जिस समय हुए उस समय लखनऊ में जिस तरह की शायरी का दौर चल रहा था उसमें ही वे बड़ी सफलता के साथ शरीक हुए। फ़क़ीराना तबीयत पाई थी। पर उधर की बात भी इधर के रङ्ग में ही कहते थे। स्वभाव के बहुत सीधे थे। मकान के पास ही जङ्गल था। उसमें प्रायः

---

*'शैख़जी, आप मद्यालय के दृश्य की क्या पूछते हैं, और की तो बात ही क्या, सुबह होते ही सूर्य भी मस्ती से उसकी दीवार पर झाँकने लगता है ॥१॥

'मेरे ख़ून को बिना धोये जो आप ख़ुशी ख़ुशी इधर-उधर फिरते हैं, यह ठीक नहीं। कोई पल्ला पकड़ लेगा तो मुश्किल आ जायगी। इसलिए मेरे ख़ून को अपने दामन से धो डालिए, और तो जो होना था सो हुआ।'

कविवर अमीर इस विषय को, अपने ढँग पर और ही तरह कहते हैं—

क़रीब है यार रोज़े महशर छिपेगा कुश्तों का ख़ून क्योंकर।
जो चुप रहेगी ज़बाने ख़ंजर लुहू पुकारेगा आस्तीं का ॥२॥

इस शेर का आदर इलाहाबाद-हाईकोर्ट के जज, जस्टिस महमूद, ने किया था। उन्होंने इसे अपने एक फ़ैसले में उद्धृत किया था। यह पहला ही मौक़ा था जब एक जज ने उर्दू-शेर को अपने फ़ैसले में स्थान दिया हो।

'मेरे मित्र के नयन-बाण जिस ओर उठ जायँगे उधर क्या होगा? कुछ आदमी पड़े सिसक रहे होंगे और कुछ अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण कर चुके होंगे ॥३॥

'आप समझते हैं, मैं ख़ुशी के लिए शराब पीता हूँ। पर यह बात नहीं है। मैं अपने आपको भूलने के लिए शराब पीता हूँ। मेरा लक्ष्य ख़ुशी नहीं है, आत्म-विस्मृति है' ॥ ४ ॥

'बाग़ की शोभा एक तरह के फूल से नहीं होती। उसकी शोभा के लिए कई प्रकार के फूल चाहिए। संसार की शोभा का रहस्य विभिन्नता में ही है' ॥५॥

'मैं नहीं चाहता, कोई किसी का अनुकरण करे। मुझे अनुकरण की कुप्रवृत्ति पर रोना आता है। फूल की तरह हँसते ही कली का मुँह बिगड़ जाता है! कली के हँसने पर किसको रोना न आवेगा!' ॥६॥

घूमते थे और वहीं से ग़ज़ल कह कर लाते थे । उनके काव्य की दूर दूर तक चर्चा हुई । आख़िरी दौर के सबसे आख़िरी कवि दाग़ को छोड़ कर और किसी को उतने शिष्य नहीं मिले जितने आतिश को मिले । उनके कई शिष्य बाद को उस्ताद कहलाये । उर्दू के जिस हिन्दू-कवि पर आज हिन्दू-जाति को गर्व है और जिसकी रचना के जोड़ की चीज़ उर्दू-काव्य के विस्तृत भाण्डार में भी ढूँढ़ने पर न मिली वह—पण्डित दयाशङ्कर उपनाम नसीम—भी इन्हीं आतिश के शिष्य थे ।

मानसिक भावों का चित्र चमत्कार के साथ खींचना कवि का काम है । सच तो यह है कि मानव-स्वभाव की नब्ज़ को जो जितना अच्छा जानता है वह उतना ही बड़ा कवि है । फिर उसमें जो नवीनता लाते हैं वे ही महाकवि हैं । जो मज़मून बीस बार बँध चुका है उसे ही किसी ने, उसी रूप में, इक्कीसवीं बार बाँध दिया तो क्या बाँधा । हो तो नया मज़मून बाँधे, नहीं तो पुराने मज़मून को अपनी प्रतिभा के आलोक से नया कर दिखाये । पिष्टपेषण से कविता की श्री उड़ जाती है ।

नवीनता पर लक्ष्य करके आतिश एक स्थान पर किस चमत्कार के साथ कहते हैं—

नज़र मेरी नहीं मद्दे नज़र पर ग़ैर के पड़ती ।
वह शाइर हूँ नहीं जो आइना बेगाना मज़मूँ का ॥

मतलब यह है कि मैं दूसरे के मज़मून से वास्ता नहीं रखता । पर इसी बात को किस शायराना ढँग से कहा है और 'हूँ' 'नहीं' और 'आशना' और 'बेगाना' में कैसा खरा विरोधाभास पैदा किया है । कहने के ढँग में कितना चमत्कार है । मेरी नज़र दूसरे के मद्दे नज़र पर नहीं पड़ती । मैं वह कवि हूँ जो पराये मज़मून से आशना न हो, परिचित न हो । इस कहने के ढँग में ही चमत्कार है और यही कविता है ।

सीमान्त-प्रदेश के मुंशी तिलोकचन्द महरूम, जो नये ढँग के बड़े अच्छे कवि हैं, कविता-साधनों पर कितना अच्छा कहते हैं—

लफ़्ज़ों में जो दिल की तर्जमानी कर दें ।
लायक़ हैं वह दिल की दोस्ती के शाइर ॥१॥
शाइर हैं वही हैं जिनके जज़बात आला ।
उर्दू के हों या हों नागरी के शाइर ॥२॥
मानी ख़ातिरनशीं हों दिलकश अल्फ़ाज़ ।
मौज़ूँ नहीं वर्ना शाइरी के शाइर ॥३॥
काफ़ी है जौहरे तबीयत काफ़ी ।
शागिर्द हों या न हों किसी के शाइर ॥४॥
करता है बयाने इश्क़ जादू दिल पर ।
इस फ़न में चचा हैं सामरी के शाइर ॥५॥
है इश्क़ो हविस में फ़र्क़ लेकिन लाज़िम ।
होते हैं ख़ुदी ओ बेख़ुदी के शाइर ॥६॥
इज़हारे हविस पै यूँ कहेगी दुनिया ।
अच्छे थे मगर थे गन्दगी के शाइर ॥७॥
उर्दू में भी मीर ओ दर्द ओ आतिश ग़ालिब ।
क़ाबिल हैं सबकी पैरवी के शाइर ॥८॥
बेशक हैं ग़नीमत आज अकबर इक़बाल ।
दो ही नज़र आये इस सदी के शाइर ॥९॥
बाला सबसे हैं गो जनाबे टैगोर ।
लेकिन वह हुए एवज़ ऋषि के शाइर ॥१०॥
दरियाये रवाँ है तबय शाइर महरूम ।
हम क्या हैं कि हैं कभी कभी के शाइर ॥११॥

कोई शक नहीं, जो लोग उर्दू-कविता में प्रवेश करना चाहते हैं, आतिश की उन्हें पैरवी करनी चाहिए ।

सन् १२६३ हिजरी में एक दिन आप बैठे बैठे मर गये । आपकी मृत्यु से उर्दू-साहित्य-संसार का एक बहुत बड़ा कवि उठ गया । इनके बाद अभी तक ऐसा कवि पैदा नहीं हुआ । आपकी मृत्यु पर प्रोफ़ेसर आज़ाद अपनी भावपूर्ण भाषा में कितना अच्छा लिखते हैं—"सन् १२६३ हिजरी में एक दिन भले चंगे बैठे थे, यकायक ऐसा मौत का झोका आया कि शोले की तरह बुझ कर रह गये । आतिश के घर में राख के ढेर के सिवा और क्या होना था !"

ज्वालादत्त शर्म्मा

वियोग।

(१)

हे मित्र ! मैं जलहीन, विह्वल, दीन, दुःखित मीन हूँ,
　　है आत्मविस्मृति हो गई, पर आप में मैं लीन हूँ।
मुझको सदा दिन-रात आती अब तुम्हारी याद है,
　　पर हाय ! अब मैं क्या करूँ मिलता न कुछ संवाद है॥

(२)

हे मित्रवर ! अब दुःख से है रुँध गया मेरा गला,
　　वाणी थकी थर्रा गई फिर शब्द क्यों निकलें भला।
इस समय मेरी लेखनी भी रुद्धगति है, दीन है,
　　मेरी दशा है दुःखपूरित, हीन और मलीन है॥

(३)

छाई हुई सर्वत्र यद्यपि दुःख-घन-पटलावली,
　　फिर भी छिटकती अंशुमाली की सुखद किरणावली।
मानस-कुमुद खिलता कभी है शोक से मुँदता कभी,
　　होती कभी है पूर्णिमा, होती अमावास्या कभी॥

(४)

इसका नहीं कुछ शोक मुझको मित्रवर ! सच जानिए,
　　करुणा-कटाक्ष निहारिए, यह प्रार्थना मम मानिए।
संसार में तो एकसा रहता समय हर्गिज़ नहीं,
　　हा ! यह अदृष्टाकाश जानें मित्र ! क्या करता नहीं॥

(५)

दिन है सखे ! होता कभी, है रात भी होती कभी,
　　सुख भी बहुत होता कभी है, दुःख भी होता कभी।
संयोग होता है कभी, होती वियोग-व्यथा कभी,
　　अनुरागिणी ऊषा कभी, दुखदायिनी सन्ध्या कभी॥

(६)

कण्ठस्थ मेरा प्राण है, देखा न जाता त्राण है,
　　यह जान पड़ता आपका निर्दय हृदय पाषाण है।
तो भी अहो ! आशावलम्बन सर्वथा ही योग्य है,
　　जल-डूबते जन के लिए तृण का सहारा योग्य है॥

(७)

मानस ! हताश न हो अभी, कुछ धैर्य्य तो धारण करो,
　　गम्भीरता, दृढ़ता सहित तम-दुःख का वारण करो।
यह दुःख यद्यपि है बड़ा तो भी अभी चिन्ता नहीं,
　　चिन्ता तभी है जो न फिर शशि का उदय होवे कहीं॥

(८)

मेरा अटल विश्वास है नीरद-पटल हट जायगा,
　　शीतांशु निर्मल चन्द्रिका को उदित हो छिटकायगा।
तब साथ ही मानस-कुमुद मेरा समुद खिल जायगा,
　　मम शुष्क शोकाकुल हृदय सुख शान्ति शीतल पायगा॥

कुशहरीदयाल निगम

अटलांटा नगर की सैर।

कोई बारह दिन संयुक्त-राष्ट्र अमरीका की राजधानी वाशिङ्गटन में व्यतीत करके मैं अटलांटा के लिए चला। चौबीस घण्टे के लगभग लगातार रेल में चढ़े रहने के उपरान्त ब्राह्म-मुहूर्त्त में वहाँ पहुँचा। रेल से उतर हवा-गाड़ी में बैठ होटल की तलाश में चला। पहले जिस होटल में पहुँचा उसमें मेरे साथी महोदय, जगह पूछने के लिए, गये। वे उस समय पञ्जाबी साफ़ा बाँधे थे। उनका साँवला मुख देख होटल के गौराङ्ग मनुष्य ने कहा कि नहीं, जगह ख़ाली नहीं है। मेरे मित्र ने एक भूल और की। उन्होंने कहा कि मैं हबशी नहीं, विदेशी मनुष्य हूँ। किन्तु होटलवाले के मन में कोई बात नहीं समाई। हम लोग भी तो यही करते हैं। मदरास या बम्बई प्रदेश का होने पर भी तो हम चमार को अपने घर में नहीं घुसने देते, चाहे वह कितना ही साफ़ कपड़ा क्यों न पहने हो। हमारे यहाँ कुछ जातियों के प्रति जो घृणा है वही यहाँ उन लोगों के प्रति है जो गोरे नहीं हैं। ख़ैर, थोड़ी देर टक्कर मारने के बाद एक होटल में जगह मिल ही गई।

होटल से हम लोग दस बजे के लगभग अध्यापक होप से मिलने गये। उन्होंने गौरेतर लोगों के लड़कों के लिए जो पाठशाला खोली है उसे

देख कर हम उनसे अनेक बातें करते रहे। नीग्रो अर्थात् हबशी जाति के प्रति अमरीका की गौराङ्ग जाति कैसा अन्याय कर रही है, इसके अनेक उदाहरण, बातों ही बातों में, मिल गये। गौराङ्ग जाति के लड़कों के लिए राष्ट्र की ओर से प्रारम्भिक पाठशालाओं के अतिरिक्त बड़े विद्यालय (High Schools) भी हैं। किन्तु गौरेतर अर्थात् काले लोगों के बालकों के लिए ऐसी पाठशालायें नहीं हैं। गौराङ्ग बालकों की पाठशाला में दस्तकारियाँ सिखाने का प्रबन्ध है, किन्तु और लोगों की पाठशालाओं में यह बात नहीं है। उनकी पाठशालाओं में तो अधिकांश शिक्षक स्त्रियाँ ही हैं। उन्हें प्रति दिन आठ घण्टे पढ़ाने के लिए ६० डालर मासिक वेतन मिलता है। याद रखिए एक डालर कोई ३=) के बराबर होता है। पर गोरी लडकियों को गौरवर्णों की पाठशालाओं में चार घण्टे प्रति दिन पढ़ाने के लिए मिलता है अस्सी डालर मासिक वेतन। अमरीका के दक्षिणी प्रान्तों में, एक विशेष राजनैतिक कारण से, कृष्णाङ्ग बालकों के लिए प्रारम्भिक शिक्षा भी अनिवार्य्य नहीं। उनके रहने के मकान बहुत ख़राब हैं, किन्तु उनकी तुलना अपने यहाँ के मकानों से नहीं हो सकती। उनके महल्लों की सड़कें और गलियाँ भी मैली, गन्दी और धूल से भरी रहती हैं। ट्राम-गाड़ी पर उन्हें गौराङ्गों के पीछे बैठना पड़ता है। सुना है कि रेल में उनके लिए अलग गाड़ियाँ हैं। नाम-मात्र के लिए, भिन्न भिन्न चुनावों में, उन्हें सम्मति देने का अधिकार प्राप्त है; पर वह इस प्रकार कार्य्य में लाया जाता है कि ऐसे चुनाव का अधिकार होना न होना बराबर है। दो एक नगरों में इन लोगों की संख्या इतनी है कि किसी उपाय से भी चुनाव में इन लोगों का चुना जाना नहीं रोका जा सकता। इसीसे, वहाँ के नागरिक कर्म्मचारी गवर्नर द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। एक करोड़ जन-संख्या में दस लाख नीग्रो होते हुए भी किसी स्थानिक, प्रादेशिक, अथवा राष्ट्रीय सभा में अभी तक एक भी नीग्रो सदस्य नियुक्त नहीं हुआ। पर इस विषय में मैं और अधिक नहीं कहना चाहता।

मैं अब अटलांटा की कुछ ऐसी संस्थाओं का वर्णन, संक्षेप में, करना चाहता हूँ जिनको देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है और जो वहाँ हबशी जाति की उन्नति के लिए बहुत कुछ चेष्टा कर रही हैं।

अटलांटा नगर में (१) म्योर हाउस कालेज (Muir House College) (२) अटलांटा विश्वविद्यालय (Atlanta University) (३) स्पेलमैन सेमिनरी (Spellman Seminary) (४) और लियोनार्ड-स्ट्रीट आरफ़न होम (Leonard Street Orphan Home) हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई छोटे मोटे स्कूल तथा पाठशालायें हैं। किन्तु वे राजकीय हैं। इस कारण उन्हें प्रधानता नहीं दी जा सकती।

(१) म्योर हाउस कालेज—इस कालेज के प्रधानाध्यापक आज-कल महाशय होप (Mr. Hope) हैं। आप बड़े सज्जन हैं। आपके रक्त के प्रत्येक कण में जाति-प्रेम भरा है। आपका हृदय अपनी जाति की हीनावस्था पर सदा द्रवीभूत हुआ करता है। ईश्वर की कृपा से आपकी धर्म्मपत्नी भी आपके ही रङ्ग में रँगी हैं। मेरे अटलांटा-निवास के समय मुझे इस दम्पति से बड़ी सहायता मिली। ये बड़ी सज्जनता के साथ मुझसे पेश आये। मैं इनका हृदय से कृतज्ञ हूँ। इनकी देख-रेख में यह संस्था बड़ी उन्नति कर रही है। यह कालेज १८६७ ईसवी में स्थापित हुआ था। इसकी सञ्चालिका अमरीकन बैपटिस्ट होम मिशन सोसायटी (American Baptist Home Mission Society) है। प्रारम्भ से आज तक इस विद्या-भवन ने अनेक रूप बदले हैं। अब यह एक उत्तम

स्थान में स्थित है, जिसका क्षेत्रफल १३ एकड़ है। इस समय तक यहाँ कई इमारतें बन चुकी हैं। "ग्रेव्ज़हॉल" नामक इमारत २२,००० डालर की लागत से बनी है, जिसमें छात्र-निवासालय है। वहीं पर भोजनालय और पाकशाला भी है। कार्ल्स हॉल के बनने में १४,००० डालर लगे हैं। उसी में अब प्रधान विद्यालय स्थित है। वहीं पर प्रयोग-शालायें भी हैं। सेलहॉल ४०,००० डालर की लागत से तैयार हुआ है। उसमें शिल्प-शास्त्र और शिक्षा-सम्बन्धी अन्य शाखायें हैं। उसी में पुस्तकालय और उपासना-गृह भी हैं। प्रधान अध्यापक की गद्दी के लिए २०,००० डालर की एक वृत्ति है, जिसकी आय से यह गद्दी सदा क़ायम रहेगी। अन्य व्यय के लिए यह संस्था छात्रों से प्राप्य फ़ीस तथा मिशन की सहायता एवं दानी पुरुषों की उदारता पर आश्रित है। यहाँ पर अधिकतर वही छात्र हैं जो छात्रालय में निवास करते हैं। निवास, भोजन, तथा फ़ीस इत्यादि का व्यय प्रायः ७३ डालर होता है। इतने कम व्यय पर यहाँ भोजन अच्छा मिलता है। मैंने भी यहाँ भोजन किया है। इस समय यहाँ कुल ३०९ विद्यार्थी हैं। इस संस्था से अब तक ४०५ स्नातक निकल चुके हैं, जिनमें से २२५ इस समय तक जीवित हैं। इस देश के रङ्गीन अर्थात् शुक्लेतर मनुष्यों के लिए ऐसे विद्या-पीठों की बड़ी आवश्यकता है।

(२) अटलांटा-विश्वविद्यालय—यह संस्था ४५ वर्ष की पुरानी है। इसका उद्देश नीग्रो जाति में विद्या का प्रचार करना और उसे शिक्षक बनाना है। यहाँ शिल्प-शिक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। यह एक विशाल शिक्षापीठ है। बालक-बालिकायें सभी को यहाँ शिक्षा मिलती है। यह विश्वविद्यालय सामाजिक, आर्थिक तथा सदाचार-सम्बन्धी शिक्षा के तत्त्वों की खोज वैज्ञानिक रीति पर करके उससे लोगों को लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करता है। इस समय इस संस्था के पास ७ बड़ी बड़ी उत्तम इमारतें हैं। एक उत्तम पुस्तकालय भी है, जिसमें १४,००० पुस्तकें हैं। एक छापाख़ाना भी है। यह सब ६० एकड़ में है। इस सम्पत्ति का मूल्य, इस समय के भाव से, प्रायः ३,००,००० डालर अर्थात् कोई १० लाख रुपये के लगभग है।

इस समय इस विद्या-मन्दिर में ४०० छात्र और ३२ शिक्षक हैं। छात्रालयों में १६० छात्र निवास करते हैं। ये छात्र प्रायः दक्षिणी प्रान्तों से यहाँ पढ़ने आये हैं। इस समय तक यहाँ से कोई ७९५ स्नातक निकल चुके हैं, जो सबके सब या तो शिक्षक हैं या अन्य उपयोगी कामों में लगे हुए हैं और अपनी जाति में उत्तम एवं उन्नत विचार फैला रहे हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ से एक बड़ी संख्या उन विद्यार्थियों की भी निकली है जिन्हें स्नातक बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका। विद्यालय के ये सच्चे सेवक भी भिन्न भिन्न रूप में विद्यालय का गौरव बढ़ा रहे हैं। दक्षिणी प्रान्तों में ये लोग गाँवों में फैले हुए हैं। वहाँ ये शिक्षा का तथा अन्य कार्य्य भी योग्यता से कर रहे हैं।

इस समय तक इस संस्था के कोश में स्थायी धन-राशि की संख्या १,०७,००० डालर से अधिक नहीं है। इसको ५,००,००० डालर की बड़ी आवश्यकता है। प्रति दिन के व्यय के लिए भी इसका हाथ तङ्ग है। इस विद्यालय को हम लोगों ने अच्छी तरह देखा है। बालकों पर यहाँ का जो प्रभाव पड़ता है उसे मैं बहुत ही उपयोगी समझता हूँ।

(३) स्पेलमैन सेमिनरी—यह संस्था केवल लड़कियों के लिए है। यहाँ की अन्य संस्थाओं में बालक और बालिकायें दोनों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध है, पर यह विशेष रूप से केवल स्त्री-शिक्षा

के लिए ही स्थापित है। यहाँ उन्हीं विषयों पर अधिक ध्यान दिया जाता है जो स्त्रियों के लिए उपयोगी हैं। इस समय यहाँ ७०३ छात्रायें शिक्षा पाती हैं। यहाँ इन विषयों की शिक्षा देने का प्रबन्ध है—अध्यापन-पद्धति, दाई, डाक्टरी, सिलाई, कृषि, डलिया आदि बनाना, पाकशास्त्र, टोपी बनाना, प्राकृतिक विज्ञान, मुद्रण-कला, गाना-बजाना इत्यादि। यहाँ लड़कियाँ कितनी सफ़ाई से रहती हैं, यह देखते ही बनता है। इस संस्था में सब कार्य्य—झाड देने से लेकर बड़े से बड़े तक—यहाँ की छात्रायें ही करती हैं। इसे देख कर हृदय बहुत प्रसन्न होता है। यहाँ भी शिक्षा का व्यय, खाने-पीने, रहने के व्यय सहित, कोई १३ डालर होता है। कुछ शाखाओं में तो मुफ़ तथा कम व्यय पर भी शिक्षा पाने का सुभीता है। यह संस्था २० एकड़ भूमि घेरे हुए तथा इसके अधिकार में ईंट-चूने की १० उत्तम इमारतें हैं, जिनमें छात्रालय एवं भिन्न भिन्न शिक्षालय स्थित हैं। विद्यार्थियों की फ़ीस से जो आमदनी होती है वह कुल व्यय के सप्तमांश के बराबर है। बैपटिस्ट ईसाइयों की एक समिति (The Women's American Baptist Home University) १५ शिक्षकों का व्यय देती है। और भी कई सभा-समितियों से उसे धन की सहायता मिलती है। बाक़ी के लिए संस्था को जनता की उदारता पर आश्रित रहना पड़ता है। इसकी स्थायी धन-राशि केवल २०,४५६ डालर है। सो भी विशेष विशेष कार्य्यों के लिए। इस संस्था का प्रधान उद्देश मनुष्यों में ईसाई धर्म्म का प्रचार करना है। इसका दूसरा उद्देश जनता को सुखी बनाना है, जिसमें कोई किसी कार्य्य को छोटा न समझे और घृणा से न देखे; कार्य्य उत्तमता तथा ठीक रीति से मन लगा कर करे। सामाजिक तथा गृहस्थ जीवन को उत्तम और मनुष्य के योग्य बनावे। ऐसी संस्था गिरी हुई जातियों को उठाने में जो कार्य्य करती है उसका अन्दाज़ा लगाना कठिन है। थोड़े ही काल में ऐसी संस्था मानव-जीवन को पलट देती है और उसे शक्तिशाली तथा सुखकर बना देती है।

(४) लियोनाई अनाथालय—यह अनाथालय एक टूटे फूटे स्थान में है और छोटा ही सा है। इसमें प्रायः ६०, ७० अनाथ बालक-बालिकायें रहती हैं। वे गौरेतर लोगों की सन्तान हैं। दीनता के करुणामय दृश्य से द्रवित-हृदय एक स्त्री इसे चलाती है। यह बड़ी उदार और दीन-वत्सला महिला है। यहाँ भी थोड़ी बहुत शिक्षा दी जाती है। बालिकाओं को अपना गृह-कार्य्य स्वयं करना पड़ता है। इसे देख कर हृदय भर आता है। बच्चेवाले प्रत्येक माँ-बाप को ऐसी संस्था को, शक्ति के अनुसार, कुछ न कुछ दान देना चाहिए। इस संस्था के पास कुछ भी सम्पत्ति नहीं है। यह आकाशी वृत्ति पर ही भरोसा रखती है।

ऊपर मैंने अटलांटा की गौरेतर वर्णवाली जाति के बालकों की शिक्षा के प्रबन्ध-सम्बन्ध में संक्षिप्त वर्णन किया है। गौराङ्ग जातियों के लिए जो प्रबन्ध है उसका लिखना अनावश्यक है। क्योंकि वे तो देश के राजा ही ठहरे। उनके प्रबन्ध का क्या पूछना है। धन और बुद्धि से जो कुछ हो सकता है सभी उनके लिए किया जा रहा है।

एक यात्री

विविध विषय।

१—तिब्बती भाषा में एक प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थ।

कभी कभी संस्कृत-भाषा में किसी ऐसे प्राचीन ग्रन्थ का पता लग जाता है जिससे भारत के प्राचीन ग्रन्थकारों और विद्वानों की कीर्ति और भी उज्ज्वल हो उठती है। जान पड़ता है, जितने ग्रन्थ इस समय इस भाषा में उपलब्ध हैं उनसे सैकड़ों गुने अधिक ग्रन्थ किसी समय इस देश में विद्यमान

थे। उनमें से अधिकांश, समय के फेर से, नष्ट हो गये। कुछ देश-विप्लव की आग में जल गये। जो बचे उनमें से सैकड़ों नहीं हज़ारों ग्रन्थ इँगलेंड, जर्मनी, रूस, फ्रांस आदि देशों के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुस्तकालयों में पहुँच गये। उनका इस प्रकार विदेश को ढोया जाना आज कोई सौ दो सौ वर्षों से जारी है। अभी कुछ ही समय हुआ, नेपाल-राज्य के पुस्तकागार से सहस्रशः अनमोल और दुष्प्राप्य ग्रन्थ, लार्ड कर्ज़न की सूचना या सिफ़ारिश के कारण, स्थल की राह, विलायत जा पहुँचे। फिर भी कभी कभी बड़े ही महत्त्व के प्राचीन ग्रन्थ यत्र-तत्र निकल आते हैं। हम लोग अब तक समझते थे कि प्राचीन काल में हमारे विद्वानों ने शिल्पशास्त्र पर कोई अच्छा ग्रन्थ नहीं लिखा। जो दो-एक पुस्तकें इस समय पाई जाती हैं वे विशेष महत्त्व की नहीं। पर यह हमारा केवल भ्रम था। इस भ्रम को दूर किया है जर्मनी ने। सुना साहब! न हमने, न और ही किसी घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाले देश ने। हमारा दश-चित्र-लक्षण नामक ग्रन्थ, नहीं मालूम कितना समय हुआ, तिब्बत पहुँचा था। तिब्बती भाषा में वहाँ उसका अनुवाद हुआ। फिर वह अनुवाद भारत आया। भारत में उसकी एक प्रति तञ्जोर के प्राचीन पुस्तकागार में पड़ी पड़ी सड़ती रही। किसी तरह वह जर्मनी पहुँची। वहाँ लाफर नाम के एक पण्डित ने उसका अनुवाद अपनी भाषा में किया और १९१३ ईसवी में लेपज़िक की एक पुस्तकमाला में उसे प्रकाशित किया। इस बात का पता हम लोगों को अब कहीं चला है। पुस्तक में तिब्बती मूल भी है। इसका अँगरेज़ी-अनुवाद हो जाने से शिल्पशास्त्र-विषयक अनेक प्राचीन बातें मालूम हो सकती हैं। कुछ विद्वान् भारतवासी जर्मन भाषा भी पढ़ सकते हैं। सम्भव है, वे इस पुस्तक का अध्ययन करके इसमें वर्णित वस्तु का परिचय और लोगों को भी कराने की कृपा करें।

२—प्राचीन भारत में लोकसत्तात्मक राज्य।

जब से पश्चिमी देशों के कुछ बड़े विख्यात विद्वद्वीरों ने यह कह दिया है कि भारत में कभी भी प्रजातन्त्र-राज्य न था—अपने काम-काज का प्रबन्ध आपही कर लेने का अधिकार भारतवासियों ने कभी नहीं पाया—तब से इस कथन के खण्डनात्मक लेखों का तूफ़ान सा आ गया है। आज कई साल से कितने ही भारतीय विद्वान् यह सिद्ध कर रहे हैं कि किसी समय हम लोग अपना राज्य आपही करते थे—बहुत कुछ राजसत्ता हमारे ही हाथ में थी। इस विषय की कई पुस्तकें भी अँगरेज़ी में लिखी जा चुकी हैं; और कई लिखी जा रही हैं। इस विषय के लेखों की तो गिनती ही नहीं। पुरातत्त्वज्ञों के इस विषय के अँगरेज़ी-लेखों के अनुवाद, सार और सङ्कलन देशी भाषाओं में भी प्रकाशित हो रहे हैं। कोई वेदों से प्रजासत्ताक संस्थाओं का अस्तित्व साबित करता है, कोई पुराणों से, कोई स्मृतियों से, कोई बौद्धों और जैनों के ग्रन्थ-साहित्य से। रामायण और महाभारत से अवतरण दे दे कर यह बताया जाता है कि भारत के बड़े बड़े राजा-महराजों को भी प्रजा की सम्मति से ही राज्याधिकार मिलता था। रीज़ डेविड्स नाम के एक साहब ने बौद्ध-कालीन भारत का इतिहास, अँगरेज़ी में, लिखा है। उसमें तो उन्होंने यहाँ तक लिख दिया है कि पुरुषों ही को नहीं, उस ज़माने में स्त्रियों तक को राज-काज करने का अधिकार प्राप्त था। सड़कों और राहों की मरम्मत कराने, पान्थशालायें अर्थात् सरायें बनवाने, तालाब खुदाने और सब लोगों के बैठने के लिए बारादरियाँ बनवाने के विषय में स्त्रियाँ भी, पुरुषों के साथ बैठ कर, सलाह-मशविरा करती थीं। इस प्रकार के सर्वोपयोगी कामों में वे उत्साहपूर्वक पुरुषों की सहायता करती थीं। इन पुरानी बातों को खोज निकालने से लाभ अवश्य है। इससे ज्ञानवृद्धि अवश्य होती है और अपने पूर्वजों की योग्यता का पता लग जाने से उनके विषय में पूज्य बुद्धि भी उत्पन्न होती है। पर इस इतनी बात से हम उन पुरानी संस्थाओं की संस्थापना नये सिरे से नहीं कर सकते। जिनके हाथ में ये बातें करने की शक्ति है वे यदि हमें इसके योग्य न समझें तो रीज़ डेविड्स के दिये हुए प्रमाण कुछ काम नहीं आ सकते। प्राचीन भारत में जो कुछ था वह लौटा लाने की शक्ति हममें नहीं। समय और संयोग ने भारत को कुछ का कुछ बना डाला है। अब तो पुरानी पोथियों के पन्ने उलटने से ही सब काम नहीं हो सकता। पुरानी बातों का स्मरण करते हुए, समय

के अनुकूल, नये ढँग से काम करने से ही अभीष्ट-सिद्धि होगी। पुरानी बातों में, आज-कल की दृष्टि से, कुछ दोष यदि हों तो उनसे बच कर चलने की चेष्टा करनी होगी। कुछ लेखक तो भारत की पुरानी प्रजातन्त्रता सिद्ध करने के लिए, संस्कृत भाषा के ग्रन्थ-साहित्य के वचनों का अर्थ करते समय, कहीं कहीं बहुत ही अधिक बहक जाते हैं। जो नहीं था उसे "था" सिद्ध करने के लिए शब्दार्थ पर अत्याचार करना इतिहासज्ञता और विद्वत्ता का सूचक नहीं। स्वराज्य की प्राप्ति इसी पर आश्रित नहीं।

३—देहात में शिक्षा-प्रचार।

भारतवर्ष की दरिद्रता का एक बड़ा कारण यह है कि यहाँ देहात की दशा सुधारने में बड़ी शिथिलता की जाती है। दरिद्रता का भयङ्कर परिणाम देहात में ही दिखाई देता है, शहरों में नहीं। कृषकों का जीवन कितना दुःखमय है, इसका अनुभव हम शहर में रह कर नहीं कर सकते। देश के नेताओं को चाहिए कि वे देहात में जाकर घूमें और हो सके तो वहाँवालों का कष्ट दूर करने का प्रयत्न करें। जब तक हमारे इन करोड़ों भाइयों की दशा न सुधरेगी तब तक भारतवर्ष की उन्नति की आशा करना व्यर्थ है। देश-भक्तों का विशेष कार्य-क्षेत्र नगर नहीं, देहात होना चाहिए। देहातियों की ही उन्नति से देश की उन्नति है और उन्हीं की अवनति से देश की अवनति। अन्य देशों में देहातियों की दशा सुधारने के लिए कितने ही उपाय सोचे और काम में लाये जाते हैं। इँगलेंड को ही लीजिए। वहाँ देहात में शिक्षा-प्रचार के लिए कैसा अच्छा प्रबन्ध है। स्कूल-वर्ल्ड नामक एक सामयिक पत्र में ग्राम्य शिक्षा पर एक अच्छा लेख निकला है। उसका मतलब, थोड़े में, नीचे दिया जाता है।

देहात में ऐसे ढंग से शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे लोग अच्छी तरह पढ़ लिख सकें और उन्हें गणित का स्थूल ज्ञान हो जाय। पर शिक्षा का क्रम ऐसा होना चाहिए कि उससे उनका मानसिक विकास हो। उन्हें कुछ बातें रटा देने से ही शिक्षा पूरी न होगी। वहाँ लड़कों को नक़शा खींचने और चित्रण-कला का ज्ञान आवश्यक है। स्कूल में जो बाग़ीचा रहता है वहाँ जाकर लड़के ध्यानपूर्वक प्रकृति का अवलोकन करते हैं। प्राकृतिक विज्ञान का स्थूल ज्ञान उन्हें इसी तरह करा दिया जाता है। उन्हें अपने हाथों से लकड़ी और लोहे का काम करने की शिक्षा दी जाती है। लड़कियाँ पहले वर्ष तीन महीने तक कपड़े धोने की रीति सीखती हैं। फिर कुछ गृह-प्रबन्ध और कुछ पाक-शास्त्र की शिक्षा दी जाती है। दूसरे साल उन्हें गृह-प्रबन्ध का ही विशेष ज्ञान कराया जाता है। घर की सफ़ाई रखना, सब चीज़ें क्रम से रखना, सजाना आदि ऐसी बातें जिनसे घर में सुख और शान्ति रहे सिखाई जाती हैं। बिछौने, फ़र्श, कुरसी, पर्दे आदि के कामों का भी उन्हें कुछ ज्ञान कराया जाता है, जिससे ज़रूरत पड़ने पर वे खुद अपने घर का सामान दुरुस्त कर सकें। फ़िज़ूल चीज़ों का भी अच्छा उपयोग करना बतलाया जाता है। घर का हिसाब-किताब रखना, बच्चों की देख-रेख करना, कम-ख़र्ची से काम चलाना आदि सभी ज़रूरी बातें उन्हें सिखा दी जाती हैं। लड़कों के पाठ्य विषय ये होते हैं—नक़शा, पैमायश, पौधों के क़लम लगाना, पौधे तैयार करना, बाग़ीचा लगाना, लकड़ी और लोहे की ज़रूरी चीज़ें बना लेना आदि। हिसाब-किताब की भी शिक्षा उन्हें दी जाती है। कहने का मतलब यह कि इँगलेंड की शिक्षा-पद्धति से लड़के देहात में निपुण कृषक बनते हैं और लड़कियाँ गृह-कार्य में कुशल और वह भी थोड़े ही समय में हो जाती हैं।

न जाने भारतवर्ष के देहात में कब ऐसी शिक्षा दी जायगी।

४—मारकोनी साहब की भविष्यद्वाणी।

बेतार के तार की कला के मूलाधार का प्रथम ज्ञान यद्यपि सर जगदीशचन्द्र वसु ने ही प्राप्त किया था तथापि इस कला के आविष्कर्ता इटली देश के निवासी मारकोनी साहब ही माने जाते हैं। इन्हीं साहब की बदौलत नई और पुरानी दोनों दुनिया में बेतार का तार [illegible]ा है और हज़ारों कोस दूर की ख़बरें, बिना तार और बिना तार के खम्भों के, आती जाती हैं। इस तार की गति जल, थल और आकाश में सभी कहीं निर्बाध है। अब इस कला में और भी उन्नति होनेवाली है—इतनी उन्नति जिसके संस्मरण मात्र से हृदय आश्चर्य्य, नहीं आतङ्क, के भी अगाध सागर में डूब जाता है। मारकोनी साहब ने

अपने देश के एक पत्र में एक लेख प्रकाशित करके इस आश्चर्य्य और आतङ्क की सृष्टि की है। आपने कुछ भविष्यद्वाणी की है। उसका मतलब है—

कुछ ही दिनों में बेतार के तार द्वारा लोग मुँह से उसी तरह बातचीत कर सकेंगे जिस तरह कि आज-कल टेलिफ़ोन के सहारे करते हैं। वायुमण्डल में विशेष गड़बड़ होने से आज-कल बेतार का तार काम देना बन्द कर देता है। आगे ऐसा न होगा। आज-कल की अपेक्षा बिजली की शक्ति भी बहुत कम दरकार होगी। इससे ख़र्च कम पड़ेगा। जगह जगह बेतार की ख़बर लेने और भेजने के लिए जो बड़े बड़े आयोजन करने पड़ते हैं वे भी न करने पड़ेंगे। दुनिया के किसी भी हिस्से में कहीं भी कोई बात कहेगा तो वह एक यन्त्र की बदौलत लोगों को घर बैठे सुनाई देगी। यह यन्त्र विद्यमान ग्रामोफ़ोन के आकार का होगा ; उससे बड़ा नहीं। अभी तो यदि भारत से लन्दन को ख़बर भेजनी होती है तो वह ख़बर बीच में कई जगह लिख लेनी और आगे बढ़ानी पड़ती है। यह बात तब न होगी। तब तो आप कलकत्ते में बैठे रहिए और लन्दन, न्यूयार्क, टोकियो, पेरिस, रोम, एथन्स, बर्लिन ही की नहीं, सुदूर आइसलेंड और कामसकटका में बैठे हुए लोगों की बातें भी सुख से सुना कीजिए। वैसा प्रबन्ध हो जाने से अख़बारों के दफ़्तरों में बैठे हुए कर्म्मचारी सब कहीं की ख़बरें वहीं तत्काल पा जायँगे। बड़े बड़े व्यापारियों और महाजनों को हज़ारों कोस दूर देशों और नगरों के निर्ख़ एक पल में मालूम हो जाया करेंगे। दिल्ली में बैठा हुआ पिता आक्सफ़र्ड में विद्याध्ययन करनेवाले पुत्र से सानन्द बातचीत कर सकेगा।

सुनते चले आते हैं कि पहुँचे हुए योगी और ऋषि-मुनि सैकड़ों कोस दूर की बातें सुन सकते थे, वहाँ के दृश्य देख सकते थे, वहाँ की सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तुओं का वर्णन कर सकते थे। सम्भव है, अब भी कहीं कोई लोग ऐसे हों। पर बात आश्चर्य्यजनक ज़रूर मालूम होती है। लोगों को इसकी सचाई में सन्देह भी हो सकता है। आशा है, मारकोनी साहब की भविष्यद्वाणी सच हो जाने से इस तरह के सन्देह दूर हो जायँगे। जिस विद्युच्छक्ति या ईथर की लोल लहरियों पर प्रभुत्व प्राप्त करने से मारकोनी साहब ने अपने आविष्कार में सफलता पाई है, सम्भव है, उसी पर भारत के कुछ विशेषज्ञों ने प्रकारान्तर से, बहुत पहले ही, प्रभुत्व प्राप्त कर लिया हो।

५—सङ्गीत की शक्ति।

सङ्गीत की बड़ी महिमा है। भारतवर्ष में सङ्गीत के आश्चर्य-जनक प्रभाव पर लोग कई प्रकार की कथायें कहा करते हैं। सङ्गीत से मेघ जल बरसाता है, दीपक जल उठता है, मृग अपनी चाल भूल जाता है, सर्प मुग्ध हो जाता है। ये बातें हम लोग प्रायः सुना करते हैं। हमने पढ़ा है कि ग्रीस देश के एक नामी गवैये आरफ़ियस ने सङ्गीत की शक्ति से जहाज़ तक को चला दिया था। पर बीसवीं शताब्दी में सङ्गीत का ऐसा आश्चर्यजनक परिणाम कदाचित् कभी न सुना गया हो। अभी हाल में सङ्गीत की शक्ति से एक स्त्री रोग से मुक्त हो गई, यह पढ़ कर हमें बड़ा कौतूहल हुआ। यह वृत्तान्त कुछ दिन पहले स्टेट्समैन नामक पत्र में निकला था। उसे सुनिए—

न्यूयार्क में डोरा मुंटज नाम की एक महिला निवास करती है। उसको मस्तिष्क की कुछ ऐसी बीमारी हो गई थी कि घड़ी आध घड़ी छोड़ कर वह दिन रात सोया करती थी। ख़ूब चिकित्सा की गई, पर कुछ लाभ न हुआ। डाक्टर हताश हो गये। तब सङ्गीत के द्वारा उसमें जागृति लाने की चेष्टा की गई। हाफमैन नामक एक युवक व्हालिन बजाने में ख़ूब निपुण हैं। उन्होंने रोगिणी की शय्या के पास बैठ कर व्हालिन बजाया। पहले उन्होंने एक हँगारियन धुन बजाई ; फिर एक इटालियन। उस सङ्गीत का मधुर स्वर ज्योंही कानों में पड़ा त्योंही उस स्त्री ने अपनी आँखें खोल दीं। फिर थोड़ी देर में वह चैतन्य हो गई। १–२ दिन बाद उसकी निद्रा भङ्ग हुई। डाक्टरों का कहना है कि अब कदाचित् वह फिर इस अतिनिद्र रोग से अभिभूत न होगी।

६—पोर्ट आर्थर का मूल्य।

रूस-जापान-युद्ध का हाल पाठक अच्छी तरह जानते हैं। उस युद्ध का जो फल हुआ वह भी सब पर प्रकट है। पर अब यह कहा जाता है कि जापान ने अपनी शक्ति से रूस पर विजय-प्राप्ति नहीं की। उसने षड्यन्त्र रच कर रूस के कुछ लोगों को धन-दान द्वारा अपनी

ओर मिला लिया। जापान ने लड़ कर विजय नहीं पाई; धन दे कर उसे मोल लिया। यह हाल न्यूयार्क के अमरीकन नामक पत्र में प्रकाशित हुआ है। उसमें कहा गया है कि जापान ने पोर्ट आर्थर पर अधिकार करने के लिए १,३८,००,००० पौण्ड ख़र्च किये! इस सम्बन्ध के अनेक काग़ज़-पत्र लन्दन के एक बड़े बैङ्क के तहख़ाने में बन्द हैं। किसी ने उनके फोटोग्राफ़ लेकर अमरीका के राज-दूत के पास भेज दिया। ब्रिटिश गवर्नमेंट के कुछ अधिकारियों को भी वे काग़ज़-पत्र दिखलाये गये हैं। इन काग़ज़ों की नक़ल और षड्यन्त्र का पूरा वृत्तान्त अब डेली-मेल नामक अख़बार को मिल गया है। रूसियों की ओर से जो आदमी इस काम में शामिल था उसी ने यह सब लिखा है। उसका कहना है कि यदि युद्ध दीर्घकाल-व्यापी होता तो जीत रूस की ही होती। जापान के राज-नीतिज्ञ यह बात अच्छी तरह जानते थे। रूस में एक राजनैतिक दल था। उसकी नीति थी कि युद्ध बन्द हो जाय, पर जापान के दांत खट्टे न हों। इससे रूसवालों को अपने देश में सामाजिक और राजनैतिक सुधार करने तथा पार्लियामेंट स्थापित करने में बहुत सुभीता होगा। इसी दल की ओर से तीन प्रभावशाली व्यक्ति जापान से मेल करने के लिए वहां भेजे गये। जापान की गवर्नमेंट के प्रतिनिधियों से मिल कर उन्होंने सब बातें ठीक कर लीं। यह समस्त काररवाई जापानी भाषा में लिखी गई और टूटी फूटी अँगरेज़ी में उसकी एक कापी उन रूसियों को मिली। १९०४ में उस पर सबके दस्तख़त हो गये। निश्चय हुआ कि यह काररवाई २२ मार्च १९१५ तक गुप्त रक्खी जाय।

जापान की जीत होने पर उन तीनों रूसियों में से प्रत्येक को जापान ने ४६,००,००० पौण्ड देना स्वीकार किया। उन रूसियों ने जापान को पोर्ट-आर्थर और ह्लैंडिवास्टक के वे नक़शे देने का वचन दिया जिन पर सामुद्रिक सुरङ्ग पड़े हुए स्थानों पर चिह्न थे। इसके बाद जापान ने विजय पर विजय प्राप्त की। अन्त में उसका अधिकार पोर्ट-आर्थर पर भी हो गया।

१९०५ में पोर्ट समाउथ की सन्धि हो जाने पर टोकियो में अधिकारियों ने उन रूसियों में से एक को एक और स्वीकार-पत्र दिया। इस काम के लिए कुछ धन तो उन्हें मिल गया, पर अभी तक जापान को उन्हें ४६,००,००० पौण्ड देना है!

७—सरकार की की हुई साहित्यालोचना।

इस प्रान्त की सरकार ने अपने शासन की समालोचना आपही की है और आपही प्रकाशित भी की है। उसका सम्बन्ध १९१८-१९ ईसवी से है। उसमें उसने इस प्रान्त के छापेख़ानों और समाचार-पत्रों तथा पुस्तकों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसके कुछ अंशों का सार नीचे दिया जाता है—

रिपोर्ट के साल सब मिला कर २,०२९ पुस्तकें प्रकाशित हुईं अर्थात् पिछले साल से २५६ कम। उर्दू की भी पुस्तकें कम निकलीं और हिन्दी की भी। काग़ज़ दुष्प्राप्य हो रहा है; छपाई का निर्ख़ बढ़ गया है। कम न निकलें तो क्या हो। सरकार का कहना है कि लेखक लोग नाटकों और उपन्यासों तक में राजनैतिक बातें ठूँसने लगे हैं; देश-भक्ति-सूचक गीतों की ओर भी उनका झुकाव बढ़ रहा है। लेखकों का उत्साह तो ख़ूब वृद्धि पर है, पर उनमें प्रतिभा की कमी देख पड़ती है। नई नई बातें उन्हें नहीं सूझतीं; विशेष करके वे पुरानी बातों ही का पिष्ट-पेषण किया करते हैं। समाज में ऊँचा स्थान पाने के लिए लोग जी-जान से कोशिश कर रहे हैं। यह बात प्रकाशित पत्रों और पुस्तकों से साबित है—तेली कहते हैं, हम वैश्य हैं; लोहार और बढ़ई कहते हैं, हम ब्राह्मण हैं।

राजनीति से सम्बन्ध रखनेवाली ९२ पुस्तकों में से १७ पुस्तकें शासन-सुधार पर निकलीं। इस सुधार के सूत्रधारों की तारीफ़ तो बहुत की गई—उनके प्रति कृतज्ञता तो बहुत प्रकट की गई—पर साथ ही यह भी कह दिया गया कि ये सुधार किसी काम के नहीं।

धार्म्मिक पुस्तकें बहुत कम निकलीं। आर्यसमाजियों ने अपने लड़ाके स्वभाव को नरम करने का कोई चिह्न नहीं प्रकट किया; बहस-मुबाहसा अर्थात् वाद-विवाद करनेवालों में स्वामी दयानन्द के चेले आसानी से पहले नम्बर पर जमे रहे—"As controversialists the followers of Swami Dayanand easily come first" जैन-धर्म्म के अनुयायी लेखकों का एक नया ही दल निकल पड़ा है। यह दल विशेष करके जैनों के धर्म्म-ग्रन्थों को बड़ा

महत्त्व देता है। कहता है, इन ग्रन्थों के सिद्धान्त सब ठीक हैं; वे तर्क की तलवार से नहीं काटे जा सकते । पर इस दल का स्वधर्म-प्रेम नरमी लिये हुए है ; आर्य्यसमाजियों के सदृश ये लोग कड़कते नहीं फिरते ।

सरकार के मत में उलट-फेर नाम का प्रहसन अच्छा निकला। बाबू देवकीनन्दन खत्री के एक प्रतिभट या जाँनशीन भी पैदा हो गये । आपका नाम है उपाध्याय श्रीलाल। आप ३२ जिल्दों में एक किताब लिखनेवाले हैं। उसकी पहली जिल्द लिख कर आपने उसे प्रकाशित भी कर डाला। उर्दू में रुहेलों का जो इतिहास निकला है वह, तथा एक-आध और भी पुस्तक, ज़रूर इतिहास के अन्तर्गत समझने योग्य है। परन्तु और कोई नहीं। पण्डित नित्यानन्द का संस्कार-दीपक और पण्डित विन्ध्येश्वरीप्रसाद का न्याय-वार्तिक, यही दो संस्कृत-ग्रन्थ ऐसे निकले जिनमें विद्वत्ता की कुछ झलक पाई जाती है। बाक़ी और सबको विद्वत्ता से ख़ाली समझिए।

समाचार-पत्रों और सामयिक पुस्तकों की संख्या ३५९ तक पहुँच गई—अर्थात् पिछले साल की अपेक्षा ७ की कमी रही। तफ़सील—

अँगरेज़ी में	५२
हिन्दी में	१४०
उर्दू में	१३४

बाक़ी अन्य भाषाओं में। इनमें से सिर्फ़ २ का प्रचार ६,००० कापियों के ऊपर था। किस नगर से कितने पत्र और कितनी सामयिक पुस्तकें निकलीं, इसका हिसाब नीचे देखिए—

लखनऊ से	६२
इलाहाबाद से	५८
आगरे से	३४
बनारस से	२८
कानपुर से	२४
मेरठ से	२२
अलीगढ़ से	१६
बिजनौर से	१५
मुरादाबाद से	१३

इस विषय में लखनऊ सबसे बढ़ा-चढ़ा रहा। इसीसे शायद राजधानी इलाहाबाद से उठ कर लखनऊ जानेवाली है। अधिक पत्र-पुस्तकें निकलना शिक्षोन्नति का सूचक है। अतएव सरकार सुशिक्षितों के नगर में ही रहना अधिक पसन्द करे तो क्या आश्चर्य।

पाँच महत्त्वपूर्ण नये पत्र निकले—चार हिन्दी में, एक उर्दू में। दो हिन्दी के और दो उर्दू के बन्द हो गये। बस।

८—रायबहादुर नानकचन्द का परलोकगमन।

इन्दौर-राज्य के भूतपूर्व दीवान रायबहादुर मुंशी नानकचन्द, सी० एस० आई०, सी० आई० ई० का परलोकवास हो गया। यह दुर्घटना २९ मार्च को हुई। उस दिन उनका शरीर खूब स्वस्थ था। प्रातःकाल उन्होंने स्नान किया। फिर वे अपने पूजा-पाठ में लगे। उसी अवस्था में अचानक उनकी मृत्यु हो गई। कहा जाता है कि हृत्पिण्ड की गति रुक जाने से उनकी मृत्यु हुई। आपका जीवन-चरित सरस्वती में, बहुत पहले, निकल चुका है।

महाराज होलकर के राज्य में मुंशी नानकचन्द की बड़ी प्रतिष्ठा थी। १८६७ में महाराज तुकोजीराव होलकर ने उन्हें जागीर दी थी, जिसकी वार्षिक आमदनी १५,००० रुपये थी। उनको मशीरुद्दौला का ख़िताब भी मिला। रायबहादुर भी वे उसी समय हुए। १८८९ में वे जुडीशियल सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त हुए। शीघ्र ही उनकी पदोन्नति हुई और वे स्टेट-ख़ज़ानची (State Treasurer) बनाये गये। १८९० में वे नायब दीवान हुए। इसी पद पर रह कर उन्होंने रेसीडन्सी वकील का भी काम किया। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर महाराज शिवाजीराव होल्कर ने उन्हें १०,००० रुपये नक़द और ख़िलत भी प्रदान की। १८९५ में वे इन्दौर के दीवान ही हो गये। १८९८ में किसी कारण से उन्होंने अपना इस्तेफ़ा दे दिया। पर दूसरे ही साल महाराज होल्कर ने उन्हें फिर बुला कर आदरपूर्वक रक्खा। गवर्नमेंट ने भी उनका सम्मान किया। उनकी सेवा के उपलक्ष में उन्हें सोने का क़ैसरे-हिन्द तमग़ा दिया गया। इसके बाद वे सी० आई० ई० बनाये गये। १९०३ में महाराज शिवाजीराव होलकर राज्यप्रबन्ध छोड़ कर अलग हो गये। तब तो नानकचन्दजी का उत्तरदायित्व बहुत ही बढ़ गया। वहीं रिजेन्सी के

· रा० ब० मुंशी नानकचन्द, सी० एस० आई०, सी० आई० ई० ।

अध्यक्ष बनाये गये । यह काम भी उन्होंने खूब योग्यतापूर्वक सँभाला । १९११ में महाराज तुकोजीराव होलकर को राज्य के अधिकार मिले । तब वे पूर्ववत् दीवान का काम करने लगे । १९१३ में उन्होंने अपना पद-त्याग किया । महाराज ने उनकी अच्छी क़दर की । उन्हें ११०० रुपये मासिक पेंशन देदी ।

इनके समय में इन्दौर राज्य की बड़ी उन्नति हुई । बिजली की रोशनी, टेलीफ़ोन, आदि का प्रचार इन्हीं के समय में हुआ । पेंशन पाने पर आपने काच का एक कारख़ाना खोला जो, सुनते हैं, अच्छा काम कर रहा है ।

९—होशङ्गाबाद की कृषि-पाठशाला ।

मध्य-प्रदेश की सरकार ने होशङ्गाबाद में एक कृषि-पाठशाला खोली है । देहाती और मिडिल मदरसों के जो छात्र अपनी दीन दशा और घरेलू असुविधाओं के कारण पढ़ाई छोड़ बैठने को विवश होते हैं तथा जो अपनी उस अधूरी स्कूली शिक्षा के सहारे किसी ज़मींदार या महाजन की नौकरी करके अथवा ग्रामीण धन्धों से—खेती, बनिज आदि से—लस्टम-पस्टम अपनी जीविका चलाने को बाध्य होते हैं उनके लिए यह पाठशाला बड़े काम की चीज़ मालूम पड़ती है । गत वर्ष, जून महीने में, यह पाठशाला खुली थी । इस समय इसमें केवल २९ विद्यार्थियों को शिक्षा देने का प्रबन्ध है । अपर प्रायमरी दर्जा पास लड़के भरती किये जाते हैं और शिक्षा मुफ़्त दी जाती है । एक छात्रालय भी है, जिसमें रहने की फ़ीस केवल ढाई रुपये मासिक है; सो भी चिराग़ बत्ती आदि में ख़र्च होती है । शिक्षा देने के लिए दो अध्यापक हैं । इन्होंने नागपुर के कृषि-कालेज में शिक्षा प्राप्त की है ।

इस पाठशाला में खेती की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है । भूमि की परख, जोत कर उसे बोने लायक़ बनाना तथा खाद डालना तो लड़कों को सिखलाया जाता ही है; यह भी बतलाया जाता है कि खेती को हानि पहुँचानेवाले रोगों से उसकी रक्षा कैसे करनी चाहिए । वहाँ के छात्रों को अपने ज़िले के भूगोल तथा उसकी शासन-व्यवस्था की भी शिक्षा दी जाती है । सरकारी भूमि-प्रबन्ध, लगान, मालगुज़ारी, पटवारी के काग़ज़ात और बाज़ार के क्रय-विक्रय आदि का स्थूल ज्ञान छात्रों को कराया जाना, इस पाठशाला का एक आवश्यक उद्देश है । इस पाठशाला से निकले हुए छात्र केवल निपुण किसान ही न बनेंगे किन्तु योग्य नागरिक भी होंगे । वे केवल व्यवस्थित रीति से खेती करके अपनी तथा देश की दशा ही समुन्नत करने में समर्थ न होंगे, किन्तु उन लोगों से भी अपनी रक्षा करने योग्य हो जायँगे जो उनकी अज्ञानता से अनुचित लाभ उठाते और उन पर अत्याचार करते हैं । क्या ही अच्छा हो यदि इस प्रकार की पाठशालायें अधिक संख्या में खोल दी जायँ । देश के प्रत्येक ज़िले में ऐसी अनेक पाठशालाओं के खुलने की आवश्यकता है । क्या इस संयुक्त-प्रान्त की सरकार भी इस ओर ध्यान देगी ?

देवीदत्त शुक्ल

पुस्तक-परिचय ।

१—श्रीकृष्णचरित—मँझोले आकार की इस ३२ सफ़े की पुस्तक का मूल्य =)॥ है । मनमोहन-पुस्तकालय, नीची बाग, बनारस से मिलती है ; उसी ने इसका प्रकाशन किया है । बाबू जगन्मोहन वर्मा इसके सम्पादक हैं । उर्दू के प्रसिद्ध कवि, आगरेवाले, "नज़ीर" की ५ कविताओं का सङ्ग्रह इसमें है । कविताओं के नाम हैं—कृष्ण जन्म, बालचरित, वंशीलीला, नागलीला और कृष्णसगाई । एक मुसलमान ने कृष्ण का चरित गान किया है, यह इसकी बहुत बड़ी विशेषता है । पर साथ ही इसके इसमें और भी विशेषतायें हैं । इसके छन्द तो सब उर्दू के हैं, परन्तु भाषा बहुत सीधी, बोलचाल की, है । कविता में बड़ा रस है । इसका बालचरित पढ़ते पढ़ते हमारे नेत्रों से अश्रुपात हो गया । बड़ी मीठी कविता है । भक्ति-रस से भरी हुई है । दो नमूने—

ज़ाहिर में गो व' नन्द जसोदा के आप थे
वरना व' आप माई थे और आपी बाप थे
परदे में बालपन के य' उनके मिलाप थे
ज्योतिःसरूप कहते जिसे सो व' आप थे
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥२॥

× ×
×

सब मिल के यारो कृष्ण मुरारी की बोलो जै
गोविन्द छैल कुंजविहारी की बोलो जै
दधिचोर गोपीनाथ विहारी की बोलो जै
तुम भी नज़ीर कृष्ण विहारी की बोलो जै
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन ॥३३॥

नज़ीर की भाषा को शुद्ध करने का जो प्रयत्न इस पुस्तक में किया गया है सो अनुचित है ।

⁂

२—फाहियान—इस जिल्ददार अच्छी छपी हुई पुस्तक का प्रकाशन काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने किया है । वही इसे १॥) में बेचती है । फाहियान एक चीनी यात्री था । कोई १६०० वर्ष हुए वह भारत आया था । १५ वर्ष तक वह यहाँ रहा । उसकी यात्रा का वर्णन चीनी भाषा में है । उसके २ अँगरेज़ी-अनुवाद हैं । एक अनुवाद बँगला में भी हो गया है । प्रस्तुत पुस्तक उसी का हिन्दी-अनुवाद है । बाबू जगन्मोहन वर्म्मा ने इसे लिखा है । मूल यात्रा-वर्णन थोड़ा ही है । पर आरम्भ के आयत उपक्रम और अन्त के परिशिष्ट से पुस्तक का कलेवर बड़ा हो गया है । देवीप्रसाद-ऐतिहासिक-पुस्तकमाला की यह पहली पुस्तक है और बड़े महत्त्व की है । प्राचीन भारत की अनेक महत्त्वपूर्ण बातें इससे मालूम हो सकती हैं । इस माला का प्रकाशन बड़ी अच्छी पुस्तक से आरम्भ हुआ है ।

⁂

३—शिक्षाञ्जली—इस २४ सफ़े की छोटी सी पुस्तक का मूल्य =) है । यह सङ्ग्रह है । सङ्ग्रहकार हैं—एन० पी० चन्द्रभूषण शर्म्मा । महल्ला झंडा, देहरादून, के पते पर आप ही को लिखने से यह पुस्तक मिलती है । इसमें स्कूलों और पाठशालाओं के छात्रों के याद करने योग्य वैदिक और लौकिक संस्कृत में प्रार्थनायें तथा नीति-मूलक पद्य हैं । नीचे उनका अर्थ हिन्दी में है । पुस्तकस्थ वैदिक मन्त्रों के अर्थ उस दल के अनुयायियों की शैली के हैं जो दल कहता है कि एकमात्र हमीं वेदों का सच्चा अर्थ जानते हैं ; सायन और महीधर आदि ने वेदों का भाष्य लिखने में भद्दी भद्दी भूलें की हैं ।

४—कलङ्किनी—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १५१, छपाई और काग़ज़ अच्छा, मूल्य १४ आने । मिलने का पता—मनमोहन-पुस्तकालय, नीची बाग, काशी । बाबू योगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय का लिखा हुआ एक उपन्यास बँगला भाषा में है । यह उसी का हिन्दी-अनुवाद है । अनुवादिका हैं—"सावित्री" । यह सामाजिक उपन्यास है । इसकी घटनाओं का विशेष सम्बन्ध बङ्गालियों के ही समाज से है ; पर इसकी अनेक बातें इस प्रान्त के हिन्दू-घरों में भी घटित होती हैं । "लोग बेटे का ब्याह करके बेटीवाले को अपना कितना ऋणी समझते हैं और इस समझ के क्या क्या परिणाम होते हैं, यही इस उपन्यास में दिखाया गया है" । अतएव पुस्तक आदरणीय है ।

⁂

५—नक़ली और असली धर्मात्मा—आकार, मँझोले से कुछ बड़ा ; पृष्ठ-संख्या २०० ; लेखक, बाबू सूरजभानु वकील ; प्रकाशक, चन्द्रसेन जैन वैद्य, इटावे, से आठ आने में प्राप्य । यह सामाजिक उपन्यास है । इसमें एक जैन-मतावलम्बी परिवार का दृश्य है । जमनादास नक़ली भक्त है । दिखावे के लिए वह मन्दिर में जाता है, दान-धर्म करता है, तीर्थ-यात्रा करता है, पोथी सुनता और भजन करता है ; परन्तु भीतर ही भीतर ऐसे काम करता है कि धर्म, कर्म सब ताक़ पर रक्खा रह जाता है । बुढ़ापे में दूसरी शादी करता है ; उसकी द्वितीया पत्नी उसकी अच्छी कलयुगी पूजा करती है । छोटा भाई मथुरादास ऐसा कोई काम नहीं करता जो धूर्त लोग किया करते हैं । वह किसी का माल नहीं मारता, दग़ा-फ़रेब नहीं करता और दिखावे के लिए कुपात्र को दान भी नहीं देता । वह पुरानी लकीर का फ़क़ीर नहीं । युवावस्था में ही स्त्री के गुज़र जाने पर भी वह दूसरा ब्याह नहीं करता । विधवाओं को वृत्ति देता है, परोपकार करनेवाली संस्थाओं की सहायता द्रव्य द्वारा करता है ; पर न तो नाच कराता है और न वाहवाही लूटने के लिए कोई बड़ी भारी दावत ही देता है । उपन्यास के अन्त में नक़ली भक्त जमनादास की क़लई खुल जाती है । उसके कष्टों का अन्त नहीं रहता । पर मथुरादास, दिवालिया हो जाने पर भी, सँभल जाता है और 'अन्त भले का भला' वाली लोकोक्ति को चरितार्थ करता है ।

पुस्तक का कथानक अच्छा है, पर उपन्यास में जो ख़ास बात होनी चाहिए वह इसमें नहीं। पढ़नेवाले के मन में कौतुक नहीं बढ़ता। लेखक ने पात्रों से, कहीं कहीं, इतने लम्बे-चौड़े लेक्चर दिलवाये हैं कि स्वाभाविकता नष्ट हो गई है। पढ़नेवाले का जी ऊब जाता है। भाषा विचित्र है, और अशुद्ध भी। वाक्यों पर अपूर्ण क्रियायें बुरी तरह लदी हैं। कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका चलन जैनियों में हो तो हो। भुना हुआ सत्तू, टांट, ऊमी, बुगोरी, किष्टे, बेढ़मी आदि पचासों प्रान्तीय शब्द भरे पड़े हैं। लेखक ने न तो मुहाविरों की परवा की है और न विराम-चिह्नों के प्रयोग की आवश्यकता समझी है। पुस्तक में आदि से अन्त तक प्रायः सिर्फ़ स्वल्प-विराम (कामा) से ही काम लिया गया है। दो, एक स्थल जुगुप्सा-व्यञ्जक भी हो गये हैं। ४८ वें पृष्ठ की ९वीं १० वीं पंक्ति और २२वें पृष्ठ के अन्त की कुछ पंक्तियाँ इसका उत्तम उदाहरण हैं।

⁂

६—**कर्मक्षेत्र**—इसका आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या २२१, मूल्य १॥) है। काग़ज़ और छपाई साधारण है, पर जिल्द असाधारण। बँगला-भाषा में बाबू शशिभूषण सेन के कर्मक्षेत्र नामक ग्रन्थ का अच्छा मान है। उसी का यह अनुवाद है। अनुवादक हैं पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा। इसमें भारतवर्ष के अनेक प्रतिष्ठित पुरुषों के जीवनचरित का उल्लेख करके तदनुसार सुशिक्षा दी गई है। भाषा अच्छी है। नवयुवकों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। इसका एक और भी हिन्दी-अनुवाद प्रचलित है। उसे शायद क़ायमगंज के पण्डित गुलज़ारीलाल चतुर्वेदी ने किया है।

⁂

७—**भारत-प्रेमी**—यह एक कहानी है। लेखक का कहना है कि इसे उन्होंने २४ घण्टों में लिखा है। कदाचित् इसी से इसमें रोचकता नहीं आसकी। इसकी भाषा और शब्द-स्थापना भी सदोष है। तथापि कहानी बुरी नहीं। छपाई और काग़ज़ मामूली है। पृष्ठ-संख्या ९८ है। मूल्य कस कर ।॥) रक्खा गया है। इसके लेखक पण्डित भगवतप्रसाद शुक्ल हैं। पता आपका है—बुधवारी-पुरा, छिँदवाड़ा। आप ही से यह मिल सकती है।

८—**साहित्याचार्य अम्बिकादत्त व्यास जी की दो पुस्तकें**—व्यास-पुस्तकालय, १४ मानमन्दिर, काशी, ने साहित्याचार्य जी के सब ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। ये पुस्तकें भी हमें उसी से मिली हैं। (१) **आश्चर्य-वृत्तान्त** [दूसरी आवृत्ति] मूल्य ।=) (२) **स्वर्ग-सभा** [दूसरी आवृत्ति] मूल्य =)। दोनों की छपाई और काग़ज़ साधारण है। जिन्हें व्यासजी की लेखनी की निपुणता देखने की इच्छा हो उन्हें चाहिए कि वे पूर्वोक्त पते से उनकी पुस्तकें मँगा लें। पहली पुस्तक में आश्चर्यजनक घटनाओं का मनोरञ्जक वर्णन है। दूसरी में हास्यरस-व्यञ्जक कलियुगी बातें हैं, जो उपदेशपूर्ण भी हैं। स्वर्ग में की गई एक कल्पित सभा का वर्णन है, जो शायद आर्य्यसमाजियों की पुस्तक—स्वर्ग में सबजेक्ट कमिटी—के उत्तर में है।

⁂

९—**आरती**—इसमें छोटे आकार के ४८ पृष्ठों में छोटी छोटी ४८ कवितायें सङ्ग्रहीत हैं। मूल्य ।-) है। इसकी रचना करनेवाले हैं—"कुसुम-कण्टक"। इसमें सङ्ग्रहीत कविताओं को कविता कहना भी चाहिए या नहीं, यह बात कोई प्रकृत कवि ही बता सकता है। छन्द भी इसके विचित्र हैं और भाषा भी। इसके प्रकाशक बाबू श्यामलालप्रसाद गुप्त, बरहज, गोरखपुर हैं। उन्हीं से यह पुस्तक मिलती है।

⁂

१०—**भारतीय ग्रन्थमाला की दो पुस्तकें**—(१) **मातृवन्दना**—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ८६, मूल्य ।=) आने। लेखक पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्म्मा, विशारद। इस पुस्तक में भारतमाता की पद्यात्मक वन्दना है। कोई कोई पद्य मनोहर हैं। पर भाषा कुछ क्लिष्ट है। इस दोष का अनुभव स्वयं लेखक को भी हुआ है, क्योंकि पुस्तकान्त में एक परिशिष्ट जोड़ कर उन्हें कठिन शब्दों के अर्थ देने पड़े हैं। कहीं कहीं छन्दोभङ्ग दोष भी हैं। (२) **अन्योक्ति-तरंगिणी**—इसका आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ६६, मूल्य ।) आने है। इसकी भी रचना उपर्युक्त विशारद-महाशय ने पद्य में की है। इसमें भिन्न भिन्न विषयों पर अन्योक्तियाँ हैं। किसी किसी विषय की अन्योक्ति ख़ूब चिपकती है।

यत्र तत्र राजनैतिक भावों की भावना भी है—कहीं खुल कर कहीं व्यङ्ग्य से। ये दोनों पुस्तकें हरिश्चन्द्र एण्ड ब्रादर्स, मदारगेट, अलीगढ़, को लिखने से मिल सकती हैं।

⁂

११—गोरस और गोवर्धनशास्त्र—यह कोई तीन सौ सफ़े की पुस्तक है। मूल्य है दो रुपये। छपाई साधारण है। पुस्तकान्त में एक दर्जन चित्र भी हैं। मूल लेखक, श्रीयुत भास्कर काशीनाथ घारे, की मराठी पुस्तक, दुभतें व दुभतीं जनावरें, का यह हिन्दी-अनुवाद है। बाबू प्यारेलाल गर्ग और पण्डित गणेश सदाशिव फाटक ने यह अनुवाद किया है। कृषि-विद्यालय, कानपुर, के पते पर इन्हीं महाशयों को लिखने से यह मिलती है। अँगरेज़ी में जिसे डेयरी कहते हैं उसी विषय, अर्थात् गायों के पालन-पोषण और उनके दूध, घी आदि, का विवेचन इसमें है। इसके नाम का एक अंश "गोवर्धन" खटकनेवाला है। उससे गोवर्धन नाम के पर्वत का भ्रम होता है, क्योंकि यह शब्द उसी में रूढ़ सा है; प्रधानतः उसी का बोधक सा है। अतएव "गोवर्धन" की जगह "गोवंशवर्धन" होता तो यह दोष दूर हो जाता। पर इससे पुस्तक की उपयोगिता में कमी नहीं आ सकती। वह विशेष उपयोगिनी है। गाय भैंस पालनेवाले साधारण गृहस्थों को इस पुस्तक के पाठ से अनेक ज्ञातव्य बातें मालूम हो सकती हैं। "डेयरी-फ़ार्म" खोलने की इच्छा रखनेवाले या जो इस तरह के काम इस समय कर रहे हैं, इस पुस्तक के अवलोकन से उनके भी काम में सुभीता और ज्ञान में वृद्धि हो सकती है।

× ×
×

नीचे लिखी हुई चीज़ें भी पहुँच गई हैं। भेजनेवाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) संवत् १९७७ का भविष्य फल—लेखक, पण्डित देवीप्रसाद शर्म्मा, पचोखरा, आगरा।

(२) पान का मसाला—प्रेषक, सिद्धगोपाल एण्ड कम्पनी, कानपुर।

(३) परम-हर्षजनक समाचार—प्रेषक, मोहन बलदेवसिंह, देहरादून।

(४) मास्टर मनहर बरवे—प्रेषक, गणपतराव जी० बरवे, बम्बई नं० २।

चित्र-परिचय।

अपनी रानी सुनीति के पुत्र ध्रुव को राजा उत्तानपाद ने अपनी गोद में न बैठने दिया, इसलिए कि दूसरी रानी सुरुचि को यह बात असह्य थी। गोद में बैठने की इच्छा करने पर उस भोले-भाले बालक को अपनी विमाता सुरुचि से उलटा झिड़कियाँ सुननी पड़ीं। इतने पर भी पिता ने बच्चे को पुचकारा तक नहीं—प्रेम से उसकी पीठ पर हाथ भी न फेरा! इस दुर्व्यवहार से चिढ़ कर, अपनी माता सुनीति की सलाह से, छोटा सा बच्चा ध्रुव वन में तपस्या करने चला गया। जिस उम्र में आज-कल बालक घर से बाहर पैर रखते डरते हैं, जो उम्र खाने-पीने और खेलने-कूदने की ही है उसी छोटी सी उम्र में वह सब सुख त्याग कर, घर-द्वार छोड़, वन में तप करने चला गया! चित्र में देखिए: कालिन्दी नदी के कूल से ज़रा हट कर, मधुवन में, अपनी कुटी के द्वार पर खड़ा ध्रुव हाथ जोड़े हुए भगवान् की प्रार्थना कर रहा है। उसके चेहरे पर कैसा भोलापन है। हृदय में किसी भी प्रकार का विकार नहीं। कैसा सुहावना दृश्य और कैसा पुनीत आश्रम है। भगवान् ने ध्रुव की निर्विकार भक्ति पर प्रसन्न होकर, अन्त में, उसे इतना अचल और इतना ऊँचा स्थान दिया जैसा आज तक और किसी को नहीं मिला। राजा की गोद से बहिष्कृत होने पर भगवान् ने उसे सर्वोच्च-पद प्रदान करके उसे पुरस्कृत किया। यह चित्र बाबू शैलेन्द्रनाथ दे के हस्त-कौशल का नमूना है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Ld., Allahabad

SARASVATI—Reg. No. A248.

भाग २१, खण्ड १] जून, १९२० [संख्या ६, पूर्ण संख्या २४६

सरस्वती

वार्षिक मूल्य ५)] सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ॥)

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

लेख-सूची ।

पृष्ठ
(१) अभागा फूल (कविता)—[लेखक, बाबू सियारामशरण गुप्त २९५
(२) वाल्ट ह्विटमैन २९५
(३) ईश्वर-दर्शन—[लेखक, पण्डित तारादत्त ज्योतिर्विद् २९८
(४) पतित की प्रार्थना (कविता)—[लेखक, पण्डित मनोहरप्रसाद मिश्र ३०२
(५) महामहोपाध्याय डाकृर सतीशचन्द्र आचार्य्य, विद्याभूषण, एम० ए०, पी-एच० डी०—[लेखक, पण्डित बालदत्त पाण्डेय ३०२
(६) चीन में बौद्ध-धर्म्म ३०५
(७) आस्तिक का नम्र निवेदन—[लेखक, बाबू हरनारायण बाथम, एम० ए० . ३०७
(८) भव्य भारत (कविता)—[लेखक, पण्डित रामचरित उपाध्याय ३११
(९) बोलपुर का शान्तिनिकेतन-ब्रह्मचर्य्याश्रम—[लेखक, पण्डित मुकुटधर पाण्डेय और मनोहरप्रसाद मिश्र ३१२
(१०) बाबू ज्योतिःस्वरूप—[लेखिका, श्रीमती यशोदा देवी ३१९
(११) प्रेम का जादू (कविता)—[लेखक, बाबू मणिराम गुप्त ३२२
(१२) पुत्र-प्रेम (आख्यायिका)—[लेखक, श्रीयुत प्रेमचन्द ३२२
(१३) पृथ्वी का पुत्र—[लेखक, पण्डित वनमाली-प्रसाद शुक्ल ३२७
(१४) ब्रिटिश जनता के अधिकार—[लेखक, पण्डित मनोहरप्रसाद मिश्र ३३१
(१५) विविध विषय ३३५
(१६) पुस्तक-परिचय ३४८
(१७) चित्र-परिचय ३५०

चित्र-सूची ।

१—भृङ्गराज (रङ्गीन)।
२—महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र आचार्य्य, विद्याभूषण, एम० ए०, पी-एच० डी०।
३—बाबू ज्योतिःस्वरूप।
४—श्रीमती महादेवी।
५—कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर।
६—माननीय जस्टिस गोकुलप्रसाद, एम० ए०, एल्-एल्० बी०।

नई पुस्तक ! नई पुस्तक !!

स्व० राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित

मेघदूत

सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०

महाकवि कालिदास का यह काव्य बहुत प्रसिद्ध है। हिन्दी में भी इसके एकाधिक अनुवाद हो गये हैं। सर्व-साधारण में उनका ख़ासा आदर है। हिन्दी में मेघदूत का अनुवाद सबसे प्रथम राजा लक्ष्मणसिंहजी ने किया था। सन् १८८४ में इसका दूसरा, और सन् १८९३ में तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था। किन्तु ऐसा अच्छा अनुवाद इधर अप्राप्य हो रहा था। इसलिए सुन्दर अक्षरों में, अच्छे काग़ज़ पर, हमने इसका नया संस्करण, हिन्दी-हितैषियों के अनुरोध से प्रकाशित किया है। मूल श्लोक के सामने ही उसका सरस पद्यानुवाद है। विषय को समझाने के लिए मूल संस्कृत के साथ, नीचे, टिप्पणियाँ हैं; और भाषा-छन्दों के नीचे, फुटनोट हैं। जिनमें पद्य का सरल भावार्थ है। मतलब यह कि इस पुस्तक में गद्यानुवाद भी है और पद्यानुवाद भी। दो रङ्गीन चित्र भी हैं। महाकवि कालिदास की कविता के साथ ही साथ राजा साहब के सरस गद्य-पद्य का भी आनन्द लीजिए। मूल्य सिर्फ़ ।।=) दस आने।

डाकघर

डाकघर कैसा है?—इसके लिए इतना ही लिखना काफ़ी है कि यह डाकूर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना है। कहानी के बहाने एक विशेष विषय पर विचार हैं। पात्रों के साथ आप पुस्तक की सैर कीजिए। यदि ध्यान दीजिएगा तो उस विषय से भेट हो जायगी, कहानी का आनन्द है ही। मतलब यह कि पुस्तक सभी के काम की है। भाषा सरल है। विषय को समझाने के लिए आवश्यकतानुसार टिप्पणियाँ भी दे दी गई हैं। कहानी छोटी है किन्तु सरस अधिक है। मूल्य ।-) पाँच आने।

मिलने का पता—

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड,
प्रयाग, कटरा।

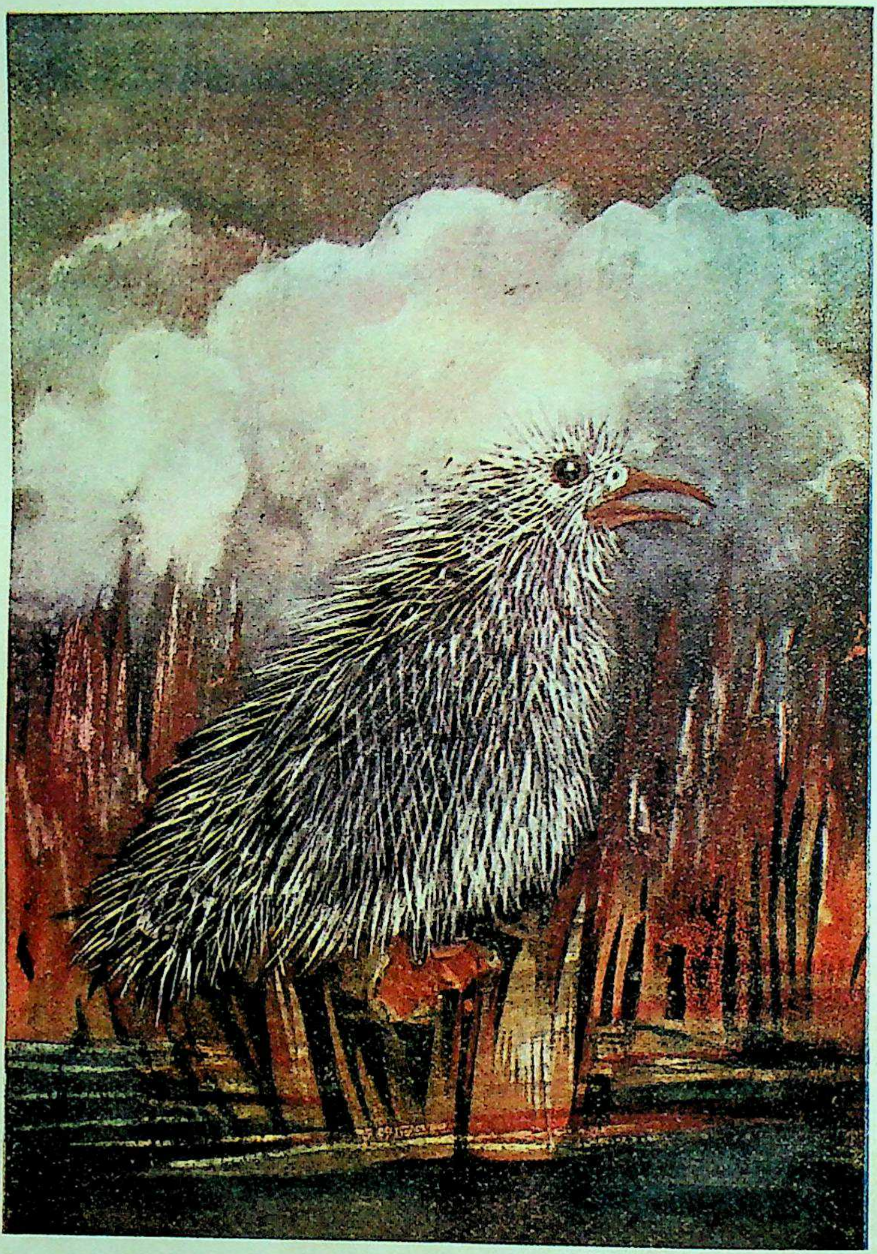

भृङ्गराज ।

इण्डियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

सरस्वती

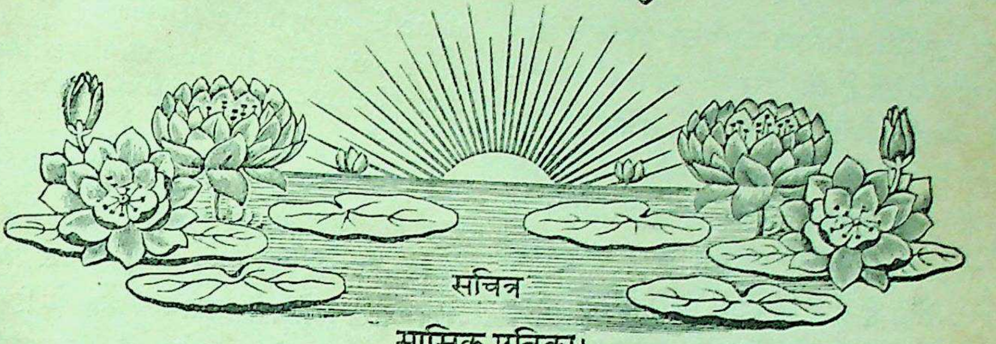

सचित्र

मासिक पत्रिका।

भाग २१, खण्ड १] जून १९२०—आषाढ़ १९७७ [संख्या ६, पूर्ण संख्या २४६

अभागा फूल।

अभागे फूल, मुरझाने लगा तू,
सताया काल से जाने लगा तू।
अभी अच्छी तरह खिल भी न पाया,
कि तुझ पर हाय! ऐसा दुःख आया।
नहीं फैला सका सौरभ कभी तू,
अभी से खो चला गौरव सभी तू।
सभी साथी मुदित हैं देख तेरें,
तुझी को हाय! है दुर्दैव घेरे।
अभी यद्यपि नहीं सुवसन्त आया,
प्रथम ही किन्तु उसका अन्त आया।
अभी से लग गया आतप दुखाने,
कलेवर हाय! तेरा यह सुखाने।
यदपि मध्याह्न जीवन का निकट है,
तदपि तेरे लिए सन्ध्या प्रकट है!
हुआ क्यों हाय! यह चिर-दुःख-भोगी,
दयामय, क्या दया इस पर न होगी?

सियारामशरण गुप्त

वाल्ट ह्विटमैन।

समाज उच्छृङ्खलता नहीं चाहती। इसीलिए एक मर्यादा निर्धारित कर दी गई है जिसे भङ्ग करने का साहस कोई नहीं कर सकता। साहित्यक्षेत्र की भी यही दशा है। वह भी मर्यादित है—नियमबद्ध है। उन नियमों को तोड़ देना बड़ा कठिन है। फिर भी, मानव-समाज के समान साहित्यक्षेत्र में भी परिवर्तन होते रहते हैं। जब प्रचलित नियमों से साहित्य के विकास में बाधा आती है, जब उन नियमों के कारण साहित्य में प्रतिभा-स्रोत मलिन पड़ जाता है, मौलिकता नष्ट होजाती है, अपूर्वता नहीं रहती है, तब एक ऐसे कवि का आविर्भाव होता है जो अपनी मौलिकता से उन नियमों को निस्सार सिद्ध कर देता है। इसमें सन्देह नहीं कि लोग उसकी कृति को देख पहले पहल उसका उपहास

करते हैं, कुछ कुछ उसकी अवहेलना भी करते हैं; पर अपनी विलक्षणता से, अपनी अपूर्वता से, शीघ्र ही वह मनुष्यों के हृदय में स्थान कर लेता है। तब लोग उस कवि का आदर करने लगते हैं।

वाल्ट ह्विटमैन अमेरिका का ऐसा ही कवि था। विद्वानों का कथन है कि उसकी कविता में अमेरिका के अन्य कवियों से अधिक सजीवता और मौलिकता है। वह प्रजापक्ष का कवि कहा जाता है, क्योंकि उसने जन-साधारण के हृद्गत भावों को अच्छी तरह व्यक्त किया है। उसने न तो किसी का अनुकरण किया है और न स्वयं कोई नियम बनाने की परवा की है। उसके विचार विचित्र हैं और उसकी शैली विलक्षण है। चाहे कोई उन विचारों से सहमत हो चाहे न हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि वह वाल्ट ह्विटमैन की कृति का आदर अवश्य करेगा।

वाल्ट ह्विटमैन की उच्छृङ्खलता का प्रमाण हमें उसकी कृति में खब मिलता है। उसका कहना है कि कविता-कामिनी से शब्दों का भार-वहन करा कर उसे हंसगामिनी मत बनाओ। उसे अपनी स्वाभाविक गति से स्वच्छन्दतापूर्वक चलने दो, साहित्याकाश में उसे निर्बन्ध-रहित पक्षी की तरह उड़ने दो, भाव-सिन्धु में उसे मछली की तरह तैरने दो। उपमा आदि अलङ्कारों की कोई ज़रूरत नहीं। उसका प्राकृतिक सौन्दर्य इन अलङ्कारों से नष्ट हो जाता है। कविता में न तो तर्क से काम लो और न विवाद से। उसमें तुम रहो; तुम्हारा प्रतिबिम्ब न रहे। उसमें प्रकृति रहे; प्रकृति की छाया न रहे। उसके निम्न-लिखित पद्यों से यह भाव प्रकट होता है—

Small is the theme of the following chant, yet the greatest, namely,

One's self, that wondrous thing, a simple separate person.

That, for the use of the New World I sing,

Man's physiology from top to bottom I sing,

Not physiognomy alone, nor brain alone, is worth the Muse.

I say, the form complete is worthier far, the female equally with the male I sing.

इसका मतलब यह है—मेरे गान का विषय क्षुद्र है; फिर भी वह महत्तम है। वह है अपनी आत्मा, सबसे विलक्षण वस्तु, सबसे भिन्न साधारण व्यक्ति। मैं इसे नवीन विश्व के हितार्थ गाता हूँ; नख से शिख पर्य्यन्त मैं मनुष्य का शरीर-विज्ञान गाता हूँ। सिर्फ़ उसका लक्षण अथवा उसका मस्तिष्क कविता देवी के योग्य नहीं। मैं कहता हूँ, उसका सम्पूर्ण रूप ही योग्यतर है। स्त्री के साथ पुरुष के विषय में मैं गान करता हूँ।

वाल्ट ह्विटमैन का जन्म वेस्ट हिल्स, लाँग आइलैंड, न्यूयार्क में, १८१९ ई० की ३१ मई को हुआ था। उसका पिता पहले खेती करता था। फिर वह बढ़ई का धन्धा करने लगा। कुछ समय तक वह कारीगर भी रहा। वाल्ट ९ भाई-बहन थे। वह अपने बाप का दूसरा लड़का था। उसकी प्रारम्भिक शिक्षा ब्रुकलिन नगर में हुई। तेरह ही वर्ष की अवस्था में उसे जीविका-निर्वाह के लिए काम करना पड़ा। पहले उसे चिट्ठीरसानी का काम मिला। फिर उसने एक छापेख़ाने में काम किया। इसके बाद वह एक देहाती स्कूल में मास्टर हो गया। १८३६ में उसने एक सामयिक पत्र निकाला। उसका नाम रक्खा गया लाँग आइलेंडर (Long Islander)। १८३९ तक उसका सम्पादन उसी ने किया। फिर वह ब्रुकलिन से प्रकाशित होनेवाले एक दैनिक पत्र का सम्पादक हुआ। १८४९ में वह न्यू आरलीन्स (New Orleans)

के क्रेसेन्ट (Crescent) नामक सामयिक पत्र के सम्पादन-विभाग में नियुक्त हुआ। दो वर्ष बाद वह ब्रुकलिन के एक छापेख़ाने में प्रिण्टर हुआ। इसके बाद वह अपने पिता का ही व्यवसाय करने लगा। पर मासिक पत्रों में उसके लेख बराबर निकलते रहे।

१८५५ में उसकी कविताओं का एक सङ्ग्रह प्रकाशित हुआ। उसका बड़ा विचित्र नाम था—Leaves of Grass अर्थात् घास के पत्ते। कुछ समय तक तो जनता का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट नहीं हुआ। पर कुछ समय बाद राल्फ वाल्डो इमरसन नामक विद्वान् ने उसकी प्रशंसा में एक पत्र न्यूयार्क ट्रिब्यून नामक पत्र में प्रकाशित किया। तब से लोग उसे जानने लगे। १८५६ ईसवी में उसकी कविताओं के सङ्ग्रह का दूसरा संस्करण निकला। इसके बाद १८८० में उसका एक और परिवर्धित संस्करण निकाला गया। उसके आरम्भ में एक भूमिका थी। भूमिका क्या थी, कवि और काव्य पर एक निबन्ध था। उसकी कुछ बातें सुन लीजिए। उनसे आप जान सकेंगे कि कवि के कर्तव्य के विषय में ह्विटमैन के विचार कैसे थे—

कवियों के लिए कोई भी विषय छोटा नहीं। जिसे साधारण जन क्षुद्र समझते हैं वह भी कवि के हाथों में पड़ कर महान् हो जाता है। कवि उसमें नया जीवन डाल देता है। कवि द्रष्टा है। उसमें और दूसरे लोगों में इतना ही भेद है कि वह देखता है और दूसरे देखते नहीं; और जब देखते हैं तब कवि ही की दृष्टि से देखते हैं। कवित्वगुण न तो शब्दों के झङ्कार में रहता है और न यमक और अनुप्रास के आडम्बर में। न वह शिक्षा-पूर्ण पद्यों में है और न विषादात्मक रचनाओं में। उसका जन्म-स्थान आत्मा है। इसलिए जिस रचना का सर्वस्व आत्मा का विकास नहीं, वह कविता ही नहीं।

कवि समस्त विश्व का प्रेमी है। उसके जीवन का आधार यही अनन्त प्रेम है। जो दूसरे के लिए विघ्न-स्वरूप हैं वे उसके प्रेमानल में आहुति का काम देते हैं। उनके सम्पर्क से उसका आनन्द और भी अधिक बढ़ जाता है। उसके लिए बाधा है ही नहीं। न दुःख है, न मृत्यु है, न अन्धकार है और न भय है। कवि न तो सदुपदेश देता है और न लेता है। वह अपनी आत्मा को जानता है। इसी में वह अपना गौरव समझता है। इस आत्मगौरव के साथ उसकी सहानुभूति अनन्त है। इसी भाव के कारण वह विश्व को अपने में और अपने को विश्व में देखता है।

जब वाल्ट ह्विटमैन ब्रुकलिन में था तब घण्टों खड़े खड़े लोगों की भीड़ देखा करता था। उसी से उसे अपनी कविता के लिए सामग्री मिलती थी। उसके शरीर में एक प्रकार की आकर्षण-शक्ति थी जिससे लोगों की दृष्टि उस पर अनायास खिँच जाती थी। कानवे नाम के एक सज्जन एक बार उसे देखने गये थे। उन्होंने लिखा है—

"उस दिन बड़ी गरमी थी। सूर्य के तीव्र उत्ताप से लाँग आइलेंड की भूमि तप रही थी। उस समय मैंने वाल्ट ह्विटमैन को धूप में लेटे हुए पाया। उसके कपड़े भूरे थे। सूर्य-ताप से शरीर का रङ्ग भी वैसा ही हो गया था। पृथ्वी पर लेटा हुआ वह सहसा पहचाना न जा सकता था। ऐसा जान पड़ता था कि वह और पृथ्वी दोनों एक हैं।"

जिस घर में ह्विटमैन रहते थे उसमें एक ही कमरा था। सामान भी बहुत कम। किताबों में बाइबिल, होमर नामक ग्रीक कवि का काव्य और शेक्सपियर के नाटक। यही उसे ख़ूब पसन्द थे। इन्हें वह सदा जेब में रक्खा करता था।

१८६२ में जब उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में परस्पर युद्ध आरम्भ हुआ तब वाल्ट ह्विटमैन ने उत्तरी अमेरिका का पक्ष ग्रहण किया। उसका भाई जी० डबल्यू० ह्विटमैन सेना-विभाग में अफ़सर था।

जब वह घायल हुआ तब ह्विटमैन ने स्वयं जाकर उसकी सेवा-शुश्रूषा की । १० साल तक वह बलुमटेर फ़ौज में रहा । १८६६ में उसने युद्ध-विषयक कवितायें प्रकाशित कीं । १८७३ में उसको लकवा मार गया । इससे वह क्षीणशक्ति हो गया । तब वह कैमडन नाम के एक नगर में जाकर रहने लगा । वहीं उसकी मृत्यु, १८९२ में, हो गई ।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में इस महाकवि के विषय में लिखा है । "His life was a poet's life from first to last—free, unworldly, unhurried, uncontentional, unselfish and was contentedly and joyously lived." अर्थात्—ह्विटमैन का जीवन आदि से अन्त तक कवि का जीवन था । कैसा जीवन ? स्वच्छन्द, विरक्त, शान्तिमय, सन्तुष्ट और आनन्द-पूर्ण ।

ईश्वर-दर्शन ।

वक्ता—तुम अपने सदृश और मनुष्यों को चेतन समझते हो या अचेतन ?

श्रोता—चेतन ।

वक्ता—तुम्हें यह ज्ञान किस प्रकार होता है ?

श्रोता—मैं जैसा अपना शरीर देखता हूँ वैसा ही और मनुष्यों का भी । इसलिए मुझे ज्ञात होता है कि जैसा मैं हूँ वैसे ही और मनुष्य भी हैं । मैं अपने आपको चेतन समझता हूँ, इससे मालूम हुआ कि सब मनुष्य चेतन हैं ।

वक्ता—तुम पशुओं को चेतन समझते हो या अचेतन ?

श्रोता—चेतन ।

वक्ता—तुम्हारे और उनके शरीर में भेद है । फिर तुमने कैसे जान लिया कि वे चेतन हैं ?

श्रोता—भेद तो मनुष्यों में भी है । प्रत्येक देश के निवासियों में भेद पाया जाता है । देखो, हमारे देश के और योरप के निवासियों में कितना भेद है ? एक घर के मनुष्य भी एक-से नहीं होते । यहाँ तक कि सगे भाई भी सदृश नहीं होते । इस भेद के होने पर भी जिस प्रकार मैंने सब मनुष्यों को चेतन समझ लिया है, उसी प्रकार पशुओं को भी । यह भेद जातीय नहीं है, किन्तु व्यक्तिगत है ।

वक्ता—तुम वृक्षों को चेतन समझते हो या अचेतन ?

श्रोता—चेतन । मनुष्यों और पशुओं में परस्पर जितना भेद है, लगभग उतना ही चौपायों और वृक्षों में भी है । मनुष्यों के सिर ऊपर को होते हैं, पशुओं के तिरछे, और वृक्षों के नीचे । इसलिए मैंने जिस प्रकार चौपायों को चेतन समझ लिया उसी प्रकार वृक्षों को भी ।

वक्ता—अब तुम इन तीनों प्रकार के चेतनों को देख कर यह सिद्ध करो कि चेतन किसे कहते हैं और अचेतन किसे ?

श्रोता—(मन में कुछ विचार कर) मेरी समझ में नहीं आता ।

वक्ता—अच्छा । हमारे प्रश्नों का उत्तर देते रहो । विदित हो जायगा । बताओ, शरीर तुम्हें कैसे मालूम होते हैं ?

श्रोता—मुझे शरीर, घड़ी आदि यन्त्रों के समान, एक प्रकार के यन्त्र प्रतीत होते हैं ।

वक्ता—घड़ी आदि यन्त्रों और शरीरों में क्या भेद है ?

श्रोता—घड़ी आदि बनावटी यन्त्र हैं; शरीर प्राकृतिक यन्त्र है ।

वक्ता—अब बताओ, चेतन किसे कहते हैं ?

श्रोता—उस प्राकृतिक यन्त्र को चेतन जानना चाहिए जिसमें अपने आप चेष्टा पाई जाय । जैसे घोड़े, मनुष्य, साँप, वृक्ष आदि ।

वक्ता—शाबाश । देखो, हम तुम्हें एक और अद्भुत वस्तु बताते हैं । उसका नाम है संसार ।

श्रोता—क्या सारा संसार एक ही यन्त्र है ?

वक्ता—हाँ ।

श्रोता—मुझे समझा दीजिए ।

वक्ता—जिस प्रकार लोहे और चुम्बक में परस्पर आकर्षण-शक्ति है, उसी प्रकार सारे आकाश-चारियों (ग्रह, नक्षत्र, तारों) में है । वे सब आकर्षण से ही आकाश-मण्डल में अवस्थित हैं । यदि तुम किसी वस्तु को ऊपर फेंक देते हो तो वह नीचे गिर जाती है । इसका कारण यही है कि पृथिवी उसको अपनी आकर्षण–शक्ति से अपनी तरफ़ खींच लेती है । श्रीभास्कराचार्य ने "सिद्धान्त-शिरोमणि" में लिखा है— "आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत्खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या । आकृष्यते तत्पततीव भाति" । (अर्थात्–पृथिवी में आकर्षण-शक्ति है । उससे आकाश में स्थित गुरु वस्तु पृथ्वी की ओर आकर्षित हो जाती है । उसी को गिरना कहते हैं) चढ़ाई पर चलने में जो अधिक साँस चलती है, इसका कारण भी आकर्षण-शक्ति है । तारे भी पृथिवी ही के सदृश हैं । इससे उनमें भी आकर्षण-शक्ति सिद्ध हो गई । जब सारे आकाश-चारियों में आकर्षण-शक्ति है तब सिद्ध हो गया कि वे आपस में मिले हुए हैं, और हर एक का परस्पर लगाव है । अर्थात् जिस तरह हमारे शरीरों का आपस में सम्बन्ध है उसी तरह उनका भी । अब तुम बताओ कि यह संसार-यन्त्र चेतन है या अचेतन ?

श्रोता—चेतन ।

वक्ता—कैसे ?

श्रोता—यह प्राकृतिक यन्त्र है । इस प्राकृतिक यन्त्र में चेष्टा पाई जाती है, इसलिए यह भी चेतन है ।

वक्ता—शरीर और संसार की सदृशता का वर्णन करो—

श्रोता—सुनिए ।

शरीर में साँस अपने आप चलती रहती है । लोहू भी अपने आप चलता रहता है । संसार-रूप शरीर में तारे अपने आप चलते रहते हैं । शरीर में जल और वायु का भाग अधिक है । बाहर भी ऐसा ही प्रतीत होता है । शरीर में बाल उगते हैं । संसार में वृक्ष उगते हैं । शरीर में हड्डियाँ ठोस पदार्थ हैं । संसार में पत्थर वग़ैरह ठोस पदार्थ हैं । संसार में बहुत चेतन हैं । शरीर में भी बहुत चेतन हैं । शरीर में गरम पदार्थ हैं । संसार में भी सूर्य आदि उष्ण पदार्थ हैं । जिस तरह शरीर में उष्ण पदार्थों से चेष्टा होती रहती है, उसी तरह संसार में भी । पृथिवी के भीतर गरम पदार्थों के कारण चेष्टा या उच्छ्वास पाया जाता है । ऊपर पानी है । जहाँ उसका प्रभाव कम है वहाँ स्थल है । पानी का अधिक होना भी उष्ण पदार्थों ही के कारण है । उन्हीं उष्ण पदार्थों से इसमें चेष्टा होती रहती है । इसीलिए लिखा हुआ है कि—"ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति ते शरीरे व्यवस्थिताः—" संसार में जो गुण हैं वे सब शरीर में भी हैं ।

वक्ता—प्रतिज्ञा आदि पाँच अवयवों से सिद्ध करो कि संसार चेतन है ।

श्रोता—सुनिए । वह ये हैं—

प्रतिज्ञा—संसार चेतन है ।

हेतु—क्योंकि यह प्राकृतिक यन्त्र है, इसमें अपने आप चेष्टा होती रहती है ।

उदाहरण—वह प्राकृतिक यन्त्र चेतन होता है जिसमें चेष्टा पाई जाती है । जैसे—मनुष्य, हाथी, घोड़ा, वृक्ष आदि ।

उपनय—यह भी वैसा ही है ।

विनिगमन—इसलिए मनुष्य आदि प्राकृतिक यन्त्रों के समान यह संसार भी चेतन सिद्ध हुआ।

वक्ता—यह चेतन तुम्हें कैसा मालूम होता है ?

श्रोता—यह सबसे बड़ा चेतन प्रतीत होता है। सारे चेतन इसी के भीतर हैं। इसलिए यह सर्वशक्तिमान् है, अर्थात् इसी की शक्तियों से सारे चेतन चेतन हो रहे हैं। इसी की शक्तियों से सब शक्तियाँ काम कर रही हैं।

वक्ता—सारा संसार जिस आत्मा का शरीर है उसे क्या कहते हैं ?

श्रोता—परमात्मा (परम=सबसे बड़ा ; आत्मा=रूह=जान)

वक्ता—अब बताओ कि तुम ईश्वर को देख रहे हो या नहीं ?

श्रोता—मैं आपके शरीर को देख रहा हूँ; यही देखना है। इसी प्रकार मैं परमात्मा के शरीर को भी देख रहा हूँ। इसलिए ईश्वर को भी देख रहा हूँ। यह संसार ही ईश्वर है।

वक्ता—अब शास्त्र का प्रमाण सुनो। वेद के वाक्य ये हैं—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म।

अर्थ—यतः=जिससे। इमानि=ये। भूतानि=प्राणी। जायन्ते=पैदा होते हैं। येन=जिससे। जातानि=पैदा हुए। जीवन्ति=जीते रहते हैं। यत्=जिसको। प्रयन्ति=प्राप्त होते हैं। अभिसंविशन्ति=सब तरफ़ से दाख़िल होते हैं। तत्=उसको। विजिज्ञासस्व=जानने की इच्छा कर। तत्=वह। ब्रह्म=ब्रह्म है।

श्रोता—समझ गया।

वक्ता—यह चेतन कहाँ तक है ?

श्रोता—जितना बड़ा मेरा शरीर है उतना ही बड़ा मैं समझा जाता हूँ; इसलिए जितना बड़ा संसार-रूप शरीर है उतना ही बड़ा यह चेतन भी सिद्ध होता है। आप इसे अनन्त (बेहद) भी कह रहे हैं। यह अनन्त तभी सिद्ध होगा जब संसार अनन्त सिद्ध होगा। मैं अभी तक नहीं समझा कि संसार अन्तवाला है, या अनन्त। इसलिए प्रार्थना करता हूँ कि कृपा करके इसे मुझे समझावें।

वक्ता—तुम अपने शरीर का अन्त देख रहे हो या नहीं ?

श्रोता—हाँ, देख रहा हूँ।

वक्ता—मेरे शरीर का अन्त देख रहे हो या नहीं ?

श्रोता—देख रहा हूँ।

वक्ता—पशुओं और वृक्षों के शरीरों का अन्त देख रहे हो या नहीं ?

श्रोता—देख रहा हूँ।

वक्ता—क्या कोई और भी ऐसी चीज़ें दिखाई दे रही हैं—जिनका अन्त नहीं ?

श्रोता—नहीं।

वक्ता—अब बताओ कि कहीं संसार का भी अन्त है या नहीं ?

श्रोता—है।

वक्ता—उसके बाद क्या है ?

श्रोता—आकाश (शून्य स्थान=ख़ाली जगह)

वक्ता—कहाँ तक ?

श्रोता—यह पता नहीं कि कहाँ तक है, सम्भव है—सब आकाश ही आकाश हो।

वक्ता—जहाँ तक तुम अपना शरीर देखते हो उसके बाद क्या देखते हो ?

श्रोता—आकाश।

वक्ता—उसके आगे क्या देखते हो ?

श्रोता—आपका शरीर।

वक्ता—और आगे ?

श्रोता—आकाश।

वक्ता—उसके आगे ?

श्रोता—मकान ।

वक्ता—उससे आगे ?

श्रोता—फिर आकाश ।

वक्ता—पृथ्वी की सीमा के आगे क्या है ?

श्रोता—आकाश ।

वक्ता—उसके भी आगे ?

श्रोता—चन्द्रमा ।

वक्ता—उसके भी आगे ?

श्रोता—और कुछ होगा ।

वक्ता—अब क्या मालूम हुआ ?

श्रोता—अब मुझे यह मालूम हुआ कि जहाँ पर कोई वस्तु ख़तम होती है उसके आगे आकाश ही नहीं होता। इसलिए जहाँ तक यह संसार है उसके आगे आकाश ही आकाश नहीं है।

वक्ता—बताओ, वहाँ क्या है ?

श्रोता—बहुत दूर तक आकाश है। फिर दूसरा संसार, जैसे कि पृथ्वी के ख़तम होने पर बहुत दूर तक आकाश है। फिर और कुछ।

वक्ता—उसके बाद क्या है ?

श्रोता—कोई और संसार।

वक्ता—आगे ?

श्रोता—इसी प्रकार बहुत से संसार हैं।

वक्ता—उन संसारों का नाम क्या है ?

श्रोता—ब्रह्माण्ड।

वक्ता—जिस प्रकार यह संसार, जिसके भीतर पृथ्वी आदि पिण्ड हैं, कहीं ख़तम हो जाता है, क्या उसी प्रकार वह संसार भी, जिसके भीतर अनेक ब्रह्माण्ड हैं, कहीं ख़तम होता है ?

श्रोता—क्यों नहीं ?

वक्ता—और आगे क्या है ?

श्रोता—आगे भी यही क्रम है।

वक्ता—बताओ कि क्या ऐसा भी कोई स्थान मालूम होता है जिससे आगे कहीं भी संसार न हो।

श्रोता—नहीं।

वक्ता—अब बताओ कि तुम्हें क्या मालूम हुआ ?

श्रोता—एक सबसे बड़ा संसार मालूम हुआ जिसके भीतर अनेक संसार हैं। वह बड़ा संसार कहीं भी ख़तम नहीं होता। अन्य संसारों में से कोई भी संसार अनन्त नहीं। संसारों की संख्या अनन्त है। हर एक बड़े संसार के भीतर उससे छोटे संसार रहते हैं, वे भी और संसारों के साथ अपने से बड़े संसार के भीतर रहते हैं। इत्यादि।

वक्ता—अनन्त संसार कब पैदा हुआ और कब तक रहेगा ?

श्रोता—अनन्त संसार में सब शक्तियाँ अनन्त सिद्ध होती हैं, इसलिए जीवन-शक्ति भी अनन्त प्रतीत होती है। इस कारण अनन्त काल ही में उसका नाश सिद्ध होता है। इससे मालूम हुआ कि उसका नाश कभी न होगा। अनन्त के पैदा होने में अनन्त ही काल प्रतीत होता है, इसलिए निश्चित हुआ कि वह अनादि है।

वक्ता—सृष्टि और प्रलय कैसे माने जाते हैं ?

श्रोता—सृष्टि और प्रलय ब्रह्माण्ड-रूप अंश के ही शास्त्र-वर्णित हैं, न कि अनन्त के।

वक्ता—अब बताओ कि तुम्हें जो यह सब ज्ञान हुआ उसका रूप कैसा है ?

श्रोता—मैं आपकी दया से अनादि, अनन्त, अजर, अमर, सर्व-व्यापक स्वामी को अपने सामने देखने लग गया हूँ। मेरे अन्धकारावृत चित्त-मन्दिर में ज्ञान-दीपक का प्रकाश होने लग गया है।

वक्ता—अब तुम क्या करोगे ?

श्रोता—अब मैं सदा तत्सम्बन्धी तत्त्व जानने के लिए यत्न करूँगा। सदा अधर्म के कामों से बचूँगा। धर्म से प्रेम करूँगा। सबके श्रेय को अपना श्रेय समझूँगा। अपने इस ज्ञान का परिचय औरों को भी कराऊँगा।

तारादत्त ज्योतिर्विद्

पतित की प्रार्थना ।

(१)

प्रभो ! कण्ठ तक पहुँचा मेरा वह मिथ्या अभिमान
जिसके कारण जग में मुझको माया मिली महान ।
ज्ञान और सद्‌गुण की चर्चा, मुक्ति-शान्ति के द्वार—
त्याग इन्हें, हा ! किया वृथा नित अपना ही सत्कार ।

(२)

किया नहीं अब तक है मैंने अपना वास्तव धर्म्म
किन्तु गर्व करने में मुझको ज़रा न आती शर्म ।
अहंमन्य इस पापी मन में महा प्रबल है गर्व
सोच नहीं, पर बीत चला है मम पुण्यों का पर्व ।

(३)

हाय ! कुटिल-जन-सङ्गति करके किया नित्य ही ह्रास
समय चला, पर नहीं तनिक भी मति का हुआ विकास
महा मलिन मम हुई देह—यह है तव शुभ उपहार
भूल गये मुझको मानव के शुचि आचार-विचार ।

(४)

स्वार्थ-परायण मैं, रच नव नव कठिन कठिन नित पाश—
दीनों के अधिकार छीन कर पूरी करता आश ।
ज्यों ज्यों मेरी सम्पति बढ़ती जाती है भगवान
त्यों त्यों लोभ-वृत्ति मम पाती जाती वृद्धि महान ।

(५)

द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या, छल, नाना माया दम्भ-विधान
हैं मेरी ये सम्पति रुचिकर, देखो यह अज्ञान ।
सोचा नहीं तनिक भी होगा क्या इनका परिणाम,
प्रायश्चित्त करूँ मैं कैसे तुम्हीं कहो हे राम !

मनोहरप्रसाद मिश्र

महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र आचार्य्य, विद्याभूषण, एम० ए०, पी-एच० डी० ।

खेद की बात है कि गत २५ अप्रैल सन १९२० ईसवी को संस्कृत, पाली, तिब्बती, प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं के उद्‌भट विद्वान्, कलकत्ता-संस्कृत-कालेज के यशस्वी अध्यक्ष, बङ्ग-भाषा के लब्धप्रतिष्ठ लेखक, सरस्वती के वर-पुत्र, बहु-भाषाभिज्ञ महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण, आचार्य्य महाशय का पक्षाघात रोग से असमय में ही शरीर-पात हो गया ।

आपका जन्म १८७० ईसवी के जुलाई महीने में वर्तमान नदिया ज़िले के अन्तर्गत संस्कृत-विद्या के प्राचीन प्रधान केन्द्र, इतिहास-प्रसिद्ध नवद्वीप, के एक सम्मान्य ब्राह्मण-कुल में हुआ था। आपके पिता पण्डित पीताम्बर विद्या-वागीश बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति थे । आस पास उनका बहुत मान था । बालक सतीशचन्द्र की प्रारम्भिक शिक्षा उनकी ग्राम्य-पाठशाला से प्रारम्भ हुई । आप बचपन ही से बड़े कुशाग्र-बुद्धि थे। अतएव, चौदह वर्ष की अल्प अवस्था में ही आपने वहीं से अँगरेज़ी तथा बँगला भाषा की माइनर (लघुतम) परीक्षा बड़ी सफलता के साथ पास की । उस वर्ष सारे विद्यार्थियों में आपका स्थान प्रथम रहा और आपको ५) महीना छात्र-वृत्ति मिली । तीन वर्ष बाद आपने नवद्वीप के हिन्दू-स्कूल से एन्ट्रेन्स की परीक्षा, प्रथम श्रेणी में, पास की । तब आपको १५) महीना छात्र-वृत्ति मिली । इसके अनन्तर आपने क्रमागत एफ० ए० तथा बी० ए० की परीक्षायें उत्तमता-पूर्व्वक पास कीं । बी० ए० की परीक्षा में कलकत्ता-विश्वविद्यालय

में द्वितीय तथा बङ्गाल में प्रथम होने के कारण आपको स्वर्ण-पदक मिला। इस परीक्षा में संस्कृत में आपने बड़ी नामवरी पाई। एम० ए० पास करने के पहले ही संस्कृत में आपने अच्छा पाण्डित्य प्राप्त कर लिया था। आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो कर ही नवद्वीप-विबुध-जनसभा ने आपको विद्याभूषण की उपाधि प्रदान की थी। तदनन्तर आपने कलकत्ता-संस्कृत-कालेज से संस्कृत में एम० ए० पास किया। उसमें भी आपकी बड़ी नेकनामी हुई।

शिक्षा समाप्त करने के पश्चात्, सन् १८९३ ईसवी में, आप अपने ही ज़िले के कृष्णनगर-कालेज में संस्कृत के प्रोफ़ेसर नियुक्त किये गये। उस पद पर आपने चार वर्ष तक योग्यता-पूर्व्वक काम किया। इस बीच में आपने अपने ग्राम-निवासी महामहोपाध्याय अजितनाथ न्याय-रत्न तथा महामहोपाध्याय यदुनाथ सार्व्वभौम की सहायता से काव्य तथा न्याय का असाधारण ज्ञान प्राप्त किया। आपके गम्भीर पाण्डित्य का परिचय पाकर बङ्गाल-सरकार ने आपको तिब्बती भाषा का अनुवादक नियुक्त किया और उसका एक कोष निर्माण करने का कार्य्य सौंपा। इसके लिए आपको बहुत दिनों तक दार्जिलिङ्ग में रहना पड़ा। उन्हीं दिनों, वहाँ पर प्रसिद्ध विद्वान् लामा फनचांग-वाङ्गडन (Funchong-Wangdon) भी रहते थे। विद्याभूषण जी को तिब्बती भाषा में पूर्ण व्युत्पत्ति लाभ करने का यह अच्छा सुयोग मिला। उससे आपने खूब लाभ उठाया। आपने दो वर्ष तक उनसे तिब्बती भाषा का अध्ययन किया। कोष समाप्त हो जाने पर, १९०० ईसवी में, आप कलकत्ता-संस्कृत-कालेज में अध्यापक नियुक्त हुए। अतएव, आप कलकत्ते में रहने लगे। विद्याव्यसनी पण्डित सतीशचन्द्र ने अब पाली पढ़ना प्रारम्भ किया। सन् १९०१ में आपने उसमें एम० ए० की परीक्षा दी और प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया। पाली भाषा में एम० ए० के परीक्षा-पत्र जाँचनेवाला उस समय भारत-वर्ष में कोई न था। अतएव, जाँच के लिए, वे लन्दन-विश्वविद्यालय के पाली तथा बौद्ध-साहित्य के अध्यापक महाशय रीज डेविड्स के पास भेजे गये। सन् १९०२ में आप संस्कृत-कालेज से बदल कर कलकत्ता-प्रेसीडेन्सी कालेज में आये और वहाँ संस्कृत के सीनियर प्रोफ़ेसर बनाये गये।

महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र आचार्य्य, विद्याभूषण, एम० ए०, पी०-एच० डी०।

१९०५ के दिसम्बर महीने में घी-शी-लामा (Ghe-she Lama) महोदय भारतवर्ष में बौद्ध-तीर्थों के दर्शन के लिए आये। सरकार की आज्ञा

से विद्याभूषण सतीशचन्द्र को उनके साथ सारे देश में भ्रमण करना पड़ा। आपने लामा महोदय को बुद्ध-गया, बनारस, सारनाथ, आगरा, रावलपिंडी, तक्षशिला आदि प्राचीन स्थानों का महत्त्व तथा तत्सम्बन्धी पुरातत्त्व-विषयक बातें खूब छानबीन के साथ समझाईं। आपके सद्व्यवहार तथा व्यापक पाण्डित्य पर लामा महोदय बड़े मुग्ध हुए। उन्होंने आपकी बड़ी प्रशंसा की और प्रेमोपहार-स्वरूप एक प्रकार की रेशमी चादर प्रदान की। इसे उनके यहाँ "खाताग" कहते हैं। १९०६ ईसवी के जनवरी महीने में सरकार ने आपको महामहोपाध्याय की सम्मानास्पद उपाधि से विभूषित किया। १९०७ में आप कलकत्ता-विश्वविद्यालय के सदस्य बनाये गये। उसी वर्ष आप एशियाटिक सोसाइटी के भाषा-विज्ञान-विभाग के संयुक्त मन्त्री नियुक्त हुए। १९०७ में ही आपने बौद्ध तथा जैन-न्याय के ऊपर एक अत्यन्त गवेषणापूर्ण प्रबन्ध लिखा। अतएव, आपकी असाधारण विद्वत्ता पर मुग्ध हो कर, कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने आप को डाक्टर आफ़ फ़िलासफ़ी की महत्त्व-पूर्ण उपाधि प्रदान की।

१९०९ में बङ्गाल-सरकार ने आपको पाली तथा बौद्ध-साहित्य का, छानबीन के साथ, अध्ययन करने के लिए लङ्का तथा वेदों, हिन्दू-दर्शन-शास्त्रों एवं प्राच्य-भाषा-विज्ञान का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए काशी भेजा। लङ्का जाकर बौद्ध-गुरु सुमङ्गल महास्थविर से आपने बौद्ध धर्म्म, बौद्ध-साहित्य तथा पाली भाषा का चूड़ान्त ज्ञान प्राप्त किया। वहाँ अनुराधापुर, काण्डी, कोलम्बो आदि स्थानों में आपने अँगरेज़ी भाषा में कई विद्वत्ता-पूर्ण व्याख्यान भी दिये। उन्हें सुन कर बड़े से बड़े विद्वानों ने भी आपके पाण्डित्य की प्रशंसा की। वहाँ से लौट कर आप काशी आये और महामहोपाध्याय श्रीसुब्रह्मण्य शास्त्री से शङ्कर के अद्वैत-वाद तथा श्रुतियों का, महामहोपाध्याय श्रीभागवताचार्य्य से रामानुज-साम्प्रदायिक दर्शन-शास्त्रों का, तथा पण्डित वामाचरण आदि विद्वानों से न्यायशास्त्र का खूब अध्ययन किया। न्यायशास्त्र-सम्बन्धी शङ्कायें समय समय पर आप महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार शास्त्री से भी निवारण कराया करते थे। काशी से लौट कर आपने कलकत्ता-विश्वविद्यालय के भूतपूर्व रजिस्ट्रार तथा संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर थीबो से जर्मन-भाषा तथा पाश्चात्य दर्शन-शास्त्रों का भी अध्ययन किया।

१९१० में आप कलकत्ता-संस्कृत-कालेज के प्रधानाध्यापक बनाये गये और संस्कृत-परीक्षा-समिति के मन्त्री भी नियुक्त हुए। इसके अतिरिक्त आपको कलकत्ता-विश्वविद्यालय में पाली के व्याख्याता तथा कलकत्ता-प्रेसीडेन्सी कालेज में उसी विषय के अध्यापक का भी काम सौंपा गया। १९१२ में भारत-सरकार के नये मन्तव्य के अनुसार आपको तिब्बती भाषा में भी परीक्षा देनी पड़ी, जिसे आपने बड़ी नामवरी के साथ पास करके ५००) का पुरस्कार प्राप्त किया। इसी वर्ष आप कलकत्ता-विश्वविद्यालय के सिन्डिकेट के सदस्य हुए।

सन् १९१३ में आप बनारस में होनेवाले अखिल-भारतवर्षीय दिगम्बर-जैन-महासभा के अधिवेशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और तत्सम्बन्धी बड़ा विद्वत्ता-पूर्ण भाषण किया। इससे प्रसन्न होकर महाधिवेशन के कार्य्य-कर्त्ताओं ने आपको सिद्धान्त-महोदधि की उपाधि से विभूषित किया। अगले वर्ष जोधपुर में होनेवाले श्वेताम्बर-जैन-महासभा के वृहदधिवेशन के भी आप सभापति बनाये गये और बड़ी प्रभावशाली वक्तृता दी। उसी वर्ष हरद्वार में होनेवाले अखिल-भारतवर्षीय संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन के भी आप सभापति निर्वाचित हुए। वहाँ

पर भी आपका भाषण स्वाभाविक गम्भीरता तथा विद्वत्ता से पूर्ण हुआ।

१९२० ईसवी के प्रारम्भ में द्वितीय बार आप पर पक्षाघात का सांघातिक दौरा हुआ। इसके पहले भी एक बार आप पर इसका हलका हमला हो चुका था; पर कर्त्तव्य के सामने आपने उसकी परवा न की थी। अस्तु। आप पूर्ण नीरोग होकर पूर्ववत् उत्साह के साथ अपना कार्य्य करने लगे थे कि गत २५ अप्रेल को पूर्वोक्त रोग ने तृतीय बार पूर्ण पराक्रम से अपना वार करके इस चरित के विद्वान् नायक का अन्त ही कर डाला।

डाकृर सतीशचन्द्र विद्याभूषण बड़े सीधे सादे तथा सरल प्रकृति के व्यक्ति थे। अभिमान तो आपको छू तक न गया था। आपका चरित्र निर्मल था। आपका सारा जीवन विद्याध्ययन में ही व्यतीत हुआ। आपको एक-मात्र यही व्यसन था। आपने अपनी कर्म्मण्यता, अध्ययनशीलता तथा सच्चरित्रता के बल पर ही एक मध्य स्थितिवाले पिता के पुत्र होकर भी उच्च से उच्च पद को प्राप्त करके इतनी ख्याति प्राप्त की। आपने अँगरेज़ी, संस्कृत तथा बँगला में कई गवेषणा-पूर्ण ग्रन्थ लिखे तथा कितने ही प्राचीन सद्ग्रन्थों का सम्पादन भी किया।

आपकी मृत्यु से प्राचीन साहित्य का सूर्य्य अस्त हो गया। भारतीय विद्वत्-समाज का एक रत्न खो गया।

बालदत्त पाण्डेय

चीन में बौद्ध-धर्म।

बौद्ध-धर्म का आविर्भाव भारतवर्ष में तो हुआ, पर उसके प्रचारकों के उद्योग से वह शीघ्र ही देश-देशान्तरों में फैल गया। बौद्ध-धर्म भारतवर्ष से ही चीन में गया। वहाँ उसका प्रचार कैसे हुआ, यही, संक्षेप में, नीचे लिखा जाता है।

चीनी ग्रन्थों में लिखा है कि चीन के सम्राट् मिंग टी ने एक विचित्र स्वप्न देखा। उसने देखा कि एक विशाल स्वर्णमूर्ति उसके राज-मन्दिर में प्रवेश कर रही है। दूसरे दिन, पूछने पर, लोगों ने उससे कहा कि आपको स्वप्न में गौतम बुद्ध का दर्शन हुआ है। तब सम्राट् ने दूत भेज कर बुद्ध की मूर्ति और धर्म-ग्रन्थ मँगवाये। उसके दूतों के साथ मातङ्ग नामक एक भारतीय विद्वान् भी गया। उसने सूत्र के ४२ प्रकरणों का अनुवाद चीनी भाषा में किया। उसकी मृत्यु चीन में ही हुई। उस समय बौद्ध-धर्म के पाँच ही ग्रन्थ थे। उनमें से दशभूमिसूत्र और ललितविस्तर का अनुवाद राजा की आज्ञा से, सन् ७६ में, किया गया। तब से चीन में बौद्ध-धर्म का प्रचार बढ़ने लगा।

सन् १५० में पन—शी—को नामक एक चीनी ने भी कुछ बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों का अनुवाद अपनी भाषा में किया। सन् १७० में चितिसन ने निर्वाणसूत्र का अनुवाद किया। सन् २५० में चिमेन्ग को आचार-पद्धति-विषयक एक ग्रन्थ मिला। उसको उसी ने चीनी भाषा में लिख डाला। धर्म-रक्ष नामक एक बौद्ध श्रमण, सन् २६० में, चीन पहुँचा। लायंग नगर में वह २६५ से ३०८ ईसवी तक ठहरा रहा। १६५ बौद्ध-ग्रन्थों का अनुवाद उसने चीन की भाषा में किया। ललितविस्तर का संशोधन भी उसी से कराया गया। निर्वाण-सूत्र के चीनी अनुवाद को देख कर उसी ने उसे शुद्ध किया। सन् ३०० में चि-कुंग-मिंग नामक किसी अन्य देशीय विद्वान् ने विमल-सूत्र का अनुवाद किया। सद्धर्मपुण्डरीक नाम के ग्रन्थ का चीनी अनुवाद भी उसी की कृति है।

सन् ३२५ में चीन देश के निवासियों को बौद्ध भिक्षु होने की आज्ञा मिल गई। यह काम बौद्ध-

सिंह नामक किसी भारतीय विद्वान् के आदेश से हुआ था। तब तक वहाँ केवल भारतीय बौद्ध ही मन्दिर बनवाते थे। पर शीघ्र ही चीनवालों ने भी मन्दिर बनवाना आरम्भ किया। ३५० ईसवी में लायंग में ही पेगोडा नामक ४२ मन्दिर निर्मित हुए। उनमें से कई तो नौ नौ मञ्ज़िलों के थे। सम्राट् यओ-हिंग (३९७-४१५ ईसवी) ने भारतीय विद्वान् कुमार-जीव को बुला कर अपने यहाँ आदरपूर्वक रक्खा। धीरे धीरे ८०० बौद्ध विद्वान् एकत्र हुए। सम्राट् स्वयं उपस्थित थे। धर्म-ग्रन्थों की रचनाओं पर विचार हुआ। राजकुमार यओ-वंग और यओ-सेंग ने उनके नक़ल करने का भार उठाया। इसी समय फ़ाहियान नामक चीनी यात्री भारतवर्ष में भ्रमण करने के लिए आया। वह सन् ४१५ में चीन को लौटा। तब तक वहाँ संग और वे-वंश का आधिपत्य होगया था। उनके राजत्वकाल में बौद्ध-धर्म पर आघात होने लगे। पर उससे कुछ अधिक क्षति नहीं हुई। बौद्ध-धर्म का प्रचार बढ़ता ही गया। सन् ४६७ में वे-वंश के एक राजकुमार के आदेश से भगवान् बुद्ध की एक विशाल मूर्ति निर्मित हुई। वह ५० फुट ऊँची थी। इसके बाद पाँच ही वर्ष में वह राजकुमार बौद्ध-भिक्षु हो गया।

ईसा की छठी शताब्दी के प्रारम्भ में चीन में तीन हज़ार से अधिक भारतीय बौद्ध थे। बौद्ध-धर्म्म के उपासना-गृहों की संख्या भी १३ हज़ार हो गई थी। लिआंग का राज्य फिर बौद्ध-धर्म के लिए अनुकूल होगया। एक राजा ने बौद्ध-धर्म में दीक्षित होकर स्वयं कुछ काल तक धर्मोपदेश किया। उसका शासन-काल ५०२ से ५५० ईसवी तक था। २६ वर्ष राज्य करने के बाद वह बौद्ध-भिक्षु हो गया। बोधिधर्म—जिसकी चीन में बड़ी ख्याति है—सन् ५२६ में कैन्टन नगर पहुँचा। ५१८ ईसवी में संगयून नामक एक विद्वान् भारतवर्ष आया। वह तीन वर्ष के बाद लौटा। वह यहाँ से १७५ ग्रन्थ ले गया। तंग-वंश का राजत्व-काल ६२०—९०४ ईसवी तक था। उसके प्रथम नरेश के समय में तो बौद्ध-धर्म के प्रचार में बाधा पड़ी। पर शीघ्र ही वह दूर हो गई। दूसरे नरेश के समय में ही हुएन-संग नामक प्रसिद्ध यात्री ने भारत-यात्रा की।

आठवीं शताब्दी के आरम्भ में कनफ़्यूशियस के चलाये हुए धर्म्म के अनुयायियों के प्रयत्न से १२,००० बौद्ध-भिक्षु, बौद्ध-धर्म छोड़ कर, सांसारिक कर्मों में लिप्त हो गये। सन् ७६० ईसवी में सुसंग नामक राजा के राज्य प्राप्त करने पर बौद्ध-धर्म का फिर प्रचार बढ़ा। सुसंग के बाद टे संग राज्यासन पर अधिष्ठित हुआ। वह तो बौद्ध-धर्म का दृढ़ भक्त निकला। सम्राट् हीनसंग ने ८१९ ईसवी में बुद्धदेव की एक अस्थि को खूब समारोह के साथ प्रतिष्ठित किया। पर ८४५ ईसवी में बौद्ध-धर्म पर फिर आघात हुए। वुत्संग नरेश की आज्ञा से ४,६०० बौद्ध-मठ नष्ट कर दिये गये और ४०,००० छोटे छोटे मठ मिट्टी में मिला दिये गये। उनके लिए जो ज़मीन दी गई थी वह भी ज़ब्त कर ली गई। पर वुत्संग के बाद फिर बौद्ध-धर्म का काम शान्तिपूर्वक चलता रहा।

सम्राट् ईतिसंग बौद्ध-धर्म का अनुयायी हुआ। वह अपने प्रासाद में बौद्ध-भिक्षुओं को बुला कर धर्मोपदेश सुना करता था। उसने संस्कृत का भी अध्ययन किया और संस्कृत में ही मन्त्रोच्चारण किया करता था।

१०३५ ईसवी में जिन-संग ने ५० विद्यार्थियों को संस्कृत का ज्ञानोपार्जन करने के लिए नियुक्त किया। मंगोल-सम्राट् कुबलीख़ाँ भी बौद्ध-धर्म का पक्षपाती था।

चीनी यात्री बराबर भारतवर्ष आया करते थे। सन् ९६५ ईसवी में एक बौद्ध विद्वान् ताड़पत्र के ५० ग्रन्थ भारतवर्ष से ले गया। उसके दूसरे ही

साल १५७ चीनी यात्री आये। तो यू नामक एक चीनी, फ़ाहियान का विवरण पढ़ कर, इतना उत्साहित हुआ कि वह स्वयं भारत-यात्रा के लिए निकल पड़ा।

मिंग-वंश का प्रभुत्व होने पर पहले तो बौद्ध-धर्म का काम शान्तिपूर्वक होता रहा। पर १४५० ईसवी में यह क़ानून बनाया गया कि किसी भी बौद्ध-मठ के पास ६,००० वर्ग फुट से अधिक ज़मीन न रहे। १५३० ईसवी में एक बार फिर बौद्ध-धर्म पर अत्याचार हुए। पर विशेष हानि नहीं हुई। इसके बाद ईसाई धर्म्म-प्रचारक चीन पहुँचे। उनके उद्योग से भी वहाँ विशेष परिवर्तन न हुआ। मञ्चूवंश के सम्राट् सभी मतों पर समान-दृष्टि रखते थे। १६४४ ईसवी में शुन ची नामक नरेश को बौद्ध-धर्म पर प्रेम हुआ। पर उसके पुत्र को उससे घृणा हो गई। उसने चारों ओर यह प्रचारित किया कि बौद्ध अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए लोगों से कपट करते हैं। उनके इस कपट-जाल से सब को बचना चाहिए। आज कल भी चीन में, बौद्ध-धर्म के विषय में, कितने ही लोगों का ख़याल ऐसा ही है। पर अधिकांश मनुष्य अभी तक उसी धर्म के अनुयायी हैं।

आस्तिक का नम्र निवेदन।

जनवरी १९२० की सरस्वती में "नास्तिक का तर्क" शीर्षक एक लेख निकला है। लेख तर्क-सङ्गत, युक्ति-युक्त और विद्वत्ता-पूर्ण है। उससे लेखक की कल्पना-गति सूचित होती है। क्योंकि तर्क प्रायः कल्पना से ही उत्पन्न होता है। ईश्वर है या नहीं, यह जानने के लिए आज तक अनेकों ने प्रयत्न किये हैं। उनमें से बहुत निष्फल हुए और कुछ सफल। निष्फल मनुष्यों में से यदि कोई विचक्षण हुआ तो उसने तर्क द्वारा ईश्वर के अस्तित्व का ही खण्डन किया; और जो सफल हुए उन्होंने जिन विधियों से उसे पाया उनका, मनुष्यों में, प्रचार किया। ऐसे ही मनुष्य इस संसार में द्रष्टा, ऋषि और ज्ञानी समझे जाते हैं। यदि कोई मनुष्य ईश्वर को जानना चाहता है तो उसे उचित है कि वह उन ऋषि-प्रदर्शित विधियों का अनुसरण करे। अन्यथा केवल विवाद तथा तर्क के द्वारा किसी वस्तु का अस्तित्व और उसके गुण सिद्ध करना असम्भव है। जैसे रसायन-विद्या को अच्छी तरह समझने के लिए कुछ क्रियायें करनी पड़ती हैं, वैसे ही आत्म-विद्या तथा ईश्वर की प्राप्ति के लिए भी क्रिया की आवश्यकता है, जिसे साधना कहते हैं।

यदि हम किसी आस्तिक से पूछें कि ईश्वर कैसा है तो वह केवल उसके कुछ गुण बतला देता है। कुछ गुणों को सुन लेने और उनके ऊपर विचार करने से वस्तु का यथार्थ अनुभव नहीं होता, क्योंकि वस्तु और उसके गुण दोनों भिन्न भिन्न हैं। एक नहीं। अतएव जब तक वस्तु का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता तब तक वह ठीक ठीक समझ में नहीं आती। यही बात ईश्वर के सम्बन्ध में भी है। क्योंकि वह लक्ष्यांश है और मनन से उसका साक्षात्कार होता है। तभी सब बातें समझ में आती हैं, अन्यथा यह असम्भव है कि लक्ष्यांश वाच्यांश से बतलाया जा सके।

लेखक ने सुना है कि विना योग-सिद्धि के ईश्वर दिखलाई नहीं दे सकता। योग की अन्तिम अवस्था समाधि है और समाधि के लिए सदेहता की आवश्यकता है। इस पर दो प्रश्न उठते हैं—यदि ईश्वर निरवयव है तो सावयव से दृश्य कैसे? यदि वह निराकार है तो उसके दर्शन के लिए सदेहता की आवश्यकता क्यों? इनका उत्तर यह है कि जैसे विना दुःख के सुख का अनुभव नहीं होता, विना अन्धकार

के प्रकाश का बोध नहीं होता, उसी प्रकार बिना सावयव के निरवयव का ज्ञान नहीं होता।

लेखक की सम्भावना है कि समाधि-अवस्था में जीवात्मा शायद शरीर से पृथक् हो जाता हो। पर ऐसा कभी नहीं होता। उनकी यह सम्भावना ग़लत है। समाधि-अवस्था में आत्मा शरीर को छोड़ कर कहीं नहीं जाता; केवल मन और बुद्धि की अवस्था बदल जाती है और मनुष्य अपने शरीर को भूल सा जाता है। घोर निद्रा के समय आत्मा शरीर का परित्याग नहीं करता, उसमें भी केवल मन और बुद्धि की अवस्था बदल जाती है। निद्रा के समय यद्यपि मनुष्य को अपने शरीर की कुछ भी ख़बर नहीं रहती, तथापि वह निद्रा का आनन्दोपभोग अवश्य करता है। इसका वर्णन शब्दों से नहीं किया जा सकता। वही हाल समाधि-अवस्था का है। परन्तु समाधि का आनन्द निद्रा के आनन्द से अत्यन्त अधिक है। इस पर शङ्का हो सकती है कि, सम्भव है, समाधि और निद्रा एक ही चीज़ हों। इसका समाधान यह है कि समाधि और निद्रा दोनों क्रियायें हैं। परन्तु दोनों का फल एक सा नहीं, इसलिए समाधि और निद्रा एक नहीं। निद्रा-भङ्ग होने पर मनुष्य जैसा पहले था वैसा ही बना रहता है; परन्तु समाधि छूटने पर मनुष्य बिलकुल बदल जाता है; उसमें साधुत्व आजाता है; उसके वचनों में अपूर्व शक्ति आ जाती है। अतएव समाधि और निद्रा एक नहीं। इस प्रकार आत्मा के जाने आने का प्रश्न ही समूल उड़ जाता है।

ईश्वर धर्म-जगत् का परिग्रह है। जो धारण किया जाय वह धर्म है। धारणायें मन में होती हैं और वहीं वें लीन भी हो जाती हैं। इसलिए धर्म-जगत् मन हुआ। परन्तु इन धारणाओं का ग्रहण संज्ञा-शक्ति करती है। यह संज्ञा-शक्ति ईश्वर है (जैसा आगे बतलाया जायगा) इसलिए ईश्वर धर्म-जगत् का परिग्रह है। संज्ञा-शक्ति के विषय में मनुष्य कु भी सोच नहीं सकता और न उसका कोई चित्र ही मन में खींच सकता है। इसीलिए ईश्वर चिन्त्य नहीं, अचिन्त्य है।

ईश्वर के गुणों के विषय में लेखक महोदय की उक्ति सुनिए। आप कहते हैं, भगवद्गीता में लिखा है कि जीवात्मा को न आग जला सकती है, न वायु सुखा सकती है और न पानी गीला कर सकता है—अर्थात् पञ्च महाभूतों का असर उस पर नहीं पड़ता। इसलिए उसे पञ्चमहाभूतों का बोध नहीं हो सकता। अतएव वह ज्ञानशून्य है; और ईश्वर जीवात्मा से भी सूक्ष्म है, इसलिए वह भी ज्ञानशून्य हुआ।

इस तर्क पर हमारी प्रार्थना है कि किसी वस्तु का रूप न जानते हुए यदि उसके नाम ही से उस पर विचार किया जाय तो केवल भ्रम में ही भटकना होता है। बिना प्रतीति, केवल अनुमान से निश्चयात्मक ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए जीवात्मा तथा ईश्वर का रूप जानना चाहिए। ज्ञान कहते हैं जानने को। देह-रक्षा का उपाय यही है। सर्प जान कर डसने आता है और प्राणी जान कर भागता है। अर्थात् संज्ञा दोनों में है। सम्पूर्ण जीवों से यह ज्ञान ही काम करा रहा है। यह संज्ञा-शक्ति सबमें एक ही है। जिस प्रकार जल सबके लिए शीतल है, अग्नि सबके लिए दाहक है, उसी प्रकार अन्तःकरण की संज्ञा सबके लिए एक ही है। अच्छा लगना या बुरा लगना देह-स्वभाव के कारण है; परन्तु यह बात संज्ञा-शक्ति ही के योग से मालूम होती है। कहीं वह न्यून है, कहीं अधिक है। पर है वह अवश्य। कोई भी जङ्गम जीव संज्ञा-रहित नहीं। प्राणी संज्ञा-रहित हुआ कि बस वह मर जाता है। इसी संज्ञा-शक्ति का दूसरा नाम चेतना-शक्ति है। इसके अनेक नाम हैं। कोई इसे पुरुष-नाम से पुकारते हैं; जैसे परमात्मा, ईश्वर, ज्ञानस्वरूप, जीवात्मा, अन्तरात्मा, देही, अलिप्त, कुटस्थ इत्यादि। कोई इसे

स्त्री-नाम देते हैं; जैसे जगदीश्वरी, मूलमाया, त्रैलोक्यजननी, चेतनाशक्ति, जगज्ज्योति इत्यादि। और कोई नपुंसक नाम से व्यक्त करते हैं; जैसे ज्ञान, अन्तःकरण, चैतन्य, चित्त, मैंपन तूपन, सर्वशयन इत्यादि। ऐसे नाम उसके बहुत हैं, पर वह अन्तरात्मा एक ही है और वही सबका प्रेरक है। वह ज्ञात होता है, पर दृग्गोचर नहीं; उसके विषय में प्रतीति आती है, पर उसका भास नहीं होता। वह शरीर में है, पर मिलता नहीं; वह पास होकर भी दूर है। वह अनेक दृष्टियों से देखता है, अनेक रसनाओं से चखता है और अनेक मनों से परखता है। कान में वैठ कर शब्द सुनता है और त्वचा से शीत, उष्णता इत्यादि जानता है। इसीलिए कवि कहता है—"आनन रहित सकल रस-भोगी। विनु वाणी वक्ता बड़ योगी"। और उपनिषत्कार भी इसी का वर्णन करता है—"अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुश्च शृणोत्यकर्णः"।

इसी प्रकार वह सबके मन की बात जानता है, अतएव वह सर्वज्ञ है। वह सबमें है और सबसे निराला है। उसकी अगाध लीला वही जानता है। इस संसार में दो वस्तुयें हैं–जड़ और चेतन। जड़ हुए पञ्चभूत और चेतन अन्तरात्मा। परन्तु उत्तम पुरुष इन दोनों से अलग है; वह अनिर्वचनीय, निष्क्रिय, निष्प्रपञ्च, निराकार और निर्विकार है। उसका साकार रूप अन्तरात्मा है।

जब ईश्वर ज्ञानस्वरूप है तब उसे मनुष्य के भूत, भविष्य और वर्तमान कर्मों का ज्ञान अवश्य है। मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ कर्म करती हैं। उनके फल भी वही भोगती हैं और फल के अनुसार दुःख-सुख का अनुभव करती हैं। परन्तु वह ज्ञानस्वरूप ज्यों का त्यों बना रहता है। उसको न दुख होता और न सुख। उसके प्रकाश से मन को दुख और सुख दोनों होते हैं। जैसे सूर्य के प्रकाश में व्यभिचारी व्यभिचार करता है और दानी दान करता है। परन्तु सूर्य का न तो कर्ता से कोई मतलब है और न उसके कर्मों और फलों से। इसी प्रकार ज्ञानस्वरूप के आधार पर मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ अपना अपना कार्य कर रही हैं और तदनुसार फल भी पा रही हैं। क्योंकि कार्य-कारण-सिद्धान्त के अनुसार कर्म और फल एक हैं। कर्म के फल को कोई भी नहीं टाल सकता। मनुष्य चाहे कितना भी प्रयत्न करे पर उसे अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। इसलिए कहावत है, "जैसी हो भवितव्यता तैसी उपजै बुद्धि।"

पूर्व पक्ष यह है कि यदि ईश्वर निष्क्रिय है तो सृष्टि आपसे आप कैसे बन गई? यदि वह विश्व का उत्पादक है तो विकार-योग्य है, इसलिए वह मुक्त नहीं। इस पर निवेदन है कि जैसे सूर्य से प्रकाश और ताप निकलता है और वही प्रकाश और ताप जीव, जन्तु, वनस्पति आदि के मुख्य उत्पादक हैं, वैसे ही उस निराकार, निर्विकार, निष्क्रिय से शक्ति निकलती है जो सृष्टि को उत्पन्न करती है। यद्यपि वनस्पत्यादि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रधान साधन सूर्य ही है, तथापि सूर्य स्वयं इस पृथ्वी पर आकर उनको नहीं बनाता। वह अलग रहता है और उसका ताप पृथ्वी और वायु में प्रवेश कर के वनस्पत्यादि को उत्पन्न करता है। इसी प्रकार वह निराकार, निर्विकार ईश्वर सबसे अलग रहता है। केवल उसकी शक्ति ही सर्वव्यापक हो कर जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार किया करती है। वह निराकार, निर्विकार, परब्रह्म मुक्त और निश्चल बना रहता है। यदि कोई कहे कि उस निश्चल से यह चञ्चल शक्ति कैसे पैदा होती है तो इस प्रश्न पर प्रश्न हो सकता है कि काले कोयले से रङ्ग विरङ्गे रङ्ग कैसे निकल आते हैं?

लेखक महाशय कर्म और विपाक का पार्थक्य-साधन असम्भव सिद्ध करके यह प्रश्न करते हैं–"क्या कोई कभी कह सकता है कि शङ्कर और नेपोलियन

अपने पूर्व जन्मों के कर्मों का फल भोग कर बड़े हो गये, आत्मबल या स्वतः परिश्रम से नहीं ?" सुनिए। किसी का बड़ा या छोटा होना उसके मन और इन्द्रियों के ऊपर अवलम्बित है। शङ्कर, नेपोलियन इत्यादि सभी अपने अपने स्वतः परिश्रम अर्थात् मन और इन्द्रियों के कर्मानुसार छोटे बड़े हुए हैं। चाहे वे कर्म इस जन्म के हों चाहे पूर्व-जन्म के; कर्म स्वतः परिश्रम ही से होते हैं। पूर्व-जन्म के कर्मों का फल भी अवश्य मिलता है। संसार में कर्म कई प्रकार के होते हैं। किसी का फल तत्काल मिल जाता है, किसी का कुछ समय बाद, और किसी का बहुत समय बाद। यदि कर्म और फल में बहुत समय का अन्तर पड़ जाय तो यह न समझना चाहिए कि कर्म और फल का सम्बन्ध टूट गया। कर्म का सिलसिला तो प्रकृति में जारी ही रहता है, जब तक वह फल में परिणत न हो जाय। मनुष्य चाहे इस सिलसिले को जाने या न जाने, चाहे वह अपने कर्म को बिलकुल भूल जाय, तो भी फल उसके पास अवश्य पहुँच जाता है। इसलिए यह असम्भव नहीं कि मनुष्य को पूर्व-जन्म के कर्मों का फल इस जन्म में मिल सकता है।

लेखक का कथन है कि राम-नाम जपना, कीर्तिगान और पूजा-पाठ करना केवल चाटुवाद या भिख-मँगापन समझा जा सकता है और परमात्मा को दयालु कह कर भक्त स्वार्थ या परार्थ सिद्ध कर लेता है। बात ऐसी नहीं। भक्त वह है जो ईश्वर से विभक्त न हो। वह ऊपर से तो साधारण मनुष्य के समान दिखाई देता है, परन्तु भीतर से उसका मन ईश्वर से अलग नहीं होता। यदि उसका मन कभी उधर से हट कर संसार में लगता है तो फिर वह राम नाम जप कर, कीर्तन अथवा पूजा-पाठ करके, ईश्वर में लग जाता है। ये क्रियायें केवल मन को वशीभूत करने के लिए हैं, न कि चाटुवाद या भिखमँगापन की सूचक। वह स्वार्थ, परार्थ कुछ नहीं चाहता; केवल यही चाहता है कि सदा सर्वव्यापक परमात्मा में लीन रहूँ। वह केवल परमात्मा के प्रेम के लिए प्रेम करता है। निष्काम भजन का फल अद्भुत है—उससे असीम सामर्थ्य बढ़ता है। फिर ऐसी दशा में फलों की क्या गणना!

सच तो यह है कि मनुष्य-संसार में मन एक अपूर्व वस्तु है। मन जीवन का व्यवस्थापक है, भाग्य का विधाता है। उसी से मनुष्य का उत्थान-पतन होता है। "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"। मन के एक ओर है संसार और दूसरी ओर है परब्रह्म। यदि संसार सत्य है तो परब्रह्म भी सत्य है। संसार है चञ्चल अर्थात् अशान्त और परब्रह्म है निश्चल अर्थात् शान्त। अब इन दो में से जो जिस को प्रिय है वह उसको अपने हृदय में रखता है और उसी में आनन्द पाता है। क्योंकि आस्तिक-नास्तिक दोनों संसार ही में होते हैं, परन्तु नास्तिक भी अन्तकाल में ईश्वर की भावना कुछ न कुछ कर ही लेता है। सुना है, हक्सले ने अपनी मृत्युशय्या पर कहा था कि यद्यपि मैंने अभी तक ईश्वर को नहीं पाया तो भी यदि ईश्वर है तो वह मेरा यह कष्ट दूर करे।

इस संसार में मनुष्य को जो कष्ट होते हैं वे केवल जड़ वस्तुओं के संयोग और वियोग से उत्पन्न होते हैं। जब तक हम क्षणभङ्गुर जड़ पदार्थों से प्रेम करते हैं तब तक हम दुख और सुख की लहरों में डूबते उतराते हैं, परन्तु जब हम चेतना-शक्ति अर्थात् अन्तरात्मा से प्रेम करते हैं तब हम इस संयोग और वियोग के दुख-सुख से छूट जाते हैं। क्योंकि हमारा और अन्तरात्मा का सम्बन्ध अखण्डित बना रहता है। जब तक अन्तरात्मा शरीर में रहता है तब तक हम भी शरीर में रहते हैं और जब अन्तरात्मा शरीर को छोड़ देता है तब हम भी शरीर

को छोड़ देते हैं। इसलिए यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहता है, यदि वह दुःख-सुख के बन्धन से मुक्त होना चाहता है तो उसे उचित है कि वह अपने मन को जड़ पदार्थों से हटा कर आत्मा में लगाये और उससे प्रेम करे। वस्तुतः मनुष्य अन्तरात्मा ही को प्यार करता है, क्योंकि जब तक आत्मा किसी शरीर में बना रहता है तब तक मनुष्य उस शरीर को प्यार किया करता है। ज्योंही आत्मा शरीर को छोड़ता है वैसे ही मनुष्य का मन उस मृत शरीर (जड़ पदार्थ) से हट जाता है और उस पर कुछ प्रेम नहीं रह जाता। वह उसको जला कर ख़ाक कर डालता है अथवा ज़मीन में गाड़ देता है; क्योंकि उसमें अब वह वस्तु न रही जिस पर उसका प्रेम था।

इसके अतिरिक्त यह सभी मानते हैं कि मनुष्य के अन्तर्गत विचार ही उसके चरित्र और जीवन को बनाते हैं। इस संसार में अधिकतर मनुष्य जड़ तथा स्थूल का विचार किया करते हैं। कुछ ऐसे हैं जो सूक्ष्म तथा चेतनाशक्ति में ही मग्न रहते हैं। पर कोई कोई ऐसे भी हैं जो निर्गुण, निर्विकार का ध्यान करते हैं। इन विचारों के अनुसार उनको फल भी वैसे ही मिलते हैं। अतः जड़ पदार्थ में लिप्त मनुष्य जड़ता को पाते हैं। चेतनाशक्ति में निरत रहनेवाले चैतन्य को प्राप्त करते हैं। परन्तु जो निर्गुण का भजन करते हैं वे स्वयं निर्गुण हो जाते हैं। निर्गुण में अनन्य प्रेम रखने से वे धन्य हो जाते हैं। निराकार परमात्मा का अनुभव करने से देहाभिमान नहीं रहता, सन्देह बिलकुल नष्ट हो जाता है और यह निश्चय हो जाता है कि हम वही हैं। इस प्रकार आत्मज्ञान से सर्वज्ञता प्राप्त होती है; एकदेशीयता बिलकुल जाती रहती है। परन्तु जो मनुष्य सबकी खोज करना जानता है, पर अपने को नहीं पहचानता उस ज्ञानी की वृत्ति एकदेशीय रहती है, व्यापक नहीं होती।

हरनारायण बाथम, एम० ए०

भव्य भारत।

(१)

तेरे रजः-कणों से ईश्वर भी निज देह बनाता है
अति कृतज्ञ हो वह तेरे गुण अमित मुखों से गाता है।
देह मिटा कर फिर तुझ में ही उनको कभी मिलाता है
इसीलिए जगदीश्वर से तू भिन्न न माना जाता है॥
जय जय भारत पुण्य-निधान
इस त्रिभुवन में अन्य देश क्या तेरे सम पावेगा मान?

(२)

स्वर्ग-लोक से आकर गङ्गा तेरे पद को धोती है
तेरी पूजा करने ही से वह भी पूजित होती है।
तेरे चरणोदक को हर ने अपने शीश चढ़ाया है
विष्णु-चरण-सम तव चरणों का शुभ माहात्म्य बढ़ाया है॥
स्वर्ग-सेव्य है जय जय देश
तेरे दास दुखी क्यों होंगे कुटिल जनों से पाकर क्लेश॥

(३)

तुझे सुधाकर सुधाकरों से निशि में सींचा करता है
दिवा दिवाकर तेरे रस को सुख से खींचा करता है।
मेघों द्वारा तुझे इन्द्र भी चार मास नहलाता है
पङ्खे झल कर तुझे पवन भी जन-पालक कहलाता है॥
सुख-सागर है जय जय देश
किसको वश में करे न तेरा मोहन-मन्त्र तुल्य वर वेश?

(४)

दुर्गम दुर्ग बने हैं तेरे विन्ध्य हिमालय अचल अभी
अविकल खाईं है वारिधि की तनिक न होना विकल कभी।
अगणित नर-कुञ्जर-सिंहों से सेवित हैं, कर सोच नहीं
तुझको त्रास दिखा सकते हैं कभी कहीं नर पोच नहीं॥
जय भारत प्राणों के प्राण।
तेरा क्यों कल्याण न होगा, तू तो है त्रिभुवन का त्राण॥

(५)

तेरा वक्ष विशाल बना है वज्रोपम रजताचल का
तेरे सिर पर मुकुट विराजित है अनुपम कनकाचल का।
ज्वालामुखी-ब्याज से तू निज भीषण जीभ दिखाता है
तेरे लू के रूप उसासों से न कौन कँप जाता है?
जय भारत-भूषण बल का
तू ही कालानल है भूतल ऊपर सारे खल-दल का॥

(६)

ब्रह्म-विनिर्मित वेद-मुखों से मिलता है उपदेश तुझे
इसी लिए तू ज्ञान-गेह है चिन्ता कैसी देश तुझे ?.
तेरे बल पाकर असुरों का सुरपति ने है दमन किया
फिर भी क्यों अपने को निर्बल तूने मन में समझ लिया ?
जय भारत विजयी बलवान
भ्रम को छोड़ पूर्व-वृत्तों का भली भाँति तू कर ले ध्यान ॥

(७)

तेरी भुक्ति मुक्ति से बढ़ कर सभी मानते हैं मानी
उसे प्राप्त करने की निश्चित युक्ति जानते हैं ज्ञानी।
मुक्तिनाथ भी प्रेम-बद्ध हो आ गिरता है तेरी गोद
तेरे बाधक के शासन का खेल खेल कर पाता मोद ॥
जय जय भारत प्रेमागार
क्यों हताश है, शीघ्र करेगा प्रेम-पिता तेरा उद्धार ॥

रामचरित उपाध्याय

बोलपुर का शान्तिनिकेतन-ब्रह्मचर्याश्रम।

जगद्विख्यात कवि श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर का नये सिरे से परिचय देने की आवश्यकता नहीं। सरस्वती के अनेक पाठकों ने उनके बोलपुरवाले शान्तिनिकेतन का नाम भी सुना होगा। सौभाग्य से हमें उसके दर्शन का सुयोग मिला था। इसलिए, यह हम उसी का कुछ वर्णन करते हैं।

बोलपुर कलकत्ते से कोई १०० मील पर, वायव्य दिशा में, वीरभूम ज़िले में एक छोटा सा गाँव है। किन्तु ईस्ट इंडियन रेलवे का स्टेशन होने के कारण आज-कल तरक़्क़ी पर है। बस्ती से डेढ़ मील के अन्तर पर शान्तिनिकेतन-ब्रह्मचर्याश्रम स्थित है। उसे आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व कविवर रवीन्द्रनाथ के पिता, स्वर्गीय देवेन्द्रनाथ ठाकुर, ने स्थापित किया था। जिस भूमि पर आश्रम है वह पहले रायपुर* के सिंह-परिवार के अधिकार में थी। उसके प्राकृतिक सौन्दर्य और नीरवता-पूर्ण शान्ति का प्रभाव एकान्त-प्रिय देवेन्द्रनाथ महोदय के चित्त पर इतना पड़ा कि उन्होंने वहाँ एक आश्रम स्थापित करने का निश्चय किया और उस भूमि को प्राप्त कर लिया। आश्रम स्थापित हुआ। जीवन की अन्तिम घड़ी तक आप यहीं उपासना और चिन्तन में मग्न रहे। शतपर्णी वृक्षों का लता-वल्ली-वेष्टित एक कुञ्ज आपको बहुत प्रिय था। प्रायः वहीं बैठ कर आप आत्म-चिन्तन किया करते थे। यहाँ सङ्गमर्मर का एक आसन पड़ा है और एक खड़ी शिला पर बँगला अक्षरों में खुदा है—

> तिनि आमार प्राणेर आराम
>
> मनेर आनन्द
>
> आत्मार शान्ति।

कोई २० वर्ष पहले, सन् १९०१ में, कविवर रवीन्द्रनाथ ने आश्रम में शिक्षा-दान का प्रबन्ध करके उसे बिलकुल ही नया रूप प्रदान कर दिया। इससे, आश्रम की गभीर शान्ति में बाधा पड़ी हो या न पड़ी हो, पर उसकी उपयोगिता अवश्य बढ़ गई। उन्होंने सोचा, इस अबाध शान्ति का अकेले भोग करना एक तरह का स्वार्थ है। देश और समाज को उससे वञ्चित न रखना चाहिए। सर्वथा नीरवता से घिरे रहने से काम न चलेगा। हमें कर्म-क्षेत्र के लिए भी तैयार होना पड़ेगा। मतलब यह कि उन्होंने आँधी-पानी में छिपी हुई शान्ति को अपना लक्ष्य बनाया।

हम लोग हवड़े से ६ बजे शाम को गाड़ी पर सवार हुए और ११ बजे रात के लगभग बोल र पहुँचे। कई कारणों से हमने वह रात स्टेशन के वेटिङ्गरूम में ही काटी। प्रातःकाल हम आश्रम के लिए चल पड़े। हमने वहाँ पहुँच कर देखा कि आश्रम किञ्चित् उच्च रेतीली समभूमि पर स्थित है। चारों ओर ताल, शाल, मधूक और देवदारु के विशाल वृक्ष, कोई मस्तक ऊँचा किये और कोई अतिथियों के स्वागत के लिए बाहु फैलाये, खड़े हैं। मध्य में सघन-पत्रावलि-विशिष्ट एक आम्र-वाटिका तथा लता-गुल्म से आच्छादित कई कुञ्ज-निकुञ्ज भी हैं। बीच बीच में सफ़ेद फूलों की चादर ओढ़े शेफालिका के वृक्ष झूम रहे हैं। वन्य-कुसुमों की सुगन्ध से लदी हुई त्रिविध

---

* बोलपुर से रायपुर ३।४ मील है। लार्ड एस० पी० सिंह यहीं के हैं।

समीर वाटिका के पेड़ों, टहनियों और फूल-पत्तों से छेड़छाड़ करती हुई, एक असावधान युवती की तरह, डोल रही है। रङ्ग-बिरङ्गे पक्षियों के कलरव से वाटिका गूँज सी रही है। यदि किसी आम्र वृक्ष में छिपी हुई एक कोयल पुकार उठती है तो अन्य वृक्ष पर से दूसरी उसका जवाब देती है। ऐसा जान पड़ा कि प्रकृति-देवी ने इस स्थान को अपनी लीला-भूमि ही बना रक्खा है। वाटिका के बीच बीच छोटे छोटे किन्तु साफ़-सुथरे मकान हैं। उनमें अध्यापक और विद्यार्थी रहते हैं। आश्रम में पहुँचने पर सबसे पहले वहाँ के एक अध्यापक से हमारी भेंट हुई। आपने, हँसते हुए, हम लोगों को अभिवादन करके कुशल-प्रश्न आदि पूछा। उनके प्रथम सम्भाषण से ही हमें ऐसा जान पड़ा, मानों हम किसी पुराने मित्र से मिल रहे हैं। आपने तुरन्त एक विद्यार्थी को हमारे साथ करके हमें अतिथि-शाला में पहुँचा आने और हमारे लिए सब प्रकार का सुभीता कर देने के लिए कह दिया।

अतिथि-शाला में लकड़ी के दो-तीन तख़्ते पड़े थे। इन पर बिछौने भी बिछे थे। एक कोने में पानी का घड़ा रक्खा था। प्रबन्ध ख़ासा था। फिर भी, आश्रम के विद्यार्थी और अध्यापक, हम लोगों की आवश्यकतायें पूर्ण करने के लिए, हर घड़ी प्रस्तुत रहते थे। हमने यहाँ एक बड़ी भारी विशेषता देखी जो अन्यत्र कम पाई जाती है; और वह है आश्रम-वासियों का सरलतापूर्ण विनम्र भाव। साधारण सेवक से लेकर आश्रम के बड़े से बड़े अधिष्ठाता तक तथा ६ वर्ष के शिशु-विद्यार्थी से लेकर प्रिन्सिपल तक सबको हमने नम्रता के मूर्तिमन्तरूप में पाया। इसे हम आश्रम के पवित्र प्रभाव के सिवा और क्या कहें?

हम लोग इधर नित्य-क्रिया करने में लगे और उधर, आश्रम के मन्दिर में, प्रार्थना की घण्टी बजने लगी। आज बुधवार, यहाँ का अवकाश-दिवस, है। प्रति बुधवार को मन्दिर में प्रार्थना होती है। कविवर रवीन्द्रनाथ स्वयं प्रार्थना के गीत गाते हैं। देखिए, ये सरल सुन्दर सुकुमार शिशुओं के दल के दल किस तरह उछलते कूदते मन्दिर की ओर दौड़े चले जा रहे हैं। इनके मुखों पर प्रसन्नता की झलक है! अध्यापक लोग भी लम्बे लम्बे डग बढ़ाते उधर ही जा रहे हैं। लीजिए, वीणा और मृदङ्ग की तरल स्वर-लहरी, प्रार्थना के मधुर-राग में मिल कर, विद्युद्वेग से वायु-मण्डल में लहरा उठी। हम लोगों को ऐसा जान पड़ा कि हम प्राचीन भारत के किसी ऋषि के आश्रम में आ गये हैं।

नित्य-क्रिया से छुट्टी पाकर हम आश्रम के पुस्तकालय में गये। उसके एक अंश में, आश्रम के संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष, पण्डित विधुशेखर शास्त्री का आफ़िस है। उनके पास हम अभी बैठे ही थे कि पिछवाड़े की ओर से कविवर आते देख पड़े। उनकी वह सौम्य मूर्ति, वह दिव्य मुखमण्डल, वह प्रशस्त ललाट अभी तक हमारे नेत्र-पटलों पर ज्यों का त्यों अङ्कित है। हमने उनके चरण छुए। शास्त्रीजी ने हमारा परिचय कराया। कविवर ने थोड़ा सा कथोपकथन करके, अपनी सुधा-स्निग्ध-वाणी से, हमें आप्यायित कर दिया। हमने अपने जीवन को धन्य माना।

आश्रम के अध्यापकों और टगोर-परिवार के दर्शन-सम्भाषण में वह दिन बड़ी जल्दी बीत गया। सन्ध्या हुई। दिन भर के थके-माँदे सूर्य्यदेव ने, ताल, शाल और खर्जूर के वृक्षों की चोटियों पर अपनी किरणों का सुनहला मुकुट रख कर, संसार से बिदा ली। दिशायें राग-रञ्जित हो उठीं। आश्रम ने एक नया रूप धारण कर लिया। ऊपर विहगों का कल-कूजन और नीचे हँस-मुख शिशुओं की कल-क्रीड़ा। अन्धकार के परदे में धीरे धीरे सन्ध्या छिप चली। इधर पेड़ों के सघन कुञ्जों में से विद्युद्-दीप-समुदाय, नीलाकाश में नक्षत्रों की भाँति, सहसा प्रकाशित हो उठा। इस समय भी आश्रम के विद्यार्थी, झुण्ड के झुण्ड, वाटिका में टहल रहे थे। कोई मधुर-स्वर से अपने विद्यालय का गीत गाता था। कोई अपने सहपाठियों से किसी पाठ्य विषय की चर्चा करता था।

ब्यालू के बाद हम बिस्तरे पर जा लेटे। आश्रम की नीरव शान्ति का आश्रय पाकर निद्रादेवी चुपके से चली आई। उसके अङ्क में हम शीघ्र ही बे-ख़बर हो गये। आधी से अधिक रात बीत गई थी जब हमारी आँख खुली। हमने बाहर आकर देखा, आकाश में चन्द्रमा हँस रहा

है। आश्रम के पेड़-पत्ते स्निग्ध ज्योत्स्ना में स्नान कर रहे हैं। चारों ओर गभीर शान्ति छाई हुई है। निद्राभिभूत आश्रम, निस्तब्ध निश्चल निष्पन्द भाव से, मानों समाधि में स्थित है। हम फिर सो रहे।

तड़के ६ बजे उठ कर देखते हैं तो शान्ति-निकेतन में सजीव कर्म-स्रोत बह निकला है। आश्रम की दूसरी घण्टी बज चुकी है। पहली घण्टी बजने पर लड़के, ५ बजे ही उठ कर, व्यायाम आदि से निवृत्त हो चुके हैं। यह समय स्नान करने का है। स्नानागार में लड़कों की भीड़ है। कोई स्नान कर रहा है, कोई नहा धो कर कुरता पहने, स्वच्छ चादर ओढ़े, आश्रम की ओर आ रहा है। अब सब लड़के स्नान कर चुके। आइए, इनके पीछे हो लें और इनकी दिन-चर्या देखें। यह तीसरी घण्टी बजी। सभी छात्र वाटिका में जहाँ तहाँ, पेड़ों के नीचे, आसन बिछा कर उपासना करने बैठ गये। देखिए, इनकी आँखें मुँदी हैं। चेहरे पर गम्भीरता की छाया है। जान पड़ता है, इनकी अन्तरात्मा किसी दिव्य ज्योति का दर्शन कर रही है। चौथी घण्टी बजते ही सब एक पङ्क्ति में खड़े हो गये और हाथ जोड़ कर मन्त्र-पाठ करने लगे। लीजिए यह पाँचवीं घण्टी भी बज गई। विद्यालय के सब विद्यार्थी और अध्यापक, वाटिका के बीच, एकत्र हो रहे हैं। यहाँ एक पक्का चबूतरा है। उसके चारों ओर सब लोग शान्त और नम्र-भाव से पङ्क्ति-बद्ध खड़े हैं। पास ही बालिकायें और अध्यापिकायें भी वसी तरह खड़ी हैं। इनके मस्तक श्रद्धा और भक्ति से झुके हुए हैं। स्वभाव से ही चञ्चल ये शिशु भी, इस समय, गम्भीरता की मूर्ति से जान पड़ते हैं। अरे! सङ्गीत का यह सुमधुर स्वर सहसा कहाँ से झङ्कारित हो उठा? चबूतरे की ओर देखिए। सङ्गीत-कक्षा के विद्यार्थियों का एक दल वहाँ श्रेणीबद्ध खड़ा होकर प्रार्थना-सङ्गीत अलाप रहा है। सुनिए, उसकी प्रथम पङ्क्ति स्पष्ट सुनाई दे रही है—

"अन्तर मम विकसित कर, अन्तर-तर हे!"

ऐसा प्रतीत हुआ मानों सङ्गीत के सुर और लय में मिल कर शान्ति-निकेतन विश्व-प्रेम के महा-समुद्र में तैर रहा है।

इसके बाद कक्षायें बैठीं। कहाँ? यहाँ तो हमारे विश्व-विद्यालयों के स्कूलों और कालेजों की शानदार बड़ी बड़ी इमारतों की सी एक भी इमारत नज़र नहीं आती। कक्षायें बैठेंगी कहाँ? महाशय, विश्व-विद्यालय को यहाँ भूल जाइए। स्मरण रखिए, आप शान्ति-निकेतन-ब्रह्मचर्याश्रम देख रहे हैं। पेड़ों के नीचे, खुली हवा में, कक्षायें लगी हैं। भूमि पर अपने अपने कम्बलासन या कुशासन पर विद्यार्थी बैठे हैं। अध्यापकों के भी आसन भूमि पर ही बिछे हैं। प्रत्येक विद्यार्थी और अध्यापक अपना आसन स्वयं लाता ले जाता है। विश्वविद्यालयों के पदवीधर हमारे सभ्यताभिमानी अनेक ग्रेजुएट (आचार्य) ज़मीन पर बैठने में मान-हानि समझें तो क्या शान्ति-निकेतन के अध्यापक असभ्य और निरे ग्रामीण ही हैं? नहीं, इनमें से कई तो ऐसे हैं जिन्होंने अमेरिका और योरप जाकर बड़े बड़े विश्व-विद्यालयों से पदवियाँ प्राप्त की हैं। इतने पर भी उन्हें धरती पर बिछे आसन पर बैठने में ज़रा भी लज्जा नहीं!

पढ़ाई के समय का प्रथमांश पूरा होने पर जलपान की घण्टी बजी और बाल-समूह भोजनालय में पहुँचा। जलपान (कलेवा) के लिए कभी पूरी, कभी मोहनभोग, और कभी खुरमे दिये जाते हैं। इसके बाद, भिन्न भिन्न ३ समयांशों में पढ़ाई होती है। पौने ग्यारह बजे छुट्टी होती और ग्यारह बजे भोजन की घण्टी बजती है। भोजनालय के दो भाग हैं। क्योंकि आश्रम में कई गुजराती छात्र भी हैं। बङ्गाली खाद्य उनकी रुचि के अनुकूल नहीं, अतएव उनके लिए भोजन की स्वतन्त्र व्यवस्था है। अपनी अपनी थालियाँ और कटोरे लिये हुए लड़के भोजनालय में पहुँचते हैं। वहाँ लकड़ी के पीढ़े, सीधी क़तारों में, पड़े हैं। लड़कों में जो नायक (Captain) होते हैं वे सबको यथा-स्थान बिठलाते तथा परोसने में सहायता देते हैं। भोजन निरामिष तो होता है पर पौष्टिक और सुस्वादु होता है। रोटी, दाल-भात, तरकारी, घी और दूध, यथेष्ट परिमाण में, दिया जाता है। छोटे छोटे बच्चों की भोजन-व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया जाता है। हमने एक अध्यापक को, भोजन के समय, बालकों के सामने खड़े रह कर उनकी प्रसन्नता और रुचि के अनुसार प्रेम से उन्हें भोजन कराते देखा। भोजन के बाद, २ घण्टे तक,

लड़के विश्राम करते हैं । हमारे स्कूलों और कालेजों के लड़कों की तरह भोजन करते ही उन्हें, समय पर स्कूल पहुँचने के लिए, एक एक दो दो मील की दौड़ नहीं लगानी पड़ती । १॥ बजे फिर स्कूल लगता है । शिक्षा का मुख्य अंश सबेरे के घण्टों में पूर्ण कर दिया जाता है । यथार्थ में प्रातःकाल मस्तिष्क शान्त रहता है और बुद्धि भी प्रखरता से काम कर सकती है । भारत जैसे उष्ण देश के लिए तो यह नियम अत्यन्त ही लाभ-दायक है । अपराह्न में लड़कों को अधिक मानसिक परिश्रम नहीं करना पड़ता । इस समय वे प्रायः पाठ याद करते हैं । चार साढ़े चार बजे छुट्टी हो जाती है । लड़के जलपान करते हैं । फिर खेल और व्यायाम का नम्बर आता है । उच्च कक्षा के कुछ लड़के खेल में शामिल नहीं होते । वे पड़ोस के गाँवों में जाकर वहाँ के लड़कों को पढ़ाते हैं । अब तक तीन गाँवों में ऐसे शाखा-स्कूल खुल चुके हैं । सन्ध्या को, छात्र हाथ मुँह धो कर सबेरे की तरह फिर उपासना और मन्त्र-पाठ करते हैं । ८ बजे भोजन होता है । इसके बाद रात को पढ़ने-पढ़ाने की मनाही है । हाँ, उच्च कक्षा के कुछ विद्यार्थी रात को भी अध्ययन करते हैं । इस समय मनोरञ्जन के लिए कभी कहानी कही जाती है, कभी बड़े लड़के कुछ अभिनय कर दिखाते हैं । ९ बजे, सोने की घण्टी बजने पर, एक आध मधुर गान गाने के बाद सब लोग सो जाते हैं । इस प्रकार, सङ्गीत के साथ ही उनका दिन प्रारम्भ होता है और उसी के साथ समाप्त भी ।

कक्षाओं के मुख्य करके ३ भाग हैं । निम्न, मध्यम और उच्च । मध्यम श्रेणी हमारे यहाँ के मैट्रिकुलेशन के बराबर है । उच्च विभाग का नाम है विश्व-भारती । उसमें संस्कृत और पाली के व्याकरण और साहित्य, सिंघाली भाषा, भारतीय तर्कशास्त्र, दर्शन, चित्रकारी तथा सङ्गीत की शिक्षा दी जाती है । जो विद्यार्थी कुछ अन्वेषण (Research Work) करना चाहें उनके लिए भी यहाँ उचित व्यवस्था है । बाबू क्षितिमोहन सेन शास्त्री, एम० ए०, इस समय विद्यालय के प्रिन्सिपल (प्रधानाध्यापक) हैं । आपकी तत्त्वावधानता में हिन्दी-साहित्य में माध्यमिक हिन्दू-धर्म के अनुसन्धान का भी प्रबन्ध है ।

शान्ति-निकेतन में केवल वे ही बातें नहीं सिखाई जातीं जिनका सम्बन्ध केवल मस्तिष्क या हृदय से है । यहाँ ऐसी शिक्षा का भी प्रबन्ध है जो विद्यार्थी के साधारण-जीवन में सहायक हो । यहाँ एक Laboratory है । इसमें वह सब सामग्री है जिसका प्रयोजन वैज्ञानिक-शिक्षा देने के लिए होता है । यहाँ पदार्थ-विज्ञान सिखाया जाता है । इसके सिवा बढ़ईगरी, लुहारगरी तथा कपड़ा बुनने की शिक्षा भी दी जाती है ।

लड़कों के स्वास्थ्य पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है । खेल-कूद और व्यायाम में प्रायः सभी सम्मिलित होते हैं । वीरभूम ज़िले के स्पर्धासूचक खेल-कूद में जो इनाम दिये जाते हैं उनमें से अधिकांश शान्तिनिकेतन के विद्यार्थियों को ही मिलते हैं । जीत कर लाये हुए ऐसे दर्जनों चाँदी के बड़े बड़े प्याले हमने विद्यालय में देखे । 'आग बुझाने की कला (Fire-drill) भी यहाँ सिखाई जाती है । कुछ दिन हुए बोलपुर गाँव में, आधी रात को, आग लगी । वहाँ से आश्रम डेढ़ मील पर है । परन्तु कुछ विद्यार्थी दौड़ कर वहाँ गये और थोड़े ही समय में यत्न-पूर्वक आग बुझा आये । जब तक ये नहीं पहुँचे थे तब तक बस्ती के लोग रोते चिल्लाते और किङ्कर्त्तव्य-विमूढ़ बने खड़े थे ।

शान्ति-निकेतन अपने विद्यार्थियों को ज्ञान-विज्ञान सिखलाने के साथ साथ कष्ट-सहिष्णु और आत्मावलम्बी बनना भी सिखलाता है ।

विद्यालय के अधिकारियों का प्रति वर्ष चुनाव होता है । उसमें प्रत्येक विद्यार्थी और अध्यापक को वोट (मत) देने का अधिकार है । इस संस्था को एक तरह का प्रजातन्त्र राज्य समझिए ।

प्रत्येक विद्यार्थी को प्रवेश-फ़ीस २०) और मासिक फ़ीस २०) देने पड़ते हैं । इसमें पढ़ाई, भोजन, निवास आदि का सब ख़र्च आगया ।

विद्यालय में इस समय १८० छात्र हैं । बालिकायें भी बालकों के साथ ही पढ़ती हैं । इस सम्मिलित-शिक्षण-प्रथा का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ेगा । इसमें बालक-बालिकायें, शैशवावस्था से ही, परस्पर सहानुभूति और समानता का पाठ सीखती हैं ।

यहाँ के पुस्तकालय में विविध विषयों की कोई

७००० पुस्तकें हैं। हिन्दी-पुस्तकों की संख्या सौ से ऊपर न होगी। मध्याह्न-समय को छोड़ पुस्तकालय दिन भर खुला रहता है। यहाँ एक वाचनालय भी है। इसमें भिन्न भिन्न भाषाओं के २०।२५ मासिक और साप्ताहिक पत्र आते हैं। हिन्दी के सिर्फ़ दो ही पत्र आते हैं—सरस्वती और बाल-सखा। हिन्दी के कुछ और पत्र भी आने लगें तो अच्छा हो। आश्रम से लगा हुआ एक रुग्णालय (Hospital) है। इसमें एक डाक्टर और एक कम्पौण्डर है। दो नौकर भी हैं।

शान्ति-निकेतन ने अपना संसार अलग ही बना रक्खा है। उसका अपना प्रेस है, जहाँ से विद्यालय के एक विद्वान् अध्यापक के सम्पादकत्व में शान्ति-निकेतन नामक एक मासिक पत्र प्रकाशित होता है। कविवर की, तथा आश्रम के अन्यान्य अध्यापकों की लिखी हुई पुस्तकें भी यहीं छपती हैं। पास ही "विंड मिल" (Wind Mill) और पावर हाउस (Power House) हैं। यहाँ से रात को छात्रावासों में बिजली की रोशनी पहुँचाई जाती है। एक बाग़ीचा और कृषि-क्षेत्र बन रहा है। बाग़ीचे से भोजनालय के लिए ताज़ी तरकारी मिलती है। कारख़ाने में धोतियाँ, अँगौछे, चादरे आदि दैनिक व्यवहार के लिए उपयोगी कपड़े तैयार होते हैं। आश्रम के मकानों के लिए आवश्यक किवाड़, खिड़कियाँ, आलमारी आदि लकड़ी की चीज़ें भी यहीं बनती हैं। इस तरह आश्रम अपनी आवश्यकता बहुत कुछ आप ही पूरी कर लेता है। ज़रा ज़रा सी चीज़ों के लिए उसे दूसरे का मुँह नहीं ताकना पड़ता।

यहाँ एक समवाय-भाण्डार (Co-operative Store) भी है। इसमें शान्ति-निकेतन की बनी चीज़ें, पुस्तकें आदि बिकती हैं। उनके सिवा लिखने-पढ़ने का सामान, पाठ्य पुस्तकें, भोजन-सामग्री आदि के मिलने की भी व्यवस्था है।

आश्रम में वर्ष में दो लम्बी छुट्टियाँ होती हैं। एक पूजा की और दूसरी गरमी की। इन छुट्टियों को छोड़ कर लड़के और किसी समय घर नहीं जा सकते। आश्रम में, समय समय पर, अनेक उत्सव मनाये जाते हैं, जिनमें धार्मिक वक्तृतायें होतीं और मनोरञ्जन के लिए कविवर रवीन्द्र के नाटकों का अभिनय किया जाता है। अभिनय में रवि बाबू स्वयं भी कोई न कोई भूमि का (पार्ट) लेते हैं।

आश्रम का वार्षिक व्यय पचासी हज़ार रुपये के लगभग है। इसमें सत्ताईस हज़ार के लगभग फ़ीस से वसूल हो जाता है। बाक़ी रवीन्द्र बाबू अपने पास से देते हैं। हाँ, कभी कभी बाहर से भी कुछ साहाय्य मिल जाता है।

इस समय २४ शिक्षक हैं। इनमें से अधिकांश अमेरिका और इँगलेंड में प्राप्त उच्च शिक्षा से विभूषित हैं। कई शिक्षक ख़ास कर शिशु-शिक्षण-प्रणाली (Pedagogy) सीखने के लिए ही इँगलेंड भेजे गये थे। इन शिक्षकों ने अपना जीवन आश्रम की सेवा में अर्पित कर दिया है। वे धन कमाने की इच्छा से नहीं, देश और जाति-हित के इस महदनुष्ठान में महाप्राण रवीन्द्रनाथ की सहायता करने के लिए ही यहाँ हैं। केवल निर्वाह-मात्र के लिए उन्हें वेतन मिलता है। इस स्वार्थ-त्याग के साथ साथ यहाँ वे जिस तत्परता और मनोयोग से अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे हैं उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। कई शिक्षकों की गृहिणियाँ भी आश्रम की सेवा में तत्पर हैं। इन महिलाओं की उपस्थिति से छोटे छोटे लड़कों को आश्रम में अपने घर की याद नहीं आती।

शिक्षकों में परस्पर प्रेम-भाव और भ्रातृत्व है। हमारे स्कूलों में शिक्षकों में जो मनोमालिन्य और ईर्ष्या-द्वेष बहुधा देखा जाता है उसका यहाँ अभाव है। सहानुभूति और सहकारिता ही यहाँ के मूल मन्त्र हैं। शिक्षकों ने मिल कर अपनी एक समिति बना ली है। उसमें बैठ कर, निश्चित विषयों पर, वे किसी एक की वक्तृता सुनते हैं। इस तरह उनमें परस्पर सदैव सौहार्द-भाव और आदर-बुद्धि जागृत रहती है।

भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों से कुछ और सुयोग्य शिक्षकों को रवि बाबू बुलाना चाहते हैं। बङ्गाली अध्यापकों के अतिरिक्त इस समय आश्रम में लङ्का-निवासी एक बौद्ध-भिक्षु, एक महाराष्ट्र, एक मैथिल और एक गुजराती सज्जन हैं। भिक्षुजी पाली और बौद्ध-दर्शन पढ़ाते हैं। एक हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जन भी शीघ्र आनेवाले हैं। रवीन्द्र बाबू को भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी को भी आश्रम में स्थान-प्रदान करने की आवश्यकता प्रतीत हुई है।

यहाँ बँगला-भाषा द्वारा शिक्षा दी जाती है। जो लोग देशी भाषाओं के द्वारा शिक्षा देने में अन्तराय की आशङ्का किया करते हैं वे शान्ति-निकेतन में जा कर देखें कि वहाँ इस प्रथा के अवलम्बन से कैसी सफलता हुई है। बहुत लोग कहा करते हैं कि भारत के एक प्रान्त-वासी को दूसरे प्रान्त की भाषा सीखने में बड़ी असुविधा होगी। पर वे यह नहीं सोचते कि जब भारत-वासी अँगरेज़ी जैसी सात समुन्दर पार की विदेशी भाषा सीख सकते हैं तब अपनी प्रान्तीय भाषायें क्यों न सीख सकेंगे। शान्ति-निकेतन में इस समय ३० । ४० गुजराती लड़के हैं। कुछ लड़के सिन्ध के भी हैं। दो-एक छात्र मदरास और लङ्का से आये हैं। बम्बई के सुप्रसिद्ध दादाभाई नौरोजी के दौहित्र भी यहीं पढ़ते हैं। इन भिन्न भिन्न प्रान्तों के छात्रों ने, थोड़े ही समय में, बड़ी सरलता से बँगला सीख ली है। कई छात्र तो बहुत अच्छी बँगला बोल सकते हैं।

विद्यार्थियों के लिए परीक्षा का नाम बहुत विभीषिका-मय है। पर यहाँ उसका आतङ्क नहीं फैल सका। कुछ परीक्षायें यहाँ भी होती हैं, पर केवल उन्हीं पर विद्यार्थियों के जीवन-मरण का प्रश्न अवलम्बित नहीं। उनकी साधारण योग्यता ही सफलता या असफलता में प्रमाण मानी जाती है।

यहाँ जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनका निर्वाचन स्वयं कविवर ने किया है। अतएव उनकी उपयोगिता के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। हमारे यहाँ की पुस्तक-निर्वाचन-समितियाँ (टेक्स्टबुक कमेटियाँ) इस विषय में देश का जो अनिष्ट कर रही हैं उसका स्मरण भी दुःखदायक है। आश्रम के विद्यार्थियों का यह सौभाग्य है कि वे इन कमिटियों की किताबों से बच सके हैं।

शान्ति-निकेतन की शिक्षण-पद्धति स्थिर करने में कविवर ने बड़े विचार और विवेक से काम लिया है। उन्होंने ख़ास कर इसी लिए एक बार पाश्चात्य देशों की यात्रा की थी। अमरीका और योरप आदि में आज-कल जितने प्रकार की शिक्षण-पद्धतियाँ प्रचलित हैं उनकी पूरी छानबीन के पश्चात् शान्ति-निकेतन की शिक्षण-पद्धति निश्चित की गई है। उसकी विशेषता है—स्वाभाविकता। विद्यार्थी की बुद्धि के स्वाभाविक क्रम-विकाश के साथ उसके ज्ञान के विकाश का भी सम्बन्ध रक्खा गया है। उस पर किसी विशेष वस्तु या लक्ष्य की दृष्टि से किसी तरह का दबाव नहीं डाला जाता। शिक्षा तो जातीय दी जाती है, पर उसमें सङ्कीर्णता का नाम नहीं। मानव-हृदय जो जो बातें स्वाभाविक रूप से ग्रहण कर सकता है, उन सबका समावेश उस प्रणाली में है।

हमारे यहाँ के स्कूलों में विद्यार्थियों को शारीरिक दण्ड दिया जाता है। पर यहाँ इसका अभाव है। छात्रों को शारीरिक दण्ड देने की अमानुषिक प्रथा के कारण लड़के स्कूल को नरक से भी बुरा समझते हैं। जिन्होंने कविवर का जीवन-चरित पढ़ा होगा उन्हें मालूम होगा कि रवि बाबू को अपनी शैशवावस्था में इसका कैसा बुरा अनुभव हुआ था। उनका यही अनुभव पीछे उनके हृदय में निरपराध शिशु विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने का कारण हुआ। शान्ति-निकेतन में उसका अभाव इसी अनुभव का फल है।

यहाँ की एक और विशेषता है, यहाँ का स्वातन्त्र्य। यथार्थ में जहाँ स्वातन्त्र्य है वहीं शान्ति है। यहाँ किसी को किसी प्रकार की परतन्त्रता नहीं। छोटे से लेकर बड़े तक सब समदृष्टि से देखे जाते हैं। ऊपर लिखा ही जा चुका है कि विद्यालय के अधिकारियों की नियुक्ति 'वोट' द्वारा होती है। विद्यार्थियों को एक तरह स्वायत्त-शासन (Self-government) प्राप्त है। प्रति सप्ताह वे अपना एक नायक (Captain) चुनते हैं। उसके मातहत और कई सहकारी नायक होते हैं। विद्यार्थियों का एक एक दल प्रत्येक के अधीन होता है। अपने नीचे के लड़कों को शासन में रखना इन नायकों का कर्त्तव्य है। प्रति रात्रि को विद्यार्थियों की एक विचारक समिति बैठती है। उसमें निर्वाचित प्रतिनिधि अपराधों की जाँच करते हैं।

विद्यार्थियों के रहने और खाने-पीने का सारा प्रबन्ध-भार भी उन्हीं के ज़िम्मे है। इसके लिए भी कमिटियाँ हैं। इस तरह वे अपना प्रबन्ध आप ही करते हैं, जिससे न तो उनमें कभी असन्तोष फैलता है और न उन्हें किसी तरह की शिकायत करने का ही मौक़ा मिलता है। हाँ, आश्रम के कार्य-कर्त्ता और अध्यापक, आवश्यकतानुसार, सब बातों में उनकी सहायता करने के लिए हर घड़ी प्रस्तुत रहते हैं।

छात्रों और अध्यापकों में परस्पर बन्धुओं का सा सम्बन्ध है । केवल शिक्षा के समय ही नहीं, हर घड़ी, वे साथ साथ रहते हैं । उनके इस निरन्तर सहवास का बड़ा अच्छा प्रभाव विद्यार्थियों पर पड़ता है । हमारे यहाँ शिशु-कक्षा के लड़के अपने मास्टरों का नाम सुन कर बेतरह डर जाते हैं । लड़का खेल रहा है, देखा कि मास्टर साहब आ रहे हैं । बस, बेचारा भाग कर कोई सुरक्षित जगह जाकर दम लेता है । किन्तु यहाँ पर यह बात नहीं। पढ़ने के समय जो शिक्षक हैं खेल के समय वही उनके खिलाड़ी दोस्त हैं । हमने कक्षाओं में घूम फिर कर देखा कि लड़के शिक्षकों के साथ निर्भीकता से बातें कर रहे हैं और खुल कर अपने सन्देह प्रकट कर रहे हैं । किन्तु इस निर्भीकता का मतलब औद्धत्य या अविनय नहीं ।

इसके सिवा क्या राजनैतिक, क्या सामाजिक, और क्या धार्मिक, प्रत्येक बात में पूरी पूरी स्वतन्त्रता है । धार्मिक सहनशीलता यहाँ की अन्य विशेषता है । प्रत्येक जाति और प्रत्येक धर्म के विद्यार्थियों के लिए आश्रम का द्वार खुला है । वे यहाँ अपने अपने धार्मिक विश्वासों के अनुसार स्वच्छन्दता से रह सकते हैं । आश्रम का धर्म है—विश्वधर्म । उसमें सङ्कीर्णता नहीं ।

शान्ति-निकेतन में एक और भी विशेषता है—वह है उसका उच्च उद्देश । कविवर ने एक जगह लिखा है—"अपने विद्यार्थियों को आध्यात्मिक शिक्षा देना ही बोलपुर में स्कूल स्थापित करने का मेरा मुख्य उद्देश है ।" आध्यात्मिकता भारत की प्राचीन सम्पत्ति है । फिर यह कब सम्भव है कि रवीन्द्र बाबू जैसा दार्शनिक और भारतीय सभ्यता का पूर्ण तत्त्वज्ञ उसकी ओर से उदासीन रहे । विषय की रुक्षता को कोमल बनाने में उन्होंने बड़ी बुद्धि और स्वतन्त्रता से काम लिया है । अध्यात्म और सङ्गीत का मेल कर दिया है । कविता और सङ्गीत तो वहाँ की हवा में बहते हैं । वहाँ का सङ्गीत सुनना आध्यात्मिकता के अनिर्वचनीय आनन्द-सागर में मग्न होना है ।

शान्ति-निकेतन में जहाँ रक्षणशीलता है वहाँ उन्नति-शीलता भी है । यह उसकी चौथी विशेषता है जो उसकी सजीवता का प्रमाण है । वहाँ जिस प्रकार भारत की प्राचीन शिक्षण-प्रथा की रक्षा की गई है, जिस प्रकार हिन्दू-धर्म के मूल और उदार सिद्धान्तों का पालन किया गया है, उसी प्रकार उन कुसंस्कारों और दोषों को हटाने की चेष्टा भी की गई है जो उसमें परवर्ती-काल में आ मिले थे । आधुनिक युग की उपयोगी बातों को भी वहाँ स्थान दिया गया है । हम तो कहेंगे कि वहाँ पूर्व और पश्चिम का अद्भुत मेल है । आध्यात्मिकता (Spiritualism) पूर्व का लक्षण है और सांसारिकता (Materialism) पश्चिम का । शान्ति-निकेतन में इन दोनों का सामञ्जस्य है । रवीन्द्र बाबू संसार या जीवन से कभी विमुख नहीं हुए । आप कर्म से ही मुक्ति मानते हैं । आपकी यह धारणा शान्ति-निकेतन में सदेह विद्यमान है । कविवर का जीवन यहाँ कर्म-मय है । उन्हें अपने सहकारियों से किसी तरह कम काम नहीं करना पड़ता । वे ब्राह्म मुहूर्त में ही उठते हैं और दिन निकलते तक उपासना करते हैं । इसके बाद आश्रम में घूमते हुए सब कक्षायें देखते हैं । आप स्वयं कई कक्षाओं को अँगरेज़ी और बँगला-साहित्य पढ़ाते हैं । सप्ताह में दो दिन आप प्रार्थना-मन्दिर में विद्यार्थियों से जीवन के आदर्शों पर वार्त्तालाप करते हैं । रात को उन्हें या तो कुछ उपदेश देते हैं या नाटक खेलना सिखलाते हैं ।

शिशुओं के साथ आपका व्यवहार और सम्बन्ध वही है जो पितामह का अपने पौत्रों से होता है । बालकों के साथ बातें करने और खेलने में आपको बड़ा आनन्द आता है ।

रवि बाबू का व्यक्तिगत प्रभाव आश्रम की एक प्रधान शक्ति है । आश्रम-वासियों के हृदयों में वही पवित्रता और महत्ता-पूर्ण अलौकिक भाव उत्पन्न किया करता है । छात्र और अध्यापक सभी आपको गुरुदेव कहते हैं ।

रवि बाबू के परिवार के और भी कई व्यक्तियों ने आश्रम को आत्म-समर्पण कर दिया है । आपके सुयोग्य पुत्र बाबू रथीन्द्रनाथ ठाकुर के ऊपर ही, इस समय, आश्रम का अधिकांश कार्य-भार अवलम्बित है । आपकी भाभी श्रीमती हेमलता टगोर ने, अपने पुत्र बाबू दीनेन्द्रनाथ टगोर सहित, आश्रम में अध्यापन करना स्वीकार किया है । श्रीमतीजी बँगला पढ़ाती हैं और दीनेन्द्र बाबू रवि बाबू के बनाये हुए पदों का गाना सिखलाते हैं ।

धन्य है वह पवित्र परिवार जिसने परोपकार को ही अपने जीवन का सर्वस्व मान रक्खा है। कविवर के ज्येष्ठ भ्राता दार्शनिक-प्रवर द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर भी आश्रम के निकट ही, एक स्वतन्त्र स्थान में, रहते हैं। ये वही द्विजेन्द्र बाबू हैं जिनके शरीर पर, पेड़ों से उतर कर गिलहरियां चढ़ती और हाथों पर पक्षी बेखटके आ बैठते हैं।

यहां तक जो कुछ लिखा गया है उससे पाठकों को इस बात का ज्ञान हो गया होगा कि शान्ति-निकेतन का आदर्श क्या है। नहीं कह सकते कि उस आदर्श की पूर्ति में उसे कहां तक सफलता हुई है। पर वह अपने वर्तमान जीवन की विघ्न-बाधाओं के बीच अपना कार्य कर रहा है। सच तो यह है कि शान्ति-निकेतन, लाला लाजपतराय के कथनानुसार, भारत का राष्ट्रीय विद्यालय है। कविवर का विचार उसे और भी व्यापक बनाने का है, परन्तु वे धीरे धीरे उन्नति चाहते हैं। एकदम उन्नति के शिखर पर जा चढ़ना, उनके सिद्धान्त के प्रतिकूल है। रवि बाबू ने आश्रम पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया है। आप विश्व-विख्यात कवि और विद्वान् हैं। पर आपके अधिक गौरव का कारण आपका त्यागी और उदारचेता होना है। भारत को आज इस बात का गर्व है कि उसकी सन्तानों में इस समय भी त्याग और औदार्य का बीज निहित है।

शान्ति-निकेतन का तपोवन या विद्यारण्य एक परम पावन तीर्थ है। हमारे देश में इस समय ऐसे अनेक शान्ति-निकेतनों की आवश्यकता है।

मुकुटधर पाण्डेय
और
मनोहरप्रसाद मिश्र

बाबू ज्योतिःस्वरूप।

इस प्रदेश के उत्तरी ज़िलों में जिनके सतत उद्योग से समाज-सेवा हो रही थी, एक प्रकार से लोकोपकार के लिए ही जिनका जन्म था, और जिन्होंने अपने व्यक्तित्व को समष्टि में बिलकुल ही मिला दिया था, उन्हीं प्रख्यात पुरुष राय ज्योतिःस्वरूप बहादुर का, १ मई १९२० को, ५९ वर्ष की अवस्था में, देहरादून में देहान्त हो गया। देश से एक दिव्य आत्मा तिरोहित हो गई। देश की बड़ी भारी हानि हुई।

बाबू साहब भटनागर कायस्थ थे। आपका जन्म सन् १८६१ ईसवी में, मेरठ ज़िले के जलालाबाद नामक ग्राम में, हुआ था। आपके पिता श्रीयुक्त कुन्दनलालजी की स्थिति साधारण थी। बाबू ज्योतिःस्वरूपजी की माता कुछ पढ़ी-लिखी तो न थीं, किन्तु थीं बड़ी सुशीला तथा धर्मात्मा। उनके तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। चरित-नायक बाबू ज्योतिःस्वरूप द्वितीय पुत्र थे। स्कूली शिक्षा आगरे में समाप्त करके इन्होंने इलाहाबाद से क़ानून की परीक्षा पास की और फिर ग़ाज़ियाबाद में वकालत शुरू की। किन्तु इस पेशे में इनकी तबीयत न लगी, यह देख कर इनके शुभचिन्तक बहुत चिन्तित हुए। कुछ दिन बाद ये मेरठ चले आये और अपने बड़े भाई मुंशी लक्ष्मणस्वरूप वकील के पास रह कर वहाँ, किसी स्कूल में, हेड मास्टरी करने लगे। इसी समय इनकी पहली पत्नी का देहान्त हो गया।

इन्हीं दिनों, मेरठ में, स्वामी दयानन्द सरस्वती का आगमन हुआ। स्वामीजी के उपदेशों का बाबू साहब पर बड़ा असर पड़ा। ये उनके शिष्य हो गये और आर्य-समाज के सिद्धान्तों के प्रचार में ध्यान देने लगे। संस्कृत का अभ्यास तो इन्होंने स्कूल में ही आरम्भ कर दिया था, अब उसमें और भी उन्नति की। इससे संस्कृत में आपकी अच्छी गति होगई। फ़ारसी तथा अँगरेज़ी के तो आप ज्ञाता थे ही।

आपका दूसरा विवाह बिहार गवर्नमेन्ट के ट्रांसलेटर (अनुवादक) राय सोहनलाल की विदुषी पुत्री श्रीमती महादेवी के साथ हुआ। सन् १८८६ के लगभग आप मेरठ से देहरादून चले आये और वहीं वकालत करने लगे। वहां आपका काम खूब जमा। थोड़े ही दिनों में आप वहाँ के प्रसिद्ध वकीलों

में गिने जाने लगे। धीरे धीरे वहाँ के सार्वजनिक कामों की बागडोर भी आपके हाथों में आगई। आपके बिना किसी सभा-समिति की सफलता में सन्देह रहता था। धार्मिक, सामाजिक या राजनैतिक आन्दोलन भी आपके सहयोग बिना अधूरा सा रहता था।

सन् १८८८ ईसवी में स्वामी दयानन्दजी देहरादून गये। तब, वहाँ, स्थानीय आर्य-समाज की स्थापना हुई। उस समय के उत्साही कार्य-कर्त्ताओं में स्वर्गीय बाबू साहब भी थे। फिर धीरे धीरे आप उसके प्रधान होगये और आजीवन इस पद पर रहे। जिनके उद्योग से डी० ए० वी० हाई स्कूल देहरादून को लाया गया उनमें आप एक प्रधान व्यक्ति थे। कई वर्ष तक उक्त स्कूल की प्रबन्ध-कारिणी समिति के आप प्रमुख भी रहे। देहरादून की तथा आस पास की लगभग सभी सार्वजनिक संस्थाओं में आप कुछ न कुछ काम करते ही रहते थे।

आप यद्यपि आर्य-समाज के आजीवन प्रधान तथा मेम्बर बने रहे, तथापि आपके धार्मिक विचार ऐसे सङ्कीर्ण या अनुदार न थे कि आर्य-समाज के क्षेत्र के अन्दर ही रह जाते। चाहे जहाँ से हो, आप सत्य और तथ्य को ग्रहण कर लेते थे। उनके हृदय में हर एक धर्म की भलाई देखने के लिए जगह थी। इसी से क्या हिन्दू क्या मुसलमान और क्या ईसाई, सभी उनको चाहते थे। कटारपुर के मामले में उन्होंने जैसा उद्योग किया वह चिर-स्मरणीय रहेगा। उस मामले के लिए देश भर में घूमना, चन्दा इकट्ठा करना, सहायता के लिए जनता को प्रोत्साहित करना तथा प्रिवी-कौन्सिल तक अपील पहुँचाना उन्हीं जैसे देश-सेवक का काम था।

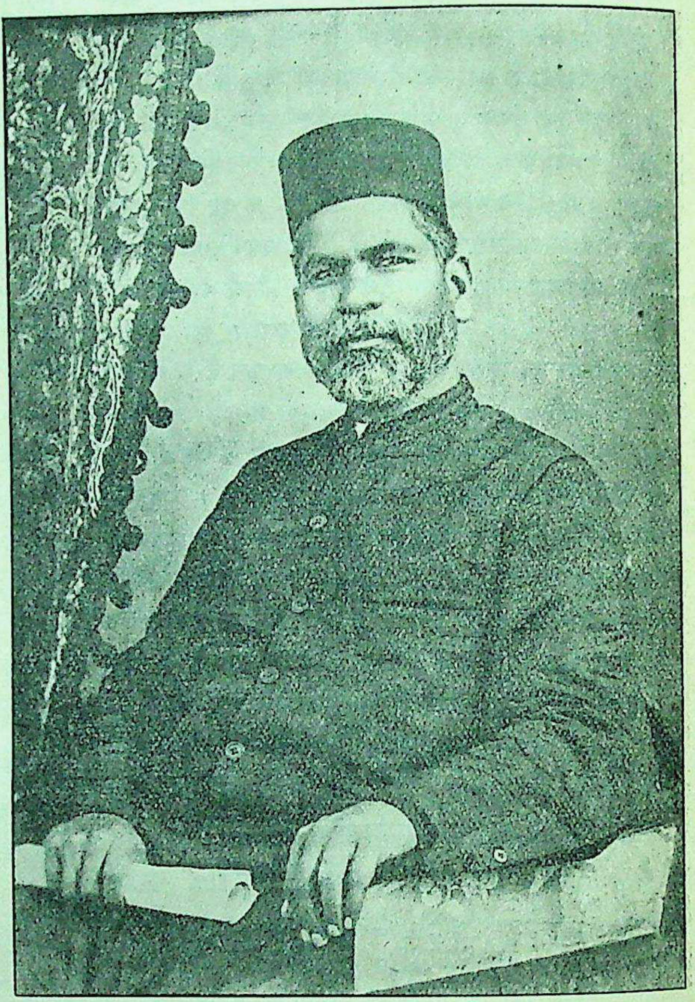

बाबू ज्योतिःस्वरूप ।

आपकी धर्म-पत्नी ने आपके धर्म-कार्यों में ख़ूब सहायता की। उन्हीं के प्रयत्न से, सन् १९०२ में, देहरादून में कन्या-पाठशाला खोली गई। इसका अधिकांश ख़र्च, आज तक, बाबू साहब अपनी जेब से ही देते रहे। सुशिक्षिता स्त्री अपने पति की कितनी सहायक होती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आप की धर्म-पत्नी थीं। और इसी लिए स्त्री-शिक्षा के प्रचार को आपने अपने जीवन का मुख्य उद्देश बना लिया था।

व्यर्थ की छुआछूत, बाल-विवाह, स्त्री-शिक्षा, समुद्र-यात्रा तथा स्त्रियों का अनुचित परदा इत्यादि विषयों पर आपको व्याख्यान देते या खण्डन-मण्डन करते नहीं देखा गया। किन्तु इनकी कार्य्य-प्रणाली ने दिखा दिया कि ये किस पथ के पथिक हैं। "यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" इस श्लोक की दुहाई देनेवालों की तथा शास्त्रों के वचन—जैसे "मातृमान् पितृमान् आचार्यमान् पुरुषो वेद" इत्यादि का ढोल पीटनेवालों की कमी नहीं। कमी है तो उनका वास्तविक रूप से उपयोग करनेवालों की। ख़ुशी की बात है कि बाबू ज्योतिःस्वरूपजी 'पर-उपदेश-कुशल' न थे। उनका जीवन एक प्रकार से आदर्श जीवन था। इसी सेवा के उपलक्ष्य में आप लखनऊ में सन् १९१६ की भारत-वर्षीय समाज-संशोधक महासभा (Indian National Social Conference) के सभापति बनाये गये थे।

इसी प्रकार राज-नैतिक विषयों में आपके विचार बड़े निर्भीक तथा देश-सेवा के भाव से पूर्ण थे। इस क्षेत्र में भी आपने दिखा दिया कि सच्चे राजभक्त होते हुए भी मनुष्य किस तरह जन्म-भूमि का सच्चा सेवक हो सकता है। सभी राजनैतिक विषयों की सभायें प्रायः आप ही के स्थान पर हुआ करती थीं। पिछले साल, ६ एप्रिल को, आपके स्थान पर रौलट-ऐक्ट के विरोध में सभा हो रही थी। उस समय एक उच्च अधिकारी ने आकर आपसे कहा—सरकार ने आपको जो पद (आनरेरी असिस्टेन्ट कलेक्टर) देकर सम्मानित किया है उसका आपको ध्यान रखना चाहिए। तब आपने निडर होकर उत्तर दिया कि यदि सरकार की दी हुई वह इज़्ज़त मुझ ना-चीज़ को तुच्छ देश-सेवा से रोकती है तो मैं उस इज़्ज़त से हाथ धोने को अभी तैयार हूँ। अन्त में अधिकारी महोदय को अपने शब्दों के लिए क्षमा माँगनी पड़ी।

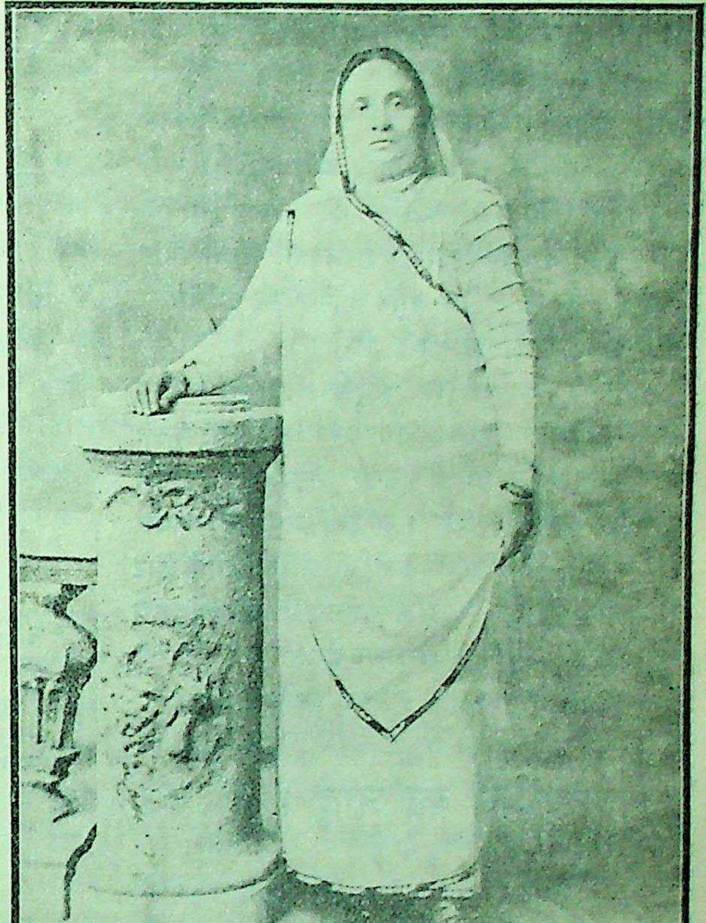

श्रीमती महादेवीजी "क़ैसरेहिन्द"।

आपको सादगी बहुत पसन्द थी। स्वभाव आपका सरल तथा शिष्टाचार से पूर्ण था। कोई भी मनुष्य आपके पास सम्मति या सहायता लेने जाकर निराश न लौटता था। देहरादून में आपका घर क्या था, एक तरह का पान्थ-निवास बन गया था। आपकी सहधर्म्मिणी तथा एक-मात्र सन्तान लक्ष्मीदेवी का परलोकवास हो जाने पर तो मकान धर्मशाला ही सा लगता था। आप घर में नहीं हैं, किन्तु १०, २० अतिथि हर समय आपके यहाँ मौजूद हैं। संन्यासी, देश-सेवक, यात्री और विद्यार्थी—सबके लिए—बग़ैर नोटिस की धर्मशाला आपके यहाँ खुली हुई थी।

आपका विद्या-व्यसन अनुकरणीय था। आप अपना बहुमूल्य पुस्तकालय एक स्थानीय नूतन पुस्तकालय को दे गये हैं। इस पुस्तकालय का नाम है 'वैदिक-जीवन-आश्रम'। आपकी स्थावर-सम्पत्ति कई लाख की है। उसके उत्तराधिकारी आपके छोटे भाई राय बहादुर बाबू हरस्वरूप हैं, जो मुहकमे जङ्गलात में डिपुटी कन्सरवेटर हैं।

यशोदा देवी

प्रेम का जादू।

(१)

सरसिज जब रवि-दर्शन पाता,
सहज प्रेम-वश है खिल जाता,
अहा! प्रेम तू बड़ा बली है अद्भुत तेरा काम।
जब दिनेश अस्ताचल जाता,
हो तब दुखी कमल कुम्हलाता,
जब निज प्रेमी पास नहीं तब भला कहाँ आराम?

(२)

भ्रमर बहुत ही है सुख पाता,
जोड़ सरोरुह से निज नाता,
होकर भौंरा मुग्ध कमल में हो जाता है बन्द।
फिर भी वह नहिँ उसे छोड़ता,
मुँह न मिलन से कभी मोड़ता
है यह सब बस प्रेम कराता, कठिन प्रेम का फन्द॥

(३)

घोर घटा जब नभ में छाती,
स-मुद मयूरी शोर मचाती,
निज जीवन-धन मेघ-शब्द सुन हो जाती है मस्त।
हो उन्मत्त नृत्य है करती
मुद-मय हो जाती है धरती
सबको नाना नाच नचाता है बस प्रेम प्रशस्त॥

(४)

वीणा-स्वर-हित मृग मरता है,
निज जीवन निसार करता है,
होता है उन्मत्त प्रेम-वश, यही प्रेम का नेम।
वीणा-ध्वनि जब सुन लेता है,
प्रिय जीवन तक दे देता है,
कभी नहीं है उसे छोड़ता जिससे जिसका प्रेम॥

(५)

चातक कितना भी हो प्यासा,
पर न कभी तजता निज आशा,
बिना स्वाति जल-पान किये है उसे कहाँ विश्राम?
खोले चोंच पड़ा है रहता,
निज-प्रेमी-हित सब दुख सहता,
कौन प्रेम के जादू से है बच सकता हे राम?

मणिराम गुप्त

पुत्र-प्रेम।

(१)

बाबू चैतन्यदास ने अर्थ-शास्त्र ख़ूब पढ़ा था। और केवल पढ़ा ही नहीं था, उसका यथायोग्य व्यवहार भी वे करते थे। वे वकील थे; दो तीन गाँवों में उनकी ज़मींदारी भी थी; बैङ्क में भी कुछ रुपये थे। यह सब उसी अर्थशास्त्र के ज्ञान का फल था। जब कोई

ख़र्च सामने आता तब उनके मन में स्वभावतः प्रश्न होता था—इससे स्वयं मेरा उपकार होगा या किसी अन्य पुरुष का ? यदि दो में से किसी का भी कुछ उपकार न होता तो वे बड़ी निर्दयता से उस ख़र्च का गला दबा देते थे। "व्यर्थ" को वे विष के समान समझते थे। अर्थशास्त्र के सिद्धान्त उनके जीवन-स्तम्भ हो गये थे।

बाबू साहब के दो पुत्र थे। बड़े का नाम प्रभुदास था, छोटे का शिवदास। दोनों कालेज में पढ़ते थे। उनमें केवल एक श्रेणी का अन्तर था। दोनों ही चतुर, होनहार युवक थे। किन्तु प्रभुदास पर पिता का स्नेह अधिक था। उसमें सदुत्साह की मात्रा अधिक थी और पिता को उसकी ज़ात से बड़ी बड़ी आशायें थीं। वे उसे विद्योन्नति के लिए इँगलेंड भेजना चाहते थे। उसे बैरिस्टर बनाना उनके जीवम की सबसे बड़ी अभिलाषा थी।

(२)

किन्तु कुछ ऐसा संयोग हुआ कि प्रभुदास को बी० ए० की परीक्षा के बाद ज्वर आने लगा। डाकृरों की दवा होने लगी। एक मास तक नित्य डाकृर साहब आते रहे, पर ज्वर में कमी न हुई। दूसरे डाकृर का इलाज होने लगा। पर उससे भी कुछ लाभ न हुआ। प्रभुदास दिनों दिन क्षीण होता चला जाता था। उठने-बैठने की शक्ति न थी। यहाँ तक कि परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने का शुभ संवाद सुन कर भी उसके चेहरे पर हर्ष का कोई चिह्न न दिखाई दिया। वह सदैव गहरी चिन्ता में डूबा रहता था। उसे अपना जीवन बोझ सा जान पड़ने लगा था। एक रोज़ चैतन्यदास ने डाकृर साहब से पूछा—"यह क्या बात है कि दो महीने हो गये और अभी तक दवा का कोई असर न हुआ" ? डाकृर साहब ने सन्देह-जनक उत्तर दिया—"मैं आपको संशय में नहीं डालना चाहता। मेरा अनुमान है कि यह ट्युबरक्युलासिस है। चैतन्यदास ने व्यग्र होकर कहा—"तपेदिक़" !

डाकृर—जी हाँ; उसके सभी लक्षण दिखाई देते हैं।

चैतन्यदास ने अविश्वास के भाव से कहा, मानों उन्हें कोई विस्मयकारी बात सुन पड़ी हो—"तपेदिक़ हो गया !"

डाकृर ने खेद करते हुए कहा—"यह रोग बहुत ही गुप्त रीति से शरीर में प्रवेश करता है"।

चैतन्यदास—मेरे ख़ानदान में तो यह रोग किसी को न था।

डाक्टर—सम्भव है, मित्रों से इसके जर्म (कीटाणु) मिले हों।

चैतन्यदास कई मिनट तक सोचने के बाद बोले—"अब क्या करना चाहिए"?

डाकृर—दवा करते रहिए। अभी फेफड़ों तक असर नहीं हुआ। इनके अच्छे होने की आशा है।

चैतन्यदास—आपके विचार में कब तक दवा का असर होगा ?

डाकृर—निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। लेकिन तीन-चार महीने में ये स्वस्थ हो सकते हैं। जाड़ों में इस रोग का ज़ोर कम हो जाया करता है।

चैतन्यदास—अच्छे हो जाने पर तो ये पढ़ने में परिश्रम कर सकेंगे ?

डाकृर—मानसिक परिश्रम के योग्य तो ये शायद ही हो सकें।

चैतन्यदास—किसी सैनेटोरियम (पहाड़ी स्वास्थ्यालय) में भेज दूँ तो कैसा हो ?

डाकृर—बहुत ही उत्तम।

चैतन्यदास—तब तो ये पूर्ण रीति से स्वस्थ हो जायँगे ?

डाकृर—हो सकते हैं, लेकिन इस रोग को

दवा रखने के लिए इनका मानसिक परिश्रम से बचना ही अच्छा है।

चैतन्यदास—नैराश्य-भाव से बोले—तब तो इनका जीवन ही नष्ट हो गया।

(३)

गर्मी बीत गई। बरसात के दिन आये। प्रभुदास की दशा दिनों दिन बिगड़ती गई। वह पड़े पड़े बहुधा इस रोग पर की गई बड़े बड़े डाकृरों की व्याख्यायें पढ़ा करता। उनके अनुभवों से अपनी अवस्था की तुलना किया करता। पहले कुछ दिनों तक तो वह अस्थिर-चित्त सा हो गया था। दो-चार दिन भी दशा सँभली रहती तो पुस्तकें देखने लगता और विलायत-यात्रा की चर्चा करता। दो-चार दिन भी ज्वर का प्रकोप बढ़ जाता तो जीवन से निराश हो जाता। किन्तु कई मास के पश्चात् जब उसे विश्वास हो गया कि इस रोग से मुक्त होना कठिन है तब उसने जीवन की भी चिन्ता छोड़ दी। पथ्यापथ्य का विचार न करता, घरवालों की निगाह बचा कर ओषधियाँ ज़मीन पर गिरा देता। मित्रों के साथ बैठ कर जी बहलाता। यदि कोई उससे स्वास्थ्य के विषय में कुछ पूछता तो चिढ़ कर मुँह मोड़ लेता। उसके भावों में एक शान्तिमय उदासीनता आ गई थी और बातों में एक दार्शनिक मर्मज्ञता पाई जाती थी। वह लोकरीति और सामाजिक प्रथाओं पर बड़ी निर्भीकता से आलोचनायें किया करता। यद्यपि बाबू चैतन्यदास के मन में रह रह कर शङ्का उठा करती थी कि जब परिणाम विदित ही है तब इस प्रकार धन का अपव्यय करने से क्या लाभ, तथापि वे कुछ तो पुत्र-प्रेम और कुछ लोकमत के भय से धैर्य्य के साथ दवा-दर्पन करते आते थे।

जाड़े का मौसम था। चैतन्यदास पुत्र के सिरहाने बैठे हुए डाकृर साहब की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देख रहे थे। जब डाकृर साहब टेम्परेचर लेकर (थर्मामीटर लगा कर) कुरसी पर बैठे तब चैतन्यदास ने पूछा—अब तो जाड़ा आ गया। आपको कुछ अन्तर मालूम होता है?

डाक्टर—"बिलकुल नहीं; बल्कि रोग और भी दुस्साध्य होता जाता है।"

चैतन्यदास ने कठोर स्वर में पूछा—तब आप लोग क्यों मुझे इस भ्रम में डाले हुए थे कि जाड़े में ये अच्छे हो जायँगे? इस प्रकार दूसरों की सरलता का उपयोग करना अपना मतलब साधने का साधन हो तो हो; इसे सज्जनता कदापि नहीं कह सकते।

डाकृर ने नम्रता से कहा—ऐसी दशाओं में हम केवल अनुमान कर सकते हैं और अनुमान सदैव सत्य नहीं होते। आपको ज़ेर-बारी अवश्य हुई, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी इच्छा आपको भ्रम में डालने की नहीं थी। शिवदास बड़े दिन की छुट्टियों में आया हुआ था। इसी समय वह कमरे में आ गया और डाकृर साहब से बोला—आप पिताजी की कठिनाइयों का स्वयं अनुमान कर सकते हैं। अगर उनकी बात नागवार लगी तो उसे क्षमा कीजिएगा।

चैतन्यदास ने छोटे पुत्र की ओर वात्सल्य की दृष्टि से देख कर कहा—तुम्हें यहाँ आने की क्या ज़रूरत थी। मैं तुमसे कितनी बार कह चुका हूँ कि यहाँ मत आया करो। लेकिन तुमको डर ही नहीं होती।

शिवदास ने लज्जित होकर कहा—मैं अभी चला जाता हूँ। आप नाराज़ न हों। मैं केवल डाकृर साहब से यह पूछना चाहता था कि भाई साहब के लिए अब क्या करना चाहिए।

डाकृर ने कहा—अब केवल एक ही साधन और है। इन्हें इटाली के किसी सैनेटोरियम में भेज देना

चाहिए। चैतन्यदास ने सजग होकर पूछा—कितना ख़र्च होगा ?

ज़ियादा से ज़ियादा ३ हज़ार। साल भर रहना होगा। निश्चय है कि ये वहाँ से अच्छे होकर आवेंगे ?

जी नहीं। यह तो एक भयङ्कर रोग है। साधारण बीमारियों में भी कोई बात निश्चयरूप से नहीं कही जा सकती।

इतना ख़र्च करने पर भी ये वहाँ से ज्यों के त्यों लौट आये तो ?

तो ईश्वर की इच्छा। आपको यह तसक़ीन हो जायगी कि इनके लिए मैं जो कुछ कर सकता था कर दिया।

(४)

आधी रात तक घर में प्रभुदास को इटाली भेजने के प्रस्ताव पर वाद-विवाद होता रहा। चैतन्यदास का कथन था कि एक सन्दिग्ध फल के लिए ३ हज़ार का ख़र्च उठाना बुद्धिमत्ता के प्रतिकूल है। शिवदास भी उनसे सहमत था। किन्तु उसकी माता इस प्रस्ताव का बड़ी दृढ़ता के साथ अनुमोदन कर रही थी। अन्त में माता की धिक्कारों का यह फल हुआ कि शिवदास लज्जित होकर उसके पक्ष में हो गया। बाबू साहब अकेले रह गये। तपेश्वरी ने तर्क से काम लिया। पति के सद्भावों को प्रज्वलित करने की चेष्टा की। धन की नश्वरता की लोकोक्तियाँ कहीं। इन शस्त्रों से विजयलाभ न हुआ तो अश्रुवर्षा करने लगी। बाबू साहब जल-बिन्दुओं के इस शर-प्रहार के सामने न ठहर सके। इन शब्दों में हार स्वीकार की—"अच्छा भाई, रोओ मत। जो कुछ तुम कहती हो वही होगा।"

तपेश्वरी—तो कब ?

"रुपये हाथ में आने दो"।

"तो यह क्यों नहीं कहते कि भेजना ही नहीं चाहते" ?

"भेजना चाहता हूँ किन्तु अभी हाथ ख़ाली है। क्या तुम नहीं जानतीं ?

बैङ्क में तो रुपये हैं ? जायदाद तो है ? दो-तीन हज़ार का प्रबन्ध करना ऐसा क्या कठिन है" ?

चैतन्यदास ने पत्नी को ऐसी दृष्टि से देखा मानों उसे खा जायँगे और एक क्षण के बाद बोले—"बिलकुल बच्चों की सी बातें करती हो। इटाली में ऐसी कोई सञ्जीवनी नहीं रक्खी हुई है जो तुरन्त चमत्कार दिखावेगी। जब वहाँ भी केवल प्रारब्ध ही की परीक्षा करनी है तो सावधानी से कर लेंगे। पूर्व-पुरुषों की सञ्चित जायदाद और रक्खे हुए रुपये में अनिश्चित हित की आशा पर बलिदान नहीं कर सकता"।

तपेश्वरी ने डरते डरते कहा—"आख़िर, आधा हिस्सा तो प्रभुदास का भी है" ?

बाबू साहब तिरस्कार करते हुए बोले—"आधा नहीं, उसको मैं अपना सर्वस्व दे देता; जब उससे कुछ आशा होती। यह ख़ानदान की मर्य्यादा और ऐश्वर्य्य बढ़ाता। और इस लगाये हुए धन का फल-स्वरूप कुछ कर दिखाता। मैं केवल भावुकता के फेर में पड़ कर धन का ह्रास नहीं कर सकता"।

तपेश्वरी अवाक् रह गई। जीत कर भी उसकी हार हुई।

इस प्रस्ताव के ६ महीने बाद शिवदास बी० ए० पास होगया। बाबू चैतन्यदास ने अपनी ज़मींदारी के २ आने बन्धक रख कर क़ानून पढ़ने के निमित्त उसे इँगलेंड भेजा। उसे बम्बई तक ख़ुद पहुँचाने गये। वहाँ से लौटे तो उनका अन्तःकरण सदिच्छाओं से परिपूर्ण था। उन्होंने एक ऐसे चलते हुए काम में रुपये लगाये थे जिससे अपरिमित लाभ होने की आशा थी। उनके लौटने

के एक सप्ताह पीछे अभागा प्रभुदास अपनी उच्च अभिलाषाओं को लिये हुए परलोक सिधारा।

(५)

चैतन्यदास मणिकर्णिका-घाट पर अपने सम्बन्धियों के साथ बैठे चिता-ज्वाला की ओर देख रहे थे। उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। पुत्र-प्रेम एक क्षण के लिए अर्थसिद्धान्त पर ग़ालिब आगया था। उस विरक्तावस्था में उनके मन में यह कल्पना उठ रही थी—सम्भव है, इटाली जाकर प्रभुदास स्वस्थ हो जाता। हाय! मैंने ३ हज़ार का मुँह देखा और पुत्र-रत्न को हाथ से खोदिया। यह कल्पना प्रति क्षण सजग होती जाती थी और उनको ग्लानि, शोक और पश्चात्ताप के बाणों से बेध रही थी। रह रह कर उनके हृदय में वेदना की शूल-सी उठती थी। उनके अन्तर की ज्वाला उस चिता-ज्वाला से कम दग्धकारिणी न थी। अकस्मात् उनके कानों में शहनाइयों की आवाज़ आई। उन्होंने आँख ऊपर उठाई तो मनुष्यों का एक समूह एक अर्थी के साथ आता हुआ दिखाई दिया। वे सबके सब ढोल बजाते, गाते, पुष्प आदि की वर्षा करते चले आते थे। घाट पर पहुँच कर उन्होंने अर्थी उतारी और चिता बनाने लगे। उनमें से एक युवक आकर चैतन्यदास के पास खड़ा हो गया। बाबू साहब ने पूछा—किस महल्ले में रहते हो?

युवक ने जवाब दिया—हमारा घर देहात में है। कल शाम को चले थे। ये हमारे बाप थे। हम लोग यहाँ कम आते हैं, पर दादा की अन्तिम इच्छा थी कि हमें मणिकर्णिका-घाट पर लेजाना।

चैतन्यदास—ये सब आदमी तुम्हारे साथ हैं?

युवक—हाँ, और लोग पीछे आते हैं। कोई सौ आदमी साथ आते हैं। यहाँ तक आने में सैकड़ों उठ गये, पर सोचता हूँ कि बूढ़े पिता की मुक्ति तो बन गई। धन और है ही किस लिए?

चैतन्यदास—उन्हें क्या बीमारी थी?

युवक ने बड़ी सरलता से कहा—मानों वह अपने किसी निज सम्बन्धी से बात कर रहा हो—बीमारी का किसी को कुछ पता नहीं चला। हरदम ज्वर चढ़ा रहता था। सूख कर काँटा हो गये थे। तीन वर्ष तक खाट पर पड़े रहे। जिसने जहाँ बताया वहाँ लेकर गये। चित्रकूट, हरद्वार, प्रयाग सभी स्थानों में ले ले कर घूमे। वैद्यों ने जो कुछ कहा, उसमें कोई कसर नहीं की।

इतने में युवक का एक और साथी आ गया और बोला—साहब मुँह देखी बात नहीं, नारायण लड़का दे तो ऐसा दे। इसने रुपयों को ठीकरे समझा। घर की सारी पूँजी पिता की दवा-दारू में स्वाहा कर दी। थोड़ी सी ज़मीन तक बेच दी। पर काल-बली के सामने आदमी का क्या बस है।

युवक ने गदगद् स्वर से कहा—भैया, रुपया-पैसा हाथ का मैल है। कहाँ आता है, कहाँ जाता है। मनुष्य नहीं मिलता। ज़िन्दगानी है तो कमा खाऊँगा। पर मन में यह लालसा तो नहीं रह गई कि हाय! यह नहीं किया, उस वैद्य के पास नहीं गया, नहीं तो शायद बच जाते।

हम तो कहते हैं कि कोई हमारा सारा घर-द्वार लिखा ले, केवल दादा को एक बोल बुला दे। इसी माया-मोह का नाम ज़िन्दगानी है। नहीं तो इसमें क्या रक्खा है? धन से प्यारी जान, जान से प्यारा ईमान। बाबू साहब आपसे सच कहता हूँ, अगर दादा के लिए अपने बस की कोई बात उठा रखता तो आज रोते न बनता। अपना ही चित्त अपने को धिक्कारता। नहीं तो मुझे इस घड़ी ऐसा जान पड़ता है कि मेरा उद्धार एक भारी ऋण

से हो गया। उनकी आत्मा सुख और शान्ति से रहेगी तो मेरा सब तरह कल्याण ही होगा।

बाबू चैतन्यदास सिर झुकाये ये बातें सुन रहे थे। एक एक शब्द उनके हृदय में शर के समान चुभता जाता था। इस उदारता के प्रकाश में उन्हें अपनी हृदय-हीनता, अपनी आत्मशून्यता, अपनी भौतिकता अत्यन्त भयङ्कर दिखाई देती थी। उनके चित्त पर इस घटना का कितना प्रभाव पड़ा, यह इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि प्रभुदास के अन्त्येष्टि-संस्कार में उन्होंने हज़ारों रुपये ख़र्च कर डाले। उनके सन्तप्त हृदय की शान्ति के लिए अब एक-मात्र यही उपाय रह गया था।

प्रेमचन्द

पृथ्वी का पुत्र।

आज-कल बड़े बड़े ज्योतिर्विदों का ध्यान चन्द्रमा की ओर आकृष्ट हुआ है। जो अनन्त काल से स्वर्ग का भूषण, अन्धकार का शत्रु, कुमुदिनी का प्राणाधार, कवियों की कल्पना, पुराण का प्रत्यक्ष देवता, वैद्यों की सञ्जीवनी और ज्योतिषियों का अवलम्ब है उस प्रकांश-पुञ्ज का हाल जानने के लिए भला कौन उत्सुक न होगा? किसी समय लोग चन्द्रमा के विषय में नाना प्रकार की कल्पनायें किया करते थे, परन्तु अब विज्ञान के प्रसार से लोगों की अज्ञानता नष्ट हो रही है और कल्पना का स्थान तर्क ले रहा है।

चन्द्रमा पर कभी मनुष्य थे या नहीं, यह जानना बड़ा कठिन है। जब हम उस शान्तिमय लोक की ओर देखते हैं तब हम विश्व की अनन्त महिमा का अनुभव करते हैं। चन्द्रलोक इतना विस्तृत है जितना कि रूस का साम्राज्य। परन्तु उसमें किसी जीव-जन्तु का पता नहीं। वहाँ न फूल खिलते, न वृक्ष उगते, न किसी प्रकार का शब्द सुन पड़ता है। यह कोई नहीं कह सकता कि वह कब से शून्य है।

समय एक-सा नहीं रहता। पहले जो बात स्वप्न में भी नहीं जानी जाती थी वह अब प्रत्यक्ष देखी जा रही है। हाल ही में प्रोफ़ेसर टामसन (J. A. Thomson) ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि चन्द्रमा इस भूमण्डल का ही एक भाग है। करोड़ों वर्ष पहले वह पृथ्वी से अलग हुआ था। कहते हैं कि कभी भूमण्डल का आकार नाशपाती के आकार के सदृश था और जब वह सूर्य के आस पास घूम रहा था तब उसका एक छोटा सा अंश टूट पड़ा और स्वतन्त्र होकर घूमने लगा। उसे पृथ्वी के आस पास घूमते और साथ ही सूर्य की परिक्रमा करते करोड़ों वर्ष बीत गये। पृथ्वी का टूटा हुआ वह भाग धीरे धीरे पृथ्वी से दूर होता गया और उस स्थान तक जा पहुँचा जहाँ कि वह अब स्थित है। यहाँ से चन्द्रलोक की दूरी पृथ्वी की परिधि से दस गुनी है।

यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि चन्द्रमा पृथ्वी से कैसे टूट पड़ा होगा। इस पर विचार करते ही हमारा मन चक्कर खाता है। परन्तु यह सम्भव है कि करोड़ों वर्ष पहले पृथ्वी पिघली हुई अवस्था में रही हो और ठण्ढी हो जाने के कारण उस पर तीस मील मुटाई का परत बन गया हो। हो सकता है, कि जिस समय पृथ्वी पिघली हुई अवस्था में थी उस समय उसमें से २०० करोड़ घन मील पृथ्वी फट कर उड़ गई हो और वह शून्य स्थान में स्थित हो गई हो। अधिकांश विद्वानों का यही मत है।

इसके अनन्तर चन्द्रमा का क्या हाल हुआ, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक पता लगा है, किसी भी मनुष्य ने चन्द्रमा का सम्पूर्ण भाग आज तक नहीं देखा। उसमें जीव-जन्तु बसते हैं या नहीं, इस बात का उल्लेख भी किसी ग्रन्थ में नहीं पाया जाता। हाँ, जिस समय पृथ्वी से चन्द्रमा अलग हुआ था उस समय उसमें किसी प्रकार के जीव-जन्तु नहीं थे, क्योंकि पृथ्वी उस समय अत्यन्त उष्ण अवस्था में थी, और ऐसी दशा में चन्द्रमा और पृथ्वी दोनों में जीव-जन्तुओं का रहना असम्भव था।

पृथ्वी से चन्द्रमा के अलग हो जाने के कारण पृथ्वी की गति मन्द हो गई; क्योंकि चन्द्रमा उसे सदा अपनी

ओर खींचे रहता है। परन्तु चन्द्रमा शीघ्रता से घूमने लगा और दूर दूर तक यात्रा करने लगा। पृथ्वी की ओर चन्द्रमा का खिँचाव और चन्द्रमा की ओर पृथ्वी का खिँचाव कभी भङ्ग न हुआ। आज भी वे दोनों साथ ही साथ घूमते हैं। यही कारण है कि पृथ्वी के किसी मनुष्य ने चन्द्रमा का दूसरा भाग नहीं देखा। चन्द्रमा के रूप को देखने से यही जान पड़ता है कि पृथ्वी से अलग हो जाने के अनन्तर उसका इतिहास आश्चर्यजनक रहा होगा। उस पर सूर्य की असह्य किरणें लगातार तीन सौ घण्टे तक पड़ती रहती हैं। ऐसी तीव्र गर्मी में हमारे समान प्राणियों का वहाँ जीवित रहना अशक्य है। चन्द्रमा का दूसरा भाग इतना ठण्ढा है जितना कि बर्फ़। ऐसी दशा में वहाँ मनुष्यों का रहना असम्भव प्रतीत होता है। पृथ्वी की क्रान्ति-सीमा पर जैसी असह्य गर्मी पड़ती है वैसी ही गर्मी चन्द्रलोक में दिन भर रहती है। वहाँ रात्रि के समय पृथ्वी के शीत कटिबन्ध के समान ठण्ढ पड़ती है। चन्द्रलोक पर बसनेवाले प्राणियों को क्रम क्रम से ऐसी कठिन गरमी और सरदी से सामना करना पड़ेगा जिसका कि हम स्वप्न में भी अनुभव नहीं कर सकते।

चन्द्रमा के आस पास वायु न रहने के कारण उस पर सूर्य की किरणें लम्ब-रूप में निर्बाध पड़ती हैं। उस पर बादलों का कोई समूह नहीं जिससे सूर्य की किरणों को रुकावट पहुँचे और ताप कम हो जाय। इसी लिए वहाँ सूर्य की किरणें बड़ी विकराल होती हैं। जब सूर्य का प्रकाश नहीं रहता तब वहाँ घोर अन्धकार छाया रहता है। हम जिसे एक महीना कहते हैं वह चन्द्रलोक के एक दिन-रात के बराबर है। वहाँ १५ दिन तक तीव्र प्रकाश और भीषण गरमी रहती है और १५ दिन तक घोर अन्धकार और असह्य शीत का साम्राज्य रहता है। हम उसकी कल्पना तक नहीं कर सकते।

अब हम यह पूछ सकते हैं कि जब पृथ्वी और चन्द्रमा एक ही साथ उत्पन्न हुए तब पृथ्वी से पहले चन्द्रमा की मृत्यु क्यों हुई? क्या कारण है कि पृथ्वी हरी भरी लताओं से पूर्ण है, रङ्ग विरङ्गे फूलों से आच्छादित है, नाना प्रकार के चित्र विचित्र जीव-जन्तुओं का क्रीड़ा-स्थल है; और चन्द्रमा में किस बात की त्रुटि है जिससे वह निर्जन तथा निस्सार है। इसका मुख्य कारण है चन्द्रमा का पृथ्वी से छोटा होना। चन्द्रमा में शक्ति का जो भाण्डार था उसका ह्रास हो गया। वे प्राणी जो वहाँ कभी रहे होंगे काल के गर्भ में लीन हो गये।

इस ब्रह्माण्ड में संसार की चार अवस्थायें हैं। पहली अवस्था में शक्तिशाली गैस का समूह है, जो ब्रह्माण्ड के चारों ओर इधर-उधर उड़ता फिरता है। एक समय हमारी पृथ्वी भी इसी अवस्था में थी। दूसरी अवस्था में शुक्र ग्रह है, जो पहले शक्तिशाली गैस के रूप में था परन्तु अब द्रव अवस्था में है। इसी तरह कभी हमारी पृथ्वी भी थी। तीसरी अवस्था में यह भूमण्डल है जिसका अन्तर्गत भाग अभी तक गर्म है, परन्तु ऊपरी सतह वायु से आच्छादित रहने के कारण जीव-जन्तुओं के बसने योग्य बन गई है। चौथी अवस्था में चन्द्रमा है जो नष्ट और निर्जन है। हमारी पृथ्वी की भी कभी न कभी यही अवस्था होगी।

प्रत्येक पिण्ड की उपर्युक्त चार अवस्थायें होती हैं। अभी पृथ्वी की तृतीय अवस्था है। चन्द्रमा चतुर्थ अवस्था में पदार्पण कर चुका है। सम्पूर्ण जीव, जल और वायु चन्द्रलोक से बिदा हो चुके हैं। वह निश्शब्द भी है। चाहे तोप चलाई जाय या पुराण पढ़ा जाय वहाँ कुछ भी सुनाई न पड़ेगा। यदि चन्द्रलोक में मनुष्य हों तो वे गूँगे और बहरे ही होंगे। क्योंकि आवाज़ वायु के कारण सुनाई देती है और वायु का चन्द्रलोक में पूर्णतः अभाव है। यदि वहाँ कुछ वायु हो भी तो वह इतनी पतली होगी जो नहीं के बराबर है।

इस निर्जीव लोक का दृश्य यथार्थ में बड़ा विचित्र और कौतूहलवर्धक है। यह वैज्ञानिकों के परिश्रम का फल है कि आज उसका कुछ हाल हम जानते हैं। पृथ्वी के उत्तरीय ध्रुव का हाल जानने के पहले ही मनुष्यों को चन्द्रलोक का उत्तरीय ध्रुव ज्ञात हो गया था। आफ्रिका महाद्वीप के भिन्न भिन्न भागों में भ्रमण करने के पहले ही लोगों ने चन्द्रलोक की यात्रा कर ली थी। खगोल के अध्ययन करनेवालों का पहला पाठ चन्द्रलोक ही था। भिन्न भिन्न समय में भिन्न भिन्न बातें उसके सम्बन्ध में कही तथा लिखी गई हैं।

प्राचीन काल में, जब दूरबीन का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, लोगों का यह अनुमान था कि चन्द्रमा पर अङ्कित चिह्न मनुष्य-कृत हैं, जैसा कि आज-कल के विद्वान् ज्योतिषो मङ्गल ग्रह पर बने हुए चिह्नों के विषय में अनुमान करते हैं। केपलर (Kepler) नामक ज्योतिषी यही सोचते रहे कि चन्द्रमा पर जो पर्वताकार दीवार है उसे मनुष्यों ने उठाया है। उनका कथन है कि सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से रक्षा पाने के लिए चन्द्रलोक के मनुष्यों ने इन दीवारों का निर्माण किया है। परन्तु यह सोचने के पहले उन्होंने इनकी विशालता और प्राचीनता पर ध्यान न दिया। जिसे देखने के लिए केपलर और गेलीलियो (Galileo) अपना जीवन-दान कर देते उसे अब लड़के और लड़कियाँ तक अनायास देख सकती हैं। दूरबीन से चन्द्रमा और देखनेवाले की आँखों के बीच केवल ४० मील का अन्तर रह जाता है। चन्द्रमा के आस पास वायु न रहने के कारण ४० मील की दूरी कभी कभी तीस मील अथवा उससे भी कम प्रतीत होती है। यथार्थ में दूरबीन अद्भुत वस्तु है। वह मनुष्यों को अपार दृष्टि-शक्ति प्रदान करती है। उसकी सहायता से मनुष्य दूसरे लोकों में भी भ्रमण कर सकता है; वहाँ के पर्वत, कन्दरायें आदि स्थानों को घूम फिर कर देख सकता है। कई ऐसे मनुष्य मिलेंगे जिन्होंने योरप का आल्प्स पर्वत नहीं देखा है; परन्तु वे चन्द्रलोक के आल्प्स से भली भाँति परिचित हैं। पृथ्वी का ज्वालामुखी देखने का सौभाग्य उन्हें नहीं हुआ; परन्तु चन्द्रलोक के ज्वालामुखी का दर्शन उन्होंने कर लिया है।

चन्द्रलोक के ज्वालामुखी पर्वतों का दृश्य मनुष्यों की कल्पना में भी नहीं आसकता। ये चन्द्रमा पर अस्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। इनका आकार इतना विशाल है कि पृथ्वी पर इनके समान कोई बड़ी वस्तु नहीं। इन पर्वतों की जन्मदात्री वह शक्ति है जो मानव-बुद्धि के लिए अगम्य है। चन्द्रलोक में सैकड़ों ज्वालामुखी पर्वत हैं, जिनके मुख से नितान्त द्रव वस्तुयें निकला करती हैं और बीस बीस मील की दूरी तक इधर-उधर बहा करती हैं। इन पर्वतों की ऊँचाई मीलों तक है।

पहले ही कहा जा चुका है कि चन्द्रमा इस भूमण्डल का एक खण्ड है और वह पृथ्वी का तीसवाँ भाग है जो पृथ्वी की उष्ण अवस्था में ही बड़ी शीघ्रता से अलग हो गया। पृथ्वी में जितना गुरुत्वाकर्षण है उसके ⅙ भाग के बराबर चन्द्रलोक में गुरुत्वाकर्षण है। इससे सिद्ध होता है कि पृथ्वी की अपेक्षा चन्द्रलोक में स्फोटन-शक्ति ६ गुनी अधिक है। पृथ्वी पर जिस ईंट का वज़न ६ सेर है उसका वज़न चन्द्रलोक में केवल १ सेर होगा। जो मनुष्य यहाँ ६ फुट कूद सकता है वही चन्द्रलोक में ३६ फुट कूद सकेगा। पृथ्वी पर रक्खी हुई तोप यदि १० मील की दूरी तक गोला फेंक सकती है तो चन्द्रलोक में वही ६० मील दूरी के क़िलों पर निशाना लगा सकेगी। कहने का अभिप्राय यह कि पृथ्वी के पदार्थों की अपेक्षा चन्द्रमा की वस्तुओं का भार ६ गुना कम है।

यद्यपि चन्द्रमा की अन्तर्गत-शक्ति हम लोगों के लिए कल्पनातीत है तथापि उसके विषय में हम बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं। चन्द्रमा का धरातल ज्वालामुखी पर्वतों के कारण कई स्थानों में ऊँचा उठ आया है। ज्वालामुखी पर्वतों की जड़ के समीप बहुत सी शुण्डाकार भूमि है, जिसमें से किसी किसी की ऊँचाई एक एक मील है। इसमें सन्देह नहीं कि इसी भयानक स्फोटन-शक्ति के प्रभाव से चन्द्रमा पर एक बृहत् गोलाकार दीवार बन गई है। कई ज्वालामुखी पर्वतों में ऐसी बड़ी बड़ी दरारें हैं जिनकी चौड़ाई लगभग एक मील है। एक ज्वालामुखी पर्वत ५० मील लम्बा चला गया है। उसका किनारा गली हुई धातु से भरा हुआ है। जान पड़ता है कि दीवार बनने के अनन्तर ये द्रव धातुयें बहती चली गईं और ख़न्दकों में जाकर एकत्र होगईं। इनके एकत्र होने से ख़न्दक चट्टानों से भर गया। कहा जाता है कि चन्द्रलोक के एक ज्वालामुखी पर्वत के भड़कने पर उसमें से एक हज़ार घन फुट लाल लाल गरम पदार्थ निकलता है। पाम्पियाई नगर के नाश होने के पूर्व विसूवियस नामक ज्वालामुखी के ऊपर एक बार एक बृहत् सेना-दल ठहरा था; परन्तु चन्द्रलोक के ज्वालामुखी पर्वतों के शिखर इतने उन्नत हैं कि उनमें से किसी एक पर इँगलेंड की सारी प्रजा चाहे तो ठहर सकती है। वहाँ के ख़न्दकों की चौड़ाई मील भर और उनकी लम्बाई १५० मील के लगभग है। इन ख़न्दकों की गहराई पृथ्वी के ऊँचे ऊँचे पर्वतों के शिखरों से

लगा कर गहरे समुद्र की तह तक की गहराई के बराबर है ।

चन्द्रलोक के ज्वालामुखी पर्वत के शिखर की चौड़ाई जितनी है और उसके ख़न्दकों की गहराई जितनी है, वहाँ के पर्वतों की उँचाई भी उतनी ही है । तीन फ़ुट चौड़े गोले पर यदि राई का एक दाना रक्खा जाय तो वह पृथ्वी के अत्यन्त ऊँचे पर्वत का प्रति रूप कहा जायगा ; परन्तु मटर का एक दाना यदि १ फ़ुट चौड़े गोले पर हो तो उससे चन्द्रमा के ख़ूब ऊँचे पर्वत का अनुमान हो सकेगा । चन्द्रलोक के पर्वत पृथ्वी के पहाड़ों से अधिक ढालू हैं और उनके दृश्य यहाँ के पर्वतों की अपेक्षा अधिक मनोहर हैं । वहाँ की एक पर्वत-श्रेणी, जिसका नाम ज्योतिषियों ने आल्प्स रक्खा है, तीन हज़ार पर्वत मिल कर बनी है । उस श्रेणी में ७०० चोटियाँ हैं । एक घाटी भी है जो ८० मील लम्बी और पाँच मील चौड़ी है । पृथ्वी से देखने पर वह ऐसी दिखाई देती है जैसे किसी शिल्पकार ने उसे चाकू से तराश कर बनाई हो । जिस प्रकार योरप के यात्री स्वीट्ज़रलेंड या एपीनाइन पर्वत-श्रेणी से सूर्योदय देखते हैं उसी प्रकार पाश्चात्य देश के ज्योतिषी चन्द्रलोक के आल्प्स पर्वत की चोटी पर से सूर्योदय का निरीक्षण करते हैं । यह पर्वत ४५० मील लम्बा है । सूर्योदय के समय इसकी चोटियों की छाया मैदान पर ८०, ९० मील तक लम्बी पड़ती है । इस बृहत् छाया से अधिक विचित्र चन्द्रलोक के चमकीले रास्तों को कहना चाहिए । ये चन्द्रमा में चलते हुए दिखाई पड़ते हैं । इनमें से एक रास्ता १७०० मील लम्बा है ; उसकी चौड़ाई २५ मील है । ये रास्ते पर्वतों और मैदानों से होते हुए ज्वालामुखी और घाटियों के उस पार तक चले गये हैं । सम्भव है कि ज्वालामुखी पर्वत की बड़ी बड़ी दरारों से निकली हुई द्रव वस्तुओं से इनकी उत्पत्ति हुई हो ।

इन रास्तों के समान चन्द्रमा का एक भाग और भी विलक्षण है । वह यहाँ से देखनेवालों को समुद्र की तरह दिखाई देता है । यथार्थ में यह समुद्र नहीं है; क्योंकि चन्द्रलोक में पानी का पूर्णतः अभाव है । जान पड़ता है कि यह मैदान पिघली हुई वस्तुओं के परत जम जाने से बना होगा । पहाड़ और दरारों के कारण इस मैदान में यहाँ वहाँ अनेक खण्ड दिखाई देते हैं । चन्द्रमा का केवल यही भाग शान्ति-मय और निर्जन है ।

चन्द्रमा पृथ्वी का मृत पुत्र कहा जाता है, परन्तु यह सिद्ध है कि इस ब्रह्माण्ड में न कोई मरता है, न किसीका कभी अन्त होता है । और इसी नियम के अनुसार पृथ्वी के मृत पुत्र को भी कीर्ति-पूर्ण अमरत्व प्राप्त है । चन्द्रमा यद्यपि मृत है तथापि वह पृथ्वी के जीवों को आनन्द-प्रदान करता है । जिस भाँति सूर्य की गर्मी से आँधी उत्पन्न होती है और पृथ्वी की समीपस्थ वायु को सञ्चालित करती है उसी भाँति चन्द्रमा के कारण पानी में हलचल होती रहती है और उड़नेवाली बीमारियों का दौर-दौरा रुक जाता है । चन्द्रमा स्वच्छता का मुख्य प्रतिनिधि है । कई एक समुद्र-तट-वासी इसे अपना शत्रु समझते हैं; परन्तु यह उनका भ्रम है ; क्योंकि संसार के कल्याण के लिए प्रकृति ने उसे अपना सहायक बना रक्खा है । चन्द्रलोक से भूलोक और भूलोक से चन्द्रलोक तक गुरुत्वाकर्षण का सम्बन्ध है । चन्द्रलोक की इसी शक्ति के कारण समुद्र में प्रति दिन दो बार ज्वार-भाटा उत्पन्न होता है । इससे समुद्र-तट सदा स्वच्छ रहता है और नदियों द्वारा सङ्गृहीत कूड़ा-कचरा बह जाता है । यदि ज्वार-भाटा न होता तो उड़नेवाली बीमारियों का मुख्य अड्डा समुद्र के किनारे पर ही बना रहता ।

न जाने चन्द्रमा कितने वर्षों से मनुष्यों को घड़ी का काम दे रहा है । ड्रेक, कोलम्बस, नेलसन आदि समुद्र-यात्री चन्द्रमा के कितने कृतज्ञ रहे होंगे । नाविकों के लिए अब तक ऐसी किसी घड़ी का आविष्कार नहीं हुआ जो चन्द्रमा के समान उन्हें ठीक ठीक समय बता सके ।

भूतकाल में चन्द्रमा ने पृथ्वी की बड़ी सेवा की । यदि चन्द्रमा की दया-दृष्टि पृथ्वी पर न होती तो आज संसार का यह रूप न रहता । चन्द्रदेव पृथ्वी की गति मन्द करने में करोड़ों वर्ष से लगे हुए हैं और यह उनके ही परिश्रम का फल है कि चार-पाँच घण्टे के दिन के बदले आज हम २४ घण्टे की दिन-रात देख रहे हैं । यह हम नहीं जान सकते कि जब पृथ्वी पर चार-पाँच घण्टे की दिन-रात होती तब उस पर किस प्रकार के प्राणी निवास करते । इसके अतिरिक्त यह समझना भी बड़ा कठिन है कि

चन्द्रमा जब पृथ्वी की गति को यहाँ तक मन्द कर देगा कि उसमें एक मास के बराबर एक दिन होने लगेगा (अर्थात् जब पृथ्वी का एक भाग ३० दिन तक प्रकाश और गर्मी सहन करेगा तब तक उसका दूसरा भाग भीषण अन्धकार और सरदी में रहेगा) तब भला उसका क्या हाल होगा । विद्वानों की राय है कि ये सब घटनायें एक न एक दिन पृथ्वी पर अवश्य होंगी ।

वैज्ञानिकों की इस भविष्यद्वाणी से हमें निराश न होना चाहिए । हम नहीं जानते कि भविष्य में चन्द्रमा पृथ्वी की गति को योंही मन्द करता रहेगा या नहीं । सम्भव है कि वह हमारे उद्योग में सहायता पहुँचा कर हमें कठिन परिश्रम से मुक्त कर दे ।

यह सच है कि बिना चन्द्रमा के ज्वार-भाटा नहीं आ सकता । यदि ज्वार-भाटा न होता तो जिस स्थान पर लन्दन, कलकत्ता आदि व्यापार के केन्द्रस्थल बसे हैं वहाँ वे कदापि न बसते । कुछ काल पहले जब नदियों के द्वारा नावों से ही व्यवसाय होता था तब संसार का वाणिज्य चन्द्रमा के अधीन था । ज्वार-भाटा के साथ ही जहाज़ तक नदियों में चले आते थे और तेज़ आँधी का सामना कर सकते थे ।

इस लेख को समाप्त करने के पहले चन्द्रदेव की प्रतिद्वन्द्विता करनेवाले एक व्यक्ति का हाल लिखना अनुचित न होगा । उनका नाम था जेम्स वाट (James Watt) । ये बाल्यकाल में बड़े आलसी थे । चुपचाप बैठे बैठे ये चाय की डेगची से निकलनेवाली भाफ़ को ताका करते थे । इनकी चाची को यह बात बुरी लगती थी और इसी कारण वह इनसे अप्रसन्न भी रहा करती थी । परन्तु जेम्स इन बातों की तनिक भी परवा न करता था । करता क्यों ? वह तो चन्द्रमा के साथ युद्ध करने की तैयारी में लगा था । इसके सिवा उसे युद्ध में विजयी होने के लक्षण भी दिखाई देते थे । यदि वह अपनी चाची की झिड़की के भय से युद्ध छोड़ अन्य धन्धे में लग जाता तो सम्भव था कि मनुष्य भाफ़ की शक्ति का उपयोग करना आज तक न जानते ।

जेम्स वाट ने भाफ़ की शक्ति को ढूँढ़ निकाला । इसी शक्ति के कारण जहाज़ ज्वार-भाटा के बन्धन से मुक्त हो गये और उनकी गति वायु से भी अधिक तेज़ हो गई । जहाज़ चलाने के लिए अब मनुष्यों को चन्द्रमा की आवश्यकता नहीं है । नाविकों को अब चन्द्रमा की सहायता की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती ।

इस प्रकार चन्द्रमा के अधिकार से छुटकारा पा कर मनुष्य तो स्वतन्त्र हो गये, परन्तु उन्हें अब इस बात की चिन्ता लगी है कि चन्द्रमा को किस प्रकार अपने बन्धन में डालें । मनुष्यों का विचार प्रायः निष्फल नहीं होता । सम्भव है, कभी चन्द्रदेव को मनुष्यों का दासत्व स्वीकार करना पड़े । यह नित्य देखने में आता है कि करोड़ों मन पानी अपनी सतह से कई फुट ऊपर उठा करता है और यह प्रचण्ड शक्ति व्यर्थ नष्ट हो जाती है । यदि यह शक्ति चाक के घुमाने में लगाई जाय तो आश्चर्य नहीं कि यह संसार भर की आधी जन-संख्या के बराबर कार्य कर सकेगी । एक दिन ऐसा अवश्य आवेगा जब चन्द्रमा की सहायता से मनुष्य अपने कारख़ानों में मशीन चलाया करेंगे । देखें, कब वह समय आता है जब चन्द्रदेव आकाश से उतर कर पृथ्वी पर चक्की चलाया करेंगे ।*

बनमालीप्रसाद शुक्ल

ब्रिटिश जनता के अधिकार ।

हम समझते हैं कि ब्रिटिश जनता को जितने अधिकार प्राप्त हैं उतने अधिकार शायद अन्य किसी देश की जनता को नहीं हैं । राज्य-शासन में उसे कितना अधिकार प्राप्त है, यह थोड़े में सुन लीजिए—

जनता के कार्य्य तभी तक अधिकारों के अन्तर्गत कहे जा सकते हैं जब तक वे नियम-विरुद्ध नहीं हैं । राजा और प्रजा में पिता-पुत्र का सम्बन्ध है । दोनों के पारस्परिक सद्भाव से राज्य अच्छी तरह चल सकता है । अतः दोनों के अधिकार इस

---

* प्रोफ़ेसर टामसन के एक प्रबन्ध का सारांश ।

प्रकार निश्चित हैं जिससे किसी को कोई कष्ट नहीं होता। दोनों का कार्य्य आनन्दपूर्वक चलता है। अतएव राजकीय क़ानून भी इस तरह बने होते हैं जिनसे व्यक्तिगत सुखों को तनिक भी धक्का न पहुँचे। क़ानूनन सबसे पहले हमें बोलने का अधिकार प्राप्त होता है। इससे हम अपने हृद्गत भावों को प्रकट कर सकते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि जनता का यह सबसे बड़ा अधिकार है। यदि प्रजा को अपना मत प्रकट करने का ही अधिकार न रहा तो राजा-प्रजा का पारस्परिक सम्बन्ध कब तक अक्षुण्ण रह सकता है। इसी अधिकार से जनता अपने हृदयगत भावों को निर्भीकता से प्रकट करके राज्य-शासन में सच्ची सहायता दे सकती है। शासन-प्रणाली कैसी भी हो, प्रजा की सहायता उसे अवश्य चाहिए। आज-कल प्रजामत का प्रकाशन सामयिक पत्रों के द्वारा होता है। अतएव पत्रों का स्वतन्त्र होना बहुत आवश्यक है। वही प्रजामत-प्रकाशन का मुख्य द्वार है। विलायत में प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जो चाहे लिख सकता है, छपा सकता है, बोल सकता है। अन्याय और अत्याचार होने पर वह गवर्नमेंट की नीति का खण्डन कर सकता है; वह उसकी नीति की निन्दा कर सकता है। पर इसका मतलब यह नहीं कि वह विषपूर्ण बातें कह कर देश में अराजकता फैला सकता है। किसी अन्याय के विरुद्ध वह आन्दोलन मचा सकता है, परन्तु आन्दोलन में अराजकता की ज़रा भी गन्ध न होनी चाहिए। अराजकता और आन्दोलन में बड़ा अन्तर है। एक दो अवसरों को छोड़ कर प्रायः सभी समय अराजकता फैलानेवाले बदमाश अथवा गुण्डे हुआ करते हैं। तमाशा देखने के लिए अथवा लूट-मार करने के लिए वे राष्ट्रीय उथल-पुथल करना चाहते हैं। परन्तु आन्दोलन करनेवाले सच्चे राजभक्त और देश अथवा जाति के हितेच्छु होते हैं। न्याय और सत्य पथ का अवलम्बन करके वे राजा से अन्याय-निवारण और न्याय-निदर्शन के लिए आग्रह करते हैं। इससे राजा की कोई हानि नहीं होती। किन्तु राजा अपनी भूल समझ लेता और उसे दूर करने का प्रयत्न करता है। सच बात तो यह है कि न्यायी राजा आन्दोलन से कभी नहीं डरता और न उसे दमन करने का प्रयत्न ही करता है। वह तो अपनी प्रजा को अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन करने का पूर्ण अधिकार देता है। विलायत में प्रजा के कामों में सरकार तब बाधा डालती है जब उसे यह आशङ्का होती है कि जनता में विद्रोह के भाव फैल जायँगे, अथवा जब कोई दूसरे के धार्मिक विश्वासों पर अनुचित आक्षेप करता है, अथवा जब कोई व्यक्ति अथवा दल किसी दूसरे व्यक्ति अथवा दल की मान-हानि करता है। इसके अतिरिक्त प्रजा जो कुछ करना चाहे कर सकती है। सरकार उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

विलायत में एक विशेषता यह है कि सरकार हवाई गप्पों को सुन कर अथवा यों ही सूखा सन्देह करके प्रजा के कार्य्य में हाथ नहीं डालती। उसे यह अधिकार नहीं कि वह दोष-युक्त (अराजकता-जनक) लेखों को छपने न दे अथवा छपने के पहले ही किसी प्रकार की रुकावट डाले। विलायत में लेखादि की जाँच (Censorship) की प्रथा बिलकुल ही नहीं। सन् १६९५ ईसवी से वह बिलकुल ही उठ गई है। किसी पत्र में यदि कोई लेख निकल जाय जिसे सरकार अनुचित समझती है तो वह लेखक पर मुक़द्दमा चला सकती है, पर पत्र का प्रचार नहीं रोक सकती। हाँ, नाटक खेलने के पहले सरकारी आज्ञा लेना ज़रूरी है। साधारणतः कोई लेख, नियम-भङ्ग करने पर भी, रोका नहीं जा सकता।

किन्तु, ऐसे दूषित लेखों के लिए लेखक को राजकीय क़ानून के अनुसार दण्ड दिया जाता है ।

ऐसे लेखों के निकलने पर पत्र के सम्पादक और प्रकाशक दोनों विलायत के क़ानून के अनुसार दण्ड के पात्र होते हैं । बेलजियम में, ऐसे समय में, इन लोगों को सरकार की ओर से सहारा मिलता है । परन्तु विलायत में यह बात नहीं है । यद्यपि दण्ड कठोर नहीं है, फिर भी उन्हें वह भुगतना ही पड़ता है । इसका उद्देश केवल यही है कि वे समझ बूझ कर लेख छापें और वही लेख छापें जो न्याय-सङ्गत और युक्ति-युक्त हो ।

प्रेस के अधिकार के विषय में कुछ बातें और सुनिए । यदि किसी प्रकाशक अथवा सम्पादक ने पार्लियामेंट अथवा सरकारी काररवाई के दोष निकाले और बुरा-भला कहा तो उसकी सत्यता प्रमाणित हो जाने पर वे दण्ड से सर्वथा मुक्त हैं । सरकार के विरुद्ध आन्दोलन करनेवाली सभा अथवा समिति की काररवाई का प्रचार निर्विघ्न किया जाता है । यदि वे सत्य हैं तो ज़रा भी डर नहीं । सरकार चूँ तक नहीं कर सकती । सरकार तो सत्य की खोज के लिए प्रजा को उलटा उत्साहित करती है । ऐसी काररवाइयों पर उचित टीका-टिप्पणी करने का एक और भी अधिकार उसने प्रजा को दे रक्खा है ।

विलायत में सम्पादक को इस बात का अधिकार है कि वह समस्त सार्वजनिक विषयों पर न्याय-सङ्गत टीका-टिप्पणी करे । सत्य को सुनने के लिए सरकार अपने कान सदा खुले रखती है । वह यह नहीं चाहती कि क़ानून के नाम से प्रजा पर किसी प्रकार का अत्याचार हो । सम्पादक की टिप्पणी चाहे जितने ज़ोरदार शब्दों में लिखी गई हो, उससे ध्वनि भी चाहे जैसी निकलती हो, यदि वह सत्य है तो न्याय्य है; क़ानून के अनुकूल है । सार्वजनिक बातों पर सम्पादक सत्य का पालन करते हुए, व्यक्तिगत सम्बन्धों को मिटा कर, स्वेच्छानुसार टीका-टिप्पणी कर सकता है । प्रत्येक प्रकाशित पुस्तक पर, प्रत्येक सार्वजनिक व्याख्यान-दाता पर, और प्रत्येक संवाद-दाता के लेख पर बिना किसी रुकावट के विलायत का पत्र-सम्पादक अपना मत, निर्भीकता के साथ, प्रकट कर सकता है । टीका करते समय उसे विशेष बन्धन नहीं । उसकी आलोचनायें सत्य और निष्पक्ष होती हैं ।

ब्रिटिश प्रजा को सार्वजनिक सभा करने का पूरा अधिकार है । वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति चाहे जहाँ जा सकता है, कोई भी किसी से सलाह ले सकता है, अत्याचार और अन्याय की आलोचना खुल्लमखुल्ला वह बिना किसी भय के कर सकता है । उसकी जिह्वा स्वतन्त्र है । व्याख्यान देकर वह समस्त प्रजा को अपने मत की ओर खींच सकता है । किसी अन्याय की यदि न्यायसङ्गत आलोचना हो रही है तो पुलिस का क्या अधिकार जो आकर उसमें दख़ल दे ।

कुछ अवसरों में सार्वजनिक सभा करना मना है । यदि मनुष्य, किसी क़ानून को भङ्ग करने के लिए, इकट्ठे हों और इसका पता पुलिस को लग जाय तो वह पहले इस बात का पता लगावेगी कि क्या सचमुच ही सभा का अभिप्राय क़ानून को भङ्ग करना अथवा जनता में अशान्ति की आग भड़काना है ? चाहे लोग सचमुच शान्ति-भङ्ग न करते हों, पर यदि उनके रङ्ग-ढङ्ग से यह जाना जाय कि वे शान्ति-भङ्ग करनेवाले हैं तो ऐसी अवस्था में प्रत्येक कर्म्मचारी का अधिकार ही नहीं, किन्तु कर्तव्य है कि वह ऐसी सभा को बन्द कर दे । यदि विद्रोह-वादियों की संख्या तीन अथवा इससे अधिक हो तो भी इस अधिकार का प्रयोग कर्म्मचारी कर सकते हैं ।

उस समय भी सभा बन्द करा दी जाती है जब उसकी बैठक आम सड़क पर होती हो और उससे आने-जानेवालों को कष्ट होता हो। कभी कभी सरकार की ओर से सभा न करने की आज्ञा दे दी जाती है; ऐसी अवस्था में जब सभा होने में विपत्ति की आशङ्का हो। परन्तु सभा न करने की ऐसी आज्ञायें उसी अवस्था में दी जाती हैं जब केवल तमाशा देखनेवाले मनुष्यों की संख्या अधिक है और लाभ के बदले हानि होने ही की अधिक आशङ्का है। यदि किसी सभा को भङ्ग करने का विचार हो, तो पहले उसे सूचना दे दी जाती है कि अब लोग अपने अपने घर जायँ और सभा न करें। वहाँ के प्रधान मन्त्री को भी यह अधिकार नहीं कि वह सूचना देने के पहले सभा-स्थल में एकत्र मनुष्यों पर कुछ भी ज़ोर-ज़ुल्म कर सके।

सभा हो, परन्तु किसी भी न्याय्य उद्देश से। सभा की सारी ज़िम्मेदारी नेताओं पर रहती है। यदि वे स्वयं अशान्ति न फैलावें तो भी, यदि उनकी सभा से नगर में शान्ति-भङ्ग हुआ तो वे दण्ड के पात्र होंगे। परन्तु, ऐसी अवस्था में भी वे एक-दम बड़े घर नहीं भेज दिये जाते या देश के बाहर नहीं निकाल दिये जाते। भविष्य में न्याय-विरुद्ध आचरण न करने के लिए उन्हें ज़मानत देकर सरकार को विश्वास दिलाना पड़ता है। ज़मानत के बाद फिर किसी दण्ड की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि लोग इतने से ही मौन साध लेते हैं और आगे अशान्ति फैलाने की उन्हें हिम्मत नहीं होती। न्याय के अनुसार आन्दोलन करनेवालों पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जाता।

एक बात और है। यद्यपि क़ानून के अनुसार अन्यायाचरण के विरोध में सभा हो सकती है तथापि यह आवश्यक है कि उसकी काररवाई से जनता में अशान्ति न फैले। सन् १९०१ ईसवी में रोमन कैथलिक्स (Roman Catholics) धर्म्म-सम्प्रदाय के विरुद्ध लिवरपुल के प्रोटेस्टेन्ट (Protestant) धर्म्मावलम्बियों ने एक सभा की थी। इस सभा में कोई ६००० मनुष्य इकट्ठे हुए थे। सभा में व्याख्यानदाता वाईस साहब (Mr. Wise) ने अपने भाषण के समय जोश में आकर रोमन कैथलिकों को 'रक्त-ग्रीव' (Red Necks) के नाम से पुकारा। इस नाम से चिढ़ कर रोमन-कैथलिकों ने प्रोटेस्टेन्टों पर हमला किया। इससे दोनों दलों के बीच खुल्लमखुल्ला लड़ाई हो गई। यद्यपि व्याख्यानदाता का भाषण क़ानून के विरुद्ध न था और वह स्वयं यह नहीं चाहता था कि दोनों में लड़ाई हो, फिर भी पुलिस ने उसका चालान किया और मैजिस्ट्रेट ने, स्थानीय क़ानून के अनुसार, उससे ज़मानत ली। इस घटना से पता लगता है कि जनता को उतने ही अधिकार प्राप्त हैं जो न्याय्य हैं, जिससे शान्ति का भङ्ग नहीं होता। सरकार के विरुद्ध अराजकता फैलाने का अधिकार जनता को नहीं। वह आन्दोलन करके सरकार पर अपने विचार प्रकट कर सकती है। जो काम उसको करना हो उसे वह खुल्लमखुल्ला करे; पत्रों में उनका उल्लेख करे; पर अराजकता या अशान्ति न फैलावे। सच बात तो यह है कि छिप कर काम करनेवाले देश के भक्त नहीं कहाते। उनसे देश का भला नहीं होता, प्रत्युत हानि होती है। किन्तु किस देश में? केवल उस देश में जहाँ की सरकार न्यायी है, जहाँ की सरकार ने अपनी प्रजा को सच बात कहने के पूर्ण अधिकार दे रक्खे हैं। पर उस देश में गुप्त रीतियों से काम होना अति स्वाभाविक है जहाँ की सरकार अपने ही सुखों को देखती है और प्रजा के स्वत्व और अधिकार छीन लेती है। सत्य कभी नहीं छिप सकता। वह इतना दुर्बल नहीं। किसी न किसी दिन उसका

प्रकाश फैल ही जाता है और अपनी बाधाओं को नष्ट करके वह यह घोषणा कर देता है कि 'यतो धर्म्मस्ततो जयः' ।*

मनोहरप्रसाद मिश्र

विविध विषय

१—उदारता में उफान ।

गवर्नमेंट को सूबे आगरा के ज़मींदारों और अवध के तअल्लुकेदारों के हक़ों की रक्षा का अधिक नहीं तो, उतना ख़याल ज़रूर है जितना कि इन लोगों के काश्तकारों के हक़ों की रक्षा का है। तिस पर भी अन्य ज़मींदारों की अपेक्षा अवध के तअल्लुकेदारों की ओर गवर्नमेंट का ध्यान कुछ अधिक ही रहता है। बात यह है कि पचास साठ वर्ष पहले इन तअल्लुकेदारों से गवर्नमेंट का थोड़ा बहुत काम निकल चुका है। एक कारण और भी है। वह यह कि अवध का सूबा पहले आगरे के सूबे से अलग था। इसी से दोनों सूबों के काश्तकारी और ज़मींदारी क़ानून में विशेष अन्तर है। आगरे के सूबे में कुछ समय तक ज़मीन बराबर जोतने से काश्तकार को कब्ज़ेदारी का हक़ हासिल हो जाता है, अवध में कभी नहीं होता। अवध में हर सात वर्ष बाद काश्तकारों को ईख की तरह दबा कर इज़ाफ़ारूप रस निकालने का इख़तियार तअल्लुकेदारों को हासिल है, आगरे के सूबे में नहीं। अवध में काश्तकार यदि तहरीरी इजाज़त न ले ले तो हज़ारों रुपया पुख़्ता कुवा बनाने में ख़र्च करने पर भी, बेदख़ल हो जाने पर, तअल्लुकेदार साहब से मुआविज़े की शकल में एक हब्बा भी न मिले। पर इस तरह की तहरीरी इजाज़त हासिल करने का क़ानून सूबे आगरे में नहीं। हथियार रखने के क़ानून में भी कुछ ऐसे ही भेद-भाव देखे जाते हैं। इनके सिवा और भी बहुत सी बातें ऐसी ही हैं। यह तअल्लुकेदारों का सौभाग्य है, और क्या ! ये जो नये कौंसिल अगली जनवरी से सङ्गठित होंगे उनमें भी तअल्लुकेदारों की संख्या कुछ अधिक ही रहेगी। अवध के तअल्लुकेदार अपने चार प्रतिनिधि प्रान्तीय कौंसिल में भेज सकेंगे, सूबे आगरे के ज़मींदार सिर्फ़ दो ! इन लोगों ने अपने प्रतिनिधि अलग भेजने का हक़ हासिल कर लिया है। यह शायद इसलिए कि इन लोगों को सर्वसाधारण जनों पर विश्वास नहीं। ये मन में डरते होंगे कि बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनसे इनका तो लाभ है, पर अन्य लोगों की—विशेष कर इनके काश्तकारों की—हानि है। जो चीज़ इनके लिए अमृत, वही काश्तकारों के लिए कालकूट है। ये कहते होंगे, इस दशा में, सर्वसाधारण जनों के मुखिया या प्रतिनिधि हमारे मुखिया कैसे हो सकते हैं ? अथवा, सम्भव है, गवर्नमेंट ने ही कुछ सोच समझ कर तअल्लुकेदारों और ज़मींदारों को अपने प्रतिनिधि अलग भेजने की ज़रूरत समझी हो। कुछ भी हो, इस विषय में, अलगाव के प्रबन्ध से ही दोनों पक्षों की बेहतरी हो सकती है। यह ठीक। परस्पर न पटे तो अलग ही अलग सही। पर अलग होकर भी कुछ तअल्लुकेदार और ज़मींदार अपने काश्तकारों के—सर्वसाधारण जनों के—मिहमान बन जाना चाहते हैं। सर्वसाधारण जन यदि तअल्लुकेदारों या ज़मींदारों की तरफ़ से कौंसिल के मेम्बर बनने का हौसिला दिखावें तो वे शायद पागल समझे जायँ ; पागल नहीं तो उपहासपात्र ज़रूर ही हो जायँ। गवर्नमेंट तो उनकी बात भी न सुने। पर, देखते हैं कि कुछ तअल्लुकेदार और ज़मींदार साहब अपनी चार चार और दो दो मेम्बरी अपने फ़िरक़ों के लिए अक्षुण्ण रख कर सर्वसाधारण के लिए रक्षित मेम्बरी में से भी कुछ अंश हड़प कर जाने की चेष्टा कर रहे हैं। यह चेष्टा छिपे छिपे नहीं, डङ्के की चोट हो रही है। अख़बारों में लेख लिखे जा रहे हैं, हस्तपत्रक बँट रहे हैं। दूतों और एजंटों की दौड़-धूप हो रही है। किस लिए ? इसलिए कि हमारे अमुक सरकार साहब को ही आप वोट दीजिएगा। सुना साहब ! मैं तो आपका विश्वास नहीं करता; इससे अपना चुनाव अलग कराता हूँ। तुम मेरा विश्वास कर लो और मुझे ही अपना प्रतिनिधि बना डालो ! अच्छा साहब, आप ही को बनावेंगे। फ़रमाइए, आप अपने इलाके, ज़िले, क़सबे या शहर के लोगों की क्या क्या ख़िदमतें करेंगे। जवाब

---

* एक अँगरेज़ी लेख के आधार पर ।

इसका कुछ कुछ इस प्रकार दिया जाता है—हमारे सरकार गाँव गाँव मदरसे खुलवा देंगे, गांव गांव दवाख़ाने जारी करा देंगे, पुलिस को क़ानूनी हद के बाहर पैर न रखने देंगे, जगह जगह कचहरियाँ खुलवा देंगे—वग़ैरह, वग़ैरह। क्या कहना है, उदारता हो तो ऐसी! गुर्बापरवरी हो तो ऐसी! हुज़ूर, आप यह तो सब करेंगे ही। इसके लिए आपको पहले ही से धन्यवाद। पर दया करके आप अपने लैंड रेविन्यू ऐक्ट और रेंट एक्ट की कोई दफ़ा मनसूख़ कराने या उसमें तरमीम कराने की भूल कर भी कोशिश न कीजिएगा। ऐसा न हो कि कहीं आपकी उदारता में उफान आ जाय और आप घर-फूक तमाशा देखने लगें। उदारता के आवेश में, सम्भव है, आप कुछ का कुछ कर डालें। इससे बेहतर है आप अपने ही पक्षवालों का प्रतिनिधित्व करें। सर्वसाधारण को, जिनमें अधिकतर आपके काश्तकार ही हैं, उनके भाग्य के भरोसे छोड़ दें। वे चाहते हैं कि आपकी सात सालवाली क़ैद दूर हो जाय; आपके पक्षवाले चाहते हैं, बनी रहे। वे चाहते हैं, लगान या मालगुज़ारी की कोई हद निश्चित कर दी जाय; आपके पक्षवाले चाहते हैं, वह अनिश्चित ही रहे। वे चाहते हैं कि ज़मीन कुछ समय तक जोतने बोने से उनका भी उस पर कुछ अधिकार हो जाय; आपके पक्षवाले चाहते हैं, यह बात कभी न हो। फिर आप ही फ़रमाइए, आप हमारे प्रतिनिधि कैसे हो सकते हैं। आपकी पूर्व दिशा, और सब लोगों की पश्चिम। ज़मीन के सम्बन्ध में जिस बात से आपका लाभ उसी से औरों की हानि। और ज़मीन ही से इन बेचारों के जीवन-मरण की समस्या हल हो सकती है। पर उसी में आप बाधक हो रहे हैं। यह बात नहीं कि सब तअल्लुक़ेदार या सब ज़मींदार ऐसे ही हैं। नहीं, उनमें से कुछ सचमुच ही उदार और कृषक-वत्सल हैं। पर अधिक संख्या इसके विरुद्ध स्वभाववालों ही की है। अतएव, दया-निधान! आपकी और अन्य सर्व-साधारण की कभी पट नहीं सकती। आप अलग रहें, वे अलग। इसीसे दोनों की स्वार्थ-सिद्धि या हित-साधन की सम्भावना है।

२—नये कौंसिलों में देशी भाषायें।

जनवरी १९२१ से जिन नये कौंसिलों (व्यवस्थापक सभाओं) का सङ्गठन होगा उनके कार्य्य-सञ्चालन-सम्बन्धी नियम गवर्नमेंट ने प्रकाशित कर दिये हैं। सौभाग्य से इन कौंसिलों में गवर्नमेंट देशी भाषाओं को भी दाद देनेवाली है। प्रान्तिक कौंसिलों की काररवाई, साधारण तौर पर, होगी तो अँगरेज़ी में, पर जो मेम्बर धारा-प्रवाह अँगरेज़ी न बोल सकते होंगे वे अपने सुभीते के अनुसार किसी प्रान्तिक भाषा में अपना वक्तव्य प्रकट कर सकेंगे। तथापि कौंसिल के सभापति को अधिकार होगा कि वे मेम्बरों को उसी भाषा में बोलने की अनुमति दें जिस भाषा का, सभापतिजी की समझ के अनुसार, उनको अच्छा ज्ञान होगा। अर्थात् यदि कोई मेम्बर हिन्दी बोलना चाहे और सभापति जी की समझ यह हो कि वह अँगरेज़ी अच्छी बोल सकता है तो उसे अँगरेज़ी ही बोलनी पड़ेगी। यह लगाम बहुत खल जायगी। नियम यह होना चाहिए कि मेम्बर अपने प्रान्त की जिस प्रचलित भाषा में चाहे बोले। पर सरकार की आज्ञा टाल कौन सकता है? बड़े कौंसिलों अर्थात् लेजिसलेटिव असेम्बली और कौंसिल आव स्टेट की भी काररवाई अँगरेज़ी ही में होगी। तथापि उनके सभापतिओं को अधिकार रहेगा कि जो मेम्बर अँगरेज़ी नहीं जानते उन्हें किसी देशी भाषा में बोलने की अनुमति दे दें। यहाँ "धारा-प्रवाह" की पख़ नहीं लगाई गई। शायद इसलिए कि इन कौंसिलों में कुछ ऐसे भी बड़े बड़े आदमियों के पहुँच जाने की सम्भावना है जो अँगरेज़ी में बिलकुल ही कोरे होने के दावेदार हैं। ख़ैर, इन पखों और कोर-कसरों के होने पर भी, नये छोटे बड़े कौंसिलों में कभी कभी हिन्दी, उर्दू, बँगला, मराठी, गुजराती और तामील तथा तैलगू आदि भाषाओं की भी मधुर ध्वनि सुन पड़ने की आशा है। अभी आरम्भ में इतना ही बहुत है।

३—रियायती व्यापार।

गत फ़रवरी में, एक सरकारी मेम्बर ने बड़े लाट की कौंसिल में एक प्रस्ताव उपस्थित किया। उसमें कहा गया कि एक कमिटी बनाई जाय। वह इस बात पर विचार करे कि ब्रिटिश राजसत्ता के अधीन देशों से जो चीज़ें भारत में आती हैं उन पर अन्य देशों की अपेक्षा कम महसूल लगाने से लाभ होगा या हानि। कई देशी मेम्बरों ने इस

का विरोध किया। पर सरकारी प्रस्ताव पास ही हो गया। कमिटी बनी। उसने सब बातों पर विचार करके अपनी रिपोर्ट दी। वह रिपोर्ट अब गैज़ट आव् इंडिया में प्रकाशित हुई है। कमिटी की राय है कि अँगरेज़ी गवर्नमेंट के अधीन देशों से भेजी गई चीज़ों पर रियायती महसूल लगाने से न विशेष लाभ ही की सम्भावना है, न हानि ही की। उसका कथन है कि जो देश ब्रिटिश-सत्ता के बाहर हैं उनकी चीज़ों पर अधिक महसूल लगा देने से वे बेचारे भारत से बदला न ले सकेंगे। क्योंकि उन्हें भारतीय कच्चे माल की ज़रूरत है। कल्पना कीजिए कि जर्मनी ब्रिटिश-सत्ता के बाहर का देश है। वह भारत को रङ्ग बहुत भेजता है। इँगलेंड से भी कुछ रङ्ग आने लगा है। अब यदि इँगलेंड से आये हुए रङ्ग पर रियायती महसूल लगाया जाय और जर्मनी से आये हुए पर उससे अधिक, तो भी जर्मनी कुछ कर धर न सकेगा। क्योंकि युद्ध के कारण उसके अधिकांश उद्योग-धन्धे नष्ट हो चुके हैं; उसे इस समय कच्चे माल की बड़ी ज़रूरत है। अब यदि वह रङ्ग के कड़े महसूल का बदला भारत से जर्मनी भेजे गये चमड़े और चपड़े पर कड़ा महसूल लगा कर लेगा तो उसी की हानि होगी। माल कम जायगा; वह जर्मनी न जाकर ऐसे देशों को अधिक भेजा जायगा जो कड़ा महसूल नहीं लेते। इन्हीं दलीलों के आधार पर कमिटी ने राय दी है कि आज-कल की स्थिति को देखते रियायती महसूल लगाने से भारत की हानि की विशेष सम्भावना नहीं। पर साथ ही उसने लाभ की भी विशेष सम्भावना नहीं बताई और अपनी इस सम्मति की आधार-भूत दलीलें भी दी हैं। यह सब कुछ तो उसने कहा, पर दबी ज़बान कहा है। उसने इस सम्मति के सम्बन्ध में एक शोशा रक्खा है। उसका ख़याल है कि कोई निश्चित राय दे सकने के लिए उसके पास यथेष्ट सामग्री और यथेष्ट प्रमाण नहीं। ऐसे अनेक काग़ज़-पत्र और लेखे इत्यादि प्राप्त करने के साधन उसे प्राप्त नहीं जिनको देखे बिना इस विषय में कोई निश्चय नहीं किया जा सकता। इस कारण उसने सिफ़ारिश की है कि ज़रूरत हो तो एक कमिशन (बड़ी कमिटी) की नियुक्ति की जाय। वह कमिशन इस विषय के ज्ञाताओं की गवाही ले, जो जो काग़ज़-पत्र दरकार हों सब प्राप्त करे, देश में जहाँ जीं चाहे जांच के लिए घूमे-फिरे। तब वह इस विषय में जैसी सम्मति दे उसके अनुसार गवर्नमेंट काम करे। वह यदि कहे कि ब्रिटिश-सत्ता के अधीन देशों से आई हुई चीज़ों पर कम महसूल लगाना चाहिए तो कम लगाया जाय। न कहे तो जैसी स्थिति आज-कल है, वैसी ही बनी रहने दी जाय।

सो अभी ये उमड़े हुए बादल जहाँ के तहाँ हीं लटक रहे हैं। कुछ व्यापार-कला-कुशल लोगों का आशय तो यही जान पड़ता है कि इँगलेंड आदि देश अपने यहाँ की बनी हुई जो चीज़ें भारत को भेजें उन पर कम महसूल लगाया जाय जिसमें उनकी ख़ूब कटती हो और भेजनेवालों को ड्योढ़ा दूना मुनाफ़ा मिले। जो देश ब्रिटिश-सत्ता के बाहर हैं उनकी चीज़ें भारत में सस्ती भी पड़ें तो भी उन पर ख़ूब डट कर महसूल लगा दिया जाय। फल इसका यदि यह हो कि ये चीज़ें भारतीयों को महँगी पड़ें तो उनकी बला से। और यदि ये बाहरवाले देश भारत के कच्चे माल—रुई, चमड़ा, ग़ल्ला, तेलहन, लाख आदि—पर वैसा ही कड़ा महसूल लगा कर इन चीज़ों का अपने यहाँ भेजा जाना रोक दें या उनकी बिक्री में रुकावट पैदा कर दें, या भारतीय व्यापारियों का मुनाफ़ा कम कर दें तो भी उनकी बला से। उन्हें अपने काम से काम। पर अभी ऐसी मनमानी घरजानी क्रिया का समय कुछ दूर मालूम होता है। सरकार भी अब जो कुछ करेगी पहले से अधिक सोच समझ कर करेगी। क्योंकि उसके काम में थोड़ी बहुत रुकावट पैदा कर देने के अल्प स्वल्प साधन उसने स्वयं ही अब भारतीयों को दे डाले हैं।

४—जापान की व्यापार-वृद्धि।

कुछ क्षुद्राशय मनुष्यों का ख़याल है कि अँगरेज़ों की जाति बनियों की है। क्योंकि वाणिज्य-व्यवसाय करना वे ख़ूब जानते हैं। वाणिज्य की बदौलत ही उन्होंने इस देश पर अपना अधिकार जमाया है। बनिज करते करते ही वे शासक बन जाते हैं। मालूम नहीं इन लोगों के कथन में कितना सत्यांश है और है या है भी नहीं। हमारी समझ में तो इन्हें नीतिनिपुणों की जाति कहना चाहिए। और भगवान् भला करे, किसी का जी चाहे तो इन्हें कूटनीति-कुशलों की भी जाति कह सकता है, पर बनियों की जाति

नहीं। पहले इस प्रकार के कथन के लिए चाहे कुछ आधार रहा भी हो, पर अब नहीं। अब तो वह आधार अन्यत्र ही खिसक गया है। अब उसने और सबको छोड़ जापान का आसरा लिया है। इस समय यदि कोई देश बनियों की जाति कहलाने का हक़दार है तो वह जापान ही है। इसके गतपूर्व नोट में जिस कमिटी का उल्लेख किया गया है उसी की रिपोर्ट से इस नूतन तत्त्व का सप्रमाण पता लगा है। पता पहले भी लग गया था; पर उस पते का आधार खूब पक्का न था। अब वह उतना ही पक्का हो गया है जितना कि गङ्गाघाट के पुल के खम्भों का सीसा पिलाया हुआ आधार। जापान के भारत-सम्बन्धी व्यापार का लेखा देते समय कमिटी ने जापान की व्यापार-वृद्धि को देख कर भय, आतङ्क, निराशा, उत्साह, उद्वेग और राम जाने किन किन भले-बुरे भावों की उद्भावना की झलक दिखाई है। कहीं कहीं तो शायद उसने अवाच्य अथवा अप्रकाश्य बातें भी कह डाली हैं। क्योंकि सरकार ने कमिटी की जो रिपोर्ट गैज़ट में प्रकाशित की है उसमें कई जगहें तारका-चिह्न लगा कर कोरी छोड़ दी गई हैं। रिपोर्ट की कुछ बातें सुनिए—

१९१४-१५ ईसवी में जापान ने जितने का माल भारत भेजा था, उसके अगले साल उससे दूने का भेजा। तीसरे साल उस दूने का भी दूना भेजा। यहाँ तक कि गत वर्ष आये हुए जापानी माल का मूल्य १९१४-१५ के माल से अठगुना हो गया था। देखते जाइए! हिन्दुस्तान से माल मँगाने और उसे भेजने में अँगरेज़ों की विलायत का नम्बर बहुत समय से पहला चला आ रहा है। उसके बाद और देशों का नम्बर था। पर वे सब अब पीछे पछाड़ दिये गये हैं। अब तो विलायत के बाद जापान ही का नम्बर है। १९१३-१४ में अँगरेज़ों की विलायत ने ७ करोड़ ८० लाख पौंड का माल भारत भेजा था और जापान ने सिर्फ़ ३० लाख पौंड का। पर १९१८-१९ में विलायत से सिर्फ़ ५ करोड़ १० लाख पौंड का माल आया; पर जापान से आया २ करोड़ २० लाख पौंड का! देखिए, पाँच ही वर्षों में जापान के आयात माल की क़ीमत ३० लाख से २ करोड़ २० लाख पौंड हो गई। लगभग अठगुनी वृद्धि! फिर भला व्यापारियों को आतङ्क और भय न हो तो क्या हो। पेट की रोटी छिनने का सामान होता देख कौन शान्त रह सकता है। महायुद्ध के पहले विदेशों से जो चीज़ें भारत आती थीं उनमें से सिर्फ़ २½ फ़ी सदी जापान से आती थीं और भारत से ७½ फ़ी सदी जापान जाती थीं। और अब? अजी साहब, अब तो जापान सिर्फ़ सूत और सूती कपड़ा ही ४७ फ़ी सदी के हिसाब से हिन्दुस्तानी बाज़ारों में पाटता चला जा रहा है। उधर उसकी रुई की ख़रीद भी भारत में बड़ी बेढब जारी है। जापान ने तो अपना व्यापारी जाल सा भारत में बिछा दिया है। जापानी बैङ्कों की शाखायें कलकत्ते, बम्बई में खुल गई हैं। जापानी कोठीवालों की संख्या यहाँ के बड़े बड़े नगरों में दिन पर दिन बढ़ रही हैं। जापान की जहाज़ी कम्पनियाँ अपने जहाज़ भारत और जापान के बीच, निर्बन्ध-रहित होकर, चला रही हैं। जापानी सौदागरों और कोठीवालों के दूत सैकड़ों की संख्या में आ गये हैं। वे नये नये कारोबार खोल रहे हैं, नये नये ग्राहक बना रहे हैं, नया नया माल मँगाने के लिए "इंडेंट" भेज रहे हैं। बाज़ारों में घूम घूम कर विलायत की बनी हुई चीज़ें देख देख कर वे उनसे भी सस्ती बनवा कर अपने देश से भिजवाने की आयोजना कर रहे हैं। जापानी चीज़ों के निर्ख़नामे, बाज़ार-दर, फ़ेहरिस्तें और न मालूम क्या क्या बलायें, सैकड़ों, सहस्रों ही नहीं, लाखों की तादाद में यहाँ बाँटी जा रही हैं। दस वर्ष पहले सिर्फ़ ३२ जापानी भारत में थे। और अब हैं दो हज़ार से भी ज़ियादह! इसी से कहते हैं कि व्यापार-कौशल में—बनियापन में—जापान इस समय बहुत आगे बढ़ गया है। अतएव इस देश में, यदि कोई विदेशी जाति बनिया कही जा सकती है तो जापानियों ही की जाति कही जा सकती है।

रिपोर्ट से मालूम होता है कि जो माल विलायत से भारत आता है उसे पूरे तौर पर जापान हथियाना चाहता है। वह कुछ और भी करना चाहता है। विलायती व्यापारियों की कुछ कोठियाँ इस देश में हैं। वे अपने देश का माल मँगा कर उससे सारे भारत को पाट देती हैं। जापानी यह भी करते हैं। उन्होंने भी अपनी कोठियाँ खोल दी हैं। वे भी अपने देश के माल का प्रचार भारत के कोने कोने में कर रहे हैं।

यह अवस्था देख कर सरकार या सरकारी मेम्बर यदि ब्रिटिश राजसत्ता के बाहरवाले देशों की चीज़ों पर कड़ा महसूल लगा कर उनकी थोड़ी सी रोक-थाम करना चाहें तो इसमें कुछ भी आश्चर्य्य की बात नहीं। हाँ, सङ्कोच की बात ज़रा सी है। क्योंकि जापान ब्रिटिश गवर्नमेंट का मित्र है और अपने बुद्धिबल से अपना रोज़गार बढ़ा रहा है। उसके व्यापार का यदि नियन्त्रण किया जायगा तो उसे, तथा कुछ और लोगों को भी, खटकेगा ज़रूर।

५—फ़ौजी और शिक्षा-सम्बन्धी ख़र्च।

इस देश में जितने सामयिक पत्र अँगरेज़ी भाषा में निकलते हैं, "माडर्न रिव्यू" सबसे बढ़ चढ़ कर है। एक भी अन्य पत्र इसकी बराबरी नहीं कर सकता। अन्यान्य देशों के सामयिक पत्रों में भी बहुत कम ऐसे निकलेंगे जो इसकी बराबरी कर सकें। इस पत्र के सम्पादक के मालूमात बहुत बढ़े हुए हैं। इसकी आलोचनायें बड़े मार्के की होती हैं। विपक्षियों के आक्षेपों का यह ऐसा मुँहतोड़ जवाब देता है कि देखते ही बनता है। सचाई को यह पत्र सबसे बड़ा गुण समझता है। अपनी और अपने देश की हानि ही क्यों न होती हो, सच कहने से यह कभी नहीं मुँह मोड़ता। अप्रेल १९२० की संख्या में इस पत्र के सम्पादक ने दो नोट बड़े बेढब दिये हैं। एक में यह दिखाया है कि फ़ौजी ख़र्च के लिए सरकार को कभी रुपये की कमी नहीं खलती, पर शिक्षा-प्रचार के लिए वह सदाही रुपये की कमी की शिकायत किया करती है। दूसरे नोट में उसने यह दिखाया है कि रेलों का बनाना उतना ज़रूरी नहीं जितना ज़रूरी फ़ौज रखना है। पर उसके लिए भी सरकार करोड़ों रुपया ख़र्च करती है और हर साल ख़र्च करती है। शिक्षा-प्रचार करना रेलें बनाने से बहुत अधिक महत्त्व का काम है। पर उसके लिए वह उतना भी ख़र्च नहीं करती जितना रेलों के लिए करती है। पहले विषय में माडर्न-रिव्यू की दलीलों का सारांश हम नीचे देते हैं—

जमा-ख़र्च का सालाना चिट्ठा पेश होने पर हर साल प्रजा-पक्ष के प्रतिनिधि कौंसिल में अपना पक्ष योग्यता-पूर्वक समर्थन करते हैं। वे सरकारी ख़र्च की समालोचना करते हैं; अखण्डनीय दलीलें पेश करते हैं; हर तरह से अपने कथनों का औचित्य प्रकट करते हैं; पर उनकी एक नहीं चलती। उनका सारा कहना-सुनना अरण्यरोदन हो जाता है। इसका मतलब यह नहीं कि उनका पक्ष निर्बल या उनका कथन निःसार है। मतलब यह कि कौंसिल में उनकी संख्या काफ़ी नहीं। बहुमत सरकार के ही पक्ष में रहता है, क्योंकि सरकारी मेम्बरों ही की संख्या अधिक है।

१९१९-२० में १३२½ करोड़ रुपये की आमदनी हुई। उसमें से ८२¼ करोड़ रुपये की रक़म एक-मात्र फ़ौजी ख़र्च की मद में चली गई। कुल आमदनी में से ६३ फ़ी सदी फ़ौज के लिए ख़र्च कर देना बहुत बड़ी अस्वाभाविकता का सूचक है। जब फ़ौजी कामों के लिए इतना ख़र्च कर दिया जायगा तब शिक्षा, सफ़ाई, खेती और उद्योग-धन्धों के सदृश महत्त्वपूर्ण कामों के लिए काफ़ी रुपया कहाँ से आवेगा? इस प्रकार बढ़े हुए ख़र्च का नतीजा तो यह होगा कि किसी दिन गवर्नमेंट का दिवाला निकल जायगा।

भारत में निरक्षरता का अखण्ड राज्य है। अतएव चाहिए था कि उसे दूर करने के लिए अधिक ख़र्च किया जाता। पर भारत के दुर्भाग्य से इस काम के लिए बहुत ही कम ख़र्च किया जाता है। पृथ्वी की पीठ पर कोई भी सभ्य देश ऐसा नहीं जहाँ इस मद में इतना कम ख़र्च किया जाता हो। संयुक्त राज्य (अमेरिका) शिक्षा-प्रचार के लिए फ़ी आदमी १६ शिलिंग ख़र्च करता है। इँगलेंड १० शिलिंग, जर्मनी ६ शिलिंग, जापान १ शिलिंग, रूस ७½ पेंस और हिन्दुस्तान सिर्फ़ १ पेंस! इँगलेंड ने १८७० में शिक्षा-प्राप्ति अनिवार्य करदी। उसके बारह ही वर्ष बाद, अर्थात् १८८२ ईसवी में, वहाँ प्रत्येक बच्चा स्कूल जाने लगा। अर्थात् इतने ही थोड़े समय में निरक्षरता ने वहाँ से कूच कर दिया। अन्यान्य देशों का भी बहुत कुछ यही हाल है। पर भारत में, १९१७-१८ में, आबादी का केवल ३·२६ फ़ी सदी अंश साक्षर था! इस विषय में तो इस देश से टर्की अच्छा। क्योंकि वहाँ साक्षरों की संख्या भारत से बहुत अधिक है।

यह दुर्दशा क्यों? सिर्फ़ इसलिए कि शिक्षा-प्रचार में सरकार काफ़ी रुपया ख़र्च नहीं करती। वह यह बहाना कर देती है कि ख़ज़ाने में रुपया नहीं।

पर यदि फ़ौजी कामों के लिए अचानक भी रुपये की ज़रूरत हो तो न मालूम कहां से रुपया फट पड़ता है। १९१९-२० के लिए फ़ौजी ख़र्च ६४ करोड़ रुपया कूता गया था। पर असल में ख़र्च किया गया ८५½ करोड़। अर्थात् गवर्नमेंट ने एक दो रुपया नहीं, २१ करोड़ रुपया, न मालूम कहाँ से लाकर, ख़र्च कर डाला। सरकार हमारे बच्चों को मुफ़्त प्रारम्भिक शिक्षा देने के लिए थोड़ा सा और रुपया क्यों नहीं इसी तरह ढूँढ़ निकालती? अचानक तो उससे कोई माँगता नहीं। बरसों सोच विचार कर और मदों में कमी करके, क्या वह इस काम के लिए काफ़ी रुपया नहीं निकाल सकती? इस समय कोई ३ करोड़ ५० लाख बच्चे ऐसे होंगे जो स्कूल नहीं जाते। सरकारी अनुमान है कि पढ़ाने में फ़ी बच्चा ५॥) सालाना ख़र्च पड़ता है। इस हिसाब से इन सबको प्रारम्भिक शिक्षा मुफ़्त देने के लिए साल में सिर्फ़ १९¼ करोड़ रुपया दरकार है। यह इतना रुपया २१ करोड़ से तो कम ही है। जब फ़ौज के लिए, ज़रूरत पड़ने पर, सरकार २१ करोड़ रुपया अचानक अपनी थैली से सहज ही निकाल देती है, तब शिक्षा के सदृश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय के लिए वह चाहे तो १९¼ करोड़ ज़रूर ख़र्च कर सकती है। अतएव यह कहने में कुछ भी पसो-पेश नहीं कि सरकार चाहती तो इतना रुपया पहले भी ख़र्च कर देती और अब भी ख़र्च कर सकती है।

१८८४-८५ में हिन्दुस्तान का फ़ौजी ख़र्च कोई १७ करोड़ ही रुपया था। १९१५-१६ में बढ़ कर वह ३३ करोड़ हो गया; १९१६-१७ में ३७ करोड़; १९१७-१८ में ४५ करोड़ और १९१९-२० में एक-दम ८५½ करोड़! कुछ ठिकाना है। ३५ वर्ष में यह ख़र्च पँचगुना बढ़ गया और वह सरकारी सन्दूक़ से निकल भी आया। पर यथेष्ट शिक्षा-प्रचार के लिए सरकार के पास कभी काफ़ी रुपया नहीं रहता। इस दशा में सरकार की इस बात पर यदि कोई मीन-मेख करे तो उसका क्या दोष?

६—रेलों का ख़र्च और शिक्षा-प्रचार।

फ़ौजी ख़र्च के लिए तो यह कहा जा सकता है कि देश की रक्षा करने और देश में सर्वत्र अमनचैन बना रखने के लिए फ़ौज रखने की बड़ी ज़रूरत है। विना काफ़ी फ़ौज रक्खे अराजकता और विद्रोह का डर रहता है; कमज़ोर देख कर बाहरी शत्रु भी देश पर चढ़ाई कर सकता है। अतएव फ़ौजी ख़र्च में कसर न करनी चाहिए। बहुत ख़ूब। ठीक। हम इस दलील को ज़रा देर के लिए मान लेते हैं। अच्छा तो रेलों का ख़र्च क्यों बढ़ाना चाहिए। रेलें कम होने से देश पर कौन बड़ी भारी आफ़त आ सकती है। जिस शिक्षा की बदौलत मनुष्य में मनुष्यत्व आता है, जिस शिक्षा की बदौलत देश की धन-सम्पत्ति बढ़ सकती है, जिस शिक्षा की बदौलत मनुष्य भूखों मरने से बच सकता है, क्या रेलें बनाना उस शिक्षा से अधिक ज़रूरी काम है? बहुत दिन की बात नहीं। बात १९०७ ईसवी ही की है। उस साल सरकार ने सिर्फ़ १३½ करोड़ रुपया रेलों के लिए अलग कर दिया था। पर उसके तेरह ही वर्ष बाद, अर्थात् १९२०–२१ के चिट्ठे में, उसने इस काम के लिए ३१½ करोड़ रुपया ख़र्च कर डालने का निश्चय कर लिया है। इस इतने थोड़े समय में रेलों का ख़र्च कोई ढाई गुना बढ़ गया है। अर्थात् तब से कोई १८ करोड़ रुपया सरकार अधिक ख़र्च करने के लिए तैयार है। इस समय जितने बच्चे निरक्षर हैं उन सबको पढ़ाने के लिए १९ ही करोड़ रुपये दरकार हैं। सरकार यदि ये १८ करोड़ रुपये रेलों में ख़र्च न करके शिक्षा में ख़र्च करती तो भारत से निरक्षरता भाग जाती। पर रुपये की थैली ठहरी सरकार के हाथ में। हम लोग तो सिर्फ़ कह-सुन सकते हैं, रो-धो सकते हैं, मिन्नत—आरज़ू कर सकते हैं; थैली का मुँह तो खोल सकते नहीं। एक बात और भी है। रेलें बनाने में जो रुपया लगाया जाता है उसका सूद भी काफ़ी नहीं मिलता। इधर रेल की लैनों के दाहने बायें जो बड़े बड़े गढ़े हो जाते हैं उनमें बरसाती पानी भर-जाने से वह सड़ा करता है और मौसमी बुख़ार आदि पैदा करने का कारण होता है। रेलें बनाने से जहाँ आवागमन और माल की रवानगी आदि में सुभीता होता है वहाँ उससे हानियाँ भी होती हैं। पर इन बातों पर दृक्‌पात न करके, किसी कारण-विशेष से, सरकार रेलों का जाल बिछाती ही चली जा रही है। रेलें ख़ूब बनें; ९६ फ़ी सदी बच्चे मूर्ख रह जायँ तो हर्ज नहीं। माडर्न-रिव्यू की इन दलीलों का क्या जवाब सरकार रखती है, यह सुनने को मिल

जाता तो शायद संशयालुओं का संशय कुछ न कुछ दूर हो जाता।

७–पुलिस के महकमे की अफ़सरी।

पुलिस के महकमे में जो लोग ऊँचे ऊँचे पदों पर अफ़सरी करते हैं उनकी भरती साल में एक बार होती है। अब तक यह भरती विलायत में ही होती थी। इससे इस महकमे में जितने अफ़सर हैं सभी प्रायः साहब लोग हैं। कोई दो साल से, भारतवासियों के प्रवेश की भी कुछ योजना कर दी गई है—अर्थात् भरती के सम्बन्ध की जो परीक्षा होती है उसमें भारतवासियों को भी शामिल कर लेने की आज्ञा होगई है। पर गैज़ट आव् इंडिया में, अभी हाल में, एक नया हुक्म निकला है। उसमें लिखा है कि इस साल, अर्थात् १९२० ईसवी में, यह परीक्षा न होगी। होगा यह कि जिन लोगों ने पिछले महा-युद्ध में फ़ौजी काम किया है उन्हीं में से उतने उम्मेदवार चुन लिये जायँगे जितनों की ज़रूरत होगी। कितने आदमी लिये जायँगे, यह अभी नहीं बताया गया। पीछे से बताया जायगा। यदि परीक्षा लेकर उम्मेदवार भरती किये जाते तो सम्भव है कुछ हिन्दुस्तानी भी ले लिये जाते। पर अब उनके लिये जाने की कम आशा है। क्योंकि काफ़ी पढ़े-लिखे बहुत ही कम हिन्दुस्तानियों को युद्ध में शरीक होने का मौक़ा दिया गया है। कुछ डाक्टर और बङ्गालियों की सैनिक टुकड़ी के कुछ शिक्षित बङ्गाली बाबू लोगों ने ही युद्ध-सम्बन्धी काम किया है। कुछ और लोग भी ऐसे निकलेंगे जिन्होंने सीरिया, इराक़ अरब और अफ़रीक़ा में फ़ौजी काम किये हैं, पर ऐसे लोगों की संख्या बहुत ही कम होगी। यदि बहुत भी हों तो भी उनमें से इने-गिने ही लोग ऐसे होंगे जिन्होंने पुलिस की अफ़सरी के लिए निर्दिष्ट की गई यथेष्ट शिक्षा पाई होगी। अतएव योग्यता-निर्देशक परीक्षा न लेकर इस तरह चुनाव करने से सम्भावना यही है कि भारतवासियों को ये पद पाने का बहुत कम मौक़ा मिलेगा। एक बात और भी है। वह यह कि २६ वर्ष से अधिक और २० वर्ष से कम उम्र का कोई उम्मेदवार न चुना जायगा। सो, जो हिन्दुस्तानी लड़ाई पर गये भी होंगे उनमें से कुछ ही शायद उम्र की इस क़ैद के भीतर आते होंगे। एक पख और भी है। जङ्गी, जहाज़ी और उड़ाकू सेना में जिन्होंने काम किया है वही इन पदों के लिए चुने जाने के मुस्तहक़ होंगे। इस कारण कमसरियट और डाक के महकमे में जिन्होंने युद्ध-स्थल में काम किया होगा वे न चुने जा सकेंगे। हिन्दुस्तानियों के मार्ग में ये शर्तें और ये क़ैदें कितनी बाधक होंगी, यह बताने की ज़रूरत नहीं।

जो लोग विलायत में हैं उन्हें वहीं २९ मई तक सिविल सरविस कमिश्नर्स को एक ख़ास फ़ार्म पर अर्ज़ी देनी होगी। जो हिन्दुस्तान में हैं उन्हें १५ जून तक एडजूटंट जनरल को दरख़्वास्तें भेजनी पड़ेंगी। इसके बाद भेजने से सुनवाई न होगी। उम्मेदवारों का चालचलन अच्छा होना चाहिए; उन्हें किसी से सिफ़ारिश कराने की ज़रा भी चेष्टा न करनी चाहिए; घोड़े की सवारी में उन्हें निपुण होना चाहिए। हिन्दुस्तान में रहनेवाले उम्मेदवारों को इस बात का भी सरटिफ़िकट पेश करना पड़ेगा कि १८ वर्ष की उम्र तक उन्होंने लगातार और बाक़ायदा शिक्षा पाई है। उम्मेदवारों की परीक्षा कई विषयों में होगी। जो लोग पास हो जायँगे उनका मुलाहज़ा होगा। मुलाहज़े में जो ठीक पाये जायँगे चुने जाने पर उनकी डाक्टरी होगी। उसमें भी पास हो जाने पर कहीं जगह मिलेगी। वर्दी अपने ख़र्च से बनवानी पड़ेगी; सरकार सिर्फ़ २००) से सहायता करेगी। घोड़े और साज के लिए सरकार ६००) तक दे सकेगी, अधिक नहीं। जगह मिल जाने पर ३२५) महीना तनख़्वाह मुक़र्रर होगी। मामूली तौर पर ९ वर्ष में वह बढ़ कर ४५०) तक हो सकेगी। इसके आगे, २५ वर्ष में, ११५०) माहवार तक तरक़्क़ी हो सकेगी। पर सहज ही नहीं। बड़ी योग्यता दिखाने और कई एक शर्तें पूरी करने पर। ग़ैर हिन्दुस्तानियों अर्थात् विलायतवासियों को १२५) से २५०) माहवार तक अलौंस भी मिलेगा। इसलिए कि उन लोगों को समुद्र पार करके इतनी दूर इस देश में आना पड़ेगा। इस अलौंस का नाम होगा—Oversea Allowance.

८—महकमे जङ्गलात में अफ़सरी।

जङ्गल के महकमे के ऊँचे ऊँचे पदों पर एक भी हिन्दुस्तानी नहीं। उन्हें इस महकमे में घुसने का मौक़ा ही बहुत कम दिया गया है। एक्स्ट्रा असिस्टंट कन्सरवेटर आव्

फारेस्ट्स के पद तक ही, अब तक, हिन्दुस्तानियों की पहुँच हो सकी है। पर अब सरकार ने अपने क़ायदे-क़ानून कुछ ढीले करने पर कमर कसी है। ८ मई १९२० के गैज़ट आव् इंडिया में उसने अपना एक वक्तव्य या मन्तव्य प्रकाशित किया है। उसमें ऊँची अफ़सरी प्राप्त करने के नये नियमों का निर्देश है। ये नियम भारत और ब्रह्मदेश के निवासियों के लिए हैं और इनका सम्बन्ध १९२० ईसवी से है। जो गोरे और अधगोरे इस देश में बस गये हैं उनके विषय में भी ये नियम व्यापक माने जायँगे। जिन लोगों ने नामवरी के साथ बी० ए-सी० की परीक्षा पास की है या जो इलाहाबाद-विश्व-विद्यालय की बी० एस-सी० परीक्षा में पहले या दूसरे खण्ड में पास हुए हैं वही उम्मीदवारी के लिए अर्ज़ियाँ भेज सकेंगे। अर्ज़ी का फ़ारम छपा हुआ मिलेगा। भारत के उम्मीदवारों की अर्ज़ियाँ १५ जून तक शिमले में, गवर्नमेंट के सेक्रेटरी के पास, पहुँच जानी चाहिए। अर्ज़ियाँ प्रान्तीय गवर्नमेंट की मारफ़त भेजनी होंगी। उम्मीदवारों के काग़ज़-पत्र और प्रान्तीय गवर्नमेंटों की की हुई सिफ़ारिशों पर ध्यान देने के बाद जो उम्मीदवार योग्य समझे जायँगे उनकी परीक्षा प्रश्न-पत्रों द्वारा ली जायगी। यह परीक्षा ९ और १० जूलाई को रङ्गून, कलकत्ता, बम्बई, मदरास, लाहोर और इलाहाबाद में होगी। जो लोग पास होंगे वे १५ अगस्त को देहरादून बुलाये जायँगे। वहाँ उनकी डाक्टरी होगी—शारीरिक परीक्षा होगी। १५, १६ मील तक ये लोग पैदल घुमाये जायँगे। गरमी, सरदी सहने और थकावट बरदाश्त करने की शक्ति की ख़ूब जाँच की जायगी। पास हुए उम्मीदवारों में से फिर आवश्यक उम्मीदवार चुने जायँगे। इस इतने महाभारत के बाद चुने हुए उम्मीदवार सितम्बर में विलायत भेजे जायँगे। वहाँ उन्हें जङ्गल की विद्या दो वर्ष पढ़नी पड़ेगी। उसमें भी पास हो जाने पर वे लोग भारत को लौटेंगे और असिस्टंट कनूसरवेटर आव् फ़ारेस्ट्स नियत होंगे। पढ़ाई का ख़र्च सरकार ६ हज़ार रुपया देगी। पर वह काफ़ी नहीं। उम्मीदवार को ४½ हज़ार अपने घर से ख़र्च करना पड़ेगा। उसे ज़मानत भी देनी पड़ेगी। विलायत जाने पर परीक्षा में उत्तीर्ण न होने, नौकरी दी जाने पर अपनी जगह पर न जाने या और किसी क़िस्म की ग़फ़लत करने पर सरकारी ६ हज़ार रुपया लौटा देना पड़ेगा। सौभाग्य से सब शर्तें पूरी होने पर ३२५) महीने की नौकरी मिलेगी। ९ वर्ष में वह वेतन बढ़ कर ७२५) तक हो सकेगा। इसके बाद गवर्नमेंट यदि किसी की योग्यता की क़ायल हो जायगी तो उसे १३५०) महीने तक मिल सकेंगे। धन्य होंगे वे जो इतनी कठिनाइयों को झेल कर महीने में साढ़े तेरह सौ रुपया फटकार सकेंगे।

९—आख्यायिका-सम्बन्धी साहित्य पर रवीन्द्रनाथ।

हिन्दी-साहित्य में आज-कल कहानियों की ख़ूब वृद्धि हो रही है। सभी देशों के साहित्य का यही हाल है। कहानियों से लाभ भी बहुत हैं। उनसे घड़ी भर मनोरञ्जन भी होता है और कुछ शिक्षायें भी मिल जाती हैं। यही कारण है कि कहानियों का प्रचार इतना बढ़ रहा है। इँगलेंड के प्रसिद्ध विद्वान् बालफर साहब ने एक बार कहा था कि आधुनिक सभ्यता में दो चीज़ें बड़ी आवश्यक हो गई हैं, एक तो तम्बाकू और दूसरी उपन्यास। विद्वज्जन उपन्यास को भले ही फ़िज़ूल समझा करें, पर इसका व्यसन अब कम होने का नहीं। उपन्यासों पर सभी लोगों की रुचि देख कर अच्छे अच्छे लेखक भी उस ओर झुक गये हैं। इँगलेंड के वाल्टर स्काट, फ़्रान्स के विक्टर ह्यूगो, रूस के टालस्टाय आदि विद्वान् ऐसे हैं जिन्होंने सिर्फ़ उपन्यास ही लिख कर अक्षय्य कीर्ति प्राप्त की है। भारतवर्ष के प्रसिद्ध लेखक बङ्किमचन्द्र की भी प्रसिद्धि उनके उपन्यासों से ही हुई है। बङ्गाल के प्रसिद्ध कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी कहानियाँ और उपन्यास लिखने में सिद्धहस्त हैं।

आज-कल साहित्य में कुछ ऐसे समालोचक पैदा हो गये हैं जो सर्वत्र सदाचार की शिक्षा ही ढूँढ़ा करते हैं। उनकी समझ में साहित्य की सृष्टि मनुष्यों को सिर्फ़ 'कु' और 'सु' की शिक्षा देने के लिए हुई है। काव्य, नाटक, उपन्यास और आख्यायिका सभी में वे धर्म का उपदेश चाहते हैं। एक जर्मन समालोचक ने यह साहसपूर्वक कहा था कि शेक्सपीयर ने सांसारिक वैभव की अस्थिरता दिखाने ही के लिए एज़ यू लाइक इट (As you like it) नामक नाटक की रचना की है। आर्डन के वन में शेक्सपीयर ने

जो कल्पना-प्रसूत आदर्श और मनोहर दृश्य अङ्कित किया है वह संन्यास-धर्म की शिक्षा का हेतु बन गया। रवीन्द्र बाबू ने आख्यायिकाओं के उद्‌देश पर एक लेख लिख कर ऐसे समालोचकों की क्षुद्रता साबित की है।

एक बार किसी महिला ने उनसे पूछा कि आपने अमुक कहानी को किस मतलब से लिखा? आपका उद्देश क्या था? उत्तर में रवीन्द्र बाबू कहते हैं:—कहानी लिखने का उद्देश कहानी लिखना है। मैं कहानी इसी

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

लिए लिखता हूँ, क्योंकि कहानी लिखने की मेरी इच्छा होती है। किसी मतलब से कहानी नहीं लिखी जाती। यह सच है कि आख्यायिका-लेखक पर समय का प्रभाव पड़ता है। पर समय और समाज का प्रभाव उतना ही रहता है जितने से उसका कला-कौशल प्रस्फुटित हो। मनुष्यों के हृदय में काल बहुवर्ण-रञ्जित सूत्रों का जाल बनाता है और उसकी उद्भावना साहित्य-जगत् में होती है। आज-कल देश की जैसी दशा है वह लेखक के हृदय में अङ्कित हो गई है। उसका फल हमें उसकी कृति में मिलता है। साहित्य विज्ञान नहीं है और न वह धर्मशास्त्र है। यदि उसमें कुछ निर्धारित नियमों के अनुसार ही पात्रों के चरित्र अङ्कित किये जायँ तो वह चित्र प्राणहीन होगा। यह सम्भव है कि वह नेत्ररञ्जक हो। पर उसमें हम जीवित संसार का आदर्श न देख सकेंगे। यदि कोई नियम निर्धारित किया जाय तो वह मानवस्वभाव के अनुकूल हो—कठोर और स्थिर नहीं। वह हो मृदु और परिवर्तनशील।

१०----अपाहिजों का शिक्षा-प्रबन्ध।

भारतवर्ष में अन्धे, लूले और लँगड़े बालक कम नहीं हैं। १९११ में ५ वर्ष से लेकर १५ वर्ष की अवस्था के ऐसे लड़कों की संख्या ८०,६२० थी। उनमें से ८०२ लड़कों की शिक्षा का प्रबन्ध सरकार की ओर से था। २६ जुलाई १९१६ को गवर्नमेंट की ओर से जो सरकुलर निकला था उसीसे प्रकट है कि गवर्नमेंट इन लोगों को शिक्षा-दान देने में शिथिलता कर रही है। उससे ज्ञात होता है कि १९१९ ईसवी में ४१,५५८ तो अन्धे लड़के थे और ५८,८०४ ऐसे थे जो बहरे और गूँगे थे। उनकी शिक्षा के लिए केवल १८ स्कूल हैं। उनमें कोई ५०० लड़कों को शिक्षा दी जाती है। मदरास में ५ स्कूल हैं, बम्बई में ६, बङ्गाल में ७, बर्मा में २, मध्य प्रदेश में २, पञ्जाब में १, और बिहार उड़ीसा में १। युक्त-प्रान्त में एक भी ऐसा स्कूल नहीं। इलाहाबाद में अन्धों के लिए एक स्कूल है, यह सुना जाता है। पर इस सरकारी पत्रक में उसका उल्लेख नहीं। सर्वसाधारण भी ऐसे लोगों की शिक्षा में उत्साह नहीं दिखलाते। ईसाइयों की ओर से इन भाग्यहीनों को अधिक लाभ पहुँचता है। मदरास में एक ऐसी संस्था है। वहाँ इनकी शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध है। उसका सारा भार स्त्रियों पर ही है। वहाँ एक लड़की है। उसका नाम है हेलन प्यारी। वह अन्धी, गूँगी और बहरी है। पर उसमें वही विलक्षणता दीख पड़ती है जो अमरीका की हेलेन केलर नामक अन्धी और गूँगी कुमारिका में है। हेलन केलर का चरित सरस्वती में निकल चुका है। हर्ष की बात इतनी ही है कि गवर्नमेंट धीरे धीरे इधर ध्यान ज़रूर दे रही है। १९१७ में बम्बई की सरकार ने गवर्नमेंट की सूचनाओं पर विचार करने के लिए एक कमिटी नियत की थी। कुछ महीनों के बाद उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। तब गवर्नमेंट ने यह निश्चय किया कि ऐसी संस्थायें सर्वसाधारण जनों की वदान्यता से—उनके दान से—चलाई जायँ। ग्रेट ब्रिटन, जर्मनी और संयुक्त राज्य (अमरीका) में इन अपाहिजों की भी शिक्षा अनिवार्य है। देखें, भारतवर्ष में कब इन भाग्यहीनों की ओर दयालुओं की दया-दृष्टि होती है।

११—भारत-कला-परिषद्।

बनारस में भारत-कला-परिषद् नाम की एक संस्था का सङ्गठन हुआ है। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर इस संस्था के सभापति हैं। मन्त्री हैं—श्रीशिवेन्द्रनाथ वसु और राय कृष्णदास। प्रबन्धकर्त्री समिति में कोई एक दर्जन नामी नामी आदमी हैं। अभी थोड़े ही समय में—कोई चार ही मास में—लगभग एक सौ भद्र पुरुष इसके सभासद हो चुके हैं। सभासद होने के लिए ५) नाम-लिखाई और १२) वार्षिक चन्दा देना पड़ता है। इसका व्यवस्था-पत्र देखने से मालूम होता है कि इस संस्था के उद्देश प्रशंसनीय ही नहीं, देश के गौरव के वर्धक भी हैं। इसके उद्देशों में से कुछ ये हैं—

(१) भारत के सङ्गीत, चित्रकारी, मूर्तिकारी तथा अन्य ललित-कलायें सिखाने के लिए एक शिक्षालय खोलना।

(२) कला-कौशल-सम्बन्धिनी ऐतिहासिक वस्तुओं का एक सङ्ग्रहालय स्थापित करना।

(३) कला-विषयक पुस्तकों के सङ्ग्रह के लिए एक पुस्तकालय खोलना ।

(४) छात्रवृत्तियाँ और पुरस्कार देकर योग्य व्यक्तियों को अपनी अपनी कलाओं के अध्ययन के लिए उत्साहित करना ।

(५) जनता में ललित-कलाओं की रुचि बढ़ाने के लिए हर तरह की चेष्टा करना ।

कैसे उदार, देशहितकर और महत्तासूचक उद्देश हैं। ऐसी संस्थायें और और देशों में एक नहीं अनेक हैं। पर बेचारे भारत में एक भी नहीं। इस दशा में ऐसी उपयोगिनी संस्था की कितनी आवश्यकता थी, यह बताने की आवश्यकता नहीं । ललित कला के प्रेमियों और अन्य समर्थ सज्जनों को इस परिषद् का सभ्य होकर इसके उद्देशों की सिद्धि में सहायक होना चाहिए । २००) एकमुश्त देने से फिर और कभी कुछ नहीं देना पड़ता ।

१२—दद्रुकुठार ।

कलकत्ते में एक कम्पनी है। नाम है—जोशी ऐंड कम्पनी । कारोबार का पता है—बड़ा बाज़ार, पोस्ट-बाक्स ७०४ । इस कम्पनी ने दद्रुकुठार नामक एक दवा की छोटी छोटी कई शीशियाँ भेजने की कृपा की थी। इस बात को बहुत समय हो गया । यह दवा दाद की है। इसे हमने कई आदमियों को दिया । उन्होंने इसे लगाया । फल यह हुआ कि उनकी दाद जाती रही । यह सुन कर और लोग भी दवा माँगने आये । तब हमारे लिखने पर मुफ़् बाँटने के लिए कम्पनी ने कुछ और शीशियाँ भेजने की कृपा की । इस परोपकारी कार्य के लिए कम्पनी को अनेक धन्यवाद। इसमें सन्देह नहीं कि यह दवा दाद की बड़ी अच्छी ओषधि है। दाम एक शीशी का सिर्फ़ ४ आना है ।

१३—अमरीका की व्यवसाय-वृद्धि ।

योरप की आर्थिक दशा इस समय अच्छी नहीं। उसकी अवस्था इतनी आशङ्का-जनक है कि कहने से लोग अतिशयोक्ति समझेंगे । पर बात ऐसी ही है। आर्थिक दृष्टि से योरप के सभी देशों की अवस्था समान है। कुछ बातों में तो जर्मनी ही की दशा अच्छी है। युद्ध-काल में जर्मनी ने अपनी प्रजा से ही अधिक ऋण लिया । पर मित्र-दल ने अमरीका के धन से युद्ध में विजय प्राप्त की है । ब्रिटिश गवर्नमेंट के एक मन्त्री, बोनर-ला, ने भी यही बात, कुछ समय पहले, कही थी । युद्ध के अन्त होने तक अमरीका से मित्र-राष्ट्रों ने १०,०००,०००,००० डालर ऋण ले लिया । इसको चुका देना तो एक ओर, अभी तक ऋणवृद्धि ही हो रही है । मित्र-राष्ट्रों का क़र्ज़ा बढ़ता ही जा रहा है। अमरीका के आयात-निर्यात की निम्न-लिखित सूची से यह बात स्पष्ट होजाती है ।

अमरीका का व्यवसाय जनवरी—अक्टूबर १९१९

देश	अमरीका में आया	अमरीका से गया
यूनाइटेड किंगडम	२१९	१,८६८
फ़ान्स	८७	७५७
इटली	४१	३६६
बेलजियम	४	३१४
जर्मनी	५	५२
स्वीडन	१०	११६
नारवे	५	१८८
डेनमार्क	५	१४०
हालैंड	६१	१९७
स्विटज़रलैंड	१९	६९
दूसरे देश	८७	२६९
कुल योरप	५४३	४,२६६
संसार के अन्य देश	२,५५६	२,२३५
कुल संसार	३,०९९	६,५०१

(इस सूची के अङ्कों में १० लाख से हिसाब किया गया है) इससे यह भली भाँति प्रकट हो जाता है कि योरप के प्रायः सभी देश अमरीका के ऋण से ग्रस्त हो रहे हैं। पेरिस में योरप की इस दशा पर विचार होनेवाला है । इस दुर्दशा से योरप का उद्धार करने के लिए प्रेसीडन्ट विलसन पर भी दबाव डाला जा रहा है ।

१४—इँगलेंड के प्रसिद्ध लेखकों का भारत से सम्बन्ध ।

कभी कभी किसी का जीवनचरित पढ़ते समय कुछ ऐसी बातें मालूम हो जाती हैं जिन्हें जान कर बड़ा कौतू-

हल होता है। श्रीयुक्त पी० शेषाद्रि ने इँगलेंड के कुछ विख्यात लेखकों का सम्बन्ध भारतवर्ष से बतलाया है। उनका लेख इण्डियन रिव्यू नामक मासिक पत्र में निकला है। पाठकों के मनोरञ्जन के लिए हम उनमें से कुछ का हाल नीचे लिखते हैं—

गोल्डस्मिथ इँगलेंड का प्रसिद्ध कवि था। वह भारतवर्ष को आते ही आते रह गया। यह तो बहुतों को विदित ही है कि गोल्डस्मिथ को दारिद्र्य भोगना पड़ा था। जब उसने देखा कि साहित्य-सेवा से जीवन-निर्वाह नहीं होता तब उसने भारतवर्ष में नौकरी पाने की चेष्टा की। उस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी का दौरदौरा था। गोल्डस्मिथ ने अपने को डाक्टर आव् मेडेसिन, अर्थात् वैद्य-विद्या का आचार्य्य कहा था, यद्यपि अभी तक किसी को यह नहीं मालूम कि उसको यह उपाधि कहाँ से और कैसे मिली थी। ख़ैर, उसने यहाँ डाक्टर होकर आना चाहा। ईस्ट-इंडिया कम्पनी से उसको नियुक्ति-पत्र भी मिल गया। पर न जाने वह किस कारण से रुक गया। यदि गोल्डस्मिथ कहीं यहाँ आता तो उसके प्रसिद्ध उपन्यास, विकार आव् वेकफीलड, का शायद कुछ और ही रूप होता। सम्भव है, उसमें भारतीय जीवन का भी चित्रण रहता।

प्रसिद्ध लेखक एडिसन के साथ भी भारतवर्ष का सम्बन्ध हो गया है। उसका भाई, गुल्स्टन (Gulstone) एडिसन, मदरास में गवर्नर था। १ महीना काम करने के बाद उसकी मृत्यु हो गई। एडिसन के एक और भाई की भी मृत्यु यहीं हुई थी।

वाल्टर सेवेज लैण्डर ने एक बड़ी सरस पद्य-रचना रोज़ इलमर की मृत्यु पर की है। वह ख़ूब प्रसिद्ध है। रोज़ इलमर की मृत्यु १८०० में कलकत्ते में हुई थी। उस समय उसकी अवस्था २१ साल की थी।

प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका चार्लोटी ब्रान्टे का प्रेम-पात्र बनने के लिए कितने ही लोगों ने प्रयत्न किया था। इन्हीं में जेम्स टेलर भी थे। इनका भी कुछ काल भारतवर्ष में व्यतीत हुआ था। स्मिथ एन्ड एल्डर कम्पनी की एक शाखा खोलने के लिए जेम्स टेलर बम्बई आये। पर काम चला नहीं। तब टेलर साहब को इँगलेंड लौट जाना पड़ा। कुछ समय के बाद बाम्बे गैज़ट के सम्पादक होकर वे फिर यहाँ आये। यहाँ बाम्बे क्वाटरली रिव्यू नामक सामयिक पत्र का सम्पादन-भार भी उन पर पड़ा। कुछ समय तक वे साटरडे-रिव्यू नामक पत्र के भी सम्पादक रहे। जब वे बाम्बे चेम्बर आव् कामर्स के सेक्रेटरी हुए तब उनकी अच्छी ख्याति हुई। फिर वे बम्बई के विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार नियुक्त हुए। ५७ वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु हुई।

मैथ्यू आरनोल्ड साहब अँगरेज़ी के विख्यात कवि हैं। उनकी सदर्न नाइट (Southern Night) नामक कविता अँगरेज़ी की वियोगात्मक कविताओं में अच्छी समझी जाती है। यह कविता उनके भाई डब्ल्यू० डेलाफील्ड आरनोल्ड के स्वर्गवास होने पर लिखी गई थी। वे पञ्जाब में शिक्षा-विभाग के प्रधान अध्यक्ष के पद पर रह चुके थे।

आज-कल, वर्तमान कवियों में, किपलिंग साहब की बड़ी प्रसिद्धि है। उनका जन्म बम्बई नगर में हुआ था।

१५—जुए का प्रचार।

आज-कल प्रायः सभी देशों में जुए का प्रचार ख़ूब बढ़ रहा है। जुआ खेलने में निपुणता प्राप्त करने के लिए कितने ही प्रयत्न किये जाते हैं। वह एक प्रकार की कला ही हो गई है। उसका रहस्य जानने के लिए अनेक लोग उद्योग किया करते हैं। न जाने कब से यह दुर्गुण मानव-जाति में चला आ रहा है। इससे कितने ही घरों का सत्यानाश हो गया। कितने ही युवक बिगड़ गये। भारतवर्ष में तो दीपावली में जुआ न खेलना कोई कोई पाप समझते हैं। इसका इतना प्रचार देख कर योरप के एक विख्यात लेखक का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ है। बेलजियम में मारिस मेटरलिङ्क एक प्रसिद्ध कवि हैं। अभी तक बेलजियम भीषण युद्ध में लिप्त था। इस कारण मेटरलिङ्क अपने देश की दुर्दशा में व्यस्त थे। पर अब युद्ध का अन्त हो जाने पर उन्होंने फिर अपनी साहित्य-सेवा आरम्भ की है। फ़ोर्ट-नाइटली रिव्यू नामक एक सामयिक पत्र में उन्होंने जुए की बुराइयाँ दिखलाते हुए यह लिखा है—

मैं जानता हूँ कि यह दुर्गुण मनुष्यों में ऐसा आगया है कि अब इसको दूर करना असम्भव सा हो गया है। हम

चाहे लाख कोशिश करें, उसका किसी न किसी रूप में प्रचार होता ही रहेगा । तो भी हमें उसका प्रचार रोकने के लिए यत्नशील रहना चाहिए। जुआ खेलना जिनका पेशा सा हो गया है वे लोग कभी सुख से नहीं रह सकते। सच तो यह है कि वे पृथ्वी के भाररूप हैं। उनको उस पर रहने का कुछ अधिकार नहीं। यदि वे धनवान् हैं तो वे अपने धन का अत्यन्त दुरुपयोग कर रहे हैं। यदि वे दरिद्र हैं तो किसी प्रकार क्षन्तव्य ही नहीं। जो लोग जुए के आश्रय में रहते हैं उन्हें वह मृगतृष्णा में डाल कर उनकी शान्ति हर लेता है। जिन्हें कार्य करने की क्षमता नहीं, जिन्हें अपनी स्थिति का ज्ञान नहीं, जिनके हृदय पर केवल दम्भ और अज्ञान छा रहा है, उनमें ही यह दुर्गुण अधिक पाया जाता है। यह वह रोग है जो अपने रोगी को मदमत्त करके धीरे धीरे उसका क्षय कर डालता है।

१६—इलाहाबाद हाइकोर्ट के दो नये जज।

इलाहाबाद-हाइकोर्ट में अभी तक सात ही जज काम करते थे। पर अब वहाँ काम इतना बढ़ गया है कि वह इतने जजों से नहीं चल सकता। इसलिए, अभी हाल में, और दो नये जजों की नियुक्ति हुई है। एक तो हैं जस्टिस रीव्ज़ और दूसरे हैं जस्टिस गोकुलप्रसाद। रीव्ज़ साहब सन् १८८६ से यहाँ बैरिस्टरी कर रहे हैं। समय समय पर वे अवध, कलकत्ता और लाहोर में न्यायाधीश का आसन भी ग्रहण कर चुके हैं। अतएव उनकी योग्यता में कोई सन्देह नहीं। रायबहादुर गोकुलप्रसादजी को क़ानून का तो अगाध ज्ञान है ही; वे संस्कृत में भी ख़ूब व्युत्पन्न हैं। इन दोनों का स्वागत करते हुए इलाहाबाद-हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस ने कहा—"इसी साल १ जनवरी को एक हज़ार से अधिक तो पहली अपीलें ही थीं और दो हज़ार से अधिक दूसरी अपीलें, जिनका फ़ैसला अभी होने को ही है। इसका परिणाम यह होता है कि नीचे की अदालतों के द्वारा फ़ैसिला हो जाने पर, कोई तीन साल बाद यहाँ किसी मामले की अपील की सुनाई होती है। इससे कभी कभी अन्याय तक हो जाता है। हम इसके लिए लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर साहब को धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने जजों की संख्या बढ़ाने के लिए हमारे आवेदन-पत्र का समर्थन किया।" इसके लिए आपने भारत-सरकार के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त की।

माननीय जस्टिस गोकुलप्रसाद, एम० ए०, एल्-एल० बी०।

पुस्तक-परिचय।

१—**पारसमणि**—इसका आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या २५६ और मूल्य २) है। छपाई और कागज़ साधारण है। भाषा गुजराती है। लेखक हैं, झवेरी साकरचन्द माणेकचन्द घड़ीयाली। मिलने का पता—मेघजी हीरजी, कुतुबफ़रोश, पायधुनी, बम्बई। दुनिया में दुख की मात्रा अधिक, सुख की कम है। लोक में अनुकूल स्थिति का नाम सुख और प्रतिकूल का दुःख है। पर स्थिति में परिवर्तन करना मनुष्य के हाथ है। जो निर्धनता के कारण दुखी है वह अपने बुद्धि-वैभव से उस स्थिति को दूर करके सधन हो सकता है। जो शरीर से अशक्त है वह व्यायाम तथा शक्ति-वर्धक आहार-व्यवहार से सशक्त बन कर सुखी हो सकता है। इसी तरह और भी समझिए। मतलब यह कि मनुष्य अपनी इच्छा-शक्ति से कुछ का कुछ हो सकता है; वह सारी प्रतिकूलताओं को अनुकूलताओं में परिवर्तित कर सकता है। अर्थात् वह अपना सुधार आपही कर सकता है। इस पुस्तक में जो कुछ है उसका सार यही है। ईश्वर करेगा सो होगा; भाग्य में जो लिखा है वह टल नहीं सकता; कर्म्मों का फल भोगना ही पड़ता है—इस तरह के निराशावादियों के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। इसके पाठ से उत्साह और उद्योग की शिक्षा मिलती है। पुरुषार्थ की महिमा और आत्मा की असीम शक्तियों का वर्णन इसमें बड़ी योग्यता से किया गया है। अँगरेज़ी की अनेक उत्तमोत्तम पुस्तकों का अध्ययन करके लेखक ने इसकी रचना की है। इसे लिखने में उन्होंने कुमारी हेलेन की एक पुस्तक से विशेष सहायता ली है। पुस्तक के अच्छे होने में सन्देह नहीं। जो लोग गुजराती लिपि पढ़ सकते और गुजराती भाषा समझ सकते हैं उन्हें इस पुस्तक का अवश्य अवलोकन करना चाहिए।

⁂

२—**गुणस्थानक्रमारोह**—यह पुस्तक सुन्दर चिकने कागज़ पर अच्छे टाइप में छपी है। मनोहर जिल्ददार है। पृष्ठ-संख्या २००, मूल्य १२ आने है। मिलने का पता—शा० सदुभाई तलकंचन्द, श्रीआत्मतिलकग्रन्थ-सोसायटी, रतनपोल, अहमदाबाद। जैनियों का सिद्धान्त है कि कर्मों के आवरण से आत्मा का शुद्ध रूप ढका रहता है। गुण-प्राप्ति से यह आवरण दूर हो जाता है। ये गुण १४ हैं। जैसे जैसे इनकी प्राप्ति होती है वैसे ही वैसे आत्मा के ऊपर से कर्म्मांश का ढक्कन अलग होता जाता है। इन गुणस्थानों तक क्रम क्रम से पहुँचने—उन तक चढ़ने—से अन्त में जैनियों के वीतराग-देव के दर्शन होते हैं। इन्हीं गुणस्थानों के क्रमारोह का वर्णन इस पुस्तक में है। मूल पुस्तक संस्कृत में है। उसकी पद्य-संख्या १३६ है। रत्नशेखर सूरि उसके कर्ता हैं। प्रस्तुत पुस्तक में मूल ग्रन्थ भी है और मुनि-तिलक-विजय कृत हिन्दी-अनुवाद भी। अनुवाद के अन्तर्गत पहले श्लोकार्थ है, फिर विस्तृत व्याख्या। व्याख्या में और इधर-उधर की भी बहुत सी बातें हैं; इसीसे बहुत पल्लवित हो गई है। अनुवादक पञ्जाबी हैं। अतएव आपकी हिन्दी भी पञ्जाबी, पण्डिताऊ और विलक्षणता से भरी पूरी है। तथापि जैनियों के लिए यह पुस्तक सङ्ग्रहणीय अवश्य है।

⁂

३—Hindu-Aryan Astronomy and Antiquity of Aryan Race. अर्थात् हिन्दू-ज्योतिषशास्त्र और आर्यजाति की प्राचीनता। पुस्तक अँगरेज़ी में है। लेखक हैं पण्डित भगवानदास पाठक; पृष्ठ-संख्या ११८ है और मूल्य २)। लेखक ही इसके प्रकाशक हैं। आपका पता है—देहरादून। इस पुस्तक में हिन्दू-ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्तों का ही वर्णन नहीं है, बल्कि हिन्दू-ज्योतिषशास्त्र की सहायता से जो अन्यान्य विषय सिद्ध किये जा सकते हैं उनका भी इसमें समावेश किया गया है। इसमें प्राचीन आर्यों के आदि निवास-स्थान पर विचार किया गया है, महाभारतीय युद्ध-काल की चर्चा की गई है, भारतीय आर्यों के धर्मों पर दृष्टि डाली गई है और भारतीय सभ्यता की अवस्था का भी वर्णन किया गया है। लेखक ने अपनी गवेषणाओं का निष्कर्ष यह निकाला है—

(१) युधिष्ठिर-संवत् का आरम्भ ईसा के २४४८ वर्ष पहले हुआ है।

(२) जन्म-कुण्डली देख कर जो भविष्य-फल बत-

लाया जाता है वह प्राचीन ग्रीसवालों का आविष्कार है। भारतवर्ष में ईसा के ३०० वर्ष पहले से लेकर १०० वर्ष पहले तक इसका प्रचार हुआ होगा। वाल्मीकि-रामायण में इसका उल्लेख है, पर महाभारत तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में फलित-ज्योतिष का पता नहीं लगता।

(३) ईसा के १९०५ वर्ष पहले भी भारतीय आर्यों ने हिन्दू-ज्योतिषशास्त्र की अच्छी उन्नति कर ली थी।

इसके सिवा ज्योतिष-विषयक और अनेक बातों का विचार किया गया है। इस सम्बन्ध में लेखक की गवेषणा-शक्ति और विचार-परम्परा प्रशंसनीय है। आपने अपने ही परिश्रम और खोज से ज्योतिष-विषयक कितनी ही नई नई बातों का ज्ञान प्राप्त किया है। फलित और गणित-दोनों प्रकार के ज्योतिष पर गवेषणापूर्ण लेख लिखा है। वेदों से लेकर अब तक के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध ज्योतिष-ग्रन्थों और सिद्धान्तों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। हां, केवल ज्योतिष-वेदाङ्ग पर आपने कुछ नहीं लिखा। अथवा, सम्भव है, यह हमारा ही दृष्टि-दोष हो। क्योंकि हमने ध्यानपूर्वक पुस्तक नहीं पढ़ी। जो बातें इस विषय के विशिष्ट ज्ञाताओं के ही लेखों में मिल सकती हैं वे भी इस पुस्तक में देख कर लेखक के बुद्धि-वैशद्य और ज्योतिष-ज्ञान की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। कलेक्टर के दफ़्तर में हेड-क्लार्क रह कर भी आपने जो इस शास्त्र का इतना विशद ज्ञान प्राप्त कर लिया, यह आपके ज्योतिष-प्रेम और विमल बुद्धि का परिचायक है। इस शास्त्र के प्रेमियों को आपकी यह पुस्तक अवश्य देखनी चाहिए। ऐसी अच्छी पुस्तक को अच्छे काग़ज़ पर अच्छे टाइप में छपाना था। जिल्द भी होनी चाहिए थी।

⁂

४—रघुनाथराव—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १११ है। छपाई और काग़ज़ साधारणतः अच्छा है। दाम ॥=) है। यह नाटक है। स्वर्गीय रमेशचन्द्र दत्त का लिखा हुआ महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात नाम का उपन्यास है। उसी को लेखक, साह मदनमोहन, ने नाटक का रूप देकर रङ्ग-मञ्च पर खेलने लायक़ कर दिया है। इसके गद्य-भाग पर तो हमें कुछ नहीं कहना, पर इसका पद्यभाग अवश्य सदोष है। गाने भी अच्छे मौक़े पर नहीं गवाये गये हैं। पर यह शायद आज-कल की जनता की रुचि देख कर किया गया हो।

⁂

५—हिन्दू-विवाह—इसका प्रकाशन पूर्वोक्त साह मदनमोहन ने किया है। यह बाबू चारुचन्द्र मित्र, बी० ए०, के एक अँगरेज़ी निबन्ध का अनुवाद है। अनुवाद-कर्ता हैं पण्डित बालमुकुन्द वाजपेयी। आरम्भ में उन्हीं की लिखी हुई एक लम्बी भूमिका है। इसमें आधुनिक हिन्दू-विवाह-प्रणाली पर समाज-सुधारकों के द्वारा किये गये आक्षेपों का उत्तर दिया गया है।

लेखक का आशय यह है कि जैसी विवाह-प्रथा प्रचलित है वैसी ही बनी रहनी चाहिए। वही सबसे अच्छी है। सुधारकों के आक्षेप असार और उनके अभीष्ट सुधार सर्वथा त्याज्य हैं। पुस्तकान्त में मिस्टर पटेल के असवर्ण-विवाह-विषयक क़ानूनी मसविदे की भी कड़ी आलोचना है। पुस्तक का आकार मँझोला, छपाई और काग़ज़ साधारण, पृष्ठ-संख्या २३ + ५३ + ४३ और मूल्य ॥=) है।

⁂

६—सन्तोषू अथवा कृषि मुनि—इसकी रचना डाक्टर महेशचरणसिंह ने की है। "लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जापान द्वीप में सन्तोषू नाम का एक धर्मप्राण पुरुषरत्न उत्पन्न हुआ था, जिसने अपने देशवासियों की दशा सुधारने और उन्हें सदाचारी बनाने के लिए आजीवन प्रयत्न किया और बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त की।" उसी का यह जीवन-चरित है। लोकोपकार, देश-सेवा और स्वार्थ-त्याग आदि गुणों के वर्णन से यह चरित परिपूर्ण है। पुस्तक पढ़ने लायक़ है। भाषा भी सरल है। इसके प्रकाशक श्रीमान् साह मदनमोहन हैं। मूल्य इसका ॥-) है। ऊपर की तीनों पुस्तकों के मिलने का पता—लक्ष्मण-साहित्य-भण्डार, चौक, लखनऊ।

⁂

७—नल-दमयन्ती—इसका आकार मँझोला, काग़ज़ और छपाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या १५०, और मूल्य २) है। मनोहर जिल्द चढ़ी हुई है। इसके लेखक हैं बाबू नवजादिकलाल श्रीवास्तव। नल-दमयन्ती का उपाख्यान प्रसिद्ध है। लेखक ने इसे बड़े अच्छे ढङ्ग से लिखा है।

112898

भाषा सरस है। इसमें १३ चित्र हैं, जिनमें से अधिकांश रङ्गीन हैं। पुस्तक सर्वथा उपादेय है, विशेष करके स्त्रियों और लड़कियों के लिए। बाबू रामलाल वर्मा, प्रोप्राइटर वर्मन प्रेस, ३७१ अपरचीतपुर रोड, कलकत्ता, ने इसका प्रकाशन किया है। वही इसे बेचते हैं।

⁂

८—सुलभग्रन्थप्रचारक-मण्डल की दो पुस्तकें— **(१) प्रेमकान्त**—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १८६, मूल्य १॥) है। लेखक हैं पण्डित ऋषीश्वरनाथ भट्ट बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील हाईकोर्ट। यह गोल्डस्मिथ के प्रसिद्ध उपन्यास वीकार आव् वेकफील्ड (Vicar of Wakefield) का मर्मानुवाद है। लेखक ने मूल उपन्यास के कथाभाग की कितनी ही बातें निकाल दी हैं। ईसाई गार्हस्थ्य जीवन के स्थान में हिन्दू-जीवन का चित्र अङ्कित किया है। इस कारण कहानी में कुछ थोड़ी सी विचित्रता आगई है। फिर भी वह रोचक अवश्य है। "घोर से घोर सङ्कट पड़ने पर भी धैर्यपूर्वक ईश्वर में दृढ़ आस्था रखना इसका मूल है"। भाषा भी मज़े की है। छपाई और काग़ज़ उत्तम, जिल्द मनोहारिणी है। **(२) भाग्यचक्र**—यह भी एक उपन्यास है। इसकी रचना किसी बँगला-उपन्यास के आधार पर हुई है। पण्डित उमाशङ्कर द्विवेदी जी ने इसे लिखा है। मध्यम आकार के २६२ पृष्ठों में यह पूरा हुआ है। यह विचित्र घटनाओं से परिपूर्ण है। मूल पुस्तक का कथाभाग चित्ताकर्षक और उपदेशदायक रहा होगा। पर इससे न तो चित्त ही विशेष आकृष्ट हुआ और न कुछ अधिक उपदेश ही मिला। पुस्तक की छपाई और काग़ज़ साधारण है। मूल्य १) है। ये दोनों पुस्तकें सुलभग्रन्थ-प्रचारक मण्डल, नं० १२, हरि सरकार लेन, कलकत्ता, से प्रकाशित हुई हैं और वहीं से मिल सकती हैं।

⁂

नीचे लिखी हुई पुस्तकें भी मिल गई हैं। भेजनेवाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) दुःखमय जीवन—लेखक, ज्यो० शिवप्रकाश द्विवेदी।

(२) राष्ट्रभाषा हिन्दी—लेखक, पं० गौरीशङ्कर शुक्ल मूल्य ।) प्रकाशक सरस्वती-ग्रन्थमाला कार्यालय, आगरा।

(३) तेजी-मन्दी-प्रकाश—प्रकाशक, पं० प्रह्लाददत्त शर्म्मा, भारत-भूषण पुस्तकालय, रिवाड़ी। मूल्य ॥-)

(४) जैन सेन्ट्रल लाइब्रेरी—तथा संस्कृत पाठशाला की सन् १९१७—१८ की रिपोर्ट (गुजराती में)—प्रकाशक, अवैतनिक मन्त्री, बम्बई।

(५) Indian Olympic Association की रिपोर्ट नम्बर ६, प्रकाशक—जनरल सेक्रेटरी, पूना।

चित्र-परिचय।

भृङ्गराज

मौलाना निज़ामी कहते हैं—

> ज़मीरन न ज़न बल्कि आतश ज़नस्त,
> कि मरियम सिफ़त बक्रो आबस्त नस्त।

इस फ़ारसी पद्य का अर्थ 'भृङ्गराज' पक्षी की जीवन-चर्य्या पर पूर्ण रूप से घटित होता है। अरबी में इसका नाम 'मूसीक़ार' और 'क़ुक़्नुस' है। कहा जाता है कि इसकी चोंच में ३६० छिद्र होते हैं और उनमें से एक एक राग निकलता है। जब इसे भूख लगती है तब यह किसी ऊँचे शिखर पर वायु की गति के सामने बैठ जाता है। इस कारण उसकी चोंच से बड़े मनोहर मनोहर स्वर निकलने लगते हैं जिन पर मोहित होकर—बिना बुलाये—सैकड़ों पक्षी आजाते हैं। तब भृङ्गराज मज़े में दो-एक को पकड़ कर चट कर जाता है।

किंवदन्ती है कि यह पूरे एक हज़ार वर्ष जीवित रहता है। संसार में यह एक ही पक्षी एक समय में रहता है, दूसरा हो ही नहीं सकता, क्योंकि जब इसकी आयु पूर्ण हो जाती है तब यह बहुत सी सूखी लकड़ियाँ एकत्रित करता है और उन्हीं पर बैठ कर मीठे स्वर में मधु-मय गान आरम्भ कर देता है। जिस समय यह दीपक-राग गाने लग जाता है लकड़ियों में अपने आप आग लग जाती है और 'भृङ्गराज' जल कर राख हो जाता है। तब मेह बरसता है और भृङ्गराज के चिता-भस्म से स्वयमेव एक अण्डा निकल आता है जो समयानुसार फिर भृङ्गराज हो जाता है।

रुद्रनारायण

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at The Indian Press, Ld., Allahabad.

परफ़्यूमरी के ग्राहकों को रंगीन बढ़िया कलेंडर मुफ़्त में दिया जायगा।

इंडियन परफ़्यूमरी

के

उत्तम सुगन्धित पदार्थ

जो नये नये वैज्ञानिक यन्त्रों द्वारा बनाये गये हैं और भारतवर्ष के जल-वायु के अनुकूल हैं।

नवकुसुम तैल

आज-कल हिन्दुस्तान भर में जितने सुगन्धित बढ़िया तेल प्रसिद्ध हैं हमारे यहाँ का 'नवकुसुम तैल' उनसे किसी भाँति कम नहीं है। नवकुसुम तैल शुद्ध और बढ़िया तेल से बनाया जाता है; यह न बाज़ारू तेल है और न इसमें पैराफ़िन आदि का संसर्ग है। नवकुसुम तैल के केवल ८ बूँद सिर में मलने और ४ बूँद कानों में डालने से सिर का दर्द तुरन्त ही जाता रहता है। सिर और बाल के समस्त रोगों की ओषधि होने के अलावा दिल और दिमाग़ को ताज़ा रखनेवाला भी यह है। एक बार अवश्य परीक्षा कीजिए। बढ़िया और नये फ़ैशन की शीशी में यह रक्खा जाता है फिर भी दाम फ़ी शीशी ।।।), तीन शीशियों का सिर्फ़ २) और एक दरजन के केवल ७) हैं।

इत्र

(दर फ़ी तोला)	
रूह गुलाब	८०), ६०), ४०) तक
सन्दली गुलाब, सेवती	१।) से १५) तक
केवड़ा, केतकी	१) से १०) तक
मोतिया, मुश्क हिना	१।) से ७) तक
शाहनाज़, मुश्कअम्बर, मदनमस्त	१।) से ५) तक

(दर फ़ी तोला)	
चमेली, चम्पा, मौलश्री, जुही	१।) से ५) तक
नरगिस, हरसिँगार, ज़ाफ़रान	१।) से ५) तक
ख़स, पानड़ी	१।) से २) तक
रूह ख़स और रूह पानड़ी	२) से ५) तक
पोदीना, आम, मिट्टी (गिल)	२) से ५) तक

तेल

(सुगन्धित तिलों का बढ़िया तेल दर फ़ी सेर)	
चमेली	३), ४), ५), ८), १०) तक
बेला	३), ४), ५), ७) १०) तक
मसाला	३), ४), ८) तक
मेहदी, आंवला और गुलाब	४), ८) तक

नूतन आविष्कार—ख़ालिस तिल्ली का सुगन्धित तेल	
फ़ी बोतल (जिसमें १२ औंस तेल आता है)	१।)
तीन बोतलों का दाम	३॥)
एक दरजन का दाम	१३)

अर्क़

दर फ़ी बोतल; जिसमें २४ औंस अर्क़ आता है	
गुलाब जल	५), ४), ३), २), १॥) तक
केवड़ा जल	५), २॥), १॥) तक

दर फ़ी शीशी जिसमें ३ औंस अर्क़ आता है	
गुलाब जल	१), ।।।), ॥-), ।≡), ।=)
केवड़ा जल	।।।), ॥-), ।≡)

मिलने का पता—**मैनेजर इंडियन परफ़्यूमरी,**
३, पायोनियर रोड, इलाहाबाद, कटरा।

इन्हीं शीशियों में सुगन्धि का ख़ज़ाना है। जिस सुगन्धि के लिए बेचारे भौंरे बाग़-बग़ीचों में मतवाले बने घूमते फिरते हैं और काँटों की मार सहकर फूलों की ख़ुशामद किया करते हैं, वही चित्त को प्रसन्न करनेवाली सुगन्धि आपके लिए इन शीशियों में बन्द है। देखिए, सैकड़ों बाग़ीचों की चीज़ें, अपनी असल सूरत में चाहे जब आपका चित्त प्रसन्न करने को तैयार हैं।

शरबत

गर्मी के दिनों में देशी चीनी के बने हुए सुगन्धित और स्वादिष्ट शरबतों का व्यवहार कीजिए। ये बड़ी शुद्धता के साथ हमारे यहाँ तैयार किये जाते हैं।

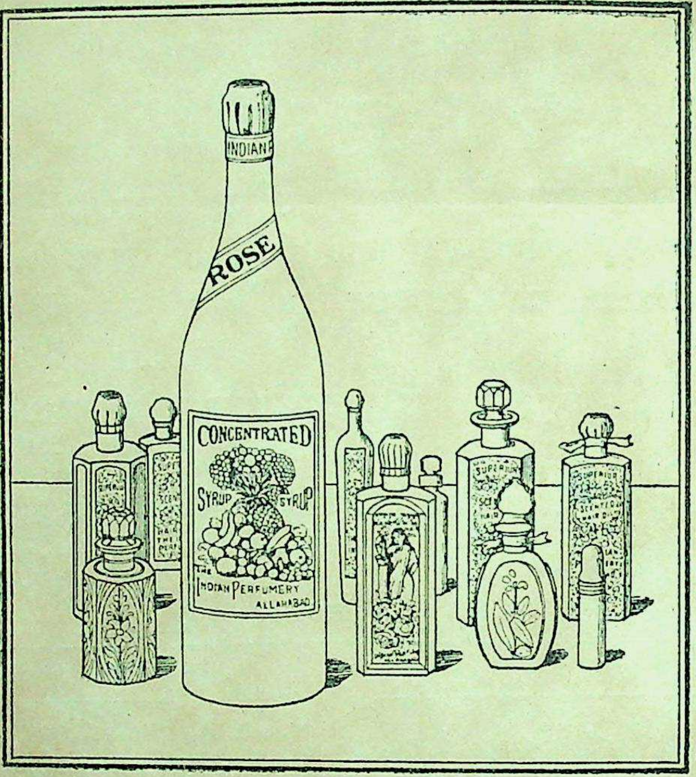

इंडियन ओटो

नीचे की बारह शीशियाँ एक साथ ख़रीदनेवाले को सिर्फ़ १४) में दी जाती हैं। उपहार में देने के लिए इससे बढ़िया दूसरी चीज़ नहीं।

शरबत।

(फ़ी बोतल)		(फ़ी बोतल)	
गुलाब	... ३) २) १॥)	अंगूर	... ३) २)
केवड़ा	... ३) २) १॥)	नीबू	... ३) २)
संतरा	... ३) २) १॥)	पोदीना, ख़स, केला इत्यादि	३) २)
अनार	... ३) २) १॥)		

इंडियन ओटो

गुलाब	... १॥)	बकुल	... १।)
मोतिया	... १॥)	सुहाग	... १।)
केवड़ा	... १।)	दिल-प्यारा	... १)
ख़स	... १।)	लिली	... १)
हिना	... १।)	हिलियोट्रोप	... १)
चम्पा	... १।)	इंडियन बोके	... १)

व्यापारियों के काम की बात—थोक फ़रोश व्यापारियों और ख़रीदारों के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया है। आर्डर मिलते ही सावधानी के साथ तुरन्त माल रवाना किया जाता है। पत्र भेजकर व्यापाराना दर मँगाइए। हमारे यहाँ नये फ़ेशन के बढ़िया बढ़िया गुलाब-पाश भी बिकते हैं। तम्बाकू ज़रदा और पत्ती ४) से ३२) सेर तक हमसे ख़रीदिए। कृपया अपना नाम और पता स्पष्ट लिखिए। अधिक माल मँगाने पर पास के रेलवे स्टेशन का नाम ठीक ठीक अवश्य लिखिए।

माल मँगाने का पता—

मैनेजर इंडियन परफ़्यूमरी,
नं० ३, पायोनियर रोड, इलाहाबाद।

112818

Compiled
1999-2000